ओ३म्

# ऋग्वेद

## -भाषा भाष्य-

२,३,४ मण्डल

~महर्षि दयानन्द सरस्वती

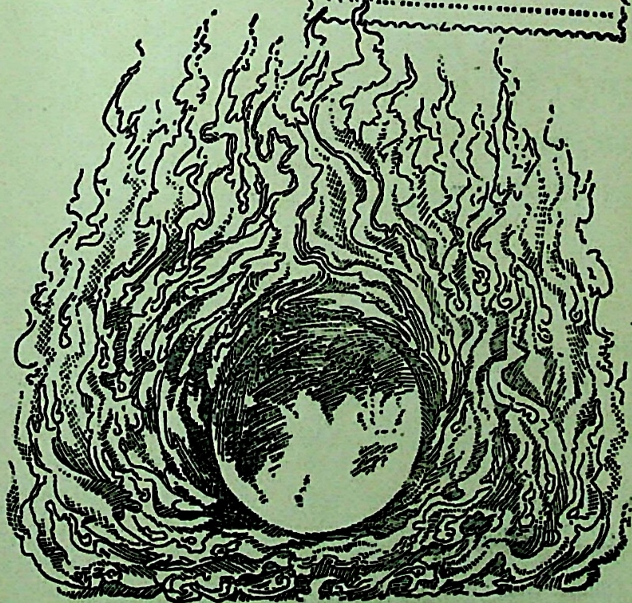
कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

ओ३म्

# ऋग्वेद

## भाषा भाष्य





आर्यसमाज स्थापना-शताब्दी-प्रकाशन

•

प्रकाशक

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली-१



•

[२]

ऋग्वेद (आर्य भाषा भाष्य)

द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ मण्डल

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत

•

मूल्य २० रुपये



•

मुद्रक

चतुरसेन

सार्वदेशिक प्रेस, दरियागंज, दिल्ली-६

* ओ३म् *

# वेद भाष्य के लिए दान दाता

**जिन्होंने ५ हजार रुपया प्रदान किया**

१. श्रीयुत मंत्री जी, आर्य समाज, काकड़वाड़ी गिरगाँव वी० पी० रोड, बम्बई ५०००)
२. श्री जयदेव जी आर्य, ३१०, सत्य बिल्डिंग शीर्ष सर्किल-बम्बई-२२ ५०००)
३. श्री ओ० पी० गोयल जी—मैसर्स एयर ट्रान्सपोर्ट कारपोरेशन ३/५ आसफ अली रोड; नई दिल्ली-१ ५०००)
४. श्री सरदारीलाल जी अग्रवाल C/O वैल्डन इलैक्ट्रीकल्स प्रा० लि० बम्बई ५०००)
५. श्री आदित्य प्रतापसिंह शूर जी कच्छ कैशल, वी० पी० रोड बम्बई ५०००)
६. श्रीयुत सेठ धरमसी मूलराज खटाऊ दि खटाऊ मकन जी, स्पिनिंग एण्ड वीविंग, कं० लि० लक्ष्मीबिल्डिंग, बेलार्ड स्ट्रीट बम्बई-१ ५०००)
७. श्री सदा जीवित लाल जी पंजाबी चन्दूहलवाई बम्बई ५०००)
८. श्री पी० डी० सिंह जी, राजगृह, २९ रास्ता बान्द्रा बम्बई-५० ५०००)
९. माननीय श्री सेठ योगेन्द्र भाई मफतलाल जी बम्बई ५०००)

**जिन्होंने २५ सौ रुपया प्रदान किया**

१. मैसर्स रैनबक्शी लैबोरेट्रीज प्राईवेट लिमिटेड ओखला नई दिल्ली २५००)

**जिन्होंने २ हजार रुपया प्रदान किया**

१. श्रीयुत आर० के० मेहरा, चैरिटेबल ट्रस्ट द्वारा श्री मोहनलाल भयाना सी० ५४ महारानी बाग नई दिल्ली-१४ २०००)

## जिन्होंने १००१) रुपया प्रदान किया

१. श्री जगदीश चढ्ढा जी द्वारा पावर इंजीनियरिंग कम्पनी ४६५।४६७ कालवा देवी रोड, बम्बई-२ — १००१)
२. श्री मैसर्स मोहिन्द्रनाथ एण्ड कम्पनी डब्ल्यू ६० ए० ग्रेटर कैलाश नई दिल्ली-४८ — १००१)
३. श्री के० एस० दिग्विजयसिंह जी, दरबारगढ़ खरेड़ी, जामनगर (गुजरात) — १००१)

## जिन्होंने १ हजार रुपया प्रदान किया

१. श्री डा० दुःखन राम जी, व्रज किशोर पथ, पटना (विहार) — १०००)
२. श्री सोमनाथ जी मरवाहा एडवोकेट, ८ मलकागंज, दिल्ली-७ — १०००)
३. श्री दीवान रामशरणदास जी मण्डी केसर गंज, लुधियाना — १०००)
४. श्री सेठ भगवती प्रसाद जी गुप्त सागर विहार होटल ८६, डिमोलो रोड वम्बई-९ — १०००)
५. श्री मा० शिवचरणदास जी ११३ दरियागंज, दिल्ली-६ — १०००)
६. श्री वाबूलाल जी गुप्त, बुद्धिभवन, सूवे की गोठ, लश्कर (ग्वालियर) — १०००)
७. श्री पं० मनोहर जी विद्यालंकार, ईश्वर भवन, खारीवावली दिल्ली-६ — १०००)
८. श्री ला० ज्योति प्रसाद जी प्रधान आर्य समाज दीवानहाल दिल्ली-६ — १०००)
९. श्री गजानन्द जी आर्य, ९६ मुक्ताराम वावू स्ट्रीट कलकत्ता-७ — १०००)
१०. श्री राय साहब चौधरी प्रतापसिंह जी, माडल टाउन, करनाल — १०००)
११. श्री ला० दीवानचन्द जी ३३ बी० पूसा रोड, नई दिल्ली-५ — १०००)
१२. श्री पं० सत्याचरण शर्मा, रिटायर्ड फोरेस्ट रेंजर पाटी गली के आगे मुहल्ला, छपेटी इटावा (उ० प्र०) — १०००)
१३. श्री स्वामी देवानन्द जी महाराज, ग्राम कुनकुरा पो० इंचौली, (मेरठ) — १०००)
१४. श्रीमती प्रेम देवी दर्गन द्वारा श्री आसकरणदास सरदाना, ८ सरक्यूलर ऐवन्यू, ईस्ट नागल टाउनशिप (पंजाब) — १०००)
१५. श्री गोविन्द भाई के० नन्दवाना, २५६, सरदार वल्लभभाई पटेल मार्ग वम्बई-४ — १०००)

१६. श्री ओम्प्रकाश जी मेहरा, प्र म कुटीर, थर्डफ्लोर, मेरीन ड्राइव, वम्वई १०००)
१७. श्री रतनचन्द जी सूद श्री रतनचन्द चैरिटेवल ट्रस्ट १६ गाल्फलिंकरोड नई दिल्ली-३ १०००)
१८. श्री गुलजारी लालजी आर्य ८०/८२ नागदेवी स्ट्रीट, बम्बई-३ १०००)
१९. श्री गण्डाराम जी मेहता, भारत टिम्बर रे० रोड वम्बई-१० १०००)
२०. श्री जीवनदास चरला जी, हंसराज कालेज के सामने, मलका गंज दिल्ली-७ १०००)
२१. श्री हरिश्चन्द्र जी खन्ना म० नं० ३४७, गली परजा कटरा परजा अमृतसर १०००)
२२. श्री डा० जगन्नाथ जी, भगवती देवी, कूँचा घासी राम फतेहपुरी दिल्ली-६ १०००)
२३. श्रीमती माता जानकी देवी जी तथा पुत्र श्री किशनदास जी, २६५ कूँचा घासीराम फतेहपुरी, दिल्ली-६ १०००)
२४. श्री मैसर्स अमरडाईस्टफ्स कम्पनी अतुल प्रोडक्स क्लाथमार्कीट, दिल्ली-६ १०००)
२५. श्री मंत्री जी, आर्यसमाज, आर्यसमाज रोड, जामनगर १०००)
२६. श्री रामजीप्रसाद गुप्त पूर्णमासी भवन, मुगलसराय (वाराणसी) १०००)
२७. श्री आचार्य जी, गुरुकुल सूपा जि० नवसारी (गुजरात) १०००)
२८. मैसर्स हरिनगर शुगर मिल्स वम्वई द्वारा श्री राजनारायण लाल, मालावार हिल वम्वई १०००)
२९. श्री डा० नारायणदास जी, फिजीशियन एण्ड आई स्पेशियलिस्ट फैंसी बाजार, गोहाटी १०००)
३०. श्री लेखराज जी गुप्त, ४७ ए० जैसावाला फोर्ट वम्वई १०००)
३१. श्री राजेश गुप्ता जी, १०३२८, मोतियाखान नई दिल्ली-५५ १०००)
३२. श्री जगदीश चन्द्र भयाना जी, आर० ४१ ग्रेटर कैलाश नई दिल्ली-४८ १०००)
३३. श्री मैसर्स कनवर किशनसिंह भयाना एण्ड क० सी० ५४ महारानी वाग, नई दिल्ली-१४ १०००)
३४. श्री पन्नालाल जी मित्तल, सुभाषनगर देहरादून (उ० प्र०) १०००)
३५. श्री मंत्री जी आर्य समाज दीवान हाल दिल्ली-६ १०००)

३६. श्री मंत्री जी, आर्य समाज, बाजार श्रद्धानन्द, अमृतसर (पंजाब) १०००)
३७. श्री मन्त्री जी, आर्य केन्द्रीय सभा, १५ हनुमान रोड, नई दिल्ली-१ १०००)
३८. श्री मन्त्री जी, आर्य समाज १६, विधानसरणी कलकत्ता-६ १०००)
३९. श्री मन्त्री जी आर्य समाज, ६४ रवीन्द्र सरणी बड़ा बाजार, कलकत्ता-७ १०००)
४०. श्री मन्त्री जी, आर्य समाज बोकारो स्टील सिटी (धनबाद) (बिहार) १०००)
४१. श्री गुरुदास राम भण्डारी, ८३ ब्रेज्यूक्रीसैण्ट, एस० यू० कैलगरी १४, अलबेर्टा कनाडा १०००)
४२. श्री एल० के० नन्दवाना जी प्यूपिल्स बैंक बिल्डिंग थर्ड फ्लोर भद्र अहमदाबाद-६ १०००)
४३. श्री ओंकार नाथ जी, १५४ रे० रोड, बम्बई-१० १०००)
४४. छगनलाल जी विजय वर्गीय बेगम बाजार, हैदराबाद १०००)
४५. श्री बनवारीलाल जी राधेमोहन श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली १०००)
४६ श्री मन्त्री जी आर्य समाज करौल बाग दिल्ली १०००)
४७. श्री वीरेन्द्रजी एम० ए० जालन्धर १०००)
४८. श्री नारायणदास जी जुनेजा बान्द्रा बम्बई १०००)

सभी दान दाताओं का धन्यवाद—

ओम्प्रकाश त्यागी मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली



ओ३म्

# ऋग्वेद भाष्य

## द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ मण्डलम्

परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामीनिर्मित

## भाषानुवाद

संवत् २०२६ विक्रमाब्द, दयानन्दाब्द १४८

आर्यसंवत् १९७२९४९०७२

मूल्य २०)

# हे वेद पति

**सर्वात्मा सच्चिदानन्दो-**
**ऽनन्तो योऽन्यायकृच्छुचिः ।**
**भूयात्तमां सहायो नो**
**दयालुः सर्वशक्तिमान् ॥१॥**

व्याख्यान—जो परमात्मा, सबका आत्मा, सत चित् आनन्दस्वरूप, अनन्त, अज, न्यायकारी, निर्मल, सदा पवित्र, दयालु, सब सामर्थ्य वाला हमारा इष्ट देव है वह हमको सहाय नित्य देवे, जिससे महा कठिन काम भी हम लोग सहज से करने को समर्थ हों। हे कृपा-निधे! यह काम हमारा आप ही सिद्ध करने वाले हो, हम आशा करते हैं कि आप अवश्य हमारी कामना सिद्ध करेंगे।

—महर्षि दयानन्द सरस्वती




**आर्य समाज काकड़वाड़ी**

विट्ठलभाई पटेल रोड बम्बई ४ ने वेदभाष्य प्रकाशनार्थ

५०००) रुपया प्रदान किया—धन्यवाद

## ५०००) रुपया वेदभाष्य प्रकाशनार्थ देने वाले महानुभाव



माननीय श्री सेठ प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास बम्बई ने अपने चि० सुपुत्र श्री आदित्य जी के शुभ विवाह के अवसर पर ५०००) रुपये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली को वेद भाष्य के प्रकाशन में सहायतार्थ प्रदान किए।



श्री जयदेव जी आर्य, बम्बई।



श्री ओ० पी० गोयल, कलकत्ता।



धर्म परायणा स्व० श्रीमती राजदेवी जी

( धर्मपत्नी श्री प्रद्युम्न सिंह जी बम्बई )

आपका ३१-८-७२ को बम्बई में स्वर्गवास हो गया। आपने अपने जीवनकाल में ही वेद भाष्य की सहायतार्थ सभा को ५०००) रुपये प्रदान करने का संकल्प किया था।

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र-
चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्र-
विणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा
व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

अथर्व० १९-७१-१

स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक~पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु, बल, सन्तति, पशु कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।

शुक्ल

* ओ३म् *

# अथ ऋग्वेदभाषाभाष्य

## द्वितीय मण्डल । प्रथम सूक्त

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अङ्गिरसः शौनहोत्रो भार्गवो गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । १ पङ्क्तिः । ६ भुरिक् पङ्क्तिः । १३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । १५ विराड् जगती । १६ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ३ । ५ । ८ । १० निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । ६ । ११ । १२ । १४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब दूसरे मण्डल का और उसमें प्रथम सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के दृष्टान्त से विद्वान् और विद्यार्थियों के कृत्य को कहते है ॥

त्वम॑ग्ने द्युभिस्त्वमा॑शुशुक्षणिस्त्वमद्भ्यस्त्वमश्म॑नस्परि॑ ।
त्वं वनेभ्यस्त्वमोष॑धीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान (नृपते) मनुष्यों की पालना करने वाले ! जो (त्वम्) आप (द्युभिः) विद्यादि प्रकाशों से विराजमान (त्वम्) आप (आशुशुक्षणिः) शीघ्रकारी (त्वम्) आप (अद्भ्यः) जलों से पालना करने वाले मेघ के समान (त्वम्) आप (अश्मनः, परि) पाषाण के सब ओर से निकले रत्न के समान (त्वम्) आप (वनेभ्यः) जङ्गलों में चन्द्रमा के तुल्य (त्वम्) आप (ओषधीभ्यः) ओषधियों से वैद्य के समान और (त्वम्) आप (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (शुचिः) पवित्र शुद्ध (जायसे) होते हैं सो हम लोग आप लोगों को सत्कार करने योग्य हैं ॥ १ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे

राजन् ! जैसे विजुली अपने प्रकाश से शीघ्र जाने वाली जल, पाषाण, वन और ओषधियों के पवित्र करने से सब की पालना करने वाली है वैसे विद्वान् जन समग्र सामग्री से पवित्र आचरण वाला होता हुआ विद्यादि के प्रकाश से सब की उन्नति करने वाला होता है। इस मन्त्र का निरुक्त में भी व्याख्यान है ॥ १ ॥

तवा॑ग्ने हो॒त्रं तव॑ पो॒त्रमृ॒त्वियं॒ तव॑ ने॒ष्ट्रं त्वम॒ग्निदृ॑ताय॒तः ।
तव॑ प्रशा॒स्त्रं त्वम॑ध्वरीयसि ब्र॒ह्मा चासि॑ गृ॒हप॑तिश्च नो॒ दमे॑ ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वलवान् वर्त्तमान विद्वान् ! (तव) विद्या, धर्म और नम्रता से प्रकाशमान जो आप उनका (होत्रम्) जिस में पदार्थ होमा जाता वह होता का काम (तव) आप का (पोत्रम्) पवित्र काम (तव) आपका (नेष्ट्रम्) पहुंचाने का काम वह है (ऋत्वियम्) कि जो ऋत्विजों के योग्य है (त्वम्) आप (अग्नित्) अग्नि को प्रदीप्त करने वाले और (ऋतायतः) अपने को सत्य की इच्छा करने वाले (तव) आप का (प्रशास्त्रम्) उत्तम शिक्षा करना काम है (त्वम्) आप (अध्वरीयसि) अपने को अहिंसा कर्म की इच्छा करते (त्वम्) आप (ब्रह्मा) चारों वेदों के जानने वाले (च, असि) हैं और (नः) हम लोगों के (दमे) जिस में जन इन्द्रियों का दमन करते हैं इस घर में (गृहपतिः) घर के कामों की रक्षा करने हारे (च) भी हैं ॥ २ ॥

भावार्थः—जिस पुरुष का अग्निहोत्र के तुल्य उपकार, ऋत्विजों के कर्म के समान पवित्र क्रिया, आप्त विद्वानों के समान न्याय, अग्नि विद्या को जानने वाले के समान उद्यम, न्यायाधीश के समान न्याय-व्यवस्था, यज्ञ करने वाले के समान अहिंसा, वेदपारङ्गत के समान विद्या और गृहपति के समान ऐश्वर्य्य का संग्रह हो वही प्रशंसा को प्राप्त होने योग्य होता है ॥ २ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वम॑ग्न॒ इन्द्रो॑ वृष॒भः स॒ताम॑सि॒ त्वं विष्णु॑रुरुगा॒यो न॑म॒स्यः॑ ।
त्वं ब्र॒ह्मा र॑यि॒विद्ब्र॑ह्मणस्पते॒ त्वं वि॑धर्त्तः सचसे॒ पुर॑न्ध्या ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सूर्य के समान वर्त्तमान ! (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वृषभः) दुष्टों के सामर्थ्य को विनाशने वाले (त्वम्) आप (सताम्) सत्पुरुषों के बीच (नमस्यः) सत्कार करने योग्य (असि) हैं (विष्णुः) जगदीश्वर के समान (त्वम्) आप सज्जनों को (उरुगायः) बहुतों से कीर्त्तन किये हुये हैं। हे (ब्रह्मणस्पते) वेदविद्या

का प्रचार करने वाले ! जो (त्वम्) आप (रयिवित्) पदार्थविद्या के जानने (ब्रह्मा) समस्त वेद के पढ़ने वाले हैं । हे (विधर्त्तः) जो नाना प्रकार के शुभ गुणों को धारण करने वाले ! (त्वम्) आप (पुरन्ध्या) पूर्ण विद्या के धारण करने वाली स्त्री उसके साथ (सचसे) सम्बन्ध करते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य से आप्त विद्वानों के समीप से विद्या शिक्षा को प्राप्त हुआ ईश्वर के समान उपकार-दृष्टि से प्रशंसा और सत्कार को प्राप्त हुआ प्रतिदिन उत्तम बुद्धि से समस्त शुभ गुण कर्म और स्वभावों को धारण करता है वह सम्पूर्ण विद्यावान् होता है ॥३॥

अब चलते हुए विषय में राजशिष्य के कृत्य का वर्णन करते हैं ॥

त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्वं मित्रो भवसि दस्म ईड्यः ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुजं त्वमंशो विदथे देव भाजयुः ॥४॥

पदार्थः—हे (देव) अतीव मनोहर (अग्ने) सूर्य के समान समस्त अर्थों का प्रकाश करने वाले ! जो (त्वम्) आप (धृतव्रतः) सत्य को धारण किये स्वीकार किये हुए (वरुणः) श्रेष्ठ के समान (राजा) शरीर आत्मा और मन से प्रतापवान् (भवसि) होते हैं (दस्मः) दुःख और दुष्टों के विनाश करने वाले (ईड्यः) प्रशंसा के योग्य (मित्रः) प्राण के मित्र होते हैं (यस्य) जिस राज्य के (सम्भुजम्) सम्भोग करने को (त्वम्) आप (अर्यमा) न्यायकारी (सत्पतिः) सज्जन और सदाचारों के पालने वाले होते हैं (अंशः) प्रेरणा करने वाले (त्वम्) आप (विदथे) संग्राम में (भाजयुः) अर्थी प्रत्यर्थियों की व्यवस्था से पृथक् पृथक् करने वाले होते हैं इस से हम लोगों के राजा हैं ॥४॥

भावार्थः—जिस से सत्य को धारण कर असत्य का त्याग किया जाता और मित्र के समान सब के लिये सुख दिया जाता है वह सत्यसन्ध, दुष्टाचार से अलग हुआ सत्य और असत्य का यथावद्विवेचन करने वाला सब को मान करने योग्य होता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वमग्ने त्वष्टा विधते सुवीर्यं तव ग्नावो मित्रमहः सजात्यम् ।
त्वमाशुहेमा ररिषे स्वश्व्यं त्वं नरां शर्धो असि पुरूवसुः ॥५॥१७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्तमान विद्वान् (त्वष्टा) अज्ञान का विनाश करने वाले ! (त्वम्) आप (विधते) सेवा करते हुए मनुष्य के लिये (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम को देते हैं । हे (मित्रमहः) मित्रों का सत्कार करने वाले

(ग्नावः) प्रशंसित वाणी से युक्त जन ! (तव) आप का (सजात्यम्) समान जातियों में प्रसिद्ध हुआ प्रेम है (आशुहेमा) शीघ्रकारी जनों को वृद्धि देने वाले (त्वम्) आप (स्वश्व्यम्) सुन्दर अग्न्यादि पदार्थों में प्रसिद्ध हुए बल को (रिरिषे) देते हैं सो (त्वम्) आप (पुरूवसुः) बहुतों को निवास देने वाले (नराम्) मनुष्यों के (शर्धः) बल के बढ़ाने वाले (असि) हैं ॥५॥

भावार्थः—जिस पुरुष की सत्यवाणी और परार्थ पराक्रम है वह राजजनों में प्रशंसायुक्त होता है ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वम॑ग्ने रु॒द्रो असु॑रो म॒हो दि॒वस्त्वं शर्धो॒ मारु॑तं पृ॒क्ष ई॑शिषे ।
त्वं वातै॑ररु॒णैर्या॑सि शङ्ग॒यस्त्वं पू॒षा वि॑ध॒तः पा॑सि॒ नु त्मना॑ ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान दाह करने वाले ! (त्वम्) आप (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाले (असुरः) मेघ के समान (महः) बड़े (त्वम्) आप (मारुतम्) मरुत् विषयक (पृक्षः) सम्बन्ध और (दिवः) प्रकाशमान पदार्थ के (शर्धः) बल के, (ईशिषे) ईश्वर हैं उसके व्यवहार प्रकाश करने में समर्थ हैं (त्वम्) आप (वातैः) पवनों से और (अरुणैः) अग्नि आदि पदार्थों के साथ (यासि) प्राप्त होते हैं (पूषा) पुष्टि करने और (शङ्गयः) सुख प्राप्ति कराने वाले (त्वम्) आप (त्मना) अपने से (विधतः) सेवकों की (नु) शीघ्र (पासि) पालना करते हैं इससे किस को सत्कार करने योग्य नहीं होते ? ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो जन बल की इच्छा करते दुष्टाचारियों को अच्छे प्रकार ताड़ना देकर धर्माचारियों को सुखी करते और सदैव सबकी उन्नति को चाहते हैं वे अतुल ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वम॑ग्ने द्रविणो॒दा अ॑रं॒कृते॒ त्वं दे॒वः स॑वि॒ता र॑त्न॒धा अ॑सि ।
त्वं भगो॑ नृपते॒ वस्व॑ ईशिषे॒ त्वं पा॒युर्दमे॒ यस्तेऽवि॑धत् ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सूर्य के समान सुख देनेवाले ! (त्वम्) आप (अरङ्कृते) पूरे पुरुषार्थ करने वाले के लिए (द्रविणोदाः) धन देने वाले (त्वम्) आप (रत्नधाः) रत्नों को धारण और (सविता) ऐश्वर्य के प्रति प्रेरणा करने वाले (देवः) मनोहर (असि) हैं। हे (नृपते) मनुष्यों की पालना करने वाले और (भगः) ऐश्वर्यवान् ! (त्वम्) आप (वस्वः) धनों की (ईशिषे) ईश्वरता रखते हैं (यः) जो (ते) आप

के (दमे) निज घर में (अविधत्) विधान करता है उसके (त्वम्) आप (पायुः) पालने वाले हैं ॥७॥

भावार्थः—जो पुरुषार्थी मनुष्यों का सत्कार तथा आलस्य करने वालों का तिरस्कार करने वाले और सेवकों के लिए सुख देने वाले ऐश्वर्यवान् हों वे इस संसार में सबके राजा होने को योग्य होवें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वाम॑ग्ने॒ दम॒ आ वि॒श्पतिं॒ विश॒स्त्वां राजा॑नं सुवि॒दत्र॑मृञ्जते ।
त्वं विश्वा॑नि स्वनीक पत्यसे॒ त्वं स॒हस्रा॑णि श॒ता द॒श प्रति॑ ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रतापवान् (विश्पतिम्) प्रजा की पालन करने वाले ! (त्वाम्) आप को विशः) प्रजाजन (दमे) निज घर में (आ, ऋञ्जते) सब ओर से प्रसिद्ध करते हैं अर्थात् प्रजापति मानते हैं और (सुविदत्रम्) सुन्दर देने वाले (त्वाम्) आप को (राजानम्) अपना स्वामी प्रसिद्ध करते हैं। हे (स्वनीक) सुन्दर सेना रखने वाले ! (त्वम्) आप (विश्वानि) समस्त पदार्थों को (पत्यसे) पतिभाव को प्राप्त होते हैं और (त्वम्) आप (सहस्राणि) सहस्रों (शता) सैकड़ों और (दश) दहाइयों के (प्रति) प्रति पतिभाव को प्राप्त होते हैं ॥८॥

भावार्थः – वही राजा होने योग्य है जिसको समस्त प्रजाजन स्वीकार करें। वही सेनापति होने को योग्य है जो दश वा सहस्र वीरों के साथ युद्ध कर सकता है ॥८॥

त्वाम॑ग्ने पि॒तर॑मि॒ष्टिभि॒र्नर॒स्त्वां भ्रा॒त्राय॒ शम्या॑ तनू॒रुच॑म् ।
त्वं पु॒त्रो भ॑वसि॒ यस्तेऽवि॑ध॒त्त्वं सखा॑ सु॒शेवः॑ पास्या॒धृषः॑ ॥९॥

पदार्थः— हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान राजन् ! (यः) जो (त्वम्) आप (पुत्रः) बहुत दुःख से रक्षा करने वाले (भवसि) होते हैं जो (ते) आप के सुख का (अविधत्) विधान करता है जो (सुशेवः) सुन्दर सुख देने वाले (सखा) मित्र (त्वम्) आप (आधृषः) सब ओर से धृष्टता करने वाले जनों को (पासि) पालते हो उन (त्वाम्) आप (तनूरुचम्) तनूरुच् अर्थात् जिन के लिए शरीर प्रकाशित होते वा उन (त्वाम्) आप (पितरम्) पालने वाले वा (इष्टिभिः) हवनों के समान सत्कारों से अग्नि के तुल्य वर्त्तमान को (भ्रात्राय) भाईपने के लिए (शम्या) कर्म के साथ (नरः) मनुष्य पालें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे होम आदि से अच्छा सेवन किया हुआ अग्नि रक्षा करने वाला होता है वैसे भ्राता

मित्र पुत्र जन अपने भ्राता मित्र और पितृयों को सेवें ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वम॑ग्न ऋ॒भुरा॒के न॑म॒स्य॑१स्त्वं वाज॑स्य क्षु॒मतो॑ रा॒य ई॑शिषे ।
त्वं वि भा॑स्य॒नु द॑क्षि दा॒वने॒ त्वं वि॒शिक्षु॑रसि य॒ज्ञमा॒तनिः॑ ॥१०॥१८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सर्वशास्त्रपारङ्गत प्रतापवान् राजन्! (त्वम्) आप (ऋभुः) वुद्धिमान् हैं और (आके) समीप में (नमस्यः) नमस्कार सत्कार करने योग्य हैं (त्वम्) आप (वाजस्य) विज्ञान निमित्तक (क्षुमतः) वहुत अन्नादि पदार्थ समूह जिसके सम्वन्ध में विद्यमान उस (रायः) धन के (ईशिषे) ईश्वर होते हैं (त्वम्) आप (विभासि) विशेषता से सब पदार्थों का प्रकाश करते हैं और अग्नि के समान (अनुदक्षि) अनुकूलता से अज्ञानजन्य दुःख को दहन करते हो (दावने) दानशील (विशिक्षुः) उत्तम शिक्षा करने वाले (त्वम्) आप (यज्ञम्) यज्ञ का (आतनिः) विस्तार करने वाले (असि) हैं ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अग्नि के समान प्रजाओं के पीड़ा देने वालों को जलाते हैं पुरुषार्थ से ऐश्वर्य की उन्नति करते हैं विद्या विनय और उत्तम शीलादि का प्रकाश करते हैं वे सब को माननीय होते हैं ॥१०॥

फिर अध्यापक विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वम॑ग्ने॒ अदि॑ति॒र्दे॑व दा॒शुषे॒ त्वं होत्रा॒ भार॑ती वर्द्धसे गि॒रा ।
त्वमि॒ळा श॒तहि॑मासि॒ द॒क्षसे॒ त्वं वृ॑त्र॒हा व॑सुपते॒ सर॑स्वती ॥११॥

पदार्थः—हे (देव) प्रकाशमान (अग्ने) विद्या देने वाले विद्वान्! (त्वम्) आप (दाशुषे) दानशील शिष्य के लिये (अदितिः) अन्तरिक्ष प्रकाश के समान विद्या गुणों का प्रकाश करने वाले हैं (त्वम्) आप (होत्रा) ग्रहण करने योग्य (भारती) विद्या धारण करने वाली वालिका के समान होते हुए (गिरा) सुन्दर शिक्षा और विद्यायुक्त वाणी से (वर्द्धसे) वृद्धि को प्राप्त होते हैं (त्वम्) आप (दक्षसे) विद्या वल के देने के लिये (शतहिमा) सौ वर्ष जिसकी आयु वह (इडा) स्तुति के योग्य अध्यापिका के समान (असि) हैं हे (वसुपते) धन के पालने हारे (त्वम्) आप (वृत्रहा) मेघहन्ता सूर्य के समान तथा (सरस्वती) प्रज्ञान विज्ञानयुक्त वाणी के समान हैं ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अच्छी विद्या का पढ़ाने हारा शास्त्र का पारगन्ता विद्वान् जन माता के समान पालना करता

है और सब विषयों से उत्तम गुणों को देता है उस से शिष्यजन शीघ्र विद्या-बलयुक्त होते हैं ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वमग्ने सुभृत उत्तमं वयस्तव स्पार्हे वर्ण आ संदृशि श्रियः ।
त्वं वाजः प्रतरणो बृहन्नसि त्वं रयिर्बहुलो विश्वतस्पृथुः ॥१२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विजुली के समान बलीजन ! जो (त्वम्) आप (रयिः) द्रव्यरूप (बहुलः) बहुत सुखों के ग्रहण करने हारे (विश्वतः) सब से (पृथुः) विस्तार को प्राप्त (सुभृतः) उत्तम कर्म जिन्होंने धारण किया (प्रतरणः) कठिनता से दुःखों को पार होते और (बृहन्) बढ़ते हुए (असि) हैं जो (त्वम्) आप (वाजः) ज्ञानवान् हैं जिन (तव) आपके (स्पार्हे) इच्छा करने और (संदृशि) अच्छे प्रकार देखने योग्य (वर्णे) वर्ण में (उत्तमम्) उत्तम (वयः) मनोहर जीवन (आ, श्रियः) और सब ओर से लक्ष्मी वर्त्तमान है सो (त्वम्) आप अध्यापक हूजिये ॥१२॥

भावार्थः--इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे विद्वान् जन गुण कर्म स्वभाव से विजुली को जान और कार्य्यों में उसका अच्छे प्रकार प्रयोग कर श्रीमान् होते हैं और ब्रह्मचर्य से दीर्घायु होते हैं वैसे सब विद्या-युक्त मनुष्यों को होना चाहिये ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वामग्न आदित्यास आस्यं१ त्वां जिह्वां शुचयश्चक्रिरे कवे ।
त्वां रातिषाचो अध्वरेषु सश्चिरे त्वे देवा हविरदन्त्याहुतम् ॥१३॥

पदार्थः—हे (कवे) समस्त साङ्गोपाङ्ग वेद के जानने वाले (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् ! (आदित्यासः) बारह महीना जैसे सूर्य्य को वैसे विद्यार्थी-जन जिन (त्वाम्) आपको (आस्यम्) मुख के समान अग्रगन्ता और (शुचयः) पवित्र शुद्धात्मा जन (त्वाम्) आपको (जिह्वाम्) वाणीरूप (चक्रिरे) कर रहे मान रहे हैं तथा (अध्वरेषु) न नष्ट करने योग्य व्यवहारों में (रातिषाचः) दान के सेवने वाले जन (त्वाम्) आपको (सश्चिरे) सम्यक् प्रकार से मिलते हैं (त्वे) तुम्हारे होते (देवाः) विद्वान् जन (आहुतम्) सब ओर से ग्रहण किये हुए (हविः) भक्षण करने योग्य पदार्थ को (अदन्ति) खाते हैं सो आप हमारे अध्यापक हूजिए ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जैसे संवत्सर का आश्रय लेकर महीने, मुख का आश्रय लेकर शरीर की पुष्टि, जिह्वा के आश्रय से रस का विज्ञान, यज्ञ को प्राप्त हो विद्वानों के सत्कार और उत्तम

अन्न को पाकर रुचि होती है वैसे आप्त शास्त्रज्ञ धर्मात्मा विद्वानों को प्राप्त होकर मनुष्य शुभ गुण लक्षणयुक्त होते हैं ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वे अग्ने विश्वे अमृतासो अद्रुह आसा देवा हविरदन्त्याहुतम् ।
त्वया मर्तासः स्वदन्त आसुतिं त्वं गर्भो वीरुधां जज्ञिषे शुचिः ॥१४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान ! आप (त्वे) तुम्हारे होते (अद्रुहः) द्रोह छोड़े हुए (विश्वे) सब (अमृतासः) अपने अपने रूप से जन्म मरण रहित जीवात्मा जिनके वे (देवाः) विद्वान् जन (आहुतम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थ को (आसा) मुख से (हविः) जो कि विद्वानों के खाने योग्य है (अदन्ति) खाते हैं तथा जिन (त्वया) आप की प्रेरणा से (स्वदन्ते) सुन्दरता से भोजन करते हुए (मर्तासः) शरीर के योग से जन्म मरण सहित मनुष्य (आसुतिम्) जन्मयोग अर्थात् विद्याजन्म का संयोग सेवते हैं जो (त्वम्) आप (वीरुधाम्) लता वृक्षादिकों के बीच (गर्भः) गर्भरूप अग्नि जैसे वैसे हो कर (शुचिः) पवित्र होते हुए (जज्ञिषे) प्रसिद्ध होते हैं उन आपका विद्या की प्राप्ति के लिये लोग आश्रय करते हैं ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब जीव विद्यमान अग्नि के होते जीने और भोजन करने को योग्य होते हैं वैसे शास्त्रज्ञ धर्मात्मा पढ़ाने वालों के होते पवित्र रागद्वेषरहित सांसारिक और पारमार्थिक सुख को प्राप्त हुए मुक्ति के बीच आनन्द करते हुए जन्मान्तर संस्कार में पवित्र होते हैं ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वं तान्त्सं च प्रति चासि मज्मनाग्ने सुजात प्र च देव रिच्यसे ।
पृक्षो यदत्र महिना वि ते भुवदनु द्यावापृथिवी रोदसी उभे ॥१५॥

पदार्थः—हे (सुजात) सुन्दर प्रसिद्धिवान् (देव) विद्या देने वाले (अग्ने) बिजुली के समान सबसे अलग विद्वान् ! जो (त्वम्) आप (मज्मना) बल से वा पुरुषार्थ से (तान्) उन मनुष्यों को कि जो मोक्ष सुख और सांसारिक सुख साधने वाले हैं (प्रति, च) प्रतिनिधि और (सम्, च) मिले हुए भी (असि) हैं (च) और (प्र, रिच्यसे) अलग होते हो और (उभे) दोनों (रोदसी) सांसारिक तुच्छ सुख के कारण रोने के निमित्त जो (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी के समान (महिना) अपने महिमा से (यत्) जो (अत्र) यहां (पृक्षः) विद्या सम्बन्ध को भी प्राप्त हो जिन (ते) आपकी विद्या (वि, अनु, भुवत्) अनुकूल विशेषता से होती है सो आप हमारे

अध्यापक और उपदेशक हूजिए ॥१५॥

भावार्थः--जैसे अग्नि में अनेक गुण हैं वैसे विद्वानों की सेवा करने और धर्म में प्रवर्त्तमान होने अधर्म से निवृत्त जनों में इस संसार में बहुत शुभ गुण उत्पन्न होते हैं ॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये स्तोतृभ्यो गोअंग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च ताँश्च प्र हि नेपि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे
सुवीराः ॥१६॥१९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् ! आप (ये) जो (सूरयः) विद्या ज्ञान चाहते हुए जन (स्तोतृभ्यः) समस्त विद्या के अध्यापक विद्वानों के लिए (गोअग्राम्) जिसमें इन्द्रिय अग्रगन्ता हों (अश्वपेशसम्) उस शीघ्रगामी प्राणी के समान रूप वाली (रातिम्) विद्यादान क्रिया को (उप, सृजन्ति) देते हैं (तान्, च) उनको और (अस्मान्, च) हम लोगों को भी (वस्यः) अत्युत्तम निवासस्थान (आ, प्र, नेषि, हि) अच्छे प्रकार उत्तमता से प्राप्त करते हो इसी से (सुवीराः) उत्तम शूरतादि गुणों से युक्त हम लोग (विदथे) विवाद संग्राम में (बृहत्) बहुत (वदेम) कहें ॥१६॥

भावार्थः--इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् सर्वोत्तम विद्यादान देके हमको तथा औरों को विद्वान् करते हैं वैसे हमको भी चाहिए कि उनको सदा प्रसन्न करें ॥१६॥

इस सूक्त में अग्नि के दृष्टान्त से विद्वान् और विद्यार्थियों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिए ॥

यह दूसरे मण्डल में प्रथम सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता १ । २ । ७ । १२ विराट् जगती । ४ जगती । ५ । ६ । ९ । १३ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ३ । ८ । १० । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः धैवतः स्वरः ॥

अब द्वितीय सूक्त का आरम्भ है उसमें फिर अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

यज्ञेन वर्द्धत जातवेदसमग्निं यजध्वं हविषा तना गिरा ।
समिधानं सुप्रयसं स्वर्णरं द्युक्षं होतारं वृजनेषु धूर्षदम् ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो ! तुम (तना) विस्तृत (गिरा) वाणी से (वृजनेषु) जिन मार्गों में जन जाते हैं उनमें (धूर्षदम्) विमानादिकों की धुरियों को ले जाने तथा (होतारम्) पदार्थों को ग्रहण करने वाले (समिधानम्) प्रचण्ड दीप्तियुक्त (सुप्रयसम्) सुन्दर मनोहर (द्युक्षम्) प्रकाशमान (स्वर्णरम्) सुख की प्राप्ति कराने हारे (जातवेदसम्) उत्तम होता है धन जिससे उस (अग्निम्) अग्नि को (हविषा) दान से (यजध्वम्) प्राप्त होओ और उस (यज्ञेन) यज्ञ से (वर्द्धत) बढ़ो ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य शिल्पक्रिया से विजुली आदि के रूप को यान विमान आदि के कार्य्य में अच्छे प्रकार युक्त करें वे ऐश्वर्य को प्राप्त हों ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अभि त्वा नक्तीरुषसो ववाशिरेऽग्ने वत्सं न स्वसरेषु धेनवः ।
दिवइवेदरतिर्मानुषा युगा क्षपो भासि पुरुवार संयतः ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रदीप्त विद्वान् जन ! (स्वसरेषु) गोष्ठों में (वत्सम्) बछड़े को (धेनवः) गौयें (न) जैसे रंभवाती हैं वैसे (नक्तीः) रात्रि और (उषसः) दिन (त्वा) आपको (अभि, ववाशिरे) सब ओर से शब्दायमान करते हैं अर्थात् प्रत्येक काम के नियत समय में आप अपने शब्दादि व्यवहार को प्राप्त होते हो । हे (पुरुवार) बहुतों को स्वीकार करने योग्य ! आप (दिवइव) सूर्यप्रकाश के समान अपने प्रकाश से (इत्) ही (अरतिः) सर्व व्यवहारों की प्राप्ति कराने वाले (मानुषा) मनुष्यसम्बन्धी (युगा) युगवर्षों को और (क्षपः) निवासहेतु रात्रि समयों को (संयतः) संयम किए हुए (आ, भासि) अच्छे प्रकार प्रकाशमान होते हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे गौयें अपने बछड़ों को प्राप्त होतीं वैसे काल विभाग परिश्रमी विद्वान् जन को प्राप्त होते हैं । जिस कारण उसके सब कार्य नियमयुक्त काल से सिद्ध होते हैं । आलसी जनों के काम कभी भी नियत समय पर नहीं होते । परिश्रमी विद्वान् जन रात्रि के समय को भी अपने कार्य का समय मानकर जैसा चाहते वैसे समय पर कार्य किया करते हैं और मनुष्य सम्बन्धी पूर्णायु को प्राप्त होते हैं किन्तु परिश्रम से आयु की हानि को नहीं प्राप्त होते ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तं देवा बुध्ने रजसः सुदंससं दिवस्पृथिव्योररतिं न्यैरिरे ।
रथमिव वेद्यं शुक्रशोचिषमग्निं मित्रं न क्षितिषु प्रशंस्यम् ॥३॥

पदार्थः—जो (देवाः) विद्वान् (बुध्ने) अन्तरिक्ष में वा (रजसः) लोक के बीच में वा (दिवस्पृथिव्योः) सूर्य पृथिवी के बीच (अरतिम्) प्राप्त (सुदंससम्) जिससे सुन्दर काम बनते हैं (शुक्रशोचिषम्) और शीघ्रता करने वाला तेज जिसमें विद्यमान (वेद्यम्) जानने योग्य (तम्) उस (अग्निम्) अग्नि को (क्षितिषु) पृथिवियों में (प्रशंस्यम्) प्रशंसनीय (मित्रम्) मित्र के (न) समान वा (रथमिव) रथ के समान (न्यैरिरे) निरन्तर कँपाते अर्थात् चलाते हैं वे अत्यन्त सुख को क्यों न प्राप्त होवें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! यदि अन्तरिक्ष में स्थित पदार्थों में वर्त्तमान अग्नि को जानकर रथ के समान कार्यों में चलावे तो वह मित्र के समान कार्यों को सिद्ध करे ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तमुक्षमाणं रजसि स्व आ दमे चन्द्रमिव सुरुचं ह्वार आ दधुः ।
पृश्न्याः पतरं चितयन्तमक्षभिः पाथो न पायुं जनसी उभे अनु ॥४॥

पदार्थः—जो विद्वान् जन (जनसी) सब पदार्थों को उत्पन्न करने वाली द्यावापृथिवी अर्थात् सूर्य पृथिवी के सम्बन्ध से मानुषी सृष्टि के अन्नादि पदार्थ उत्पन्न होते हैं (उभे) दोनों वा (पाथः) जल (पायुम्) उसके पीने वाले को (न) वैसे वर्त्तमान तथा(रजसि) ऐश्वर्य के निमित्त (उक्षमाणम्) सींचा हुआ (स्वे) अपने (दमे) कला घर में (चन्द्रमिव) सुवर्ण के समान (आ, सुरुचम्) अच्छे प्रकार प्रकाशमान (पृश्न्याः) वा अन्तरिक्ष के बीच (ह्वारे) जिस व्यवहार में कुटिल गति को पदार्थ प्राप्त होते हैं उसमें (पतरम्) गमन को प्राप्त होता (चितयन्तम्) और पदार्थों को इकट्ठा कराता (तम्) उस अग्नि को (अक्षभिः) इन्द्रियों के साथ (अन्वादधुः) अनुकूलता से स्थापन करते हैं वे पदार्थवेत्ता होते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे जल पियासे को तृप्त करता है वैसे कार्यों में संप्रयुक्त किया हुआ अग्नि ऐश्वर्य के साथ जनों को युक्त करता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स होता विश्वं परि भूत्वध्वरं तमु हव्यैर्मनुंष ऋञ्जते गिरा ।
हिरिशिप्रो वृधसानासु जर्भुरद्द्यौर्न स्तृभिश्चितयद्रोदसी अनु ॥५॥२०॥

पदार्थः—जो (हरिशिप्रः) ऐसा है कि जिसके मुख्यावयव पदार्थ को हरने और (होता) ग्रहण करने वाले हैं (तम्) उस (विश्वम्) समस्त (अध्वरम्) न नष्ट करने योग्य शिल्पसाध्य व्यवहार को (परि, भूतु) विचारे और उसको (उ) तर्क वितर्क के साथ (हव्यैः) ग्रहण करने योग्य पदार्थों और (गिरा) वाणी से (मनुषः) मनुष्य (ऋञ्जते) प्रसिद्ध करते हैं। जो अग्नि (वृधसानासु) बढ़ी हुई प्रजाओं में (रोदसी) द्यावापृथिवी के (अनु) अनुकूल (द्यौः) सूर्य (स्तृभिः) नक्षत्र अर्थात् तारागणों के साथ (न) जैसे वैसे पदार्थों से (चितयत्) चेतन करे वा (जर्भुरत्) निरन्तर पदार्थों को धारण करे (सः) वह सबको कार्यों में अच्छे प्रकार युक्त कराने योग्य है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य नक्षत्रों को प्रकाशित करता है वैसे यह अग्नि समस्त विश्व को प्रकाशित करता है जो पढ़ने और सुनने से अग्निविद्या का ग्रहण करते हैं वे सुभूषित होते हैं ॥५॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स नो रेवत्समिधानः स्वस्तये संददस्वान्रयिमस्मासु दीदिहि ।
आ नः कृणुष्व सुविताय रोदसी अग्ने हव्या मनुंषो देव वीतये ॥६॥

पदार्थः—हे (देव) व्यवहारविद्याकुशल (अग्ने) विद्वान् ! जैसे (सः) वह (समिधानः) सम्यक् प्रकाशमान (संददस्वान्) अच्छे अग्नि (नः) हम लोगों के (स्वस्तये) सुख के लिए (रेवत्) बहुत धनयुक्त व्यवहार को धारण करता है वैसे आप (अस्मासु) हम लोगों में (रयिम्) धन को (आ, दीदिहि) प्रकाश कीजिए और (नः) हम लोगों को (सुविताय) ऐश्वर्य के लिए (कृणुष्व) संनद्ध कीजिए वा जैसे (रोदसी) द्यावापृथिवी (हव्या) ग्रहण करने योग्य पदार्थ (मनुषः) मनुष्यों को प्राप्त कराती हुई (वीतये) सुख प्राप्ति के लिए होती हैं वैसे आप हूजिए ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे संसिद्ध किया हुआ अग्नि धन प्राप्ति का निमित्त होता है वैसे अच्छे प्रकार प्राप्त हुए विद्वान् जन मनुष्यों को विद्या प्राप्ति के हेतु होते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि ।
प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्वर्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतः ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् ! आप (नः) हम लोगों के लिए (बृहतः बहुत भोग करने के पदार्थों को (दाः) दीजिए (वाजम्) ज्ञान (दुरः) द्वारों के (न) समान (श्रुत्यै) श्रवण से (सहस्रिणः) असंख्यात सुखरूपी अङ्गयुक्त पदार्थों को (दाः) दीजिए और (अपा, वृधि) उनको प्रकट कीजिए तथा (प्राची) जो पहिले से वर्त्तमान (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवी को (ब्रह्मणा) धन से युक्त (कृधि) कीजिए (उषसः) दिनों को (शुक्रम्) शीघ्रकारी (स्वः) सुख के (न) समान (वि, दिद्युतः) विशेष प्रकाशित कीजिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो अग्नि के तुल्य असंख्य सुख द्वारों के समान विद्यामार्ग और यथासमय कार्यों से दिवसों को संयुक्त करते हैं वे सूर्य और पृथिवी के समान अन्नादि के संयोग से सुखी होते हैं ॥७॥

अब विद्वानों के विषय के अन्तर्गत राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स इधान उषसो राम्या अनु स्वर्ण दीदेदरुषेण भानुना ।
होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे ॥८॥

पदार्थः—जैसे (इधानः) प्रकाशमान (सः) वह (अग्निः) अग्नि (अरुषेण) उत्तम रूपयुक्त (भानुना) प्रकाश से (होत्राभिः) ग्रहण की हुई क्रियाओं से (उषसः) प्रतिदिन (राम्याः) रात्रियों में (मनुषः) मनुष्यों को (स्वः) सुख के (न) समान (अनु, दीदेत्) अनुकूलता से प्रकाशित कराता वैसे (चारुः) सुन्दर (अतिथिः) सत्कार करने के योग्य जिसके ठहरने की अविद्यमान तिथि वह (स्वध्वरः) न विनाशने योग्य (राजा) प्रकाशमान सभापति (आयवे) राजकार्य्य में चलने अर्थात् प्रवृत्त होने के लिए (विशाम्) प्रजाजनों के बीच वर्त्ते ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे अहोरात्रों का काटने वाला सूर्य अपने तेज से सबके अनुकूल प्रकाशित होता है वैसे राजा सत्य और झूठ कार्य करने वालों के विभाग से प्रजा-जनों की पालना करे ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एवा नौ अग्ने अमृतेषु पूर्व्य धीष्पीपाय बृहद्दिवेषु मानुषा ।
दुहाना धेनुर्वृजनेषु कारवे त्मना शतिनं पुरुरूपमिषणि ॥९॥

पदार्थः—हे (पूर्व्य) पूर्वज विद्वानों द्वारा विद्या पढ़ाकर किये (अग्ने) विद्वान् ! आप (त्मना) अपने से जो (बृहद्दिवेषु) बहुत प्रकाश जिनमें विद्यमान उन (वृजनेषु) बलयुक्त (अमृतेषु) विनाश और उत्पत्ति रहित जीवों में (मानुषा) मनुष्यसम्बन्धी सुख और (इषणि) इच्छा के निमित्त (शतिनम्) अपरिमित असंख्य (पुरुरूपम्) जिसमें बहुत रूप विद्यमान उस व्यवहार को (दुहाना) दोहती पूरा करती हुई (धेनुः) वाणी ही है उन सबकी प्राप्ति कराते हुए (एव) ही (नः) हम लोगों के लिये और (कारवे) करने वाले के लिये (धीः) बुद्धि और कर्मों की (पीपाय) वृद्धि कीजिये ॥९॥

भावार्थः—विज्ञान चाहने वाले जनों को शिष्ट महात्मा जनों से पाई हुई बुद्धि को प्राप्त होकर बहुत प्रकार के पदार्थविज्ञान से मनुष्य जन्म के धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी फलों को प्राप्त होना चाहिये ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वयमग्ने अर्वता वा सुवीर्यं ब्रह्मणा वा चितयेमा जनाँ अति ।
अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्व१र्ण शुशुचीत दुष्टरम् ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् ! आप (अर्वता) अश्वादि युक्त सेना समूह (वा) अथवा (ब्रह्मणा) धन से (दुष्टरम्) दुःख के साथ उल्लंघन करने योग्य (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम और (जनान्) जनों को जतलाते हो वैसे (वयम्) हम लोग (अति, चितयेम) अत्यन्त चिन्ता से स्मरण कराते हैं । हे मनुष्यो ! जैसे (अस्माकम्) हम लोगों के (वा) अथवा विद्वानों के (स्वः) सुख के (न) समान (द्युम्नम्) यश को (कृष्टिषु) मनुष्यों में विद्वान् प्रकाशित करे वैसे इसको तुम लोग (शुशुचीत) शुद्ध करो जैसे हमारे (पञ्च) पाँच (उच्चा) उत्तम (अधि) अधिकार ऊपर वर्त्तमान हैं वैसे तुम्हारे भी हों ॥१०॥

भावार्थः—विद्वानों के सङ्गी ज्ञान चाहने वाले पुरुषों को चाहिये कि आप्त शिष्ट जनों से जैसा विज्ञान प्राप्त हो वैसा ही औरों को देवें । जैसे हम लोगों के ब्रह्मचर्य विद्या बल शील पुरुषार्थ बढ़ते हैं वैसे सबके बढ़ें ऐसी हम लोग इच्छा करें ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स नो बोधि सहस्य प्रशंस्यो यस्मिन्त्सुजाता इषयन्त सूरयः ।
यमग्ने यज्ञमुपयन्ति वाजिनो नित्ये तोके दीदिवांसं स्वे दमे ॥११॥

पदार्थः—हे (सहस्य) बल के विषय में उत्तम (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् (वाजिनः) उत्तम विज्ञानवान् पुरुष ! (नित्ये) नित्य (तोके) छोटे व्यवहार में और (स्वे) अपने (दमे) घर में (दीदिवांसम्) प्रकाशित करते हुए (यम्) जिस (यज्ञम्) विद्याप्राप्ति के व्यवहार को (उपयन्ति) प्राप्त होते हैं (यस्मिन्) जिसमें (सुजाताः) उत्तम पुरुषार्थ से प्रसिद्ध (सूरयः) विद्वान् जन आनन्द को (इषयन्त) प्राप्त होवें (सः) वह (प्रशंस्यः) प्रशंसा करने योग्य यज्ञ (नः) हम लोगों को आप (बोधि) बतलाइये ॥११॥

भावार्थः—जो विद्वानों के मार्ग से और सुशीलता से नित्य पदार्थों को प्राप्त हों वे औरों को भी प्राप्त करावें ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उभयासो जातवेदः स्याम ते स्तोतारो अग्ने सूरयश्च शर्मणि ।
वस्वो रायः पुरुश्चन्द्रस्य भूयसः प्रजावतः स्वपत्यस्य शग्धि नः ॥१२॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) विज्ञान को प्राप्त हुए (अग्ने) परम विद्वान् और उपदेशक जन ! जिस कारण आप (नः) हमारे (स्वपत्यस्य) सुन्दर सन्तानयुक्त (प्रजावतः) प्रजावान् (भूयसः) बहुत (वस्वः) निवास का हेतु (पुरुश्चन्द्रस्य) बहुत सुवर्णादि धनयुक्त (रायः) धन के दान करने को (शग्धि) समर्थ हो इससे (ते) आपके (शर्मणि) घर में (स्तोतारः) प्रशंसक (सूरयः) और विद्वान् जन (उभयासः) दोनों प्रकार के हम लोग उन्नति को प्राप्त (स्याम) होवें ॥१२॥

भावार्थः—जो धर्म से धनादि पदार्थों का सञ्चय करते हैं उनका अतुल धन, उत्तम प्रजा और सुशील अपत्य होते हैं। जो पाण्डित्य और प्रगल्भता को प्राप्त होकर अध्यापक और उपदेशक होते हैं वे दुःख को नहीं देखते हैं ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।
अस्माञ्च ताँश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१३॥२१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान्! आप (ये) जो (सूरयः) विद्वान् जन (स्तोतृभ्यः) सर्व विद्याओं की प्रशंसा करने वाले विद्वानों की (गोअग्राम्) जिस में पृथिवी वा धेनु मुख्य है और (अश्वपेशसम्) अश्वादिकों के रूप विद्यमान उस (रातिम्) दान को (उप, सृजन्ति) देते हैं (तान्) उनको (च) और अन्यों को तथा उनके समान (अस्मान्) हम लोगों को (च) और हमारे सम्बन्धियों को (हि) ही आप (प्रणेषि) सब विषय प्राप्त करते हैं इससे (विदथे) विशेष कर जानने योग्य व्यवहार में (सुवीराः) सुन्दर समस्त विद्याओं में व्याप्त हम लोग (वस्यः) अतिशय कर सब में बसने और अपने में औरों का निवास कराने वाले (बृहत्) सब से बड़े ब्रह्म को (आ, वदेम) अच्छे प्रकार कहें उसका उपदेश करें ॥१३॥

भावार्थः—जो उत्तम विद्वान् जन पढ़ाने वाले विद्वानों के लिये अधिकतर विद्या को अच्छे प्रकार देकर उनको श्रीमान् करते हैं वे हमारे प्रणेता अर्थात् सर्व विषयों को प्राप्त कराने वाले हों ॥१३॥

इस सूक्त में अग्नि के विषय से विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह समझना चाहिये ॥

यह दूसरे मण्डल में दूसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः। अग्निर्देवता। १। २ विराट् त्रिष्टुप्। ३। ५। ६। भुरिक् त्रिष्टुप्। ४। ९। ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ८। १० त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ७ जगती छन्दः। निषादः स्वरः॥

अब ग्यारह ऋचा वाले तीसरे सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में अग्नि का वर्णन किया है॥

समिद्धो अग्निर्निहितः पृथिव्यां प्रत्यङ् विश्वानि भुवनान्यस्थात्।
होता पावकः प्रदिवः सुमेधा देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥१॥

पदार्थः—जैसे (सुमेधाः) शोभना मेधा बुद्धि जिसकी वह (देवः) दिव्य विद्वान् (देवान्) विद्वानों को (यजतु) प्राप्त हो वैसे (होता) सर्व पदार्थों का ग्रहण करने वाला (पावकः) पवित्र करने वाला (अर्हन्) योग्यता को प्राप्त हुआ (अग्निः) अग्नि भी है जैसे (पृथिव्याम्) पृथिवी में (निहितः) रक्खा हुआ (समिद्धः) अच्छे प्रकार प्रदीप्त (प्रत्यङ्) प्रत्येक पदार्थों को प्राप्त होने वाला (अग्निः) अग्नि (विश्वानि) सब (भुवनानि) भूगोलों को (अस्थात्) निरन्तर स्थिर होता है वैसा (प्रदिवः) जिसकी उत्तम विद्या प्रकाशित है वह विद्वान् हो ॥१॥

भावार्थः---इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि इस संसार में ईश्वर अग्नि को न रचे तो कोई प्राणी सुख को न प्राप्त हो सके। जैसे विद्वान् विद्वानों का सत्कार करें वैसे अन्य लोग भी विद्वानों का सत्कार करें ॥१॥

अब अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नराशंसः प्रति धामान्यञ्जन्तिस्रो दिवः प्रति मह्ना स्वर्चिः ।
घृतप्रुषा मनसा हव्यमुन्दन्मूर्द्धन्यज्ञस्य समनक्तु देवान् ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! आप जैसे (नराशंसः) मनुष्यों को प्रशंसा करने योग्य (धामानि) स्थानों को (प्रत्यञ्जन्) प्रकट करता हुआ (स्वर्चिः) प्रशंसित दीप्ति वाला अग्नि (मह्ना) अपने बड़प्पन से (तिस्रः) गार्हपत्य आहवनीय दाक्षिणात्य से तीन (दिवः) दीप्तियों को तथा (हव्यम्) भक्षण करने योग्य पदार्थ (प्रत्युन्दन्) आर्द्रपन से प्रतिकूल करता हुआ (यज्ञस्य) यज्ञ के (मूर्द्धन्) उत्तम अङ्ग में (घृतप्रुषा) तेज से परिपूर्ण प्रचण्ड वा (मनसा) अपने गुणों का जो विज्ञान उससे (देवान्) दिव्य गुण वा विद्वानों को अच्छे प्रकार प्रकट है वैसे (समनक्तु) प्रकट कीजिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि बिजुली प्रसिद्ध और सूर्य रूप से सब व्यवहारों को पूर्ण करता है वैसे विद्वान् जन विद्या धर्म और सुन्दर शील आदि की प्राप्ति से समस्त आशा जो मनुष्यों की उनको पूर्ण करें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ईळितो अग्ने मनसा नो अर्हन्देवान्यक्षि मानुषात्पूर्वो अद्य ।
स आ वह मरुतां शर्द्धो अच्युतमिन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) बिजुली के समान प्रचण्ड प्रताप वाले विद्वान् जन ! (मानुषात्) और मनुष्य से (पूर्वः) प्रथम (नः) हम लोगों का (अर्हन्) सत्कार करते हुए (ईडितः) स्तुति को प्राप्त (मनसा) विज्ञान से (देवान्) दिव्य गुणों के समान विद्वानों का (यक्षि) सत्कार करते हैं (सः) सो आप (मरुताम्) पवनों के (अच्युतम्) न नष्ट होने वाले (इन्द्रम्) बिजुलीरूप (बर्हिषदम्) बड़े बड़े पदार्थों में स्थिर होने वाले (शर्द्धः) बल को (अद्य) आज (आ, वह) प्राप्त कीजिये। हे (नरः) अग्रगामी नायक जनो ! उसको आप लोग (यजध्वम्) प्राप्त हूजिये ॥३॥

भावार्थः—जो विद्वानों का सत्कार कर विद्या को ग्रहण कराती हुई पवनों में स्थिर होने वाली बिजुली को ग्रहण कर सकते हैं वे अक्षयबली

होकर सर्वत्र सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवं बर्हिर्वर्धमानं सुवीरं स्तीर्णं राये सुभरं वेद्यस्याम् ।
घृतेनाक्तं वसवः सीदतेदं विश्वे देवा आदित्या यज्ञियासः ॥४॥

पदार्थः—हे (देव) अग्नि के समान प्रकाशमान ! आप (राये) धन के लिये (स्तीर्णम्) जो ढपा हुआ (सुवीरम्) जिससे अच्छे अच्छे वीर होते हैं उस (वर्द्धमानम्) बढ़ते हुए (सुभरम्) सुख के धारण करने योग्य (बर्हिः) जल को (अस्याम्) इस (वेदी) वेदी में (घृतेन) घी से (अक्तम्) युक्त करो । हे (वसवः) पृथिव्यादिकों वा (आदित्याः) महीनों के समान विद्वानो ! तुम जैसे (यज्ञियासः) यज्ञ करने में समर्थ (विश्वे) समस्त (देवाः) दिव्य गुणयुक्त विद्वान् जन (इदम्) इस धन को प्राप्त होते हैं वैसे उसको (सीदत) प्राप्त होओ ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि अवश्य अन्तरिक्षस्थ जल सुगन्ध्यादि पदार्थ युक्त करें जिससे समस्त प्राणी आरोग्य हों ॥४॥

अब स्त्री पुरुषों के आचरण को कहते हैं ॥

वि श्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः ।
व्यचस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥५॥

पदार्थः—हे पुरुषो ! आप (नमोभिः) अन्नादिकों वा (उर्विया) पृथिवी के साथ वर्त्तमान (द्वारः) द्वारों के समान शोभावती हुई और (हूयमानाः) ग्रहण किई हुई (सुप्रायणाः) जिन की सुन्दर चाल (अजुर्याः) ज्वर रहित मनुष्यों में उत्तमता को प्राप्त (सुवीरम्) उत्तम वीरों से युक्त (यशसम्) यश और (वर्णम्) अपने रूप को (पुनानाः) पवित्र करती हुई (व्यचस्वतीः) समस्त गुणों में व्याप्ति रखने वाली (देवीः) देदीप्यमान अर्थात् चमकती दमकती हुई स्त्रियों को (वि, श्रयन्ताम्) विशेषता से आश्रय करो और उनके साथ शास्त्र वा सुखों को (वि, प्रथन्ताम्) विशेषता से कहो सुनो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे कारुकों के बनाये हुए घरों में सुन्दर शोभायुक्त बनाये हुए द्वार होवें वैसे विदुषी धर्म्मपरायणा पतिव्रता स्त्री कीर्त्तिमती और उत्तम सन्तानों की उत्पन्न करने वाली होती है ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते ।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥६॥

पदार्थः—हे स्त्रीपुरुषो ! (तन्तुम्) सूत को (वय्येव) जैसे वस्त्र बनवाने वाली नली वा (रण्विते) शब्दायमान (यज्ञस्य) सराहने योग्य यज्ञकर्म के (ततम्) विस्तृत (पेशः) रूप को (संवयन्ती) उत्पन्न कराते और (समीची) अच्छे प्रकार अपनी अपनी कक्षा में चलते हुए (पयस्वती) प्रशंसित जलयुक्त (सुदुघे) सुन्दरता से सब कामों को पूरा करने हारे (उक्षिते) सींचे हुए (उषासानक्ता) रात्रि दिन के समान तुम दोनों (नः) हम लोगों के लिये (सनता) नम्रभाव के साथ वर्त्तमान (साधु) उत्तम (अपांसि) कर्मों को कराओ ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। सन्तान और भृत्यजन अपने पालने वाले स्त्री पुरुषों के प्रति ऐसी प्रार्थना करें कि तुम हम से धर्मयुक्त कार्य कराओ ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दैव्या होतारा प्रथमा विदुष्टर ऋजु यक्षतः समृचा वपुष्टरा ।
देवान्यजन्तावृतुथा समञ्जतो नाभा पृथिव्या अधि सानुषु त्रिषु ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (दैव्या) विद्वानों में कुशल (होतारा) लेने देने वाले (प्रथमा) प्रख्यात (विदुष्टरा) अतीव विद्वान् (वपुष्टरा) अतीव रूपलावण्ययुक्त (ऋचा) प्रशंसित (ऋतुथा) ऋतु ऋतु में (देवान्) पृथिवी आदि लोकों के समान (यजन्तौ) सत्कार करते हुए स्त्रीपुरुष (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभा) बीच (ऋजु) सरलता जैसे हो वैसे (संयक्षतः) सब व्यवहारों की सङ्गति करें वा (त्रिषु) तीन (सानुषु) शिखरों के (अधि) ऊपर (समञ्जतः) अच्छे प्रकार काम करें वैसे तुम भी प्रयत्न करो ॥७॥

भावार्थः—जैसे ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्या और शिक्षा को प्राप्त सुन्दरता से युक्त स्वयंवर विवाह विधि से पाणिग्रहण किये हुए विद्वानों के सङ्गी आप्त शास्त्रज्ञ धर्मात्मा विद्वान् अध्यापक स्त्री पुरुष सत्कर्मों में वर्त्तते हैं वैसे सब को प्रयत्न करना चाहिये ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सरस्वती साधयन्ती धियंन्न इळा देवी भारती विश्वतूर्त्तिः ।
तिस्रो देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निपद्य ॥८॥

पदार्थः—जो (साधयन्ती) विद्या और उत्तम शिक्षा से औरों को विद्वान् कराती (सरस्वती) प्रशस्त विज्ञान कराने वाली वाणी सदृश स्त्री (देवी) देदीप्यमान (इड़ा) स्तुति करने योग्य (विश्वतूर्त्तिः) समस्त संसार को शीघ्रता कराने वाली (भारती) और शुभ गुणों को धारण करने वाली (तिस्रः) तीन (देवीः) मनोहर देवी (इदम्) इस (अच्छिद्रम्) छिद्ररहित (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (निषद्य) निरन्तर प्राप्त हो के (स्वधया) अन्न से (नः) हमारी (धियम्) बुद्धि वा कर्म को (आ, पान्तु) अच्छे प्रकार पालें उनका (शरणम्) आश्रय हम लोगों को करना चाहिये ॥८॥

भावार्थः—एक माता दूसरी पढ़ाने वाली और तीसरी उपदेश करने वाली स्त्री कन्याओं को सदा समीप में सेवनी चाहिये जिससे बुद्धि और विद्या नित्य बढ़े ॥८॥

अब पुरुष विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पिशङ्गरूपः सुभरो वयोधाः श्रुष्टी वीरो जायते देवकामः ।
प्रजां त्वष्टा वि ष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथः ॥९॥

पदार्थः—जैसे (पिशङ्गरूपः) सुवर्ण के रूप के समान जिसका रूप (सुभरः) भरण पोषण करता हुआ (वयोधाः) गर्भ स्थापन करने वाला (देवकामः) और विद्वानों की कामना करता वह (श्रुष्टी) शीघ्र (वीरः) सकल विद्याओं को प्राप्त होने वाला पुरुष (जायते) उत्पन्न होता है जैसे (त्वष्टा) विविध रूप रचने वाला ईश्वर (अस्मे) हम लोगों को (प्रजाम्) सन्तान (वि, ष्यतु) देवे (अथ) इसके अनन्तर हम (देवानाम्) विद्वानों की (नाभिम्) नाभि को और (पाथः) रक्षा करने हारे अन्न को (अपि) भी (एतु) प्राप्त होवें ॥९॥

भावार्थः—जो अच्छा संस्कार किये रोग हरने और बुद्धि देने वाले उत्तम अन्न का भोजन कर सन्तानोत्पत्ति करते हैं उनके सन्तान विद्वानों के प्रिय दीर्घ आयु वाले और सुशील होते हैं ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वनस्पतिरवसृजन्नुप स्थादग्निर्हविः सूदयाति प्र धीभिः ।
त्रिधा समक्तं नयतु प्रजानन्देवेभ्यो दैव्यः शमितोप हव्यम् ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! जैसे (धीभिः) कर्मों के साथ वर्त्तमान (वनस्पतिः) वरगद आदि (अवसृजन्) फलादिकों का त्याग करता हुआ (उप, स्यात्) उपस्थित होता है वा (अग्निः) अग्नि (त्रिधा) तीन प्रकार के (समक्तम्) समूह को प्राप्त हुए (हविः) होमने योग्य द्रव्य को (सूदयाति) प्राणिमात्र के सुख के लिए कण कण करके पहुंचाता है वैसे (शमिता) शान्ति करने वाला (देव्यः) विद्वानों में प्राप्त हुए (प्रजानन्) उत्तम ज्ञान को प्राप्त होते हुए आप (देवेभ्यः) दिव्य गुणों के लिये (उप, हव्यम्) समीप में ग्रहण करने योग्य पदार्थ को (प्र, नयतु) प्राप्त कीजिये ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वनस्पति और अग्नि अपने कर्मों से समस्त प्राणियों का उपकार करते हैं वैसे विद्वान् जन अध्ययन अध्यापन और उपदेश से सबका उपकार करें ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

घृतं मिमिक्षे घृतमस्य योनिर्घृते श्रितो घृतम्वस्य धाम ।
अनुष्वधमा वह मादयस्व स्वाहाकृतं वृषभ वक्षि हव्यम् ॥११॥

पदार्थः—हे (वृषभ) श्रेष्ठ जन ! जो आप (स्वाहाकृतम्) उत्तम क्रिया से उत्पन्न किये हुए (हव्यम्) ग्रहण करने के योग्य पदार्थ को (वक्षि) प्राप्त करते हो सो आप (अनुष्वधम्) अन्न के अनुकूल व्यञ्जन द्रव्य को (आ, वह) सब प्रकार से प्राप्त कीजिये जैसे मैं (घृतम्) घी को (मिमिक्षे) सींचने की इच्छा करता हूं वैसे आप सींचने की इच्छा करो जैसे (अस्य) इस अग्नि का (घृतम्) प्रदीप्त होने का घृत (योनिः) कारण है (घृते) घी में (श्रितः) सेवन किया जाता (घृतम्) तेज (उ) ही (अस्य) इस अग्नि का (धाम) आधार है वैसे उस से आप (मादयस्व) आनन्दित हूजिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य यज्ञ में अग्नि जैसे वैसे उपकार करने वाले, परोपकार का आश्रय किये हुए, औरों को सुखी करते हैं वैसे आप भी उन से उपकार को प्राप्त और आनन्दित होते हैं ॥११॥

इस सूक्त में अग्नि विद्वान् और स्त्रीपुरुषों के आचरण का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह दूसरे मण्डल में तीसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ८। स्वराट् पंक्तिः। २। ३। ५–७ आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ४ ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। ९ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब नव ऋचा वाले चतुर्थ सूक्त का आरम्भ है॥

इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं॥

हुवे वः सुद्योत्मानं सुवृक्तिं विशामग्निमतिथिं सुप्रयसम्।
मित्रइव यो दिधिषाय्यो भूद्देव आदेवे जने जातवेदाः॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे मैं (आदेवे) सब ओर से विद्या प्रकाशयुक्त (जने) विद्वान् मनुष्य के निमित्त (यः) जो (मित्र, इव) मित्र के समान (देवः) व्यवहार का हेतु (दिधिषाय्यः) यथावत् पदार्थों का धारण करने वाला (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान अग्नि प्रसिद्ध (भूत्) होता है उस को (विशाम्) प्रजाजनों के बीच (सुद्योत्मानम्) सुन्दरता से निरन्तर प्रकाशमान (सुप्रयसम्) अच्छे प्रकार मनोहर (सुवृक्तिम्) सुन्दर त्याग करने वाले (अतिथिम्) अतिथि के समान वर्त्तमान (अग्निम्) अग्नि की (वः) तुम लोगों के लिये (हुवे) प्रशंसा करता हूं वैसे हम लोगों के लिये तुम अग्नि की प्रशंसा करो॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य परस्पर विद्या दे के जगत् के प्रकाश को धारण कर वा मित्र के समान सुख देने वाले विद्वानों को जानने योग्य बिजुलीरूप अग्नि की प्रशंसा करते हैं वे उस के गुणों को जानने वाले होते हैं॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इमं विधन्तो अपां सधस्थे द्वितादधुर्भृगवो विक्ष्वा३योः।
एष विश्वान्यभ्यस्तु भूमा देवानामग्निररतिर्जीराश्वः॥२॥

पदार्थः—जो (एषः) यह (अरतिः) समर्थ (जीराश्वः) जिस के वेगवान् शीघ्रगामी गुण विद्यमान वह (अग्निः) अग्नि (भूमा) बहुताई से (देवानाम्) दिव्य गुण वाले पृथिवी आदि लोक लोकान्तरों के (विक्षु) प्रजागणों में (आयोः) प्राप्त व्यवहार को (विश्वानि) समस्त वस्तुओं को सब ओर से व्याप्त होता हुआ विद्यमान है जिस (इमम्) इस अग्नि को (विधन्तः) सेवते हुए (भृगवः) विद्वान् जन (अपाम्) अन्तरिक्ष के जल वा प्राणों के (सधस्थे) समान स्थान में (अदधुः) धरते स्थापन करते हैं उस के साथ यहां (द्विता) दोनों व्यवहारों का भाव अर्थात् शरारिनभाव और पञ्चाकलाग्निभाव (अभ्यस्तु) सब ओर से हो॥२॥

भावार्थः—जो अग्नि अपनी व्याप्ति से प्रजाजनों में प्रविष्ट है उस से समस्त वेगवान् यन्त्रकलाओं से प्रचलित किये हुए यान शीघ्र चलने वाले बनाने चाहियें ॥२॥

फिर अग्नि कार्यों से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒ग्निं दे॒वासो॒ मानु॑षीषु वि॒क्षु प्रि॒यं धुः॑ क्षे॒ष्यन्तो॒ न मि॒त्रम्।
स दी॑दयदुश॒तीरूर्म्या॒ आ द॒क्षाय्यो॒ यो दास्व॑ते॒ दम॒ आ ॥३॥

पदार्थः—जिस (अग्निम्) अग्नि को (मानुषीषु) मनुष्यसम्बन्धी (विक्षु) प्रजाजनों में (क्षेष्यन्तः) निवास करते हुए (देवासः) विद्वान् जन (प्रियम्) प्रिय मनोहर (मित्रम्) मित्र के (न) समान (आधुः) अच्छे प्रकार स्थापन करें (यः) जो (दक्षाय्यः) सब पदार्थों को छिन्न भिन्न करने वाला अग्नि (दमे) कलाघर में (दास्वते) दानशील जन के लिये (उशतीः) मनोहर (ऊर्म्याः) रात्रियों को (आ दीदयत्) प्रज्वलित करता प्रकाशित करता है (सः) वह सब को संप्रयुक्त करना चाहिये अर्थात् वह कलाघरों में युक्त करना चाहिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो अग्नि मित्र के समान सुख देता और सब प्रजाजनों में प्रदीप समान सब वस्तुओं को प्रकाशित करता है यह विद्वानों को अपने कामों में अनुकूल उसका योग करना चाहिये ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒स्य र॒ण्वा स्वस्ये॑व पु॒ष्टिः संदृ॑ष्टिरस्य हिया॒नस्य॒ दक्षोः॑।
वि यो भरि॑भ्रदोष॑धीषु जि॒ह्वामत्यो॒ न रथ्यो॑ दोधवीति॒ वारा॑न् ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो (रथ्यः) रथों में उत्तम प्रशंसित (अत्यः) सुशिक्षित तुरङ्ग उस के (न) समान (वारान्) बालकों को जैसे वैसे स्वीकार करने योग्य लोकों को और (जिह्वाम्) अपनी जिह्वा को (दोधवीति) निरन्तर कम्पाता है और (ओषधीषु) सोमलतादि ओषधियों में (वि, भरिभ्रत्) विशेष कर निरन्तर गुणों को धारण करता हुआ विद्यमान है उस (अस्य) इस की हुई (स्वस्येव) अपनी पुष्टि के समान दूसरे की (रण्वा) प्रशंसनीय (पुष्टिः) पुष्टि अर्थात् धातुवृद्धि और (हियानस्य) वृद्धि को प्राप्त होते हुए (अस्य) इस (धक्षोः) दाह करने वाले अग्नि की (संदृष्टिः) अच्छे प्रकार दृष्टि करनी चाहियें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को जैसे अपने पोषण के लिये अग्निविद्या प्राप्त किई जाती है, वैसे औरों के लिये भी

करनी चाहिये । जो इन्धनों से बढ़ता है और पदार्थों को जलाता है वह रथों में युक्त किया हुआ अग्नि शीघ्र गमन कराता है। जैसे वक्ता अपनी जिह्वा को कंपाता है वैसे अग्नि भूगोलों को कंपाता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ यन्मे अभ्वं वनदः पनन्तोशिग्भ्यो नामिमीत वर्णम् ।

स चित्रेण चिकिते रंसु भासा जुजुर्वां यो मुहुरा युवा भूत् ॥५॥

पदार्थः—(यत्) जो (चित्रेण) अद्भुत (भासा) प्रकाश से (मे) मेरे (वर्णम्) रूपका (चिकिते) विज्ञान कराता (सः) वह (रंसु) रमणीय पदार्थ को (अभ्वम्) जल के समान (आ) अच्छे प्रकार जतलाता है (यः) जो (जुजुर्वान्) जीर्ण हुआ भी (मुहुः) वार वार (युवा) तरुण के समान (आ, भूत्) अच्छे प्रकार होता है जिस की (उशिग्भ्यः) कामना करते हुए जनों को (वनदः) प्रशंसा करने वाले विद्वान् (पनन्त) प्रशंसारूप स्तुति करते हैं वह (न) नहीं (अमिमीत) मान करता अर्थात् अपनी तीक्ष्णता के कारण सब को जलाता, सब मनुष्य उस का अच्छे प्रकार प्रयोग करें ॥५॥

भावार्थः—जो अग्नि के समस्त अविद्यमान को विद्यमान के समान करता और जैसे जीव वृद्धपन और मरण को प्राप्त होकर फिर उत्पन्न हुआ ज्वान होता है वैसे जो वार वार वृद्धि और क्षय को प्राप्त होता है वह अग्नि व्यवहारों में युक्त करने योग्य है ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ यो वना तातृषाणो न भाति वार्ण पथा रथ्येव स्वानीत् ।

कृष्णाध्वा तपू रण्वश्चिकेत द्यौरिव स्मयमानो नभोभिः ॥६॥

पदार्थः—जो (वना) वन और जंगलों के प्रति (तातृषाणः) निरन्तर पिआसे के (न) समान (आ भाति) अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है और (पथा) मार्ग से (वाः) जल के (न) समान तथा (रथ्येव) रथ आदि के लिये जो हित है उस मार्ग अर्थात् सड़क के समान (स्वानीत्) शब्दायमान होता है जो (कृष्णाध्वा) काले वर्ण-युक्त (तपुः) सब ओर से तपाने वाला (रण्वः) रमणीय (स्मयमानः) कुछ मुस-कातासा हुआ (द्यौरिव) सूर्य के प्रकाश के समान (नभोभिः) अन्नादि पदार्थों से (चिकेत) उद्बोध को प्राप्त हो अर्थात् प्रज्वलित हो वह विद्वानों ही को जानने योग्य है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे कोई अति तृषायुक्त

कहने वाला जन हंसता हुआ कहे कि जल मार्ग में जाता है वैसे वनस्थ अग्नि वहुत शब्दायमान होता है ॥६॥

फिर अग्निपरता से ही विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स यो व्यस्थाद॒भि दक्ष॑दु॒र्वीं प॒शुर्नैति॑ स्व॒युर॑गो॒पाः ।

अ॒ग्निः शो॒चिष्माँ॑ अत॒सान्यु॒ष्णन्कृ॒ष्णव्य॑थिरस्वदय॒न्न भूम॑ ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (भूम) वहुताई के साथ (व्यस्थात्) विविध प्रकार से स्थित होता है (स्वयुः) जो आप जाता अर्थात् विना चैतन्य पदार्थ के भी चैतन्य के समान गति देता है (अगोपाः) पालना करने वाले गुणों से रहित पदार्थों को अपने प्रताप से सन्ताप देने वाला (पशुः) पशु के (न) समान (एति) जाता है (उर्वीम्) और भूमि को (अभि, दक्षत्) सब ओर से जलाता है (सः) वह (शोचिष्मान्) वहुत लपटों वाला (कृष्णव्यथिः) पदार्थों के अंशों को खींचने और उन को व्यथित करने वाला (अग्निः) अग्नि (अतसानि) निरन्तर जाने वाले त्रसरेणु आदि पदार्थों को (उष्णन्) जलाता और (अस्वदयत्) स्वादिष्ट करता हुआ (न) सा वर्त्तमान है ॥७॥

भावार्थ – इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो पृथिवी आदि पदार्थों में व्यवस्था को प्राप्त मूर्तिमान् पदार्थों का जलाने वाला रक्षक रहित पशु के समान आप जाने वाला प्रकाशमय अग्नि अपने तेज से विथरे हुए त्रसरे-णुओं को भी सव ओर से तपाता है वह अग्नि वलिष्ठ है यह जानना चाहिये ॥७॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नू ते॒ पूर्व॒स्याव॑सो॒ अधी॑तौ तृ॒तीये॑ वि॒दथे॒ मन्म॑ शंसि ।

अ॒स्मे अ॑ग्ने सं॒यद्वी॑रं बृ॒हन्तं॑ क्षु॒मन्तं॒ वाजं॑ स्वप॒त्यं र॒यिं दाः॑ ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् जन ! (ते) आप की (पूर्वस्य) पिछली (अवसः) रक्षा सम्बन्ध के (अधीतौ) अध्ययन में (तृतीये) तीसरे (विदथे) संग्राम के निमित्त आप ही (मन्म) विज्ञान की (शंसि) स्तुति अर्थात् प्रशंसा करते हैं वे आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (संयद्वीरम्) जिसमें संयमयुक्त वीरजन विद्यमान (बृहन्तम्) जो वढ़ता हुआ है (क्षुमन्तम्) उस प्रशंसित अन्न और (स्वपत्यम्) उत्तम अपत्ययुक्त (वाजम्) पदार्थबोध और (रयिम्) धन को (नु) शीघ्र (दाः) दीजिये ॥८॥

भावार्थः—हे विद्वान् ! जिस विद्या पढ़े हुए रक्षा करने वाले के

समीप से तृतीय सवन अर्थात् ब्रह्मचर्य के तीसरे भाग को शीघ्र पूर्ण कर लिये पीछे अग्न्यादि विद्यायें प्राप्त होकर उत्तम धन वल और प्रजावान् हम लोग हों उस को आप वतलाइये ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वया यथा गृत्समदासो अग्ने गुहा वन्वन्त उपराँ अभि ष्युः ।
सुवीरासो अभिमातिषाहः स्मत्सूरिभ्यो गृणते तद्वयो धाः ॥९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वान् ! (यथा) जैसे (त्वया) आप के साथ वर्त्तमान (गृत्समदासः) और जिन का बुद्धिमानों के आनन्द के समान आनन्द है वे (गुहा) बुद्धि में (वन्वन्तः) सब प्रकार के पदार्थों का विभाग करते हुए (सुवीरासः) उत्तम वीरों से युक्त जन (सूरिभ्यः) विद्वानों से विद्याओं को प्राप्त होकर (उपरान्) मेघों को सूर्य के समान (अभिमातिषाहः) अभिमान करने और शत्रुजनों को सहने वाले (अभिष्युः) सब ओर से हों वैसे जो (तत्) उस (वयः) काम को (धाः) धारण करता है उस की जो (गृणते) स्तुति करते हैं उन के साथ (स्मत्) ही हम लोग भी ऐसे हों ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे आप्त विद्वानों से विद्या और शिक्षा ग्रहण कर आनन्दित विजयमान और वीर-पुरुषों से युक्त प्रशंसनीय जन होते हैं वैसे अग्निविद्या से युक्त पुरुष अन्धकार को जैसे सूर्य वैसे दुःख का विनाश करते हैं ॥९॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह दूसरे मण्डल में चौथा सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३ । ६ निचृदनुष्टुप् । २ । ४ । ५ अनुष्टुप् । ८ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ७ भुरिगुष्णिक् छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले पांचवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में जीव के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

होताजनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये ।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनो यमम् ॥१॥

पदार्थः—जैसे (होता) आदाता अर्थात् गुणादि वा अन्य पदार्थों का ग्रहण-कर्त्ता (चेतनः) ज्ञानादि गुणयुक्त (पिता) और पालन करने वाला जीव (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (पितृभ्यः) वा पालना करने वालों के लिये (जेन्यम्) जीतने योग्य (यमम्) नियमकर्त्ता को और (वसु) धन को (अजनिष्ट) उत्पन्न करे और विद्वान् जन (प्रयक्षन्) प्रकृष्टता से सङ्ग करते हैं वैसे (वाजिनः) विज्ञानवान् हम लोग उक्त विषय की प्राप्ति कर (शकेम) सकें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे सच्चिदानन्दस्वरूप परमेश्वर इस संसार में सब की रक्षा के लिये अनेक द्रव्यों को रचता है वैसे विद्वान् जन भी आचरण करें ॥१॥

फिर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ यस्मिन्त्सप्त रश्मयस्तता यज्ञस्य नेतरि।
मनुष्वद्दैव्यमष्टमं पोता विश्वं तदिन्वति ॥२॥

पदार्थः—(यस्मिन्) जिस (यज्ञस्य) सङ्गम करने के योग्य जगत् के (नेतरि) नायक सविता सूर्यमण्डल में (सप्त) सात (रश्मयः) किरणें (आततः) विस्तृत हैं उस में जो (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य (दैव्यम्) दिव्य रश्मियों में प्रसिद्ध (अष्टमम्) आठवां विस्तृत है वह (पोता) शुद्ध करने वाला (विश्वम्) समस्त जगत् को प्रकाशित करता है और (तत्) उस सूर्यमण्डल को भी (इन्वति) व्याप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सात विध रश्मियों वाला सूर्य परिमाण से विस्तार को प्राप्त और पवित्र करने वाला है उस में जो चेतन ब्रह्म व्याप्त वर्त्तमान है वह समस्त सूर्यादिक को व्यवस्था प्राप्त करता है जैसे मनुष्य शिल्पक्रिया से अनेक वस्तुओं को बनाते हैं वैसे जगदीश्वर अखिल संसार का विधान करता है ॥२॥

फिर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा गया है ॥

दधन्वे वा यदीमनु वोचद्ब्रह्माणि वेरु तत्।
परि विश्वानि काव्या नेमिश्चक्रमिवाभवत् ॥३॥

पदार्थः—सूर्य (यत्) जो (ईम्) जल को (दधन्वे) धारण करता है ब्रह्मवेत्ता (वा) वा (ब्रह्माणि) बड़े बड़े ब्रह्मविषयों का (अनुवोचत्) बार बार उपदेश करता है (तत्) उस सब को जिस कारण ईश्वर (वेः, उ) जानता ही है और (विश्वानि) समस्त (काव्या) उत्तम बुद्धिमानों के कर्मों को (परि) सब ओर से जानता ही है इस कारण जैसे (नेमिः) धुरी (चक्रम्) पहियें को वर्त्तने वाली होती

वैसे इस संसार के व्यवहारों को वर्त्तने वाला विद्वान् (अभवत्) होता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। सूर्य जल को धारण करता है वा विद्वान् जन ब्रह्मविषयादि को कहते हैं उस सब को व्यापक परमेश्वर साङ्गोपाङ्ग जानता है ॥३॥

अब विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

साकं हि शुचिना शुचिः प्रशास्ता क्रतुनाजनि ।
विद्वाँ अस्य व्रता ध्रुवा वयाइवानु रोहते ॥४॥

पदार्थः—जो (विद्वान्) विद्वान् जन (शुचिना) पवित्र (क्रतुना) बुद्धि वा कर्म के (साकम्) साथ (शुचिः) शुद्ध (प्रशास्ता) उत्तम शासनकर्त्ता (अजनि) उत्पन्न होता है (हि) वही (अस्य) इस ईश्वरप्रकाशित चारों वेदों के (ध्रुवा) निश्चल अविनाशी (व्रता) सत्याचरणों को स्वीकार कर (वयाइव) विस्तार को प्राप्त शाखाओं के समान (अनु, रोहते) वृद्धि को प्राप्त होता है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पवित्र विद्वानों के साथ सङ्ग कर उत्तम बुद्धि को उत्पन्न करके अज्ञजनों के उपदेशक हो वेदविहित कर्मों का आचरण कर आप बढ़ते हैं वे औरों की उन्नति करने वाले होते हैं ॥४॥

अब विदुषी स्त्री के विषय में कहते हैं ॥

ता अस्य वर्णमायुवो नेष्टुः सचन्त धेनवः ।
कुवित्तिसृभ्य आ वरं स्वसारो या इदं ययुः ॥५॥

पदार्थः—(याः) जो (स्वसारः) बहिन कन्या जन (तिसृभ्यः) कर्म उपासना और ज्ञान विद्याओं से (कुवित्) (वरम्) स्वीकार करने योग्य बन्धुसमुदाय को (आ, ययुः) प्राप्त होवें (ताः) वे (अस्य) इस (नेष्टुः) नायक सर्व विद्याओं में अग्रगामी वेद के (वर्णम्) स्वीकार करने योग्य विषय और (इदम्) जल को (आयुवः) प्राप्त हुई (धेनवः) गौओं के समान सबको सुखों से (सचन्त) सम्बन्ध करती हैं ॥५॥

भावार्थः—जो बहिन अपने प्रियबन्धु को और कन्या विद्याविषय को प्राप्त होती हैं वे गौओं के समान उत्तम सुख को उत्पन्न करती हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदीं मातुरुप स्वसा घृतं भरन्त्यस्थित ।

तासामध्वर्युरागतौ यवो वृष्टीव मोदते ॥६॥

पदार्थः—(यदि) जो (घृतम्) जल को (उप, भरन्ती) समीप होकर भरने वाली (मातुः) माता की (स्वसा) बहिन वा (तासाम्) उन पूर्वोक्त कन्याओं की अध्यापिका (अस्थित) स्थित होती है तो ऋत्विक् और (अध्वर्युः) यज्ञ का करने वाला यज्ञ को (आगतौ) प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं वैसे [वा (यवः) (वृष्टीव) वृष्टि से ओषधि वैसे] (मोदते) हर्ष को प्राप्त होती है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। यदि कन्याजन अध्यापिका विदुषी और माता को प्राप्त होकर विदुषी होती हैं तो जल से ओषधियों के समान सब ओर से वृद्धि को प्राप्त होती हैं ॥६॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वः स्वाय धायसे कृणुतामृत्विगृत्विजम् ।

स्तोमं यज्ञं चादरं वनेमा ररिमा वयम् ॥७॥

पदार्थः—जैसे (स्वः) आप (स्वाय) अपने (धायसे) धारण करने वाले स्वभाव के लिए (कृणुताम्) किसी काम को करें वा (ऋत्विक्) ऋतुओं के अनुकूल सब व्यवहारों की प्राप्ति कराता हुआ (ऋत्विजम्) दूसरे को अपने अनुकूल वा (स्तोमम्) स्तुति प्रशंसा के योग्य व्यवहार (यज्ञम्, च) और यज्ञ को करे वैसे (वयम्) हम लोग (ररिम) रमें (आत्) और (अरम्) परिपूर्ण (वनेम) अच्छे प्रकार सब पदार्थों का सेवन करें ॥७॥

भावार्थः—जैसे आप अपने हित के लिए प्रवृत्त हों वा विद्वान् जन विद्वानों और यज्ञ करने वाले विविध प्रकार के क्रियायज्ञ को सिद्ध करते हैं वैसे हम लोग भी प्रवृत्त हों ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यथा विद्वाँ अरङ्करद्विश्वेभ्यो यजतेभ्यः ।

अयमग्ने त्वे अपि यं यज्ञञ्चकृमा वयम् ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान्! (यथा) जैसे (अयम्) यह (विद्वान्) आप्तजन (विश्वेभ्यः) समस्त (यजतेभ्यः) विद्वानों की सेवा करने वालों से पाई हुई

विद्याओं से (अरम्) दूसरों को परिपूर्ण (करत्) करता है और जैसे (त्वे) तेरे निमित्त (यम्) जिस (यज्ञम्) यज्ञ को (वयम्) हम लोग परिपूर्ण (चकृम) करें वैसे तू (अपि) भी कर ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे आप्त विद्वान् जन जगत् के लिए सत्योपदेश कर मनुष्यों को सत्य बोध वाले करते हैं वैसे सब आप्त विद्वानों को निरन्तर अनुष्ठान करना कराना चाहिये ॥८॥

इस सूक्त में जीव, ईश्वर, विद्वान् और विदुषियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह दूसरे मण्डल में पांचवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ३। ५। ८ गायत्री। २। ४। ६ निचृद्गायत्री। ७ विराट् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले छठे सूक्त का आरम्भ है—उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

इमां मे अग्ने समिधमिमामुपसदं वनेः। इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान अध्यापक विद्वान् ! जैसे अग्नि (मे) मेरे (इमाम्) इस (समिधम्) इन्धन को और (इमाम्) इस (उपसदम्) वेदी को कि जिसमें स्थित होते हैं सेवन करता है वैसे आप (वनेः) सेवन करने वाले विद्यार्थी की [(इमाः) (उ)] (गिरः) वाणियों को (सु, श्रुधि) सुन्दरता से सुनो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् ! जैसे अग्नि समिधाओं में बढ़ता है वैसे हम लोगों को परीक्षा से और हमारे वचनों को सुन कर बढ़ाइये ॥१॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अया ते अग्ने विधेमोर्जो नपादश्वमिष्टे। एना सूक्तेन सुजात ॥२॥

पदार्थः—हे (सुजात) शोभन गुणों में प्रसिद्ध ! (अश्वमिष्टे) घोड़े की इच्छा करने और (ऊर्जः) बल को (नपात्) न पतन कराने वाले (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान (ते) आप के सम्बन्ध में जो (अग्निः) अग्नि है उसकी (अया) इस

समिधा से और (सूक्तेन) उत्तमता से कहे हुए सूक्त से हम लोग (विधेम) सेवन करें ॥२॥

भावार्थः—जो विद्या और साधनों से अग्नि का युक्ति के साथ अच्छे प्रकार प्रयोग करते हैं वे अग्नि के पराक्रम से अपने कामों को सिद्ध कर सकते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तं त्वा गीर्भिर्गिर्वणसं द्रविणस्युं द्रविणोदः । सपर्येम सपर्यवः ॥३॥

पदार्थः—हे (द्रविणोदाः) धन को देने वाले विद्वान् जन ! अग्नि के समान वर्त्तमान (द्रविणस्युम्) अपने को धन की इच्छा करने वाले (गिर्वणसम्) विद्या की वाणी को सेवते हुए (तम्) उन (त्वा) आप को (सपर्यवः) अपने को सेवने की इच्छा करने वाले जन (गीर्भिः) सुन्दर शिक्षित वाणियों से सेवते हैं वैसे हम लोग (सपर्येम) सेवन करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो गुण कर्म स्वभाव से अग्नि को विशेष जान कर कार्यसिद्धि के लिये उसका अच्छे प्रकार प्रयोग करते हैं वे श्रीमान् होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् । युयोध्य१स्मद्द्वेषांसि ॥४॥

पदार्थः—हे (वसुपते) धनों की पालना करने और (वसुदावन्) धनों को देने वाले जो (मघवा) परमप्रशंसित धनयुक्त (सूरिः) विद्वान् ! आप (बोधि) सब व्यवहारों को जानते हैं (सः) सो आप (अस्मत्) हम लोगों के (द्वेषांसि) वैर भरे हुए कामों को (युयोधि) अलग कीजिये ॥४॥

भावार्थः—जो राग द्वेषरहित गुणग्राही जन होते हैं वे औरों को भी अपने सदृश करके दाता होते हुए लक्ष्मीवान् होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स नो वृष्टिं दिवस्परि स नो वाजमनर्वाणम् ।
स नः सहस्रिणीरिषः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! जैसे (सः) वह अग्नि (नः) हम लोगों के लिये (दिवः) सूर्यप्रकाश और मेघमण्डल से (वृष्टिम्) वर्षाओं को करता है वा (सः) वह अग्नि (नः) हम लोगों को (अनर्वाणम्) घोड़े जिसमें नहीं विद्यमान हैं उस (वाजम्)

वेगवान् रथ को प्राप्त कराता है वा (सः) वह अग्नि (नः) हमारे लिये (सहस्रिणीः) असंख्यात प्रकार के (इषः) अन्नों को (परि) सब ओर से उत्पन्न कराता है वैसे आप वर्त्ताव कीजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को वैसा यत्न करना चाहिये जिससे अग्नि की उत्तेजना से बहुत उपकार हों ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**ई॒ळा॒नाया॑व॒स्य॑वे॒ यवि॑ष्ठ दूत नो॒ गि॒रा । यजि॑ष्ठ होत॒रा ग॑हि ॥६॥**

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अतीव युवावस्था वाले (यजिष्ठ) अत्यन्त प्रशंसा और सत्कार के योग्य (दूत) दुष्टों को सब ओर से कष्ट देने और (होतः) दानकर्म करने वाले ! आप जैसे (अवस्यवे) अपने को रक्षा की इच्छा करने वाले (ईडानाय) स्तुति करते हुए जन के लिये (गिरा) वाणी से सुख देते हैं वैसे आप (नः) हम लोगों को (आगहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मनुष्यों का दूतरूप अग्नि पृथिवीतल से ऊपर पदार्थों को पहुँचा और जलों को वर्षा कर सब की रक्षा का निमित्त होता है वैसे विद्वान् जन उत्तम वचन से सब का हित करने वाला होता है ॥६॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**अ॒न्तर्ह्य॑ग्न॒ ईय॑से वि॒द्वान् जन्मो॒भया॑ कवे । दू॒तो जन्ये॑व॒ मित्र्यः॑ ॥७॥**

पदार्थः—हे (कवे) क्रम क्रम से बुद्धि को विषयों में प्रविष्ट करने वाले सर्वज्ञ (अग्ने) बिजुली के समान आप ही प्रकाशमान जगदीश्वर वा (विद्वान्) सब विषयों को जानने वाले विद्वान् जन ! आप (हि) ही (मित्र्यः) मित्रों में साधु (दूतः) सब से समाचार के देने हारे (जन्येव) जनों के लिये हितकारी जैसे हो वैसे (अन्तः) हृदयाकाश के बीच (ईयसे) प्राप्त होते हो (उभया) वर्त्तमान के साथ अगले पिछले (जन्म) जन्म और कर्मों को जानते हो इस से हम लोगों के उपासना करने योग्य हो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सत्य का उपदेश और सत्य का आचरण करने वाला पुरुष सब के प्रिय पियारे काम को चाहने वाला सब का मित्र शास्त्रज्ञ धर्मात्मा विद्वान् बाहर भीतर विज्ञान देकर धर्म में नियत करता है वैसे भीतर बाहर परमेश्वर सब के समस्त कामों को जान कर फल देता है ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स विद्वाँ आ च पिप्रयो यक्षि चिकित्व आनुषक् ।
आ चास्मिन्त्सत्सि बर्हिषि ॥८॥

पदार्थः—हे (चिकित्वः) विज्ञानवान् ईश्वर (सः) वह (विद्वान्) विद्वान् ! आप (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) अन्तरिक्ष जगत् में (आ सत्सि) आसन्न हो रहे हो प्राप्त हो रहे हो सो आप (आनुषक्) अनुकूल जैसे हो वैसे (आ, पिप्रयः) अच्छे प्रसन्न करते (च) और (यक्षि, च) अच्छे प्रकार सब वस्तु देते हो ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जो इस जगत् में व्याप्त, प्रिय पदार्थ का देने वाला और सर्वज्ञ अन्तर्यामी ईश्वर है उसी की उपासना करें ॥८॥

इस सूक्त में वह्नि और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह छठा सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

सोमाहुतिर्भार्गव ऋषिः । अग्निर्देवता । १—३ निचृद् गायत्री । ४ त्रिपाद् गायत्री । ५ विराट् पिपीलिका मध्या । ६ विराट् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले सातवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

श्रेष्ठं यविष्ठ भारताऽग्ने द्युमन्तमा भर । वसो पुरुस्पृहं रयिम् ॥१॥

पदार्थः—हे (वसो) सुखों में वास कराने और (भारत) सब विद्या विषयों को धारण करने वाले (यविष्ठ) अतीव युवावस्थायुक्त (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान विद्वान् ! आप (श्रेष्ठम्) अत्यन्त कल्याण करने वाली (द्युमन्तम्) बहुत प्रकाशयुक्त (पुरुस्पृहम्) बहुतों को चाहने योग्य (रयिम्) लक्ष्मी को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥१॥

भावार्थः—जो उत्तम धन लाभ के लिये बहुत यत्न करते हैं वे धनाढ्य होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा नो अरातिरीशत देवस्य मर्त्यस्य च । पर्षि तस्या उत द्विषः ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! (नः) हम (देवस्य) विद्वान् (मर्त्यस्य, च) और अविद्वान् का (अरातिः) शत्रु (मा, ईशत) मत समर्थ हो (उत) और हम लोगों को और (तस्याः) उस (द्विषः) अप्रीति वाले शत्रु के (पर्षि) पार पहुंचाइये ॥२॥

भावार्थः—जो द्वेष छोड़ धार्मिक विद्वानों को तथा अविद्वानों के साथ प्रीति उत्पन्न कराते हैं वे किसी से तिरस्कार को नहीं प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वा उत त्वया वयं धारा उदन्या इव । अति गाहेमहि द्विषः ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! जैसे (त्वया) आप्त विद्वान् जो आप उनके साथ वर्त्तमान हम लोग (धाराः) (उदन्याइव) जल की धाराओं को जैसे वैसे (विश्वाः) समस्त (द्विषः) वैरवृत्तियों को (अति, गाहेमहि) अवगाहें विलोड़ें मथें वैसे आप (उत) भी इनको गाहो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे जल की धारा प्राप्त हुए स्थान को छोड़ दूसरे स्थान को जाती हैं वैसे शत्रुभाव को छोड़ मित्रभाव को सब मनुष्य प्राप्त होवें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शुचिः पावक वन्द्योऽग्ने बृहद्विरोचसे । त्वं घृतेभिराहुतः ॥४॥

पदार्थः—हे (पावक) पवित्र करने वाले (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान ! (घृतेभिः) घी आदि पदार्थों से अग्नि के समान (शुचिः) पवित्र (वन्द्यः) स्तुति के योग्य (त्वम्) आप (बृहत्) बहुत (विरोचसे) प्रकाशमान होते हैं सो सत्कार करने योग्य हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे घी आदि पदार्थों से प्रज्वलित किया हुआ पवित्र करने वाला अग्नि बहुत प्रकाशित होता है वैसे सत्कार पाया हुआ विद्वान् जन बहुत उपकार करता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वं नो असि भारताऽग्ने वशाभिरुक्षभिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥५॥

पदार्थः—हे (भारत) सब विषयों को धारण करने वाले (अग्ने) विद्वान् ! जो (वशाभिः) मनोहर गौओं से वा (उक्षभिः) बैलों से वा (अष्टापदीभिः) जिन

में आठ सत्यासत्य के निर्णय करने वाले चरण हैं उन वाणियों से (आऽहुतः) बुलाये हुए आप (नः) हम लोगों के लिये सुख दिये हुए (असि) हैं सो हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हैं ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य आठ स्थानों में उच्चारण की हुई वाणी से सत्य का उपदेश करता हुआ गवादि पशुओं की रक्षा से सब की पालना का विधान करता है वह सब को रखने के योग्य है ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**द्रुवन्नः सर्पिरासुतिः प्रत्नो होता वरेण्यः । सहसस्पुत्रो अद्भुतः ॥६॥**

पदार्थः—जिन विद्वानों से (प्रत्नः) पुरातन (द्रुवन्नः) तथा जिस का काष्ठ अन्न और (सर्पिरासुतिः) घी दुग्धसार पान के लिये विद्यमान है और जो (सहसस्पुत्रः) बलवान् वायु के समान है वह (अद्भुतः) आश्चर्य गुण कर्म स्वभावयुक्त (होता) सब पदार्थों का देने वाला (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य अग्नि कार्यसिद्धि के लिये प्रयुक्त किया जाता है वे आश्चर्यरूप धनाढ्य होते हैं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । अग्नि का भोजनस्थानी काष्ठ और पीने के अर्थ सब ओषधियों का रस विद्यमान है यह जान कर काष्ठ और ओषधिसार जल आदि के संयोग से कलाघरों में अग्नि का प्रयोग करना चाहिये ॥६॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह दूसरे मण्डल में सप्तम सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । १ गायत्री । २ निचृत् पिपीलिका मध्या गायत्री । ३ । ५ निचृद्गायत्री । ४ विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ६ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले आठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि विषय का वर्णन करते हैं ॥

**वाजयन्निव नू रथान्योगाँ अग्नेरुप स्तुहि । यशस्तमस्य मीळ्हुषः ॥१॥**

पदार्थः—हे विद्वान् ! (वाजयन्निव) पदार्थों को प्राप्त कराते हुए आप (मीढुषः) सींचने वाले (यशस्तमस्य) अतीव यशस्वी वा बहुत जलयुक्त (अग्नेः)

अग्नि के समान प्रतापी जल के वा अग्नि के (योगान्) योगों की और (रथान्) विमानादि रथों की (नु) शीघ्र (उपस्तुहि) प्रशंसा कीजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे शिल्पी विद्वान् जन ! आप जैसे घोड़ों और बैल आदि से चलने वाले रथों को चलाते हैं वैसे ही अति शीघ्र गति से जल के कलाघरों से प्रेरणा पाया अग्नि विमानादि यानों को शीघ्र चलाता है यह सब के प्रति उपदेश करो ॥१॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

य॒: सु॒नी॒थो द॑दा॒शुषे॑ऽजु॒र्यो ज॒रय॑न्न॒रिम् । चारु॑प्रतीक॒ आहु॑तः ॥२॥

पदार्थः—(यः) जो अग्नि के समान (चारुप्रतीकः) सुन्दर गुण कर्म और स्वभावों से प्रतीत (आहुतः) वा बुलाया हुआ (अजुर्यः) जो न जीर्ण होते न नष्ट होते हैं उन में प्रसिद्ध (सुनीथः) सुन्दरता से सबकी प्राप्ति करता है और (अरिम्) शत्रुजन का नाश करता हुआ (ददाशुषे) दानशील के लिये सुख देता है वह लक्ष्मी-वान् होता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे शिल्पकामों में प्रेरणा किया हुआ अग्नि उत्तम कामों को सिद्ध करता है वैसे सुन्दर शिक्षा पाये हुए बुद्धिमान् जन बहुतसी उन्नति करते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

य॒ उ॒ श्रि॒या दमे॒ष्वा दो॒षोष॑सि प्रश॒स्यते॑ । यस्य॑ व्र॒तं न मीय॑ते ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! आप (यः) जो ((दमेषु) घरों में (दोषा) वा रात्रि और (उषसि) दिन में (श्रिया) शोभा से (आ, प्रशस्यते) अच्छे प्रकार प्रशंसा को प्राप्त किया जाता और (यस्य) जिस का (व्रतम्, उ) शील (न) न (मीयते) नष्ट होता है उस के समान हूजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि का शील और स्वरूप अनादि अविनाशी वर्त्तमान है वैसे ईश्वर जीव और आकाश आदि पदार्थों का शील और स्वरूप नित्य वर्त्तमान है ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ यः स्व१॒र्ण भा॒नुना॑ चि॒त्रो वि॒भात्य॒र्चिषा॑ । अ॒ञ्जा॒नो अ॒जरै॑र॒भि ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो विजुलीरूप (चित्रः) चित्र विचित्र अद्भुत अग्नि (अजरैः) अविनाशी पदार्थों से (अभि, अञ्जानः) सब ओर से सब पदार्थों को प्रकट

करता हुआ अग्नि (अर्चिषा) प्रशंसनीय (भानुना) प्रकाश से (स्वः) आदित्य के (न) समान (आ, विभाति) अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है ॥४॥

भावार्थः—अग्नि यह सूक्ष्म परमाणुरूप पदार्थों में सर्वदा अपने रूप के साथ रहता है काष्ठ आदि पदार्थों में वृद्धि और न्यूनता आदि से कोई समय में बढ़ता और कभी कमती होता है ॥४॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधुः । विश्वा अधि श्रियो दधे ॥५॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (उक्थानि) कहने योग्य वचन (अत्रिम्) सब पदार्थ भक्षण करने वाले (स्वराज्यम्) अपने प्रकाश से युक्त (अग्निम्) बिजुलीरूप अग्नि को (अनु, वावृधुः) अनुकूलता से बढ़ाते हैं और जैसे उन से (विश्वाः) समस्त (श्रियः) धनों को (अधि, दधे) अधिक अधिक मैं धारण करता हूं वैसे तुम को भी धारण करना चाहिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों की योग्यता है कि जिन उपदेशों से अग्न्यादि पदार्थविद्या राज्यलक्ष्मी बढ़ें उनसे सब को उद्योगी करें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य देवानामूतिभिर्वयम् ।**
**अरिष्यन्तः सचेमह्यभि ष्याम पृतन्यतः ॥६॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अग्नेः) अग्नि (इन्द्रस्य) सूर्य (सोमस्य) चन्द्रमा और (देवानाम्) विद्वान् और पृथ्वी आदि लोकों की (ऊतिभिः) रक्षा आदि व्यवहारों के साथ वर्त्तमान (अरिष्यन्तः) न नष्ट होते और (पृतन्यतः) अपने को सेना की इच्छा करते हुए (वयम्) हम लोग (सचेमहि) सङ्ग करें और मित्रपन के लिये (अभि ष्याम) सब ओर से प्रसिद्ध होवें वैसे तुम भी होओ ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन अग्न्यादि विद्या से रक्षित सब के मित्र प्रशंसित सेना वाले होकर मित्र होते हुए धर्म और विद्या की उन्नति करें वैसे सब मनुष्य प्रयत्न करें ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह आठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५ । ६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नवें सूक्त के प्रथम मन्त्र में अग्निविषयक विद्वानों के कर्मों को कहते हैं ॥

नि होता होतृषदने विदानस्त्वेषो दीदिवाँ असदत्सुदक्षः ।
अदब्धव्रतप्रमतिर्वसिष्ठः सहस्रम्भरः शुचिजिह्वो अग्निः ॥१॥

पदार्थः—विद्वानों को जो (होतृषदने) ग्रहीता जनों के रथ वा वेदी में (होता) ग्रहण करने हारा (विदानः) विद्यमान (त्वेषः) दीप्तियुक्त (दीदिवान्) वार वार प्रकाशित होता हुआ (सुदक्षः) सुन्दर जिससे बल प्रसिद्ध होता (अदब्धव्रतप्रमतिः) नहीं नष्ट हुए शील से जिस का ज्ञान होता (वसिष्ठः) जो अतीव निवास कराने हारा (शुचिजिह्वः) और जिससे जिह्वा पवित्र होती वह (सहस्रम्भरः) सहस्रों जगत् का धारण और पोषण करने वाला (अग्निः) बिजुली आदि कार्य कारण स्वरूप अग्नि (नि, असदत्) निरन्तर स्थिर होता है उसका प्रयोग सदा कार्यों में अच्छे प्रकार करने योग्य है ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य कार्यों में प्रदीप्त नित्य गुणकर्मस्वभावयुक्त पवित्र करने वाले सकल पदार्थों के धारणकर्त्ता अग्नि को यथावत् प्रयुक्त करते हैं वे अविनाशी सुख वाले होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता ।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः ॥२॥

पदार्थः—हे (वृषभ) बलवान् (अग्ने) अग्नि के समान विद्वान् ! (त्वम्) आप (नः) हमारे (दूतः) देशान्तर पहुंचाने वाले (त्वम्) आप (उ) ही (परस्पाः) सब से पार और रक्षा करने वाले (त्वम्) आप (वस्यः) निवास करने योग्य (तोकस्य) सन्तान को (आ, प्रणेता) सब ओर से अच्छे प्रकार समस्त गुणों में प्रवृत्त कराने हारे (नः) हम लोगों के (तनूनाम्) शरीरों के (तने) विस्तार में (अप्रयुच्छन्) न प्रमाद कराते हुए (गोपाः) शरीर की रक्षा करने वाले (दीद्यत्) सब विषयों को प्रकाश कराते (बोधि) और जानते हो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य, अग्नि प्रयोग से प्रेरणा दिई हुई नौका समुद्र से पार जैसे पहुंचाती, वैसे दुःखरूपी समुद्र से पार करते हैं, सन्तानों की शिक्षा में और शरीरों की रक्षा करने

में प्रवीण और प्रमाद को छोड़ धर्म के अनुष्ठान करने वाले हैं वे यहां आभ्युदयिक सुख को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विधेमं ते परमे जन्मन्नग्ने विधेम स्तोमैरवरे सधस्थे ।
यस्माद्योनेरुदारिथा यजे तं प्र त्वे हवींषि जुहुरे समिद्धे ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् ! हम लोग (स्तोमैः) स्तुतियों से (ते) आप के (परमे) उत्तम और (अवरे) अनुत्तम जन्म के निमित्त (विधेम) विचारें (यस्मात्) जिस (योनेः) कारण से आप (उदारिथ) प्राप्त होते हो उस (सधस्थे) साथ के स्थान में हम लोग (विधेम) उत्तम व्यवहार का विधान करें। जैसे (त्वे) उस (समिद्धे) प्रदीप्त अग्नि में (हवींषि) होमने अर्थात् देने योग्य पदार्थों को विद्वान् जन (जुहुरे) होमते वैसे मैं (तम्) उसका (प्रयजे) पदार्थों से सङ्ग करूं ॥३॥

भावार्थः—जो शुभ कर्मों को करते हैं वे श्रेष्ठ जन्म को प्राप्त होते हैं। जो अधर्म का आचरण करते हैं वे नीच जन्म को प्राप्त होते हैं । जैसे विद्वान् जन जलते हुए अग्नि में सुगन्ध्यादि द्रव्य का होम कर संसार का उपकार करते हैं वैसे वे सब से उपकार को वर्त्तमान जन्म में वा जन्मान्तर में प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने यजस्व हविषा यजीयाञ्छ्रुष्टी देष्णमभि गृणीहि राधः ।
त्वं ह्यसि रयिपती रयीणां त्वं शुक्रस्य वचसो मनोता ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वान् ! जिस कारण (त्वम्) आप (रयीणाम्) धनादि पदार्थों के बीच (रयिपतिः) धनपति और (त्वम्) आप (शुक्रस्य) शुद्ध करने वाले (वचसः) वचन के (मनोता) उत्तमता से जतलाने वाले (असि) हैं (हि) इसी से (यजीयान्) अत्यन्त यज्ञकर्त्ता होते हुए (हविषा) होमने योग्य वस्तु से (यजस्व) यज्ञ कीजिये और (देष्णम्) देने योग्य (राधः) धन की (श्रुष्टी) शीघ्र (अभि, गृणीहि) सब ओर से प्रशंसा करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो धनाढ्य धन से परोपकार करें वे सब के प्यारे होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**उभयं ते न क्षीयते वसव्यं दिवेदिवे जायमानस्य दस्म ।**

**कृधि क्षुमन्तं जरितारमग्ने कृधि पतिं स्वपत्यस्य रायः ॥५॥**

पदार्थः—हे (दस्म) पर दुःख भञ्जन करने वाले और (अग्ने) अग्नि के समान बढ़ने वाले विद्वान् ! (दिवेदिवे) प्रतिदिन (जायमानस्य) सिद्ध हुए जिन (ते) आपका (उभयम्) दान और यज्ञ करना दोनों (वसव्यम्) धनों में प्रसिद्ध हुए काम (न) नहीं (क्षीयते) नष्ट होते सो आप (जरितारम्) विद्यादि गुण की प्रशंसा करने वाले (क्षुमन्तम्) बहुत अन्न वाले को (कृधि) उत्पन्न करो और (स्वपत्यस्य) जिससे उत्तम सन्तान होते उस (रायः) देने योग्य धन को (पतिम्) पालने रखने वाले को (कृधि) कीजिये ॥५॥

भावार्थः—उसी के कुल से धन नाश नहीं होता जो और सुपात्रों के लिये संसार का उपकार करने को देता है ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**सैनानीकेन सुविदत्रो अस्मे यष्टा देवाँ आयजिष्ठः स्वस्ति ।**

**अदब्धो गोपाः उत नः परस्पा अग्ने द्युमदुत रेवद्दिदीहि ॥६॥**

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वान् ! जैसे (सः) वह देने वाला (अस्मे) हमारे (एना) इस (अनीकेन) सेना समूह के साथ (सुविदत्रः) सुन्दर विज्ञान देने (यष्टा) और सब व्यवहारों की सङ्गति करने वाला अच्छा ज्ञानी वा दाता (आ, यजिष्ठः) सब ओर से अतीव यज्ञकर्त्ता (अदब्धः) न नष्ट हुआ (गोपाः) गोपाल (नः) हमको (परस्पाः) दुःखों से पार करने वाला (द्युमत्) विज्ञान प्रकाशयुक्त (उत) और (रेवत्) बहुत धन सहित (स्वस्ति) सुख को देता है (उत) और (देवान्) दिव्य गुण वा अपना विजय चाहने वाले वीरों को सेवते हैं वैसे आप उक्त समस्त को (दीदिहि) दीजिये ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे उत्तम सेना से युक्त राजा दुष्टों को जीत विद्वानों का सत्कार कर और प्रजा को अच्छे प्रकार रक्षा कर सबका ऐश्वर्य बढ़ाता है वैसे सभों को होना चाहिये ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि के समान विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह नववां सूक्त समाप्त हुआ ॥

गृत्समद ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले दशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि विषय का उपदेश किया है ॥

जोहूत्रो अग्निः प्रथमः पितेवेळस्पदे मनुषा यत्समिद्धः ।
श्रियं वसानो अमृतो विचेता मर्मृजेन्यः श्रवस्यः स वाजी ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (मनुषा) मनुष्य से (पितेव) पिता के समान (प्रथमः) पहिला विस्तृत गुण कर्म वाला (इलस्पदे) पृथिवीतल पर (जोहूत्रः) अतीव सङ्ग करने अर्थात् कलाघरों में लगाने योग्य (समिद्धः) प्रज्वलित (श्रियम्) शोभा को (वसानः) ढापने वाला (अमृतः) नाशरहित (विचेताः) जिससे चैतन्यपन विगत है अर्थात् जो जड़ (मर्मृजेन्यः) निरन्तर शुद्धि करने वाला (श्रवस्यः) अन्नादि पदार्थों में उत्तम और (वाजी) बहुत वेगादि गुणों से युक्त (अग्निः) अग्नि शिल्पकार्यों में अच्छे प्रकार प्रयुक्त किया जाता है (सः) वह तुमको भी संयुक्त करना चाहिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो अग्नि पृथिवी में प्रसिद्ध शिल्पकार्य्यों के प्रयोग में अच्छे प्रकार लगाया हुआ धन का देने वाला स्वरूप से नित्य चेतनगुणरहित और अति वेगवान् है वह अच्छे प्रकार प्रयोग किया हुआ पिता के तुल्य शिल्पीजनों को पालता है ॥१॥

अब विद्वानों को अग्निविद्या ग्रहण का उपदेश किया जाता है ॥

श्रूया अग्निश्चित्रभानुर्हवं मे विश्वाभिर्गीर्भिरमृतो विचेताः ।
श्यावा रथं वहतो रोहिता वोतारुषाह चक्रे विभृत्रः ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! आप जो (चित्रभानुः) चित्र विचित्र दीप्ति वाला (अमृतः) मृत्यु धर्म रहित (विचेताः) विविध प्रकार का ज्ञान जिससे होता है (विभृत्रः) और जो नाना प्रकार पदार्थों से धारण करने वाला (अग्निः) अग्नि है जिसके सम्बन्ध के (रथम्) रथ को सवितृमण्डलस्थ (रोहिता) ललामी आदि गुण के लिए (उत) और (अरुषा) मर्मस्थलों में व्याप्त होने और (श्यावा) सब विषयों की प्राप्ति कराने वाले धारण और आकर्षण गुण (वहतः) एक देश से दूसरे देश को पहुंचाते हैं (वा) अथवा (अह) निश्चय से उसको (चक्रे) शिल्पीजन बनाता है उसकी विद्या के उपदेश को (मे) मेरी (विश्वाभिः) समस्त (गीर्भिः) वाणियों से (श्रूयाः) सुनिये ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य जिससे विजुली आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं सबका जीवन भी होता है उस अग्नि की विद्या को सब उपायों से ग्रहण करें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत्तानायामजनयन्त्सुषूतं भुवदग्निः पुरुपेशासु गर्भः ।
शिरिणायां चिदक्तुना महोभिरपरीवृतो वसति प्रचेताः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अक्तुना) रात्रि और (महोभिः) बड़े बड़े लोकों के साथ(अपरिवृतः) सब ओर से न स्वीकार किया हुआ (प्रचेतः) जो सोते प्राणियों को प्रबोधित कराता ऋतु ऋतु में यज्ञ करने वाले जन जिस (पुरुपेशासु) बहुत रूपों वाली ओषधियों में (सुसूतम्) सुन्दरता से उत्पन्न हुए अग्नि को (अजनयन्) प्रकट करते जो (उत्तानायाम्) उत्ताने के समान सोती सी और (शिरिणायाम्) नष्ट हुई पृथिवी में (गर्भः) गर्भ के समान स्थित (अग्निः) अग्नि विजुलीरूप (भुवत्) होता और (वसति) निवास करता है उस अग्नि को (चित्) निश्चय करके प्रयुक्त करो अर्थात् कलाघरों में लगाओ ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अग्नि विद्यमान और नष्ट हुई पृथिवी में गर्भरूप विद्यमान है उसी की विद्या को जानो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

जिघर्म्यग्निं हविषा घृतेन प्रतिक्षियन्तं भुवनानि विश्वा ।
पृथुं तिरश्चा वयसा बृहन्तं व्यचिष्ठमन्नैरभसं दृशानम् ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (विश्वा) समग्र (भुवनानि) जिनमें प्राणी उत्पन्न होते हैं उन लोकों और (प्रतिक्षियन्तम्) पदार्थ पदार्थ के प्रति वसते हुए (तिरश्चा) तिरछे सब पदार्थों में बांकेपन से रहने वाले (वयसा) मनोहर जीवन के साथ (पृथुम्) बड़े हुए (बृहन्तम्) वा बढ़ते हुए (व्यचिष्ठम्) अतीव सब पदार्थों में व्याप्त और (अन्नैः) पृथिव्यादिकों के साथ (रभसम्) वेगवान् (दृशानम्) देखा जाता वा अपने से अन्य पदार्थों को दिखाने वाले (अग्निम्) अग्नि को मैं (हविषा) होमने-योग्य सुगन्धि आदि पदार्थ वा (घृतेन) घी से मैं (जिघर्मि) प्रदीप्त करता हूं वैसे आप भी कीजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य समस्त मूर्त्तिमान् पदार्थों में ठहरे हुए विजुलीरूप अग्नि को साधनों से अच्छे प्रकार ग्रहण कर इसमें सुगन्धि आदि पदार्थ का होम करते हैं वे अनन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ विश्वतः प्रत्यञ्चं जिघर्म्यरक्षसा मनसा तज्जुषेत ।
मर्यश्रीः स्पृहयद्वर्णो अग्निर्नाभिमृशे तन्वा३ जर्भुराणः ॥५॥

पदार्थः — हे विद्वान् ! आप जैसे मैं (अरक्षसा) उत्तम भाव से वा (मनसा) विज्ञान से जिस (प्रत्यञ्चम्) प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त होते हुए अग्नि को (विश्वतः) सब ओर से (आ, जिघर्मि) अच्छे प्रकार प्रदीप्त करता हूं और (मर्यश्रीः) जिससे मरणधर्मा प्राणियों की शोभा और जो (स्पृहयद्वर्णः) कांक्षा सी करता हुआ जिसका वर्ण (तन्वा) विस्तृत शरीर से (जर्भुराणः) निरन्तर पदार्थों को धारण करता हुआ (अग्निः) अग्नि विद्यमान है (तत्) उसको (न, अभिमृशे) आगे नहीं सह सकता हूं वैसे इस का (जुषेत) सेवन करो ॥५॥

भावार्थः — इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो शुद्धान्तःकरण जन सुन्दर शोभित करते और घृतादि आहुतियों से होते हुए सब के धारण करने वाले सब रूपों के प्रकाशक और न सहने योग्य अग्नि को सिद्ध करते हैं वे श्रीमान् होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ज्ञेया भागं सहसानो वरेण त्वादूतासो मनुवद्वदेम ।
अनूनमग्निं जुह्वा वचस्या मधुपृचं धनसा जोहवीमि ॥६॥

पदार्थः — हे विद्वन् (वरेण) श्रेष्ठ व्यवहार से (भागम्) सेवने योग्य पदार्थ को (सहसानः) सहते हुए आप जैसे मैं (वचस्या) वचनों में और (जुह्वा) ग्रहण करने में उत्तम क्रिया से (मधुपृचम्) मधुरादि पदार्थ सम्बन्धी (अनूनम्) बहुत (अग्निम्) अग्नि को (जोहवीमि) निरन्तर स्वीकार करता हूं वैसे तुम ग्रहण करो जैसे (त्वादूतासः) तुम जिन महात्माओं के दूत हो (ज्ञेयाः) वे जानने योग्य (धनसाः) धनादि पदार्थों का विभाग करने वाले विद्वान् जन (मनुवत्) विद्वान् के समान इस को उपदेश करें वैसे इस को हम लोग भी (वदेम) कहें ॥६॥

भावार्थः — इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे आप्त विद्वान् जन अग्न्यादि पदार्थविद्या को जानकर औरों के हित के लिये उपदेश करते हैं वैसे हम लोग भी विद्या का उपदेश करें ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये।

यह दशवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः। इन्द्रो देवता। १। ८। १०। १३। १९। २० पङ्क्तिः। २। ६ भुरिक् पङ्क्तिः। ३। ४। ६। ११। १२। १४। १८। निचृत् पङ्क्तिः। ७ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ५। १६। १७ स्वराट् बृहती भुरिक् बृहती। १५ बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। २१ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अथ इक्कीस ऋचा वाले ग्यारहवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में राजधर्म का वर्णन करते हैं॥

श्रुधी हवमिन्द्र मा रिषण्यः स्याम ते दावने वसूनाम्।
इमा हि त्वामूर्जो वर्द्धयन्ति वसूयवः सिन्धवो न क्षरन्तः॥१॥

पदार्थः--हे (इन्द्र) बिजुली के समान प्रचण्ड प्रतापवाले राजन्! जिन (त्वा) आपको (वसूनाम्) प्रथम कक्षा के विद्वान् वा पृथिवी आदि के (हि) निश्चय के साथ (इमाः) ये (ऊर्जः) पराक्रम वा अन्नादि पदार्थ और (वसूयवः) अपने को धनों की इच्छा करने वाले (क्षरन्तः) कम्पित करते और चेष्टावान् करते हुए (सिन्धवः) समुद्रों के (न) समान (वर्द्धयन्ति) बढ़ाते हैं जिन (ते) आप के (दावने) दान के लिये हम (स्याम) हों सो आप हम लोगों को (मा, रिषण्यः) मत मारिये और (हवम्) शास्त्रबोधजन्य शब्द (श्रुधि) सुनिये॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे समुद्र जल से सब को बढ़ाता है वैसे प्रधान पुरुषों को चाहिये कि अपने आश्रित सब जनों को दान और मान से बढ़ावें॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

सृजो महीरिन्द्र या अपिन्वः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः।
अमर्त्यं चिद्दासं मन्यमानमवाभिनदुक्थैर्वावृधानः॥२॥

पदार्थः—हे (शूर) निर्भय (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान! जैसे सूर्य (अहिना) मेघ ने (परिष्ठिताः) सब ओर से स्थित किये हुए वा (पूर्वीः) पहिले सञ्चित हुए जलों को (अवाभिनत्) छिन्न भिन्न करता है वैसे (उक्थैः) उत्तम वचनों से (वावृधानः) बढ़े हुए आप (याः) जो (महीः) बड़ी बड़ी वाणी हैं उन को (सृजः) उत्पादन कीजिये उन से (चित्) ही (अमर्त्यम्) आत्मा से मरणधर्मरहित (मन्यमानम्) मानने वाले (दासम्) सेवक को (अपिन्वः) तृप्त कीजिये॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के समान उत्तम वाणियों को वर्षाते हैं और सेवकों को प्रसन्न करते हैं वे उत्तम प्रतिष्ठित होते हैं॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उक्थेष्विन्नु शूर येषु चाकन्त्स्तोमेष्विन्द्र रुद्रियेषु च।
तुभ्येदेता यासु मन्दसानः प्र वायवे सिस्रते न शुभ्राः ॥३॥

पदार्थः—हे (शूर) अन्धकार को दूर करने वाले सूर्य के समान शत्रुदल के नष्ट करने वाले (इन्द्र) प्रकाशमान राजन्! (येषु) जिन (स्तोमेषु) स्तुति विभागों वा (रुद्रियेषु) प्राणों की प्रतिपादना करने वालों वा (उक्थेषु) कहने योग्य वाक्यों में आप (नु) शीघ्र (चाकन्) कामना करते हो (यासु, च) और जिन क्रियाओं में (मन्दसानः) प्रशंसित (इत्) ही हैं उन सभों में (तुभ्य, इत्) आप ही के लिये जैसे (एताः) ये (वायवे) पवन के अर्थ (शुभ्राः) सुन्दर शोभायुक्त विजुली (प्रसिस्रते) पसरती फैलती हैं (न) वैसे सुशोभित हों ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पवन के साथ विजुली फैलती है वैसे विद्या के साथ पुरुष सुखों के बीच विहार करता है ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्द्धयन्तः शुभ्रं वज्रं बाह्वोर्दधानाः।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले सभापति! (वावृधानः) बढ़े हुए (शुभ्रः) शुद्ध (त्वम्) आप (अस्मे) हमारी (दासीः) सेवा करने वाली (विशः) प्रजा (सूर्येण) सूर्यमण्डल के साथ (सह्याः) सहने योग्य दीप्तियों के समान सम्पन्न करो जिन (ते) आप का (शुभ्रम्) दीप्तिमान् (शुष्मम्) बल (नु) शीघ्र (वर्द्धयन्तः) बढ़ाते हुए अर्थात् उन्नत करते हुए (बाह्वोः) भुजाओं में (शुभ्रम्) स्वच्छ निर्मल (वज्रम्) शस्त्रसमूह को (दधानाः) धारण किये हुए भृत्य हैं उनके सब ओर से प्रजा की वृद्धि करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो निरन्तर राज्य के बढ़ाने को समर्थ और शस्त्र तथा अस्त्र चलाने में कुशल प्रधान पुरुषों को उन्नति देते हैं वे शीघ्र प्राधान्य को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्स्वपीवृतं मायिनं क्षियन्तम्।
उतो अपो द्यां तस्तभ्वांसमहन्नहिं शूर वीर्येण ॥५॥

पदार्थः—हे (शूर) निर्भय राजन् ! जैसे (अप्सु) जलों में (अपीवृतम्) ढपे हुए (गूढम्) गुप्त पदार्थ को (अपः) और जलों को (उतो) तथा (द्याम्) प्रकाश को (तस्तभ्वांसम्) रोके हुए (अहिम्) मेघ को सूर्यमण्डल (अहन्) हनता है वैसे (वीर्येण) पराक्रम से (गुहा) गुप्त गुप्त स्थान में (हितम्) धरे अर्थात् हित (गुह्यम्) गुप्त करने योग्य (क्षियन्तम्) निरन्तर वसते हुए (मायिनम्) मायावी शत्रुजन को मारो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य अन्तरिक्षस्थ जलों में सोते हुए मेघ को हन के सब प्रजा को पुष्ट करता है वैसे राजा कपट के बीच वर्त्तमान अधर्मी शत्रुजन को छिन्न भिन्न कर प्रजा को सुखी करे ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्तवा नु त इन्द्र पूर्व्या महान्युत स्तवाम नूतना कृतानि ।
स्तवा वज्रं बाह्वोरुशन्तं स्तवा हरी सूर्यस्य केतू ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रशंसायुक्त राजन् ! हम लोग (ते) आप के (पूर्व्या) प्राचीन (महानि) प्रशंसनीय बड़े बड़े कामों की (नु) शीघ्र (स्तव) स्तुति अर्थात् प्रशंसा करें (उत) और (नूतना) नवीन (कृतानि) किये हुओं की (स्तवाम) प्रशंसा करें। तथा (बाह्वोः) भुजाओं में (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्रों की (उशन्तम्) चाहना करते हुए आप की (स्तव) स्तुति प्रशंसा करें तथा (सूर्यस्य) सूर्य की (केतू) किरणों के समान जो (हरी) धारणाकर्षणगुणयुक्त कर्मों की (स्तव) प्रशंसा करें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। व्यतीत और वर्त्तमान आप्त धर्मात्मा सज्जनों ने जो धर्मयुक्त काम किये वा करते हैं उन्हीं का अनुष्ठान और जनों को भी करना चाहिये ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हरी नु त इन्द्र वाजयन्ता घृतश्चुतं स्वारमस्वार्ष्टाम् ।
वि समना भूमिरप्रथिष्टारंस्त पर्वतश्चित् सरिष्यन् ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य के समान प्रतापी राजन् ! जिन (ते) आप के (घृतश्चुतम्) जल से प्राप्त हुए (स्वारम्) उपताप वा शब्द को (वाजयन्ता) चलते हुए सूर्य के (हरी) हरणशील किरणों के समान विद्या और विनय को जो (अस्वार्ष्टाम्) शब्दायमान करते अर्थात् व्यवहार में लाते उन के साथ (भूमिः)

भूमि के समान आप (नु) शीघ्र (वि, अप्रथिष्ट) प्रख्यात हूजिये और (अरंस्त) सुख में रमण कीजिये तथा (सरिष्यन्) गमन करने वाले होते हुए (पर्वतः) मेघ के (चित्) समान (समना) संग्रामों को जीतो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजपुरुष सूर्य के समान प्रजाजनों के उपकार करने वा मेघ के समान आनन्द देने और उत्तम वल वाले हैं वे ही शत्रुओं को जीत सकते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नि पर्वतः साद्यप्रयुच्छन्त्सं मातृभिर्वावशानो अक्रान् ।
दूरे पारे वाणीं वर्धयन्त इन्द्रेषितां धमनिं पप्रथन्नि ॥८॥

पदार्थः—जो (मातृभिः) मान करने वाली माता आदि से (वावशानः) कामना किया जाता और (अप्रयुच्छन्) प्रमाद न करता हुआ (पर्वतः) मेघ के समान विद्वानों ने (सम्, सादि) अच्छे प्रकार सिद्ध किया उस के साथ जो दोषों को (दूरे) दूर करते हुए (वाणीम्) सुन्दर शिक्षायुक्त वाणी को (पारे) समुद्र की भूमियों के परभाग में (वर्धयन्तः) बढ़ाते हुए औरों को विद्वान् (अक्रान्) करते हैं वे (इन्द्रेषिताम्) परमेश्वर की भेजी हुई वेदवाणी का (नि, पप्रथन्) निरन्तर विस्तार करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिन सन्तानों को माता उत्तम शिक्षा और विद्या से प्रमाद रहित कर वढ़ाती हैं वे सुखों को प्राप्त होकर सव ओर से वढ़ते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रो महां सिन्धुमाशयानं मायाविनं वृत्रमस्फुरन्निः ।
अरेजेतां रोदसी भियाने कनिक्रदतो वृष्णो अस्य वज्रात् ॥९॥

पदार्थः—हे सभापति राजन् ! जैसे (इन्द्र) सूर्यलोक (महाम्) अत्यन्त वड़े (सिन्धुम्) अन्तरिक्ष समुद्र को (आशयानम्) प्राप्त (वृत्रम्) मेघ को (निः, अस्फुरत्) निरन्तर वढ़ाता है वा जैसे (अस्य) इस (वृष्णः) वर्षने वाले मेघ की (वज्रात्) गिरी हुई बिजुली के शब्द से (भियाने) डरते हुए से (रोदसी) आकाश और पृथिवी (अरेजेताम्) कंपते और (कनिक्रदतः) शब्द करते हैं वैसे आप (मायाविनम्) मायावी दुष्ट बुद्धि पुरुष को विदारो दुष्टों को कंपाओ और रुलाओ ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजपुरुषो! जैसे सूर्य अपनी किरणों से समुद्र के जल को मेघमण्डल को पहुंचा और उसे वर्षाकर प्रजाजनों को सुखी करता है वैसे आप विद्या से अच्छे प्रकार की उन्नति संयुक्त प्रजा कर उसे सुखी करें जैसे विजुली के श्रवण से सव डरते हैं वैसे न्यायाचरण के उपदेश से दुष्टाचरण से सव डरें ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रोऽमानुषं यन्मानुषो निजूर्वात् ।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य ॥१०॥

पदार्थः—जैसे (अस्य, वृष्णः) इस वर्षा निमित्तक सूर्यमण्डल के (वज्रः) किरणों का जो निरन्तर गिरना (अरोरवीत्) वह वार वार शब्द करता है और (अमानुषम्) मनुष्य सम्वन्धरहित पदार्थ को (मानुषः) मनुष्य जैसे वैसे (यत्) जिस को (निजूर्वात्) छिन्न भिन्न करे वैसे जो (मायिनः) मायावी निन्दित बुद्धियुक्त (दानवस्य) दुष्ट कर्म करने वाले की (मायाः) छलयुक्त बुद्धियों को (नि, अपादयत्) निरन्तर नष्ट करे और (सुतस्य) वड़ी वड़ी ओषधियों के निकले हुए रस को (पपिवान्) पीने वाला हो वह विजय को प्राप्त होता है ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अन्तरिक्ष में विजुली के शब्द मेघ को जतलाते हैं वैसे राजजन दुष्टाचरणों से दुष्ट-जनों को सचेत करावें अर्थात् उन के छल कपटों को जता देवें ॥१०॥

अव वैद्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मदन्तु त्वा मन्दिनः सुतासः ।
पृणन्तस्ते कुक्षी वर्द्धयन्त्वित्था सुतः पौर इन्द्रमाव ॥११॥

पदार्थः—हे (शूर) रोगों को नष्ट करने वाले (इन्द्र) आयुर्वेद विद्यायुक्त वैद्य! जो (मन्दिनः) प्रशंसा करने योग्य (सुतासः) ओषधियो के निकाले हुए रस (सोमम्) सोमलतादि ओषधियों के सार को पीने वाले (त्वा) आप को (पृणन्तः) सुखी करते हुए (ते) आप की (कुक्षी) कोखों की (वर्द्धयन्तु) वृद्धि करें और आप को (मदन्तु) हर्षित करावें उन को आप (इत्) ही (पिबापिब) पिओ पिओ (इत्था) इस हेतु से (सुतः) प्रसिद्ध (पौरः) पुर में उत्पन्न हुए आप (इन्द्रम्) ऐश्वर्य की (आव) रक्षा करो ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य लोग यदि पुष्टि और वृद्धि देने वाले रोगविनाशक

ओषधियों के सार को सेवन करते हैं तो पुरुषार्थी होकर ऐश्वर्य को वढ़ा सकते हैं ॥११॥

अब वैद्य विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वे इ॒न्द्राप्य॑भूम॒ विप्रा॒ धियं॑ वनेम ऋत॒या सप॑न्तः ।
अ॒व॒स्यवो॑ धीमहि॒ प्रश॑स्तिं स॒द्यस्ते॑ रा॒यो दा॒वने॑ स्याम ॥१२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) रोग विदीर्ण करने वाले वैद्य विद्वान् जन ! (त्वे) आपके समीप में हम लोग भी (विप्राः) मेधावी (अभूम) हों और (ऋतया) सत्य विज्ञानयुक्त बुद्धि क्रिया से (सपन्तः) दुष्टों को अच्छे प्रकार कोशते हुए (धियम्) बुद्धि वा कर्म को (वनेम) अच्छे प्रकार सेवें तथा (अवस्यवः) अपने को रक्षा चाहते हुए हम लोग (प्रशस्तिम्) प्रशंसा को (धीमहि) धारण करें वा पुष्ट करें और (ते) आप जो (रायः) विद्याधन के (दावने) देने वाले हैं उन के लिये (सद्यः) शीघ्र प्रसिद्ध होवें ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सत्य विज्ञानयुक्त बुद्धि से ओषधि-विद्या को जान इन ओषधियों का सेवन कर पुरुषार्थ वढ़ा लक्ष्मी का सञ्चय करें ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्याम॒ ते त इ॑न्द्र॒ ये त ऊ॒ती अ॑व॒स्यव॒ ऊर्जं॑ व॒र्द्धय॑न्तः ।
शु॒ष्मिन्त॑मं॒ यं चा॒कना॑म देवा॒स्मे र॒यिं रा॑सि वी॒रव॑न्तम् ॥१३॥

पदार्थः—हे (देव) मनोहर (इन्द्र) ऐश्वर्य के देने वाले ! (ये) जो (अवस्यवः) अपनी रक्षा चाहते और (ते) आप की (ऊती) रक्षा आदि क्रिया से (ऊर्जम्) पराक्रम को (वर्द्धयन्तः) बढ़ाते हुए आप की रक्षा करते (ते) वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं जिन (ते) आप के सम्बन्ध में हम लोग (यम्) जिस (शुष्मिन्तमम्) अति बलवान् (वीरवन्तम्) वीरों के प्रसिद्ध कराने वाले (रयिम्) धन को (चाकनाम) चाहें आप (अस्मे) हम लोगों के लिये इस को (रासि) देते हो उस को प्राप्त हो हम लोग सुखी (स्याम) हों ॥१३॥

भावार्थः—जो मनुष्य परस्पर की वृद्धि करते हैं वे सब ओर से बढ़ते हैं, किसी को अच्छी कामना नहीं छोड़नी चाहिये ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

रासि क्षयं रासि मित्रमस्मे रासि शर्द्ध इन्द्र मारुतं नः ।

सजोषसो ये च मन्दसानाः प्र वायवः पान्त्यग्रणीतिम् ॥१४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) बल के देने वाले ! (ये) जो (नः) हम लोगों की (मन्दसानाः) कामना करते हुए (सजोषसः) समान प्रीति वाले (वायवः) विज्ञान बलयुक्त जन (अग्रणीतिम्) आगे होने वाली उत्तम नीति को (प्र, यान्ति) प्राप्त होते हैं उन के समान हम लोग प्राप्त होवें जिससे आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (क्षयम्) निवास (रासि) देते हैं (मित्रम्) मित्र (रासि) देते हो और (मारुतम्) मनुष्यों को (शर्द्धः) बल (च) भी (रासि) देते हो इस से प्रशंसनीय हो ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मित्र हो विद्या और विनय को प्राप्त होकर सत्य की कामना करते हैं वे सब को सुख दे सकते हैं ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

व्यन्त्विन्नु येषु मन्दसानस्तृपत्सोमं पाहि द्रह्यदिन्द्र ।

अस्मान्त्सु पृत्स्वा तरुत्रावर्द्धयो द्यां बृहद्भिरर्कैः ॥१५॥

पदार्थः—हे (तरुत्र) अविद्या से तारने वाले (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् विद्वान् ! जैसे सूर्यमण्डल (बृहद्भिः) बड़ी बड़ी (अर्कैः) किरणों से (द्याम्) प्रकाश को (सु, आ, अवर्धयः) शीघ्र अच्छे प्रकार बढ़ाता है वैसे आप (अस्मान्) हम लोगों की (पृत्सु) संग्रामों में रक्षा कीजिये (येषु) जिन में विद्वान् जन (सोमम्) ऐश्वर्य की (व्यन्तु) कामना करें उन में (मन्दसानः) आनन्द को प्राप्त (तृपत्) तृप्त और (द्रह्यत्) दृढ़ होते हुए (इत्) ही आप ऐश्वर्य की (सुपाहि) अच्छे प्रकार रक्षा करें ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य जिन विद्वान् जनों में निवास करते और ऐश्वर्य को प्राप्त होकर तृप्त होते हुए औरों को तृप्त करते हैं उन में वे सूर्य के समान प्रकाशित होते हैं ॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

बृहन्त इन्नु ये ते तरुत्रोक्थेभिर्वा सुम्नमाविवासान् ।

स्तृणानासो बर्हिः पस्त्यावत्त्वोता इदिन्द्र वाजमग्मन् ॥१६॥

पदार्थः—हे (तरुत्र) दुःख से तारने वाले (इन्द्र) अविद्या विनाशक ! (ते) आप के (उक्थेभिः) सुन्दर उपदेशों से (बृहन्तः) पूज्य प्रशंसनीय (इत्) ही (सुम्नम्) सुख को (आ, विवासान्) सब ओर से सेवते हैं वे (पस्त्यावत्) घर के तुल्य (बर्हिः) बढ़े हुए को (स्तृणानासः) ढांपते हुए (वा) अथवा (त्वोताः) आप के रक्षा किये हुए (इत्) ही (वाजम्) विज्ञान को (नु) शीघ्र (अग्मन्) प्राप्त होते हैं ॥१६॥

भावार्थः—वे ही सुख को प्राप्त होते हैं जो धार्मिक विद्वान् सत्पुरुषों से सुन्दर शिक्षित और रक्षित हों ॥१६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उग्रेष्विन्नु शूर मन्दसानस्त्रिकद्रुकेषु पाहि सोममिन्द्र ।
प्रदोधुवच्छ्मश्रुषु प्रीणानो याहि हरिभ्यां सुतस्य पीतिम् ॥१७॥

पदार्थः—हे (शूर) दुष्टों की हिंसा करने और (इन्द्र) वैद्य विद्या जानने वाले ! आप (त्रिकद्रुकेषु) जिन व्यवहारों में तीन अर्थात् शरीर आत्मा और मन की पीड़ा विद्यमान उन के निमित्त (सोमम्) महान् ओषधियों के समूह की (पाहि) रक्षा करो और (उग्रेषु) तेजस्वी प्रवल प्रताप वालों में (इत्) ही (मन्दसानः) कामना और (प्रदोधुवत्) उत्तमता से कम्पन अर्थात् नाना प्रकार की चेष्टा करते और (श्मश्रुषु) चिबुकादिक अङ्गों में (प्रीणानः) तृप्ति पाते हुए (हरिभ्याम्) अच्छे शिक्षित घोड़ों से (सुतस्य) निकले हुए ओषधियों के रस के (पीतिम्) पीने को (याहि) प्राप्त होओ ॥१७॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रवल बुद्धिजनों के साथ अच्छे प्रकार कार्यों का प्रयोग करते हैं तो शत्रुओं को कंपाते और बड़ी बड़ी ओषधियों के रस को पीवते हुए अच्छे सिखाये हुए घोड़ों से युक्त रथ से जैसे वैसे शीघ्र सुखों को प्राप्त होते हैं ॥१७॥

अब सेनापति के गुणों को अगले मन्त्र में कहा है ॥

धिष्वा शवः शूर येन वृत्रमवाभिनद्दानुमौर्णवाभम् ।
अपावृणोर्ज्योतिरार्याय नि सव्यतः सादि दस्युरिन्द्र ॥१८॥

पदार्थः—हे (शूर) दुःखविनाशक (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान सेनापति ! आप (येन) जिससे (शवः) बल को (धिष्व) धारण करो जैसे सूर्य (दानुम्) जल देने वाले (वृत्रम्) मेघ को (और्णवाभम्) ऊर्णा जिसकी नाभि में होती उसके पुत्र के समान अर्थात् जैसे वह किसी के देह का विदारण करे वैसे (अभिनत्)

छिन्न भिन्न करता है और (सव्यतः) दाहिनी ओर से (ज्योतिः) प्रकाश कर अन्धकार को (नि, अप, अवृणोः) निरन्तर दूर करता है वैसे (आर्य्याय) उत्तम के लिये साधारण होओ जो (दस्युः) दूसरे के पदार्थों को हरने वाला है उस का विनाश करो ऐसे युद्ध के बीच विजय (सादि) साधना चाहिये ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे सूर्य अन्धकार को वैसे अन्याय को निवृत्त कर सज्जनों के हृदयों में सुख की प्राप्ति करा निरन्तर बल बढ़ावें ॥१८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सनेम ये त ऊतिभिस्तरन्तो विश्वाः स्पृध आर्येण दस्यून्।
अस्मभ्यं तत्त्वाष्ट्रं विश्वरूपमरन्धयः साख्यस्य त्रितार्य ॥१९॥

पदार्थः—हे सेनापति ! (ये) जो (ते) आपकी (ऊतिभिः) रक्षा आदि कामों की करने वाली सेनाओं से (विश्वाः) समस्त (स्पृधः) स्पर्द्धा करने वालों को (तरन्तः) उल्लंघन करते हुए हम लोग (त्रिताय) त्रिविध अर्थात् शारीरिक वाचिक और मानसिक सुख जिस को प्राप्त उसके लिये (आर्य्येण) उत्तम विद्या और धर्म सामर्थ्य के साथ (दस्यून्) डाकुओं को जीतें जो (साख्यस्य) मित्रपन वा मित्रकर्म करने का (विश्वरूपम्) विविध स्वरूप (त्वाष्ट्रम्) प्रकाशमान का रचा हुआ है उस को (सनेम) अलग अलग करें (तत्) उस को आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये सिद्ध करो और डाकुओं को (अरन्धयः) नष्ट करो ॥१९॥

भावार्थः—जो मनुष्य किये हुए को जानने वाले विद्वान् को सेनापति का अधिकार कर श्रेष्ठ पुरुषों के साथ कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य कामों को अच्छे प्रकार निश्चय कर प्रजासुख की सिद्धि करें वे सब सुखों को प्राप्त होवें ॥१९॥

अब सूर्य के दृष्टान्त से राजधर्म को कहते हैं ॥

अस्य सुवानस्य मन्दिनस्त्रितस्य न्यर्बुदं वावृधानो अस्तः।
अवर्त्तयत्सूर्यो न चक्रं भिनद्वलमिन्द्रो अंगिरस्वान् ॥२०॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! (अस्य) इस (सुवानस्य) ऐश्वर्य और (मन्दिनः) सब को आनन्द उत्पन्न करने वाले (त्रितस्य) तीन उत्तम मध्यम और निकृष्ट उपायों से युक्त जन की (अर्बुदम्) अर्बुद सेनाओं को (वावृधानः) बढ़ाते हुए (अस्तः) युद्धक्रिया में प्रेरणा को प्राप्त (चक्रम्) भूगोलों के समूहों को (सूर्यः) सूर्य (न) जैसे वैसे

(अवर्त्तयत्) वर्त्ताते हो सो आप जैसे (अङ्गिरस्वान्) पवन का सम्बन्ध जिस के विद्यमान वह (इन्द्रः) विजुली (वलम्) मेघ को (नि, भिनत्) छिन्न भिन्न करती वैसे वर्त्तो ॥२०॥

भावार्थः--इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजजन जैसे सूर्य असंख्यात लोकों और उन के बीच रहने वाले पदार्थों की व्यवस्था करता है वा पवन की प्रेरणा दिई हुई विजुली मेघ को वर्षाती है वैसे आचरण करते हैं वे सब से कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥२०॥

फिर उसी विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥२१॥

पदार्थः--हे (इन्द्र) विद्या देने वाले ! जिन (ते) आप की (दक्षिणा) बल करने वाली (मघोनी) परमपूजित धनयुक्त नीति (जरित्रे) विद्या की स्तुति करने वालों के लिये (वरम्) श्रेष्ठ को (नूनम्) निश्चय से (प्रति, दुहीयत्) पूरा करती हुई (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिये (शिक्ष) शिक्षा देती है (मा, अति, धक्) नहीं अतीव किसी को दहती नहीं कष्ट देती (सा) वह (नः) हमारे लिये (बृहद्भगः) विस्तृत धन को प्राप्त कराती है उस नीति को प्राप्त होकर (सुवीराः) सुन्दर वीर जन हम लोग (विदथे) संग्राम में (वदेम) कहें अर्थात् औरों को उपदेश दें ॥२१॥

भावार्थः--जो सब को विद्या देने और सत्योपदेश करने वाले के लिये बहुत श्रेष्ठ दक्षिणा देते हैं वे विद्वान् होकर शूरवीर होते हैं ॥२१॥

इस सूक्त में राजधर्म विद्वान् और सेनापति के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह दूसरे मण्डल में ग्यारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः। इन्द्रो देवता। १--५। १२--१५ त्रिष्टुप्। ६--८। १०। ११ निचृत् त्रिष्टुप्। ९ भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले बारहवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में सूर्य के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् क्रतुना पर्य्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥१॥

पदार्थः—हे (जनासः) विद्वान् जनो ! (यः) जो (प्रथमः) प्रथम वा विस्तारयुक्त (मनस्वान्) जिसमें विज्ञान वर्त्तमान (जातः) उत्पन्न हुआ (देवः) प्रकाशमान (क्रतुना) अपने प्रकाश कर्म से (देवान्) प्रकाशित करने योग्य दिव्यगुण वाले पृथिवी आदि लोकों को (पर्यभूषत्) सब ओर से विभूषित करता है जिस के बल से (नृम्णस्य) धन के (मह्ना) महत्त्व से (रोदसी) आकाश और पृथिवी (अभ्यसेताम्) अलग होते हैं (सः) वह (इन्द्रः) अपने प्रताप से सब पदार्थों को छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य है ऐसा जानना चाहिये ॥१॥

भावार्थः—जिस ईश्वर ने सब का प्रकाश करने और सब का धारण करने वाला अपने प्रकाश से युक्त आकर्षण शक्तियुक्त लोकों की व्यवस्था करने वाला सूर्यलोक बनाया है वह ईश्वर सूर्य का भी सूर्य है यह जानना चाहिये ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद्यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात् ।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः ॥२॥

पदार्थः—हे (जनासः) विद्वानो ! (यः) जो (व्यथमानाम्) चलती हुई (पृथिवीम्) पृथिवी को (अदृंहत्) धारण करता है (यः) जो (प्रकुपितान्) अत्यन्त कोपयुक्त शत्रुओं के समान वर्त्तमान (पर्वतान्) मेघों को (अरम्णात्) छिन्न भिन्न करता (यः) जो (वरीयः) अत्यत बहुत विस्तार वाले (अन्तरिक्षम्) पृथिव्यादि दो दो लोकों के बीच भाग का (विममे) विशेषता से मान करता है (यः) जो (द्याम्) प्रकाश को (अस्तभ्नात्) धारण करता है (सः) वह (इन्द्रः) सब पदार्थों को अपने प्रताप से छिन्न भिन्न करने वाला सूर्य जानने योग्य है ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो ईश्वर विजुली वा सूर्य को न रचे तो चलते हुए बड़े बड़े भूगोलों को कौन धारण करे, कौन मेघ को वर्षावे और कौन अन्तरिक्ष को अपने प्रकाश से पूरित करे ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**यो ह॒त्वाहि॒मरि॑णात्स॒प्त सिन्धू॒न्यो गा उ॒दाज॑दप॒धा व॒लस्य॑ ।**

**यो अश्म॑नोर॒न्तर॒ग्निं ज॒जान॑ सं॒वृक्स॒मत्सु स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥३॥**

पदार्थः—हे (जनासः) विद्वानो ! (यः) जो (अहिम्) मेघ को (हत्वा) मार (सप्त) सात प्रकार के (सिन्धून्) समुद्रों को वा नदियों को (अरिणात्) चलाता है (यः) जो ((गाः) पृथिवियों को (उदाजत्) ऊपर प्रेरित करता अर्थात् एक के ऊपर एक को नियम से चला रहा (यः) जो (बलस्य) बल को (अपधा) धारण करने वाला और जो (अश्मनः) पाषाणों वा मेघों के (अन्तः) बीच (अग्निम्) अग्नि को (जजान) उत्पन्न करता तथा (समत्सु) संग्रामों में (संवृक्) सब पदार्थों को अलग कराता है (सः) वह (इन्द्रः) इन्द्र नामक सूर्यलोक है यह जानना चाहिये ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सूर्यलोक मेघ को वर्षाकर समुद्रों को भरता है सब भूगोलों को अपने प्रति खेंचता है अपनी किरणों से मेघ और समीपस्थ पाषाण के बीच ऊष्मा को उत्पन्न करता है वह अग्निरूप है यह जानना चाहिये ॥३॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**ये॒नेमा विश्वा॒ च्यव॑ना कृ॒तानि॒ यो दा॒सं॒ वर्ण॒मध॑रं॒ गुहाकः॑ ।**

**श्व॒घ्नीव॒ यो जि॑गी॒वाँल्ल॒क्षमाद॑द॒र्य्यः पु॒ष्टानि॒ स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥४॥**

पदार्थः—हे (जनासः) मनुष्यो ! (येन) जिस ईश्वर ने (इमा) ये (विश्वा) समस्त (च्यवना) प्राप्त हुए लोक (पुष्टानि) दृढ़ (कृतानि) किये (यः) जो (गुहा) हृदयाकाश में (वर्णम्) रूप को (अधरम्) उस हृदय के नीचे (दासम्) देने योग्य (अकः) करता है और (यः) जो (श्वघ्नी इव) कुत्तों को दण्ड देने वाली के समान (जिगीवान्) जयशील (लक्षम्) लक्ष को (आदत्) ग्रहण करता है (सः) वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (अर्य्यः) ईश्वर है यह जानना चाहिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो ईश्वर कारण से विविध प्रकार के लोकों और पदार्थों को रचता और जो सब कर्मों को लक्ष सा रखता है वह सब को उपासना करने योग्य है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**यं स्मा॑ पृ॒च्छन्ति॒ कुह॒ सेति॑ घो॒रमु॒तेमा॑हु॒र्नैषो अ॒स्तीत्ये॑नम् ।**

**सो अ॒र्यः पु॒ष्टीर्विज॑इ॒वा मि॑नाति॒ श्रद॑स्मै धत्त स जना॑स॒ इन्द्रः॑ ॥५॥**

पदार्थः—हे (जनासः) मनुष्यो ! विद्वान् (यम्, स्म) जिस को (कुह, सः) वह कहां है (इति) ऐसा (ईम्) सब से (पृच्छन्ति) पूछते हैं (उत) और कोई (एनम्) इस को (घोरम्) हननरूप हिंसारूप अर्थात् भयङ्कर (आहुः) कहते हैं अन्य कोई (एषः) यह (न, अस्ति) नहीं है (इति) ऐसा कहते हैं (सः) वह (अर्यः) ईश्वर (विज इव) भय से जैसे कोई सञ्चलित हो चेष्टा करे वैसे दोषों को (आ, मिनाति) अच्छे प्रकार नष्ट करता है और (अस्मै) इस जीव के लिये (पुष्टीः) पुष्टियों और (श्रत्) सत्य को धारण करता (सः) वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् है इस को तुम (धत्त) धारण करो ॥५॥

भावार्थः—जो आश्चर्य गुणकर्मस्वभावयुक्त परमेश्वर है उस को कोई वह कहां है, ऐसा कहते हैं, कोई उस को भयङ्कर, कोई शान्त और कोई यह नहीं है ऐसा बहुत प्रकार से कहते हैं वह सब का आधारभूत हुआ सत्य धर्म और जीवन के उपायों का वेद के द्वारा उपदेश करता है वह सब को उपासना करने के योग्य है ॥५॥

फिर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**यो रध्रस्य॑ चोदि॒ता यः कृ॒शस्य॒ यो ब्र॒ह्मणो॒ नाध॑मानस्य की॒रेः ।**
**यु॒क्तग्रा॑व्णो॒ यो॑ऽवि॒ता सु॑शि॒प्रः सु॒तसो॑मस्य॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥६॥**

पदार्थः—हे (जनासः) मनुष्यो ! (यः) जो (रध्रस्य) हिंसा करने वाले का (यः) जो (कृशस्य) दुर्बल का (यः) जो (नाधमानस्य) समस्त ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाले का (यः) जो (ब्रह्मणः) वेद का (युक्तग्रावणः) और जिस में मेघ वा पत्थर युक्त हैं उस पदार्थ का (कीरेः) तथा सकल विद्याओं की स्तुति प्रशंसा करने हारे का (चोदिता) प्रेरणा करने वाला वा (यः) जो (सुशिप्रः) ऐसा है कि जिस में सुन्दर गमन होते और (सुतसोमस्य) जिसने उत्पन्न किये सोमादि अच्छे पदार्थ उस की (अविता) रक्षा करने वाला है (सः) वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर है ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! उसी परमेश्वर की उपासना तुम करो कि जो जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलयकर्त्ता तथा सकल विद्यायुक्त वेद का उत्तम ज्ञान कराने वाला है ॥६॥

अब बिजुलीरूप अग्नि के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**यस्याश्वा॑सः प्र॒दिशि॒ यस्य॒ गावो॒ यस्य॒ ग्रामा॒ यस्य॒ विश्वे॒ रथा॑सः ।**
**यः सूर्यं॒ य उ॒षसं॑ ज॒जान॒ यो अ॒पां नेता॒ स ज॑नास॒ इन्द्रः॑ ॥७॥**

पदार्थः—हे (जनासः) विद्वद्वर मनुष्यो ! तुम को (प्रदिशि) प्रति दिशा के

समीप (यस्य) जिस के (विश्वे) समस्त (अश्वासः) व्याप्तिशील वेगादि गुणयुक्त (यस्य) जिसके समस्त (गावः) किरणें (यस्य) जिस [के] समस्त (ग्रामाः) मनुष्यों के निवास (यस्य) जिस के समस्त (रथासः) विहार कराने वाले रथ (यः) जो कारण बिजुली रूप अग्नि (सूर्यम्) सूर्यमण्डल और (यः) जो (उषसम्) प्रभातकाल को (जजान) प्रकट करता वा (यः) जो (अपाम्) जलों की (नेता) प्राप्ति कराने हारा है (सः) वह (इन्द्रः) पदार्थों का छिन्न भिन्न करने वाला बिजुली रूप अग्नि है यह जानना चाहिये ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! यदि आप लोग वेगादि अनेक गुणयुक्त सर्व मूर्त्तिमान् पदार्थों के आधाररूप शीघ्रगामी विमान आदि यान और वर्षा निमित्त बिजुलीरूप अग्नि को जानें तब तो कौन कौन उत्तम कार्य सिद्ध न कर सकें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः ।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः ॥८॥

पदार्थः—हे (जनासः) विद्याप्रिय मनुष्यो ! तुम को (क्रन्दसी) रोने वा शब्द कराने (संयती) और संयम से जाने वाले प्रकाश और पृथिवी (यम्) जिस सूर्यमण्डल को जैसे कोई पदार्थ (विह्वयेते) स्पर्द्धा करें वैसे वा (परे) उत्तम (अवरे) न्यून (उभयाः) अर्थात् प्रकाश और अप्रकाशयुक्त दोनों कोटियों का सम्बन्ध करने (अमित्राः) शत्रुजन जैसे (समानम्) समान (रथम्) रथ आदि यान को (चित्) वैसे (आतस्थिवांसा) सब ओर से स्थिर (नाना) अनेक प्रकार से (हवेते) ग्रहण करने हैं (सः) वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् है यह जानना चाहिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे दो सेना सम्मुख खड़ी होकर युद्ध करती हैं वैसे प्रकाश और अप्रकाश वर्त्तमान हैं ॥८॥

अब ईश्वर और बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः ॥९॥

पदार्थः—हे (जनासः) मनुष्यो ! (जनासः) विद्वान् जन (यस्मात्) जिससे (ऋते) विना (न) नहीं (विजयन्ते) विजय को प्राप्त होते हैं (यम्) जिस को (युध्यमानाः) युद्ध करते हुए (अवसे) रक्षा आदि के लिये (हवन्ते) ग्रहण करते हैं (यः) जो (विश्वस्य) संसार का (प्रतिमानम्) परिमाणसाधक (यः) जो (अच्युतच्युत्)

स्थिर पदार्थों में चलायमान होता व उन स्थिर पदार्थों को चलाने वाला (बभूव) होता (सः) वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर है यह जानना चाहिये ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में श्लेषालङ्कार है। जो परमेश्वर की उपासना नहीं करते विजुली की विद्या को नहीं जानते वे विजयशील नहीं होते जो यह विश्व और जो सब पदार्थों का रूपमात्र है वह परमेश्वर और विजुली का विज्ञान कराने वाला है ॥९॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान ।**
**यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः ॥१०॥**

पदार्थः—हे (जनासः) विद्वान् मनुष्यो! तुम लोगों को (यः) जो परमेश्वर (शश्वतः) अनादिस्वरूप पदार्थों को धारण करता (महि) अत्यन्त (एनः) पाप को (दधानान्) धारण किये हुए (अमन्यमानान्) अज्ञानी शठ पापियों को (शर्वा) शासनकारी वज्र से (जघान) मारता (यः) जो (शर्धते) कुत्सित निन्दित पापयुक्त शब्द करने अर्थात् उच्चारण करने वाले के लिये (शृध्याम्) शब्द निन्दा न (अनुददाति) अनुकूलता से देता है और (यः) जो (दस्योः) दूसरे के पदार्थों को हरने वाले दुष्ट का (हन्ता) मारने वाला है (सः) वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सेवने योग्य है ॥१०॥

भावार्थः—जो परमेश्वर दुष्टाचारियों को न ताड़ना दे धार्मिकों का सत्कार न करे और डाकुओं को न मारे तो न्यायव्यवस्था नष्ट हो जाय ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत् ।**
**ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥११॥**

पदार्थः—हे (जनासः) बुद्धिमान् मनुष्यो! तुम को (यः) जो (पर्वतेषु) बद्दलों में (चत्वारिंश्याम्) चालीसवीं (शरदि) शरद् ऋतु में (क्षियन्तम्) निवास करते हुए (शम्बरम्) मेघ को (अन्वविन्दत) अनुकूलता से प्राप्त होता है और (यः) जो (दानुम्) देने वाले (शयानम्) तथा सोते हुए के समान वर्त्तमान (अहिम्) मेघ को (जघान) मारता है (सः) वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् सूर्य जानना चाहिये ॥११॥

भावार्थः—जो चालीस वर्ष पर्यन्त वर्षा न हो तो कौन प्राण धर

सके । जो सूर्य जल को न खींचे न धारण करे और न वर्षावे तो कौन बल पाने को योग्य हो ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत्सर्त्तवे सप्त सिन्धून् ।
यो रौहिणमस्फुरद्वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः ॥१२॥

पदार्थः—हे (जनासः) मनुष्यो ! तुम को (यः) जो (सप्तरश्मिः) सात प्रकार की किरणों से युक्त (वृषभः) मेघ की शक्ति को रोकने वाला (तुविष्मान्) बहुत बल से खींचने की शक्ति से युक्त सूर्य्यलोक (सप्त, सिन्धून्) सात सिन्धुओं को (सर्त्तवे) चलने अर्थात् बहने के लिये (अवासृजत्) उत्पन्न करता अर्थात् जल आदि पदार्थों से परिपूर्ण करता है (यः) जो (वज्रबाहुः) भुजा के तुल्य किरण समूह वाला (द्याम्) प्रकाश को (आरोहन्तम्) चढ़ते हुए (रौहिणम्) चढ़ने के शील वाले मेघ को (अस्फुरत्) फुरती देता वा चलाता है (सः) वह (इन्द्रः) सूर्यलोक सब को बताने के योग्य है ॥१२॥

भावार्थः—जिसमें रक्तादि वर्णयुक्त सात प्रकार के किरण विद्यमान हैं वही सूर्यलोक वर्षाद्वारा नदी और नदों को अच्छे प्रकार परिपूर्ण करता और फिर ऊपर को जल खींच के धारण करता फिर वर्षाता है ऐसे ही ईश्वर के आज्ञारूप नियम से यह संसारचक्र वर्त्तमान है ॥१२॥

फिर सूर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते ।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः ॥१३॥

पदार्थः—हे (जनासः) मनुष्यो ! तुमको (अस्मै) इस सूर्यमण्डल के लिये (द्यावापृथिवी) आकाश और भूमि के समान बृहत् पदार्थ (चित्) भी (नमेते) अति सामर्थ्ययुक्त शब्दायमान होते हैं (अस्य) इस सूर्यमण्डल के (शुष्मात्) बल से (चित्) ही (पर्वताः) मेघ (भयन्ते) भयभीत होते हैं (यः) जो (सोमपाः) रस को पीता (निचितः) निरन्तर अनेक पदार्थों से इकट्ठा किया गया (वज्रबाहुः) और (यः) जो बाहुओं के तुल्य किरण बलयुक्त तथा (वज्रहस्तः) जिसकी हाथों के समान किरणें हैं वह (इन्द्रः) सूर्य्यलोक जानने योग्य है ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसके आकर्षण से प्रकाश और क्षिति नमे हुए वर्त्तमान हैं, मेघ भ्रमि रहे हैं, हाथों के समान जो रस को ऊर्ध्व पहुँचाता है, उसका यथावत् अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥१३॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती ।**
**यस्य ब्रह्म वर्द्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः ॥१४॥**

पदार्थः— हे (जनासः) विद्वान् मनुष्यो ! तुम लोगों को (यः) जो जगदीश्वर (ऊती) रक्षा आदि क्रिया से (सुन्वन्तम्) सबके सुख के लिये उत्तम उत्तम पदार्थों के रस निकालते हुए को वा (यः) जो (पचन्तम्) पक्का करते हुए को वा (यः) जो (शंसन्तम्) प्रशंसा करते हुए को वा (यः) जो (शसमानम्) अधर्म को उल्लंघन करते हुए को (अवति) रखता है पालता है (यस्य) जिसका (ब्रह्म) वेद (वर्द्धनम्) वृद्धिरूप (यस्य) जिस जगदीश्वर का (सोमः) चन्द्रमा और ओषधियों का समूह (यस्य) जिसका (इदम्) यह (राधः) धन है (सः) वह (इन्द्रः) सर्वैश्वर्यवान् जगदीश्वर निरन्तर उपासना करने योग्य है ॥१४॥

भावार्थः— हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा ने वेदोपदेश द्वारा मनुष्यों की उन्नति कीई वा जिससे धर्मात्मा जन पलते वा जिससे दुष्टाचरण करने वाले ताड़ना पाते वा जिसका यह सब जगत् ऐश्वर्यरूप है उसका ध्यान अपने अपने आत्माओं में निरन्तर करो ॥१४॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः ।**
**वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१५॥**

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य के देने वाले ईश्वर ! (यः) जो (दुध्रः) दुःख ग्रहण करने योग्य आप (सुन्वते) उत्तम उत्तम पदार्थों का रस निकालते वा (पचते) पदार्थों को परिपक्व करते हुए के लिये (वाजम्) सबके वेग को (आ, दर्दर्षि) सब ओर से निरन्तर विदीर्ण करते हो (सः) (किल) वही आप (सत्यः) सत्य अर्थात् तीन काल में अबाध्य निरन्तर एकता रखने वाले हैं उन (ते) आपके (विदथम्) विज्ञानस्वरूप की (प्रियासः) प्रीति और कामना करते हुए (सुवीरासः) सुन्दर वीरों वाले होते हुए हम लोग (विश्वह) सब दिनों में (चित्) निश्चय से (आ, वदेम) उपदेश करें ॥१५॥

भावार्थः— हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर मूर्ख अधर्मियों से जाना नहीं जा सकता और वह सब जगत् का याथातथ्य रचने वाला वा विनाश करने वाला विज्ञानस्वरूप अविनाशी है उसी की प्रशंसा और उपासना करो ॥१५॥

इस सूक्त में सूर्य ईश्वर और विजुली के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥
यह बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । १—३ । १० —१२ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ । ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ९ । १३ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ निचृज्जगती । ५ । ६ विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचा वाले तेरहवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं ॥

ऋतुर्जनित्री तस्या अपस्परि मक्षू जात आविशद्यासु वर्द्धते ।
तदाहना अभवत्पिप्युषी पयोंऽशोः पीयूषं प्रथमं तदुक्थ्यम् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (ऋतुः) वसन्तादि ऋतुगण (जातः) उत्पन्न हुआ (तत्) उन (आहनाः) सब पदार्थों में व्याप्त (अपः) जलों को (आ, अविशत्) सब प्रकार से प्रवेश करता है (यासु) जिनमें (मक्षु) शीघ्र (परिवर्द्धते) सब ओर से बढ़ता है उसकी जो (जनित्री) उत्पन्न करने वाली समय वेला है (तस्याः) उसकी जो (पयः) रस का (पिप्युषी) पान करने वाली अन्तर्वेला (अभवत्) होती है उसके (अंशोः) अंश से जो (प्रथमम्) प्रथम (पीयूषम्) पीने योग्य उत्पन्न होता है उस प्रशंसनीय समस्त अंश को तुम प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थः- मनुष्यों को वसन्तादि ऋतुओं की उत्पन्न करने वाली विजुली जाननी चाहिये जिस विजुली के प्रभाव से अमृत के समान मेघ जल वर्षते हैं जिससे सब प्रजा बढ़ती है वह जाननी चाहिये ॥१॥

फिर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सध्रीमा यन्ति परि बिभ्रतीः पयो विश्वप्स्न्याय प्र भरन्त भोजनम् ।
समानो अध्वा प्रवतामनुष्यदे यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥२॥

पदार्थः जो (सध्री) समान ठहरने वाले (पयः) रस को (बिभ्रतीः) धारण किये हुए जल (अनुष्यदे) अनुकूलता से किञ्चित् किञ्चित् भरने के लिए (विश्वप्स्न्याय) संसार की पालना के लिये (ईम्) सब ओर से (परि, आ, यन्ति) पर्याय से प्राप्त होते हैं (भोजनम्) पालना को (प्र, भरन्त) धारण करते जिन (प्रवताम्) जाते हुए जलों का (समानः) समान (अध्वा) मार्ग है (यः) जो (ता) उनको (प्रथमम्)

उत्तम नियमवान् (अकृणोः) करते हैं (सः) वह आप (उक्थ्यः) प्रशंसा करने योग्य (असि) हैं ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जल पवन के साथ चलता है जिससे सबका पालन होता है उसको सदा शोधो जिससे आप लोग प्रशंसित हों ॥२॥

फिर ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अन्वेको वदति यद्ददाति तद्रूपा मिनन्तदपा एक ईयते ।
विश्वा एकस्य विनुदस्तितिक्षते यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥३॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (एकः) एकाकी आप (विश्वाः) समस्त विद्याओं के (यत्) जिन (अनुवदति) अनुवादों को करते हैं (तत्) वह साथ (रूपा) नाना प्रकार के रूपों को (मिनत्) छिन्न भिन्न करते और (तदपाः) वही कर्म जिनका ऐसे होते हुए आप (एकः) एकाकी (ईयते) प्राप्त होते (तितिक्षते) सबका सहन करते (यः) जो (ता) उन उक्त कर्मों का (प्रथमम्) विस्तार जैसे हो वैसे (अकृणोः) करते हैं जिन (विनुदः) प्रेरणा करने वाले (एकस्य) एक आपका यह जगत् है (सः) वह आप (उक्थ्यः) कथनीय जनों में प्रसिद्ध (असि) हैं ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अद्वितीय जगदीश्वर हम लोगों के कल्याण के लिये सृष्टि की आदि में वेदों का उपदेश करता संसार की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करता है जो अन्तर्यामी अपार शक्ति सब अपवादों को सहता है उसी सर्वोत्तम प्रशंसा योग्य की आप लोग प्रशंसा करें ॥३॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रजाभ्यः पुष्टिं विभजन्त आसते रयिमिव पृष्ठं प्रभवन्तमायते ।
असिन्वन्दंष्ट्रैः पितुरत्ति भोजनं यस्ताकृणोः प्रथमं सास्युक्थ्यः ॥४॥

पदार्थः—जो (प्रजाभ्यः) प्रजाजनों के लिये (पुष्टिम्) पुष्टि के योग्य पदार्थों को (विभजन्तः) विविध प्रकार से सेवन करते हुए जन (आयते) समीप प्राप्त हुए जिज्ञासु जन के लिए (प्रभवन्तम्) उत्पद्यमान (पृष्ठम्) आधार को (रयिमिव) धन के समान (असिन्वन्) बांधते और (आसते) स्थिर होते हैं उनके साथ (यः) जो (दंष्ट्रैः) दन्तों से (पितुः) अन्न (भोजनम्) भोजन के योग्य पदार्थ को (अत्ति) भक्षण करते हैं (सः) वह आप (उक्थ्यः) कहने योग्य जनों में प्रसिद्ध (असि) हैं ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य दूसरे मनुष्यों की विद्या और धन की वृद्धि के

लिये बद्धपरिकर अर्थात् कटिबद्ध होते हैं वे सुखी होते हुए प्रशंसनीय हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अधाकृणोः पृथिवीं संदृशे दिवे यो धौतीनामहिहन्नारिणक्पथः ।
तं त्वा स्तोमेभिरुदभिर्न वाजिनं देवं देवा अजनन्त्सास्युक्थ्यः ॥५॥

पदार्थः—हे (अहिहन्) मेघहन्ता सूर्य के समान शत्रुओं को हनने वाले ! (यः) जो आप (धौतीनाम्) धावन करती हुई नदियों के (पथः) मार्गों को (अरिणक्) अलग अलग करते हैं (अध) इसके अनन्तर (दिवे) प्रकाश के लिये (पृथिवीम्) भूमि को (संदृशे) अच्छे प्रकार देखने को (अकृणोः) करते हैं अर्थात् मार्गों को शुद्ध कराते जिन (त्वा) आपको (वाजिनम्) वेगवान् और (देवम्) दिव्य गुण कर्म स्वभाव वाले [को] (देवाः) देदीप्यमान विद्वान् जन (अजनन्) उत्पन्न करते हैं (तम्) उन आपको (उदभिः) जलों से (न) जैसे वैसे (स्तोमेभिः) स्तुतियों से हम लोग प्रशंसित करते हैं (सः) वह आप (उक्थ्यः) कथनीय जनों में प्रसिद्ध (असि) हैं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! जैसे सविता नदियों के मार्गों को उत्पन्न करता सब मूर्तिमान् द्रव्य को प्रकाशित करता वैसे न्याय मार्गों को अच्छे प्रकार चला कर विद्या और शिक्षा का प्रकाश तुम करो ॥५॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यो भोजनं च दयसे च वर्द्धनमार्द्रादा शुष्कं मधुमद्दुदोहिथ ।
स शेवधिं नि दधिषे विवस्वति विश्वस्यैक ईशिषे सास्युक्थ्यः ॥६॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (यः) जो (एकः) एक असहाय अद्वितीय आप (विवस्वति) सूर्य में अभिव्याप्त होते (विश्वस्य) समस्त जगत् के (भोजनम्) पालन (च) और पुरुषार्थ और वृद्धि की (दयसे) रक्षा करते (ईशिषे) और ईश्वरता को प्राप्त हैं वा (शुष्कम्) सूखे पदार्थ को (आर्द्रात्) गीले पदार्थ से (मधुमत्) मधुर गुणयुक्त (दुदोहिथ) परिपूर्ण करते (सः) वह आप (शेवधिम्) निधिरूप पदार्थ को (निदधिषे) निरन्तर धारण करते हैं इस कारण (सः) वह आप (उक्थ्यः) प्रशंसनीयों में प्रसिद्ध (असि) हैं ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो पालना करता हुआ ईश्वर समस्त जगत् का निर्माण कर और उसी की रक्षा कर सिद्धि करने वाले पदार्थों को देकर

समस्त विश्व को सुखों से परिपूर्ण करता है वह एक ही उपासना के योग्य है ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यः पुष्पिणीश्च प्रस्वश्च धर्म्मणाधि दाने व्य१वनीरधारयः ।
यश्चासमा अजनो दिद्युतो दिव उरुरूर्वाँ अभितः सास्युक्थ्यः ॥७॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! (यः) जो आप (धर्मणा) धर्म से (दाने) देने में (पुष्पिणीः) फूलों वाली (च) वा (प्रस्वः) फल उत्पन्न करने वाली लतादिकों (च) वा (अवनीः) भूमियों को (अधि, अधारयः) अधिकता से धारण करते (यः) जो (असमाः) असमान (दिद्युतः) बिजुलियों को वा (दिवः) प्रकाशमय लोकों को (अभितः) सब ओर से (वि, अजनः) विशेषता से उत्पन्न करते हैं (च) और जो (उरुः) बहुशक्तिमान् आप (ऊर्वान्) अविनाशी पदार्थों को प्रकट करते हैं (सः) वह आप हम लोगों से (उक्थ्यः) प्रशंसनीयों में प्रसिद्ध (असि) हैं ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर ने बहुत पुष्प और फलयुक्त ओषधी सबकी आधारभूत पृथिवी और बिजुली आदि पदार्थ उत्पन्न किये हैं वही आप हम लोगों को उपास्य है ॥७॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यो नार्मरं सहवसुं निहन्तवे पृक्षाय च दासवेशाय चावहः ।
ऊर्जयन्त्या अपरिविष्टमास्यमुतैवाद्य पुरुकृत्सास्युक्थ्यः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (पुरुकृत्) बहुत वस्तुओं को करने वाला सेनापति विद्वान् (दासवेशाय) जिस में सेवक प्रवेश करते उस के लिये और (पृक्षाय) सेचन करने के लिये (च) भी (सहवसुम्) धनादि पदार्थों के साथ वर्त्तमान (नार्मरम्) मनुष्यों को मरवा देने वाले पवन के सम्बन्धि अग्नि को (अवहः) प्राप्त होता है जिस में (आस्यम्) मुख (अपरिविष्टम्) परिवेष परसने के कर्म से रहित हुआ हो (उत) और (ऊर्जयन्त्याः) बलवती सामग्रियों में उत्तम जल में (च) भी विद्यमान है (सः, एव) वही सेनापति (अद्य) आज (उक्थ्यः) कथनीय पदार्थों में (असि) है यह तुम लोग जानो ॥८॥

भावार्थः—जो राजजन भृत्यों को और सेवकों को श्रेष्ठ भोजनादिक देकर आनन्दित करते हैं वे स्तुति सेवन वाले होकर बहुत भोगों को प्राप्त होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शतं वा यस्य दश साकमाद्य एकस्य श्रुष्टौ यद्ध चोदमाविथ ।
अरज्जौ दस्यून्त्समुनब्दभीतये सुप्राव्यो अभवः सास्युक्थ्यः ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! (यस्य) जिन आप के (दशशतं वा) दश सौ एक सहस्र योद्धा (साकम्) साथ में वर्तमान हैं वा (यद्, ह) जो ही (आद्यः) भोजन करने योग्य आप (एकस्य) जो सहाय रहित है उस के (श्रुष्टौ) पाने योग्य सुख के निमित्त (चोदम्) प्रेरणा को (आविथ) चाहते हो (अरज्जौ) विना किसी रचना विशेष स्थान में (दभीतये) मारने के लिये (दस्यून्) दुष्टाचारी मनुष्यों को (समुनप्) अच्छे प्रकार पूरण करते हो और (सुप्राव्यः) सुन्दरता से प्रकाश के साथ रखने योग्य (अभवः) होते हो इस कारण (सः) वह आप (उक्थ्यः) अनेकों के बीच प्रशंसनीय (असि) हो ॥९॥

भावार्थः—जिस किसी से एक सहस्र वीर योद्धा सत्कार करके रक्खे जाते हैं वह चोरादिकों को निवृत्त कर सकता है ॥९॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वेदनु रोधना अस्य पौंस्यं ददुरस्मै दधिरे कृत्नवे धनम् ।
षळस्तभ्ना विष्टिरः पञ्च संदृशः परि परो अभवः सास्युक्थ्यः ॥१०॥

पदार्थः—मनुष्य (अस्मै) इस (कृत्नवे) कर्म करने वाले मनुष्य के लिये (षट्, विष्टरः) छः जो विशेषता से अपने अपने समय को पार होती हैं वे ऋतुयें (पञ्च) और पांच (संदृशः) अपने अपने विषय को देखने वाले पृथिवी, अप्, तेज, वायु, आकाश ये भूत वा पांच कर्मेन्द्रियां (विश्वा) सब (रोधना) रुकावटों को (अनुददुः) अनुकूलता से देते हैं और (धनम्) धन को (इत्) ही (परि, दधिरे) सब ओर से धारण करते हैं (अस्य) इस के (पौंस्यम्) पुरुषार्थ को अनुकूलता से धारण करते हैं अर्थात् जानते हैं वह (परः) उत्कृष्ट धन को (अस्तभ्नाः) रोकता है और (अभवः) प्रसिद्ध होता है (सः) वह (उक्थ्यः) अनेकों में प्रशंसनीय (असि) है ॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य युक्त आहार विहार करने वाले जितेन्द्रिय होते हैं वे सब ऋतुओं में पांचों इन्द्रियों से सुखों को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुप्रवाचनं तव वीर वीर्यं१ यदेकेन क्रतुना विन्दसे वसु ।
जातूष्ठिरस्य प्र वयः सहस्वतो या चकर्थ सेन्द्र विश्वास्युक्थ्यः ॥११॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य की प्राप्ति करने वाले! जिस कारण आप (उक्थ्यः) प्रशंसा करने योग्य (असि) हो, हे (वीर) प्रशंसित बलयुक्त! जिन (जातूष्ठिरस्य) कभी स्थिर पाये हुए (सहस्वतः) बलवान् (तव) आप का (सुप्रवाचनम्) सुन्दर अति उत्कृष्ट पढ़ाना श्रवण कराना और (वीर्यम्) उत्तम पराक्रम है (यत्) जो आप (एकेन) एक (क्रतुना) कर्म वा ज्ञान से (वयः) विज्ञान और (वसु) धन को (प्रविन्दसे) प्राप्त होते हैं (या) जिन (विश्वा) समस्त उक्त कामों को (चकर्थ) करते हैं (सः) वह आप उन कामों के लिये हम लोगों के राजा वा उपदेशक वा अध्यापक हूजिये॥११॥

भावार्थः—जिन के वेद के पारङ्गत अध्यापक विद्वान् प्रेम से उत्तम ज्ञान को देते हैं वे कभी दुःखी वा निन्दित नहीं होते हैं॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अरमयः सरपसस्तराय कं तुर्वीतये च वय्याय च स्रुतिम्।
नीचा सन्तमुदनयः परावृजं प्रान्धं श्रोणं श्रवयन्त्सास्युक्थ्यः॥१२॥

पदार्थः—हे विद्वान्! आप (सरपसः) जिस से पाप चलाये जाते हैं (तराय) उस के उल्लंघन और (तुर्वीतये) साधनों से व्याप्त होने के लिये (च) और (वय्याय) सूत के विस्तार करने के लिये (च) भी (स्रुतिम्) नाना प्रकार की चाल को जताइये और (परावृजम्) लौट गये हैं त्याग करने वाले जिस से उस मनुष्य को (प्रान्धम्) अत्यन्त अन्धे वा (श्रोणम्) बहिरे के समान (श्रवयन्) सुनाते हुए (नीचा) नीच व्यवहार से (सन्तम्) विद्यमान मनुष्य को उत्तम व्यवहार में (अरमयः) रमाते हैं तथा सब की (उदनयः) उन्नति करते हो इस कारण (सः) वह आप (उक्थ्यः) प्रशंसनीय (असि) हैं॥१२॥

भावार्थः—जैसे शिल्पवेत्ता विद्वान् जन औरों को शिल्पविद्या के दान से उत्कृष्ट करते हुए अन्धे को देखते हुए के समान वा बहिरे को श्रवण करने वाले के समान बहुश्रुत करते हैं वे इस संसार में पूज्य होते हैं॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम्।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥१३॥

पदार्थः—हे (वसो) सुखों में वसाने और (इन्द्र) ऐश्वर्य देने वाले विद्वान्! (ते) आप के (वसव्यम्) धनादि पदार्थों में हुए (चित्रम्) अद्भुत (बृहत्) बड़ा बढ़ता

हुआ (वह्वु) वहुत (रायः) सुखसाधक धन है (तत्) (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (दानाय) देने को (समर्थयस्व) समर्थ करो जिस से (श्रवस्याः) सुनने के व्यवहारों में उत्तम (सुवीराः) सुन्दर शूरतायुक्त मनुष्य वा गुणों से युक्त हम लोग (अनुद्यून्) प्रत्येक पराक्रमादि के प्रकाशों को (विदथे) संग्राम में (बृहत्) वहुत (वदेम) कहें ॥१३॥

भावार्थः—वे ही विद्वान् हैं जो औरों को शरीर आत्मा बल के योग से समर्थ और धनाढ्य शूरवीर पुरुषार्थी करते हैं ॥१३॥

इस सूक्त में विजुली विद्वान् और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः। इन्द्रो देवता। १।३।४।६।१०।१२ त्रिष्टुप्। २। ६।८ निचृत् त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ५ निचृत्पङ्क्तिः। ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब बारह ऋचा वाले चौदहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में सोम के गुणों को कहते हैं ॥

अध्व॑र्यवो॒ भर॒तेन्द्रा॑य॒ सोम॒मामं॑त्रेभिः सिञ्चता॒ मद्य॒मन्धः॑ ।
का॒मी हि वी॒रः सद॑मस्य पी॒तिं जु॒होत॒ वृष्णे॒ तदि॒देष व॑ष्टि ॥१॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यवः) अपने को यज्ञ कर्मों की चाहना करने वाले मनुष्यो! तुम जो (एषः) यह (कामी) कामना करने का स्वभाव वाला (वीरः) वीर (वृष्णे) बल बढ़ाने के लिये (अस्य) इस सोम रस के (पीतिम्) पान को (वष्टि) चाहता है (तत्, इत्) उसे (सदम्) पाने योग्य सोम (हि) को निश्चय से तुम (जुहोत) ग्रहण करो (इन्द्राय) और परमैश्वर्य के लिये (अमत्रेभिः) उत्तम पात्रों से (मद्यम्) हर्ष के देने वाले (अन्धः) अन्न को तथा (सोमम्) सोम रस को (सिञ्चत) सींचो और बल को (आ, भरत) पुष्ट करो ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य सर्व रोग हरने बुद्धि और बल के देने वाले भोजन और पान अर्थात् उत्तम वस्तु पीने की कामना करते हैं वे बलिष्ठ वीर होते हैं ॥१॥

अब विजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध्व॑र्यवो॒ यो अ॒पो व॑व्रि॒वांसं॑ वृ॒त्रं ज॒घाना॒शन्ये॑व वृ॒क्षम् ।
तस्मा॑ ए॒तं भ॑रत तद्व॒शायँ॑ ए॒ष इन्द्रो॑ अर्हति पी॒तिम॑स्य ॥२॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यवः) अपने को अहिंसा की इच्छा करने वालो ! (यः) जो सूर्य (वव्रिवांसम्) आवरण करने वाले (वृत्रम्) मेघ को (अशन्येव) बिजुली के समान (वृक्षम्) वृक्ष को (जघान) मारता है अर्थात् दाहशक्ति से भस्म कर देता है और (आपः) जलों को वर्षाता तथा जो (एषः) यह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् जन (अस्य) सोमलतादि रस के (पीतिम्) पीने को (अर्हति) योग्य होता है इस कारण (तद्वशाय) उन उन पदार्थों को कामना करने वाले के लिये (एतम्) उक्त पदार्थद्वय को धारण करो अर्थात् उन के गुणों को अपने मन से निश्चित करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के समान विद्या [और मेघ के समान सुख] की उत्पत्ति करते हैं और सदा पथ्योषधिसेवी हुए ओषधियों का सेवन करते हैं वे परोपकार करने को भी योग्य होते हैं ॥२॥

अब राज विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध्वर्यवो यो दृभीकं जघान यो गा उदाजदप हि वलं वः ।
तस्मा एतमन्तरिक्षे न वातमिन्द्रं सोमैरोर्णुत जूर्न वस्त्रैः ॥३॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यवः) यज्ञ संपादन करने वाले जनो ! (यः) जो (दृभीकम्) भयङ्कर प्राणी को (जघान) मारता है किसको कि (यः) जो (गाः) गौओं को (उदाजत्) विविध प्रकार से फेंके अर्थात् उठाय उठाय पटके मारे और (वलम्) वल को (अप, वः) अपवरण करे रोके (तस्मै) उस के लिये (हि) ही (एतम्) इस यज्ञ को (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (वातम्) पवन के (न) समान वा (इन्द्रम्) मेघों को धारण करने वाले सूर्य को (वस्त्रैः) वस्त्रों से (जूः) बुड्ढे के (न) समान (सोमैः) ओषधियों वा ऐश्वर्यों से (आ, ऊर्णुत) आच्छादित करो अर्थात् अपने यज्ञधूम से सूर्य को ढापो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजपुरुष भयानक गोहत्या करने वालों को मारते हैं और उत्तमों की रक्षा करते हैं वे निर्भय होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध्वर्यवो य उरणं जघान नव चख्वांसं नवतिं च बाहून् ।
यो अर्बुदमव नीचा बबाधे तमिन्द्रं सोमस्य भृथे हिनोत ॥४॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यवः) सब के प्रियाचरणों को करने वाले विद्वानो ! तुम

(यः) जो जन (उरणम्) आच्छादन करने वाले (चख्वांसम्) मारने वाले के प्रति मारने वाले को (जघान) मारे और (नव, नवतिम्) निन्यानवे (बाहून्) बाहुओं के समान सहाय करने वालों को (च) भी मारे (यः) जो (अर्बुदम्) दश क्रोड़ (नीचा) नीचों को (अव, बबाधे) विलोता है (तम्) उस (इन्द्रम्) बिजुली के समान सेनापति को (सोमस्य) ऐश्वर्य के (भृथे) धारण करने में (हिनोत) प्रेरणा देओ ॥४॥

भावार्थः—हे सेनास्थ मनुष्यो ! तुम को जो कि अनेकों सहाययुक्त दुष्ट करने वाले दुराचारियों का मारने और राज्यैश्वर्य का पुष्ट करने वाला हो वह सेनापति करना चाहिये ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध्वर्यवो यः स्वश्नं जघान यः शुष्णमशुषं यो व्यंसम् ।
यः पिप्रुं नमुचिं यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥५॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यवः) अपने को यज्ञकर्म की इच्छा करने वा सब के प्रियाचरण करने वालो ! तुम (यः) जो जन सूर्य जैसे (स्वश्नम्) सुन्दर मेघ को वैसे शत्रु को (जघान) मारता है वा (यः) जो (शुष्णम्) सूखे पदार्थ को (अशुषम्) गीला वा (यः) जो (व्यंसम्) शत्रु को निर्भुज करता वा (यः) जो (नमुचिम्) अधर्मात्मा (पिप्रुम्) प्रजा पालक अर्थात् राजा को वा (यः) जो (रुधिक्राम्) राज्य व्यवहारों के रोकने वालों को निरन्तर गिराता है (तस्मै) उस (इन्द्राय) सूर्य के समान सेनापति के लिये (अन्धसः) अन्न (जुहोत) देओ ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य जैसे सूर्य मेघ को धारण कर वर्षाता है वैसे जो कर को लेकर फिर देता है दुष्टों को रोकवा के श्रेष्ठों को यथासमय रोकता वह सेनापति होने योग्य है ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध्वर्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो बिभेदाश्मनेव पूर्वीः ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद्भरता सोममस्मै ॥६॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यवः) युद्धरूप यज्ञ की सिद्धि करने वालो ! तुम लोगों में से (यः) जो (शम्बरस्य) सुख जिससे स्वीकार किया जाता उस मेघ के (शतम्) सौ (पुरः) पुरों को जैसे घड़े को (अश्मनेव) पत्थर से वैसे (बिभेद) छिन्न भिन्न करता है (यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वर्चिनः) प्रदीप्त अपने सर्व बल से देदीप्यमान राजा के (शतम्) सौ और (सहस्रम्) हजार (पूर्वीः) पहिले हुई प्रजाओं को (अपावपत्)

नीचा करता है (अस्मै) इस सेनेश के लिये (सोमम्) ऐश्वर्य को (भरत) धारण करो ॥६॥

भावार्थः– इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य वा विजुली मेघ की असंख्य नगरियों को छिन्न भिन्न करता है पृथिवी पर अपरिमित जल वर्षाता है वैसे जो प्रजा के लिये ऐश्वर्य का धारण करता है उसका निरन्तर सत्कार करो ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध्वर्यवो यः शतमा सहस्रं भूम्या उपस्थेऽवपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्यवृणग्भरता सोममस्मै ॥७॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यवः) युद्धयज्ञरूप की सिद्धि करनेवाले जनो ! तुम (यः) जो सूर्य के समान (भूम्याः) भूमि के (उपस्थे) ऊपर (शतम्) सैकड़ों वा (सहस्रम्) सहस्रों वीरों को (आ, अवपत्) बोता अर्थात् गिरा देता दुष्टों को (जघन्वान्) मारता वा (अतिथिग्वस्य) अतिथियों को प्राप्त होने वाले (आयोः) और प्राप्त हुए (कुत्सस्य) बाण आदि फेंकने वाले प्रजापति के (वीरान्) शत्रुबलों को व्याप्त होते वीरों को (नि, अवृणक्) निरन्तर वर्जता है (अस्मै) इसके लिये (सोमम्) ऐश्वर्य को (भरत) पुष्ट करो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य से छिन्न भिन्न हुआ मेघ असंख्य बिन्दुओं को वर्षाता है वैसे जो शत्रुसेना पर शस्त्रों को वर्षावे वह विजय को प्राप्त होवे ॥७॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध्वर्यवो यन्नरः कामयाध्वे श्रुष्टी वहन्तो नशथा तदिन्द्रे ।
गभस्तिपूतं भरत श्रुतायेन्द्राय सोमं यज्यवो जुहोत ॥८॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यवः) सब का हित चाहने वाले (नरः) नायक मनुष्यो ! तुम (यत्) जिस राज्य वा धन को (श्रुष्टी) शीघ्र (वहन्तः) प्राप्त करते हुए (कामयाध्वे) उसकी कामना करो (नशथ) वा छिपाओ (तत्) उस (गभस्तिपूतम्) किरणों वा बाहुओं से पवित्र किये हुए को (इन्द्रे) सभापति के निमित्त (भरत) धारण करो । हे (यज्यवः) सङ्ग करने वाले जनो ! तुम (श्रुताय) जिसका प्रशंसित श्रुतिविषय है उस (इन्द्राय) सभापति के लिये (सोमम्) ओषधियों के रस को वा ऐश्वर्य को (जुहोत) ग्रहण करो ॥८॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जिस प्रकार की विद्या अपने अर्थ चाहो वैसे दूसरों के लिये भी चाहो जिससे सब बहुत ऐश्वर्य वाले हों ॥८॥

अब क्रियाकौशल विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध्वर्यवः कर्त्तना श्रुष्टिमस्मै वने निपूतं वन उन्नयध्वम् ।
जुषाणो हस्त्यमभि वावशे व इन्द्राय सोमं मदिरं जुहोत ॥९॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यवः) पुरुषार्थी जनो ! तुम (अस्मै) इस सभापति के लिये (वने) किरणों में (श्रुष्टिम्) शीघ्र (निपूतम्) निरन्तर पवित्र और दुर्गन्ध वा प्रमादपन से रहित पदार्थ (कर्त्तन) करो (वने) और किरणों में (उन्नयध्वम्) उत्कर्ष देओ जो ((हस्त्यम्) हस्तों में उत्तम हुए पदार्थ को (जुषाणः) प्रीति करता वा सेवन करता हुआ (मदिरम्) आनन्द देने वाले (सोमम्) सोमलतादि रस को (अभि, वावशे) प्रत्यक्ष चाहता (तस्मै) उस सभापति के लिये और (वः) तुम लोगों को (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् जन के लिये उक्त पदार्थ को (जुहोत) देओ ॥९॥

भावार्थः—जो वैद्यजन सूर्यकिरणों से निष्पन्न हुए ओषधि रस को क्रिया से उत्कृष्ट करके आप सेवते तथा औरों के लिये देते हैं वे शीघ्र अपने कार्य को कर सकते हैं ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध्वर्यवः पयसोधर्यथा गोः सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
वेदाहमस्य निभृतं म एतद्दित्सन्तं भूयो यजतश्चिकेत ॥१०॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यवः) बड़ी बड़ी ओषधियों के सिद्ध करने वाले जनो ! तुम (यथा) जैसे (गोः) गौ के (पयसा) दूध से (ऊधः) ऐन भरा होता है वैसे (सोमेभिः) खाई हुई सोमादि ओषधियों के साथ (ईम्) जल को पी के (पृणत) तृप्त होओ जैसे (भोजम्) भोजन करने वाले (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् को (अहम्) मैं (वेद) जानूं (अस्य) इस की (निभृतम्) निश्चित पुष्टि को जानूं वैसे तुम जानो जिस (मे) मेरे (एतत्) इस पूर्वोक्त पदार्थ के (दित्सन्तम्) देने वाले का (यजतः) सङ्ग करते हुए जनों को जैसे मैं जानूं वैसे इस विषय को (भूयः) बार बार जो (चिकेत) जाने उसको तृप्त करो ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्य जैसे गौवें घास आदि को खाकर दूध उत्पन्न करती हैं वैसे महौषधियों का संग्रह कर श्रेष्ठ ओषधियों को सिद्ध करें ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध्वर्यवो यो दिव्यस्य वस्वो यः पार्थिवस्य क्षम्यस्य राजा ।
तमूर्दरं न पृणता यवेनेन्द्रं सोमेभिस्तदपो वो अस्तु ॥११॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यवः) राजसम्बन्धी विद्वान् जनो ! (यः) जो (दिव्यस्य) प्रकाश में उत्पन्न हुए (वस्वः) धन को वा (यः) जो (पार्थिवस्य) पृथिवी में विदित (क्षम्यस्य) सहनशीलता में उत्तम उसके बीच (वः) तुम्हारे लिये (राजा) राजा (अस्तु) हो (तम्) उस (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् को (यवेन) यव अन्न से जैसे (ऊर्दरम्) मटका को वा डिहरा को (न) वैसे (सोमेभिः) सोमादि ओषधियों से (पृणत) पूरो परिपूर्ण करो (तत्) उस (अपः) कर्म को प्राप्त होओ ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् जन धान्य अन्न से मटका वा डिहरा को जैसे वैसे विद्यार्थियों की वुद्धियों को विद्या और उत्तम शिक्षा से तृप्त करते हैं वे राजा को सेवने योग्य हों ॥११॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अस्मभ्यं तद्वसो दानाय राधः समर्थयस्व बहु ते वसव्यम् ।
इन्द्र यच्चित्रं श्रवस्या अनु द्यून्बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१२॥

पदार्थः—हे (वसो) धन देने वाले (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त ! (सुवीराः) सुन्दर वीरों वाले हम लोग जो (ते) तुम्हारा (बहु) बहुत (चित्रम्) अद्भुत (वसव्यम्) पृथिवी आदि वसुओं से सिद्ध हुए (बृहत्) बहुत (राधः) समृद्धि करने वाले धन को (श्रवस्याः) अन्नों के लिये हित करने वाली पृथिवी के बीच (अनु द्यून्) प्रतिदिन (विदथे) विज्ञानरूपी संग्राम यज्ञ में (वदेम) कहें उस को हमारे लिये देने को आप (समर्थयस्व) समर्थ करो ॥१२॥

भावार्थः—सज्जनों का धन औरों के सुख के लिये और दुष्टों का धन औरों के दुःख के लिये होता है जो धन और ऐश्वर्यों की उन्नति के लिये सर्वदा प्रयत्न करते हैं वे पुष्कल वैभव पाते हैं ॥१२॥

इस सूक्त में सोम बिजुली राजप्रजा और क्रियाकौशलता के प्रयोजनों के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह चौदहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ भुरिक् पङ्क्तिः । ७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ४—६ । ६ । १० त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ८ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब दश ऋचा वाले पन्द्रहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् सूर्य और परमेश्वर के विषय को कहते हैं ॥

प्र घा न्वस्य मह॒तो म॒हानि॑ स॒त्या स॒त्यस्य॒ कर॑णानि वोचम् ।
त्रिक॑द्रुकेष्वपिबत्सु॒तस्या॒स्य मदे॒ अहि॒मिन्द्रो॑ जघान ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (इन्द्रः) सूर्य (सुतस्य) संपादित किये हुए (अस्य) सोमादि ओषधि के रस को (त्रिकद्रुकेषु) तीन प्रकार की विशेष गतियों से युक्त कर्मों में (अपिबत्) पीता है और (मदे) हर्ष के निमित्त (अहिम्) मेघ को (जघान) मारता है इस कर्म को अथवा (अस्य) इस (महतः) पूज्य वा व्यापक (सत्यस्य) नाशरहित जगदीश्वर के (सत्या) सत्य अविनाशी (महानि) प्रशंसनीय (करणानि) साधन वा कर्मों को (घ) ही मैं (नु) शीघ्र (प्रवोचम्) प्रकर्षता से कहता हूँ वैसे तुम लोग भी कहो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य जैसे सूर्य किरणों से सब के रस को अपने प्रकाश से उन्नत करता वा शोधता है वैसे ओषधियों के रस को जो कि रोगनिवारण करने से आनन्द देने वाला है उसको सेवते वा परमेश्वर के सत्यगुण कर्म स्वभाव और साधनों के अनुकूल कर्मों को करते हैं वे ही शीघ्र सुख को प्राप्त होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒वं॒शे द्यामस्तभायद्बृ॒हन्त॒मा रोद॑सी अपृणद॒न्तरि॑क्षम् ।
स धा॑रयत्पृ॒थि॒वीं प॒प्रथ॑च्च॒ सोम॑स्य॒ ता मद॒ इन्द्र॑श्चकार ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अवंशे) अविद्यमान जिस का मान उस वंश के समान वर्त्तमान अन्तरिक्ष में (द्याम्) प्रकाश को (अस्तभायत्) रोकता (बृहन्तम्) बढ़ते हुए ब्रह्माण्ड को (रोदसी) सूर्यलोक भूमिलोक और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (अपृणत्) प्राप्त होता (पृथिवीम्) पृथिवी को धारण करता (सोमस्य) उत्पन्न हुए जगत् के बीच (मदे) आनन्द के निमित्त (ता) उक्त कर्मों को (पप्रथत्) विस्तारता है इस सब को (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर क्रम से (चकार) करता है (सः) वह तुम लोगों को उपासना करने योग्य है ॥२॥

भावार्थः—कोई नास्तिकता को स्वीकार कर यदि ऐसे कहें जो ये लोक परस्पर के आकर्षण से स्थिर हैं इन का कोई और धारण करने वा रचने वाला नहीं है उन के प्रति विद्वान् जन ऐसा समाधान देवें कि यदि सूर्यादि लोकों के आकर्षण से ही सब लोक स्थिति पाते हैं तो सृष्टि के अन्त में अर्थात् जहां कि सृष्टि के आगे कुछ नहीं है वहां के लोकों का और लोकों के आकर्षण के विना आकर्षण होना कैसे सम्भव है ? इस से सर्वव्यापक परमेश्वर की आकर्षण शक्ति से ही सूर्यादि लोक अपने रूप और अपनी क्रियाओं को धारण करते हैं। ईश्वर के इन उक्त कर्मों को देख धन्यवादों से ईश्वर की प्रशंसा सर्वदा करना चाहिये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सद्मेव प्राचो वि मिमाय मानैर्वज्रेण खान्यतृणन्नदीनाम् ।
वृथासृजत्पथिभिर्दीर्घयाथैः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (मानैः) परिमाणों से (सद्मेव) घर के समान (प्राचः) प्राचीन लोकों को (वि, मिमाय) निर्माण करता बनाता है (नदीनाम्) अव्यक्त शब्दयुक्त नदियों के (खानि) खातों को अर्थात् जलस्थानों (वज्रेण) विज्ञान से (अतृणात्) विस्तारता (दीर्घयाथैः) जिन में दीर्घ बड़े बड़े गमन चालें उन (पथिभिः) मार्गों के साथ सब लोकों को (वृथा) वृथा (असृजत्) रचता (सोमस्य) उत्पन्न हुए जगत् के (मदे) हर्ष के निमित्त (ता) उन उक्त कर्मों को (चकार) करता है वह जगत् का निर्माण करने वाला दयालु ईश्वर जानना चाहिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर से पूर्व कल्प की रीति से और परमाणुओं से लोकलोकान्तरों का निर्माण किया जाता है जिस का अपना प्रयोजन केवल परोपकार को छोड़ कर और कुछ भी नहीं है उस जगदीश्वर के उक्त काम धन्यवाद के योग्य हैं उन का तुम स्मरण करो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स प्रवोळ्हृन् परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ ।
सं गोभिरश्वैरसृजद्रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) जगदीश्वर (दभीतेः) हिंसा से (परिगत्य)

सब ओर से प्राप्त होकर (विश्वम्) समस्त जगत् को (प्रवोढृन्) उस को प्रकृष्टता से पहुंचाने वालों को (आयुधम्) शस्त्र के समान (समिद्धे) प्रदीप्त (अग्नौ) अग्नि में (अधाक्) भस्म करता है वा (गोभिः) गौओं (अश्वैः) तुरङ्गों और (रथेभिः) भूमि में चलवाने वाले रथादि यानों से (सोमस्य) उत्पन्न हुए जगत् के (मदे) हर्ष के निमित्त (ता) ऐश्वर्य सम्बन्धी उक्त कामों को (चकार) करता है (सः) वह प्रलय का करने वाला ईश्वर सब को सब ओर से ध्यान करने योग्य है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे संप्राप्त अग्नि सूखे और गीले पदार्थ को भस्म करता है वैसे अच्छे प्रकार प्राप्त हुए प्रलय समय में जगदीश्वर सब का प्रलय करता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स ईं महीं धुनिमेतोररम्णात्सो अस्नातृनपारयत्स्वस्ति ।
त उत्स्नाय रयिमभि प्र तस्थुः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (सोमस्य) उत्पन्न जगत् के बीच (ईम्) जल और (धुनिम्) चलती हुई (महीम्) पृथिवी को (अरम्णात्) हन्ता है (सः) वह (अस्नातृन्) अस्नातक अर्थात् जो यज्ञस्नान नहीं किये उन के (एतोः) गमन को (स्वस्ति) कल्याण जैसे हो वैसे (अभि, अपारयत्) सब ओर से पार पहुंचाता है जो (ता) उक्त कामों को (मदे) हर्ष के निमित्त (चकार) करता है और जो विद्वान् जन उक्त ईश्वर के निमित्त (उत्स्नाय) उत्तम समाधिस्नान कर (रयिम्) धन को (प्रतस्थुः) प्रस्थित करते फिरते (ते) वे दुःख को छोड़ते वह सब को सेवने योग्य है ॥५॥

भावार्थः— जो जगदीश्वर जगत् का रचने वा पालना करने वा हनने वाला और मुक्ति में शुद्धाचरण करने वालों को दुःख से पार करने वाला है जो इस शुद्ध ईश्वर में समाधि से न्हाय के पवित्र होते हैं वे सब जगत् में सब जगह प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं ॥५॥

अब सूर्य के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन्त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥६॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) सब पदार्थों को अपनी किरणों से छिन्न भि॰ करने वाला सूर्य (महित्वा) महत्व से (वज्रेण) अपने किरणरूपी वज्र से (उदञ्चम्) ऊपर को प्राप्त होते हुए (सिन्धुम्) समुद्र को (अरिणात्) गमन करता

वा उच्छिन्न करता (उषसः) प्रभात समय से लेकर (संपिपेष) अच्छे प्रकार पीसता अर्थात् अपने आतप से समुद्र के जल को कण कण कर सोखता (अजवसः) वेगरहित भी (जविनीभिः) वेगवती क्रियाओं से पदार्थों को (विवृश्चन्) छिन्नभिन्न करता हुआ (सोमस्य) ऐश्वर्य्ययुक्त संसार के (मदे) आनन्द के निमित्त (ता) उन कामों को (चकार) करता है (सः) वह तुम लोगों को जानने योग्य है ॥६॥

भावार्थः—जैसे सूर्य महत्व से अपने प्रकाश से जल को ऊपर पहुँचाता रात्रि को विनाशता अति वेग और अपनी चालों से अद्भुत कामों को करता है वैसे हम लोगों को भी आरम्भ करना चाहिये ॥६॥

अब सूर्य के दृष्टान्त से विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स विद्वाँ अपगोहं कनीनामाविर्भवन्नुदतिष्ठत्परावृक् ।
प्रति श्रोणः स्थाद्व्य१नगचष्ट सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥७॥

पदार्थः—जो (श्रोणः) सुनने वाला विद्वान् जन (इन्द्रः) सर्व पदार्थ अलग अलग करने वाला सूर्य जैसे (सोमस्य) संसार के बीच (कनीनाम्) कान्तियों के (अपगोहम्) अपगूहन आच्छादन करने को (परावृक्) खोलता (आविर्भवन्) प्रकट होता हुआ (उदतिष्ठत्) ऊपर को स्थिर होता अर्थात् उदय होकर ऊपर को बढ़ता (प्रतिष्ठात्) और प्रतिष्ठा पाता (व्यनक्) पदार्थों को प्रकट करता (अचष्ट) उपदेश करता अर्थात् अपनी गति से यथावत् समय को बतलाता वैसे (मदे) हर्ष के निमित्त (ता) उन कामों को (चकार) करता है (सः) वह सब को सत्कार करने योग्य है ॥७।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे सूर्य्य अपने प्रकाशदान से अन्धकार को निवृत्त कर विचित्र संसार दिखलाता है वैसे जो विद्वान् जन सत्यविद्या का उपदेश देने से अविद्या को निवृत्त कर विविध पदार्थविज्ञान को प्रकट करते हैं वे विश्व के भूषित करने वाले होते हैं ॥७॥

फिर प्रकारान्तर से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

भिनद्वलमङ्गिरोभिर्गृणानो वि पर्वतस्य दृंहितान्यैरत् ।
रिणग्रोधांसि कृत्रिमाण्येषां सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वान्! (गृणानः) प्रशंसा करते हुए आप जैसे (इन्द्रः) सर्व पदार्थ छिन्नभिन्न करता सूर्य (अङ्गिरोभिः) अङ्गों के सदृश किरणों से (पर्वतस्य) मेघ के समान प्रजा के (बलम्) बल को (वि, भिनत्) विशेषता से छिन्न भिन्न

करता (सोमस्य) विश्व के (दृंहितानि) बढ़े हुए पदार्थों को (ऐरत्) प्राप्त होता वा (एषाम्) इन पदार्थों के (कृत्रिमाणि) कृत्रिम (रोधांसि) आवरणों को अर्थात् जिन से यह उन्नति को नहीं प्राप्त होते उन पदार्थों को (रिणक्) मारता नष्ट करता (ता) उक्त कामों को (मदे) हर्ष के निमित्त (चकार) करता है वैसा प्रयत्न करिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जैसे वायु के सहाय से अग्नि अद्भुत कर्मों को करता है वैसे धार्मिक विद्वान् के सहाय से मनुष्य बड़े बड़े उत्तम काम कर सकते हैं ॥८॥

अथ राजविषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमावः ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्यं सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥९॥

पदार्थः—जो (इन्द्रः) सेनापति (स्वप्नेन) निद्रापन से वर्त्तमान (चुमुरिम्) मुखयुक्त अर्थात् चोरपन का मुख बनाये और (धुनिम्) कंपते हुए (दस्युम्) बलात्कारी अति साहसकारी डाकू चोर का (अभ्युप्य) सब ओर से शिर मुंडवा कर (जघन्थ) मारे (भीदतिम्) हिंसक प्राणी को (प्रावः) उत्कर्षता से रक्खे (रम्भी) कार्य्यारम्भ करने वाला (चित्) भी (अत्र) इस राज्यव्यवहार में (सोमस्य) विश्व का (हिरण्यम्) सुवर्ण (विविदे) पावे (सः) वह (मदे) हर्ष के निमित्त (ता) उक्त कामों को (चकार) करे ॥९॥

भावार्थः—जो पुरुषार्थी जन डाकू आदि दुष्टों का निवारण कर श्रेष्ठों को रक्षा के निमित्त इकट्ठे करें वे जगत् के बीच ऐश्वर्य को पाते हैं ॥९॥

अब दान देने के कर्म का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्रः) दान करने वाले जन! (ते) तेरी (मघोनी) प्रशंसित धनयुक्त (दक्षिणा) दक्षिणा और (स्तोतृभ्यः) धार्मिक विद्वानों के लिये (शिक्षा) विद्या ग्रहण की सिद्धि कराने वाली शिक्षा (जरित्रे) समस्त विद्याओं की प्रशंसा करने वाले जन के लिये (प्रतिवरम्) श्रेष्ठ कार्य के प्रति श्रेष्ठ कार्य को (दुहीयत्) पूर्ण करे (सा) वह (नः) हमारा जो (भगः) ऐश्वर्य उस को (मातिधक्) मत नष्ट करे जिससे

(सुवीराः) सुन्दर वीरों से युक्त हम लोग (विदथे) यज्ञ में (बृहत्) बहुत (नूनम्) निश्चित (वदेम) कहें ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को उत्तम विद्वानों के लिये अभीष्ट दक्षिणा और विद्यार्थियों के लिये शिक्षा देनी चाहिये जिससे देने और लेने वाले फलयुक्त हों ॥१०॥

इस सूक्त में विद्वान् सूर्य परमेश्वर राज्य और दातृकर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह पन्द्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ७ जगती । ३ विराड् जगती । ४—६ । ८ निचृज्जगती च छन्दः । निषादः स्वरः । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ९ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले सोलहवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में बिजुली के विषय को कहते हैं ॥

प्र वः सतां ज्येष्ठतमाय सुष्टुतिमग्नाविव समिधाने हविर्भरे ।
इन्द्रमजुर्यं जरयन्तमुक्षितं सनाद्युवानमवसे हवामहे ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! हम लोग (सताम्) आप सज्जनों के (ज्येष्ठतमाय) अत्यन्त बढ़े हुए (अवसे) रक्षा आदि के लिये (हविः) हविष्य पदार्थ को (भरे) भरें धारण करें वा पुष्ट करें उस (समिधाने) अच्छे प्रकार प्रदीप्त (अग्नाविव) अग्नि में जैसे वैसे (सुष्टुतिम्) सुन्दर स्तुति को (हवामहे) स्वीकार करें और (सनात्) निरन्तर (युवानम्) दूसरे का भेद और (उक्षितम्) सेचन करने वाले तथा (अजुर्यम्) पुष्ट (जरयन्तम्) औरों को (जरावस्था) प्राप्त कराने वाले (इन्द्रम्) विद्युत् रूप अग्नि को उत्तमता से स्वीकार करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे अग्नि और विभाग आदि कर्मों का करने वाला विजुली रूप अग्नि युक्ति के साथ संयुक्त किया हुआ बहुत ऐश्वर्य को उत्पन्न करता है वैसे सत्पुरुषों की प्रशंसा सब की श्रेष्ठता के लिये कल्पना किई जाती है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्मादिन्द्राद्बृहतः किञ्चनेमृते विश्वान्यस्मिन्त्संभृताधि वीर्य्या ।
जठरे सोमं तन्वी३ सहो महो हस्ते वज्रं भरति शीर्षणि क्रतुम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यस्मात्) जिस (बृहतः) बड़े (इन्द्रात्) विद्युत् अग्नि से (ऋते) विना (किञ्चन) कुछ भी नहीं है (अस्मिन्) इस के (जठरे) उदर में (विश्वानि) समस्त वे पदार्थ (वीर्य्या) जो वीर शत्रुओं को फेंकने वाले विद्वानों में उपयोगी हैं (सम्भृता) अच्छे प्रकार धरे हुए हैं जो (तन्वि, ईम्) अपने शरीर में सब ओर से (सोमम्) ओषधि अन्न को (सहः) और बल को तथा (हस्ते) हाथ में (महः) बड़े (वज्रम्) शस्त्र को (शीर्षणि) और शिर के बीच (क्रतुम्) उत्तम बुद्धि को (अभि, भरति) अधिकता से धारण करता है वह विद्युत् अग्नि सब को यथावत् अच्छे प्रकार काम में लाने योग्य है ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जितना स्थूल वस्तु मात्र संसार में है उतना समस्त विजुली के विना नहीं है उसको प्रयत्न से तुम लोग जानो ॥२॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

न क्षोणीभ्यां परिभ्वे त इन्द्रियं न समुद्रैः पर्वतैरिन्द्र ते रथः ।
न ते वज्रमन्वश्नोति कश्चन यदाशुभिः पतसि योजना पुरु ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विजुली के समान वर्त्तमान! जिन (ते) आप को (इन्द्रियम्) धन (क्षोणीभ्याम्) आकाश और पृथिवी से (न) नहीं (परिभ्वे) तिरस्कार प्राप्त होता जिन (ते) आप का (समुद्रैः) सागरों और (पर्वतैः) पर्वतों से (रथः) रथ (न) नहीं तिरस्कार को प्राप्त होता जिन (ते) आप का (वज्रम्) छिन्न भिन्न करने वाले शस्त्र को (कश्चन) कोई (न, अनु, अश्नोति) नहीं अनुकूलता से व्याप्त होता (यत्) जो (आशुभिः) शीघ्र गमन कराने वाली विजुली के साथ रथ से (पुरु) बहुत (योजना) योजनों को (पतसि) जाते हैं सो आप सर्वथा विजयी होने योग्य हैं ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों से युक्त शस्त्र अस्त्र आदि पदार्थों को सिद्ध करते हैं वे तिरस्कार को नहीं पहुंचते और जो लोग आकाश, समुद्र तथा पहाड़ी भूमि में भी रथों को चलाते हैं वे सुख से मार्ग के पार होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विश्वे ह्यस्मै यजताय धृष्णवे क्रतुं भरन्ति वृषभाय सश्चते।
वृषा यजस्व हविषा विदुष्टरः पिबेन्द्र सोमं वृषभेण भानुना॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के इच्छुक (वृषा) शत्रु की शक्ति बांधने हारे (विदुष्टरः) अतीव विद्वान्! आप जो (हि) ही (विश्वे) सर्वत्र (वृषभेण) वर्षा कराने वाले (भानुना) ताप से युक्त सूर्य जैसे रस को वैसे (अस्मै) इस (यजताय) सङ्गम (धृष्णवे) दृढ़ता (वृषभाय) श्रेष्ठता (सश्चते) और सम्बन्ध के लिये (क्रतुम्) प्रज्ञा को (भरन्ति) धारण करते हैं उनके अनुसङ्गी होते हुए (हविषा) देने लेने योग्य वस्तु से (यजस्व) यज्ञ करो और (सोमम्) ओषध्यादि पदार्थों के रस को (पिब) पीओ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो प्रथम से अपनी बुद्धि को उन्नति दे कर विद्वानों का सत्कार करते हैं वे सब जगत् में सत्कार युक्त होते हैं॥४॥

अब सूर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

वृष्णः कोशः पवते मध्व ऊर्मिर्वृषभान्नाय वृषभाय पातवे।
वृषणाध्वर्यू वृषभासो अद्रयो वृषणं सोमं वृषभाय सुष्वति॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (मध्वः) सहत वा मधुर रस की (ऊर्मिः) तरङ्ग वा (वृष्णः) जल वर्षाने वाले सूर्य से (कोशः) मेघ (वृषभान्नाय) श्रेष्ठ जिस से अन्न हो उस (वृषभाय) श्रेष्ठ के लिये (पवते) प्राप्त होता वा जैसे (पातवे) पीने के लिये (वृषभासः) वर्षने वाले (अद्रयः) मेघ (वृषभाय) दुष्टों की शक्ति को बांधने वाले के लिये (वृषणम्) बलकारक (सोमम्) सोमलतादि ओषधि रस को और (वृषणा) श्रेष्ठ (अध्वर्यू) अपने को अहिंसा की इच्छा करने वाले का (सुष्वति) सार निकालते हैं वैसे तुम भी निकालने वाले हूजिये॥५॥

भावार्थः—जैसे मेघ सूर्य से उत्पन्न होकर पुष्कल अन्न का निमित्त होता और सब प्राणियों को तृप्त करता है वैसे विद्वानों को भी होना चाहिये॥५॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

वृषा ते वज्र उत ते वृषा रथो वृषणा हरी वृषभाण्यायुधा।
वृष्णो मदस्य वृषभ त्वमीशिष इन्द्र सोमस्य वृषभस्य तृष्णुहि॥६॥

पदार्थः—हे (वृषभ) अत्युत्तम (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वान् ! जिन (ते) आप का (वृषा) दूसरे की शक्ति का प्रतिबन्धन करने वाला (वज्रः) वेग (उत) और (ते) आप का (वृषा) वेगवान् (रथः) रथ (वृषणा) बलिष्ठ (हरी) हरणशील घोड़े (वृषभाणि) और शत्रुओं के बल को रोकने वाले (आयुधा) शस्त्र अस्त्र हैं सो जिस (वृष्णः) बल करने वाले (मदस्य) हर्ष का और (वृषभस्य) पुष्टि करने वाले (सोमस्य) ओषध्यादि रस के आप (ईशिषे) स्वामी होते हैं उससे (तृम्पुहि) तृप्त होओ ॥६॥

भावार्थः—जिन के सब कामों की सिद्धि कराने वाले साधनोपसाधन दृढ़ वा प्रशंसित काम हैं वे कामों के साधन कराने को पीड़ित नहीं होते ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र ते नावं न समने वचस्युवं ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषिः ।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! (सवनेषु) ऐश्वर्यों वा प्रेरणाओं में (दाधृषिः) अतीव प्रगल्भ मैं (ते) तुम्हारे (समने) संग्राम के निमित्त (नावम्) जल में नाव को जैसे (न) वैसे (प्रयामि) प्राप्त होता (ब्रह्मणा) वेद के साथ (वचस्युवम्) अपने को वचन की इच्छा करते अर्थात् वेद शिक्षाओं को चाहते हुए जन को प्राप्त होता (कुवित्) महान् आप (अस्य) इस (वचसः) वचन के सम्बन्ध करने वाले (नः) हम लोगों को (निबोधिषत्) निश्चित जानो हम लोग (उत्सम्) कूप के (न) समान वा (इन्द्रम्) बिजुली के समान ऐश्वर्य के (वसुनः) द्रव्य सम्बन्धी व्यवहारों से (सिचामहे) सींचते हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो नौकाओं से समुद्र में, रथों से पृथिवी पर और विमानों से आकाश में युद्ध करते हैं वे सदा ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पुरा संबाधादभ्या ववृत्स्व नो धेनुर्न वत्सं यवसस्य पिप्युषी ।
सकृत्सु ते सुमतिभिः शतक्रतो सं पत्नीभिर्न वृषणो नसीमहि ॥८॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) असंख्य बुद्धियों वाले जन ! आप (यवसस्य) यवादि अन्न सम्बन्धी (वत्सम्) बछड़े को (पिप्युषी) वृद्ध (धेनुः) गौ (न) जैसे वैसे वा (सुमतिभिः) जिन की सुन्दर बुद्धियां उन (पत्नीभिः) पत्नियों के साथ (वृषणः)

बलवान् सेचनकर्त्ता जन जैसे (न) वैसे (ते) आप के (सम्बाधात्) सम्बन्ध से (पुरा) प्रथम (नः) हम लोगों को (अभि, आ, ववृत्स्व) सब ओर से अच्छे प्रकार वर्त्तो जिस से हम लोग (सकृत्) एक वार (सुसन्नसीमहि) सुन्दरता से जावें ॥८॥

भावार्थः—जो और प्राणियों को पीड़ा से निवृत्त करते हैं वे आप भी पीड़ा से निवृत्त होते हैं जैसे क्रियमाण पत्नी के साथ पति आनन्दित होता है वैसे सज्जन के साथ सब आनन्दित होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्वान् ! जो (ते) आप की (मघोनी) प्रशंसा करने के योग्य विद्या और प्रतिष्ठा (दक्षिणा) और दक्षिणा (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये (प्रतिवरम्) श्रेष्ठ के प्रति श्रेष्ठ पदार्थ को (दुहीयत्) पूर्ण करे (सा) वह आपका (नूनम्) निश्चित श्रेय अत्यन्त कल्याण सिद्ध करती है आप (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वाले विद्वानों के लिये जो पदार्थ उन को (मा, अति, धक्) मत भस्म कर मत नष्ट कर जो (नः) हमारे लिये (भगः) ऐश्वर्य है उसको (शिक्ष) शिक्षा देओ । जिससे हम लोग (सुवीराः) सुन्दर वीरों वाले हुए (विदथे) यज्ञ भूमि में (बृहत्) बहुत (वदेम) कहें ॥९॥

भावार्थः—जो लोग किसी के उपकार को नहीं रोकते सत्य उपदेश करते हैं वे यशस्वी होते हैं ॥९॥

इस सूक्त में विजुली विद्वान् सूर्य और फिर विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सोलहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ५ । ६ विराड् जगती । २ । ४ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ३ । ७ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ८ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में सूर्य के गुणों का उपदेश करते हैं ॥

तद॑स्मै॒ नव्य॑मङ्गिर॒स्वद॑र्चत॒ शुष्मा॒ यद॑स्य प्र॒त्नथो॒दीर॑ते ।
विश्वा॒ यद्गो॒त्रा सह॑सा॒ परी॑वृता॒ मदे॒ सोम॑स्य दृंहि॒तान्यैर॑यत् ॥१॥

पदार्थः— हे विद्वानो ! (अस्य) इस सूर्यमण्डल सम्बन्धी (सोमस्य) ओषधि गण के (यत्) जो (प्रत्नथा) पुरातन पदार्थ के समान (शुष्मा) दूसरों को शुष्क करने वाले (विश्वा) और समस्त (गोत्रा) गोत्र जो कि (परीवृता) सब ओर से वर्त्तमान वे (महता) बल के साथ (दृंहितानि) धारण किये वा बढ़े हुए (उदीरते) उत्कर्षता से दूसरे पदार्थों को कंपन दिलाते हैं (तत्) वह (नव्यम्) नवीन कर्म (अस्मै) इसके लिये (अङ्गिरस्वत्) प्राण के तुल्य तुम लोग (अर्चत) सत्कृत करो (यत्) जो (मदे) आनन्द के लिये उत्तमता से होता है उसको जो (ऐरयत्) कंपाता कार्य में लाता है उसको तुम स्वरूप से जानो ॥१॥

भावार्थः--हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने समस्त भूगोलों के धारण करने को सूर्यमण्डल वनाया है उसका सदा ध्यान किया करो ॥१॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स भू॑तु॒ यो ह॑ प्रथ॒माय॒ धाय॑स॒ ओजो॒ मिमा॑नो महि॒मान॒माति॑रत् ।
शूरो॒ यो यु॒त्सु त॒न्वं॑ परि॒व्यत॑ शी॒र्षणि॒ द्यां म॑हि॒ना प्रत्य॑मुञ्चत ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (ह) ही (प्रथमाय) प्रथम (धायसे) धारण के लिये (ओजः) बल को (मिमानः) निर्माण करता बनाता हुआ (महिमानम्) अपने प्रभाव को (आतिरत्) सम्यक् पार पहुंचाता (सः) वह जगदीश्वर हम लोगों के लिये सुख देने वाला (भूतु) हो (यः) जो (शूरः) निर्भय मनुष्य (युत्सु) संग्रामों में (तन्वम्) शरीर को छोड़ता है उस को (परिव्यत) सब ओर से व्याप्त होओ अर्थात् प्राप्त होओ जो जगदीश्वर (महिना) अपने महत्त्व से (शीर्षणि) शिर पर (द्याम्) प्रकाश को (प्रति अमुञ्चत) छोड़ता है उस को सब ओर से व्याप्त होओ अर्थात् उस में रमो ॥२॥

भावार्थः-- जो जगदीश्वर धारण करने वालों का धारणकर्त्ता बलवानों का बलवान् बड़ों का बड़ा और पूज्यों का पूज्य है उसकी सब उपासना करें ॥२॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अधाकृणोः प्रथमं वीर्य्यं महद्यदस्याग्रे ब्रह्मणा शुष्ममैरयः ।
रथेष्ठेन हर्य्यश्वेन विच्युताः प्र जीरयः सिस्रते सध्र्यक् पृथक् ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! यदि आप (अस्य) इस जगत् के (अग्रे) प्रथम में (महत्) बहुत (वीर्य्यम्) पराक्रम (अकृणोः) करो कि (यत्) जिस से (ब्रह्मणा) अन्न के योग से (शुष्मम्) बल को (ऐरयः) प्रेरित करो यदि विद्वान् जन (हर्यश्वेन) हर्यश्वरथ अर्थात् हरणशील शीघ्रगामी अश्व जिस में उस (रथेष्ठेन) रथ में स्थित जन के साथ (विच्युताः) विशेषता से चलायमान (प्र, जीरयः) उत्तमता से अवस्था के हरण करने वाले होते हुए और (सध्र्यक्) जो समान स्थान को प्राप्त होता वह मनुष्य (पृथक्) अलग अलग (सिस्रते) प्राप्त होते हैं (अध) इस के अनन्तर वह, वे पूर्वोक्त जन शत्रुओं से पराजय को नहीं प्राप्त होते ॥३॥

भावार्थः—जो इस संसार में सब के बल पराक्रम को बढ़ाने वाले साधनोपसाधनयुक्त अलग अलग वा मिल कर प्रयत्न करते हैं वे अन्नादि ऐश्वर्ययुक्त होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अधा यो विश्वा भुवनाभि मज्मनेशानकृत्प्रवया अभ्यवर्द्धत ।
आद्रोदसी ज्योतिषा वह्निरातनोत्सीव्यन्तमांसि दुधिता समव्ययत् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (ईशानकृत्) ईश्वरता का शील रखने वाले पुरुषों को करता वा (प्रवयाः) उत्कर्षता से व्याप्त होता और (मज्मना) बल से (विश्वा) समस्त (भुवना) लोकों के (अभि, अवर्द्धत) अभिमुख वृद्धि को प्राप्त होता और जैसे (वह्निः) सब को एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुंचाने वाला अग्नि (ज्योतिषा) अपनी लपट से (तमांसि) रात्रिरूपी अन्धकारों को निवृत्त करता वैसे (रोदसी) आकाश और पृथिवियों को (आतनोत्) विस्तार तथा (अभिसीव्यन्) सब ओर से उन लोकों को रचता हुआ (दुधिता) जो पदार्थ दूसरे देश में होते वा सुख करने वाले होते हैं उन को (अव्ययत्) सब ओर से आच्छादित करता है (सः) वह (अध) उक्त विषयों के अनन्तर सब को पूजनीय है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस जगदीश्वर ने प्रकाश के लिये सूर्य, भोजनों के लिये ओषधी, पीने के लिये जल रसों को, निवास के लिये भूमि और कर्म करने के लिये शरीर आदि बनाये हैं वह पिता के तुल्य सब को सत्कार करने योग्य है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स प्राचीनान्पर्वताँ दृंहदोजसाधराचीनमकृणोदपामपः ।
अधारयत्पृथिवीं विश्वधायसमस्तभ्नान्मायया द्यामवस्रसः ॥५॥

पदार्थः—(सः) वह परमेश्वर जैसे (प्राचीनान्) प्राचीन अर्थात् पहिले से वर्त्तमान (पर्वतान्) पर्वतों के समान मेघों को (ओजसा) बल के साथ (दृंहत्) धारण करता (अधराचीनम्) और जो नीचे को प्राप्त होता उस को बना कर (अपाम्) अन्तरिक्ष के (अपः) जलों को (अकृणोत्) सिद्ध करता है (विश्वधायसम्) विश्व के धारण करने को समर्थ (पृथिवीम्) पृथिवी को (अधारयत्) धारण करता जो (मायया) प्रज्ञा से (द्याम्) प्रकाश को (अस्तभ्नात्) रोकता वा (अवस्रसः) विस्तारता है वैसे समस्त विश्व को धारण करता है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य अपने निकट के लोकों को धारण करता वैसे परमेश्वर सूर्यादि समस्त जगत् को धारण करता है ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सास्मा अरं बाहुभ्यां यं पिताकृणोद्विश्वस्मादा जनुषो वेदसस्परि ।
येना पृथिव्यां नि क्रिविं शयध्यै वज्रेण हत्व्यवृणक्तुविष्वणिः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (पिता) सब की पालना करने वाला ईश्वर (विश्वस्मात्) सब (जनुषः) प्रसिद्ध (वेदसः) धन वा विज्ञान वा (बाहुभ्याम्) भुजाओं से (यम्) जिस को (अरम्) पूर्ण (अकृणोत्) करता है (सः) वह तू जैसे (तुविष्वणिः) बहुत परमाणुओं का जो कि इकट्ठे होकर एक पदार्थ हो रहे हैं उन का अच्छे प्रकार विभाग करने वाला सूर्य (येन) जिस (वज्रेण) वज्र से (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (शयध्यै) सोने के लिये अर्थात् गिरने के लिये (क्रिविम्) कूप के समान (हत्वी) छिन्न भिन्न कर अर्थात् खोद के कूप जल को जैसे निकालें वैसे मेघ को (पर्य्यवृणक्) सब ओर से छिन्न भिन्न करता और संसार की पालना करता है वैसे (अस्मै) इस बालक आदि के लिये सुख (आ) अच्छे प्रकार सिद्ध करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य मेघ को छिन्न भिन्न कर जल को उत्पन्न कर सब का सुख सिद्ध करता है वैसे अध्यापक वा पिता समस्त सुन्दर शिक्षाओं से सन्तानों को सुभूषित कर निरन्तर सुखी करे ॥६॥

अब विदुषी के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अमाजूरिव पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वामिये भगम्।
कृधि प्रकेतमुप मास्याभर दद्धि भागं तन्वोः येन मामहः॥७॥

पदार्थः—हे कन्ये! (सती) वर्त्तमान तूं (सचा) सम्बन्ध से (अमाजूरिव) जो घर में बुड्ढा होता उस के समान (पित्रोः) माता पिता के (समानात्) समान भाव से (सदसः) जिस में पहुंचते हैं उस स्थान से जिस (त्वा) तुझे मैं (इये) प्राप्त होऊं वह तूं (प्रकेतम्) उत्कर्ष विज्ञान को और (भागम्) ऐश्वर्य को (कृधि) सिद्ध कर तथा (मासि) प्रति महीने में (उपाभर) उत्तम प्राप्त हुए आभूषणों को पहिना कर (भागम्) सेवन करने योग्य पदार्थ (दद्धि) मांगो (येन) जिस से (मामहः) सत्कार करने योग्य पुत्रादिकों को वा प्रशंसा करने योग्य पदार्थों को प्राप्त हो उस व्यवहार से (तन्वः) शरीर के भाग को मांगो॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो कन्या विद्या को पढ़ कर गृहाश्रम को प्राप्त हों वे सत्कार करने योग्यों को सत्कार कर और तिरस्कार करने योग्यों का तिरस्कार कर पुरुषार्थ से ऐश्वर्य को बढ़ावें॥७॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

भोजं त्वामिन्द्र वयं हुवेम दद्दिष्ट्वमिन्द्रापांसि वाजान्।
अविड्ढीन्द्र चित्रया न ऊती कृधि वृषन्निन्द्र वस्यसो नः॥८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वान्! जिन (भोजम्) भोगने वाले (त्वाम्) आप को (वयम्) हम लोग (हुवेम) स्वीकार करें सो आप हम लोगों को स्वीकार कीजिये। हे (इन्द्र) दुःख विदीर्ण करने वाले विद्वान् (ददिः) दानशील (त्वम्) आप (अपांसि) कर्मों को (वाजान्) बोधों को (अविड्ढि) सुरक्षित करो। हे (इन्द्र) शत्रु विनाशने वाले विद्वान्! आप (चित्रया) चित्र विचित्र अनेक विध (ऊती) रक्षा से युक्त (नः) हम लोगों को (कृधि) करो। हे (वृषन्) सींचने वाले (इन्द्र) सुख देने वाले विद्वान्! आप (नः) हम लोगों को (वस्यसः) अत्यन्त धनवान् करो॥८॥

भावार्थः—जैसे मित्र मित्रों की स्तुति करते हैं वैसे पढ़ने वाले पढ़ाने वालों की प्रशंसा करें ऐसे एक दूसरे की रक्षा से ऐश्वर्य की उन्नति करें॥८॥

फिर विदुषी के गुणों को कहते हैं ॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) देने वाले राजन् ! (ते) आप के राज्य में जो (दक्षिणा) प्राण देने वाली (मघोनी) बहुत धन से युक्त विदुषी (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये (प्रतिवरम्) श्रेष्ठ काम को (दुहीयत्) पूर्ण करे (सा) वह (नूनम्) निश्चय से कल्याण करने वाली हो हे विदुषि ! तू कन्याओं को (शिक्ष) शिक्षा दे (नः) हम लोगों के लिये (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वाले विज्ञानों से (मा, अति, धक्) मत किसी काम का विनाश कर जिस से (सुवीराः) सुन्दर विद्या में व्याप्त होने वाले वीरों से युक्त हम लोग (विदथे) विद्यादानरूपी यज्ञ में (बृहत्) बहुत (भगः) ऐश्वर्य को (वदेम) कहें ॥९॥

भावार्थः--हे विद्वानो ! जो धर्मात्मा विदुषी वा पण्डितानी स्त्रियां हों उन से सब कन्याओं को सुन्दर शिक्षा दिलाओ जिस से कार्य विनाश न हो ॥९॥

इस सूक्त में विद्वान् और विदुषियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह सत्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ पङ्क्तिः । ४ । ८ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ । ६ स्वराट् पङ्क्तिः । ७ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ३ । ९ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले अठारहवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में यान विषय को कहते हैं ॥

प्राता रथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकशः सप्तरश्मिः ।
दशारित्रो मनुष्यः स्वर्षाः स इष्टिभिर्मतिभी रंह्यो भूत् ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! शिल्पियों से जो (दशारित्रः) दश अरित्रों वाला अर्थात् जिस में दश रुकावट के साधन हैं (सस्निः) और जिस में सोते हैं (चतुर्युगः) जो चार स्थानों में जोड़ा जाता (त्रिकशः) तीन प्रकार के गमन वा गमनसाधन जिस में विद्यमान (सप्तरश्मिः) जिस की सात प्रकार की किरणें (नवः) ऐसा नवीन

(रथः) रथ और (स्वर्षाः) जिस से सुख उत्पन्न हो ऐसा और (मनुष्यः) विचारशील मनुष्य (प्रातः) प्रभात समय में (योजि) युक्त किया जाता (सः) वह (इष्टिभिः) सङ्गत हुई और प्राप्त हुई (मतिभिः) प्रज्ञाओं से (रंह्यः) चलानेयोग्य (भूत्) होता है ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य ऐसे यान से जाने आने को चाहें वे निर्विघ्न गति वाले हों ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सास्मा अरं प्रथमं स द्वितीयमुतो तृतीयं मनुषः स होता ।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊं जनन्त सो अन्येभिः सचते जेन्यो वृषा ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (सः) वह रथयान गमनसाधन (अस्मै) इस स्वामी के लिये कि जो बनाने वाला है (प्रथमम्) पहिले अर्थात् पृथिवी में गमन (सः) वह (द्वितीयम्) दूसरे जल में गमन (उतो) और (तृतीयम्) तीसरे अन्तरिक्ष में गमन को सम्बद्ध करता मिलाता है तथा (सः) वह (मनुषः) मनुष्यों से उत्पन्न हुए सर्व पदार्थ का (होता) सुख देने वाला (सः) वह (जेन्यः) विजय कराने वाला और (वृषा) अत्यन्त बलयुक्त होता हुआ (अन्यस्याः) दूसरी गति का (गर्भम्) ग्रहण (अरम्) पूर्ण (सचते) सम्बद्ध करता है (ऊं) उसी को (अन्येभिः) और विद्वानों के साथ (अन्ये) और विद्वान् (जनन्त) उत्पन्न करें ॥२॥

भावार्थः—विद्वान् जन और बिजुली रूप अग्नि को रथों में अच्छे प्रकार युक्त करें तो यह समस्त यानों को सब गतियां चलाता और विजय का हेतु होता है ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हरी नु कं रथ इन्द्रस्य योजमायै सूक्तेन वचसा नवेन ।
मो षु त्वामत्र बहवो हि विप्रा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! जो (इन्द्रस्य) बिजुली रूप अग्नि सम्बन्धी (रथे) यान में (हरी) धारण आकर्षण और वेग आदि गुणों वाले वायु और अग्नि (नु) शीघ्र (कम्) सुख को सिद्ध करते हैं वा जिन को मैं (अत्र) इसमें (सूक्तेन) सुन्दर प्रतिपादन किये (वचसा) भाषण से (नवेन) नवीन प्रबन्ध से (आयै) गमन करने को (योजम्) युक्त करता हूं इस रथ में (बहवः) बहुत (विप्राः) मेधावी जन (त्वाम्) आपको (हि) ही (सु, नि, रीरमन्) अच्छे प्रकार रमा रहे हैं (अन्ये) और (यजमानासः) सम्यग्

ज्ञाता भी अर्थात् उन मेधावियों से दूसरे विज्ञानवान् जन भी इस उक्त रथ में विपरीत हैं वे (मो) नहीं रमाते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो विजुली-रथ को नहीं सिद्ध करते हैं वे सर्वत्र आप न रम सकते हैं और न दूसरों को रमा सकते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ द्वाभ्यां हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिरा षड्भिर्हूयमानः ।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमयं सुतः सुमख मा मृधस्कः ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त ! (हूयमानः) बुलाये हुए आप (द्वाभ्याम्) दो (हरिभ्याम्) हरणशील पदार्थों के साथ यान से (आ, याहि) आइये (चतुर्भिः) चार हरणशील पदार्थों से युक्त यान से आओ छः पदार्थों से युक्त यान से आओ (अष्टाभिः) आठ वा (दशभिः) दश पदार्थों से युक्त यान से आओ जो (अयम्) यह (सुतः) उत्पन्न किया हुआ पदार्थों का पीने योग्य रस है उस (सोमपेयम्) पदार्थों के रस के पीने के लिए आओ । हे (सुमख) सुन्दर यज्ञों वाले ! आप सज्जनों के साथ (मृधः) अभीष्ट संग्रामों को (मा, कः) मत करो ॥४॥

भावार्थः—जो अनेक अग्नि आदि पदार्थों से उत्पन्न किये हुए यन्त्रों से चलाये हुए यानों में स्थित होकर जाते आते हैं वे स्तुति के साथ प्रकट होते हैं। जो धार्मिकों के साथ विरोध नहीं करते वे विजयी होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ विंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजानः ।
आ पञ्चाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तत्या सोमपेयम् ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्रः) असंख्य ऐश्वर्य देने वाले ! (युजानः) युक्त होते हुए आप (विंशत्या) वीस (त्रिंशता) और तीस (हरिभिः) हरने वाले पदार्थों से चलाये हुए यान से (अर्वाङ्) जो नीचे को जाता उस (सोमपेयम्) सोमादि ओषधियों में पीने योग्य रस को (आ, याहि) प्राप्त होओ आओ (चत्वारिंशता) चालीस पदार्थों से युक्त रथ से (आ) आओ (पञ्चाशता) पचास हरणशील पदार्थों से युक्त (सुरथेभिः) सुन्दर रथों से (आ) आओ (षष्ठ्या) साठ वा (सप्तत्या) सत्तर हरणशील पदार्थों से युक्त सुन्दर रथों से आओ ॥५॥

भावार्थः—जैसे बीस तीस चालीस साठ सत्तर बलवान् घोड़े एक साथ

जोड़ कर यान को शीघ्र चलाते हैं उससे अधिक वेग से अग्नि आदि पदार्थ यान को ले जाते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः ।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुःख विदीर्ण करनेवाले! (ते) आप के (त्वाया) आपकी कामना से जो (अयम्) यह (शुनहोत्रेषु) सुख देने वाले कलाघरों में (परिषिक्तः) सब ओर से उत्तम पदार्थों से सींचा हुआ है (हि) उसी को आप (अर्वाङ्) नीचे जाते हुए (अशीत्या) अस्सी (नवत्या) नब्बे (हरिभिः) हरणशील पदार्थों से युक्त यान से (उह्यमानः) चलाये जाते हुए (आ) आओ (शतेन) सौ पदार्थों से युक्त रथ से (मदाय) आनन्द के लिये (आ, याहि) आओ ॥६॥

भावार्थः—जो ओषधियों के सेवन और सुन्दर पथ्य से नीरोगता से आनन्दित होते हुए सौ प्रकार के यानों और यन्त्रों को बनाते हैं वे नीचे ऊपर जा सकते हैं ॥६॥

अब पदार्थों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मम ब्रह्मेन्द्र याह्यच्छा विश्वा हरी धुरि धिष्वा रथस्य ।
पुरुत्रा हि विहव्यो बभूथास्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) धन की इच्छा करने वाले ! आप (मम) मेरे (ब्रह्म) धन को (याहि) प्राप्त होओ जो (रथस्य) यानसमूह के (धुरि) धारण करने वाले अङ्ग में [अर्थात् धुरि में] (हरी) धारण और आकर्षण खींचने का गुण जिनमें है उन दोनों से यान रथादि को (धिष्व) धारण करो उससे (पुरुत्रा) बहुत (विश्वा) समस्त धनों को (अच्छ, याहि) उत्तम गति से आओ । हे (शूर) निर्भय (अस्मिन्) इस (सवने) ऐश्वर्य के निमित्त (विहव्यः) विविध प्रकार ग्रहण करने योग्य आप (बभूथ) होओ हम लोगों को (हि) ही (मादयस्व) आनन्दित कीजिये ॥७॥

भावार्थः—सब सज्जनों को सब के प्रति ऐसा कहना चाहिये कि जो हमारे पदार्थ हैं वे आप के सुख के लिये हों जैसे तुम लोग हम लोगों को आनन्दित करो वैसे हम लोग तुमको आनन्दित करें ॥७॥

अब ईश्वर और विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**न म इन्द्रेण सख्यं वि योषदस्मभ्यमस्य दक्षिणा दुहीत ।**
**उप ज्येष्ठे वरूथे गभस्तौ प्रायेप्राये जिगीवांसः स्याम ॥८॥**

पदार्थः—जिस (अस्य) इस (दक्षिणा) विद्या और सुन्दर शिक्षा का दान (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (ज्येष्ठे) प्रशंसा योग्य (वरूथे) अतीव उत्तम (गभस्तौ) विज्ञान प्रकाश में (प्रायेप्राये) और मनोहर मनोहर परमेश्वर वा आप्त विद्वान् में (उप, दुहीत) परिपूर्ण होती हो उस (इन्द्रेण) उक्त परमेश्वर वा आप्त विद्वान् से मेरी (सख्यम्) मित्रता जैसे (न, वियोषत्) न विनष्ट हो वैसे हो, जिस से हम लोग (जिगीवांसः) विजयशील (स्याम) हों ॥८॥

भावार्थः—जो सत्य प्रेम से जगदीश्वर वा आप्त विद्वानों को प्राप्त होने और सेवन करने की कामना करते हैं और उसके विरोध की इच्छा नहीं चाहते हैं वे विद्वान् होकर ज्येष्ठ होते हैं अर्थात् अति प्रशंसित होते हैं ॥८॥

अब ईश्वर और उपदेशकों के गुणों को कहते हैं ॥

**नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।**
**शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥**

पदार्थः—हे (इन्द्र) जगदीश्वर वा सत्योपदेशक ! (ते) आप की (सा) वह धारणा (जरित्रे) स्तुति प्रशंसा करने वाले के लिये और (दक्षिणा) विद्या सुशिक्षा रूपी दक्षिणा (मघोनी) जो कि बहुत ऐश्वर्ययुक्त है वह (स्तोतृभ्यः) अध्यापकों के लिये (प्रति, दुहीयत्) प्रत्येक विषय को परिपूर्ण करती है आप हम लोगों को (नूनम्) निश्चय से (शिक्ष) शिक्षा देओ हम लोगों के लिये (भगः) ऐश्वर्य को (माति, धक्) मत नष्ट करो जिस से (सुवीराः) श्रेष्ठ वीरों वाले हम लोग (विदथे) विद्या-प्रचार में (बृहत्) बहुत कुछ (वदेम) कहें ॥९॥

भावार्थः—जो ईश्वर और आप्त विद्वानों की शिक्षा मनुष्यों को प्राप्त होती है वह शोकरूपी समुद्र से अलग करती है और बहुत ऐश्वर्य का भी अभिमान नहीं कराती है ॥९॥

यहां यान, पदार्थ, ईश्वर, विद्वान् वा उपदेशकों के बोध का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अठारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ६ । ८ विराट् त्रिष्टुप् । ९ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ पङ्क्तिः । ४ । ७ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले उन्नीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय का वर्णन करते हैं ॥

अपा॑य्यस्यान्ध॑सो मदा॑य मनी॑षिणः सुवा॒नस्य॒ प्रय॑सः ।
यस्मि॒न्निन्द्रः॑ प्र॒दिवि॑ वावृधा॒न ओको॑ द॒धे ब्र॑ह्म॒ण्यन्त॑श्च॒ नरः॑ ॥१॥

पदार्थः -- हे (मनीषिणः) मनीषी ! मन जीते हुए (ब्रह्मण्यन्तः) बहुत धन की कामना करने वाले (नरः, च) और नायक अग्रगन्ता मनुष्यो ! (यस्मिन्) जिस (प्रदिवि) प्रकृष्ट प्रकाश में (वावृधानः) बढ़ा हुआ (इन्द्रः) सूर्य (ओकः) स्थान को (दधे) धारण करता है उसमें (सुवानस्य) उत्पद्यमान (प्रयसः) मनोहर (अस्य) इस (अन्धसः) अन्न को (मदाय) आनन्द के लिये तुम लोगों ने (अपायि) पान किया उस सब को हम लोग भी ग्रहण करें ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् जन जिसमें बढ़े हुए विद्या को धारण करते हैं उसमें हम लोग भी बैठें इस विज्ञान को स्वीकार करें ॥१॥

अब सूर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒स्य म॑न्दा॒नो मध्वो॒ वज्र॑हस्तो॒ऽहि॒मिन्द्रो॑ अर्णो॒वृतं॒ वि वृ॑श्चत् ।
प्र यद्वयो॒ न स्वस॑रा॒ण्यच्छा॒ प्रयां॑सि च न॒दीनां॒ चक्र॑मन्त ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जिस से (वयः) पखेरुओं के (न) समान (स्वसराणि) दिनों को (नदीनाम् प्रयांसि, च) और नदियों के मनोहर स्रोतों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (प्रचक्रमन्त) रमते हैं जो (वज्रहस्तः) किरण रूपी हाथों वाला (अस्य) इस (मध्वः) विशेष कर जानने योग्य जगत् के बीच (मन्दानः) प्राप्त हुआ (इन्द्रः) सूर्य (अर्णोवृतम्) जिसमें जल विद्यमान हैं उस (अहिम्) मेघ को (वि, वृश्चत्) विभिन्न करता है उसको यथावत् जानो ॥२॥

भावार्थः—जैसे पक्षी जाते आते हैं वैसे रात्रि दिन वर्त्तमान हैं जैसे सूर्य इस जगत् का आनन्द देने वाला है वैसे सज्जनों को वर्त्तना चाहिये ॥२॥

फिर सूर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स मा॑हि॒न इन्द्रो॒ अर्णो॑ अ॒पां प्रैर॑यदहि॒हाच्छा॑ समु॒द्रम् ।
अज॑नय॒त्सूर्यं॑ वि॒दद्गा अ॒क्तुनाह्नां॑ व॒युना॑नि साधत् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (सः) वह (माहिनः) बड़ा (अहिहा) मेघ का हनने वाला (इन्द्रः) विजुली रूप अग्नि (अपाम्) अन्तरिक्ष के बीच (अर्णः) जल को (अच्छ) (प्रैरयत्) यथाक्रम से प्रेरणा देता है (समुद्रम्) समुद्र को और (सूर्यम्) सूर्यमण्डल को (अजनयत्) उत्पन्न करता है (अक्तुना) रात्रि के साथ (अह्नाम्) दिनों के सम्बन्ध करने वाली (गाः) पृथिवियों को (विदत्) प्राप्त होता और (वयुनानि) उत्तम ज्ञानों को (साधत्) सिद्ध करता वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य विजुली के समान वेग और आकर्षणयुक्त शत्रुओं के हनने और विद्यादि शुभ गुणों को प्रचार करने वाले हैं अन्याय और अन्धकार का विनाश करने वाले संसार का सुख सिद्ध करते हैं वे सर्वत्र पूज्य होते हैं ॥३॥

अब दाता के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सो अ॑प्रतीनि॒ मन॑वे पु॒रूणीन्द्रो॑ दा॒शद्दा॒शुषे॒ हन्ति॑ वृ॒त्रम् ।
स॒द्यो यो नृभ्यो॑ अत॒साय्यो॒ भूत्प॑स्पृधा॒नेभ्यः॒ सूर्य॑स्य सा॒तौ ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो (इन्द्रः) सूर्य के समान देने वाला जन जैसे सूर्य (वृत्रम्) मेघ को (हन्ति) हनता है वैसे शत्रुओं को मारता हुआ (दाशुषे) दूसरे देने वाले (मनवे) विचारशील मनुष्य के लिये (अप्रतीनि) जिनकी प्रतीति नहीं है उन (पुरूणि) बहुत से धनों को (दाशत्) देवे वा (सूर्यस्य) सूर्य की (सातौ) साति में अर्थात् सूर्य-मण्डलकृत विभाग में (अतसाय्यः) परोपकार में निरन्तर वर्त्तमान होता हुआ (पस्पृधानेभ्यः) स्पर्द्धा वा ईप्सा करने वाले (नृभ्यः) मनुष्यों के लिये (सद्यः) शीघ्र आनन्द देने वाला (भूत्) होता है (सः) वह सब स्थानों से सत्कार पाता है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अपरिमित धन को इकट्ठा करते और जगत् के उपकारी सुपात्रों के लिये देते हैं वे निरन्तर ईर्ष्या वा ईप्सा करने योग्य नहीं हैं ॥४॥

अब बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स सु॑न्व॒त इन्द्रः॒ सूर्य॒मा दे॒वो रि॑ण॒ङ्मर्त्या॑य स्त॒वान् ।
आ यद्र॒यिं गु॒हद॑वद्यमस्मै॒ भर॒दंशं॒ नैत॑शो दश॒स्यन् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (देवः) देदीप्यमान (इन्द्रः) बिजुली (सुन्वते) पदार्थों का सार निकालने वाले मनुष्य के लिये (सूर्य्यम्) सवितृमण्डल को

और (मर्त्याय) साधारण मनुष्य के लिये (स्तवान्) स्तुतियों को (न, आ, रिणक्) नहीं छोड़ती और (गुहदवद्यम्) ढंपे हुए निन्द्य (रयिम्) धन को (अस्मै) इस मनुष्य के लिये (आ, भरत्) आभूषित कराती और (अंशम्) प्राप्त भाग को (दशस्यन्) नष्ट करती हुई (एतशः) प्राप्त नहीं होती (सः) वह विजुली आप लोगों को उपयोग में लानी योग्य है ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य किसी की उन्नति के नाश की नहीं इच्छा करते किन्तु सबके ऐश्वर्य को बढ़वाते हैं वे सूर्य के समान उपकार करने वाले होते हैं ॥५॥

अब सूर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**स रन्धयत्सदिवः सारथये शुष्णमशुषं कुयवं कुत्साय ।**
**दिवोदासाय नवतिञ्च नवेन्द्रः पुरो व्यैरच्छम्बरस्य ॥६॥**

पदार्थः—जो मनुष्यों को (इन्द्रः) सूर्य (कुत्साय) निन्दित (सारथये) अच्छे सीखे हुए या चलाने वाले के लिये (अशुषम्) गीले (शुष्णम्) वल (कुयवम्) कुत्सित सङ्गम और (सदिवः) प्रकाश के सहित वर्त्तमान अर्थात् अन्तरिक्षस्थ पदार्थों को (रन्धयत्) अच्छे प्रकार सिद्ध करता है (दिवोदासाय) प्रकाश देने वाले के लिये (नव, नवतिम्, च) निन्यानवे (शम्बरस्य) मेघ के (पुरः) पुरों को (व्यैरत्) प्रेरित करता है (सः) वह उपयोग में लाना योग्य है ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य दुष्ट वल को और कुशिक्षा को निवार के बल और उत्तम शिक्षाओं से कुसंस्कारों को निवार के सैकड़ों वोधों को उत्पन्न करते हैं वे सर्वदा पूज्य होते हैं ॥६॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**एवा त इन्द्रोचथमहेम श्रवस्या न त्मना वाजयन्तः ।**
**अश्याम तत्साप्तमाशुषाणा ननमो वधरदेवस्य पीयोः ॥७॥**

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्वान्! (ते) आपके (त्मना) आत्मा से (वाजयन्तः) ज्ञान कराते हुए हम लोग (श्रवस्या) श्रवण करने योग्य पदार्थ के (न) समान (उचथम्) और कहने योग्य प्रस्ताव (एव) ही को (अहेम) व्याप्त हों तथा (आशुषाणाः) शीघ्रता करते हुए हम लोग (तत्) उस (साप्तम्) सात प्रकार के विषय को (अश्याम) व्याप्त हों (अदेवस्य) अविद्वान् (पीयोः) पालना करने वाले सूर्य को (वधः) वध करने वाले शस्त्र को व्याप्त हों और परमेश्वर को (ननमः) नमस्कार करें ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य कहने योग्य को कहें, पाने योग्य को पावें, नमने योग्य को नमें, मारने योग्य को मारें और जानने योग्य को जानें वे ही आप्त होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एवा ते गृत्समदाः शूर मन्मावस्यवो न वयुनानि तक्षुः ।
ब्रह्मण्यन्त इन्द्र ते नवीय इषमूर्जं सुक्षितिं सुम्नमश्युः ॥८॥

पदार्थः—हे (शूर) शूर (इन्द्र) विद्वान् ! जो (गृत्समदाः) अभीष्ट आनन्द वाले (ब्रह्मण्यन्तः) धन की कामना करते हुए जन (ते) आपके (मन्म) मन्तव्य को और (अवस्यवः) अपने को रक्षा चाहते हुए के (न) समान (वयुनानि) उत्तम ज्ञानों को (तक्षुः) विस्तारें वे (एव) ही (ते) आपके (नवीयः) नवीन (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) पराक्रम को तथा (सुक्षितिम्) सुन्दर भूमि को और (सुम्नम्) सुख को (अश्युः) प्राप्त हों ॥८॥

भावार्थः—जो विद्वानों की उत्तम शिक्षा से विज्ञानवान् हों वे अनेकविध सुख को प्राप्त हों ॥८॥

अब दक्षिणा के गुणों को कहते हैं ॥

नूनं सा ते प्रति वरं जरित्रे दुहीयदिन्द्र दक्षिणा मघोनी ।
शिक्षा स्तोतृभ्यो माति धग्भगो नो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्वान् ! आप (नः) हमारे लिये (भगः) प्रभाव को (मा, अति, धक्) मत नष्ट करो और जो (ते) आप की (मघोनी) ऐश्वर्यवती (दक्षिणा) दक्षिणा (जरित्रे) दान की स्तुति करने वाले के (वरम्) उत्तम पदार्थ को (दुहीयत्) पूर्ण करे (सा) वह जैसे (नः) हम लोगों के लिये प्राप्त हो वैसे इस को (स्तोतृभ्यः) विद्या की कामना करने वालों के लिये (शिक्ष) सिखाइये जिस से (सुवीराः) उत्तम वीरों वाले हम लोग (नूनम्) निश्चय से (विदथे) संग्राम में (बृहत्) बहुत (वदेम) कहें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जिसकी अक्षय दक्षिणा और शिक्षा है वह श्रेष्ठ और सर्वत्र सत्कार को पावे ॥९॥

इस सूक्त में विद्वान् सूर्य दाता और दक्षिणा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः। इन्द्रो देवता। १।६।८ विराट् त्रिष्टुप्। ९ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २ बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। ३ पङ्क्तिः। ४।५।७ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब नव ऋचा वाले बीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्र शब्द से विद्वान् के गुणों का उपदेश किया है॥

वयन्ते वयं इन्द्र विद्धि षु णः प्र भरामहे वाजयुर्न रथम्।
विपन्यवो दीध्यतो मनीषा सुम्नमियक्षन्तस्त्वावतो नॄन् ॥१॥

पदार्थः—हे (वयः) मनोहर (इन्द्र) विद्वान्! जो (विपन्यवः) विशेष कर स्तुति के व्यवहारों को करने वाले (त्वावतः) आप के सदृश (नॄन्) मनुष्यों का (इयक्षन्तः) सत्कार करते हुए (दीध्यतः) देदीप्यमान (वयम्) हम लोग (मनीषा) बुद्धि से (ते) आप के (रथम्) विमानादि यान को (वाजयुः) वेग की कामना करने वाला (न) जैसे वैसे (सुम्नम्) सुख को (सु, प्र, भरामहे) अच्छे प्रकार पुष्ट करें। उन (नः) हम लोगों को आप (विद्धि) जानें॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सत्कार करने योग्यों को सत्कार करते और सत्य व्यवहार से वर्त्ताव वर्त्तते हैं वे समस्त सुख के धारण करने को योग्य होते हैं॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

त्वं न इन्द्र त्वाभिरूती त्वायतो अभिष्टिपासि जनान्।
त्वमिनो दाशुषो वरूतेत्थाधीरभि यो नक्षति त्वा ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त विद्वान्! (यः) जो (वरूता) स्वीकार करने वाला (इत्थाधीः) इस हेतु से धारणा वाली हुई है बुद्धि जिसकी वह जन (त्वा) आपको (अभि, नक्षति) सम्मुख प्राप्त होता वह (इनः) समर्थ (त्वायतः) आप की कामना करते हुए (दाशुषः) देने वाले (जनान्) जनों को और (नः) हम लोगों को पाले राखे (त्वम्) आप भी रक्षा करें और जिस कारण से (त्वम्) आप (अभिष्टिपा) अभिकांक्षा के पालने वाले (असि) हैं इसी कारण (त्वाभिः) आपकी (ऊती) रक्षाओं के सहित हम लोग सुख को अच्छे प्रकार धारण करते हैं॥२॥

भावार्थः—पिछले मन्त्र से (सुम्नम्) और (प्रभरामहे) इन दोनों पदों की अनुवृत्ति है। जो विद्वानों को प्राप्त हो कर प्राणियों के सुख की कामना करते हैं वे दाता होते हैं॥२॥

अब विद्वान् और ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स नो युवेन्द्रो जोहूत्रः सखा शिवो नरामस्तु पाता।
यः शंसन्तं यः शशमानमूती पचन्तं च स्तुवन्तंश्च प्रणेषत्॥३॥

पदार्थः—(यः) जो (ऊती) रक्षा से (शंसन्तम्) प्रशंसा करते हुए को (यः) जो (शशमानम्) अन्याय को उल्लङ्घन करने वालों को (पचन्तम्) पाक करते हुए को (स्तुवन्तम्, च) और स्तुति करते हुए को (प्रणेषत्) उत्तम न्याय को प्राप्त करावे और आप न्याय को प्राप्त होवे (सः) वह (युवा) सुखों से संयुक्त और दुःखों से वियुक्त करने वाला (जोहूत्रः) निरन्तर दाता (शिवः) मङ्गलकारी (सखा) सब का मित्र (इन्द्रः) और विद्या वा ऐश्वर्य का देने वाला विद्वान् वा ईश्वर (नः) हम लोगों का और (नराम्) सब मनुष्यों का (च) भी (पाता) रक्षक (अस्तु) हो॥३॥

भावार्थः—जो परमेश्वर और आप्त जन सब की रक्षा करने वाले हैं वे सब के मित्र और मङ्गल करने वाले हैं॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तमु स्तुष इन्द्रन्तङ्गृणीषे यस्मिन्पुरा वावृधुः शाशदुश्च।
स वस्वः कामं पीपरदियानो ब्रह्मण्यतो नूतनस्यायोः॥४॥

पदार्थः—जो जन (नूतनस्य) नवीन (आयोः) पाने योग्य (ब्रह्मण्यतः) धन की इच्छा वाले और (वस्वः) धन की (कामम्) कामना को (इयानः) प्राप्त होता हुआ (पीपरत्) उस को पूरी करे वा (यस्मिन्) जिसमें (पुरा) पहिले (वावृधुः) शिष्ट जन बढ़ें और (शाशदुः) दुष्टों को नष्ट करें (तम्) उस परमेश्वर वा विद्वान् की आप (स्तुषे) प्रशंसा करते हो और (तम्, उ) उसी की (गृणीषे) स्तुति करते हो (सः) वह हमारी रक्षा करने वाला हो॥४॥

भावार्थः—जिसके साथ सब बढ़ते और दुःखों को काटते उसके साथ व्यवहार सब करें॥४॥

अब सभेश के गुणों को अगले मन्त्र में कहा है॥

सो अङ्गिरसामुचथा जुजुष्वान् ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन्।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि॥५॥

पदार्थः—जो (अङ्गिरसाम्) प्राणियों के (उचथा) कहने योग्य (ब्रह्मा) धनों को (जुजुष्वान्) सेवन किये हुए (गातुम्) पृथिवी को (इष्णन्) सब ओर से देखता

हुआ (सूर्य्येण) सूर्य्य के साथ (उषसः) प्रभात समयों को (अशनस्य) मेघ की (स्तवान्) स्तुतियों को (शिश्नथत्) नष्ट करता है (चित्) उस के समान (पूर्व्याणि) पूर्वाचार्य्यों ने किईं हुईं (तूतोत्) स्तुतियों को वढ़ावे (सः) वह (इन्द्रः) पुरुषार्थी जन हमारा रक्षक हो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सूर्य के समान वढ़ाने और छिन्न भिन्न करने वाले हो कर राज्य को वढ़ाते हैं वे उचित और अगले सज्जनों की सेवन किई हुई लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स ह श्रुत इन्द्रो नाम देव ऊर्ध्वो भुवन्मनुषे दस्मतमः ।
अव प्रियमर्शसानस्य साह्वाञ्छिरो भरद्दासस्य स्वधावान् ॥६॥

पदार्थः—जो (श्रुतः) प्रख्यात (देवः) देदीप्यमान (दस्मतमः) अतीव दुःखों का नष्ट करने वाला (साह्वान्) सहनशील (इन्द्रः) सूर्य के समान विद्वान् (अर्शसानस्य) प्राप्त हुए (दासस्य) सेवक के (स्वधावान्) समर्थ अन्न वाले के समान (मनुषे) मनुष्य के लिये (नाम) प्रसिद्ध (ऊर्ध्वः) उत्कृष्ट (भुवत्) हो और सूर्य जैसे मेघ के (शिरः) शिर को वैसे (प्रियम्) मनोहर विषय को (अव, भरत्) पूरा करे (स, ह) वही हमारा रक्षक हो ॥६॥

भावार्थः—जो सूर्य [और मेघ] के समान सव का सुख सिद्ध करने वाले विद्वान् हैं उन की प्रशंसा क्यों न हो ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स वृत्रहेन्द्रः कृष्णयोनीः पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शंसं यजमानस्य तूतोत् ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! (सः) सो आप जैसे (पुरन्दरः) पुर का विदीर्ण करने वाला (वृत्रहा) मेघहन्ता (इन्द्रः) सूर्य (कृष्णयोनीः) खींचने वाली जिनकी योनी उन (दासीः) सुख देने वाली घटाओं को (व्यैरयत्) विशेषता से प्रेरणा दे (मनवे) मनुष्य के लिये (क्षाम्) भूमि को (अपः, च) और जलों को (अजनयत्) उत्पन्न करे (यजमानस्य) देने वाले के (सत्रा) सत्य में (शंसम्) स्तुति को (तूतोत्) वढ़ावे वैसे वर्त्तो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के समान सुख वर्षाने वा न्याय के प्रकाश करने और सव प्रशंसकों के प्रशंसा करने वाले हैं वे यहां क्यों न वढ़ें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तस्मै॑ तव॒स्य१॒॑मनु॑ दायि स॒त्रेन्द्रा॑य दे॒वेभि॒रर्ण॑सातौ ।

प्रति॒ यद॑स्य॒ वज्रं॑ बा॒ह्वोर्धुर्ह॒त्वी दस्यू॒न्पुर॒ आय॑सी॒र्नि तारी॑त् ॥८॥

पदार्थः—(यत्) जो (बाह्वोः) भुजाओं के (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्र को धारण (दस्यून्) और भयङ्कर चोरों को (हत्वी) हनन कर (आयसीः) सुवर्ण और लोह के काम की (पुरः) नगरियों को (नि, तारीत्) उल्लङ्घता है वह और जिससे (अस्य) इस मेघ के (अर्णसातौ) जल की प्राप्ति के निमित्त (तवस्यम्) बल में उत्पन्न हुआ पदार्थ (अनुदायि) दिया जाय (तस्मै) उस प्रस्तुति प्रशंसा करने और (इन्द्राय) बहुत ऐश्वर्य के देने वाले के लिये जो (सत्रा) सत्यता से [(प्रति)] (धुः) प्रतीति में धारण करें वे सब (देवेभिः) विद्वानों के साथ सुख पाते हैं ॥८॥

भावार्थः—जो परिधियों के सहित नगरियों को बनाय और भयङ्कर चोर आदि को निवारण कर विद्वानों के साथ राज्य की पालना करते हैं वे सत्य सुख को प्राप्त होते हैं ॥८॥

अब देने वालों के गुणों को कहते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नू॒नं सा ते॒ प्रति॒ वरं॑ जरि॒त्रे दु॑ही॒यदि॑न्द्र॒ दक्षि॑णा म॒घोनी॑ ।

शिक्षा॑ स्तो॒तृभ्यो॒ माति॑ ध॒ग्भगो॑ नो बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) देने वाले ! (ते) आपकी (सा) वह (मघोनी) बहुत धनादि पदार्थों से युक्त (दक्षिणा) देनी (प्रतिवरम्) अत्युत्तम सुख (जरित्रे) प्रशंसा करने वाले के लिये (स्तोतृभ्यः) और स्तुति करने वालों के लिये (नूनम्) निश्चय कर (दुहीयत्) पूरा करे और (नः) हम लोगों को (मातिधक्) मत नष्ट करे और आप हम लोगों को (शिक्षा) विद्या ग्रहण कराइये तथा जिससे (भगः) ऐश्वर्य बढ़ता है उससे (सुवीराः) सकल विद्याव्यापी हम लोग (विदथे) पदार्थविज्ञान में (बृहत्) बहुत (वदेम) कहें ॥९॥

भावार्थः—जो निरन्तर देने और [न] लेने वाले सर्वदा सत्य की शिक्षा देते और किसी के हृदय को वृथा नहीं सन्तापते हैं वे बड़े होते हैं ॥९॥

इस सूक्त में इन्द्र विद्वान् ईश्वर और सभापति आदि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ स्वराट् त्रिष्टुप् । ३ । ६ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ विराट् जगती । ५ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले इक्कीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

विश्वजितें धनजितें स्वर्जितें सत्राजितें नृजितं उर्वराजितें ।
अश्वजितें गोजितें अब्जितें भरेन्द्राय सोमं यजताय हर्य्यतम् ॥१॥

पदार्थः—हे प्रजाजन ! आप (विश्वजिते) जो विश्व को जीतता वा (सत्राजिते) जो सत्य से उत्कर्षता को प्राप्त होता वा (स्वर्जिते) जो सुख से जीतता वा (नृजिते) जो मनुष्यों से जीतता वा (अश्वजिते) जो घोड़ों से जीतता वा (गोजिते) जो गौओं को जीतता वा (उर्वराजिते) जो सर्व फल पुष्प शस्यादि पदार्थों की प्राप्ति कराने वाली को जीतता वा (धनजिते) जो धन से जीतता (अप्सुजिते) वा जलों में जीतता उसके लिये (यजताय) सत्सङ्ग करने वाले (इन्द्राय) सभा और सेनापति के लिये (हर्यतम्) मनोहर (सोमम्) ऐश्वर्य को (भर) धारण करो ॥१॥

भावार्थः—राजा प्रजाजनों को यह अच्छे प्रकार उचित है कि जो सर्वदा विजयशील ऐश्वर्य की उन्नति करने वाले जन न्याय से प्रजा में वर्तें उन का सत्कार सर्वदा सब करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अभिभुवेऽभिभङ्गाय वन्वतेऽषाळ्हाय सहमानाय वेधसे ।
तुविग्रये वह्नये दुष्टरीतवे सत्रासाहे नम इन्द्राय वोचत ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम (अभिभुवे) शत्रुओं का तिरस्कार करने (अभिभङ्गाय) दुष्टों का सब ओर से मर्द्दन करने (अषाळ्हाय) शत्रुओं से न सहने (सहमानाय) शत्रुओं का सहनशील रखने (वन्वते) सत्य और असत्य का विभाग करने (तुविग्रये) वृद्धि के निमित्तों का उपदेश देने (वह्नये) राज्य भार को चलाने और जो (दुष्टरीतवे) शत्रुओं से दुःख से तरने वाला उस के लिये (सत्रासाहे) और सत्य के सहने वाले (इन्द्राय) सर्वशुभलक्षणयुक्त (वेधसे) उत्तम ज्ञाता के लिये (नमः) नमस्कार (वोचत) कहो ॥२॥

भावार्थः—जो अन्याय से अलग दुष्टाचारियों को ताड़ना देते हैं श्रेष्ठाचार की सन्धि से सत्पुरुषों का सत्कार करते हैं वे विवेकी हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सत्रासाहो जनभक्षो जनंसहश्च्यवनो युध्मो अनु जोषमुक्षितः ।
वृतञ्चयः सहुरिर्विक्ष्वारित इन्द्रस्य वोचं प्र कृतानि वीर्या ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (सत्रासाहः) जो सत्य को सहता (जनभक्षः) जनों के सेवने योग्य (जनं सहः) जनों को सहने (च्यवनः) दुष्टों को गिराने (युध्मः) दुष्टों से युद्ध करने (वृतञ्चयः) और वर्त्तमान पदार्थ को इकट्ठा करने वाला (सहुरिः) सहनशील (आरितः) प्राप्त (जोषम्) प्रीति को (उक्षितः) सेवता हुआ मैं (विक्षु) प्रजाजनों में (कृतानि) सिद्ध हुए (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् (वीर्या) पराक्रम-युक्त कर्मों को (प्र, वोचम्) अच्छे प्रकार कहूं वैसे तुम (अनु) पीछे कहो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो शम दम और यमादि शुभ कर्मों का आचरण करने वाले जन प्रजा में विद्या बढ़ाते हैं वे जनों के सेवने योग्य होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (उषसः) प्रभात से (स्वर्जनत्) जिन के समान सुख का प्रकाश हो वैसे जो (अनानुदः) नहीं प्रेरित (वृषभः) सर्वोत्तम (गम्भीरः) गम्भीर आशय वाला (ऋष्वः) ज्ञाता (असमष्टकाव्यः) जिस को अच्छे प्रकार कवि-ताई न व्याप्त हुई न जिस के मन को रमी (रध्रचोदः) जो रुकावटी पदार्थों को प्रेरणा देने और (श्नथनः) दुष्टों की हिंसा करने वाला (वीळितः) विविध गुणों से स्तुति किया गया (पृथुः) विस्तृत फलयुक्त (सुयज्ञः) सुन्दर सुन्दर जिस के विद्वानों के सत्कार आदि पदार्थ (इन्द्रः) जो सूर्य के समान अच्छी शोभा वाला विद्वान् है जिस ने (दोधतः) हिंसक का (वधः) नाश किया वह सब को सुख देने के योग्य हो ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने से विविध गुण और कर्मों का आचरण श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों की हिंसा करते हुए सर्वशास्त्रवेत्ता धर्मात्मा हैं वे सूर्य के समान प्रकाश करने वाले हों ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यज्ञेन गातुमप्तुरो विविद्रिरे धियो हिन्वाना उशिजो मनीषिणः ।
अभिस्वरा निषदा गा अवस्यव इन्द्रे हिन्वाना द्रविणान्याशत ॥५॥

पदार्थः—जो (गातुम्) पृथिवी को (अप्तुरः) प्राप्त हुए (अभिस्वरा) सब ओर की वाणियों और (नियदा) नित्य जो सभा में स्थित होते उन से (गाः) पृथिवियों को (अवस्यवः) अपनी रक्षारूप मानने वाले (इन्द्रे) विजुली आदि पदार्थ में (हिन्वानाः) वृद्धि को प्राप्त होते (उषिजः) मनोहर (धियः) बुद्धियों को (हिन्वाना) बढ़ाते हुए (मनीषिणः) मनीषी जन (यज्ञेन) यज्ञ से विद्या और सुन्दर शील को (विविद्रिरे) प्राप्त होते हैं वे (द्रविणानि) धन वा यशों को (आशत) प्राप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थः—कोई भी जन सत्सङ्ग योगाभ्यास विद्या और उत्तम बुद्धि के विना पूर्ण विद्या और धन पाने को योग्य नहीं होता है ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्र श्रेष्ठा॑नि द्रवि॑णानि धेहि चित्तिं दक्ष॑स्य सुभगत्वम॒स्मे ।
पोषं॑ रयीणामरि॑ष्टिं तनूनां स्वाद्मानं वाचः सु॑दिनत्वमह्नाम् ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सभों के अधिपति के समान वर्त्तमान ! (अस्मे) हम लोगों के लिये (दक्षस्य) बल की (चित्तिम्) उस प्रकृति को जिस से कि विद्या को इकट्ठा करते हैं और सुभगत्वम्) अत्युत्तम ऐश्वर्य (पोषम्) पुष्टि तथा (रयीणाम्) धन और (तनूनाम्) शरीरों की (अरिष्टिम्) रक्षा (वाचः) वाणी के बोध (स्वाद्मानम्) स्वादिष्ठ भोग (अह्नाम्) दिनों के (सुदिनत्वम्) सुदिनपन और (श्रेष्ठानि) धर्मज (द्रविणानि) धनों को (धेहि) धारण कीजिये ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वानों को जैसे परमेश्वर ने समस्त वस्तुओं को उत्पन्न कर सब के लिये हित रूप सिद्ध कराई हैं वैसे सब के कल्याण के लिये नित्य प्रयत्न करना चाहिये ॥६॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इक्कीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ अष्टिश्छन्दः। मध्यमः स्वरः। २ निचृदतिशक्वरी। ४ भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ३ स्वराट् शक्वरी छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब चार ऋचा वाले बाईसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में सूर्य्य का विषय कहते हैं ॥

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृप-
त्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथावशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म्म कर्त्तवे महामुरुं
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥१॥

पदार्थः—जो (तुविशुष्मः) बहुत बल वाला (महिषः) बड़ा (तृपत्) तृप्त करता हुआ (त्रिकद्रुकेषु) जिन में तीन आह्वान विद्यमान उन में (यवाशिरम्) यवों के भक्षण करने वाले को और (विष्णुना) व्यापक परमेश्वर वा वायु से (सुतम्) उत्पन्न किये हुए (सोमम्) रस को (यथा) जैसे (अपिबत्) पीता और (अवशत्) कामना करता है (सः) वह (ईम्) जल से (महि) बड़े (कर्म) कर्म के (कर्त्तवे) करने को (ममाद) हर्षित हो । तथा जो (सत्यः) नाशरहित (इन्दुः) चन्द्रमा (देवः) सब ओर से प्रकाशमान (एनम्) इस (महाम्) महात्माओं के (उरुम्) बहुत (सत्यम्) अविनाशी (देवम्) प्रकाशमान (इन्द्रम्) सर्व लोकों के आधाररूप सूर्य लोक को (सश्चत्) संयुक्त करता वह पूज्य होता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य जगदीश्वर ने निर्मित किये लोकों में विद्या और उत्तम यत्न से प्रिय मनोहर भोग कर सकता है वह अविनाशी परमात्मा को जान वा जना सकता है ॥१॥

अब बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध त्विषीमाँ अभ्योजसा क्रिविं युधाभवदा
रोदसी अपृणदस्य मज्मना प्र वावृधे ।
अधत्तान्यं जठरे प्रेमरिच्यत
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥२॥

पदार्थः—जो (त्विषीमान्) बहुत दीप्तियुक्त (ओजसा) बल से बड़ा (अभवत्) होता है (युधा) संप्रहार से (रोदसी) द्यावापृथिवी को (क्रिविम्) कूप के समान (अपृणत्) तृप्त करता है (अध) इस के अनन्तर इस जगदीश्वर के (मज्मना) बल से (प्र, वावृधे) अच्छे प्रकार बढ़ता है (जठरे) अपने भीतर (अन्यम्) और को (अधत्त)

धारण करता और जो (ईम्) जल के साथ (प्रारिच्यत) औरों से अलग है (एनम्) इस (सत्यम्) सत्य (देवम्) सुख देने वाले (इन्द्रम्) विजुलीरूप अग्नि को (अभि, प्रा सश्चत्) जो प्रत्यक्ष सम्वन्ध करता है (सः) वह (सत्यः) सत्य (इन्दुः) जल के समान आर्द्र स्वभाव वाला (देवः) प्रकाशमान परमेश्वर है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस ने यह सव लोकों का प्रकाश करने और कूप के समान सींचने वाला वड़ा सूर्यलोक रचा और अपने में धारण किया जो सव से अलग व्याप्त भी है वह नित्य परमेश्वर देव है उसका नित्य ध्यान करो ॥२॥

अव ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

साकं जातः क्रतुना साकमोजसा ववक्षिथ
साकं वृद्धो वीर्यैः सासहिर्मृधो विचर्षणिः ।
दाता राधः स्तुवते काम्यं वसु
सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (क्रतुना) कर्म वा प्रज्ञा और (ओजसा) जल के (साकम्) साथ (जातः) प्रसिद्ध (वीर्यैः) पराक्रम वा विज्ञानादि पदार्थों के (साकम्) साथ (वृद्धः) वड़ा (सासहिः) अत्यन्त सहने वाला (विचर्षणिः) विद्या के प्रकाश से युक्त विद्वान् (दाता) दानशील होता हुआ (मृधः) संग्रामों को (ववक्षिथ) प्राप्त करता है (काम्यम्) प्रिय (वसु) सुखों को वसाने वाले (राधः) धन की (स्तुवते) प्रशंसा करता (सः) वह (सत्यः) अविनाशी (इन्दुः) परमैश्वर्ययुक्त (देवः) सर्वत्र प्रकाशमान जीव (एनम्) इस (सत्यम्) सत्य (इन्द्रम्) परमैश्वर्ययुक्त (देवम्) देदीप्यमान परमेश्वर को (साकम्) साथ (सश्चत्) सम्वन्ध करता अर्थात् अपनी आत्मा से संयुक्त करता है ॥३॥

भावार्थः—जिसके ज्ञानादि गुणों और उत्क्षेपणादि कर्मों के साथ नित्य सम्वन्ध है। जो विद्या से ज्येष्ठ और अविद्या से कनिष्ठ है सुख की कामना करता हुआ अनादि अनुत्पन्न अमृत अल्पज्ञ जीवात्मा है उस को जो शुभाशुभ कर्मफलों के साथ युक्त करता वह परमेश्वर अखिल जगत् के वीच व्याप्त होता हुआ सव की रक्षा करता; जीव के साथ ईश का ईश्वर के साथ जीव का व्याप्य व्यापक सेव्य सेवकादि लक्षण सम्वन्ध है यह जानना चाहिये ॥३॥

अब जीव विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

तव त्यन्नर्य्यं नृतोऽप इन्द्र प्रथमं पूर्व्यं दिवि प्रवाच्यं कृतम्।
यद्देवस्य शवसा प्रारिणा असुं रिणन्नपः।
भुवद्विश्वमभ्यादेवमोजसा विदादूर्जं शतक्रतुर्विदादिषम्॥४॥

पदार्थः—हे (नृतो) सब के नचाने वाले (इन्द्र) इन्द्रियादि ऐश्वर्य्ययुक्त वा उसका भोक्ता! (यत्) जो तू (त्यत्) वह (प्रथमम्) प्रथम (पूर्व्यम्) पूर्वाचार्य्यों ने किया (प्रवाच्यम्) उत्तमता से कहने योग्य (कृतम्) प्रसिद्ध (नर्य्यम्) मनुष्यों में सिद्ध पदार्थ उसको और (दिवि) प्रकाशमय परमेश्वर में (अपः) प्राणों को (देवस्य) सब के प्रकाश करने वाले के (शवसा) बल से (प्रारिणाः) प्राप्त होता और (असुम्) प्राण और (अपः) जलों को (रिणन्) प्राप्त होता हुआ (ओजसा) बल से (अदेवम्) जिसमें प्रकाश नहीं विद्यमान उस (विश्वम्) समस्त वस्तुमात्र को (अभि, विदात्) प्राप्त हो (शतक्रतुः) असंख्य प्रज्ञायुक्त आप (ऊर्जम्) पराक्रम और (इषम्) अन्न को (विदात्) प्राप्त हो उन (तव) आप के सुख (भुवत्) हो॥४॥

भावार्थः—हे जीवो! जिस जगदीश्वर के निवन्ध से तुम शरीर इन्द्रियों और प्राणों को प्राप्त हुए उसको सर्व सामर्थ्य से दिन रात ध्यावो॥४॥

इस सूक्त में सूर्य विद्युत् ईश्वर और जीवों के गुण कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये॥

यह बाईसवां सूक्त समाप्त हुआ॥

---

गृत्समद ऋषिः। १। ५। ९। ११। १७। १९ ब्रह्मणस्पतिः २—४। ६—८। १०। १२—१६। १८ बृहस्पतिश्च देवता। १। ४। ५। १०—१२ जगती २। ७—९। १३। १४ विराट् जगती ३। ६। १६। १८ निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। १५। १७ भुरिक् त्रिष्टुप्। १९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब उन्नीस मन्त्र वाले तेईसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में परमेश्वर का वर्णन करते हैं॥

गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पत आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्॥१॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणाम्) बड़े बड़े धनों में (ब्रह्मणस्पते) धन के स्वामी हम लोग (गणानाम्) गणनीय मुख्य पदार्थों में (गणपतिम्) मुख्य पदार्थों के स्वामी (कवीनाम्) उत्तम बुद्धि वालों में (कविम्) सर्वज्ञ और (उपमश्रवस्तमम्) उपमा जिससे दिई जाती ऐसे अत्यन्त श्रवणरूप (ज्येष्ठराजम्) ज्येष्ठ अर्थात् अत्यन्त प्रशंसित पदार्थों में प्रकाशमान (त्वा) आप परमेश्वर को (आ, हवामहे) अच्छे प्रकार स्वीकार करते हैं आप (ऊतिभिः) रक्षाओं से (शृण्वन्) सुनते हुए (नः) हम लोगों के (सादनम्) उस स्थान को कि जिसमें स्थिर होते हैं (सीद) स्थिर हूजिये ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग सब के अधिपति सर्वज्ञ सर्वराज अन्तर्यामी परमेश्वर की उपासना करते हैं वैसे तुम भी उपासना करो ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

देवाश्चित्ते असुर्य प्रचेतसो बृहस्पते यज्ञियं भागमानशुः ।
उस्रा इव सूर्यो ज्योतिषा महो विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि ॥२॥

पदार्थः—हे (असुर्य्य) प्रवासरहितों में साधु (बृहस्पते) बड़ी वाणी के पति ! जिस (प्रचेतसः) प्रकृष्ट ज्ञान वाले (ते) आप के (यज्ञियम्) यज्ञसम्बन्धि (भागम्) भाग को (सूर्य्यः) सूर्य्य (ज्योतिषा) प्रकाश से (उस्रा इव) किरणों के समान (देवाः) विद्वान् जन (चित्) निश्चय से (आनशुः) प्राप्त होते हैं जो आप (महः) महात्मा जन (विश्वेषाम्) समस्त लोक और (ब्रह्मणाम्) धनों के (जनिता) उत्पादन करने वाले (इत्) ही (असि) हैं सो हम लोगों को सदा सेवन करने योग्य हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम जो प्राण का प्राण सूर्य्य के समान आप ही प्रकाशमान और महात्माओं में महात्मा परमेश्वर है उसी को सेओ ॥२॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ विबाध्या परिरापस्तमांसि च ज्योतिष्मन्तं रथमृतस्य तिष्ठसि ।
बृहस्पते भीममभित्रदम्भनं रक्षोहणं गोत्रभिदं स्वर्विदम् ॥३॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़ों की रक्षा करने वाले विद्वान् ! जैसे सूर्य्य (परिरापः) सब ओर से पाप भरे हुए कर्म्म (तमांसि, च) और रात्रियों को (विबाध्य) निकाल के प्रवृत्त होता वैसे (ऋतस्य) सत्य कारण के बीच वर्त्तमान (भीमम्) भयङ्कर (अमित्रदम्भनम्) शत्रुहिंसन और (रक्षोहणम्) दुष्टों के मारने

(गोत्रभिदम्) और मेघ के छिन्न भिन्न करने वाले (स्वर्विदम्) जिससे उदक को प्राप्त होते (ज्योतिष्मन्तम्) जो बहुत प्रकाशमान (रथम्) रमणीयस्वरूप उस को (आ, तिष्ठसि) अच्छे प्रकार स्थित होते हो सो आप सुख को प्राप्त होते हो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य्य के समान विद्याप्रकाश से अविद्यान्धकार को निकाल कर कारण को लेकर कार्य्यजगत् को यथावत् जानते हैं वे विद्वान् होते हैं ॥३॥

अब विद्वान् और ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुनीतिभिर्नयसि त्रायसे जनं यस्तुभ्यं दाशान्न तमंहो अश्नवत् ।
ब्रह्मद्विषस्तपनो मन्युमीरसि बृहस्पते महि तत्ते महित्वनम् ॥४॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़ों की पालना करने वाले ईश्वर वा विद्वान् ! आप (सुनीतिभिः) उत्तम धर्म्म वाले न्याय मार्गों से जिस (जनम्) जन को (नयसि) पहुंचाते हो और (त्रायसे) रक्षा करते हो (यः) जो (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (आत्मा) (दाशात्) देता है (तम्) उसको (अंहः) पाप (न, अश्नवत्) नहीं प्राप्त होता जो तुम (ब्रह्मद्विषः) वेद और ईश्वर के विरोधियों पर (तपनः) ताप करने वाले (मन्युमीः) क्रोध का मान करने वाले (असि) हैं (ते) आप के (तत्) उस (महित्वनम्) बड़प्पन को हम लोग प्रशंसा करें ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्यभाव से जगदीश्वर वा आप्त विद्वान् के सम्बन्ध में अपने आत्मा को चलाते हैं उनको जगदीश्वर वा धार्मिक विद्वान् पापाचरण से निवृत्त कर शुभ गुण कर्म स्वभावों से युक्त कर पवित्र उत्पन्न करता है। और जो वेद वा ईश्वर के विरोधी पापाचारी हैं उनको अधोगति को पहुंचाता है यही इन दोनों की उपासना और सङ्ग से लाभ होता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरुर्न द्वयाविनः ।
विश्वा इदस्माद्ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा रक्षसि ब्रह्मणस्पते ॥५॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) बड़ों के पालना करनेवाले वा चक्रवर्त्ती सर्व भूमिपति राजन् ! जो (सुगोपाः) सुन्दर रक्षा करने वाले आप (यम्) जिस की (रक्षसि) रक्षा करते (अस्मात्) इससे (विश्वाः) सब (ध्वरसः) हिंसाओं को (वि, बाधसे) निवृत्त करते हो (इत्) उसी को (कुतश्चन) कहीं से भी (अंहः) अपराध (न) न (दुरितम्)

दुष्टाचार (न) न (अरातयः) शत्रुजन (न) न (द्वयाविनः) दोनों पक्षों में आश्रित जन (तितिरुः) तरें ॥५॥

भावार्थः—जो परमेश्वर की आज्ञा वा आप्त विद्वानों के सङ्ग का वा अपनी आत्मा की पवित्रता का आचरण करते हैं वे सब पाप आचरण से अलग हो और धार्मिक होकर निरन्तर सुख को व्याप्त होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वं नों गोपाः पंथिकृद्विचक्षणस्तव व्रताय मतिभिर्जरामहे ।
बृहस्पते यो नों अभि ह्वरों दधे स्वा तं मर्मर्त्तु दुच्छुना हरस्वती ॥६॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बहुत सत्य का प्रचार करने वाले ! (यः) जो (नः) हम लोगों के ऊपर (ह्वरः) क्रोध किया जाता वह (दुच्छुना) दुष्ट कुत्ते से जैसे वैसे (तम्) उसको (मर्मर्त्तु) निरन्तर प्राप्त हो जो (स्वा) अपनी (हरस्वती) बहुतों को हरने का शील रखने वाली सेना उस विषय को (अभि दधे) सब ओर से धारण करे उस सेना से जो (नः) हम लोगों के (गोपाः) रक्षा करने (पथिकृत्) सकल सुकृत मार्ग का प्रचार करने वा (विचक्षणः) विविध सत्योपदेश करने वाले (त्वम्) आप हैं उन (तव) आप के (व्रताय) शील के लिये (मतिभिः) मेधाओं के साथ हम लोग (जरामहे) स्तुति करते हैं ॥६॥

भावार्थः—जिन का मार्ग प्रकाश करने और उपदेश करने वाला परमात्मा विद्वान् होता है जो सत्पुरुषों के सङ्ग के प्रीति करने वाले वर्त्तमान हैं उनको क्रोध आदि दुर्गुण नहीं प्राप्त होते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत वा यो नों मर्चयादनागसोऽरातीवा मर्त्तः सानुको वृकः ।
बृहस्पते अप तं वर्त्तया पथः सुगं नों अस्यै देववीतये कृधि ॥७॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़े पाप वियोग करने वाले ! (यः) जो (नः) हम लोगों को (अनागसः) अनपराधी (पथः) मार्ग से (मर्चयात्) जो सुमार्गयान उसमें प्राप्त करें (उत वा) अथवा जो (अरातीवा) शत्रुओं का अच्छे प्रकार सेवन करता (सानुकः) और अनुगामी के साथ वर्त्तमान (वृकः) चोर (मर्त्तः) मनुष्य हो (तम्) उसको उस मार्ग से (अप, वर्त्तय) दूर करो (नः) हमारी (अस्यै) इस (देववीतये) दिव्य गुणों में व्याप्ति के लिये (सुगम्) सुगम मार्ग (कृधि) करो ॥७॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! जो हम लोगों को सुमार्ग से सुख को प्राप्त कराते उन को पहुँचाइये और जो दुष्पथ को पहुंचाते हैं उन को अलग कीजिये तथा कृपा से शुद्ध सरल धर्मयुक्त मार्ग को प्राप्त कीजिये ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्रातारं त्वा तनूनां हवामहेऽवस्पर्त्तरधिवक्तारमस्मयुम् ।
बृहस्पते देवनिदो नि बर्हय मा दुरेवा उत्तरं सुम्नमुन्नशन् ॥८॥

पदार्थः—हे (अवस्पर्त्तः) रक्षा कर दुःख से पार करने और (बृहस्पते) बड़ों की रक्षा करने वाले ! हम लोग जिस (तनूनाम्) विस्तृत सुखसाधक शरीरादिकों वा अन्य पदार्थों के (त्रातारम्) रक्षा करने वा (अस्मयुम्) हम लोगों की कामना करने वा (अधिवक्तारम्) सबके ऊपर उपदेश करने वाले (त्वा) आप जगदीश्वर वा सभापति को (हवामहे) स्वीकार करते हैं सो आप (देवनिदः) जो विद्वान् वा दिव्य गुणों की निन्दा करते उनको (नि, बर्हय) निरन्तर छिन्न भिन्न करो। जिससे (दुरेवाः) दुष्टाचरण करने वाले (उत्तरम्) उसके उपरान्त (सुम्नम्) सुख को (मा, उत् नशन्) मत नष्ट करावें ॥८॥

भावार्थः—जो अपना उपदेश करने और रक्षा करने वाला परमात्मा वा आप्त विद्वान् मानते हैं वे सब ओर से बढ़ते हैं। जो विद्वान् ईश्वर और वेद की निन्दा भविष्यत् का आनन्द नष्ट करने वाले हों उनको सब ओर से निवृत्त करावें ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वया वयं सुवृधा ब्रह्मणस्पते स्पार्हा वसु मनुष्या ददीमहि ।
या नो दूरे तळितो या अरातयोऽभि सन्ति जम्भया ता अनप्नसः ॥९॥

पदार्थः—(ब्रह्मणः) ब्रह्माण्ड वा राज्य की (पते) पालना करने वाले [विद्वान्] (स्पार्हा) अभिकांक्षा के योग्य (सुवृधा) जो सुन्दर बढ़ाया देते उन (त्वया) तुम्हारे साथ (वयम्) हम (मनुष्याः) मनुष्य (वसु) विज्ञान वा धन (ददीमहि) देवें (नः) हमारे (दूरे) दूर देश में (याः) जो (तडितः) बिजुली और (याः) जो (अनप्नसः) अविद्यमान कर्म वाली क्रिया (अरातयः) न देने की रीतियां (सन्ति) हैं (ताः) उनको (अभि, जम्भय) सब ओर से विनाशिये ॥९॥

भावार्थः—यदि विद्वानों के उपदेश को न ग्रहण करें तो मनुष्य दान-

शील न हों, जो अकर्मंठ अर्थात् कर्म नहीं करते कृपण पुरुष और स्त्रीजन हैं वे विजुली के समान पुरुषार्थ युक्त करने चाहिये ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वया॑ व॒यमु॒त्तमं॑ धीमहे॒ वयो॒ बृह॑स्पते॒ पप्रि॑णा॒ सस्नि॑ना यु॒जा ।
मा नो॑ दु॒ःशंसो॑ अभिदि॒प्सुरी॑शत॒ प्र सु॒शंसा॑ म॒तिभि॑स्तारिषीमहि ॥१०॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) विद्वान् (पप्रिणा) परिपूर्ण (सस्निना) शुद्ध पवित्र पदार्थ (युजा) युक्त (त्वया) तुम्हारे साथ वर्त्तमान (वयम्) हम लोग (उत्तमम्) श्रेष्ठ (वयः) जीवन को (धीमहे) धारण करें जिस से (अभिदिप्सुः) सब ओर से कपट की इच्छा करने वाला (दुःशंसः) जिस की दुष्ट कहावत प्रसिद्ध वह चोर (नः) हम लोगों का (मा, ईशत) ईश्वर न हो और (मतिभिः) प्रज्ञाओं के साथ वर्त्तमान (सुशंसाः) जिन की सुन्दर स्तुति ऐसे हम लोग (प्र, तारिषीमहि) उत्तमता से तरें सर्व विषयों के पार पहुंचे ॥१०॥

भावार्थः—जो पूर्ण विद्या वाले योगी शुद्धात्मा जनों का सङ्ग करते हैं वे दीर्घजीवी होते हैं जो विद्वानों के सहचारी होते हैं उन के लिये दुःख देने को कोई भी समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒ना॒नु॒दो वृ॑ष॒भो जग्मि॑राह॒वं निष्ट॑प्ता॒ शत्रुं॒ पृत॑नासु सास॒हिः ।
असि॑ स॒त्य ऋ॑ण॒याः ब्र॑ह्मणस्पत उ॒ग्रस्य॑ चिद्दमि॒ता वी॑ळुह॒र्षिणः॑ ॥११॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) वेद के पालने वाले ! आप जिस से (अनानुदः) अनानुद अर्थात् जो पीछे देते हैं वे जिस के नहीं विद्यमान वह (वृषभः) श्रेष्ठ जन (आहवम्) संग्राम को (जग्मिः) जाने वाले (पृतनासु) वीरों की सेनाओं में (शत्रुम्) काटने दुःख देने वाले वैरी को (निष्टप्ता) निरन्तर सन्ताप देने (सासहिः) निरन्तर सहने (ऋणयाः) और ऋण को प्राप्त होने वाले (सत्यः) सज्जनों में साधु (वीळुहर्षिणः) जिसको वल से बहुत हर्ष विद्यमान (उग्रस्य) तीव्र को (चित्) ही (दमिता) दमन करने वाले (असि) हैं उस से प्रशंसनीय होते हैं ॥११॥

भावार्थः—जो देने योग्य पदार्थ को शीघ्र देते, जाने योग्य स्थान को जाते, पाने योग्य पदार्थ को पाते और दण्ड देने योग्य को दण्ड देते हैं, वे सत्य ग्रहण कर सकते हैं ॥११॥

अब राज विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदे॑वेन॒ मन॑सा॒ यो रि॑ष॒ण्यति॑ शा॒साम॒ुग्रो मन्य॑मानो॒ जिघां॑सति ।
बृह॑स्पते॒ मा प्रण॒क्तस्य॑ नो॒ व॒धो॒ वि क॑र्म॒ म॒न्युं दु॒रेव॑स्य॒ शर्द्ध॑तः ॥१२॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़े राज्य के पालने वाले ! (यः) जो (शासाम्) शासना करने वालियों का (उग्रः) भयङ्कर (मन्यमानः) अभिमानी (अदेवेन) अशुद्ध (मनसा) मन से (रिषण्यति) हिंसा करने को अपने से चाहता है वा (जिघांसति) साधारण मारने की इच्छा करता है (तस्य) उस के (मन्युम्) क्रोध को (शर्द्धतः) बलवत्ता से सहते हुए (दुरेवस्य) दुःख से प्राप्त होने योग्य का (वधः) नाश (मा, प्रणक्) मत नष्ट हो (नः) हमारा (कर्म) कर्म (नि) मत निरन्तर नष्ट हो ॥१२॥

भावार्थः—जो राज्यशासन करते हैं वे निर्बुद्धि हिंसकों को वश करें यदि वश में न आवें तो इन को बलात्कार मारें जिस से न्याय का प्रणाश न हो ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

भरे॑षु॒ हव्यो॒ नम॑सोप॒सद्यो॒ गन्ता॒ वाजे॑षु॒ सनि॑ता॒ धनं॑धनम् ।
विश्वा॒ इद॒र्य्यो अ॑भिदि॒प्स्वो॒३ मृधो॒ बृह॒स्पति॒र्वि व॑वर्हा॒ रथाँ॑ इव ॥१३॥

पदार्थः—जो (हव्यः) ग्रहण करने और (नमसा) सत्कार से (उपसद्यः) प्राप्त होने योग्य तथा (गन्ता) गमन करने (सनिता) विभाग करने (बृहस्पतिः) और पूज्यों की रक्षा करने वाला (अर्य्यः) स्वामी (भरेषु) पुष्टियों और (वाजेषु) संग्रामों में (धनन्धनम्) धन धन को बढ़ाता वा (रथानिव) रथों के समान (विश्वाः) समस्त (इत्) उन्हीं क्रियाओं को कि (अभिदिप्स्वः) जिन में दम्भ की इच्छा करने वाले विद्यमान तथा (मृधः) संग्रामों को (वि, ववर्ह) नहीं बढ़ाता है वह राज्य करने को योग्य होता है ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो गुण कर्म और स्वभावों से विजय को प्राप्त होते हुए विमानादि यानों के तुल्य शीघ्र ऐश्वर्य को प्राप्त होकर समस्त सत्कर्मों में विभाग कर धनादि पदार्थों को देते हैं वे न्यायाधीश होने के योग्य हैं ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तेजि॑ष्ठया तप॒नी र॒क्षस॑स्तप॒ ये त्वा॑ नि॒दे द॑धि॒रे दृ॒ष्टवी॑र्य्यम् ।
आ॒विस्तत्कृ॑ष्व॒ यद॑सत्त उ॒क्थ्यं१॒ बृह॑स्पते॒ वि प॑रि॒रापो॑ अर्दय ॥१४॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) वड़ों की पालना करने वाले ! (ये) जो (दृष्टवीर्यम्) देखा है पराक्रम जिस का ऐसे (त्वा) तुझ को (निदे) निन्दा के लिये (दधिरे) धारण करते उन (रक्षसः) राक्षसों को जो (तपनी) तपाने वाली है उस (तेजिष्ठया) अतीव तेजस्विनी से आप (तप) प्रताप दिखाओ (यत्) जो (ते) आप का (उक्थ्यम्) कहने योग्य प्रस्ताव (असत्) हो (तत्) उस को (आविष्कृष्व) प्रकट कीजिये (परिरापः) और सब ओर से पाप जिस के विद्यमान उस को (वि, अर्दय) विशेषता से नाशिये ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि निन्दकों को सर्वथा निवारि और स्तुति करने वालों को वढ़ाय सत्य विद्याओं को प्रकाश करें ॥१४॥

अब विद्वान् विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।

बृह॑स्पते॒ अति॒ यद॒र्यो अर्हा॑द्द्यु॒मद्वि॒भाति॒ क्रतु॑मज्जने॑षु ।
यद्दी॒दय॒च्छव॑स ऋतप्रजात॒ तद॒स्मासु॒ द्रवि॑णं धेहि चि॒त्रम् ॥१५॥

पदार्थः—हे (ऋतप्रजात) सत्याचरण में प्रकट (बृहस्पते) वड़ों के पालने वाले विद्वान् ! (यत्) जो (अर्यः) ईश्वर (जनेषु) मनुष्यों में (अर्हात्) योग्य व्यवहार से (द्युमत्) प्रकाशवान् (क्रतुमत्) प्रशंसित प्रज्ञायुक्त वा (शवसा) वल से (यत्) जो (दीदयत्) प्रकाशकर्त्ता (अति, विभाति) अतीव प्रकाशित होता है (तत्) उस (चित्रम्) अद्भुत (द्रविणम्) धन को (अस्मासु) हम लोगों में (धेहि) स्थापन कीजिये ॥१५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो जो ईश्वर ने वेदद्वारा सत्य का प्रकाशन किया वह वह सब प्रकाश करें और जो जो स्वार्थ चाहें वह वह सब के लिये चाहें ॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा न॑ स्ते॒नेभ्यो॒ ये अ॒भि द्रु॒हस्प॒दे नि॑रा॒मिणो॑ रि॒पवोऽन्ने॑षु जागृ॒धुः ।
आ दे॒वाना॒मोह॑ते॒ वि व्रयो॑ हृ॒दि बृह॑स्पते॒ न प॒रः साम्नो॑ विदुः ॥१६॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) चोर आदि के निवारने वाले ! (ये) जो (अभिद्रुहः) सब ओर से द्रोह करने वाले (रिपवः) शत्रुजन (पदे) पाने योग्य स्थान में (निरामिणः) नित्य रमण करने वाले (अन्नेषु) अन्नादि पदार्थों के निमित्त (जागृधुः) सब ओर से कांक्षा करें उन (स्तेनेभ्यः) चोरों से (नः) हम को भय (मा) न हो । जो (व्रयः) वर्जने योग्य जन (देवानाम्) विद्वानों के बीच (आ, ओहते) वितर्कयुक्त के

लिये (हृदि) मन में (साम्नः) सन्धि से (विविदुः) जाने उनको (परः) अत्यन्त श्रेष्ठ तू (न) न प्राप्त हो ॥१६॥

भावार्थः—जो चोर द्रोह से पराये पदार्थों की चाहना करते हैं वे कुछ भी धर्म नहीं जानते हैं ॥१६॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वेभ्यो हि त्वा भुवनेभ्यस्परि त्वष्टाजनत्साम्नःसाम्नः कविः ।
स ऋणचिदृणया ब्रह्मणस्पतिर्द्रुहो हन्ता मह ऋतस्य धर्त्तरि ॥१७॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! जो (साम्नःसाम्नः) सामवेद सामवेदमात्र के बीच (कविः) सर्वज्ञ (त्वष्टा) पदार्थों का निर्माण करने वाला (विश्वेभ्यः) सभी (भुवनेभ्यः) लोकों से जिन (त्वा) आप को (पर्यजनत्) सब प्रकार प्रकट करता है (स) वह (ब्रह्मणस्पतिः) ब्रह्माण्ड की पालना करने वाला है उस (महः) महान् (ऋतस्य) सत्य कारण के (धर्त्तरि) धारण करने वाले जगदीश्वर में स्थित (ऋणचित्) ऋण को इकट्ठा करने और (ऋणयाः) ऋण को प्राप्त होने वाले आप (द्रुहः) द्रोह करने वाले के (हन्ता) नाशक हूजिये ॥१७॥

भावार्थः—हे जीव ! जो सर्वज्ञ सृष्टिकर्त्ता सकल भुवनों का एक स्वामी और सब का धारण करने वाला जगदीश्वर है उस की आज्ञा में स्थित द्रोहादिकों को दूर से दूर करे ॥१७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तव श्रिये व्यजिहीत पर्वतो गवां गोत्रमुदसृजो यदङ्गिरः ।
इन्द्रेण युजा तमसा परीवृतं बृहस्पते निरपामौब्जो अर्णवम् ॥१८॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरः) प्राणप्रिय (बृहस्पते) बड़ों की पालना करने वाले ! (तव) आप की (श्रिये) लक्ष्मी के लिये (पर्वतः) मेघ (गवाम्) सूर्यमण्डल की किरणों के (यत्) जो (गोत्रम्) कुल को (वि, अजिहीत) विशेषता से प्राप्त होता वा (उदसृजः) किसी पदार्थ का त्याग करता सो आप (इन्द्रेण) सूर्य (युजा) युक्त (तमसा) अन्धकार से (परीवृतम्) सब प्रकार छपा हुआ अग्नि जैसे हो वैसे (अपाम्) जलों के बीच (औब्जः) कोमलपन में प्रसिद्ध हूजिये तथा (अर्णवम्) समुद्र को (निः) निरन्तर प्रकट कीजिये ॥१८॥

भावार्थः—जिस ईश्वर ने सूर्यादिक जगत् का निर्माण कर परस्पर सम्बन्ध किया उस को प्राणप्रिय जानो ॥१८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयञ्च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१९॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणस्पते) ब्रह्माण्ड की पालना करने हारे ! (त्वम्) आप (अस्य, सूक्तस्य) जो यह सुन्दरता से कहा जाता इस के (यन्ता) नियन्ता होते हुए (तनयम्) सन्तान के समान (बोधि) जानो (च) और इस (विश्वम्) सब को (जिन्व) प्रसन्न करो । तथा (देवाः) विद्वान् जन (यत्) जिस (भद्रम्) कल्याण करने वाले की (अवन्ति) रक्षा करते हैं (तत्) उस (बृहत्) बहुत (विदथे) संग्राम में (सुवीराः) अच्छे वीरों वाले हम लोग (वदेम) कहें ॥१९॥

भावार्थः—ईश्वर ने जो रक्षितव्य कहा है उस की अच्छे प्रकार रक्षा कर मनुष्यों को बहुत सुख पाना चाहिये । जैसे ईश्वर समस्त जगत् की नियमपूर्वक रक्षा करता है वैसे विद्वानों को भी सब की रक्षा करनी चाहिये ॥१९॥

इस सूक्त में ईश्वरादि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । १—११ । १३—१६ ब्रह्मणस्पतिः । १२ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रश्च देवते । १ । ७ । ९ । ११ निचृज्जगती । १३ भुरिक् जगती । ४ । ६ । ८ जगती । १० स्वराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ । ३ त्रिष्टुप् । ४ । ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । १२ । १६ निचृत् त्रिष्टुप् । १५ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ चौबीसवें सूक्त का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को कहा है ॥

सेमामविड्ढि प्रभृतिं य ईशिषेऽया विधेम नवया महा गिरा ।
यथा नो मीढ्वान् स्तवते सखा तव बृहस्पते सीषधः सोत नो मतिम् ॥१॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) अध्यापक वेदरूप वाणी के शिक्षक विद्वान् ! (यः) जो आप (अया) इस (नवया) नवीन (महा, गिरा) महती उपदेश रूप वाणी से (इमाम्) इस (प्रभृतिम्) धारण वा पोषण रूप क्रिया के करने को (ईशिषे) समर्थ हो (सः) सो आप इस उक्त क्रिया को (अविड्ढि) प्राप्त हूजिये (यथा) जैसे (तव)

आप का (मीढ्वान्)विद्या का प्रवर्त्तक (सखा) मित्र (नः) हमारी (स्तवते) प्रशंसा करता और जैसे (सः) वह आप (नः) हमारे लिये (मतिम्) बुद्धि को (उत) भी (सीषधः) सिद्ध करो वैसे आप को आप के मित्र को हम लोग (विधेम) प्राप्त हों ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो लोग विद्या की उन्नति करना चाहें वे प्रथम वेदादि शास्त्रों को स्वयं पढ़ के दूसरों को प्रयत्न के साथ पढ़ावें और पढ़ पढ़ा के पदार्थविज्ञान में आरूढ़ बुद्धि को प्राप्त हों ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यो नन्त्वान्यानमन्न्योजसोतादर्दर्मन्युना शम्बराणि वि।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिरा चाविंशद्वसुमन्तं वि पर्वतम् ॥२॥

पदार्थः—(यः) जो (ब्रह्मणस्पतिः) बड़ी प्रजा का रक्षक राजसेना का अध्यक्ष (नन्त्वानि) नमने योग्य को (नि, अनमत्) निरन्तर नमे जैसे सूर्य्य (अच्युता) नाशरहित (शम्बराणि) मेघ सम्बन्धी बादलों को (व्यदर्दः) विशेष कर बार बार विदीर्ण करता (उत) और (पर्वतम्) मेघ को (प्राच्यावयत्) गिराता है वह वैसे (ओजसा) बल से तथा (मन्युना) क्रोध से शत्रु को गिरावे वा विदीर्ण करे (च) और (वसुमन्तम्) उत्तम धन को पहुंचाने हारे देश को (वि, आ, अविशत्) अच्छे प्रकार विशेष कर प्राप्त होवे ॥२॥

भावार्थः—जो राजा और राजजन विद्वान् सत्कर्मी लोगों का सत्कार करते और दुष्ट कर्म वालों को दण्ड देते हैं वे सूर्य के तुल्य पृथिवी पर सुशोभित होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तद्देवानां देवतमाय कर्त्वमश्रथ्नन्दृळ्हाव्रदन्त वीळिता।
उद्गा आजदभिनद्ब्रह्मणा वलमगूहत्तमो व्यचक्षयत्स्वः ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वन्! जैसे (देवानाम्) प्रकाशमान लोकों में (देवतमाय) अत्यन्त प्रकाशयुक्त सूर्य के लिये (तत्, कर्त्वम्) वह कर्त्तव्य कर्म है जैसे यह सूर्य (गाः) किरणों को (उत्, आजत्) उत्कृष्टता से फेंकता (ब्रह्मणा) बड़े बल से (वलम्) आवरणकर्त्ता मेघ को (अभिनत्) विदीर्ण करता और जो (तमः) अन्धकार (अगूहत्) प्रकाश का आवरण करता उस को जो विदीर्ण करता और (स्वः) अन्तरिक्षस्थ सब

पदार्थों को (व्यचक्षयत्) विशेष कर दर्शाता है और जिस के प्रताप से उक्त सब वस्तु (दृढा) दृढ (वीलिता) प्रशस्त (अम्रदन्त) कोमल होते तथा (अश्रथ्नन्) विमुक्त होते हैं वैसे आप वर्त्ताव कीजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सूर्य के तुल्य विद्याप्रकाश कर्म वाले अविद्यारूप अन्धकार के निवारक प्रमादी दुष्टों को शिथिल करते हुए श्रेष्ठ विद्वत्ता को ग्रहण करते हैं वे जगत् के उपकारक होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्मास्यमवतं ब्रह्मणस्पतिर्मधुधारमभि यमोजसातृणत् ।
तमेव विश्वे पपिरे स्वर्दृशो बहु साकं सिसिचुरुत्समुद्रिणम् ॥४॥

पदार्थः—जो विद्वान् (ब्रह्मणः) बड़ों का (पतिः) रक्षक सज्जन जैसे सूर्य (ओजसा) बल के साथ (यम्) जिस (अवतम्) नीचे को गिरने हारे (मधुधारम्) मधुर रसों के धारक (अश्मास्यम्) मेघ के मुख्य भाग को (अभि, अतृणत्) सब ओर से काटता है (तमेव) उसी को (विश्वे) सब (स्वर्दृशः) सुख प्राप्ति के हेतु शिक्षक लोग (साकम्) साथ मिल के (उद्रिणम्) जलयुक्त (उत्सम्) कूप के तुल्य (बहु) अधिकतर (पपिरे) पियें और (सिसिचुः) सींचें वैसे अनुष्ठान करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य मेघ और कूप के तुल्य सब को शुभ शिक्षा से तृप्त करते और सब को एकमत करते हैं वे मिल कर सब की उन्नति कर सकते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सना ता का चित् भुवना भवीत्वा माद्भिः शरद्भिर्दुरो वरन्त वः ।
अयतन्ता चरतो अन्यदन्यदिद्या चकार वयुना ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य के किरण (माद्भिः) महीनों और (शरद्भिः) शरत् आदि ऋतुओं के विभाग से (या) जो (सना) सनातन (का, चित्) कोई (भवीत्वा) होने वाले (भुवना) लोक हैं (ता) उन को और (दुरः) द्वारों को (वरन्त) विवृत करते प्रकाशित करते हैं तथा जो (ब्रह्मणः, पतिः) विद्या और धन का पालक पुरुष (वः) तुम को (वयुना) विज्ञानयुक्त (चकार) करता है वह तुम को सेवने योग्य है। जो (अयतन्ता) प्रयत्नरहित आलसी पढ़ने पढ़ाने वाले

(अन्यदन्यत्, इत्) अन्य अन्य विरुद्ध ही (चरतः) करते हैं उन का सत्कार कभी न करना चाहिये ॥५॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य महीनों और ऋतुओं को विभक्त कर मूर्त्त द्रव्यों का यथावत्स्वरूप दिखाता है वैसे जो विद्वान् पृथिवी से ले के ईश्वर पर्यन्त पदार्थों को यथावत् शिक्षा से दिखावें वे लोक में पूजनीय होवें और जो अविद्यायुक्त आलसी लोग कपट आदि से दूषित दुष्ट उपदेश करते वा निकम्मे बैठे रहते हैं वे किसी को कभी सेवने योग्य नहीं हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीनां परमं गुहा हितम्।
ते विद्वांसः प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविशम् ॥६॥

पदार्थः—(ये) जो (अभिनक्षन्तः) सब ओर से जानते हुए (विद्वांसः) विद्वान् लोग (तम्) उस (गुहा, हितम्) बुद्धि में स्थित (परमम्) उत्तम (पणीनाम्) व्यवहारवान् प्रशंसनीय मनुष्यों के (निधिम्) विद्यारूप कोश को (अभ्यानशुः) सब ओर से प्राप्त होते हैं (ते) वे औरों के (अनृता) मिथ्याभाषणादि कर्मों को (प्रतिचक्ष्य) प्रत्यक्ष खण्डन कर (पुनः, उ) फिर भी (आविशम्) जिसमें आवेश करते उस ज्ञान को (आयन्) प्राप्त होते (तत्) उसका (उदीयुः) उदय करें अर्थात् उपदेश करें ॥६॥

भावार्थः—जो यथार्थ विज्ञान को पाकर अधर्माचरण से पृथक् रह कर अन्यों को पापाचरण से पृथक् कर फिर फिर धर्म विद्या शरीर आत्मा की पुष्टि में प्रवेश कराते वे अत्यन्त आनन्द को पाकर औरों को आनन्दित करने को समर्थ होते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतावानः प्रतिचक्ष्यानृता पुनरात आ तस्थुः कवयो महस्पथः।
ते बाहुभ्यां धमितमग्निमश्मनि नकिः षो अस्त्यरणो जहुर्हि तम् ॥७॥

पदार्थः—जो (ऋतावानः) सत्य आचरणों का सेवन करने हारे (कवयः) पण्डित लोग (महः) बड़े धर्मयुक्त (पथः) मार्गों पर (आ, तस्थुः) अच्छे प्रकार स्थित होते (ते) वे (अतः) इस कारण से (पुनः) बार बार (अनृता) अधर्मयुक्त व्यवहारों को (प्रतिचक्ष्य) खण्डित कर इन को (आ, जहुः) सब प्रकार छोड़ते हैं।

जो (अरणः) विज्ञानी (बाहुभ्याम्) हाथों से (अश्मनि) पत्थर पर (धमितम्) प्रज्वलित किये (अग्निम्) अग्नि को त्याग करता (नकिः) नहीं (अस्ति) अर्थात् ग्रहण करता है (सः, हि) वही (तम्) उस बोध को प्राप्त होता है ॥७॥

भावार्थः—जो अविद्या और अधर्माचरण का खण्डन कर श्रेष्ठ मार्ग का सेवन करते हैं वे हाथों से धौंपने से काष्ठादिस्थ अग्नि को उत्पन्न कर कार्य्यों को सिद्ध करते और अभीष्ट को प्राप्त होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्रतदश्नोति धन्वना ।
तस्य साध्वीरिषवो याभिरस्यति नृचक्षसो दृशये कर्णयोनयः ॥८॥

पदार्थः—(यत्र) जहां (ब्रह्मणः) धन का (पतिः) स्वामी (ऋतज्येन) ठीक ठीक प्रत्यंचावाले (क्षिप्रेण) शीघ्रकारी (धन्वना) धनुष् से जिस को (प्र, वष्टि) अच्छे प्रकार चाहता (तत्) उस को (अश्नोति) प्राप्त होता (तस्य) उस के (साध्वीः) श्रेष्ठ (इषवः) वाण होवें (याभिः) जिन से शत्रुओं को (अस्यति) हटावे दूर करे उन से (दृशये) देखने अर्थात् जानने के लिये (कर्णयोनयः) कान आदि कारण वाले (नृचक्षसः) मनुष्यों को देखने योग्य विषय हैं उन को वहां प्राप्त होता है ॥८॥

भावार्थः—जैसे वीर पुरुष धनुष् आदि शस्त्र और आग्नेयादि अस्त्र से शत्रुओं को पराजित करते हैं वैसे धर्मात्मा दोषों को जीत लेता है ॥८॥

फिर राजपुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स संनयः स विनयः पुरोहितः स सुष्टुतः स युधि ब्रह्मणस्पतिः ।
चाक्ष्मो यद्वाजं भरते मती धनादित्सूर्य्यस्तपति तप्यतुर्वृथा ॥९॥

पदार्थः—(सः) वह (सन्नयः) सम्यक् नीति वाला (सः) वह (विनयः) विविध प्रकार की नम्रता वाला (सः) वह (पुरोहितः) आगे जिस को विद्वान् लोग धारण करते (सः) वह (सुष्टुतः) अच्छे प्रकार प्रशंसित (चाक्ष्मः) सहनशील (सः) वही (ब्रह्मणः) धन का (पतिः) स्वामी (वृथा) निष्प्रयोजन दूसरों को पीड़ा देने हारे दुष्टों को (तप्यतुः) दुःख देने वाला विद्वान् वीर पुरुष (मती) विज्ञान से (धना) धनों और (यत्) जिस कारण (वाजम्) अन्नादि सामग्रीयुक्त पदार्थों का (आत्) निरन्तर (भरते) धारण पोषण करता है इस से (युधि) युद्ध में (सूर्य्यः) सूर्य के तुल्य (इत्) ही (तपति) प्रतापयुक्त होता है ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विनय आदि से

युक्त प्रशंसित गुणकर्मस्वभाव वाले दुष्टता के निरोधक और सत्यता के प्रवर्त्तक हैं वे धर्मयुक्त व्यवहार से राज्य की रक्षा करने को समर्थ होते हैं॥६॥

फिर राजा और प्रजा क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विभु प्रभु प्रथमं मेहनावतो बृहस्पतेः सुविदत्राणि राध्या।
इमा सातानि वेन्यस्य वाजिनो येन जना उभये भुञ्जते विशः॥१०॥

पदार्थः—(येन) जिस के आश्रय से (उभये) विद्वान् अविद्वान् दोनों (जनाः) प्रसिद्ध पुरुष (विशः) धनों को (भुञ्जते) प्राप्त होते वह (प्रथमम्) प्रख्यात (विभु) व्यापक (प्रभु) समर्थ उपासना किया हुआ सिद्धिकारी होता है उस के (मेहनावतः) प्रशस्त वर्षाओं के निमित्तिक (वाजिनः) प्राप्त होने वा (वेन्यस्य) चाहने (बृहस्पतेः) सब के रक्षक सूर्य्य के तुल्य प्रकाशयुक्त परमेश्वर के (सातानि) विभाग कर देनें और (राध्या) सुखों को सिद्ध करने योग्य (सुविदत्राणि) सुन्दर विज्ञानों के (इमा) ये निमित्त सब लोगों को ग्रहण करने योग्य हैं॥१०॥

भावार्थः—राजजन और प्रजाजनों को योग्य है कि सर्वव्यापक शक्तिमान् विस्तीर्ण सुख देने वाले ब्रह्म की उपासना कर सब मनुष्यादि प्राणियों के सुखसाधक वस्तुओं को संग्रह करके राजप्रजा के सुखों को सिद्ध करें॥१०॥

फिर मनुष्यों को क्या कर्तव्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

योऽवरे वृजने विश्वथा विभुर्महामु रण्वः शवसा ववक्षिथ।
स देवो देवान् प्रति पप्रथे पृथु विश्वेदु ता परिभूर्ब्रह्मणस्पतिः॥११॥

पदार्थः—(यः) जो (विश्वथा) सब (अवरे) कार्य्यरूप (वृजने) अनित्य जगत् में (रण्वः) रमण कराने हारा (विभुः) व्यापक (परिभूः) सब ओर प्रसिद्ध होने वाला (ब्रह्मणः, पतिः) ब्रह्माण्ड का रक्षक है (सः) (देवः) वह दिव्यस्वरूप ईश्वर (शवसा) बल से (महाम्, उ) वितर्करूप महान् संसार को और (देवान्) विद्वानों वा वसु आदि को (प्रति, पप्रथे) प्रीति के साथ प्रख्यात करता और (पृथु) विस्तीर्ण (ता) उन (विश्वा) समस्त जङ्गम प्राणियों को विस्तृत करता (इत्, उ) उसी को तुम लोग (ववक्षिथ) प्राप्त होने की इच्छा करो॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो परमात्मा अगले पिछले कार्य्यकारणरूप जगत् में परिपूर्ण होके सब का विस्तार करता सब के लिये सब सुखों के साधनों को देता वही सब को उपासना करने और मानने योग्य है॥११॥

अब राजप्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्चन प्र मिनन्ति व्रतं वाम् ।
अच्छेन्द्राब्रह्मणस्पती हविर्नोऽन्नं युजेव वाजिना जिगातम् ॥१२॥

पदार्थः—हे (मघवाना) प्रशस्त धन वाले (इन्द्राब्रह्मणस्पती) राज्य और धन के रक्षक लोगो ! जो (युवोः) तुम्हारे (आपः) प्राणों (सत्यम्) अविनाशी धर्म को (विश्वम्) सब जगत् को (प्रमिनन्ति) नष्ट भ्रष्ट करते (वाम्) तुम्हारे नियम को तोड़ते हैं उन को नष्ट कर (वाजिना) दो घोड़े वेग वाले (युजेव) जैसे संयुक्त हों वैसे (नः) हमारे (हविः) भोजन के योग्य (अन्नम्) अन्न को (जिगातम्) प्राप्त होओ ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सुशिक्षित युक्त किये घोड़े रथ को पहुंचा कर शत्रुओं को पराजित कराते वैसे राज्यैश्वर्य को प्राप्त हुए राज प्रजाजन सत्याचरण के विरोधियों को निवृत्त कर प्राण के अभयरूप दान को तुम लोग देओ ॥१२॥

फिर राजपुरुष क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उताशिष्ठा अनु शृण्वन्ति वह्नयः सभेयो विप्रो भरते मती धना ।
वीळुद्वेषा अनु वश ऋणमाददिः स ह वाजी समिथे ब्रह्मणस्पतिः ॥१३॥

पदार्थः—जो (आशिष्ठाः) अति शीघ्रगामी (वह्नयः) पहुंचाने वाले घोड़ों के तुल्य (वीळुद्वेषाः) दुर्गुणों से दृढ़ द्वेषकारी हैं उन को (अनु, शृण्वन्ति) अनुक्रम से सुनते हैं उन के साथ (समिथे) संग्राम में (सभेयः) सभा में कुशल (विप्रः) बुद्धिमान् जन (मती) बुद्धिबल से (वशा) कामना करने योग्य सुन्दर (धना) धनों को (ह, अनु) (भरते) ही अनुकूल धारण करता (उत) और (सः) वह (वाजी) प्रशस्तज्ञानी (ब्रह्मणः, पतिः) राज्य के धन का रक्षक (ऋणम्) ऋण अर्थात् कर रूप धन का (आददिः) ग्रहण करने वाला हो ॥१३॥

भावार्थः—वह्नि यह घोड़े का गौण नाम है । जैसे अग्नि पहुँचाने वाले होते हैं वैसे ही घोड़े भी होते हैं । राजपुरुष जिन दुष्टाचारियों को सुनें उन को वश में कर के सब का प्रिय सिद्ध किया करें ॥१३॥

फिर अध्यापक लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ब्रह्मणस्पतेरभवद्यथावशं सत्यो मन्युर्महि कर्मा करिष्यतः ।
यो गा उदाजत्स दिवे वि चाभजन्महीव रीतिः शवसासरत्पृथक् ॥१४॥

पदार्थः—(यः) जो (महि) बड़े (कर्म) काम को (करिष्यतः) करने वाले (ब्रह्मणः, पतेः) धन के स्वामी के समीप से (यथावशम्) वश के अनुकूल विचार-पूर्वक (सत्यः) श्रेष्ठ, अधर्म त्यागार्थ ही (मन्युः) क्रोध (अभवत्) होवे (सः) वह जैसे (दिवे) प्रकाश के लिये सूर्य (गाः) किरणों को (उत्, आजत्) ऊपर नीचे पहुंचाता है वैसे धर्म के प्रकाश के लिये होता है। जो (महीव) जैसे श्रेष्ठ माननीय (रीतिः) उत्तम रीति नीति (शवसा) बल के साथ (पृथक्) अलग अलग (असरत्) प्राप्त होवे उस को (च) भी (वि, अभजत्) वह उक्त क्रोध का विभाग करे वा विशेष कर सेवे ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पुरुषार्थी अध्यापक लोग अच्छी शिक्षा को पाकर सत्य में प्रीति और असत्य पर क्रोध को धारण करते वे बड़ी सुशीलता को प्राप्त होके यथेष्ट कार्य्यों को प्राप्त होते हैं ॥१४॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ब्रह्मणस्पते सुयमस्य विश्वहा रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः ।
वीरेषु वीराँ उप पृङ्धि नस्त्वं यदीशानो ब्रह्मणा वेषि मे हवम् ॥१५॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणः) धन के (पते) रक्षक (रथ्यः) रथ क्रिया में प्रवीण (विश्वहा) सबको जानने वा प्राप्त होने वाले (त्वम्) आप (ब्रह्मणा) वेद से (मे) मेरे (यत्) जिस (हवम्) आह्वान बुलाने को (वेषि) प्राप्त होते हो उस आह्वान से (नः) हमको (सुयमस्य) सुन्दर संयम हों जिससे उस और (वयस्वतः) जिसके होने में अच्छा जीवन व्यतीत हो उस (रायः) धनके रक्षक (वीरेषु) वीर सिपाहियों में हम (वीरान्) वीर लोगों से (उप, पृङ्धि) समीप सम्बन्ध कीजिये जिससे हम लोग अभीष्ट कार्य सिद्ध करने वाले (स्याम) हों ॥१५॥

भावार्थः—जो लोग सुन्दर संयम वाले हों वे बहुत काल जीवें जो ब्रह्म-चर्य्य का पालन करें वे आत्मा और शरीर से अच्छे वीर होते हैं ॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूक्तस्य बोधि तनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१६॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मणः पते) धन के पालक विद्वान्! (त्वं) तू (अस्य) इस (सूक्तस्य) सूक्त अर्थात् अच्छे प्रकार कहे वाक्य के अर्थ को (बोधि) जान (तनयम्) औरस पुत्र वा विद्यार्थी जन को (जिन्व) सुखी कर (च) और राज्य का (यन्ता) नियमकर्त्ता हो जिससे (देवाः) विद्वान् लोग (यत्) जिस (विश्वम्) जगत् की

(अवन्ति) रक्षा करते हैं (तत्) उसको बृहत् बड़ा (भद्रम्) कल्याणयुक्त (विदथे) जानने योग्य संग्रामादि व्यवहार में (सुवीराः) सुन्दर वीरों वाले हम लोग (वदेम) उपदेश करें ॥१६॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को उचित है कि सुन्दर नियम से वेद के अर्थों को जान पूर्ण युवावस्था में स्वयंवर विवाह कर धर्म से सन्तानों की उत्पत्ति और रक्षा कर यथावत् ब्रह्मचर्य के साथ सुन्दर शिक्षा दे और विद्वान् करके सुख बढ़ावें ॥१६॥

इस सूक्त में विद्वान् और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानो ॥

यह चौबीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । १ । २ जगती । ३ निचृज्जगती । ४ । ५ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब पच्चीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के आदि में बिजुली का वर्णन करते हैं ॥

इन्धा॑नो अ॒ग्निं व॑नवद्वनुष्य॒तः कृ॒तब्र॑ह्मा शूशुवद्रा॒तह॑व्य॒ इत् ।
जा॒तेन॑ जा॒तमति॒ स प्र स॑र्सृ॒ते यंयं॒ युजं॑ कृणु॒ते ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ॥१॥

पदार्थः—जो (कृतब्रह्मा) धनों को उत्पन्न करने वाला (इन्धानः) तेजस्वी (रातहव्यः) होम के योग्य पदार्थों का दाता (ब्रह्मणः) धन का (पतिः) रक्षक स्वामी (जातेन) उत्पन्न हुए जगत् के साथ (जातम्) उत्पन्न पदार्थ को (अति, सर्सृते) अत्यन्त शीघ्र प्राप्त होता (यं यम्) जिस जिस को (युजम्) कार्य्यों में युक्त (कृणुते) करता (सः, इत्) वही (वनवत्) वन को जैसे वैसे (वनुष्यतः) जलाते नष्ट करते हुए (अग्निम्) विद्युत् अग्नि को (प्र शूशुवत्) अच्छे प्रकार जानता है ॥१॥

भावार्थः—इसमें उपमालङ्कार है। जैसे किरण वायु के साथ चलती है वैसे ही विद्युत् अग्नि सब पदार्थों के साथ चलता है उस को मनुष्य जहां जहां प्रयुक्त करे वहां वहां बड़े काम को सिद्ध करता है ॥ १ ॥

कौन मनुष्य विद्या वृद्धि कर सकता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वी॒रेभि॑र्वी॒रान्व॑नवद्वनुष्य॒तो गोभी॑ र॒यिं प॑प्रथ॒द्बोध॑ति॒ त्मना॑ ।
तो॒कं च॒ तस्य॒ तन॑यं च वर्द्धते॒ यंयं॒ युजं॑ कृणु॒ते ब्रह्म॑ण॒स्पतिः॑ ॥२॥

पदार्थः— जो (ब्रह्मणः, पतिः) अन्न का रक्षक विद्वान् जन (वनुष्यतः) याचक मनुष्य के (वीरेभिः) वीर पुरुषों के साथ (वीरान्) शरीरात्मबलयुक्त को और (गोभिः) इन्द्रियों से (वनवत्) वन जङ्गल से जैसे वैसे (रयिम्) शोभाको (पप्रथत्) प्रख्यात प्रसिद्ध करता है (त्मना) अन्तःकरण से पदार्थ विज्ञान को (बोधति) जानता है (तस्य) उस का (तोकम्) छोटा वालक (च) और ऐश्वर्य (च) तथा (तनयम्) पौत्र आदि (वर्द्धते) वृद्धि को प्राप्त होता वह (यं यम्) जिस जिस को (युजम्) शुभगुणयुक्त (कृणुते) करता है वह वह अपने स्वरूप से प्रख्यात होता है ॥२॥

भावार्थः— इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे धन की याचना करता हुआ पुरुष मन को युक्त करता वैसे पुत्रादि के पालन में चित्त देता है जिस पदार्थ के साथ जिस के योग की योग्यता होती उस को उस के साथ प्रतिदिन युक्त करता है वह वहुत उत्तम मनुष्यों को प्राप्त हो के विद्या की वृद्धि कर सकता है ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सिन्धुर्न क्षोदः शिमीवाँ ऋघायतो वृषेव वध्रींरभि वष्ट्योजसा ।
अग्नेरिव प्रसितिर्नाह वर्त्तवे यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

पदार्थः— जो (शिमीवान्) प्रशस्त कर्मयुक्त (ब्रह्मणः, पतिः) वेद का रक्षक विद्वान् पुरुष (क्षोदः) जल को (सिन्धुः, न) समुद्र जैसे अपने में लय करता (वध्रीन्) वा साधारण वैलों को (अभि) सम्मुख होके जैसे (वृषेव) अति बलवान् वैल मारता वैसे (ओजसा) बल से (ऋघायतः) सत्य धर्म के नाशक शत्रुओं का नाश करता सत्य को (वष्टि) चाहता और (अग्नेरिव) अग्नि से जैसे (प्रसितिः) बन्धन (वर्त्तवे) वर्त्तने के अर्थ (न, अह) नहीं रहता अर्थात् स्वाधीनता होती है वैसे (यं यम्) जिस जिस को (युजम्) शुभ गुणयुक्त (कृणुते) करता है वह उस [उस] को सुखी करता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य पुरुषार्थी समुद्र के तुल्य गम्भीर धनाढ्य वृषभ के तुल्य बलवान् अग्नि के तुल्य शत्रुओं के जलाने वाले सत्य कामना युक्त होते हैं वे समस्त शिल्पविद्या को सिद्ध कर सकते हैं ॥३॥

अब कौन विजयी होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति ।
अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥४॥

पदार्थः—जो (प्रथमः) मुख्य (अनिभृष्टतविषिः) जिस की सेना निरन्तर भ्रष्ट नहीं होती वह(ब्रह्मणः, पतिः) ब्राह्मणादि वर्णव्यवस्था का रक्षक (सत्वभिः) पदार्थों के साथ (गोषु) पृथिवी में (गच्छति) जाता है (ओजसा) बल पराक्रम से शत्रुओं को (हन्ति) मारता (सः) वह (यं यम्) जिस जिस को (युजम्) कार्य में नियुक्त (कृणुते) करता (तस्मै) उस के लिये (दिव्याः) शुद्ध (असश्चतः) जो किसी व्यसन में आसक्त नहीं ऐसे कल्याणकारी वीर पुरुष (अर्षन्ति) प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थः—वे ही लोग विजयी होते हैं जो सब बलों और साधन उपसाधनों से तथा विद्या से युक्त होते हैं ॥४॥

अब कौन मनुष्य कार्यों को सिद्ध करते हैं इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है ॥

तस्मा इद्विश्वे धुनयन्त सिन्धवोऽच्छिद्रा शर्म दधिरे पुरूणि ।
देवानां सुम्ने सुभगः स एधते यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥५॥

पदार्थः—जो (ब्रह्मणः) वेदविद्या का (पतिः) रक्षक प्रचारक विद्वान् मनुष्य (देवानाम्) विद्वानों के (सुम्ने) सुख में (सुभगः) सुन्दर ऐश्वर्य वाला प्रफुल्लित होता हुआ (यंयम्) जिस जिस को (युजम्) शुभ कर्मयुक्त (कृणुते) करता है (सः) (एधते) वह उन्नति को प्राप्त होता (तस्मै, इत्) उसी के लिये (विश्वे) सब (सिन्धवः) समुद्रादि जलाशय (अच्छिद्रा) छेद भेद रहित (पुरूणि) बहुत (शर्म) सुखदायी निवासस्थानों को (दधिरे) धारण करते तथा (धुनयन्त) सर्वत्र चलाते हैं अर्थात् यानादि द्वारा सर्वत्र निवास पाता है ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के सङ्ग में प्रीति रखने पदार्थों का संयोग विभाग करने वाले रसायन विद्या में उद्योगी होवें वे सब पदार्थों से बहुत कार्य सिद्ध कर सकते हैं ॥५॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त में कहे अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । ब्रह्मणस्पतिर्देवता । १ । ३ जगती । २ । ४ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब इस दूसरे मण्डल के छव्वीसवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या कर्त्तव्य है इस विषय को कहते हैं ॥

ऋजुरिच्छंसो वनवद्वनुष्यतो देवयन्निददेवयन्तमभ्यसत् ।
सुप्रावीरिद्वनवत्पृत्सु दुष्टरं यज्वेदयज्योर्वि भजाति भोजनम् ॥१॥

पदार्थः—जो (यज्वा) मिलनसार जन (अयज्योः) विरोधी के (इत्) ही (भोजनम्) भोग्य पदार्थ को (वि, भजाति) पृथक् करता है वह (इत्) ही (सुप्रावीः) सुन्दर रक्षक हुआ (पृत्सु) संग्रामों में (वनवत्) वन के तुल्य (दुष्टरम्) दुःख से उल्लङ्घन करने योग्य शत्रुदल को छिन्न भिन्न करता है जो (देवयन्) अपने को विद्वान् मानता हुआ (अदेवयन्तम्) मूर्ख का सा आचरण करते हुए को (इत्) ही (अभि, असत्) सन्मुख प्राप्त हो वह (वनवत्) किरणों के तुल्य (शंसः) स्तुति करने योग्य (वनुष्यतः) हिंसा करने वाले से (इत्) ही (ऋजुः) सरल कोमल स्वभाव होवे ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य पण्डिताई को चाहते मूर्खता को छोड़ते और शत्रुओं को जीतते हुए भोग्य पदार्थों को विशेष कर सेवन करते हैं वे दुःखों को छोड़ देते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यजस्व वीर प्र विहि मनायतो भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये ।
हविष्कृणुष्व सुभगो यथाससि ब्रह्मणस्पतेरव आ वृणीमहे ॥२॥

पदार्थः—हे (वीर) शुभगुणों में व्याप्त होने वाले विद्यार्थी जन ! तू (मनायतः) अपने को मनन का आचरण करते हुए (ब्रह्मणः) वेदादि शास्त्रों की (पतेः) पालना करने वाले (मनायतः) अपने को मनन विचार का आचरण करने वाले जन से विद्याओं को (प्र, विहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हो धर्म का (यजस्व) सङ्ग कर (मनः) मन को (भद्रम्) कल्याणकारी (कृणुष्व) कर (सुभगः) सुन्दर ऐश्वर्यवाला हुआ (वृत्रतूर्ये) शत्रुओं का जहां वध होता उस संग्राम में (हविः) दान को (कृणुष्व) कर (यथा) जैसे तू (अससि) हो वैसे हम लोग (अवः) रक्षा को (आ, वृणीमहे) अच्छे प्रकार स्वीकार करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य अपने मनों को अति कल्याणकारी मार्ग में प्रवृत्त कर सब कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे कृतकृत्य होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

स इज्जनेन स विशा स जन्मना स पुत्रैर्वाजं भरते धना नृभिः।
देवानां यः पितरमाविवासति श्रद्धामना हविषा ब्रह्मणस्पतिम्॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् जन! जैसे (सः) वह (जनेन) साधारण मनुष्य के (सः) वह (विशा) प्रजा के (सः) वह (जन्मना) जन्म के और (सः) वह (पुत्रैः) सन्तानों के साथ (वाजम्) विज्ञान को तथा (नृभिः) अधिकारी मनुष्यों के साथ (धना) धनों को (भरते) धारण करता (यः) जो (श्रद्धामनाः) मन में श्रद्धा रखने वाला (हविषा) उत्तम व्यवहार ग्रहण के साथ (देवानाम्) विद्वानों के सम्बन्धी (ब्रह्मणः) वेद के (पतिम्) पालक रक्षक (पितरम्) पिता वा अध्यापक का (आविवासति) अच्छे प्रकार सेवन करता (इत्) वही शरीर और आत्मा के बल से युक्त हुआ सुखी होता है॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रीतिपूर्वक विद्वानों के अध्यापक और उपदेशक विद्वान् का सेवन करते हैं वे सर्वत्र सब पदार्थों से निष्पन्न हुए आनन्द को भोगते हैं॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यो अस्मै हव्यैर्घृतवद्भिरविधत्प्र तं प्राचा नयति ब्रह्मणस्पतिः।
उरुष्यतीमंहसो रक्षती रिषोंऽहोश्चिदस्मा उरुचक्रिरद्भुतः॥४॥

पदार्थः—जो (उरुचक्रिः) बहुत कर्म करता (अद्भुतः) आश्चर्यरूप गुणकर्मस्वभाववाला (ब्रह्मणः, पतिः) धन कोष का रक्षक (अस्मै) इस विद्वान् के लिये (घृतवद्भिः) बहुत घृतादि पदार्थों से युक्त (हव्यैः) देने योग्य वस्तुओं से (अविधत्) शुभ कार्यसाधक पदार्थ बनाता (तम्) उस को (प्राचा) प्राचीन विज्ञान से (प्र, नयति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता (अंहसः) पाप से (रक्षति) बचाता (रिषः) हिंसकों को मार के (अस्मै) इस विद्वान् को (अंहोः) पापाचरण से (उरुष्यति) पृथक् रखता वह (ईम्) सब ओर से सुख को प्राप्त होता है॥४॥

भावार्थः—जैसे घृत आदि पुष्ट और सुगन्धित द्रव्यों के होम से वायु और वृष्टिजल शुद्ध होके रोगों से प्राणियों को पृथक् कर सब को सुखी करते हैं वैसे उपदेशक लोग अधर्म के निषेधपूर्वक धर्म के ग्रहण से आत्माओं को शुद्ध कर अविद्यादि रोगों को दूर करते हैं वे कृतकृत्य होते हैं॥४॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा ऋषिः । आदित्यो देवता । १ । ३ । ६ । १३—१५ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ४ । ५ । ८ । १२ । १७ त्रिष्टुप् । ११ । १६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७ भुरिक् पङ्क्तिः । ९ । १० स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सत्ताईसवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में राजपुरुष कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

इमा गिर॑ आदि॒त्येभ्यो॑ घृ॒तस्नू॑ः स॒नाद्राज॑भ्यो जु॒ह्वा॑ जुहोमि ।
शृ॒णोतु॑ मि॒त्रो अ॑र्य॒मा भगो॑ नस्तुविजा॒तो वरु॑णो द॒क्षो अंश॑ः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! जैसे मैं (आदित्येभ्यः) महीनों के तुल्य (राजभ्यः) राजपुरुषों के लिये जिन (इमा) इन प्रत्यक्ष (घृतस्नूः) घृत को शुद्ध कराने वाली (गिरः) शुद्ध की हुई सत्यवाणियों को (जुह्वा) जिह्वारूप साधन से (जुहोमि) होम करता अर्थात् निवेदन करता हूं उन (नः) हमारी वाणियों को यह (मित्रः) मित्रबुद्धि (भगः) सेवने योग्य (तुविजातः) बलादि गुणों से प्रसिद्ध (वरुणः) श्रेष्ठ (दक्षः) चतुर (अंशः) दुष्टों के सम्यक् विनाशक (अर्यमा) न्यायाधीश आप (सनात्) सदैव (शृणोतु) सुनिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो सूर्य्य के तुल्य तेजस्वी राजा लोग और उन के सभासद् प्रजाजनों की सुख दुःख युक्त निवेदन की वाणियों को सुन के न्याय करते वे राज्य बढ़ाने को समर्थ होते हैं ॥१॥

अब पढ़ाने पढ़ने वालों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इ॒मं स्तोमं॒ सक्र॑तवो मे अ॒द्य मि॒त्रो अ॑र्य॒मा वरु॑णो जुषन्त ।
आ॒दि॒त्यास॒ः शुच॑यो॒ धार॑पूता॒ अवृ॑जिना अनव॒द्या अरि॑ष्टाः ॥२॥

पदार्थः—(सक्रतवः) समान बुद्धि वाले (मित्रः) मित्र (अर्यमा) न्यायाधीश और (वरुणः) सब से उत्तम (शुचयः) सूर्य के तुल्य पवित्रकारक (धारपूताः) पवित्र वाणी से युक्त (अवृजिनाः) वर्जनीय पाप से रहित (अनवद्याः) प्रशंसा को प्राप्त

(अरिष्टाः) अहिंसनीय वा किसी को दुःख न देने वाले (आदित्यासः) पूर्ण विद्या-युक्त (अद्य) आज (मे) मेरे (इमम्) इस (स्तोमम्) स्तुति को (जुषन्त) सेवन करें ॥२॥

भावार्थः—सब विद्याप्रिय मनुष्यों को चाहिये कि पूर्ण विद्यावालों को अपने पढ़े की परीक्षा देके अपनी विद्या को निश्चित निर्भ्रम करें। और परीक्षक लोग भी पक्षपात को छोड़ के परीक्षा करें क्योंकि ऐसे किये विना यथावत् विद्या नहीं हो सकती है ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त आ॒दि॒त्यास॑ उ॒रवो॑ गभी॒रा अद॑ब्धासो॒ दिप्स॑न्तो भू॒र्य॑क्षाः।
अ॒न्तः प॑श्यन्ति वृजि॒नोत सा॒धु सर्वं॒ राज॑भ्यः पर॒मा चि॒दन्ति॑ ॥३॥

पदार्थः—जो (गभीरा) गम्भीर स्वभाव युक्त (उरवः) तीव्रबुद्धि वाले (अदब्धासः) अहिंसनीय (भूर्यक्षाः) बहुत प्रकार से देखने जानने वाले (आदित्यासः) अड़तालीस वर्ष के ब्रह्मचर्य को सेव के पूर्ण विद्या वाले विद्वान् हैं (ते) वे (परमा) उत्तम कर्मों का आचरण करते। जो (वृजिना) पाप करते हुए (दिप्सन्तः) दम्भ की इच्छा करने वाले हों उन को (चित्) ही (अन्तः) अन्तःकरण में (अन्ति) निकट से (पश्यन्ति) देख लेते हैं अर्थात् उन से मिलते नहीं और जो (राजभ्यः) राजपुरुषों के लिये (सर्वम्) सब (साधु) श्रेष्ठ काम करते हैं वे परीक्षा कर सकते हैं ॥३॥

भावार्थः—परीक्षा करने वाले जन श्रेष्ठ और दुष्ट पुरुषों की उत्तम प्रकार परीक्षा करते उत्तम स्वभाव वालों के सत्कार और कुत्सित चरित्र वालों के अनादर को करके विद्या की उन्नति निरन्तर करें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

धा॒रय॑न्त आदि॒त्यासो॒ जग॒त्स्था दे॒वा विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पाः।
दी॒र्घाधि॑यो॒ रक्ष॑माणा असु॒र्य॑मृ॒तावा॑न॒श्चय॑माना ऋ॒णानि॑ ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (जगत्) चर और (स्थाः) अचर को (धारयन्तः) धारण करते हुए (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) निवास के आधार स्थावर और प्राणिमात्र जङ्गम जगत् के (गोपाः) रक्षक (दीर्घाधियः) बड़ी बुद्धि वाले (असुर्यम्) मूर्खों के धन की (रक्षमाणाः) रक्षा करते हुए (ऋतावानः) सत्य के सेवी (ऋणानि) दूसरों को देने योग्य विज्ञानों को (चयमानाः) बढ़ाते हुए (आदित्यासः) पूर्ण विद्या वाले (देवाः) सूर्य्यादि के तुल्य तेजस्वी विद्वान् लोग बुद्धि से भीतर देखते हैं वे अध्यापक होने योग्य हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में (अन्तः, पश्यन्ति) इन दो पदों की अनुवृत्ति पूर्व मन्त्र से आती है। यदि विद्वान् पढ़ने वाले विद्यार्थियों को विद्या न देवें तो वे ऋणी हो जावें यही ऋण चुकाना है जो स्वयं पढ़कर दूसरों को पढ़ाना चाहिये ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विद्यामादित्या अवसो वो अस्य यदर्यमन्भय आ चिन्मयोभु ।
युष्माकं मित्रावरुणा प्रणीतौ परि श्वभ्रेव दुरितानि वृज्याम् ॥५॥

पदार्थः—हे (आदित्याः) सूर्य के तुल्य विद्या के प्रकाशक लोगो तथा हे (अर्यमन्) श्रेष्ठ मनुष्यों का सत्कार करने हारे सज्जन ! (यत्) जो (भये) भय होने में (वः) आपको (अस्य) इस (अवसः) पालन के निमित्त (चित्) थोड़ा भी (मयोभु) सुख-दायी वचन हो उसको मैं (आ, विद्याम्) प्राप्त होऊं वा जानूं तथा हे (मित्रावरुणा) प्राणापान के तुल्य सुखदायी विद्वानो ! (युष्माकम्) तुम्हारी (प्रणीतौ) उत्तम नीति में (श्वभ्रेव) पृथिवी के गढ़े के तुल्य (दुरितानि) दुःख देने वाले पापों को (परि, वृज्याम्) परित्याग करूं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे विद्वान् लोग सब प्राणियों के भय का विनाश कर सुख पहुंचा के पापों को निवृत्त करते हैं वैसा निरन्तर करें ॥५॥

फिर विद्वानों के सङ्ग में प्रीति रखने वाले मनुष्य लोग क्या करें
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुगो हि वो अर्यमन्मित्र पन्था अनृक्षरो वरुण साधुरस्ति ।
तेनादित्या अधि वोचता नो यच्छता नो दुष्परिहन्तु शर्म ॥६॥

पदार्थः—हे (आदित्याः) विद्वान् लोगो ! हे (अर्यमन्) श्रेष्ठ सत्कारयुक्त ! हे (मित्र) मित्र ! हे (वरुण) प्रतिष्ठित सज्जन पुरुष ! जो (वः) तुम लोगों का (अनृक्षरः) कण्टकादि रहित (सुगः) जिसमें निर्विघ्न चल सकें (साधुः) जिसमें धर्म को सिद्ध करते ऐसा (पन्थाः) मार्ग (अस्ति) है (तेन, हि) उसी मार्ग से चलने के लिये (नः) हमको (अधि, वोचत) अधिक कर उपदेश करो। और जो यह (दुष्परि-हन्तु) बड़ी कठिनता से टूटे फूटे ऐसे विद्याभ्यासादि के लिये बना हुआ (शर्म) घर है वह (नः) हमारे लिए (यच्छत) देओ ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि धर्मात्मा विद्वानों के स्वभाव को

ग्रहण कर वेदोक्त सत्य मार्ग में चलें जिससे सत्यशास्त्र के पढ़ने पढ़ाने की वृद्धि होवे वही कर्म सदा सेवने योग्य है ॥६॥

अब न्यायाधीश का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

पिपर्त्तु नो अदिती राजपुत्राति द्वेषांस्यर्य्यमा सुगेभिः ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य शर्मोप स्याम पुरुवीरा अरिष्टाः ॥७॥

पदार्थः—जो (राजपुत्रा) जिसका पुत्र राजा हो ऐसी (अदितिः) माता के तुल्य सुख देने वाली राज्ञी और जो (अर्यमा) विद्वानों से प्रीति रखने वाला राजा (सुगेभिः) सुगम मार्गों से (द्वेषांसि, अति) वैर द्वेषों को अच्छे प्रकार छुड़ा के (नः) हमारा (पिपर्त्तु) पालन करे । (मित्रस्य) मित्र तथा (वरुणस्य) प्रशंसायुक्त पुरुष के (बृहत्) बड़े ऐश्वर्य वाले (शर्म) घर की रक्षा करे उस राजा राणी के सङ्ग सम्बन्ध से हम लोग (अरिष्टाः) किसी से न मारने योग्य (पुरुवीराः) शरीर आत्मा के बल से युक्त बहुत पुत्र भृत्यादि जिनके हों ऐसे (उप, स्याम) आपके निकट होवें ॥७॥

भावार्थः—जैसे न्यायाधीश राजा न्यायघर में बैठ के पुरुषों को दण्ड देवे वैसे न्यायाधीशा राणी स्त्रियों का न्याय करे उस न्यायघर में रागद्वेष और प्रीति अप्रीति छोड़ के केवल न्याय ही किया करे अन्य कुछ न करे ॥७॥

फिर मनुष्य किसके तुल्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तिस्रो भूमीर्धारयन् त्रींरुत द्यून्त्रीणि व्रता विदथे अन्तरेषाम् ।
ऋतेनादित्या महि वो महित्वं तदर्य्यमन् वरुण मित्र चारु ॥८॥

पदार्थः—हे (अर्य्यमन्) न्याय करने हारे (वरुण) शान्तशील (मित्र) मित्रजन ! जैसे (ऋतेन) सत्यस्वरूप परमेश्वर ने धारण किये (आदित्याः) सूर्यलोक (तिस्रः) तीन प्रकार की (भूमीः) भूमियों को (उत) और (त्रीन्) तीन प्रकार के (द्यून्) प्रकाशों को (धारयन्) धारण करते हैं वैसे आप (विदथे) जानने योग्य व्यवहार में (व्रता) शरीर आत्मा और मन से उत्पन्न हुए धर्मयुक्त (त्रीणि) तीन प्रकार के कर्मों को धारण करो कराओ । जो (एषाम्) इन सूर्य्य लोकों के (अन्तः) मध्य में (महित्वम्) महत्त्व (चारु) सुन्दर स्वरूप वा (महि) बड़ा कर्म है (तत्) वह (वः) आप लोगों का होवे ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे भूमि और सूर्य्यादि लोक ईश्वर के नियम से बन्धे हुए यथावत् अपनी

अपनी क्रिया करते हैं वैसे मनुष्यों को भी जानना और वर्त्ताव करना चाहिये । इस जगत् में उत्तम मध्यम और अधम तीन प्रकार की भूमि और अग्नि है तथा सूर्य्यलोक भूमिलोक से बड़े बड़े हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्री रोचना दिव्या धारयन्त हिरण्ययाः शुचयो धारपूताः ।
अस्वप्नजो अनिमिषा अदब्धा उरुशंसा ऋजवे मर्त्याय ॥९॥

पदार्थः—जो (हिरण्ययाः) तेजस्वी (धारपूताः) विद्या और उत्तम शिक्षा से जिनकी वाणी पवित्र हुई वे (शुचयः) शुद्ध पवित्र (उरुशंसाः) बहुत प्रशंसा वाले (अस्वप्नजः) अविद्यारूप निद्रा से रहित विद्या के व्यवहार में जागते हुए (अनिमिषाः) आलस्य रहित और (अदब्धाः) हिंसा करने के न योग्य अर्थात् रक्षणीय विद्वान् लोग (ऋजवे) सरल स्वभाव (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (त्री) तीन प्रकार के (दिव्या) शुद्ध दिव्य (रोचना) रुचि योग्य ज्ञान वा पदार्थों को (धारयन्त) धारण करते हैं वे जगत् के कल्याण करने वाले हों ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य जीव प्रकृति और परमेश्वर की तीन प्रकार की विद्या को धारण कर दूसरे को देते सबको अविद्यारूप निद्रा से उठा के विद्या में जगाते हैं वे मनुष्यों के मङ्गल कराने वाले होते हैं ॥९॥

अब मनुष्य कैसे दीर्घ आयु वाले हों इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ये च देवा असुर ये च मर्त्ताः ।
शतं नो रास्व शरदो विचक्षेऽश्यामायूंषि सुधितानि पूर्वा ॥१०॥

पदार्थः—हे (वरुण) अतिश्रेष्ठ (असुर) मद्यपान से सर्वथा रहित विद्वान् पुरुष ! जो (त्वम्) आप (विश्वेषाम्) सब मनुष्यादि जगत् के (राजा) राजा (असि) हो (च) और (ये) जो (देवाः) विद्वान् सभासद् (च) और (ये) जो (मर्त्ताः) साधारण मनुष्य हैं उनको हमारे (विचक्षे) विविध प्रकार के देखने को (शतम्) सौ (शरदः) वर्ष (नः) हमको (रास्व) दीजिये जिससे हम लोग (पूर्वा) पहिली (सुधितानि) सुन्दर प्रकार धारण की हुई अवस्थाओं को (अश्याम) भोगें प्राप्त हों ॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का सेवन करके अति विषयासक्ति को छोड़ देते हैं वे सौ वर्ष से न्यून आयु को नहीं भोगते । इस ब्रह्मचर्य सेवन के विना मनुष्य कदापि दीर्घ अवस्था वाले नहीं हो सकते ॥१०॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

न दक्षिणा वि चिकिते न सव्या न प्राचीनमादित्या नोत पश्चा ।
पाक्या चिद्वसवो धीर्या चिद्युष्मानीतो अभयं ज्योतिरश्याम् ॥११॥

पदार्थः—जो (आदित्याः) सूर्यलोक (न) नहीं (दक्षिणा) दक्षिण (न) न (सव्या) उत्तर (न) न (प्राचीनम्) पूर्व (उत) और (न) न (पश्चा) पश्चिम दिशा में भ्रमते हैं (चित्) और जिन के आधार में (वसवः) पृथिवी आदि वसु (चित्) भी वसते हैं जिनको (पाक्या) बुद्धिमान् (धीर्या) धीर विद्वानों में श्रेष्ठजन (विचिकिते) विशेष कर जानता है उनका आश्रय कर (युष्मानीतः) तुम लोगों से प्राप्त हुआ मैं (अभयम्) भयरहित (ज्योतिः) प्रकाशरूप ज्ञान को (अश्याम्) प्राप्त होऊं ॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सूर्य सब दिशाओं में नहीं भ्रमते जिनके आधार से पृथिवी आदि लोक भ्रमते हैं उनके विज्ञानपूर्वक परमात्मा को जान के अभयरूप पद को प्राप्त होओ ॥११॥

फिर कौन प्रशस्त हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यो राजभ्य ऋतनिभ्यो ददाश यं वर्द्धयन्ति पुष्टयश्च नित्याः ।
स रेवान्याति प्रथमो रथेन वसुदावा विदथेषु प्रशस्तः ॥१२॥

पदार्थः—(यः) जो राजा (राजभ्यः) न्यायप्रकाशक सभासद् राजपुरुषों (च) और (ऋतनिभ्यः) सत्य न्याय करने वाली राणियों के लिये उपदेश (ददाश) देता है (यम्) जिसको (नित्याः) सनातन नीति तथा (पुष्टयः) शरीर आत्मा के बल को (वर्द्धयन्तु) बढ़ाते हैं (सः) वह (रेवान्) प्रशस्त ऐश्वर्य वाला (वसुदावा) धनों का दाता (प्रथमः) मुख्य कुलीन (प्रशस्तः) प्रशंसा को प्राप्त (विदथेषु) जानने योग्य संग्रामादि व्यवहारों में (रथेन) रथ से विजय को (याति) प्राप्त होता है ॥१२॥

भावार्थः—जो पुरुष और जो स्त्री पूर्ण विद्या वाले हों वे न्यायाधीश होकर पुरुष और स्त्रियों की उन्नति करें वे सब प्रशंसा के योग्य विजय करने वाले जानने चाहिये ॥१२॥

फिर कैसा राजा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शुचिरपः सूयवसा अदब्ध उप क्षेति वृद्धवयाः सुवीरः ।
नकिष्टं घ्नन्त्यन्तितो न दूराद्य आदित्यानां भवति प्रणीतौ ॥१३॥

पदार्थः—(यः) जो (शुचिः) पवित्र (अदब्धः) हिंसा अर्थात् किसी से

को न प्राप्त हुआ राजा (सुयवसाः) जिन से अच्छे जौ आदि अन्न उत्पन्न हों उन (अपः) जलों के (उप, क्षेति) निकट वसता है जो (वृद्धवयाः) बड़े जीवन वाला (सुवीरः) सुन्दर वीर पुरुषों से युक्त (आदित्यानाम्) पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्या वाले पुरुषों की (प्रणीतौ) उत्तम नीति में वर्त्तमान (भवति) होता है (तम्) उसको (नकिः) नहीं कोई (अन्तितः) समीप से (न) न (दूरात्) दूर से कोई (घ्नन्ति) मार सकते हैं ॥१३॥

भावार्थः--जो पवित्र आचरण वाला हिंसादि दोषों से रहित पूर्ण सामग्री वाला दीर्घजीवी विद्वानों की रक्षा में सदा रहता उसका समीपस्थ और दूरस्थ शत्रु लोग पराजय कदापि नहीं कर सकते ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदि॑ते॒ मित्र॒ वरु॒णोत मृ॑ळ॒ यद्वो॑ व॒यं च॑कृ॒मा कच्चि॒दागः॑ ।
उ॒र्व॑श्याम॒भ॑यं॒ ज्योति॑रिन्द्र॒ मा नो॑ दी॒र्घा अ॒भि न॑श॒न्तमि॑स्राः ॥१४॥

पदार्थः--हे (अदिते) अखण्डितस्वरूप और विज्ञान वाली न्यायकर्त्री राज्ञी तथा हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (मित्र) सब के सखा (उत) और (वरुण) सब से उत्तम राजन्! आप हम को (मृड) सुखी करो (यत्) जो (वः) तुम्हारा (कच्चित्) कुछ (उरु) बड़ा (आगः) अपराध (वयम्) हम (चकृम) करें उसको क्षमा करो जिससे (अभयम्) भयरहित (ज्योतिः) प्रकाशयुक्त दिन को (अश्याम्) प्राप्त होऊं। और (नः) हमारी (दीर्घाः) बड़ी (तमिस्राः) रात्रि (मा) न [अभि] (नशन्) कटें अर्थात् रात्रि को सुखपूर्वक निर्भय सोवें ॥१४॥

भावार्थः--जिस देश वा नगर में विदुषी स्त्री स्त्रियों का न्याय करने वाली और पुरुषों का न्याय करने वाला विद्वान् पुरुष हो उस देश वा नगर में दिन रात्रि निर्भय होते और विशेष कर चोर आदि के भय से रहित सुखपूर्वक रात्रि व्यतीत होती हैं ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उ॒भे अ॑स्मै पीपयतः स॒मीची॑ दि॒वो वृ॒ष्टिं सु॒भगो॒ नाम॒ पुष्य॑न् ।
उ॒भा क्षया॑वा॒जय॑न्याति पृ॒त्सूभाव॒र्द्धौ भ॑वतः सा॒धू अ॑स्मै ॥१५॥

पदार्थः--जैसे (समीची) जो दीप्ति को सम्यक् प्राप्त होती वह स्त्री और (सुभगः) शोभन ऐश्वर्य वाला राजा (दिवः) दिव्य शुद्ध आकाश से (वृष्टिम्) यज्ञादि द्वारा वर्षा कराते (नाम) जल को (पुष्यन्) पुष्ट करते हुए वैसे (अस्मै) इस राज्य के लिये (उभे) दोनों राजा राणी (पीपयतः) उन्नति करते हैं (उभा)

दोनों (क्षयौ) निवास करते हुए (अर्द्धौ) राज्य को समृद्ध करने वाले (अस्मै) इस राज्य के लिये (साधू) शुभ चरित्र में स्थित (भवतः) होवें वे (पृत्सु) संग्रामों में विजय करने वाले होवें उन दोनों का सङ्गी (आ, जयन्) विजय करता हुआ सुख को (याति) प्राप्त होता है॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्री पुरुष सूर्यदीप्ति जगत् को जैसे वैसे सब राज्य को पुष्ट करें और सुन्दर चरित्रों वाले हों वे न्यायाधीशपन को प्राप्त होते हैं॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

या वो माया अभिद्रुहे यजत्राः पाशा आदित्या रिपवे विचृत्ताः।
अश्वीव ताँ अति येषं रथेनारिष्टा उरावा शर्मन्त्स्याम॥१६॥

पदार्थः—हे (यजत्राः) सत्सङ्ग करने के स्वभाव वाले (आदित्याः) सूर्य के तुल्य विद्या से प्रकाशमान विद्वानो! (याः) जो (वः) आप लोगों की (विचृत्ताः) विस्तृत (अरिष्टाः) किसी से खण्डित न होने योग्य (मायाः) बुद्धियां (अभिद्रुहे) सब ओर से द्रोह करने वाले (रिपवे) शत्रु के लिये (पाशाः) फांसी के तुल्य बांधने वाली होती हैं (तान्) उन तुम लोगों के (अति) निकट प्राप्त होने को मैं (अश्वीव) घोड़ी के तुल्य (आ, येषम्) प्रयत्न करूं और हम लोग (रथेन) रमण के साधन रथ से (उरौ) बड़े (शर्मन्) घर में सुखी (स्याम) होवें॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पण्डित लोग द्रोह को छोड़ के जिन के कोई शत्रु नहीं ऐसे हों वे दुष्टों को पाशों से बांधें और उनकी रक्षा कर के सब सुखी हों॥१६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः॥१७॥

पदार्थः—हे (वरुण) श्रेष्ठ सज्जन (राजन्) सत्य के प्रकाश करने हारे राजन्! (अहम्) मैं (आपेः) प्राप्त होने वाले (भूरिदाव्नः) बहुत धन देने वाले (प्रियस्य) कामना के योग्य (मघोनः) प्रशस्त धन वाले पुरुष की (शूनम्) वृद्धि को (मा, आ, विदम्) न प्राप्त होऊं। किन्तु (सुयमात्) सुन्दर नियम कराने (रायः) धन से (मा, अव, स्थाम्) न अवस्थित होऊं और उस की प्राप्ति का यत्न अवश्य किया करूं और अन्यथा खर्च न करूं ऐसा (विदथे) विज्ञान के व्यवहार में

(सुवीराः) सुन्दर वीरों वाले हुए हम लोग (बृहत्) बड़ा गम्भीर (वदेम) उपदेश करें ॥१७॥

भावार्थः—धनाढ्य लोगों को चाहिये कि राजपुरुषों के साथ विरोध कदापि न करें और न अन्याययुक्त व्यवहार में न्याय से उपार्जन किये धन का कभी खर्च करें सदैव सर्वव्यापक परमात्मा की आज्ञा में वर्त्तें ॥१७॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों आदि का वर्णन होने से इस सूक्त की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्ताईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

कूर्मो गार्त्समदो वा ऋषिः । वरुणो देवता । १ । ३ । ४ । ६ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ । ७ । ११त्रिष्टुप् । ८ विराट् त्रिष्टुप् । ९ भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । १० भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अट्ठाईसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में उपदेशक कैसा हो इस विषय को कहते हैं ॥

इदं कवेरादित्यस्य स्वराजो विश्वानि सान्त्यभ्यस्तु मह्ना ।
अति यो मन्द्रो यजथाय देवः सुकीर्तिं भिक्षे वरुणस्य भूरेः ॥१॥

पदार्थः - मैं (यः) जो (मन्द्रः) आनन्द देने वाला (देवः) विद्वान् (मह्ना) महत्त्व के साथ (अस्तु) होवे उस (स्वराजः) स्वयं शोभायमान (वरुणस्य) श्रेष्ठ (भूरेः) बहुत विद्या वाले (आदित्यस्य) सूर्य के तुल्य वर्त्तमान उपकारी (कवेः) विद्वान् के सम्बन्ध से जो (विश्वानि) सब कर्त्तव्य (सन्ति) हैं (इदम्) इस सब और (सुकीर्त्तिम्) सुन्दर कीर्ति को (यजथाय) सत्कार के लिये (अति, अभि, भिक्षे) अत्यन्त सब ओर से मांगता हूं ॥१॥

भावार्थः--इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य की किरण घटपटादि पदार्थों को प्रकाशित करती हैं वैसे विद्वानों के उपदेश श्रोता लोगों के आत्माओं को प्रकाशित करते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः ।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥२॥

पदार्थः—हे (वरुण) श्रेष्ठ सज्जन विद्वान् पुरुष ! (तव) आप के (व्रते)

सुशीलतारूप नियम में (स्वाध्यः) सुन्दर विज्ञान वाले (तुष्टुवांसः) स्तुतिकर्त्ता (गोमतीनाम्) प्रशस्त गौत्रों वाली (उपसाम्) प्रातःकाल की वेलाओं के (उपायने) समीप प्राप्त होने में (अग्नयः) अग्नियों के (न) तुल्य तेजस्वी (जरमाणाः) स्तुति करते हुए हम लोग (अनु, द्यून्) अनुकूल विद्याप्रकाशों को प्राप्त हो के (सुभगासः) सुन्दर ऐश्वर्यवाले (स्याम) होवें ।।२।।

भावार्थः— विद्यार्थी और उपदेश सुनने वाले मनुष्यों को चाहिये कि सदा विद्वानों का सङ्ग और सेवा करके प्रतिदिन विद्या का ग्रहण कर जैसे प्रातःकाल के समय में सब पदार्थ सुशोभित होते हैं वैसे वे भी होवें ।।२।।

फिर पुत्र लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

**तव॑ स्याम पुरु॒वीर॑स्य॒ शर्म॑न्नुरु॒शंस॑स्य वरुण प्रणेतः ।**

**यूयं नः॑ पुत्रा अदितेरदब्धा अ॒भि क्ष॑मध्वं॒ युज्या॑य देवाः ।।३।।**

पदार्थः—हे (वरुण) श्रेष्ठ (प्रणेतः) सब के नायक सज्जन विद्वान् ! जैसे मैं (पुरुवीरस्य) बहुत प्रवीण शूर (उरुशंसस्य) बहुतों से प्रशंसा किये हुए (तव) आपके (शर्मन्) घर में हम लोग सुखी हों । हे (अदब्धाः) अहिंसनीय (नः) हमारे (पुत्राः) पुत्रो ! (यूयम्) तुम लोग (युज्याय) युक्त करने योग्य व्यवहार के लिये (देवाः) विद्वान् होकर (अभि, क्षमध्वम्) सब ओर से क्षमा करने वाले होओ ।।३।।

भावार्थः— हे पुत्रो ! जैसे हम लोग उत्तम विद्वान् के सम्बन्ध से नीतिविद्या को प्राप्त होके आनन्दित हों वैसे तुम लोग भी क्षमाशील होके अध्यापकों के अनुकूल आचरण से सुशिक्षित विद्वान् होओ ।।३।।

यह जगत् कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

**प्र सी॑मादि॒त्यो अ॑सृजद्विध॒र्ताँ ऋ॒तं सिन्ध॑वो॒ वरु॑णस्य यन्ति ।**

**न श्रा॑म्यन्ति॒ न वि मु॑चन्त्ये॒ते वयो॒ न प॑प्तू रघु॒या परि॑ज्मन् ।।४।।**

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस कारण (विधर्त्ता) अनेक प्रकार के लोकों का धारण करने वाला (आदित्यः) सूर्य (सीम्) सब ओर से (ऋतम्) जल को (असृजत्) उत्पन्न करता है इस से (वरुणस्य) मेघ के सम्बन्ध से (सिन्धवः) नदियां (यन्ति) चलतीं प्राप्त होतीं (न) (श्राम्यन्ति) स्थिर नहीं होती (न, मुचन्ति) अपने चलनरूप कार्य को नहीं छोड़तीं किन्तु (एते) ये नदी आदि जलाशय (वयः) पक्षियों के (न) तुल्य (रघुया) शीघ्रगामी (परिज्मन्) सब ओर से वर्त्तमान भूमि पर (प्र, पप्तुः) अच्छे प्रकार गिरते चलते हैं वैसे तुम लोग भी सब ओर व्यवहारसिद्धयर्थ चलना फिरना आदि व्यवहार करो ।।४।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यह सब जगत् वायु और जल के तुल्य चलायमान है। जैसे नदियां चलतीं पृथिवी का जल ऊपर जाता वहां भी चलायमान होता फिर भूमि पर गिरता, इस प्रकार जीवों की संसार में गति है ॥४॥

फिर विद्यार्थी लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वि मच्छ्रथाय रशनामिवाग ऋध्याम ते वरुण खामृतस्य ।
मा तन्तुश्छेदि वयतो धियं मे मा मात्रा शार्यपसः पुर ऋतोः ॥५॥

पदार्थः—हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुष ! आप (रशनामिव) रस्सी के तुल्य (मत्, आगः) मुझ से अपराध को (वि, श्रथय) विशेष कर नष्ट कीजिये जिस से (ते) आप के समीप हम लोग (ऋध्याम) उन्नत हों। जैसे (ऋतस्य) जल की (खाम्) नदी को नहीं नष्ट करते वैसे आप से (तन्तुः) मूल (मा) न (छेदि) नष्ट किया जाय (वयतः) प्राप्त होते हुए (मे) मेरी (धियम्) बुद्धि को नष्ट न कीजिये (ऋतोः) ऋतु समय से (पुरा) पहिले (अपसः) कर्म से मत (शारि) नष्ट कीजिये और (मात्रा) माता के साथ विरोध (मा) मत कर ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रस्सी से बंधे हुए घोड़े नियम से चलते हैं वैसे ही माता पिता और आचार्य के नियम में बंधे हुए बालक विद्यार्थी विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण करें। कभी मादक द्रव्य के सेवन से बुद्धि को नष्ट न करें। विवाह करके सदैव ऋतुगामी हों और सन्तानों के प्रवाह को न तोड़ें ॥५॥

फिर अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपो सु म्यक्ष वरुण भियसं मत्सम्राळृतावोऽनु मा गृभाय ।
दामेव वत्साद्वि मुमुग्ध्यंहो नहि त्वदारे निमिषश्चनेशे ॥६॥

पदार्थः—हे (वरुण) श्रेष्ठ जन ! आप (मत्) मेरे सम्बन्ध से (भियसम्) भय को (अपो, म्यक्ष) दूर कीजिये। हे (ऋतावः) बहुत सत्य को ग्रहण करने वाले (सम्राट्) सम्यक् प्रकाशमान ! आप (मा) मुझ पर (अनु, गृभाय) अनुग्रह करो (वत्सात्) बछड़े से गौ को जैसे वैसे मुझ से (अंहः) अपराध को (सु, वि, मुमुग्धि) सुन्दर प्रकार विशेष कर छुड़ाइये (त्वत्) आप के सम्बन्ध से (आरे) निकट वा दूर (निमिषः) निरन्तर (चन) भी कोई (नहि) नहीं (ईशे) समर्थ होता है ॥६॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशक पहिले से सब के भय को निकाल

विद्या का ग्रहण करावें बुरे व्यसन छुड़ावें जिससे उनके दूर वा समीप में कोई धर्म से रोकने वाला न हो ॥६॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा नो वधैर्वरुण ये त इष्टावेनः कृण्वन्तमसुर भ्रीणन्ति ।
मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म वि षू मृधः शिश्रथो जीवसे नः ॥७॥

पदार्थः—हे (असुर) दुर्गुणों को दूर करने हारे (वरुण) वायु के तुल्य वर्त्तमान पुरुष ! (ये) जो लोग (ते) आप के (इष्टौ) सङ्गति करने रूप व्यवहार में (एनः) पाप (कृण्वन्तम्) करते हुए को (भ्रीणन्ति) धमकाते हैं वे (नः) हमारे (वधैः) मारने से (मा) न वर्त्तें (ज्योतिषः) प्रकाश से (प्रवसथानि) प्रवासों दूर देशों को (मा, गन्म) न प्राप्त हों आप (नः) हमारे (जीवसे) जीवन के लिये (मृधः) संग्रामों को (वि, शिश्रथः) विशेष कर मारिये जिस से हम लोग निरन्तर सुख को (सु) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्मात्माओं को नहीं मारते दुष्टों को ताड़ना देते किसी के प्रवास को न रोकते और सब के सुख के लिये शत्रुओं को जीतते हैं वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तुविजात ब्रवाम ।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूळभ व्रतानि ॥८॥

पदार्थः—हे (दूलभ) दुःख से मारने योग्य (तुविजात) बहुतों में प्रसिद्ध (वरुण) प्रशंसित पुरुष ! हम लोग (ते) आप के (पुरा) पहिले (नूनम्) निश्चित (उत) और (अपरम्) दूसरे (नमः) सत्कार के वचन को (ब्रवाम) कहें (पर्वते) मेघ में (न) जैसे वैसे (त्वे) आप में (कम्) सुख का (श्रितानि) आश्रय करते हुए (अप्रच्युतानि) नाशरहित (हि) ही (उत) और (व्रतानि) सत्य भाषण आदि व्रतों को कहें ॥८॥

भावार्थः— इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि जो इस जगत् में श्रेष्ठ विद्वान् हैं उनके प्रति सदैव प्रिय वचन कहें और अनुकूल आचरण करें और उनके गुण कर्म स्वभावों को अपने में ग्रहण करें ॥८॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

परा ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान्वरुण तासु शाधि ॥९॥

पदार्थः—हे (वरुण) सर्वोत्कृष्ट (राजन्) सर्वत्र प्रकाशमान जगदीश्वर ! आप (मत्कृतानि) मेरे किये (परा) उत्तम (ऋणा) ऋणों को (सावीः) सिद्ध चुकते कीजिये जिस से (अहम्) मैं (अन्यकृतेन) अन्य ने किये से (मा, भोजम्) न भोगूं (अध) और अनन्तर आप जो (भूयसीः) बहुत (उषासः) दिन (अव्युष्टाः) रक्षादि में निवास को प्राप्त हैं (तासु) उन दिनों में (इत्) ही (नः) हम (जीवान्) जीवों को (आ, शाधि) अच्छे प्रकार शिक्षित कीजिये ॥९॥

भावार्थः—जैसे ईश्वर जिसने जैसा कर्म किया है उसको वैसा फल देता है वेद द्वारा सबको शिक्षा करता वैसे ही विद्वानों को अनुष्ठान करना चाहिये ॥९॥

फिर राजपुरुष विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यो मे राजन्युज्यो वा सखा वा स्वप्ने भयं भीरवे मह्यमाह ।
स्तेनो वा यो दिप्सति नो वृको वा त्वं तस्माद्वरुण पाह्यस्मान् ॥१०॥

पदार्थः—हे (वरुण) श्रेष्ठ (राजन्) राजपुरुष ! (यः) जो (मे) मेरा (युज्यः) मेली (सखा) मित्र जागने (वा) अथवा (स्वप्ने) सोने में (भयम्) भय को प्राप्त होता (वा) अथवा (भीरवे) डरपोक (मह्यम्) मुझ को भय प्राप्त होता है ऐसा (आह) कहे (यः) जो (स्तेनः) चोर (वा) अथवा डाकू (नः) हम को (दिप्सति) धमकाता मारना चाहता (वा) अथवा (वृकः) भेड़िया के तुल्य लुटेरा चोर हम को मारना चाहता (तस्मात्) उस से (त्वम्) आप (अस्मान्) हम लोगों की (पाहि) रक्षा कीजिये ॥१०॥

भावार्थः—जो राजपुरुष प्रजा में निर्भय दुष्टों का निग्रह कर सब प्रजा की रक्षा करते हैं वे सब दुःखों से रहित हो जाते हैं ॥१०॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।
मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥११॥

वार्थः—हे (वरुण) श्रेष्ठ (राजन्) राजपुरुष ! जैसे (अहम्) मैं अन्याय से

(प्रियस्य) प्यारे (मघोनः) बहुत अच्छे धन वाले (भूरिदाव्नः) बहुत पदार्थों के दाता मनुष्य के विरोध को (आ, विदम्) प्राप्त होऊं उस से (शूनम्) सुख को न प्राप्त होऊं। प्राप्त धन से (सुयमात्) सुन्दर वैर आदि व्यवहार के साधक (रायः) धन से विरोध में मैं (मा,अव, स्याम्) न अवस्थित होऊं वैसे आप हों ऐसे करते हुए (सुवीराः) सुन्दर वीरों वाले हम (विदथे) विज्ञान के निमित्त निरन्तर (बृहत्) बड़ा अच्छा (वदेम) कहें ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि अन्याय से विना आज्ञा परपदार्थ के ग्रहण की इच्छा कभी न करें किन्तु धर्मयुक्त व्यवहार से यथाशक्ति धन संचय करें ॥११॥

इस सूक्त में विद्वान् और राजा प्रजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अट्ठाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

कूर्मो गृत्समदो वा ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः १। ४। ५ निचृत् त्रिष्टुप्। २। ६। ७ त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अत्र उनतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

धृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत्कर्त्त रहसूरिवागः।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वाँ अवसे हुवे वः ॥१॥

पदार्थः—हे (आदित्याः) सूर्य्य के तुल्य विद्या के प्रकाशक (इषिराः) ज्ञानयुक्त (धृतव्रताः) नियमों को धारण किये हुए (देवाः) विद्वान् लोगो! तुम (मत्) मेरे (आरे) दूर वा समीप में सत्य को प्रवृत्त (कर्त्त) करो (रहसूरिव) एकान्त में जनने वाली व्यभिचारिणी के तुल्य (आगः) अपराध को मत करो। (विद्वान्) विद्वान् मैं (शृण्वतः) सुनते हुए (वः) आप को (अवसे) रक्षा आदि के लिये (हुवे) बुलाता हूं (वः) तुम लोगों के अपराध को मैं नष्ट करूं। हे (वरुण) सर्वोत्तम (मित्र) मित्र! आप (भद्रस्य) कल्याण की रक्षा आदि के लिये प्रवृत्त हों ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो धर्माचरण करने वाले अधर्म से पृथक् सब को रखने में प्रवर्त्तमान हैं वे कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यूयं देवाः प्रमतिर्यूयमोजो यूयं द्वेषांसि सनुतर्युयोत।
अभिक्षत्तारो अभि च क्षमध्वमद्या च नो मृळयतापरं च॥२॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वानो! (यूयम्) तुम जो (प्रमतिः) उत्तम बुद्धि है उस को (च) और (यूयम्) तुम (ओजः) पराक्रम को (सनुतः) निरन्तर (युयोत) ग्रहण करो। (यूयम्) तुम (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कर्मों को निरन्तर पृथक् करो (अद्य) इस समय (नः) हम को (अपरम्) (च) और जीवसमूह को (मृडयत) सुखी करो। (अभिक्षत्तारः) सम्मुख योग करने वाले तुम लोग हमारे अपराध को (अभि, क्षमध्वम्) सब प्रकार क्षमा करो॥२॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग द्वेष को छोड़ के निरन्तर बुद्धि की उन्नति करते दूसरे के अपराधों को क्षमा करते और सब को सुखी करते हैं वे इस जगत् में सत्कार के योग्य होते हैं॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

किमू नु वः कृणवामापरेण किं सनेन वसव आप्येन।
यूयं नो मित्रावरुणादिते च स्वस्तिमिन्द्रामरुतो दधात॥३॥

पदार्थः—हे (वसवः) पृथिव्यादि के तुल्य विद्या को निवास देने वाले विद्वानो! हम लोग (वः) आप के (किम्, उ) किसी कार्य को (कृणवाम) करें। (अपरेण) अन्य (सनेन) विभाग को प्राप्त (आप्येन) व्याप्त वस्तु से (किम्) क्या ही करें। हे (मित्रावरुणा) प्राण अपान के तुल्य प्रियकारी अध्यापक और उपदेशक (च) और (अदिते) विदुषि माता! (यूयम्) तुम लोग (नः) हमारे लिये (स्वस्तिम्) कल्याण को तथा (इन्द्रामरुतः) बिजुली और वायुओं को (दधात) धारण करो॥३॥

भावार्थः—जो प्रथम कक्षा के विद्वान् हों उन को राजा लोग पूछें कि आप की क्या सेवा हम करें, क्या क्या तुम को देवें जिस से विद्या सुशिक्षा और धर्म की उन्नति करो॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

हये देवा यूयमिदापयः स्थ ते मृळत नाधमानाय मह्यम्।
मा वो रथो मध्यमवाळृते भून्मा युष्मावत्स्वापिषु श्रमिष्म॥४॥

पदार्थः—(हये) हे (देवाः) विद्वानो ! जो (यूयम्) तुम लोग (इत्) ही (आपयः) सकल शुभ गुण व्यापी (स्थ) होओ (ते) वे (नाधमानाय) मांगते हुए (मह्यम्) मेरे लिये (मृलत) सुखी करो जो (वः) तुम्हारा (मध्यमवाट्) पृथिवी के पदार्थों को इधर उधर पहुंचाने वाला (रथः) विमान आदि यान (ऋते) जलरूप समुद्रादि में चलाता है वह नष्ट (मा, भूत्) न हो । ऐसे (युष्मावत्सु) तुम्हारे सदृश (आपिषु) विद्यादि गुणों से व्याप्त सज्जनों में विद्या प्राप्ति के अर्थ हम लोग (श्रमिष्म) परिश्रम करें । यह हमारा श्रम नष्ट (मा) न होवे ॥४॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि विद्याओं को प्राप्त हो के सब को सुखी करें और जैसे दृढ़ पुष्ट यान बनें वैसा प्रयत्न करें सदा विद्वानों में प्रीति रख के विद्या की उन्नति किया करें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र व एको मिमय भूर्यागो यन्मा पितेव कितवं शशास ।
आरे पाशा आरे अघानि देवा मा माधि पुत्रे विमिव ग्रभीष्ट ॥५॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वानो ! (वः) तुम्हारा सङ्गी (एकः) एक असहाय मैं (यत्) जो (भूरि) बहुत (आगः) अपराध है उस को (आरे) दूर (प्र, मिमय) फेंकूं और (पितेव) पिता के तुल्य (कितवम्) जुआ खेलने वाले (मा) मुझ को (शशास) शिक्षा कीजिये । जो (पाशाः) बन्धन और (अघानि) पाप हैं उन को (आरे) दूर (विमिव) पक्षी के तुल्य फेंकूं । इन सब को (पुत्रे) पुत्र के निमित्त (मा) मुझ को (मा) मत (अधि, ग्रभीष्ट) अधिक कर ग्रहण करो ॥५॥

भावार्थः—सब को प्रशंसा करनी चाहिये कि हे विद्वान् जनो ! तुम्हारे सङ्ग से हम लोग पापों को छोड़ धर्म का आचरण करने वाले हों । आप लोग पिता के तुल्य हम को शिक्षा देओ जिससे हम दुष्ट आचरण से दूर रहें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अर्वाञ्चो अद्या भवता यजत्रा आ वो हार्दि भयमानो व्ययेयम् ।
त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य त्राध्वं कर्तादवपदो यजत्राः ॥६॥

पदार्थः—हे (अर्वाञ्चः) आत्मज्ञान सम्बन्धी आदि विद्या को प्राप्त होने वाले (यजत्राः) अच्छी सङ्गति करने हारे (देवाः) विद्या और अच्छी शिक्षा के रक्षक विद्वान् लोगो ! तुम (अद्य) आज दिन (नः) हम लोगों की (त्राध्वम्) रक्षा करो । जो (वः) तुम्हारा (हार्दि) जिस कार्य्य में मन लगता उस को हम लोग (आ) अच्छे

प्रकार ग्रहण करें, हमारे लिये आप विद्या देने वाले (भवत) होओ (निजुरः) निरन्तर हिंसक (कर्त्तात्) छेदक (अवपदः) आपत्काल से (त्राध्वम्) रक्षा करो। हे (यजत्राः) विद्वानों के पूजक लोगो ! (वृकस्य) भेड़िया के तुल्य वर्त्तमान चोर के संसर्ग से रक्षा करो जिस से (भयमानः) भय को प्राप्त मैं व्यर्थ आयु को न (व्ययेयम्) नष्ट करूं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। विद्वानों का यही कर्त्तव्य है कि जो अज्ञान अविद्यादि दोषों से पृथक् रख के सब दुःख से पृथक् कर मनुष्यों को बड़ी अवस्था वाले धर्मात्मा करें ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**माहं मघोनो वरुण प्रियस्य भूरिदाव्न आ विदं शूनमापेः ।**
**मा रायो राजन्त्सुयमादव स्थां बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥७॥**

पदार्थः—हे (वरुण) श्रेष्ठ विद्वान् ! जैसे (अहम्) मैं (प्रियस्य) कामना के योग्य (भूरिदाव्नः) बहुत दान के दाता (आपेः) प्राप्त होते हुए (मघोनः) प्रशंसित धन वाले पुरुष के (शूनम्) सुख को (आ, विदम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं जिस से दुःख को (मा) न प्राप्त हों, हे (राजन्) राजन् सभापते ! जैसे मैं (सुयमात्) सुन्दर यम नियम के साधक (रायः) धन से (अव, स्याम्) अवस्थित होऊं जिससे दरिद्रता को (मा) न प्राप्त होऊं जिससे मिल कर (सुवीराः) सुन्दर वीर पुरुषों वाले हम लोग (विदथे) युद्धादि में (बृहत्) बहुत बलपूर्वक (वदेम) कहें ॥७॥

भावार्थः—विद्वान् और सभापति आदि राजपुरुषों को योग्य है कि उन धर्मसम्बन्धी कार्यों को करें जिनसे दुःख और दरिद्रता प्राप्त न हों। और आपस में मिल के सुन्दर वीरों वाली प्रजाओं को करें ॥७॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । १—५ । ७ । ८ । १० इन्द्रः । ६ इन्द्रासोमौ । ९ बृहस्पतिः । ११ मरुतो देवताः । १ । ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ८ निचृत् त्रिष्टुप् । ४—७ । ९ त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् । ११ भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तीसवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में वायु और सूर्य का विषय कहते हैं ॥

ऋतं देवाय कृण्वते सवित्र इन्द्रायाहिघ्ने न रमन्त आपः ।
अहरहर्यात्यक्तुरपां कियात्या प्रथमः सर्गं आसाम् ॥१॥

पदार्थः--हे मनुष्यो ! तुम को (ऋतम्) जल को उत्पन्न (कृण्वते) करते हुए (सवित्रे) समस्त रसों के उत्पादक (अहिघ्ने) मेघ को काटने सूक्ष्म कर गिराने हारे (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य के हेतु (देवाय) उत्तम गुणयुक्त सूर्य के लिये जो (अहरहः) प्रतिदिन (आपः) जल (न, रमन्ते) नहीं रमण करते अर्थात् सूर्य के आश्रय नहीं ठहरते (आसाम्) इन (अपाम्) जलों की (प्रथमः) पहिली (सर्गः) उत्पत्ति (अक्तुः) प्रकटकर्त्ता सूर्य के सम्बन्ध से (कियति) कितने ही अवकाश में (आ, याति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती है उस को तुम जानो ॥१॥

भावार्थः--जैसे अन्तरिक्षस्थ वायु में जल ठहरता है वैसे सूर्य में नहीं ठहरता । सूर्यमण्डल से ही वर्षा द्वारा जल की प्रकटता होती है और यही सूर्य जल को ऊपर खींचता और वर्षाता है । जल की प्रथम सृष्टि अग्नि से ही होती है ऐसा जानना चाहिये ॥१॥

फिर सूर्य्यमण्डल के कृत्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यो वृत्राय सिनमत्राभरिष्यत्प्र तं जनित्री विदुषं उवाच ।
पथो रदन्तीरनु जोषमस्मै दिवेदिवे धुनयो यन्त्यर्थम् ॥२॥

पदार्थः--(यः) जो सूर्य्य (अत्र) इस जगत् में (वृत्राय) घाम आदि के आवरणकर्त्ता मेघ के लिये (सिनम्) बन्धन को (अभरिष्यत्) धारण करता (तम्) उस को (जनित्री) माता (विदुषे) विद्यावान् सन्तान के लिये (प्र, उवाच) कहती उपदेश करती है इस सूर्य्य विषयक (रदन्तीः) भूमियों को प्राप्त होती हुई (धुनयः) किरणों की चालें (दिवेदिवे) नित्यप्रति (अर्थम्) पदार्थ मात्र को (यन्ति) प्राप्त होतीं (पथः) मार्ग से (अनु, जोषम्) अनुकूल प्रीति को उत्पन्न कराती हैं उन के कृत्य को विद्वान् पुत्र के लिये पिता भी उपदेश करे ॥२॥

भावार्थः--जैसे सूर्य्य मेघ का बन्धनकर्त्ता है वैसे ही पृथिवी आदि लोकों का भी है । जैसे सूर्य्यमण्डल प्रतिदिन रसों को खींच कर नियत समय पर वर्षाता है वैसे इस सूर्य्य के किरण भी प्रत्येक द्रव्य को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऊर्ध्वो ह्यस्थादध्यन्तरिक्षेऽधा वृत्राय प्र वधं जभार ।
मिहं वसान उप हीमदुद्रोत्तिग्मायुधो अजयच्छत्रुमिन्द्रः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (तिग्मायुधः) तीक्ष्ण आयुधों के तुल्य किरणों वाला (ऊर्ध्वः) ऊपर स्थित (इन्द्रः) मेघ का हन्ता सूर्य्य (हि) ही (अन्तरिक्षे) आकाश में (अध्यस्थात्) अधिष्ठित है। (अधः) इस के अनन्तर (वृत्राय) मेघ के (हि) ही (वधम्) ताड़न को (प्र, जभार) प्रहार करता है। (मिहम्) वृष्टि को (वसानः) आच्छादन करता हुआ (ईम्) सब ओर से (उप, अदुद्रोत्) समीप से द्रवित करता पिघलाता है इस प्रकार अपने (शत्रुम्) वैरी मेघ को (अजयत्) जीतता है उस का बोध करो ॥३॥

भावार्थः—सूर्य अति दूरस्थ हो भूमि को धारण करता जल को खींचता है जैसे यह मेघ को छिन्न भिन्न कर भूमि पर गिराता है वैसे ही राजपुरुषों को शत्रु गिराने चाहियें ॥३॥

अब राजपुरुषों के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

बृहस्पते तपुषाश्नेव विध्य वृकद्वरसो असुरस्य वीरान् ।
यथा जघन्थ धृषता पुरा चिदेवा जहि शत्रुमस्माकमिन्द्र ॥४॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़ों के रक्षक (इन्द्र) दुष्टों को विदीर्ण करने हारे राजपुरुष ! (यथा) जैसे सूर्य्य (वृकद्वरसः) मेघ के अग्र भागों को (असुरस्य) विद्वान् के शत्रु के (वीरान्) वीरों को (अश्नेव) अच्छे भोजन करने हारे वीर के तुल्य (तपुषा) अपने ताप से बेधता है वैसे आप दुष्टों को (विध्य) ताड़ना देओ। (धृषता) प्रगल्भता के साथ (पुरा) पहिले (एव) ही (अस्माकम्) हमारे (शत्रुम्) शत्रु को (जहि) मार (चित्) और दोषों को (जघन्थ) नष्ट कर ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं। जो लोग बिजुली के तुल्य वेग बलयुक्त होकर शत्रुओं को मारते हैं वे सूर्य्य के तुल्य राज्य में प्रकाशमान होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अव क्षिप दिवो अश्मानमुच्चा येन शत्रुं मन्दसानो निजूर्वाः ।
तोकस्य सातौ तनयस्य भूरेरस्माँ अर्द्धं कृणुतादिन्द्र गोनाम् ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य के देने वाले सभापति राजन् ! (मन्दसानः)

प्रशंसा को प्राप्त हुए आप (येन) जिस बल से (भूरेः) बहुत प्रकार के (तोकस्य) छोटे सन्तान (तनयस्य) युवा पुत्र के (सातौ) सम्यक् सेवन में (अस्मान्) हम को (गोनाम्) पृथिवी और गौओं की (अर्द्धम्) संपन्नता समृद्धि को (कृणुतात्) कीजिये उस बल से जैसे सूर्य (उच्चा) ऊंचे स्थित बद्दलों और (दिवः) दिव्य आकाश को प्राप्त (अश्मानम्) मेघ को भूमि पर फेंकता है वैसे (शत्रुम्) शत्रु को (अव, क्षिप) दूर पहुंचा और दुष्टों को (निजूर्वाः) निरन्तर मारिये नष्ट कीजिये ॥५॥

भावार्थः--इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजपुरुषों को चाहिये कि जैसे अपने सन्तानों के दुःख दूर कर सम्यक् रक्षा कर बढ़ाते हैं वैसे ही प्रजा के कण्टकों को निवृत्त कर शिष्टों का सम्यक् पालन कर बढ़ावें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र हि क्रतुं वृहथो यं वनुथो रध्रस्य स्थो यजमानस्य चोदौ ।
इन्द्रासोमा युवमस्माँ अविष्टमस्मिन्भयस्थे कृणुतमु लोकम् ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्रासोमा) सेनापति और ऐश्वर्य्यवान् महाशयो ! (युवम्) जो तुम दोनों (रध्रस्य) सम्यक् सिद्धि करते हुए (यजमानस्य) सुखदाता यजमान के (हि) ही (चोदौ) प्रेरक (यम्) जिस को (प्र, वृहथः) बढ़ाओ और जिस (क्रतुम्) बुद्धि को (वनुथः) मांगो चाहो वे तुम दोनों सुखी (स्थः) होओ (अस्मिन्) इस (भयस्थे) भय में स्थित (अस्मान्) हम को (अविष्टम्) व्याप्त होओ (उ) और (लोकम्) देखने योग्य स्थान वा देश को (कृणुतम्) करो ॥६॥

भावार्थः—राजपुरुष बहुत बल और धनाढ्य लोग यथेष्ट ऐश्वर्य्य को पा कर किसी को भय न देवें किन्तु सदैव दरिद्री और निर्बलों को सुख में स्थापन करें निवास करावें ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।
यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (मे) मुझे (पृणात्) तृप्त करे (यः) जो मुझ को (ददत्) सुख देवे (यः) जो मुझ को (निबोधात्) निश्चित बोध करावे (यः) जो (गोभिः) इन्द्रियों से (सुन्वन्तम्) यज्ञ करते हुए (मा) मुझ को (उप, आ, अयत्) अच्छे प्रकार समीप प्राप्त होवे वह मुझ को सेवने योग्य है जो (मा) मुझ को (न) नहीं (तमत्) चाहता (न) नहीं (श्रमत्) श्रम कराता (उत) और (न) नहीं (तन्द्रत्)

मोह करता । हम लोग जिस को (इति) ऐसा (न) नहीं (वोचाम) कहें उस (सोमम्) ओषधि रस को तुम लोग (मा) मत (सुनोत) खींचो ॥७॥

भावार्थः—जो राजपुरुष प्रजा में किसी को क्लेशित नहीं करते, विरुद्ध कर्म का आचरण नहीं करते, सब को सुखी करते, उपदेश से बोध कराते, वे सुख के देने से नित्य तृप्त करने योग्य हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जेषि शत्रून् ।**
**त्यं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाणमिन्द्रो हन्ति वृषभं शण्डिकानाम् ॥८॥**

पदार्थः—हे (सरस्वति) विज्ञानयुक्त विदुषी राणी (मरुत्वती) प्रशंसित रूप वाली (धृषती) प्रगल्भ्य उत्साहिनी ! आप जैसे (इन्द्रः) सेनापति (त्यम्) उस (शर्धन्तम्) बलवान् (तविषीयमाणम्) सेना जैसे युद्ध करें वैसा आचरण करते हुए (शण्डिकानाम्) शत्रुओं की सेना के अवयव रूप योद्धाओं में वर्त्तमान (वृषभम्) अत्यन्त बली शत्रु को (हन्ति) मारता है (चित्) और वैसे (अस्मान्) हम को (त्वम्) आप (अविड्ढि) व्याप्त वा प्राप्त हो और (शत्रून्) हमारे सुख को नष्ट करने हारे शत्रुओं को (जेषि) जीतती हो इस से सब को सत्कार करने योग्य हो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे राजा शत्रुओं को मार कर पुरुषों का सत्कार व न्याय करता है वैसे राणी दुष्टा स्त्रियों को निवृत्त कर सब स्त्रियों की सदा रक्षा करे अर्थात् जैसे पुरुष न्यायाधीश हों वैसे स्त्रियाँ भी हों ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**यो नः सनुत्य उत वा जिघत्नुरभिख्याय तं तिगितेन विध्य ।**
**बृहस्पत आयुधैर्जेषि शत्रून्द्रुहे रीषन्तं परि धेहि राजन् ॥९॥**

पदार्थः—हे (राजन्) प्रकाशमान राजन् ! आप (यः) जो (नः) हमारा (सनुत्यः) नम्रादि गुणयुक्त जनों में रहने वाला (उत, वा) अथवा (जिघत्नुः) मारने की इच्छा करने वाला है (तम्) उस को (अभिख्याय) सब ओर से प्रकट कर (तिगितेन) प्राप्त हुए शस्त्र से (विध्य) ताड़ना दीजिये । हे (बृहस्पते) बड़े बड़े विषय के रक्षक ! जिस कारण आप (आयुधैः) शस्त्र अस्त्रों से (शत्रून्) शत्रुओं को (जेषि) जीतते हो और (रीषन्तम्) मारते हुए को जीतते हो इससे उनको (द्रुहे) द्रोहकर्त्ता के लिये (परि, धेहि) सब ओर से धारण कीजिये ॥९॥

भावार्थः—प्रजापुरुषों को चाहिये कि अपने दुःखों को राजपुरुषों से निवेदन कर निवृत्त करावें। जो प्रजा की रक्षा में प्रीति से वर्त्तमान हैं उन को सुख दिलावें और जो हिंसक हैं उनका निवेदन कर दण्ड दिलावें ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अस्माकेभिः सत्वभिः शूर शूरैर्वीर्या कृधि यानि ते कर्त्वानि ।
ज्योगभूवन्ननुधूपितासो हत्वी तेषामा भरा नो वसूनि ॥१०॥

पदार्थः—हे (शूर) दुष्टों को मारने हारे वीरजन ! (यानि) जो (वीर्या) वीर पुरुषों के लिये हितकारी धन (ते) आपके (ज्योक्) निरन्तर (कर्त्वानि) करने योग्य हैं उनको (अस्माकेभिः) हमारे सम्बन्धी (सत्वभिः) शरीरधारी प्राणी (शूरैः) निर्भय पुरुषों के साथ आप (कृधि) कीजिये। जो (अनुधूपितासः) अनुकूल गन्धों से संस्कार किये हुए (अभूवन्) होवें उनकी रक्षा कर दुष्टों को (हत्वी) मार के (तेषाम्) उनके और (नः) हमारे (वसूनि) उत्तम द्रव्यों को आप (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥१०॥

भावार्थः—जब राजाओं में युद्ध प्रवृत्त हो प्रजास्थ मनुष्य उनके प्रति ऐसे कहें कि तुम डरो नहीं। जितने हम लोग हैं वे सब तुम्हारे सहायक हैं। जो ऐसे आप हम आपस में एक दूसरे के सहायक न हों तो विजय कहां से होवे ? ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तं वः शर्धं मारुतं सुम्नयुर्गिरोप ब्रुवे नमसा दैव्यं जनम् ।
यथा रयिं सर्ववीरं नशामहा अपत्यसाचं श्रुत्यं दिवेदिवे ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यथा) जैसे (सुम्नयुः) अपने को धन की इच्छा करने वाला मैं (नमसा) सत्काररूप (गिरा) वाणी से (वः) तुम्हारे (तम्) उस (मारुतम्) वायुओं के सम्बन्धी (शर्द्धम्) बल को (दिवेदिवे) प्रतिदिन (दैव्यम्) विद्वानों में प्रसिद्ध हुए (जनम्) जन के प्रति (उप, ब्रुवे०) उपदेश करूं वैसे तुम लोग हमारे बल को सब के प्रति कहा करो। जैसे हम लोग (श्रुत्यम्) सुनने में प्रकट (अपत्यसाचम्) उत्तम सन्तानयुक्त (सर्ववीरम्) जिस से सब वीर पुरुष हों ऐसे (रयिम्) धन को प्राप्त हो के पूर्ण अवस्था को भोग के (नशामहै) शरीर छोड़ें वैसे तुम लोग भी होओ ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे राजपुरुष प्रजा के गुणों को अपने लोगों के प्रति कहें वैसे प्रजापुरुष राजपुरुषों के गुणों को अपने

सहयोगियों से कहें । ऐसे परस्पर गुण ज्ञानपूर्वक प्रीति को प्राप्त होके नित्य आनन्दित होवें ॥११॥

इस सूक्त में स्त्री पुरुष और राज प्रजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ।

यह तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ । २ । ४ जगती । ३ विराट् जगती । ५ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ६ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब इकतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में शिल्पविद्या का विषय कहते हैं ॥

अस्माकं मित्रावरुणावतं रथमादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
प्र यद्वयो न पप्तन्वस्मनस्परि श्रवस्यवो हृषीवन्तो वनर्षदः ॥१॥

पदार्थः—हे (सचाभुवा) गुणसम्बन्ध के साथ हुए (मित्रावरुणा) राजप्रजा पुरुषो ! जैसे तुम लोग (आदित्यैः) महीनों के तुल्य वर्त्तमान पूर्ण विद्वान् (रुद्रैः) प्राण के तुल्य बलवान् (वसुभिः) भूमि आदि के तुल्य गुणयुक्त जनों ने बनाये (अस्माकम्) हमारे (रथम्) रथ पर चढ़ के (प्र, अवतम्) अच्छे प्रकार चलो तथा (यत्) जो (वस्मनः) वसते हुए (श्रवस्यवः) अपने को अन्न चाहने वाले (हृषीवन्तः) बहुत आनन्दयुक्त (वनर्षदः) वन में रहने वाले (वयः, न) पक्षियों के तुल्य सब ओर से (परि, पप्तन्) उड़ें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों का अनुकरण करके विमानादि यान बना के पक्षियों के तुल्य अन्तरिक्षादि मार्गों में सुख से गमनागमन किया करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध स्मा न उदवता सजोषसो रथं देवासो अभि विक्षु वाजयुम् ।
यदाशवः पद्याभिस्तित्रतो रजः पृथिव्याः सानौ जङ्घनन्त पाणिभिः ॥२॥

पदार्थः—हे (सजोषसः) आपस में बराबर प्रीति के निबाहने वाले (रजः) लोकों के (तित्रतः) पार होते हुए (देवासः) विद्वान् लोगो ! तुम (नः) हमारे

(वाजम्) वेग से चलने वाले (रथम्) विमानादि यान को (विक्षु) प्रजाओं में (ग्रभि, उत, ग्रवत) सब प्रकार चाहें (ग्रध) इसके अनन्तर जैसे (यत्) जो (ग्राशवः) शीघ्रगामी घोड़े चलते हैं वैसे (पद्याभिः) चलने योग्य गतियों से (पृथिव्याः) भूमि के (सानौ) ऊंचे प्रदेश में (पाणिभिः) हाथों से (स्म) ही (जङ्घनन्त) शीघ्र ताड़ना देओ ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य हाथों से यानों में यन्त्रों को स्थिर कर और ताड़ना देकर इनको चलावें तो वे घोड़े के तुल्य पृथिवी के ऊपर ऊपर जाने आने को समर्थ होते हैं ॥२॥

फिर राज प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत स्य न इन्द्रो विश्वचर्षणिर्दिवः शर्द्धेन मारुतेन सुक्रतुः ।
अनु नु स्थात्यवृकाभिरूतिभी रथं महे सनये वाजसातये ॥३॥

पदार्थः—(विश्वचर्षणिः) सबको दिखाने चिताने वाला (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धियुक्त (इन्द्रः) सूर्य के तुल्य तेजस्वी सभापति (दिवः) जैसे प्रकाश से सूर्य शोभित हो वैसे (अवृकाभिः) चोर आदि दुष्टों से रहित (ऊतिभिः) रक्षा आदि से (मारुतेन) मनुष्य सम्बन्धी (शर्द्धेन) बल के साथ (महे) बड़े (सनये) सुख के सम्यक् विभाग के लिये और (वाजसातये) संग्राम के सम्यक् सेवने के लिये (नः) हमारे (रथम्) विमानादि यान का (अनु, स्थाति) अनुष्ठान करता है (स्यः) वह (उत) तो (नु) शीघ्र ऐश्वर्य को प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य अपने प्रताप से सब जगत् की पालना करता वैसे धार्मिक प्रजा और राजपुरुष अपने राज्य की रक्षा किया करें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत स्य देवो भुवनस्य सक्षणिस्त्वष्टा ग्नाभिः सजोषा जूजुवद्रथम् ।
इळा भगो बृहद्दिवोत रोदसी पूषा पुरन्धिरश्विनावधा पती ॥४॥

पदार्थः—जो (पूषा) पुष्टिकारक (पुरन्धिः) पुरों का धारण करने वाला (सक्षणिः) मेली (सजोषाः) सुख दुःख और प्रीति को बराबर रखने वाला (भगः) ऐश्वर्यभागी (देवः) प्रकाशक (पती) पालन करने हारे (अश्विनौ) सूर्यचन्द्रमा के तुल्य (उत) और (दिवा) प्रकाश के साथ (रोदसी) सूर्य भूमी (भुवनस्य) लोकों के (त्वष्टा) छेदन करने वाले सूर्य के तुल्य (रथम्) विमानादि यान को (जूजुवत्)

पहुंचावे (अध) इसके अनन्तर (उत) और इसकी (ग्नाभिः) वाणियों के साथ (इला) उत्तम वाणी है (स्यः) वह (बृहत्) बड़े सुख को प्राप्त होवे ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विजुली के तुल्य और सुशिक्षित वाणी के तुल्य वर्त्तते हैं वे अनेक शिल्पविद्या से साध्य यानों को बना के ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥४॥

फिर स्त्रीपुरुष के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत त्ये देवी सुभगें मिथूदृशोपासानक्ता जगतामपीजुवा ।
स्तुषे यद्वां पृथिवि नव्यसा वचः स्थातुश्च वयस्त्रिवया उपस्तिरे ॥५॥

पदार्थः—हे (पृथिवि) पृथिवी के तुल्य वर्त्तमान सहनशील स्त्रि ! (त्रिवयाः) तीनों अवस्था भोगने वाली तू जैसे (त्ये) वे (मिथूदृशा) आपस में एक दूसरे को देखने वाले (सुभगे) सुन्दर ऐश्वर्य के निमित्त (देवी) प्रकाशमान (अपीजुवा) प्रेरक (उषासानक्ता) दिन रात (जगताम्) संसारस्थ मनुष्यादि (च) और (स्थातुः) स्थावर वृक्षादि के पालक होते हैं (उत) और जैसे मैं (नव्यसा) नवीन (वचः) वचन से (वयः) अभीष्ट अवस्था को (यत्) जिनकी (स्तुषे) स्तुति करता हूं और (उपस्तिरे) निकट आच्छादित रक्षित करता हूं वैसे ही (वाम्) उनकी स्तुति कर ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रात दिन परस्पर मिले हुए वर्त्तते हैं वैसे ही स्त्री पुरुष वर्त्तें जैसे पुरुष ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ के सब पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को जान कर विद्वान् होते हैं वैसे ही स्त्रियां भी हों ॥५॥

फिर हम मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत वः शंसमुशिजामिव श्मस्यहिर्बुध्न्यो३ज एकपादुत ।
त्रित ऋभुक्षाः सविता चनो दधेऽपां नपादाशुहेमा धिया शमि ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जैसे (त्रितः) ब्रह्मचर्य अध्ययन और विचार इन तीन कर्मों से (ऋभुक्षा) मेधावी (सविता) ऐश्वर्य करने हारा (नपात्) न गिरने वाला वा पग आदि अवयवों से रहित (आशुहेमा) शीघ्र बढ़ने वाला (उत) और (अजः) कभी न उत्पन्न होने वाला (एकपात्) एक प्रकार की प्राप्तियुक्त (अहिः) व्याप्तिशील (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में व्याप्त मेघ के तुल्य वर्त्तमान मैं (धिया) बुद्धि वा कर्म से (शमि) कर्म में प्रवृत्त होऊं (अपाम्) प्राणों के (चनः) अन्न को (दधे) धारण करता हूं वैसे हे पत्नि ! तू प्रवृत्त हो जैसे हम (उशिजामिव) कामना के योग्य

(वः) तुम विद्वानों की (शंसम्) स्तुति को (इमसि) चाहते हैं (उत) और तुमको धारण करें वैसे तुम लोग भी हमारे विषय में वर्त्तो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे ईश्वर अजन्मा कामना के योग्य सत्य गुणकर्मस्वभाव वाला सेवने योग्य है वैसे हम सब जीव लोग हैं इससे ब्रह्मचर्यादि शुभ कर्म में हमको सदा वर्त्तना चाहिये ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एता वो वश्म्युद्यता यजत्रा अतक्षन्नायवो नव्यसे सम् ।
श्रवस्यवो वाजं चकानाः सप्तिर्न रथ्यो अह धीतिमश्याः ॥७॥

पदार्थः—जैसे (वाजम्) विज्ञान को (चकानाः) चाहते हुए (श्रवस्यवः) अपने को अन्न वा शास्त्र सुनने की इच्छा करते हुए (यजत्राः) मेल मिलाप रखते हुए (आयवः) मनुष्य (नव्यसे) अति नवीन जन के लिये (रथ्यः) रथ के चलाने वाले (सप्तिः) घोड़े के (न) तुल्य विचारणीय विषय को (सम्, अतक्षन्) सम्यक् सूक्ष्म करते हैं अर्थात् अच्छे प्रकार समझाते हैं वैसे (वः) तुम लोगों के (एता) इन (उद्यता) उत्तम प्रकार ग्रहण किये वचनों को मैं (वश्मि) चाहता हूं। हे विद्वन्! जैसे आप (अह) नियमपूर्वक (धीतिम्) धैर्य को (अश्याः) प्राप्त होओ वैसे मैं भी धैर्य को प्राप्त होऊं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। मनुष्यों को चाहिये कि जिस जिस पदार्थ की कामना विद्वान् लोग करें उस उस की कामना करें जैसे विद्वान् लोग उपदेश करें वैसे उसको सुन निश्चय कर स्वीकार और अनुष्ठान किया करें ॥७॥

इस सूक्त में विद्वान् और विदुषी स्त्रियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । १ द्यावा पृथिव्यौ । २ । ३ इन्द्रस्त्वष्टा वा । ४ । ५ राका । ६ । ७ सिनीवाली । ८ लिङ्गोक्ता देवताः । १ जगती । ३ निचृज्जगती । ४ । ५ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ अनुष्टुप् । ७ विराडनुष्टुप् । ८ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब बत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र से मनुष्यों को क्या कर्त्तव्य है इस विषय को कहते हैं ॥

अस्य मे द्यावापृथिवी ऋतायतो भूतमवित्री वचसः सिषासतः।
ययोरायुः प्रतरं ते इदं पुर उपस्तुते वसूयुर्वां महो दधे ॥१॥

पदार्थः—जो (अवित्री) रक्षा आदि के निमित्त (उपस्तुते) समीप में प्रशंसा को प्राप्त (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (मे) मेरे (अस्य) इस प्रत्यक्ष (वचसा) वचन के सम्बन्ध से (भूतम्) उत्पन्न हुए (ऋतायतः) जल के समान आचरण करते (सिषासतः) वा अच्छे प्रकार विभाग होने के समान आचरण करते जिन से (प्रतरम्) पुष्कल (इदम्) इस (आयुः) जीवन को (वसूयुः) धन की चाहना करता हुआ मैं (पुरः) आगे (दधे) धारण करता हूं (ते) वे सब जगत् का सुख सिद्ध करते हैं (वाम्) उनकी उत्तेजना से मैं (महः) बहुत सुख को धारण करता हूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को भूमि और अग्नि का सेवन जो युक्ति के साथ किया जाता है तो पूर्ण आयु और धन की प्राप्ति हो सकती है ॥१॥

अब विद्वानों की मित्रता को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा नो गुह्या रिप आयोरहन्दभन्मा न आभ्यो रीरधो दुच्छुनाभ्यः।
मा नो वि यौः सख्या विद्धि तस्य नः सुम्नायता मनसा तत्त्वेमहे ॥२॥

पदार्थः—जो (नः) हमारे (गुह्या) गुप्त एकान्त के (सख्या) मित्रपन के काम (आयोः) मनुष्य के सुख को (अहन्) किसी दिन में (मा, दभन्) मत नष्ट करे (रिपः) और पृथिवी (मा) मत नष्ट करे वा जैसे मैं किसी मनुष्य के सुख को न नष्ट करूं वैसे हे सेनापति! आप (आभ्यः) इन पृथिवी वा (दुच्छुनाभ्यः) दुःखकारिणी शत्रु की सेनाओं से (नः) हम लोगों को (मा, रीरधः) मत नष्ट करें (मा) मत (नः) हम लोगों को (मनसा) अन्तःकरण से (वि, यौः) अलग करें वा (सुम्नायता) अपने को सुख की इच्छा करते हुए (नः) हम लोगों को (विद्धि) जानो (तस्य) उस सज्जन के सुख को (मा) मत नष्ट करो इस कारण हम लोग (तत्) उक्त कर्म और [त्वा] आपको (ईमहे) याचते हैं ॥२॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को इस प्रकार सदा इच्छा करनी चाहिये कि किसी के सुख की हानि कभी न करनी चाहिये, मित्रता का भङ्ग न करना चाहिये, सब सज्जनों की सदा रक्षा करनी चाहिये। निरन्तर सज्जनों के लिये सुख मांगना चाहिये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**अहेळता मनसा श्रुष्टिमा वह दुहानां धेनुं पिप्युषीमसश्चतम् ।**
**पद्याभिराशुं वचसा च वाजिनं त्वां हिनोमि पुरुहूत विश्वहा ॥३॥**

पदार्थ—हे (पुरुहूत) बहुतों से सत्कार पाये हुए ! आप (अहेलता) अनादर किये हुए (मनसा) विज्ञान से वा (पद्याभिः) प्राप्त करने योग्य क्रियाओं से (वचसा, च) और वचन से (असश्चतम्) अप्राप्त (पिप्युषीम्) बढ़ी हुई बढ़ाने वा बढ़वाने (दुहानाम्) और सुख को अच्छे प्रकार पूरा करने वाली (धेनुम्) गौ के समान वाणी को (विश्वहा) सब दिन (श्रुष्टिम्) शीघ्र (आ, वह) प्राप्त होओ वा प्राप्त कराओ मैं (वाजिनम्) प्रशंसित विज्ञान वाले (त्वाम्) आप को (हिनोमि) प्राप्त होता हूं ॥३॥

भावार्थः—जो समाधानयुक्त अन्तःकरण से औरों के लिये उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को शीघ्र प्राप्त करता है उस को सब सत्कार करके बढ़ावें ॥३॥

अब स्त्रियों के गुणों को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।**
**सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ॥४॥**

पदार्थः—मैं (त्मना) आत्मा से (राकाम्) उस रात्रि के जो पूर्ण प्रकाशित चन्द्रमा से युक्त है समान वर्त्तमान (सुहवाम्) सुन्दर स्पर्द्धा करने योग्य जिस स्त्री की (सुष्टुती) शोभनस्तुति के साथ (हुवे) स्पर्द्धा करता हूं वह (सुभगा) उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाली (नः) हम लोगों को (शृणोतु) सुने और (जानातु) जाने (अच्छिद्यमानया) न छेदन करने योग्य (सूच्या) सुई से (अपः) कर्म (सीव्यतु) सीने का करे (शतदायम्) असंख्य दायभाग वाले को सीवे (उक्थ्यम्) और प्रशंसा के योग्य असंख्य दायभागी (वीरम्) उत्तम सन्तान को (ददातु) देवे ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उस मनुष्य वा स्त्री का अहोभाग्य होता है जिस को अभीष्ट स्त्री वा पुरुष प्राप्त हो जैसे गुण कर्म स्वभाव वाला पुरुष हो वैसी पत्नी भी हो यदि दोनों विद्वान् स्त्री पुरुष ऋतु समय को न उल्लङ्घन कर अर्थात् ऋतु समय के अनुकूल प्रेम से सन्तानोत्पत्ति करें तो उन की सन्तान प्रशंसित क्यों न हों। जैसे छिन्नभिन्न वस्त्र सुई से सिया जाता है वैसे जिन के मन में परस्पर प्रीति हो उन का कुल सब का मान्य होता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो याभिर्ददासि दाशुषे वसूनि ।
ताभिर्नो अद्य सुमना उपागहि सहस्रपोषं सुभगे रराणा ॥५॥

पदार्थः—हे (राके) रात्रि के समान सुख देने वाली ! जो (ते) आप की (सुपेशसः) सुन्दर रूप वाली दीप्ति और (सुमतयः) उत्तम बुद्धि हैं जिन से आप (दाशुषे) देने वाले पति के लिये (वसूनि) धनों को (ददासि) देती हो उन से (नः) हम लोगों को (अद्य) आज (सुमनाः) प्रसन्नचित्त हुई (उपागहि) समीप आओ । हे (सुभगे) सौभाग्ययुक्त स्त्री (रराणा) उत्तम देने वाली होती हुई हम लोगों के लिये (सहस्रपोषम्) असंख्य प्रकार से पुष्टि को देओ ॥५॥

भावार्थः—यदि सुलक्षणा विदुषी स्त्री श्रेष्ठ विद्वान् जन की पत्नी हो तो धन की और सुख की बहुत प्रकार प्राप्ति हो ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥६॥

पदार्थः—हे (पृथुष्टुके) मोटी मोटी जङ्घाओं वाली ! (सिनीवालि) जो अति प्रेम से युक्त तू (देवानाम्) विद्वानों की (स्वसा) वहिन (असि) है सो तू मैंने जो (आहुतम्) सब ओर से होमा है उस (हव्यम्) देने योग्य द्रव्य को (जुषस्व) प्रीति से सेवन कर । हे (देवि) कामना करती हुई स्त्री ! तू हमारी (प्रजाम्) प्रजा को (दिदिड्ढि) देओ ॥६॥

भावार्थः—जो विद्वानों के कुल की कन्या विद्वानों की वन्धु ब्रह्मचर्य से विद्या को प्राप्त हुई प्रकाशमान हो उसे पत्नी कर विधि से इस में सन्तानों को जो उत्पन्न करे वह पुरुष और वह स्त्री दोनों सुखी हों ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी ।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (या) जो (सुबाहुः) सुन्दर वाहु और (स्वङ्गुरिः) सुन्दर अंगुलियों वाली तथा (सुषूमा) सुन्दर पुत्रोत्पत्ति करने और (बहुसूवरी) बहुत सन्तानों की उत्पन्न करने वाली स्त्री है (तस्यै) उस (विश्पत्न्यै) प्रजाजनों की

पालने वाली (सिनीवाल्यै) प्रेम से सम्बद्ध हुई के लिये (हविः) देने योग्य वीर्य को (जुहोतन) छोड़ो ॥७॥

भावार्थः—पुरुषों को यह जानना चाहिये कि वे ही पत्नी उत्तम होती हैं जो सर्वाङ्ग सुन्दरी बहुत प्रजा उत्पन्न करने वाली शुभ गुणकर्मस्वभावयुक्त हों, उन में से एक एक पुरुष को चाहिये कि एक एक स्त्री के साथ विवाह कर के प्रजा उत्पन्न करें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

या गुङ्गूर्या सिनीवाली या राका या सरस्वती ।
इन्द्राणीमह्व ऊतये वरुणानीं स्वस्तये ॥८॥

पदार्थः—हे पुरुषो ! जैसे मैं (या) जो (गुङ्गूः) गुङ्ग मुङ्ग बोले वा (या) जो (सिनीवाली) प्रेमास्पद को प्राप्त हुई (या) जो (राका) पौर्णमासी के समान वर्त्तमान अर्थात् जैसे चन्द्रमा की पूर्ण कान्ति से युक्त पौर्णमासी होती वैसी पूर्ण कान्तिमती और (या) जो (सरस्वती) विद्या तथा सुन्दर शिक्षासहित वाणी से युक्त वर्त्तमान है उस (इन्द्राणीम्) परमैश्वर्ययुक्त को (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (अह्वे) बुलाता हूं उस (वरुणानीम्) श्रेष्ठ की स्त्री को (स्वस्तये) सुख के लिये बुलाता हूं वैसे तुम भी अपनी अपनी स्त्री को बुलाओ ॥८॥

भावार्थः—यदि कोई स्त्री गूङ्गी और कोई उत्तम सर्व लक्षण सम्पन्न विदुषी हो उससे ऐश्वर्य और सुख निरन्तर बढ़ाने चाहिये ॥८॥

इस सूक्त में विद्वान् की मित्रता और स्त्री के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ के साथ पिछले सूक्तार्थ की सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह बत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । रुद्रो देवता । १ । ५ । ६ । १३—१५ निचृत्त्रिष्टुप् ३ । ६ । १० । ११ विराट् त्रिष्टुप् ४ । ८ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ७ पङ्क्तिः । १२ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ पन्द्रह ऋचा वाले तेंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में वैद्यक विषय को कहते हैं ॥

आ ते पितर्मरुतां सुम्नमेतु मा नः सूर्य्यस्य संदृशो युयोथाः ।
अभि नो वीरो अर्वति क्षमेत प्र जायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥१॥

पदार्थः—हे (मरुताम्) मनुष्यों के (पितः) पिता के समान (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाले ! (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के समान वर्त्तमान और (संदृशः) जो अच्छे प्रकार देते हैं उन (ते) आप के सकाश से (नः) हमारे लिये (सुम्नम्) सुख (आ, एतु) आवे, आप सुख से हमें (युयोथाः) अलग न करें। जिससे (अर्वति) घोड़े पर चढ़ के (नः) हमारा (वीरः) शुभ गुणों में व्याप्त जन (अभि, क्षमेत) सब ओर से सहन करे जिस से हम लोग (प्रजाभिः) सन्तानादि प्रजाजनों के साथ (प्र, जायेमहि) प्रसिद्ध हों ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्य परमेश्वर को परमपिता न्यायकारी मान कर सुख बढ़ावें, कभी ईश्वर को मानकर विरुद्ध न हों, सहनशील होकर वीरता सिद्ध कर प्रजा के साथ सुखी हों ॥१॥

अब वैद्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वादत्तेभी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमा अशीय भेषजेभिः ।
व्यस्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चातयस्वा विषूचीः ॥२॥

पदार्थः—हे (रुद्र) सर्व रोगदोषों के निवारने वाले वैद्यराज ! आप हम लोगों को (वि, चातयस्व) विशेष कर जांचें (त्वादत्तेभिः) आप से दिई हुई (शंतमेभिः) अतीव सुख करने वाली (भेषजेभिः) औषधों से (विषूचीः) समग्र शरीर में व्याप्त (अमीवाः) रोगों को दूर करो और आप (अस्मत्) हम से हमारे (द्वेषः) वैरियों को वा ईर्ष्या आदि दोषों को और (वितरम्) विशेषता से उल्लङ्घन करने योग्य (अंहः) पाप भरे हुए कर्म वा कुपथ्यादि कर्म को दूर करें जिस से मैं (शतम्) सौ (हिमाः) संवत्सर आनन्द को (वि, अशीय) विशेष कर प्राप्त होऊं ॥२॥

भावार्थः—हे वैद्य लोगो ! तुम अत्युत्तम ओषधियों से सब के बड़े बड़े रोगों को निवारण करके रागद्वेषों को और उन्माद आदि दोषों को अलग कर शत वर्ष आयु जिनकी ऐसे मनुष्यों को सिद्ध करो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्रबाहो ।
पर्षि णः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीती रपसो युयोधि ॥३॥

पदार्थः—हे (वज्रबाहो) वज्र के तुल्य औषध बाहु में रखने और (रुद्र) रोगों के लोप करने वाले ! जिस से आप (तवसाम्) बलिष्ठों में (तवस्तमः) अतीव बलवान् (जातस्य) प्रसिद्ध जगत् के बीच (श्रेष्ठः) अत्यन्त प्रशंसायुक्त (श्रिया) शोभा

वा लक्ष्मी के साथ वर्त्तमान (असि) हो वा (नः) हम लोगों को (अंहसः) कुपथ्य से उत्पन्न हुए (रपसः) कर्म से (पारम्) पार (पर्षि) पहुंचाते हो वा (विश्वाः) समस्त पीड़ाओं को (युयोधि) अलग करते हो वा (स्वस्ति) सुख उत्पन्न करते हो इस से हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हो ॥३॥

भावार्थः—जो आप रोगरहित शोभते हुए अतीव बलवान् हैं औरों को रोगरहित करके निरन्तर सुखी करते हैं वे सब को सर्वदा सत्कार करने योग्य हैं ॥३॥

फिर वैद्यक विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा त्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।
उन्नो वीराँ अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमं त्वा भिषजां शृणोमि ॥४॥

पदार्थः—हे (वृषभ) श्रेष्ठ (इन्द्र) कुपथ्यकारियों को रुलाने वाले ! हम लोग (दुष्टुती) दुष्ट स्तुति से (त्वा) आप के (प्रति) प्रति (मा) मत (चुक्रुधाम) क्रोध करें । (सहूती) समान स्पर्द्धा से (मा) मत क्रोध करें आप के साथ विरोध (मा) मत करें किन्तु (नमोभिः) सत्कार के साथ निरन्तर सत्कार करें । जिन (त्वा) आप को मैं (भिषजाम्) वैद्यों के बीच (भिषक्तमम्) वैद्यों के शिरोमणि (शृणोमि) सुनता हूं सो आप (भेषजेभिः) रोग निवारने वाली ओषधियों से (नः) हम लोगों के लिये (वीरान्) वीर नीरोग पुत्रादिकों को (उत्, अर्पय) उत्तमता से सौंपें ॥४॥

भावार्थः—किसी को वैद्य के साथ विरोध कभी नहीं करना चाहिये, न इस के साथ ईर्ष्या करनी चाहिये किन्तु प्रीति के साथ सर्वोत्तम वैद्य की सेवा करनी चाहिये जिससे रोगों से अलग होकर सुख निरन्तर बढ़े ॥४॥

फिर वैद्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥५॥

पदार्थः—(यः) जो वैद्यजन (हवीमभिः) सुन्दर ओषधियों के देने से हम लोगों की (हवते) स्पर्द्धा करता है उस (रुद्रम्) वैद्य को मैं (हविर्भिः) ग्रहण करने योग्य (स्तोमेभिः) श्लाघाओं से (अव, दिषीय) न खण्डन करूं अर्थात् न उसे क्लेश देऊं जिससे (सुहवः) सुन्दर दानशील (ऋदूदरः) कोमल उदर वाला (बभ्रुः) पालनकर्त्ता (सुशिप्रः) सुन्दर मुखयुक्त वैद्य (नः) हमारी (अस्यै) इस (मनायै) मानने वाली बुद्धि के लिये (मा, रीरधत्) मत हिंसा करें ॥५॥

भावार्थः—जो वैद्यजन रोग निवारण से हमारी वृद्धि को बढ़ाते हैं उनके साथ हम लोग कभी न विरोध करें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ।
घृणीव छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥६॥

पदार्थः—जो (वृषभः) सुखों को वर्षाने वाले (मरुत्वान्) मनुष्य आदि बहुत प्रजाजनों से युक्त (अरपाः) अविद्यमान पाप—निष्पाप वैद्य (त्वक्षीयसा) प्रदीप्त (वयसा) आयु से (नाधमानम्) याचना किया हुआ (मा) मुझ को (उत्, ममन्द) उत्तमता से चाहते हो उन की उत्तेजना से मैं (घृणीव) सूर्य्य के समान (छायाम्) घर का (विवासेयम्) सेवन करूं और (सुम्नम्) सुख को (आ, अशीय) अच्छे प्रकार प्राप्त करूं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो वैद्य हमारे रोगों का निवारण कर मनुष्यों को दीर्घ आयु वाले करते हैं वे सूर्य्य के समान प्रकाशित कीर्ति वाले होते हैं ॥६॥

फिर वैद्यक विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

क्व१स्य ते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो यो अस्ति भेषजो जलाषः ।
अपभर्त्ता रपसो दैव्यस्याभी नु मा वृषभ चक्षमीथाः ॥७॥

पदार्थः—हे (वृषभ) श्रेष्ठ (रुद्र) दुःखनिवारक वैद्य ! आप (दैव्यस्य) जो देवों के साथ वर्त्तमान उसके बीच (मा) मुझे (अभि, चक्षमीथाः) सब ओर से सहन कीजिये (यः) जो (ते) आप को (मृळयाकुः) सुख देने वाला (हस्तः) हर्षमुख (भेषजः) वैद्यजन (जलाषः) सुखकर्त्ता और (रपसः) पापों का (अपभर्त्ता) अपभर्त्ता अर्थात् दूरकर्त्ता (अस्ति) है (स्यः) वह (क्व) कहाँ है ॥७॥

भावार्थः—जब अध्यापक वैद्य शिष्यों को पढ़ावे तब अच्छे प्रकार पढ़ाकर फिर परीक्षा करे। जो यथार्थ प्रश्नोत्तर करने वाला हो उसको वैद्यकी करने को आज्ञा देओ ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र बभ्रवे वृषभाय श्वितीचे महो महीं सुष्टुतिमीरयामि ।
नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसि त्वेषं रुद्रस्य नाम ॥८॥

पदार्थः—हे वैद्य! जिस (वृषभाय) श्रेष्ठ (बभ्रवे) धारण करने वाले (महः) बड़े (श्वितीचे) आवरण को प्राप्त होते हुए वैद्य के लिये (महीम्) बड़ी (सुष्टुतिम्) सुन्दर स्तुति की (प्र, ईरयामि) प्रेरणा देता हूं। सो आप मुझे (नमस्य) नमिये जिस (रुद्रस्य) अच्छे वैद्य का (कल्मलीकिनम्) देदीप्यमान (त्वेषम्) प्रकाशमान (नाम) नाम है उसकी हम लोग (नमोभिः) सत्कारों से (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं ॥८॥

भावार्थ—विद्यार्थियों की योग्यता है जो कि विद्या ग्रहण करावे उस का सदा सत्कार करें। जिस की वैद्यक शास्त्र में प्रसिद्धि है उसी से वैद्य-विद्या का अध्ययन करना चाहिये ॥८॥

अब राजपुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः।
ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्रादसुर्यम् ॥९॥

पदार्थः—हे पुरुष! (पुरुरूपः) बहुत रूपों से युक्त (उग्रः) क्रूरस्वभावी (बभ्रुः) उत्तम व्यवहारों को धारण करने वाले आप (स्थिरेभिः) दृढ़ (अङ्गैः) अवयवों से (शुक्रेभिः) शुद्ध वीर्य (हिरण्यैः) और किरणों के समान तेजों से (ईशानात्) ईश (रुद्रात्) पापियों को रुलाने वाले जगदीश्वर से (अस्य) इस (भुवनस्य) सर्वाधिकरण लोक के (भूरेः) बहुरूपियों के (न) जैसे वैसे शत्रुदल को (पिपिशे) पीसते हुए (उ, वै) वही आप (असुर्यम्) असुर के स्वत्व का (योषत्) वियोग कीजिये ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो तीव्र और मृदु स्वभाव वाले हैं वे जैसे जगदीश्वर के बनाये हुए भूमि आदि पदार्थ दृढ़ और सुन्दर हैं वैसे बलिष्ठ प्रशंसनीय सेनाङ्गों से दुष्टों को विजय कर असुरभाव का निवारण करें ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अर्हन्बिभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम्।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥१०॥

पदार्थः—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाले! जो आप (अर्हन्) योग्य होते हुए (सायकानि) शस्त्र और अस्त्रों को (धन्व) तथा धनुर्बाण आदि को (बिभर्षि) धारण करते हैं वा (अर्हन्) योग्य होते हुए (विश्वरूपम्) चित्रविचित्र रूप वाले (यजतम्)

सङ्क्रम करने योग्य (निष्कम्) सुवर्ण के आभूषण को धारण करते वा (अर्हन्) योग्य होते हुए (इदम्) इस (अभ्वम्) महान् (विश्वम्) समस्त जगत् की (दयसे) रक्षा करते हैं इस कारण (त्वत्) आप से अन्य (ओजीयः) बल वाला (न) नहीं है ॥१०॥

भावार्थः--जो योग्यता को प्राप्त होकर आयुध सेना राज्य और धन को धारण करते तथा सब धर्मात्माओं पर दया करते हैं वे बलिष्ठ होते हैं ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्तुहि श्रुतं गर्त्तसदं युवानं मृगं न भीममुपहत्नुमुग्रम् ।
मृळा जरित्रे रुद्र स्तवानोऽन्यं ते अस्मन्नि वपन्तु सेनाः ॥११॥

पदार्थः—हे (रुद्र) अन्यायकारियों को रुलाने वाले सेनापति ! आप (मृगम्) सिंह के (न) समान (भीमम्) भयङ्कर (श्रुतम्) जो सुने हैं उस (गर्त्तसदम्) घर में बैठ कर (उपहत्नुम्) और समीप में मारते हुए (उग्रम्) क्रूर (युवानम्) पूर्ण बल वाले पुरुष की (स्तुहि) स्तुति कर और (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये (मृड) सुखी कर (स्तवानः) स्तुति करता हुआ (अन्यम्) और धर्मात्मा की प्रशंसा कर जिससे विद्वान् (अस्मत्) मेरी उत्तेजना से (ते) तेरी (सेनाः) सेना अर्थात् बल को (नि, वपन्तु) विस्तारें ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राज्य बढ़ाने की इच्छा करें वे सिंह के समान शत्रुओं में भयङ्कर और श्रेष्ठों में आनन्द देने वालों का राजकार्य्य और सेना में सत्कार कर और उन को आज्ञा दे न्याय से निरन्तर राज्य की पालना करें ॥११॥

अब विद्याध्ययन विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ।
भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥१२॥

पदार्थः—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाले विद्वान् ! (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त (त्वम्) आप (पितरम्) पिता को (कुमारः) ब्रह्मचारी (चित्) जैसे वैसे (वन्दमानम्) स्तुति को प्राप्त और (उपयन्तम्) समीप आते हुए (भूरेः) बहुत पदार्थ के (दातारम्) देने वा (सत्पतिम्) सज्जनों के पालने वाले विद्वान् के प्रति (ननाम) नमस्कार करता वा (गृणीषे) उस की स्तुति करते हैं तथा (अस्मे) हम लोगों के लिये (भेषजा) औषधों को (रासि) देता है इस से हम लोगों को सत्कार करने के योग्य हैं ॥१२॥

भावार्थः—इन मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अच्छा पुत्र पिता का सत्कार करता वा नमता वा स्तुति करता है वैसे अच्छा विद्यार्थी पढ़ाने वाले को प्रसन्न करता है ॥१२॥

अब फिर वैद्यक विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शंतमा वृषणो या मयोभु ।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शञ्च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३॥

पदार्थः—हे (वृषणः) वृष्टि कराने वाले विद्वानो ! जैसे (मरुतः) मनुष्यों को और (या) जिन (शुचीनि) शुद्ध वा (या) जिन (शन्तमा) अतीव सुख करने वा (या) जिन (मयोभु) सुख की भावना देने वा (यानि) जिन रोग निवारने वाली (भेषजा) ओषधों को (वः) तुम्हारे लिये (मनुः) वैद्यविद्या जानने वाला (पिता) पिता (अवृणीत) स्वीकार करता है वह तुम्हारे (नश्च) और हमारे लिये (योः) न्याय करने (रुद्रस्य) और रुलाने वाले रोग की निवृत्ति के लिये (शं, च) और कल्याण की भावना के लिये होती वैसी मैं (वश्मि) कामना करूँ ॥१३॥

पदार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि पिता और पितामहों तथा अध्यापक वा अन्य विद्वानों से प्रति रोग के निवारण के अर्थ ओषधियों को जानकर अपने और दूसरों के रोगों को निवारण कर के सबके लिये सुख की कांक्षा करें ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

परि णो हेती रुद्रस्य वृज्याः परि त्वेषस्य दुर्मतिर्मही गात् ।
अव स्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्व मीढ्वस्तोकाय तनयाय मृळ ॥१४॥

पदार्थः—हे (मीढ्वः) सुखों से सींचने वाले वैद्य ! जो (रुद्रस्य) दुःख देने वाले रोग को (हेतिः) वज्र से पीड़ा के समान वा (वृज्याः) वर्जने योग्य पीड़ा और (त्वेषस्य) प्रदीप्त अर्थात् प्रबल की (दुर्मतिः) दुष्ट मति (नः) हम लोगों को (परि) सब ओर से प्राप्त होवे। तथा जो (मघवद्भ्यः) प्रशंसित धन वालों से (मही) प्रशंसनीय वाणी हम लोगों को सब ओर से प्राप्त हो और (स्थिरा) स्थिर पदार्थों को (गात्) प्राप्त हो उन को (तोकाय) शीघ्र उत्पन्न हुए सन्तान के लिये (तनयाय) जो कि कुमारावस्था को प्राप्त है उसके लिये विस्तारो । और उन से सबको (मृल) सुखी करो और रोगों को (अव, तनुष्व) दूर करो ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्यों को उत्तम शिक्षा से दुष्ट मति को तथा वैद्यक

रीति से सब रोगों को निवारण कर अपने कुल को सदा सुखी करना चाहिये ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एवा बभ्रो वृषभ चेकितान यथा देव न हृणीषे न हंसि ।

हवनश्रुन्नो रुद्रेह बोधि बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥

पदार्थः—हे (बभ्रो) धारण वा पोषण करने वा (वृषभ) रोग निवारण करने से बल के देने वा (चेकितान) विज्ञान देने वा (देव) मनोहर (रुद्र) और सर्व रोग निवारने वाले ! जिस कारण (हवनश्रुत्) देने लेने को सुनने वाले आप (इह) इसमें (यथा) जैसे (नः) हम लोगों के सुखों को (न) नहीं (हृणीषे) हरते हैं सब के सुख को (बोधि) जानें इससे हम लोग (सुवीराः) सुन्दर पराक्रम को प्राप्त होते हुए ही वैसे (विदथे) ओषधियों के विज्ञान व्यवहार में (बृहत्) बहुत (वदेम) कहें ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो वैद्यजन राज्य और न्याय के अधीश हों वे अन्याय से किसी का कुछ भी धन न हरें न किसी को मारें किन्तु सदा अच्छे पथ्य और ओषधों के व्यवहार सेवन से बल और पराक्रम को बढ़ावें ॥१५॥

इस सूक्त में वैद्य, राजपुरुष और विद्या ग्रहण के व्यवहार वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । ३ । ८ । ९ निचृज्जगती । २ । १० — १३ विराड्जगती । ४—७ । १४ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । १५ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले चौंतीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय का वर्णन करते हैं ॥

धारावरा मरुतो धृष्ण्वोजसो मृगा न भीमास्तविषीभिरर्चिनः ।

अग्नयो न शुशुचाना ऋजीषिणो भृमिं धमन्तो अप गा अवृण्वत ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (धारावराः) धाराप्रवाह शिक्षित वाणियों के बीच न्यून जिनकी वाणी (मरुतः) वे मरणधर्मयुक्त (भीमाः) दुष्टों के प्रति भयङ्कर

(मृगाः) सिंहों के (न) समान (धृष्ण्वोजसः) पराक्रम को धारण किये हुए (शुशुचानाः) शुद्ध वा शोधने वाले (अग्नयः) पावक अग्नियों के (न) समान (तविषीभिः) वलयुक्त सेनाओं से (अर्चिनः) सत्कार करने वाले (ऋजीषिणः) कोमल स्वभावी मनुष्य (भृमिम्) अनवस्था को (अप, धमन्तः) दूर करते हुए आप (गाः) सुशिक्षित वाणियों को (अवृण्वत) स्वीकार करें ।।१।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य पावक के समान पवित्र, जल के समान कोमल, सिंह के समान पराक्रम करने वाले, वायु के समान वलिष्ठ होकर अन्याय को निवृत्त करें वे समस्त सुख को प्राप्त हों ।।१।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

द्यावो न स्तृभिश्चितयन्त खादिनो व्य१भ्रिया न द्युतयन्त वृष्टयः ।
रुद्रो यद्वो मरुतो रुक्मवक्षसो वृषाजनि पृश्न्याः शुक्र ऊधनि ।।२।।

पदार्थः—हे (रुक्मवक्षसः) दीप्ति और अभिप्रीतियुक्त हृदय वाले (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! (वः) तुम लोगों के लिये (यत्) जो (वृषा) सुख को सींचने और (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला मनुष्य (पृश्न्याः) अन्तरिक्ष के बीच (शुक्रे) वीर्य करने वाली (ऊधनि) रात्रि में (अजनि) उत्पन्न करे । वा (खादिनः) भक्षण करने वाले आप लोग (स्तृभिः) नक्षत्रों से (द्यावा) प्रकाशों के (न) समान (चितयन्त) व्यवहारों को पवित्र करें और (अभ्रियाः) वद्दलों को (वृष्टयः) वर्षाओं के (न) समान (विद्युतयन्त) विशेषता से प्रकाशित करें । वह और आप माननीय हों ।।२।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो नक्षत्रों के साथ सूर्य्य के समान वद्दलों के साथ विजुली के समान विद्या व्यवहाररूपी प्रकाश में रमते हैं वे सोने के लिये रात्रि के समान सव के सुख के लिये होते हैं ।।२।।

अव राज विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

उक्षन्ते अश्वाँ अत्याँ इवाजिषु नदस्य कर्णैस्तुरयन्त आशुभिः ।
हिरण्यशिप्रा मरुतो दविध्वतः पृक्षं याथ पृषतीभिः समन्यवः ।।३।।

पदार्थः—हे (समन्यवः) क्रोध में भरे (मरुतः) मनुष्यो ! जैसे (अश्वान्) घोड़ों को (अत्यान्) निरन्तर चलने वाले घोड़ों के समान वा (आजिषु) संग्रामों में (नदस्य) जल से पूर्ण वड़े जलाशय के वीच (कर्णैः) नौकाओं के चलाने वालों

के समान (आशुभिः) शीघ्र चलने वाले घोड़ों के साथ (तुरयन्ते) शीघ्र चलाते हैं वा (हिरण्यशिप्राः) सुवर्ण के सदृश मुख वाले (दविध्वतः) दुष्टों को कंपाते हुए (पृषतीभिः) पवन की गतियों के समान गतियों से युक्त धाराओं से (पृक्षम्) सींचने योग्य को (उक्षन्ते) सींचते हैं वैसे इस व्यवहार को तुम लोग प्राप्त होओ ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे शिक्षा करने वाले जन घोड़ों को वा खेवट नाव को उत्तम रीति पर चलाते हैं वैसे राजजन अपनी सेना को पहुंचावें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृक्षे ता विश्वा भुवना ववक्षिरे मित्राय वा सदमा जीरदानवः ।
पृषदश्वासो अनवभ्रराधस ऋजिप्यासो न वयुनेषु धूर्षदः ॥४॥

पदार्थः—(जीरदानवः) साधारण जीव वा (पृषदश्वासः) स्थूल अश्व जिन्हों ने सींचे वा (अनवभ्रराधसः) जिन का धन नीचे नहीं गिरा वा (धूर्षदः) जो धुर पर स्थिर होने वाले (ऋजिप्यासः) वा जो कोमलपन को बढ़ाते हैं (न) उन के समान (मित्राय) मित्र के लिये (वा) अथवा जिस कारण इस के लिये (पृक्षे) जलादिकों से सींचे हुए पृथ्वीमण्डल पर जो (विश्वा) समस्त (भुवना) लोकलोकान्तर (सदम्) वा स्थान (आ, ववक्षिरे) अच्छे प्रकार रोष को प्राप्त हों (ता) वे (वयुनेषु) उत्तम ज्ञानों में बढ़ते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो दुष्टों के लिये क्रोध करते वा श्रेष्ठों को आनन्द देते हैं वे बुद्धिमान् होते हैं ॥४॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है।

इन्धन्वभिर्धेनुभी रप्शदूधभिरध्वस्मभिः पथिभिर्भ्राजदृष्टयः ।
आ हंसासो न स्वसराणि गन्तन मधोर्मदाय मरुतः समन्यवः ॥५॥

पदार्थः—हे (भ्राजदृष्टयः) प्रकाश को प्राप्त हुए (समन्यवः) क्रोधों के साथ वर्त्तमान (मरुतः) मरणधर्मा ! तुम लोग (इन्धन्वभिः) प्रदीप्त करने वाली (धेनुभिः) वाणियों से वा (रप्शदूधभिः) प्रकट शब्दरूपी घनों से (अध्वस्मभिः) जो कि ध्वस्त नष्ट न हुए उन (पथिभिः) मार्गों से (हंसासः) हंसों के (न) समान (मधोः) मधुर सम्बन्धी (मदाय) हर्ष के लिये (स्वसराणि) दिनों को (आ, गन्तन) आओ प्राप्त होओ ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे आकाश मार्ग से हंस

अभीष्ट स्थानों को सुख से जाते हैं वैसे सुशिक्षित वाणी से विद्यामार्गों को और धर्मपथों से सुखों को नित्य तुम लोग प्राप्त होओ ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।
अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्त्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥६॥

पदार्थः- हे (समन्यवः) क्रोध से युक्त (मरुतः) मनुष्यो ! तुम (नः) हम लोगों के लिये (ब्रह्माणि) धनों को (कर्त्त) सिद्ध करो (अश्वामिव) घोड़ी के समान (ऊधनि) रात्रि में (धेनुम्) वाणी को (पिप्यत) प्राप्त होओ (नराम्) मनुष्यों की (न) जैसे (शंसः) स्तुति वैसे (सवनानि) ऐश्वर्यों को (आ, गन्तन) प्राप्त होओ (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये (वाजपेशसम्) विज्ञान का जिस में रूप विद्यमान उस (धियम्) उत्तम बुद्धि को सिद्ध करो ॥६॥

भावार्थः— इस मन्त्र में दो उपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य मनुष्यस्वभाव से उत्पन्न हुई प्रशंसा को प्राप्त होके विद्या, वाणी और उत्तम बुद्धि को वढ़ा कर सर्व मनुष्यों को सुखों से अलंकृत करें वे सुखी होते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तं नो दात मरुतो वाजिनं रथ आपानं ब्रह्म चितयद्दिवेदिवे ।
इषं स्तोतृभ्यो वृजनेषु कारवे सनिं मेधामरिष्टं दुष्टरं सहः ॥७॥

पदार्थः—हे (मरुतः) प्राणवायु के समान प्रिय ! तुम (नः) हम लोगों के लिये (तम्) उस समस्त विद्या की स्तुति करने वाले को (दात) देओ (रथे) रथ के निमित्त (वाजिनम्) सुशिक्षित घोड़े को देओ (दिवेदिवे) प्रतिदिन (चितयत्) चिताते हुए (आपानम्) व्यापक (ब्रह्म) धन वा अन्न को (वृजनेषु) बलों में (स्तोतृभ्यः) सकल विद्याओं के प्रयोजनवेत्ताओं के लिये (इषम्) इष्ट प्रयोजन को (कारवे) करने वाले के लिये (सनिम्) अलग अलग बढ़ी हुई (मेधाम्) उत्तम बुद्धि को और (अरिष्टम्) अविनष्ट (दुष्टरम्) दुःख से तरने को योग्य (सहः) बल को देओ ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदैव सब के लिये सकल विद्या बताने वाला धर्म से संचित किये हुए धन विद्वानों के देने के लिये अन्न उत्तम प्रज्ञा और पूर्ण बल को जांचे, विद्वान् जन निश्चय से याचकों के लिये उन उक्त पदार्थों को निरन्तर देवें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यद्युञ्जते मरुतो रुक्मवक्षसोऽश्वान् रथेषु भग आ सुदानवः ।
धेनुर्न शिश्वे स्वसरेषु पिन्वते जनाय रातहविषे महीमिषम् ॥८॥

पदार्थः—हे (रुक्मवक्षसः) सुवर्ण के समान वक्षःस्थल वाले (सुदानवः) उत्तम पदार्थों के दानकर्त्ता (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (भगे) ऐश्वर्य के होते (रथेषु) यानों में (यत्) जिन (अश्वान्) घोड़े वा अग्न्यादि पदार्थों को (युञ्जते) युक्त करते वा (स्वसरेषु) दिनों के बीच (शिश्वे) बालक वा जो (रातहविषे) देने योग्य दे चुका उन (जनाय) सत्पुरुष के लिये (धेनुः) दुःख देने वाली गौ बछड़े को (न) जैसे वैसे (महीम्) अत्यन्त (इषम्) इच्छा को (आ, पिन्वते) अच्छे प्रकार सींचते हैं उन सब को सब लोग अच्छे प्रकार प्रयुक्त करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे अच्छी शिक्षा को प्राप्त विद्वान् जन घोड़े आदि पशुओं का और अग्नि आदि पदार्थों का प्रयोग कार्यसिद्धि के लिये करते हैं वैसे अनुष्ठान करो, ऐसे करने से जैसे गौ अपने बछड़े को तृप्त करती हैं वैसे ये प्रयोग करने वालों को धनी करते हैं ॥८॥

फिर राजपुरुषों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यो नो मरुतो वृकताति मर्त्यो रिपुर्दधे वसवो रक्षता रिषः ।
वर्त्तयत तपुषा चक्रियाभि तमव रुद्रा अशसो हन्तना वधः ॥९॥

पदार्थः—हे (वसवः) वसु संज्ञा वाले (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! (यः) जो (वृकताति) वज्र ही (मर्त्यः) मरणधर्मा (रिपुः) चोर (तपुषा) सब ओर से ताप देने वाले क्रोध आदि से (नः) हम लोगों को (दधे) धारण करता है उस से (रिषः) हिंसकों को अलग (रक्षत) रक्खो । हे (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले मध्यम विद्वानो ! तुम (चक्रिया) चक्र से (अशसः) अहिंसक जो दूसरों का विनाश नहीं करता उस को (अव, हन्तन) न मारो जो हम लोगों की रक्षा करता है उस की सब ओर से रक्षा करो । जिस ने और का (वधः) वध किया है उस को कारागृह अर्थात् जेलखाना में (अभि, वर्त्तयत) सब ओर से वर्त्ताओ ॥९॥

भावार्थः—राजपुरुषों को हिंसकों से प्रजाजनों को अलग रख शत्रुओं को निवारण कर वा बांध के धर्म से राज्य की शिक्षा करनी चाहिये ॥९॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

चित्रं तद्वो मरुतो याम चेकिते पृश्न्या यदूधरप्यापयो दुहुः ।
यद्वा निदे नवमानस्य रुद्रियास्त्रितं जराय जुरतामदाभ्याः ॥१०॥

पदार्थः—हे (अदाभ्याः) न नष्ट करने योग्य (रुद्रियाः) मध्यम विद्वानों के सम्बन्धी (मरुतः) मनुष्यो ! (यत्) जिस (वः) तुम्हारा (चित्रम्) अद्भुत (याम) योग्य कर्म वा (यत्) जिस (पृश्न्याः) अन्तरिक्ष में सिद्ध हुए (ऊधः) जल वा दूध के अधिकरण को (आपयः) मित्र भाव को प्राप्त हुए (दुहुः) परिपूर्ण करते हैं (वा) अथवा (यः) जो (नवमानस्य) स्तुति करने की (निदे) निन्दा करने वाले के लिये (त्रितम्) हिंसा करने वाले को (जुरताम्) जीर्णों की (जराय) स्तुति करने वाले के लिये (अपि) भी (चेकिते) जानता है (तत्) उस को तुम लेओ ॥१०॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! तुम निन्दा करने योग्य की निन्दा तथा स्तुति करने योग्य की प्रशंसा कर अद्भुत कर्मों को करो, जिस से पूरी आयु भोग, वृद्धावस्था पा कर मरण हो उस अनुष्ठान को करो ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तान्वो महो मरुत एवयाव्नो विष्णोरेषस्य प्रभृथे हवामहे ।
हिरण्यवर्णान्ककुहान्यतस्रुचो ब्रह्मण्यन्तः शंस्यं राध ईमहे ॥११॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो ! जैसे हम लोग (वः) तुम्हारे लिये (तान्) उन को (एषस्य) ऐश्वर्य वाले (विष्णोः) व्यापक ईश्वर के (प्रभृथे) अत्युत्तम पालन में (महः) महान् व्यवहार के (एवयाव्नः) इस प्रकार विशेष ज्ञान को पाते हैं (हिरण्यवर्णान्) हिरण्य—सुवर्ण के समान वर्ण वाले (ककुहान्) बड़े (यतस्रुचः) नियम से यज्ञपात्रों के रखने वाले को (हवामहे) स्वीकार करते हैं। और (ब्रह्मण्यन्तः) अपने को ईश्वर वा वेद की इच्छा करते हुए विद्वानों को (शंस्यम्) प्रशंसनीय (राधः) धन की (ईमहे) याचना करते हैं वैसे तुम हमारे लिये प्रयत्न करो ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर एक दूसरे से प्रीति के साथ और दुष्टों में अप्रीति के साथ वर्त्त कर व्यापक ईश्वर की भक्ति में प्रयत्न करें ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥१२॥

पदार्थः—जो (दशग्वाः) दशों इन्द्रियों से सिद्धि को प्राप्त होते हैं वे (प्रथमाः) बहुत विस्तारयुक्त बुद्धि वाले मुख्य विद्वान् जन (यज्ञम्) यज्ञ को (ऊहिरे) प्राप्त होते हैं (ते) वे (उषसः) प्रभात काल के (व्युष्टिषु) प्रतापों में (नः) हम लोगों को (हिन्वन्तु) बढ़ावें । जो (अरुणैः) लाल वर्णों से (महः) बड़े (गोअर्णसा) जिस में कि किरण और प्रकाश विद्यमान (शुचता) जो पवित्र वा पवित्रता है उस (ज्योतिषा) प्रकाश से (रामीः) आराम की देने वाली रात्रियों को (उषाः) प्रभात समय के (न) समान (अप, ऊर्णुते) न ढांपते अर्थात् प्रकट करते हैं (ते) वे हमारे शिक्षक हों ॥१२॥

भावार्थः—जो क्रियाकाण्ड में कुशल जितेन्द्रिय जन प्रभातकाल के समान अविद्यान्धकार की निवृत्ति करने वाले मनुष्यों को विद्या और उत्तम शिक्षा से बढ़ाते हैं वे सब को सत्कार करने योग्य हैं ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ते क्षोणीभिररुणेभिर्नाञ्जिभी रुद्रा ऋतस्य सदनेषु वावृधुः ।
निमेघमाना अत्येन पाजसा सुश्चन्द्रं वर्णं दधिरे सुपेशसम् ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को (रुद्राः) वायु (क्षोणीभिः) पृथिवियों से (अञ्जिभिः) प्रकट व्यवहारों से (अरुणेभिः) कुछ ललामी लिये प्रकाशों के समान (ऋतस्य) जल के (सदनेषु) स्थानों में (वावृधुः) बढ़ते हैं वा (निमेघमानाः) निश्चित मानने वाले जन (अत्येन) अश्व के समान वेग से और (पाजसा) बल से (सुपेशसम्) सुन्दर रूपयुक्त (सुश्चन्द्रम्) सुन्दरता से वर्त्तमान सुवर्ण के समान (वर्णम्) स्वरूप को (दधिरे) धारण करते हैं (ते) वे जानने योग्य हैं ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे पवनों के साथ प्रभातवेला बढ़कर दिन होता और समस्त विविध प्रकार का रूप प्रकट करती है वैसे तुम को अच्छा अपना रूप धारण कर वायुविद्या का प्रकाश करना चाहिये ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ताँ इयानो महि वरूथमूतय उप घेदेना नमसा गृणीमसि ।
त्रितो न यान् पञ्च होतॄनभिष्टय आववर्त्तदवरां चक्रियावसे ॥१४॥

पदार्थः—हम लोग (अभिष्टये) अभीष्ट सुख की (ऊतये) रक्षा आदि के अर्थ (इयानः) प्राप्त होता हुआ कोई जन (त्रितः) जो शरीर और आत्मा सम्बन्धी सुख को विस्तृत करता है उस के (न) समान (यान्) जिन (पञ्च) पांच (अवरान्) अर्वाचीन (होतॄन्) ग्रहण करने वालों को और पाँच अर्वाचीन (चक्रिया) चाक के

समान वर्त्तमानों को अभीष्ट सुख वा (अवसे) कामना के लिये (आववर्त्तत्) सब ओर से वर्त्तता है (तान्) उन को (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (महि) बड़े (वरूथम्) श्रेष्ठ घर को प्राप्त हो (घ, इत्) ही निश्चय कर (एना) इस (नमसा) नमस्कार से (उप, गृणीमसि) उपस्तुत करते हैं अर्थात् उन की अति निकटस्थ हो स्तुति करते हैं ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे कर्मोपासना और ज्ञान विद्या का जानने वाला अगले पिछले पवनों को जानकर अपनी और दूसरों की रक्षा के लिये वर्त्तमान है वैसे हम लोग प्रवृत्त हों ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यया॑ र॒ध्रं पा॒रय॒थात्यंहो॒ यया॑ नि॒दो मु॒ञ्चथ॑ वन्दि॒तार॑म् ।
अ॒र्वाची॒ सा म॑रुतो॒ या वं॑ ऊ॒तिरो॒ षु वा॒श्रेव॑ सुम॒तिर्जि॑गातु ॥१५॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मरणधर्मा मनुष्यो ! (या) जो (ऊतिः) रक्षा (सुमतिः) और सुन्दर बुद्धि (ओ) प्रेरणाओं में (वः) तुम लोगों की (वाश्रेव) मनोहर के समान (सुजिगातु) प्रशंसा करें वा (यया) जिस से (रध्रम्) अच्छे प्रकार की सिद्धि को (अतिपारयथ) अतीव पार पहुंचाओ और (अंहः) अपराध को निवृत्त करो वा (यया) जिससे (निदः) निन्दाओं को (मुञ्चथ) मोचो अर्थात् छोड़ो (सा) वह (अर्वाची) घोड़ों को प्राप्त होने वाली कोई क्रिया (वन्दितारम्) वन्दना करने वाले को प्राप्त हो ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य जिस क्रिया से अधर्म और निन्दा करने वाले का त्याग और धर्म वा प्रशंसा वाले का ग्रहण रक्षा बुद्धि की वृद्धि हो उस क्रिया को निरन्तर करें अर्थात् सदा निन्दा का त्याग और स्तुति का स्वीकार करें ॥१५॥

इस सूक्त में विद्वान् और पवन के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह चौतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । अपान्नपाद्देवता । १ । ४ । ६ । ७ । ६ । १० । १२ । १३ । १५ निचृत्त्रिष्टुप् । ११ विराट् त्रिष्टुप् । १४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ३ । ८ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब १५ पन्द्रह ऋचा वाले ३५ पेंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के विषय को कहते हैं ॥

उपेमसृक्षि वाजयुर्वचस्यां चनो दधीत नाद्यो गिरो मे ।
अपां नपादाशुहेमा कुवित्स सुपेशसस्करति जोषिषद्धि ॥१॥

पदार्थः—जो (वाजयुः) अपने को विज्ञान और अन्नादिकों की इच्छा करने वाला (वचस्याम्) जल में हुई क्रिया को वा (उप, ईम्) समीप में जल को (असृक्षि) सिद्ध करता है और (चनः) चणकादि अन्न को (दधीत) धारण करे वा जो (अपाम्नपात्) जलों के बीच न गिरने वाला (नाद्यः) अव्यक्त शब्द करने को योग्य तथा (आशुहेमा) शीघ्र बढ़ने वाली (कुवित्) बहु प्रकार की क्रिया और (मे) मेरी (गिरः) वाणी का सम्बन्ध करने वाला व्यवहार है (सः, हि) वही (सुपेशसः) सुन्दर रूप वालों को (करति) करे और (जोषिषत्) उन्हें सेवे ॥१॥

भावार्थः—जो सूर्य जल को खींच और वर्षा कर नदियों को बहाता और अन्नों को उत्पन्न करता जिसके खाने से प्राणियों को स्वरूपवान् करता है वह सब को युक्ति के साथ सेवन करने योग्य है ॥१॥

अब ईश्वरस्तुति का विषय अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमं स्वस्मै हृद आ सुतष्टं मन्त्रं वोचेम कुविदस्य वेदत् ।
अपां नपादसुर्यस्य मह्ना विश्वान्यर्यो भुवना जजान ॥२॥

पदार्थः—जो (नपात्) अविनाशी (अर्य्यः) सर्वस्वामी ईश्वर (मह्ना) अपने महत्त्व से (विश्वानि) समस्त (भुवना) लोकलोकान्तरों को (जजान) उत्पन्न करता है वा जो (अपाम्) जलों के बीच (कुवित्) बहुत व्यवहार को (वेदत्) जाने वा (अस्य) इस (असुर्यस्य) मेघ के बीच उत्पन्न हुए व्यवहार का प्रबन्ध करता है उस (हृदः) हृदय के समीप स्थित (अस्मै) इस ईश्वर के लिये (इमम्) इस (सुतष्टम्) सुन्दर सुख के सिद्ध करने वाले व्यवहार वा (मन्त्रम्) विचार को हम लोग (सुवोचेम) अच्छे प्रकार कहें ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने समग्र जगत् बनाया उसी की स्तुति प्रार्थना वा उपासना करो ॥२॥

अब मेघ के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

समन्या यन्त्युप यन्त्यन्याः समानमूर्वं नद्यः पृणन्ति ।
तमू शुचिं शुचयो दीदिवांसमपां नपातं परि तस्थुरापः ॥३॥

पदार्थः--जो (अन्याः) और (नद्यः) नदी (समानम्) तुल्य (ऊर्वम्) दुःखों के नष्ट करने वाले को (संयन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होतीं वा (अन्याः) और (उप, यन्ति) उस को उस के समीप से प्राप्त होतीं हैं (तम्, उ) उसी (अपां, नपातम्) जलों के बीच नाशरहित (दीदिवांसम्) अतीव प्रकाशमान (शुचिम्) पवित्र अग्नि को (शुचयः) पवित्र (आपः) जल (परि, तस्थुः) सब ओर से प्राप्त हो स्थिर होते हैं वे जल सब को (पृणन्ति) तृप्त करते हैं ॥३॥

भावार्थः—जैसे नदी आप समुद्र को प्राप्त होकर स्थिर और शुद्ध जल वाली होती हैं वैसे जल मेघमण्डल को प्राप्त होकर दिव्य होते हैं वैसे स्त्री अभीष्ट पति और पति अभीष्ट स्त्री को पाकर स्थिरचित्त होते हैं ॥३॥

अब विवाह विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परि यन्त्यापः ।
स शुक्रेभिः शिक्वभी रेवदस्मे दीदायानिध्मो घृतनिर्णिगप्सु ॥४॥

पदार्थः--हे मनुष्यो ! जैसे (अस्मेराः) हम लोगों को प्रेरणा देने वाली (मर्मृज्यमानाः) निरन्तर शुद्ध (युवतयः) युवति (शिक्वभिः) सेचनाओं से (शुक्रेभिः) शुद्ध जल वा वीर्यों के साथ (आपः) नदियां समुद्र को जैसे वैसे (तम्) उस (युवानम्) युवा पुरुष को (परियन्ति) सब ओर से प्राप्त होतीं वैसे (सः) वह, तू (अनिध्मः) प्रकाशमान (अस्मे) हम लोगों को (रेवत्) श्रीमान् के समान (दीदाय) प्रकाशित करो वा और (अप्सु) जलों में (घृतनिर्णिक्) जल को पुष्टि देने वाले सूर्य्य के समान हम लोगों को श्रेष्ठ उपदेश से शुद्ध करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे अच्छे प्रकार युवावस्था को प्राप्त युवति स्त्री ब्रह्मचर्य से किई विद्या जिन्होंने ऐसे हृदय को प्रिय पूर्ण विद्यावान् युवा पतियों को अच्छे प्रकार, परीक्षा कर प्राप्त होतीं वैसे पुरुष भी इन को प्राप्त हों जैसे सूर्य जल को संशोधन कर वृष्टि से सब को सुखी करता है वैसे अच्छे प्रकार शुद्ध परस्पर प्रीतिमान् विद्वान् विवाह किये हुए स्त्री पुरुष अपने सन्तानों को शुद्ध करने को योग्य हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अस्मै तिस्रो अव्यथ्याय नारीर्देवाय देवीर्दिधिषन्त्यन्नम् ।
कृता इवोप हि प्रसर्स्रे अप्सु स पीयूषं धयति पूर्वसूनाम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (कृता इव) निष्पन्न हुई सी (तिस्रः) तीन (देवीः) निरन्तर प्रकाशमान (नारीः) स्त्री हम लोगों के (अव्यथ्याय) व्यथन अर्थात् नष्ट करने को नहीं योग्य (देवाय) काम के लिये (अन्नम्) अन्न (दिधिषन्ति) धारण करती हैं तथा जो (अप्सु) अन्तरिक्ष प्रदेशों में जल (उप, प्रसर्स्रे) अच्छे प्रकार पास में बहते हैं उन (पूर्वसूनाम्) पहिले सन्तानों को उत्पन्न करने वालियों का (सः) वह विद्वान् सन्तान (हि) ही (पीयूषम्) अमृत के समान दुग्ध को (धयति) पीता है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। तीन प्रकार की निश्चय स्त्रियां होती हैं जो समान पतियों वाली होकर विधवा हों तो सन्तानों की उत्पत्ति के लिये अपने समान पुरुषों के वीर्य लेकर धर्म से सन्तानों को उत्पन्न करें, जो सन्तानों की विशेष इच्छा न हो तो ब्रह्मचर्य में स्थिर हों ॥५॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्वस्यात्र जनिमास्य च स्वर्द्रुहो रिषः संपृचः पाहि सूरीन् ।
आमासु पूर्षु परो अप्रमृष्यं नारातयो वि नशन्नानृतानि ॥६॥

पदार्थः—जिस से (अत्र) इस व्यवहार में (अस्य) इस (अश्वस्य) महान् वीर्य देने वाले का (जनिम) जन्म होता है उस से यहां (स्वः) सुख बढ़ता है जो (परः) परमोत्तम आप (आमासु) घर में हुई (पूर्षु) पुरियों में (द्रुहः) ईर्ष्यक (रिषः) हिंसा और (संपृचः) संयोग करने वालों के (सूरीन्) सम्बन्धी विद्वानों को (अप्रमृष्यम्, च) और सहने को न योग्य व्यवहारों को (पाहि) रक्षा करो और आप को (अरातयः) शत्रुजन (न) नहीं पीड़ा देने तथा (अनृतानि) मिथ्या कर्मों को (न) नहीं (विनशन्) विशेषता से प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थः—जिस कुल के बीच बड़े महात्माजन उत्पन्न होते हैं वहां सुख बढ़ता है और जहां शरीर और आत्मा के बलयुक्त मनुष्य हों वहां शत्रुजन पीड़ा नहीं कर सकते हैं और बलवान् पुरुष झूंठ अधर्मयुक्त कामों का उत्साह नहीं करते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्व१न्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ॥७॥

पदार्थः—जिसके (स्वे) अपने (दमे) घर में (सुदुघा) सुन्दरता से पूर्ण करने

वाली (धेनुः) विद्या और शिक्षायुक्त वाणी प्रवृत्त है (सः) वह (अपाम्, नपात्) प्राणों के बीच अविनाशी होता और (अप्सु) प्राणों के (अन्तः) भीतर (ऊर्जयन्) बलों को प्राप्त होता हुआ (स्वधाम्) सुन्दर जल को (पीपाय) पीता और (सुभु) सुन्दर संस्कारों से भावना दिई जाती उस (अन्नम्) भोजन करने योग्य अन्न को (अत्ति) खाता है तथा (विधते) सेवा करते हुए (वसुदेयाय) जिसे धन देना योग्य है उस के लिये (आ, विभाति) प्रकाश को प्राप्त होता है ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने सम्बन्धियों में कामों की परिपूर्णता के लिये सुन्दर शिक्षित वाणी, सुन्दर शुधा हुआ जल और सुन्दर संस्कार किये हुए अन्नों की सेवा करते, सुन्दर शिक्षित सेवक के लिये यथायोग्य वस्तु देते और काल पर सब व्यवहारों को सेवते हैं वे सदा सुखी रहते हैं ॥७॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यो अप्स्वा शुचिना दैव्येन ऋतावाजस्र उर्विया विभाति ।
वया इदन्या भुवनान्यस्य प्र जायन्ते वीरुधश्च प्रजाभिः ॥८॥

पदार्थः—(यः) जो (ऋतावा) सत्य का अच्छे प्रकार सेवन करता हुआ (अजस्रः) निरन्तर (दैव्येन) विद्वानों से किये हुए (शुचिना) पवित्र व्यवहार से (उर्विया) बहुरूप (विभाति) प्रकाशित होता है वह (अन्या) और (भुवनानि) लोक लोकान्तरों को (वयाः) शाखाओं को तथा (प्रजाभिः) प्रजा के समान (इत्) ही (अप्सु) व्यापक जलरूपी पदार्थों में जो (प्रजायन्ते) उत्पन्न होते हैं उन्हें और (अस्य) इस संसार के बीच जो (वीरुधः च) ओषधियां (आ) उत्पन्न होते हैं उन सब को जाने ॥८॥

भावार्थः—जो पवित्र बुद्धि दिव्य कर्म करने वाले निरन्तर सृष्टिक्रम को जानते हैं वे सदा आनन्दित होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपां नपादा ह्यस्थादुपस्थं जिह्मानामूर्ध्वो विद्युतं वसानः ।
तस्य ज्येष्ठं महिमानं वहन्तीर्हिरण्यवर्णाः परि यन्ति यह्वीः ॥९॥

पदार्थः—जो (जिह्मानाम्) कुटिलों के (ऊर्ध्वः) ऊपर स्थित (विद्युतम्) बिजुली को (वसानः) आच्छादित करता हुआ (अपाम्, नपात्) जलों के बीच न गिरने का शील वाला मेघ (उपस्थम्) समीपस्थ पदार्थों को प्राप्त होकर (आ, अस्थात्) स्थिर होता है (तस्य, हि) उसी की (ज्येष्ठम्) अतीव प्रशंसनीय (महिमानम्) महिमा

को (वहन्तीः) प्रवाहरूप से प्राप्त करती हुई (यह्वीः) बड़ी (हिरण्यवर्णाः) हिरण्य अर्थात् सुवर्ण के समान वर्ण वाली नदियां (परि, यन्ति) सब ओर से जाती हैं वैसे प्रजागण राजा से वर्त्ताव करें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पवन की महिमा को नदियां प्राप्त होती हैं वैसे विद्वान् जन राजा के प्रति वर्त्तें ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हिरण्यरूपः स हिरण्यसंदृगपां नपात्सेदु हिरण्यवर्णः ।
हिरण्ययात्परि योनेर्निषद्या हिरण्यदा ददत्यन्नमस्मै ॥१०॥

पदार्थः—जो वायु (हिरण्यदाः) तेज देते हैं वे (अस्मै) इस प्राणी के लिये (अन्नम्) अन्न को (ददति) देते हैं (सः) वह (हिरण्यरूपः) तेजःस्वरूप (हिरण्यसंदृक्) तेज को दर्शाता (स, इत्, उ) वही (हिरण्यवर्णः) सुवर्ण के समान वर्णयुक्त (अपाम्, नपात्) जलों के बीच न गिरने वाला (हिरण्ययात्) तेजःस्वरूप (योनेः) निज कारण से (परि, निषद्य) सब ओर से निरन्तर स्थिर हुआ अग्नि सब को पालन करता है ॥१०॥

भावार्थः—जो अग्नि पवन से उत्पन्न हुआ समस्त पदार्थों को दिखाने वाला सर्व पदार्थों के भीतर रहता हुआ सर्वविद्याओं का निमित्त है उस को जान कर प्रयोजन सिद्ध करना चाहिये ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तदस्यानीकमुत चारु नामाऽपीच्यं वर्द्धते नप्तुरपाम् ।
यमिन्धते युवतयः समित्था हिरण्यवर्णं घृतमन्नमस्य ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अस्य) इस अग्नि का (चारु) सुन्दर (अनीकम्) सैन्य के समान तेज (उत) और (अपीच्यम्) अपने गुणों से निश्चित (नाम) आख्या अर्थात् कथन (अपाम्) प्राणों के (नप्तुः) पौत्र के समान व्यवहार से (वर्धते) बढ़ता है वा (यम्) जिस को (युवतयः) प्रबल यौवनवती स्त्री (इत्था) इस हेतु से (समिन्धते) अच्छे प्रकार प्रदीप्त करती हैं वा जो (हिरण्यवर्णम्) तेजोमय शोभन शुद्धस्वरूप (घृतम्) जल व घी और (अन्नम्) अच्छा शोधा हुआ खाने योग्य अन्न (अस्य) इस अग्नि के सम्बन्ध में वर्त्तमान है उस को तुम जानो ॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे युवतिजन युवा पुरुष को प्राप्त होकर पुत्र और पौत्रों से बढ़ती है वैसे जो अग्निविद्या को जानते हैं वे धन धान्यों से बढ़ते हैं ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अस्मै बहूनामवमाय सख्ये यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः।
सं सानु मार्ज्मि दिधिषामि बिल्मैर्दधाम्यन्नैः परि वन्द ऋग्भिः ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम लोग जैसे (अस्मै) इस (अवमाय) न्यून वा रक्षा करने वाले (बहूनाम्) बहुत पदार्थों के बीच (सख्ये) मित्र के लिये (नमसा) अन्नादि पदार्थ (हविर्भिः) खाने वा देने योग्य पदार्थ और (यज्ञैः) मिली हुई क्रियाओं से उत्तम व्यवहार को (विधेम) प्राप्त हों वा उस की सेवा करें वा जैसे मैं जिसके (सानु) अच्छे प्रकार सेवने योग्य पदार्थ को (सं, मार्ज्मि) अच्छा शुद्ध करूं तथा (दिधिषामि) उपदेश करूं वा (बिल्मैः) उत्तम दीप्ति को प्राप्त साधनों से युक्त (अन्नैः) अच्छा संस्कार किये हुए अन्नादि पदार्थों से (दधामि) धारण करता हूं (ऋग्भिः) मन्त्रों से (परिवन्दे) सब ओर से स्तुति करता हूं उस की तुम लोग भी सेवा करो ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य बहुतों में से अपने मित्र को तृप्त करते हैं वा उस के लिये अन्नपानादि देते हैं परस्पर हित का उपदेश करते हैं वैसे सब भी इतनी विद्याओं को प्राप्त होकर औरों के प्रति उपदेश करें तथा ऐश्वर्य को प्राप्त हो के औरों के लिये दें ॥१२॥

अब इस जगत् में कौन लोग सुख पाते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स ईं वृषाजनयत्तासु गर्भं स ईं शिशुर्धयति तं रिहन्ति।
सो अपां नपादनभिम्लातवर्णोऽन्यस्येवेह तन्वा विवेष ॥१३॥

पदार्थः—(सः) वह (वृषा) वर्षा करने वाला अग्नि (तासु) उन जलों में (ईम्) ही (गर्भम्) गर्भ को (अजनयत्) उत्पन्न करता है और (सः) वह (शिशुः) बालक (ईम्) ही (धयति) पीता है (तम्) उस को और (रिहन्ति) चाटते हैं (सः) वह (अपाम्) जलों के बीच (अनभिम्लातवर्णः) जिस का वर्ण सब ओर से क्षीण न हो (नपात्) सन्तान (अन्यस्येव) जैसे और के शरीर में प्रविष्ट होता वैसे ही (इह) इस संसार में (तन्वा) शरीर के साथ (विवेष) व्याप्त होता है ॥१३॥

भावार्थः—जो पुरुष अपनी स्त्री में गर्भ धारण कर सन्तान को उत्पन्न वा पालन कर और स्वादिष्ट अन्न खाय शरीर की प्रसन्नाकृति से चेष्टा करते हैं वे इस संसार में सुखों को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अस्मिन्पदे परमे तस्थिवांसमध्वस्मभिर्विश्वहा दीदिवांसम् ।
आपो नप्त्रे घृतमन्नं वहन्तीः स्वयमत्कैः परि दीयन्ति यह्वीः ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (आपः) प्राण (अत्कैः) भोगने योग्य (अध्वस्मभिः) न गिरने वाले गुण कर्म स्वभावों के साथ (अस्मिन्) इस (परमे) सबों से अति उत्तम (पदे) प्राप्त होने योग्य व्यवहार में (तस्थिवांसम्) स्थित (विश्वहा) सब दिन (दीदिवांसम्) देदीप्यमान ईश्वर को (वहन्तीः) प्राप्त करती हुई (स्वयम्) आप (यह्वीः) महान् भी (परि, दीयन्ति) नष्ट होती हैं उन के द्वारा (नप्त्रे) पौत्र के लिये (घृतम्) जल और (अन्नम्) अन्न को तुम लोग प्राप्त होओ ॥१४॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रतिदिन सच्चिदानन्दस्वरूप अपने में स्थित ईश्वर का ध्यान करते हैं वे परमपद ब्रह्म को प्राप्त होकर आनन्द को प्राप्त होते हैं किन्तु उत्तम सुख प्राप्ति से शीघ्र क्षीण नहीं होते ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयांसमग्ने सुक्षितिं जनायायांसमु मघवद्भ्यः सुवृक्तिम् ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥१५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! जिस (अयांसम्) जिस से भुजायें प्राप्त हुई (सुक्षितिम्) जो सुन्दर पृथिवीयुक्त (सुवृक्तिम्) जिस की दुष्ट कर्मों का त्याग करना वृत्ति (उ) और (जनाय) मनुष्यों के लिये वा (अयांसम्) जिस से भुजायें प्राप्त हुई (मघवद्भ्यः) परम धनवान् मनुष्यों के लिये (यत्) जिस (भद्रम्) कल्याणरूपी (विश्वम्) जगत् की (सुवीराः) सुन्दर वीर अर्थात् प्राप्त हुआ शरीर बल जिन को वे (देवाः) विद्वान् जन (अवन्ति) रक्षा करते हैं (तत्) उस को (बृहत्) बहुत (विदथे) यज्ञ में हम लोग (वदेम) कहें अर्थात् उस को उपदेश दें ॥१५॥

भावार्थः—जो जन धर्म के अनुकूल आचरण करने वालों की अच्छे प्रकार रक्षा और दुष्टों को दण्ड दे जगत् के कल्याण के लिये बड़े बड़े उत्तम कर्मों को करें वे सब को सर्वदा सत्कार करने योग्य हैं ॥१५॥

इस सूक्त में अग्नि मेघ अपत्य विवाह और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह ३५ पंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । १ इन्द्रो मधुश्च । २ मरुतो माधवश्च । ३ त्वष्टा शक्रश्च । ४ अग्निः शुचिश्च । ५ इन्द्रो नभश्च । ६ मित्रावरुणौ नभस्यश्च देवताः । १ । ४ स्वराट् त्रिष्टुप् । ५ । ६ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ३ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले ३६वें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

तुभ्यं हिन्वानो वसिष्ट गा अपोऽधुक्षन्त्सीमविभिरद्रिभिर्नरः ।
पिबेन्द्र स्वाहा प्रहुतं वषट्कृतं होत्रादा सोमं प्रथमो य ईशिषे ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) यज्ञपति जो (हिन्वानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (वसिष्ट) वसे वा हे (नरः) नायक सर्वोत्तम जनो ! आप लोग (अविभिः) रक्षा करने वाले (अद्रिभिः) मेघों के साथ (सीम्) आदित्य के समान (गाः) वाणी और (अपः) प्राणों को (अधुक्षन्) पूर्ण करो । हे (इन्द्र) यज्ञपते ! (प्रथमः) आदिभूत आप (स्वाहा) उत्तम क्रिया के साथ (प्रहुतम्) अत्युत्तमता से गृहीत (होत्रात्) दानके कारण (वषट्कृतम्) क्रिया से सिद्ध किये हुए (सोमम्) उत्तम ओषधियों के रस को (आ, पिब) अच्छे प्रकार पिओ (यः) जो आप सब के (ईशिषे) ईश्वर हो अर्थात् स्वामी अधिपति हो वह आप भी वैसे होओ ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो यज्ञानुष्ठान से जल को शुद्ध कर उससे उत्पन्न हुए ओषधियों के रस को पीकर धर्म के अनुष्ठान से ऐश्वर्य अपने या औरों के लिये बढ़ाते हैं वे सब ओर से बढ़ते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यज्ञैः संमिश्लाः पृषतीभिर्ऋष्टिभिर्यामञ्छुभ्रासो अञ्जिषु प्रिया उत ।
आसद्या बर्हिर्भरतस्य सूनवः पोत्रादा सोमं पिबता दिवो नरः ॥२॥

पदार्थः—हे (भरतस्य) धारण करने वाले के (सूनवः) पुत्रो (नरः) नायक मनुष्यो ! जैसे (संमिश्लाः) अच्छे प्रकार मिले हुए (शुभ्रासः) श्वेतवर्ण (प्रियाः) प्यारे जन (यज्ञैः) अच्छी क्रियाओं से युक्त (ऋष्टिभिः) प्राप्ति कराने वाली (पृषतीभिः) पवन की गतियों से (यामन्) प्राप्त हुए समय में (उत) और (अञ्जिषु) कामना करते हुओं में (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (आसद्य) पहुंच कर (पोत्रात्) पवित्र व्यवहार से उत्पन्न हुए (दिवः) प्रकाश से (सोमम्) ओषधियों के रस को पीते हैं वैसे तुम (आ, पिबत) पिओ ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पवन अन्तरिक्ष में भ्रमते हुए सब प्राणियों को जिलाते हैं और प्राणस्वरूप से प्यारे हैं तथा सबसे रस ऊपर को पहुंचा और वर्षा कर सब को आनन्दित करते हैं वैसे मनुष्यों को होना चाहिये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अमेव नः सुहवा आ हि गन्तन नि बर्हिषि सदतना रणिष्टन ।
अथा मन्दस्व जुजुषाणो अन्धसस्त्वष्टर्देवेभिर्जनिभिः सुमद्गणः ॥३॥

पदार्थः—हे (त्वष्टः) छिन्न भिन्न करने वाले पुरुष ! (सुमद्गणः) अच्छे माने हुए गण जिनके (जुजुषाणः) ऐसे निरन्तर सेवा करते हुए आप (देवेभिः) दिव्यगुणों और (जनिभिः) जन्मों के साथ (अन्धसः) अन्न के भोगों को कीजिये (अथ) इसके अनन्तर (मन्दस्व) आनन्दित हूजिये । हे (सुहवाः) अच्छे प्रकार प्रशंसा को प्राप्त तुम लोग (बर्हिषि) अन्तरिक्ष में (नः) हमारी (अमेव) घर को जैसे वैसे अन्तरिक्ष में (नि, सदतन) निरन्तर जाओ, पहुंचो, हमें (रणिष्टन) उपदेश देओ (हि) निश्चय से हम लोगों को (आ, गन्तन) आओ प्राप्त होओ ॥३॥

भावार्थः—जैसे अन्तरिक्ष में स्थित पवन सब को प्राप्त होते और छोड़ते हैं वैसे विद्वान् धार्मिक जन धर्म को प्राप्त हों तथा दुष्ट जन अधर्म को त्याग करें । और सत्य का उपदेश दें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ वक्षि देवां इह विप्र यक्षि चोशन्होतर्नि षदा योनिषु त्रिषु ।
प्रति वीहि प्रस्थितं सोम्यं मधु पिबाग्नीध्रात्तव भागस्य तृप्णुहि ॥४॥

पदार्थः—हे (होतः) सुख के देने वाले (उशन्) कामना करते हुए (विप्र) मेधावी जन ! आप नियत अपने कर्म वा (इह) इस संसार में (देवान्) दिव्य गुणों को (आ, वक्षि) अच्छे प्रकार कहते (च) और प्राप्त हुए कर्मों को (यक्षि) प्राप्त होते तथा दूसरे प्राणियों को उनका उपदेश देते हैं इसी से (त्रिषु) कर्म, उपासना, ज्ञान इन तीनों (योनिषु) निमित्तों में (निषद) निरन्तर स्थिर हों और (प्रस्थितम्) प्रकर्षता से स्थित विषय को (प्रति, वीहि) प्राप्त होओ (सोम्यम) शीतलगुण सम्पन्न (मधु) मीठे जल को (पिब) पीओ और (तव) तुम्हारे (भागस्य) सेवने योग्य व्यवहार के (आग्नीध्रात्) उस भाग से जिससे अग्नि को धारण करते हैं (तृप्णुहि) तृप्त हूजिये ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य कर्मोपासना और ज्ञानों में प्रयत्न कर सत्य की कामना करते हुए मनुष्यों को अध्यापन और उपदेश से विद्वान् करते हैं वे नित्य सुख को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एष स्य ते तन्वो नृम्णवर्धनः सह ओजः प्रदिवि बाह्वोर्हितः ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यमाभृतस्त्वमस्य ब्राह्मणादा तृपत्पिब ॥५॥

पदार्थः—हे (मघवन्) अति उत्तम धन वाले ! जो (ते) आप के (तन्वः) शरीर के सम्बन्धी (प्रदिवि) अतीव प्रकाश में (सहः) बल (ओजः) पराक्रम तथा (बाह्वोः) भुजाओं के बीच (हितः) धारण (सुतः) और उत्पन्न किया हुआ (तुभ्यम्) आप के लिये और (आभृतः) अच्छे प्रकार पुष्ट किया पुत्र है (स्यः) सो (एषः) यह (नृम्णवर्धनः) धन का बढ़ाने वाला होता है (त्वम्) आप (अस्य) इस के सम्बन्धी (ब्राह्मणात्) ब्राह्मण से (तृपत्) तृप्त होते हुए (आ, पिब) अच्छे प्रकार ओषधि रस को पिओ ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो तुम्हारे लिये शारीरक और आत्मीय बल को बढ़ावें उससे धन और उन की अच्छे पदार्थों से सेवा करो ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे सत्तो होता निविदः पूर्व्या अनु ।
अच्छा राजाना नम एत्यावृतं प्रशास्त्रादा पिबतं सोम्यम्मधु ॥६॥

पदार्थः—हे (राजाना) राजजनो ! (मे) मेरे (हवस्य) देने लेने योग्य व्यवहार सम्बधी (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार आदि काम को (जुषेथाम्) सेवो (पूर्व्याः) पूर्व विद्वानों ने सेवन की हुई (निविदः) जिनसे निरन्तर विषयों को जानते हैं उन वाणियों को (अच्छ, अनु, बोधतम्) अच्छे प्रकार अनुकूलता से जानो । जैसे (सत्तः) प्रतिष्ठित (होता) देने वाला (आवृतम्) अत्युत्तमता से ढपे हुए (नमः) अन्न को (एति) प्राप्त होता है वैसे तुम दोनों (प्रशास्त्रात्) उत्तम शिक्षा करने वाले से (सोम्यम्) शान्ति वा शीतलता के योग्य (मधु) मधुर गुणयुक्त रस को (आ, पिबतम्) अच्छे प्रकार पिओ ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पढ़ाने वा उपदेश करने वाले आप लोगों के प्रति प्रीति से विद्यादान और सत्योपदेश के साथ वर्त्तमान हैं वैसे आप भी वर्त्तें ॥६॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह छत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

---

गृत्समद ऋषिः । १—४ द्रविणोदाः । ५ अश्विनौ । ६ अग्निश्च देवताः । १ । ५ निचृज्जगती । २ जगती । ३ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ४ । ६ भुरिक् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ षड् ऋचा वाले सैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथममन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं ॥

मन्दस्व होत्रादनु जोषमन्धसोऽध्वर्यवः स पूर्णां वष्ट्यासिचम् ।
तस्मा एतं भरत तद्वशो ददिर्होत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥१॥

पदार्थः—हे (द्रविणोदः) धन देने वाले ! आप (होत्रात्) लेने से (अन्धसः) अन्न की (जोषम्) प्रीति का (अनु, मन्दस्व) अनुमोदन करो और जैसे (सः) वह विद्वान् (पूर्णाम्) पूर्ण वृष्टि को (आसिचम्) अच्छे प्रकार सींचने वाले की (वष्टि) कामना करता है । वैसे हे (अध्वर्यवः) अपने को यज्ञ की इच्छा करने वाले तुम (तस्मै) उसके लिये (एतम्) इसको (भरत) धारण करो । हे धन देने वाले पुरुष ! (तद्वशः) उसकी इच्छावान् (ददिः) दाता आप (ऋतुभिः) वसन्तादि ऋतुओं के साथ (होत्रात्) देने वाले से (सोमम्) ओषधियों के रस को (पिब) पिओ ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को परस्पर के लिये विद्या, धन और धान्य आदि पदार्थ देकर निरन्तर आनन्द करना चाहिये ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यमु पूर्वमहुवे तमिदं हुवे सेदु हव्यो ददिर्यो नाम पत्यते ।
अध्वर्युभिः प्रस्थितं सोम्यं मधु पोत्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥२॥

पदार्थः—हे (द्रविणोदः) धन देने वाले ! जैसे (यः) जो (ददिः) देने वाला (हव्यः) ग्रहण करने योग्य मैं (यम्, उ) जिसको (पूर्वम्) प्रथम (अहुवे) होमता हूं (सः) सो मैं (तम्) उस (इदम्) इसको (नाम) प्रसिद्ध (इत्) ही (उ) तर्क वितर्क के साथ (पत्यते) पति करने अर्थात् रक्षक की इच्छा करने वाले के लिये (हुवे) ग्रहण करता हूं । और (अध्वर्युभिः) अपने को हिंसा न चाहने वाले जनों तथा

(ऋतुभिः) वसन्तादि ऋतुओं के साथ वर्त्तमान जैसे मैं (प्रस्थितम्) ओषधियों से निकाले हुए (सोम्यम्) सोम के योग्य (मधु) मधुर गुणयुक्त रस को पीता हूँ वैसे (पोत्रात्) पवित्र करने वाले से (सोमम्) महौषधियों के रस को तू (पिब) पी ॥२॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो अविद्वान् पुरुष विद्वानों के साथ सङ्गति कर अन्न पान आदि की परीक्षा करके उसको सेवते हैं वे सुखी होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मेद्यन्तु ते वह्नयो येभिरीयसेऽरिषण्यन्वीळयस्वा वनस्पते ।
आयूया धृष्णो अभिगूर्या त्वं नेष्ट्रात्सोमं द्रविणोदः पिब ऋतुभिः ॥३॥

पदार्थः—हे (द्रविणोदः) धन के देने और (वनस्पते) किरण समूह की रक्षा करने वाले ! (धृष्णो) प्रगल्भ आप जैसे (वह्नयः) पदार्थ पहुँचाने वाले (ते) आपके (सोमम्) ओषध्यादि रस को (मेद्यन्तु) सचिक्कनपने को चाहें वा (येभिः) जिनके साथ आप (ईयसे) प्राप्त होते हो वैसे उनके साथ (अरिषण्यन्) धन की न कांक्षा करते हुए (वीलयस्व) स्तुति कीजिये (अभिगूर्य) और सब ओर से उद्यम कर (आयूय) और मेल कर (नेष्ट्रात्) प्राप्ति से (त्वम्) आप (ऋतुभिः) वसन्तादि ऋतुओं के साथ (सोमम्) ओषध्यादि के रस को (पिब) पिओ ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। किसी को विना उद्यम के न रहना चाहिये और ऋतुओं के प्रति अनुकूल व्यवहार करके सुख बढ़ाना चाहिये ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तोत नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं द्रविणोदाः पिबतु द्रविणोदसः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (द्रविणोदाः) धन देने वाला (होत्रात्) हवन से (उत) और (पोत्रात्) पवित्र व्यवहार से (प्रयः) मनोहर अन्नादि पदार्थ (हितम्) जो कि सुख करने वाला है उसको (अपात्) पीये (अमत्त) हर्ष को प्राप्त हो (उत) और (नेष्ट्रात्) पदार्थ प्राप्ति से (अजुषत) प्रसन्न हो वैसे (द्रविणोदसः) जो धन को भोगता उस ऋत्विज् का मनोहर अन्नादि पदार्थ जो सुख करने वाला (तुरीयम्) चतुर्थ (अमर्त्यम्) नष्ट होनेपन से रहित (अमृक्तम्) अकोमल (पात्रम्) जो पीने योग्य है उसको (पिबतु) पिओ ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो हवन और अपवित्र को पवित्र करने वाली प्राप्ति से हित साध सकते हैं वे प्रीतिमान् होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् ।
पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥५॥

पदार्थः—हे (वाजिनीवसू) वेगवती क्रिया को बसाने वाले शिल्पी जनो ! तुम (अद्य) आज (यय्यम्) जो अच्छे प्रकार पहुंचता हुआ (अर्वाञ्चम्) नीचे नीचे चलने वाला (नृवाहणम्) और मनुष्यों को पहुंचाता है उस (रथम्) रमणीय मनोहर यान को (युञ्जाथाम्) जोड़ो और (इह) इस यान में (मधुना) मधुर गुण के साथ वर्त्तमान जो (हवींषि) देने लेने योग्य वस्तु हैं उनको (पृङ्क्तम्) संयुक्त कराओ (हि) और निश्चय से (कम्) किस देश को (गतम्) प्राप्त होओ (सोमम्) तथा ओषध्यादि रस को (पिबतम्) पिओ (अथ) इसके अनन्तर (वाम्) तुम दोनों का (विमोचनम्) विशेषता से छूटना हो ॥५॥

भावार्थः—जो शिल्पविद्या के पढ़ाने और पढ़ने वाले काष्ठादिकों से निर्माण किये यानों को अग्नि और जलादि से चला और देशान्तर में जाकर धन को अच्छे प्रकार उन्नत करते हैं वे निरन्तर सुख पाते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

जोष्यग्ने समिधं जोष्याहुतिं जोषि ब्रह्म जन्यं जोषि सुष्टुतिम् ।
विश्वेभिर्विश्वाँ ऋतुना वसो मह उशन्देवाँ उशतः पायया हविः ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् ! (वसो) निवास कराने वाले अग्नि के समान आप जिस कारण (समिधम्) प्रदीप्त करने वाली क्रिया को (जोषि) सेवते (आहुतिम्) वेदी में डाली हुई वस्तु (जोषि) सेवते (ब्रह्म) अन्न और (विश्वान्) सब पदार्थों का (जोषि) सेवन करते (जन्यम्) उत्पन्न करने योग्य पदार्थ वा (सुष्टुतिम्) सुन्दर प्रशंसा को (जोषि) सेवते इस कारण (विश्वेभिः) सब (ऋतुना) वसन्त आदि ऋतुसमूह के साथ (महः) बड़े बड़े (उशतः) कामना करने वाले (देवान्) विद्वानों की (उशन्) कामना करते हुए आप उनको (हविः) देने योग्य वस्तु (पायय) पियाओ ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बिजुलीरूप

अग्नि काष्ठ आदि पदार्थों का सेवन करके भी नहीं जलाता वैसे ही सबके साथ वसकर उनका नाश न करना चाहिये ऐसे होने पर कामसिद्धि होती है ॥६॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । सविता देवता । १ । ५ निचृत् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ । ४ । ६ । १० । ११ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ७ । ८ स्वराट् पङ्क्तिः । ९ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अड़तीसवें सूक्त का आरम्भ है इस के प्रथम मन्त्र में ईश्वर के विषय को कहते हैं ॥

उदु ष्य देवः सविता सवाय शश्वत्तमं तदपा वह्निरस्थात् ।
नूनं देवेभ्यो वि हि धाति रत्नमथाभजद्वीतिहोत्रं स्वस्तौ ॥१॥

पदार्थः—जो (वह्निः) पहुंचाने वाला (तदपाः) जिस का पहिचानना ही कर्म है (सविता) सकल जगत का उत्पादनकर्त्ता (देवः) देदीप्यमान जगदीश्वर (सवाय) उत्पन्न करने के लिये (शश्वत्तमम्) अनादिस्वरूप अनुत्पन्न कारण को (देवेभ्यः) क्रीड़ा करते हुए जीवों से (नूनम्) निश्चित (उदस्थात्) उपस्थित होता है (उ) और (स्यः) वह (हि) ही (रत्नम्) रमणीय जगत् को (वि, धाति) विधान करता है (अथ) इस के अनन्तर (स्वस्तौ) सुख के निमित्त (वीतिहोत्रम्) ग्रहण किई ईश्वर की व्याप्ति में अपनी व्याप्ति जिस में ऐसे जगत् को (अभजत्) सेवता है ॥१॥

भावार्थः - हे मनुष्यो ! जो अनादि त्रिगुणात्मक प्रकृतिस्वरूप जगत् का कारण है उसी से सब जगत् को उत्पन्न कर जो धारण कर रहा है उस से सब जीव निज निज शरीर और कर्म को सेवते हैं जो इस जगत् को जगदीश्वर न उत्पादन करे तो कोई भी जीव शरीरादि न पा सके ॥१॥

फिर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वस्य हि श्रुष्टये देव ऊर्ध्वः प्र बाहवा पृथुपाणिः सिसर्ति ।
आपश्चिदस्य व्रत आ निमृग्रा अयं चिद्वातो रमते परिज्मन् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अयम्) यह (परिज्मन्) सब ओर से व्याप्त होता

हुआ वा (वातः) पवन (रमते) क्रीड़ा को करता है (अस्य) इसके (व्रते) शीलस्वभाव के निमित्त (निमृग्राः) निरन्तर शुद्धि के हेतु (आपः) जल (चित्) भी (आ) अच्छे प्रकार रमण करते हैं जो (विश्वस्य) जगत् के बीच (ऊर्ध्वः) ऊपर स्थित (पृथुपाणिः) जिस के विस्तीर्ण हाथों के समान किरण वह (देवः) दिव्य सुख देने वाला (सविता) जगत् का उत्पन्न करने वाला (श्रुष्टये) शीघ्रता के लिये (बाहवा) भुजाओं के (चित्) समान (प्र, सिसर्त्ति) जाता है वह सब उक्त वृत्तान्त परमेश्वर के बीच में (हि) ही वर्त्तमान है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो परमेश्वर भूमि, जल, अग्नि और पवनों को न बनाता तो कुछ भी अपने आप उत्पन्न न हो सके ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आशुभिश्चिद्यान्वि मुंचाति नूनमरीरमदतमानं चिदेतोः ।
अह्यर्षूणां चिन्न्ययाँ अविष्यामनु व्रतं सवितुर्मोक्यागात् ॥३॥

पदार्थः—जो (मोकी) रात्रि (आशुभिः) घोड़ों के समान शीघ्रकारी पदार्थों से (यान्) जिन (अयान्) प्राप्त वस्तुओं को (वि, मुचाति) छोड़े (एतोः) इस को (अतमानम्) निरन्तर प्राप्त (चित्) भी पदार्थ (नूनम्) निश्चय कर के (अरीरमत्) रमण करता है (अह्यर्षूणाम्) और जो मेघ को प्राप्त होते हैं उन पदार्थों की (चित्) भी (अविष्याम्) रक्षा को (सवितुः) जगदीश्वर का जैसे (अनुव्रतम्) अनुकूल वा नियम वैसे (नि आ, अगात्) प्राप्त होता है यह उक्त समस्त काम (चित्) भी जगदीश्वर के नियम से होता है ॥३॥

भावार्थः—यदि ईश्वर नियम से पृथिवी को न भ्रमावे तो सुख देने वाली रात्रि न सिद्ध हो, पृथिवी में जितना देश सूर्य के निकट होता है उस में दिन और दूसरे में रात्रि ये दोनों निरन्तर वर्त्तमान हैं ॥३॥

अब सूर्यलोक विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पुनः समव्यद्वितंतं वयन्ती मध्या कर्त्तोर्न्यधाच्छक्म धीरः ।
उत्संहायास्थाद्व्यृ१तूँरदर्धररमतिः सविता देव आगात् ॥४॥

पदार्थः—जो (धीरः) धीर बुद्धिमान् (मध्या) आकाश के बीच (वयन्ती) चलती हुई पृथिवी (विततम्) जो पदार्थ अपने में व्याप्त उसको (सम, अव्यत्) सम्यक् व्याप्त होती (कर्त्तोः) और करने योग्य जाने आने के काम को तथा (शक्म) शक्ति के अनुकूल जो कर्म है उस को (नि, अधात्) निरन्तर धारण करती है (पुनः)

फिर पूर्व देश को (संहाय) अच्छे प्रकार छोड़ उत्तर अर्थात् दूसरे देश को प्राप्त होती हुई (उत्, अस्थात्) स्थिर होती उस को जानता है । जो (अरमतिः) विना रमण विद्यमान है वह (सविता) सूर्य्यलोक (देवः) प्रकाशमान होता हुआ (ऋतून्) ऋतुओं को (व्यदर्धः) निरन्तर अलग करता तथा निकट के पदार्थों को (आ, अगात्) प्राप्त होता उस को जो जानता है वह भूगोल और खगोल विद्या का जानने वाला होता है ॥४॥

भावार्थः— हे मनुष्यो ! ये सब लोक अन्तरिक्ष में ठहरे हुए भ्रमणशील ईश्वर ने नियम को पहुंचाये हुए हैं, उन में सूर्य के संनिकट और भ्रमण से छः ऋतु होते हैं यह जानना चाहिये ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नानौकांसि दुर्य्यो विश्वमायुर्वि तिष्ठते प्रभवः शोको अग्नेः ।
ज्येष्ठं माता सूनवे भागमाधादन्वस्य केतमिषितं सवित्रा ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जहां (नाना) अनेक प्रकार के (दुर्य्यः) द्वारवान् (ओकांसि) घर हैं वा जहां (सवित्रा) सूर्य्यलोक के साथ (अग्नेः) बिजुली आदि रूप अग्नि से (विश्वम्) समस्त (आयुः) जीवन को (वि, तिष्ठते) विशेषता से स्थिर करता है तथा (प्रभवः) उत्पत्ति और (शोकः) मरण भी होता है जहां (माता) जननी (सूनवे) सन्तान के लिये (ज्येष्ठम्) प्रशंसनीय (भागम्) भाग को और (अनु, अस्य) अनुकूल इस सन्तान को (इषितम्) इष्ट अभीष्ट चाहे हुए (केतम्) विज्ञान को (आ, अधात्) अच्छे प्रकार धारण करती उस में वा इस जगत् में यथावत् वर्त्ताव करना चाहिये ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो तुम्हारे जन्म हुए तो मरण भी होगा इस के वीच सब ऋतुओं में सुख देने वाले घरों को वनाकर विद्यावृद्धि के लिये पाठशालायें वनाय अपने कन्या और पुत्रों को विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त कर पूर्ण आयु को भोग के यश का विस्तार करना चाहिये ॥५॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

समाववर्त्ति विष्ठितो जिगीषुर्विश्वेषां कामश्चरताममाभूत् ।
शश्वाँ अपो विकृतं हित्व्यागादनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य ॥६॥

पदार्थः—जो (विष्ठितः) विशेषता से स्थित दृढ़ (विश्वेषाम्) समस्त (चरताम्) प्राण धारने वालों के सुख की (कामः) कामना करने वा (शश्वान्) शीघ्र चलने और (जिगीषुः) जीतने का शील रखने वाला (अभूत्) होता है वा जो (अमा)

घर में (समाववर्ति) अच्छे प्रकार वर्त्तमान है (विकृतम्) विकार को प्राप्त हुए (अपः) कर्म को (हित्वी) छोड़ के (दैव्यस्य) विद्वानों से पाये हुए (सवितुः) संसार को उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर के (व्रतम्) नियम को (अनु, आ, अगात्) अनुकूलता से प्राप्त होता वह सुख को भी प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब प्राणियों में सुख दुःख के व्यवहार में समदर्शी परमेश्वर के उपदेश से विरोध न करने वाले और पापाचरण को छोड़ निश्चित धर्माचरण को करते हैं वे निरन्तर सुख को प्राप्त होते हैं ॥६॥

अब ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वया हितमप्य॑मप्सु भागं धन्वान्वा मृगयसो वि त॑स्थुः ।
वनानि विभ्यो नकि॑रस्य तानि व्रता देवस्य सवितुर्मि॑नन्ति ॥७॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! जो (त्वया) आप के नियम के साथ वर्त्तमान (मृगयसः) मृग आदि वन्य प्राणी (अप्सु) जलों में (हितम्) स्थापित किये हुए वा (अप्यम्) प्राणों में प्रसिद्ध हुए (भागम्) सेवन करने योग्य अंश को (अनु, आ, तस्थुः) अनुकूलता से प्राप्त होते हैं तथा (विभ्यः) पक्षियों के लिये (धन्व) अन्तरिक्ष और (वनानि) वनों को आप ने बनाया (तानि) उन (अस्य) इन आप (सवितुः) सकलैश्वर्य्य को प्राप्त करने वाले (देवस्य) मनोहर ईश्वर के (व्रता) गुण कर्म स्वभावों को कोई भी (नकिः) नहीं (विमिनन्ति) नष्ट करते हैं ॥७॥

भावार्थः—यदि ईश्वर भूमि आदि स्थान तथा भोग्य, पेय, चूष्य, लेह्य, पदार्थों को न बनाये तो कोई भी शरीर और जीवन को धारण नहीं कर सकता । ईश्वर ने जिन के अर्थ जो नियम स्थापन किये हैं उनके उल्लंघन करने को कोई समर्थ नहीं होता ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

याद्राध्यं१ं वरु॑णो योनि॒मप्य॒मनि॑शितं नि॒मिषि॒ जर्भु॑राणः ।
विश्वो॑ मार्त्ता॒ण्डो व्र॒जमा प॒शुर्गा॑त्स्थ॒शो जन्मा॑नि सवि॒ता व्याकः॑ ॥८॥

पदार्थः—जो (विश्वः) समस्त (मार्त्ताण्डः) सूर्य्यलोक में उत्पन्न और (निमिषि) निमेषादि कालव्यवहार में (जर्भुराणः) निरन्तर धारण करता हुआ (वरुणः) श्रेष्ठ जीव (व्रजम्) गोंड़े को (पशुः) जैसे पशु वैसे (याद्राध्यम्) जाने वालों से अच्छे प्रकार सिद्ध होने योग्य (अप्यम्) जलों में प्रसिद्ध (अनिशितम्) अतीक्ष्ण (योनिम्) कारणरूप अग्नि को (आ, गात्) प्राप्त होवे उस जीव के (स्थशः) बहुत

बहुत ठहरने वाले (जन्मानि) जन्मों को (सविता) परमात्मा (व्याकः) विविध प्रकार से करता है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जितने इस जगत् में जीव हैं वे अपने कर्मजन्य फल को विद्यमान शरीर में और पीछे भी प्राप्त होते हैं जैसे पशु गोपाल ने नियम में रक्खा हुआ प्राप्तव्य स्थान को प्राप्त होता है वैसे जगदीश्वर जीवों से अनुष्ठित कर्मों के अनुसार सुख दुःख और निकृष्ट मध्यम तथा उत्तम जन्मों को देता है ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमा न मिनन्ति रुद्रः ।
नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस जगदीश्वर के (व्रतम्) नियम को (न) न (इन्द्रः) सूर्य्य और बिजुली (न) न (वरुणः) जल (न) न (मित्रः) वायु (न) न (अर्य्यमा) द्वितीय प्रकार का नियन्ता धारक वायु (न) न (रुद्रः) जीव (न) न (अरातयः) शत्रुजन (मिनन्ति) नष्ट करते हैं (तम्) उस (इदम्) इस (स्वस्ति) सुखरूप (सवितारम्) समस्त जगत् के उत्पन्न करने वाले (देवम्) दाता परमात्मा को (नमोभिः) सत्कर्मों से जैसे मैं (हुवे) स्तुति करूं वैसे तुम भी प्रशंसा करो ॥९॥

भावार्थः—इस संसार में कोई पदार्थ ईश्वर के तुल्य नहीं है तो अधिक कैसे हो और कोई भी इस के नियम को उल्लङ्घन नहीं कर सकता है इस कारण सब मनुष्यों को उसी ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करनी चाहिये ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

भगं धियं वाजयन्तः पुरन्धिं नराशंसो ग्नास्पतिर्नो अव्याः ।
आये वामस्य सङ्गथे रयीणां प्रिया देवस्य सवितुः स्याम ॥१०॥

पदार्थः—जो (नराशंसः) मनुष्यों ने प्रशंसित किया हुआ (पतिः) पालना करने वाला ईश्वर (नः) हम लोगों (ग्नाः) और प्राणियों की (अव्याः) रक्षा करे और उस (भगम्) समस्त ऐश्वर्य की (धियम्) जो चिन्तवन करने योग्य है वा (पुरन्धिम्) समस्त जगत् के धारण करने वाले को (वाजयन्तः) जानते वा उस का विज्ञान कराते हुए हम लोग (रयीणाम्) धनों के (आये) इस व्यवहार में जो सब ओर से प्राप्त होता और (सङ्गथे) संग्राम में (वामस्य) प्रशंसनीय (सवितुः) सकल

जगत् के बनाने वाले (देवस्य) भगवान् परमात्मा के (प्रियाः) प्रीति विषय निरन्तर (स्याम) हों ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! सब की रक्षा और धारण करने वाले प्रशंसित सब के स्वामी परमेश्वर की उपासना कर उस की आज्ञा के आचरण से उस के पियारे तुम होओ ॥१०॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अस्मभ्यं तद्दिवो अद्भ्यः पृथिव्यास्त्वया दत्तं काम्यं राध आ गात् ।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवात्युरुशंसाय सवितर्जरित्रे ॥११॥

पदार्थः—हे (सवितः) परमात्मन् (त्वया) आपने (दत्तम्) दिया हुआ (दिवः) प्रकाशमान लोक (अद्भ्यः) जलों और (पृथिव्याः) भूमि से (यत्) जो (काम्यम्) कामना करने योग्य (राधः) धन (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (आ, गात्) प्राप्त हो (तत्) वह (उरुशंसाय) बहुतों ने प्रशंसा किये हुए (जरित्रे) प्रशंसित (आपये) विद्या व्यापक के लिये और (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिये (शम्) कल्याणरूप (भवाति) हो ॥११॥

भावार्थः—परमेश्वर ने प्रकृति से महत्तत्त्व महत्तत्त्व से अहङ्कार अहङ्कार से पञ्चतन्मात्रा पञ्चतन्मात्राओं से एकादश इन्द्रियां और स्थूल पञ्चभूत और ओषधियां बनाईं। जिन से सब प्राणियों का सुख होता है ॥११॥

इस सूक्त में ईश्वर, सूर्य और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये।

यह अड़तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् ४ । ७ । ८ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ । ६ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ऊनतालीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में वायु और अग्नि के गुणों को कहते हैं ॥

ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जो वायु और अग्नि (ग्रावाणेव) दो मेघों के समान (तत्) उस (अर्थम्, इत्) द्रव्य को ही (जरेथे) नष्ट करते वा (विदथे) शिल्प यज्ञ में (गृध्रेव) गृद्धों के समान (निधिमन्तम्) जिसमें बहुत निधि धन कोप विद्यमान उस (वृक्षम्) छेदन करने योग्य जल स्थल को (अच्छ) अच्छे प्रकार नष्ट करते (ब्रह्माणेव) और जैसे समस्त वेदवेत्ता जन हों वैसे वर्त्तमान (उक्थशासा) वा जिन की शिक्षायें कही हुई हैं उन (दूतेव) दूतों के समान वर्त्तमान (हव्या) तथा ग्रहण करने योग्य (जन्या) अनेक पदार्थों की उत्पत्ति करने वाले (पुरुत्रा) और बहुत पदार्थों में वर्त्तमान हैं उन वायु और अग्नि का अच्छे प्रकार प्रयोग तुम लोग करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो वह्नि आदि पदार्थ मेघ वा पक्षियों तथा विद्वानों और दूत के समान कार्य्यसिद्धि करने वाले हैं उन को जान के प्रयोजनों को सिद्ध करना चाहिये ॥१॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराजेव यमा वरमा सचेथे ।
मेनेइव तन्वा३ शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥२॥

पदार्थः—जो सूर्य और पृथिवी (जनेषु) मनुष्यों में (रथ्येव) रथ के हित दो घोड़ों के तुल्य (प्रातर्यावाणा) जो प्रातःकाल जाते उन के समान वा (अजेव) दो बकरों के समान (वीरा) वीरता कर्मयुक्त वा (यमा) उपराम अर्थात् उड़ते उड़ते निवृत्त हुए (मेनेइव) दो मैनाओं के समान वा (तन्वा) शरीर से (शुम्भमाने) शोभते हुए (दम्पतीव) स्त्री पुरुष के समान (क्रतुविदा) जिन से प्रज्ञा को प्राप्त होते हैं उन को जान के पढ़ाने और पढ़ने वाले (वरम्) उत्तम कर्म का (आ, सचेथे) सम्बन्ध करते हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को जैसे सुशिक्षित घोड़े वाले एक यान में स्थिर हो के बकरों के समान वीरता का प्रकाश कर पक्षियों वा स्त्री पुरुषों के समान शोभा को प्राप्त होते और अच्छे कर्मों को उत्पन्न कराते हैं वैसे सूर्य्य और भूमि सब का उपकार करने वाले वर्त्तमान हैं यह जानना चाहिये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक् शफाविव जर्भुराणा तरोभिः ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रार्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥३॥

पदार्थः—हे (उस्रा) किरणों के समान वर्त्तमान (रथ्येव) रथ के लिये हित-कारी वस्तु के तुल्य (शक्रा) शक्तिमान् ! तुम लोग (नः) हम लोगों के (अर्वाक्) पीछे (गन्तम्) प्राप्त हुए को (भृङ्गेव) भृङ्गों के समान सम्बन्ध करने तथा हिंसा करने वाले (शफाविव) जैसे खुर परस्पर सम्बन्ध करे हुए हैं वैसे (जर्भुराणा) निरन्तर धारण करने वाले (प्रथमा) पहिले सनातन वा (तरोभिः) जिन से तैरते हैं उन नौकाओं से जैसे (चक्रवाकेव) चकई चकवा (प्रति) प्रति (वस्तोः) दिन (अर्वाञ्चा) पीछे जाने वाले हो कर (यातम्) प्राप्त हूजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। यदि अग्नि वायु शिल्प-कार्य्यों में संयुक्त किये जावें तो वहुत कार्य्यों को सिद्ध करें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव ।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जो वायु और विजुली (युगेव) रथादि में अश्वादिकों के समान जोड़े हुए (नावेव) वा जैसे उत्तमता से नावें वैसे (नः) हम लोगों को (पारयतम्) पार पहुंचाते (नभ्येव) वा रथ के पहियों के बीच के अङ्ग के समान वा (उपधीव) रथ के बीच के भाग की धारण करने वाली लकड़ी के समान वा (प्रधीव) समस्त रथ की धारण करने वाली दो लकड़ियों के समान (नः) हम लोगों को पहुं-चाते हैं वा (श्वानेव) चोरादिकों से रक्षा करने वाले कुत्तों के समान (नः) हमारे (तनूनाम्) शरीरों को (अरिषण्या) न नष्ट करने हारे हैं और (खृगलेव) जो खोदने को गलाते हुए के समान (विस्रसः) जीर्णावस्था से (अस्मान्) हम लोगों की (पातम्) रक्षा करते हैं उन का हम लोगों को आप उपदेश देओ ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। कोई भी सृष्टि के पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावों को न जान के पूर्ण विद्या वाला नहीं होता है इस से सृष्टि की विद्याओं का अच्छे प्रकार प्रचार करना चाहिये ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षीइव चक्षुषा यातमर्वाक् ।
हस्ताविव तन्वे३ शम्भविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो अच्छ ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जो (वातेव) पवन के समान (अजुर्या) अजीर्ण अर्थात् पुष्ट (नद्येव) नदी में उत्पन्न हुए जल के समान (रीतिः) मिले हुए शीघ्र जाने

वाले वा (अक्षीइव) नेत्रों के समान (चक्षुषा) दिखाने की शक्ति युक्त (अर्वाक्) नीचे (आ, यातम्) सब ओर से प्राप्त होते हैं (हस्ताविव) हाथों के समान (तन्वे) शरीर के लिये (शम्भविष्ठाः) अतीव सुख की भावना कराने वाले (पादेव) पैरों के समान (नः) हम लोगों को (वस्यः) अति उत्तम धन (अच्छ) अच्छे प्रकार (नयतम्) प्राप्त करते हैं उन जल और अग्नि को हम लोगों को बतलाओ ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र मे उपमालङ्कार है। जैसे शरीर के अङ्ग अपने अपने काम में प्रवर्त्तमान शरीर की रक्षा करते हैं वैसे वायु आदि पदार्थ सब की रक्षा करते हैं यह जानना चाहिये ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे नः ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! तुम जो (आस्ने) मुख के लिये (मधु) मधुर रस को (ओष्ठाविव) ओष्ठों के समान (वदन्ता) कहते हुए (जीवसे) जीवने को (स्तनाविव) स्तनों के समान (नः) हमारे लिये (पिप्यतम्) बढ़ाते अर्थात् जैसे स्तनों में उत्पन्न हुए दुग्ध से जीवन बढ़ता है वैसे बढ़ाते (नासेव) और नासिका के समान (नः) हमारे (तन्वः) शरीर की (रक्षितारा) रक्षा करने वाले वा (अस्मे) हम लोगों के लिये (कर्णाविव) कर्णों के समान (सुश्रुता) जिन से सुन्दर श्रवण होता है ऐसे (भूतम्) होते हैं उन वायु और अग्नि को विदित कराइये ॥६॥

भावार्थः--इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो अध्यापक जिह्वा से रस के समान, स्तनों से दुग्ध के समान, नासिका से गन्ध के तुल्य, कान से शब्द के समान, समस्त विद्याओं को प्रत्यक्ष कराते हैं वे जगत्पूज्य होते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हस्तेव शक्तिमभि संददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि ।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥७॥

पदार्थः—हे (अश्विना) वायु और अग्नि के समान वर्त्तमान पढ़ाने और परीक्षा करने वालो ! जो अग्नि और वायु (शक्तिम्) तीक्ष्ण अग्रभाग वाली शक्ति को (हस्तेव) हाथों के समान (नः) हम लोगों को (अभि, सन्ददी) जिन से अच्छे प्रकार देते वा (क्षामेव) पृथिवी के समान (वः) हम लोगों को (रजांसि) ऐश्वर्य वालों को (समजतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त कराते हैं वा (क्ष्णोत्रेणेव) तेजस्वी करने वाले साधन

से जैसे वैसे (इमाः) इन (युष्मयन्तीः) जो तुम को कहती हैं उन (गिरः) सुशिक्षित वाणियों को (स्वधितिम्) वज्र के समान (सम्, शिशीतम्) तीक्ष्ण करें उन के गुण कर्म और स्वभावों को हम लोगों को बताओ ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वानो ! जो हाथ की क्रिया को करने वाले पृथिवी के समान ऐश्वर्य देने अच्छी शिक्षित वाणी के समान पदार्थों को बताने तीक्ष्ण वज्र के समान दारिद्रय और दुःख का विनाश करने वाले अग्न्यादि पदार्थ हैं उन को आज हम लोगों को ग्रहण कराओ ॥७॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एतानि वामश्विना वर्द्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन् ।
तानि नरा जुजुषाणोपयातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥८॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सकल विद्या में व्याप्त होने वाले (नरा) मनुष्यों में अग्रगन्ताओं के समान वर्त्तमान अध्यापक और परीक्षको ! तुम (वाम्) तुम दोनों के जिन (एतानि) इन (वर्द्धनानि) वृद्धियों (ब्रह्म) धन और (स्तोमम्) प्रशंसा को (गृत्समदासः) जिन्होंने आनन्द चाहे हुए हैं वे जन (अक्रन्) करें। (तानि) उन को (जुजुषाणा) सेवते हुए हम लोगों के (उप, यातम्) समीप प्राप्त होते जिससे (सुवीराः) उत्तम वीरों वाले हम सब लोग (विदथे) संग्राम में (बृहत्) बहुत विज्ञान को निरन्तर (वदेम) पढ़ावें वा उपदेश करें ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों का अनुकरण करें तो वे महात्मा होवें ॥८॥

इस सूक्त में वायु और अग्नि आदि पदार्थ वा विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह उनतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । सोमा पूषणावदितिश्च देवताः । १ । ३ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ५ । ६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब चालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में पवन के गुणों का उपदेश कहते हैं ॥

सोमापूषणा जनना रयीणां जनना दिवो जनना पृथिव्याः ।
जातौ विश्वस्य भुवनस्य गोपौ देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (देवाः) विद्वान् जन जिन (रयीणाम्) धनों को (जनना) सुखपूर्वक उत्पन्न करने वाले वा (दिवः) प्रकाश के (जनना) उत्पन्न करने वाले (पृथिव्याः) पृथिवी के (जनना) उत्पन्न करने वाले (जातौ) उत्पन्न हुए (विश्वस्य) समस्त (भुवनस्य) संसार की (गोपौ) रक्षा करने वाले (सोमापूषणा) प्राण और अपान (अमृतस्य) नाशरहित पदार्थ के (नाभिम्) मध्य भाग को (अकृण्वन्) प्रकट करें उनको विशेषता से जानो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को प्रकाश पृथिवी और धनों के निमित्त होकर सब की रक्षा करने वाले परमात्मा का विज्ञान कराने वाले प्राण और अपान वर्त्तमान हैं यह जानना चाहिये ॥१॥

अब अग्नि के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमौ देवौ जायमानौ जुषन्तेमौ तमांसि गूहतामजुष्टा ।
आभ्यामिन्द्रः पक्वमामास्वन्तः सोमापूषभ्यां जनदुस्रियासु ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! सब पदार्थ (इमौ) इन प्रत्यक्ष (जायमानौ) उत्पन्न होते हुए (देवौ) मनोहरों को (जुषन्त) सेवते हैं जो (इमौ) यह दोनों (अजुष्टा) न सेवन किये हुए (तमांसि) रात्रियों को (गूहताम्) अच्छे प्रकार ढांपते हैं (आभ्याम्) इन (सोमापूषभ्याम्) चन्द्र और ओषधि गणों के साथ (इन्द्रः) बिजुली वा सूर्य्य (आमासु) अपक्व (उस्रियासु) भूमियों के (अन्तः) बीच (पक्वम्) पके पदार्थ को (जनत्) उत्पन्न कराता उनका अच्छे प्रकार उपयोग करो ॥२॥

भावार्थः—जो अग्नि सब के भीतर स्थित प्रकाशकारक है वह जिन चन्द्रमा और ओषधिगणों के बिना अकिंचित्कर होता अर्थात् संसार का सुख करने वाला नहीं होता उन को जान कार्य्यसिद्धि करनी चाहिये ॥२॥

अब अग्नि और वायु के गुणों को कहते हैं ॥

सोमापूषणा रजसो विमानं सप्तचक्रं रथमविश्वमिन्वम् ।
विषूवृतं मनसा युज्यमानं तं जिन्वथो वृषणा पञ्चरश्मिम् ॥३॥

पदार्थः—हे (वृषणा) बलिष्ठ वायु और अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वानो ! तुम (सोमापूषणा) अग्नि और वायु (रजसः) लोकसमूह के (अविश्वमिन्वम्) जिससे अविद्यमान समस्त पदार्थों को अलग करते हैं जो (विषूवृतम्) व्यापक गमन से ढपा हुआ (सप्तचक्रम्) जिसमें सात चक्र (पञ्चरश्मिम्) तथा पांच प्राण अपान व्यान उदान और समान रश्मि के तुल्य विद्यमान (मनसा) जो अन्तःकरणस्थ विचार से (युज्यमानम्) युक्त किया जाता उस (विमानम्) आकाश में गमन कराने वाले (रथम्) रमणीय यान को (जिन्वथः) चलाते हैं (तम्) उसको जानो ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अन्तरिक्ष में गमन कराने वाले सात कलायन्त्र घुमाने के जिस में निमित्त ऐसे शीघ्र गमन कराने वाले रथ को बना कर सुख पावें ॥३॥

अब अग्नि के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दिव्य१॒न्यः सद॑नं च॒क्र उ॒च्चा पृ॑थि॒व्याम॒न्यो अध्य॒न्तरि॑क्षे ।
ताव॒स्मभ्यं॑ पुरु॒वारं॑ पुरु॒क्षुं रा॒यस्पोषं॒ वि ष्य॑तां॒ नाभि॑म॒स्मे ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! अग्नि का भाग (अन्यः) और है और वह (उच्चा) ऊपर जो स्थित (दिवि) आकाश उसमें (सदनम्) स्थान (अधि, चक्रे) किये हुए है तथा (अन्यः) और (पृथिव्याम्) पृथिवी में और (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में स्थान को (अधि) अधिकता से किये हुए हैं (तौ) वे दोनों (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (पुरुवारम्) बहुतों से स्वीकार करने योग्य (पुरुक्षुम्) बहुतों ने शब्दित किये अर्थात् कहे सुने (रायः) धनादि पदार्थों के (पोषम्) पुष्ट करने वाले और (अस्मे) हमारे (नाभिम्) मध्य बन्धन के (वि, ष्यताम्) निकट हों उनको तुम जानो ॥४॥

भावार्थः - अग्नि के तीन स्थान हैं एक ऊपर आकाश में, दूसरा पृथिवी में और तीसरा बीच में, उन तीनों में सूर्य्यरूप से अन्तरिक्ष में निकट स्थित प्रत्यक्ष पृथिवी में और गुप्त अन्तरिक्ष में वर्त्तमान है उस अग्नि को मनुष्य जानें ॥४॥

अब विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

विश्वा॑न्य॒न्यो भुव॑ना ज॒जान॒ विश्व॑म॒न्यो अ॑भि॒चक्षा॑ण एति ।
सोमा॑पूषणा॒वव॑तं॒ धियं॑ मे यु॒वाभ्यां॒ विश्वाः॒ पृत॑ना जयेम ॥५॥

पदार्थः— हे अध्यापक और उपदेशको ! जो (अन्यः) भिन्न भाग (विश्वानि) समस्त (भुवना) लोकों में प्रसिद्ध पदार्थों को (जजान) उत्पन्न करता जो (अन्यः) और (अभिचक्षाणः) प्रकट वाणी का विषय (विश्वम्) संसार को (एति) प्राप्त

होता उन दोनों (सोमापूषणौ) शान्ति और पुष्टि गुण वाले वायु का उपदेश देकर (मे) मेरी (धियम्) बुद्धि की तुम दोनों (अवतम्) रक्षा करो जिससे (युवाभ्याम्) तुम दोनों के साथ हम लोग (विश्वाः) समस्त (पृतनाः) मनुष्यों को (जयेम) उत्कर्ष दें ।।५।।

भावार्थः—जो वायु सब लोकों को धरता और जो शब्द प्रयोग वा श्रवण का निमित्त है उसके विज्ञान कराने से सब मनुष्यों की उन्नति करनी चाहिये ।।५।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

धियं॑ पू॒षा जि॑न्वतु विश्वमि॒न्वो र॒यिं सोमो॑ रयि॒पति॑र्दधातु ।
अव॑तु दे॒व्यदि॑तिरन॒र्वा बृ॒हद्व॑देम वि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ।।६।।

पदार्थः—हे विद्वानो ! जिस प्रकार से (पूषा) प्राण मेरी (धियम्) बुद्धि वा कर्म को (जिन्वतु) प्राप्त हो वा सुखी करे (विश्वमिन्वः) तथा जो विश्व को व्याप्त होता वह (रयिपतिः) धन की रक्षा करने वाला (सोमः) पदार्थों का समूह (रयिम्) लक्ष्मी को (दधातु) धारण करे (अनर्वा) तथा जिसके अविद्यमान घोड़े हैं वह (देवी) दिव्य गुण वाली (अदितिः) माता बुद्धि वा कर्म की (अवतु) रक्षा करे जिससे (सुवीराः) शोभन वीरों वाले हम लोग (विदथे) संग्राम में (बृहत्) बहुत (वदेम) कहें ।।६।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सब पदार्थ धन बुद्धि आरोग्यता और आयु के बढ़ाने वाले हों वैसे विधान करो जिससे सब मनुष्य बहुत सुख को प्राप्त होवें ।।६।।

इस सूक्त में प्राण अपान अग्नि वायु और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ।।

यह चालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

---

गृत्समद ऋषिः । १ । २ वायुः । ३ इन्द्रवायू । ४—६ मित्रावरुणौ । ७—९ अश्विनौ । १०—१२ इन्द्रः । १३—१५ विश्वेदेवाः । १६—१८ सरस्वती । १९—२१ द्यावापृथिव्यौ हविर्धाने वा देवताः । १ । ३ । ४ । ६ । १० । ११ । १३ । १५ । १९—२१ गायत्री । २ । ५ । ९ । १२ । १४ निचृद् गायत्री । ७ त्रिपाद्गायत्री । ८ विराट् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । १६ अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । १७ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । १८ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ।।

अव इक्कीस ऋचा वाले इकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में अध्यापक के विषय को कहते हैं ॥

वायो ये तें सहस्रिणो रथासस्तेभिरा गंहि ।
नियुत्वान्त्सोमपीतये ॥१॥

पदार्थः—हे (वायो) पवन के समान वर्त्तमान विद्वान् ! (ये) जो (ते) आप के वायुवद् वेग वाले (सहस्रिणः) असंख्यात वेगादि गुणों वाले (रथासः) रमणीय यान हैं (तेभिः) उन के साथ (नियुत्वान्) नियमयुक्त होते हुए (सोमपीतये) उत्तम ओषधियों के रस पीने को (आ, गहि) आइये ॥१॥

भावार्थः— पवन के असंख्य जो वेग आदि कर्म हैं उन को जान के इधर उधर मनुष्यों को जाना आना चाहिये ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नियुत्वान् वायवा गह्ययं शुक्रो अयामि ते ।
गन्तासि सुन्वतो गृहम् ॥२॥

पदार्थः—हे (वायो) पवन के समान वर्त्तमान विद्वान् ! जिस कारण आप (शुक्रः) अज्ञानताओं को सुखाने वाले होते हुए (सुन्वतः) ओषधियों के रस निकालने वाले के (गृहम्) घर (गन्ता) जाने वाले (असि) हैं इस कारण (नियुत्वान्) आत्मा से नियमयुक्त जितेन्द्रिय होते हुए (आ, गहि) आओ जैसे (अयम्) यह वायु नियमयुक्त सर्वत्र जाने वाला है वैसे मैं (ते) आप के घर को (अयामि) प्राप्त होता हूं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जैसे पवन नियम से सर्वत्र जाते हैं वैसे नियमयुक्त कर्मों को कर सुखों को प्राप्त होना चाहिये ॥२॥

अब अध्यापक और अध्येताओं के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शुक्रस्याद्य गवांशिर इन्द्रंवायू नियुत्वंतः । आ यांतं पिबंतं नरा ॥३॥

पदार्थः—हे (नरा) बिजुली और पवन के समान वर्त्तमान अग्रगन्ता मनुष्यो ! तुम (अद्य) आज (शुक्रस्य) अज्ञानता शोखने और (गवाशिरः) किरणों को अर्थात् विद्याओं को व्याप्त होने वाले (नियुत्वतः) नियम युक्त के समीप (आ, यातम्) आओ और जल रस (पिबतम्) पीओ ॥३॥

भावार्थः—जैसे बिजुली और पवन सर्वत्र अभिव्याप्त और सब जगत्

की रक्षा करते हैं वैसे उत्तम काम कर और शुद्ध जल पीके आरोग्यपन और सबकी उन्नति करनी चाहिये ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयं वा मित्रावरुणा सुतः सोमं ऋतावृधा । ममेदिह श्रुतं हवम् ॥४॥

पदार्थः—हे (ऋतावृधा) सत्य से बढ़े हुए (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान अध्यापको ! जो (अयम्) यह (वाम्) तुम दोनों से (सोमः) ओषधियों का रस (सुतः) उत्पन्न हुआ उस को पी के (इत्) ही (इह) यहां (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को (श्रुतम्) सुनिये ॥४॥

भावार्थः—जैसे वायु सब से रस को ग्रहण कर वर्षाते हैं वैसे ही सत्य विद्याओं को सुन कर सब के लिये सुख देना चाहिये ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

राजानावनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे । सहस्रस्थूण आसाते ॥५॥

पदार्थः—हे (अनभिद्रुहा) द्रोहकर्मरहित (राजानौ) प्रकाशमान जनो ! तुम (ध्रुवे) जो कि निश्चल (उत्तमे) श्रेष्ठ (सहस्रस्थूणे) जिस में सहस्र खम्भा विद्यमान उस (सदसि) सभा में जो प्राणोदानवद्वर्त्तमान अध्यापकोपदेशक (आसाते) बैठते हैं उन को जानो ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! वे ही राजा और प्रधान पुरुष धन्यवाद के योग्य होते हैं जो गुणयुक्त उत्तम सभा में बैठ के किसी का पक्षपात कभी न करें ॥५॥

अब सूर्य्य और चन्द्रमा के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ता सम्राजा घृतासुती आदित्या दानुनस्पती । सचेते अनवह्वरम् ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (घृतासुती) शुद्ध तत्त्व जल को निकालने वाले (सम्राजा) अच्छे प्रकार प्रकाशमान चक्रवर्त्ति राजा के समान वर्त्तमान (आदित्या) अखण्डित (दानुनः) दान के (पती) पालन करने वाले सूर्य्य चन्द्रमा सब का (सचेते) सम्बन्ध करते हैं (ता) उन को (अनवह्वरम्) सरलता जैसे हो वैसे सिद्ध करो ॥६॥

भावार्थः--हे मनुष्यो ! जो सूर्य्य चन्द्रमा सब का प्रकाश करने वा जल के देने वाले सब के अनुसङ्गी सीधे मार्ग से जाते हैं वैसे शुद्ध मार्ग में जाओ ॥६॥

अब अग्नि और वायु के गुणों को कहते हैं ॥

गोमदू षु नासत्याश्वावद्यातमश्विना । वर्त्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (नासत्या) असत्यरहित (रुद्रा) दुष्टों के रुलाने वाले (अश्विना) व्यापनशील अध्यापकोपदेशक (अश्वावत्) घोड़े के तुल्य (उ) वा (गोमत्) बहुत गौयें जिसमें विद्यमान उस (नृपाय्यम्) मनुष्यों के मानने वाले (वर्त्तिः) मार्ग को (सुयातम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं वैसे तुम इन को प्राप्त होओ ॥७॥

भावार्थः—मनुष्य यदि वायु और अग्नि के यान से जहां तहां जावें तो परिमित सुख पावें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

न यत्परो नान्तर आदधर्षद्वृषण्वसू । दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (परः) उत्कृष्ट (दुःशंसः) जिस की दुष्ट स्तुति विद्यमान वह (मर्त्यः) मरणधर्मा मनुष्य (रिपुः) शत्रु (यत्) जो (वृषण्वसू) वर्षाने वालों को वसाते हैं उन को (न, आदधर्षत्) न लचावे वा (अन्तरः) सामान्य दुष्ट स्तुति वाला मरणधर्मा जिन को (न) न लचावे उन को कार्यों में नियुक्त करो ॥८॥

भावार्थः - इस जगत् में वायु और अग्नि को कोई भी लचाय नहीं सकता और न इनका कोई शत्रु के समान नाश करने वाला है उस प्रकार से नहीं पराजित होने योग्य मनुष्यों को होना चाहिये ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ता न आ वोढमश्विना रयिं पिशङ्गसंदृशम् ।
धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (धिष्ण्या) शब्दायमान हों वा स्तुति किये जावें वे (अश्विना) सर्वत्र होने वाले अग्नि और वायु (नः) हम लोगों के लिये (वरिवोविदम्) जिस से सेवा को प्राप्त होते वा (पिशङ्गसंदृशम्) सुन्दर वर्ण को देखते हैं उस (रयिम्) धन को (आ, वोढम्) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं (ता) उन का उपदेश करो ॥९॥

भावार्थः--मनुष्यों को चाहिये कि जिन अग्नि और वायु से पुष्कल धन को प्राप्त होते हैं उनको यथावत् जानें ॥९॥

अब सूर्य विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रो अङ्ग महद्भयमभी षदप चुच्यवत् ।
स हि स्थिरो विचर्षणिः ॥१०॥

पदार्थः - हे (अङ्ग) विद्वान् पुरुष ! जो (स्थिरः) स्थिर अपनी परिधि में ठहरा हुआ (विचर्षणिः) देखने वाला (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सूर्य (महत्) बहुत (सत्) होता हुआ (भयम्) जो भय उस को (अप, अभि, चुच्यवत्) अलग करता है (सः, हि) वही सूर्यलोक जानने योग्य है ॥१०॥

भावार्थः—यदि ब्रह्माण्ड में सूर्य न हो तो किसी का भय न निवृत्त हो यदि सूर्य लोक अपनी परिधि में स्थिर और दिखाने वाला न हो तो तुल्य आकर्षण और देखना न बने ॥१०॥

फिर उसी विषय को तथा परमेश्वरोपासना विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत् ।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥११॥

पदार्थः—जो (इन्द्रः) परमेश्वर (च) और उस का बनाया सूर्य (नः) हम को (मृलयाति) सुखी करे इस से (नः) हमारे (पुरः) अगले (पश्चात्) और पिछले (अघम्) पाप (न) न (नशत्) प्राप्त हों किन्तु (नः) हमारे लिये यथार्थ (भद्रम्) कल्याण (भवाति) होवे ॥११॥

भावार्थः—जो जगदीश्वर घटपटादिकों को जैसे सूर्य वैसे सब के आत्माओं को प्रकाशित करता है जो उस के भक्त हैं वे उससे भिन्न की उसके स्थान में नहीं उपासना करते हैं वे सर्वव्यापक परमेश्वर को जान और वह हमें निरन्तर देखता है ऐसा मानकर अधर्माचरण नहीं करते हैं किन्तु निरन्तर धर्म ही का अनुष्ठान करते हैं उन के आगामी पापाचरण की निवृत्ति और योगज सिद्धि विज्ञान के होने से मुक्ति होवे ही गी, औरों की नहीं यह निश्चय है ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत् ।
जेता शत्रून् विचर्षणिः ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (विचर्षणिः) सब का देखने वाला (इन्द्रः) परमेश्वर (शत्रून्) शत्रुओं को (जेता) जीतने वाले के समान (सर्वाभ्यः) सब (आशाभ्यः)

दिशाओं से हम को (अभयम्) अभय (परि, करत्) सब ओर से करता है वही हम लोगों को निरन्तर उपासना करने योग्य है ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पक्षपात रहित वीर पुरुष दुष्टाचारी और औरों के लिये भय देने वालों को निवार के प्रजाओं को सुखयुक्त करते हैं वैसे उपासना किया हुआ सर्वज्ञ ईश्वर सब ओर से दुष्टाचरण से निवृत्त कर श्रेष्ठाचार में प्रवृत्त कर अभय मुक्तिपद को प्राप्त करा कर सब मुक्त जीवों को आनन्दित करता है इस कारण यही सब को उपासना करने योग्य है ॥१२॥

फिर पढ़ाने और पढ़ने वालों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्वे॑ देवास॒ आ ग॑त शृणु॒ता म॑ इ॒मं हव॑म् । एदं ब॒र्हिर्नि षी॑दत ॥१३॥

पदार्थः—हे (विश्वे) सब (देवासः) विद्वानो ! तुम (आ, गत) आओ और (इदम्) इस (बर्हिः) उत्तमासन पर (निषीदत) बैठो (मे) और मेरे (इमम्) इस (हवम्) ग्रहण करने योग्य शब्दार्थ सम्बन्ध को (आ, शृणुत) अच्छे प्रकार सुनो ॥१३॥

भावार्थः—विद्यार्थी जन पढ़ाने वालों से यह कहें कि आप यहां आइये, सर्वोत्तम आसन पर बैठ के हम ने पढ़े जो शास्त्र उन में परीक्षा कीजिये ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ती॒व्रो वो॒ मधु॑माँ अ॒यं शु॒नहो॑त्रेषु मत्स॒रः । ए॒तं पि॑बत॒ काम्य॑म् ॥१४॥

पदार्थः—हे सब विद्वानो ! जो (वः) तुम्हारा (अयम्) यह (शुनहोत्रेषु) विद्वान् वृद्धों के दानों में (तीव्रः) तीक्ष्ण (मधुमान्) विज्ञानसम्बन्धी (मत्सरः) आनन्द है (एतम्) इस (काम्यम्) मनोहर रस को तुम (पिबत) पिओ ॥१४॥

भावार्थः—जो विज्ञानवृद्धों की सेवा करते हैं वे तीव्रबुद्धि हुए विद्वान् होते हैं ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्र॑ज्येष्ठा॒ मरु॑द्गणा॒ देवा॑सः॒ पूष॑रातयः ।
विश्वे॒ मम॑ श्रु॒ता हव॑म् ॥१५॥

पदार्थः—हे (इन्द्रज्येष्ठाः) परम विद्यारूप ऐश्वर्य्य जिन के प्रधान है वे (विश्वे) सब (देवासः) विद्वानो ! (पूषरातयः) जिन का पुष्टि के निमित्त दान है वे

(मरुद्गणाः) बहुत मनुष्य तुम लोग (मम) मेरे (हवम्) ग्रहण करने योग्य विद्यार्थ सम्बन्ध को (श्रुत) सुनो ॥१५॥

भावार्थः—जो विद्यादि गुणों में प्रधान पुरुष का सत्कार करते विद्या देते और दूसरों से लेते हैं वे परीक्षक होके औरों को विद्वान् करते हैं ॥१५॥

अब विदुषी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥१६॥

पदार्थः—हे (अम्बितमे) अतीव पढ़ाने वाली (देवितमे) अतीव पण्डिता (नदीतमे) अतीव अप्रकट विद्या का उपदेश करने (सरस्वति) बहुविज्ञान रखने वाली (अम्ब) माता अध्यापिका जो (अप्रशस्ताइव) अप्रशस्तों के समान हम लोग (स्मसि) हैं उन (नः) हम लोगों को (प्रशस्तिम्) प्रशंसा को प्राप्त (कृधि) करो ॥१६॥

भावार्थः—जितनी कुमारी हैं वे विदुषियों से विद्या अध्ययन करें और वे कुमारी ब्रह्मचारिणी विदुषियों की ऐसी प्रार्थना करें कि आप हम सबों को विद्या और सुशिक्षा से युक्त करें ॥१६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वे विश्वा सरस्वति श्रितायूंषि देव्याम् ।
शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदिड्ढि नः ॥१७॥

पदार्थः—हे (देवि) प्रकाशमान (सरस्वति) परमविदुषी स्त्री ! जैसे (विश्वा) समस्त (आयूंषि) आयुर्दा (त्वे) तुझ (देव्याम्) विदुषी में (श्रिता) आश्रित हैं सो तू (शुनहोत्रेषु) पाई है योगज विद्या जिन्होंने उनके बीच (मत्स्व) आनन्द कर (नः) हमारे (प्रजाम्) सन्तानों को (दिदिड्ढि) उपदेश दे ॥१७॥

भावार्थः—सब विद्वान् जन अपनी अपनी विदुषी स्त्रियों के प्रति ऐसा उपदेश देवें कि तुम को सब की कन्यायें पढ़ानी चाहिये और सब की स्त्री अच्छे प्रकार सिखानी चाहिये ॥१७॥

अब स्त्रीपुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवति ।
या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति ॥१८॥

पदार्थः—हे (ऋतावरि) सत्याचरणयुक्त (वाजिनीवति) वा बहुत ऐश्वर्य और अन्नादि पदार्थयुक्त (सरस्वति) बहुत विज्ञान वाली ! तू जैसे (गृत्समदाः) आनन्द जिन्होंने ग्रहण किया वे (या) जिन (इमा) इन (ते) तेरे (प्रिया) मनोहर विज्ञान वा (मन्म) साधारण विज्ञानों को (देवेषु) विद्या की कामना करने वालों में (जुह्वति) स्थापन करते हैं उन (ब्रह्म) विज्ञानों को तू (जुषस्व) सेवन कर ॥१८॥

भावा:—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्वान् पुरुष, कुमार ब्रह्मचारियों को अच्छी शिक्षा से पढ़ावें वैसे विदुषी स्त्रियां, कुमारी ब्रह्मचारिणी स्त्रियों को अच्छी शिक्षा से पढ़ावें ॥१८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रेतां यज्ञस्य शंभुवा युवामिदा वृणीमहे । अग्निं च हव्यवाहनम् ॥१९॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! जो (शम्भुवा) सुख की सम्भावना कराने वाले (युवाम्) दोनों स्त्री पुरुष (यज्ञस्य) यज्ञ की विद्याओं को (प्रेताम्) प्राप्त होते (च) और (हव्यवाहनम्) हव्य द्रव्य को पहुंचाने वाले (अग्निम्) अग्नि को प्राप्त होते (इत्) उन्हीं को हम लोग (आ, वृणीमहे) अच्छे प्रकार स्वीकार करते हैं ॥१९॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को पुत्रों के अध्यापकों और पुत्री की अध्यापिकाओं को निरन्तर नियुक्त करना चाहिये जिस से स्त्री पुरुषों में पूर्ण विद्याओं का प्रचार हो ॥१९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

द्यावा नः पृथिवी इमं सिध्रमद्य दिविस्पृशम् ।
यज्ञं देवेषु यच्छताम् ॥२०॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! आप (द्यावापृथिवी) सूर्य्य भूमि के समान (अद्य) आज (नः) हमारे (इमम्) इस (सिध्रम्) शास्त्रबोध के प्रकाश के निमित्त (दिविस्पृशम्) विज्ञान प्रकाश में जिस से स्पर्श करते हैं उस (यज्ञम्) पढ़ने पढ़ाने की सङ्गति स्वरूप यज्ञ को (देवेषु) विद्वानों में (यच्छताम्) स्थापन करो ॥२०॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशकों से जैसे सूर्य्य और भूमि सब को सर्वथा उन्नति देते हैं वैसे स्त्री पुरुषों में विद्या अच्छे प्रकार विस्तारनी चाहिये ॥२०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ वामुपस्थमद्रुहा देवाः सीदन्तु यज्ञियाः ।
इहाद्य सोमपीतये ॥२१॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको ! (इह) इस संसार में (अद्य) इस समय वा आज (सोमपीतये) जिस से विद्या और ऐश्वर्य उत्पन्न होते हैं उस क्रिया के लिये (अद्रुहा) द्रोहादि दोष रहित (यज्ञियाः) विद्या वृद्धिमय यज्ञ प्रचार के योग्य (देवाः) विद्वान्जन (वाम्) तुम दोनों के (उपस्थम्) समीप रहने वाले के (आ, सीदन्तु) समीप बैठें ॥२१॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशकों के समीप और निर्दोष विदुषी स्त्री हों जिससे दोनों स्त्री पुरुषों में विद्या और उत्तम शिक्षा तुल्य हो ॥२१॥

इस सूक्त में अध्यापक और अध्ययनकर्त्ता सूर्य्य चन्द्रमा अग्नि वायु परमेश्वरोपासना और स्त्री पुरुष के क्रम वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह एकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः । कपिञ्जल इवेन्द्रो देवता । १—३ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तीन ऋचा वाले बयालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में उपदेशक के गुणों को कहते हैं ॥

कनिक्रदज्जनुषं प्रब्रुवाण इयर्त्ति वाचमरितेव नावम् ।
सुमङ्गलश्च शकुने भवासि मा त्वा का चिदभिभा विश्व्या विदत् ॥१॥

पदार्थः—हे (शकुने) पक्षी के तुल्य वर्त्तमान शक्तिमान् पुरुष ! (कनिक्रदत्) निरन्तर शब्दायमान उपदेशक (जनुषम्) प्रसिद्ध विद्या को (प्रब्रुवाणः) प्रकृष्टता से कहता हुआ (अरितेव) पहुंचे हुए पदार्थों के समान (वाचम्) वाणी (च) और (नावम्) नाव को (इयर्त्ति) प्राप्त होता वैसे (सुमङ्गलः) सुमङ्गल शब्दयुक्त (भवासि) होते हो (का, चित्) कोई भी (विश्व्याः) इस संसार में हुई (अभिभा) सब ओर से जो कान्ति है वह (त्वा) तुझे (मा) मत (विदत्) प्राप्त हो अर्थात् किसी दूसरे का तेज आप के आगे प्रबल न हो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो उपदेशक जैसे वल्ली नाव को पहुंचाती है वैसे सब मनुष्यों को उपदेश के लिये प्राप्त होता वा उपदेश करता हुआ पक्षी के समान भ्रमता है उस सुमङ्गलाचरण करने वाले के लिये कोई कान्ति भङ्ग न हो इसलिये राजा को उपदेशकों की रक्षा करनी चाहिये ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा त्वा श्येन उद्वधीन्मा सुपर्णो मा त्वा विदद्दिषुमान् वीरो अस्ता ।
पित्र्यामनु प्रदिशं कनिक्रदत्सुमङ्गलो भद्रवादी वदेह ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (त्वा) तुझे (श्येनः) श्येन पक्षी के समान कोई (मा, उत्, वधीत्)मत उच्चाटे (मा) मत (सुपर्णः) अच्छे पङ्ख वाले अन्य पक्षी के समान उच्चाटे (त्वा) तुझे (इषुमान्) बाणों को रखने वा (अस्ता) फेंकने वाला (वीरः) वीर (मा, विदत्) मत प्राप्त हो (इह) यहां (कनिक्रदत्) निरन्तर कहता हुआ (भद्रवादी) कल्याणरूप उपदेश करने वाला (सुमङ्गलः) सुन्दर मङ्गल का उपदेशक होता हुआ (पित्र्याम्) पितृसम्बन्धी (प्रदिशम्) दिशा और उपदिशाओं से युक्त देश को (अनु, वद) अनुकूलता से उपदेश कर ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे श्येन पक्षी आदि पखेरू अन्य पक्षियों को मारते हैं वैसे कोई उपदेशक को पीड़ा मत दे जिस से वह सुख और कुशलता से सर्वत्र उपदेश कर सके ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अव क्रन्द दक्षिणतो गृहाणां सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।
मा नः स्तेन ईशत माघशंसो बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥

पदार्थः—हे (शकुन्ते) शक्तिमान् ! (सुमङ्गलः) सुन्दर मङ्गलयुक्त (भद्रवादी) कल्याण के कहने वाले होते हुए आप (गृहाणाम्) उत्तम घरों के (दक्षिणतः) दाहिनी ओर से (अव, क्रन्द) शब्द करो अर्थात् उपदेश करो जिस से (स्तेनः) चोर (नः) हम लोगों को कष्ट देने को (मा) मत (ईशत) समर्थ हो (अघशंसः) पाप की प्रशंसा करता वह डांकू हम लोगों को दुष्टता देने को (मा) मत समर्थ हो जिस से (सुवीराः) सुन्दर वीरों वाले हम लोग (विदथे) संग्राम में (बृहत्) बहुत कुछ (वदेम) कहें ॥३॥

भावार्थः—शुद्धाचरणों के करने वाले सत्यवादी महात्मा जहां उपदेश

करते हैं वहां चोर आदि दुष्ट नष्ट होकर सब को बहुत सुख बढ़ता है ॥३॥

इस सूक्त में उपदेशक के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गृत्समद ऋषिः। कपिञ्जल इवेन्द्रो देवता। १ जगती। ३ निचृज्जगती छन्दः। निषादः स्वरः। २ भुरिगतिशक्वरी छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब तीन ऋचा वाले ४३ वें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में फिर उपदेशक के गुणों को कहते हैं ॥

प्रदक्षिणिदभि गृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तयः।
उभे वाचौ वदति सामगाइव गायत्रं च त्रैष्टुभं चानु राजति ॥१॥

पदार्थः—जैसे (ऋतुथा) ऋतुओं में (वदन्तः) बोलते हुए (शकुन्तयः) शक्तिमान् (वयः) पक्षी कहते हैं वैसे (कारवः) कारुकजन (उभे) ऐहिक और पारमार्थिक सुख सिद्ध करने वाली (वाचौ) वाणियों का (अभि, गृणन्ति) सब ओर से उपदेश करते हैं जो (प्रदक्षिणित्) प्रदक्षिणा को प्राप्त होने वाला (सामगाइव) सामगाने वाले के समान (गायत्रम्) गायत्री (च) और उष्णिहादि (त्रैष्टुभम्) त्रिष्टुभ को (च) और जगती आदि को भी (वदति) कहता है वह ऐहिक पारमार्थिक दोनों वाणियों को (अनुराजति) अनुकूलता से प्रकाशित करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे पक्षी ऋतु ऋतु में नानाप्रकार के शब्दों का उच्चारण करते हैं वैसे शिल्पिजन डर को छोड़कर अनेक विद्या के प्रकाशक शब्दों को कहें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्रइव सवनेषु शंससि।
वृषेव वाजी शिशुमतीरपीत्या सर्वतो नः शकुने भद्रमावद
विश्वतो नः शकुने पुण्यमावद ॥२॥

पदार्थः—हे (शकुने) पखेरू के समान सामर्थ्यवाले! जो तुम (उद्गातेव) ऊर्ध्व स्वर से वेद को गाते हुए के समान (साम) सामवेद का (गायसि) गान करते

हो (ब्रह्मपुत्र इव) चारों वेदों के ज्ञाता का जैसे कोई पुत्र हो वैसे (सवनेषु) यज्ञ सम्बन्ध में प्रातःकाल की क्रिया आदि में (शंससि) स्तुति करते सो तुम (वृषेव) महावली बैल के समान (वाजी) बलवान् (शिशुमतीः) प्रशंसित बालकों वाली स्त्रियों को (अपीत्य) निश्चय से प्राप्त होकर (नः) हम लोगों के लिये (सर्वतः) सब ओर से (भद्रम्) कल्याण का (आवद) उपदेश कर। हे (शकुने) कहने की शक्ति से युक्त पुरुष ! तू सब ओर से विद्या का उपदेश कर। हे (शकुने) सब ओर से शक्तिमान् ! (नः) हम लोगों के लिये (विश्वतः) सब ओर से (पुण्यम्) पुण्य का (आवद) उपदेश कर ॥२॥

भावार्थः—[इस मन्त्र में उपमालङ्कार है।] जैसे वेदवक्ता विद्वान् जन नियम से पाठ और वेदोक्त आचार को करते हैं वैसे उपदेश करने वाले स्त्रीपुरुष सब की उन्नति के लिये सर्वदा सत्योपदेश करें जिस से सब के सुख सब ओर से बढ़ें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आवदंस्त्वं शकुने भद्रमावद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिद्धि नः ।
यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥३॥

पदार्थः—हे (शकुने) शक्तिमान् पक्षी के समान वर्त्तमान ! तू (आवदन्) सब ओर से उपदेश करता हुआ (भद्रम्) कल्याण करने योग्य प्रस्ताव का (आवद) अच्छे प्रकार उपदेश कर (तूष्णीम्) मौन को आलम्बन कर (आसीनः) बैठे हुए योग का अभ्यास करता हुआ (नः) हम लोगों की (सुमतिम्) शुभ बुद्धि (चिकिद्धि) समझ (उत्पतन्) ऊपर को उड़ते के समान जिस (भद्रम्) कल्याण करने योग्य काम को (यथा) जैसे (कर्करिः) निरन्तर करने वाला हो वैसे (वदसि) कहते हो इसी से (सुवीराः) सुन्दर वीरों वाले हम लोग (विदथे) संग्राम में (बृहत्) बहुत कुछ (वदेम) कहें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्याओं को सुनकर मनन करते हुए पढ़ाते और सत्य को जानकर औरों को उपदेश करते हैं वे सब के कल्याण करने वाले होते हैं ॥३॥

इस सूक्त में उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तितालीसवां सूक्त और दूसरा मण्डल समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

# अथ तृतीयमण्डलम्

—❀:०❀:०❀:०❀—

ओ३म् विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥

गाथिनो विश्वामित्र ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ३। ४। ५। ६। ११। १२। १५। १७। १६। २० निचृत्त्रिष्टुप्। २। ६। ७। १३। १४ त्रिष्टुप्। १०। २१ विराट् त्रिष्टुप्। २२ ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ८। १६। २३ स्वराट् पङ्क्तिः। १८ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब तीसरे मण्डल का प्रारम्भ है, उसके प्रथम सूक्त के आरम्भ के प्रथम मन्त्र में विद्वानों की प्रशंसा को कहते हैं ॥

सोम॑स्य मा त॒व॒सं॒ वक्ष्य॑ग्ने॒ वह्निं॑ चकर्थ वि॒दथे॒ यज॑ध्यै ।
दे॒वाँ अच्छा॒ दीद्य॑द्युञ्जे॒ अद्रिं॑ शमा॒ये अ॑ग्ने त॒न्वं॑ जुषस्व ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान्! जो आप (सोमस्य) ऐश्वर्य की उत्तेजना से (तवसम्) बलयुक्त (मा) मुझ को (वह्निम्) पदार्थ वहाने वाले अर्थात् एक देश से दूसरे देश ले जाने वाले अग्नि को (वक्षि) कहते हैं (विदथे) विद्वानों के सत्कार करने वाले यज्ञ में (देवान्) विद्वान् वा दिव्य गुणों के (यजध्यै) सङ्गत करने को (अच्छ) अच्छे प्रकार (चकर्थ) क्रिया करते हो उनके साथ मैं (दीद्यत्) देदीप्यमान हुआ विद्वानों के सत्कार करने वाले यज्ञ में विद्वान् वा दिव्य गुणों के सङ्गत करने को (युञ्जे) युक्त होता हूँ जैसे अग्नि (अद्रिम्) मेघ को वहाता है वैसे मैं विद्वानों के समीप में (शमाये) शान्ति के समान आचरण करता हूँ। हे(अग्ने) अग्निवद्वर्त्तमान! शिष्य जैसे विद्वान् के शरीर का सेवन करता है वैसे आप (तन्वम्) शरीर की (जुषस्व) प्रीति करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य ऐश्वर्य के करने की इच्छा करें वे विद्वानों की सङ्गति से शरीर को नीरोग रख कर अपने को विद्वान् वना के अग्नि आदि की पदार्थविद्या से कार्य्यों को सिद्ध करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्राञ्चं यज्ञं चकृम वर्द्धतां गीः समिद्भिरग्निं नमसा दुवस्यन् ।
दिवः शशासुर्विदथा कवीनां गृत्साय चित्तवसे गातुमीषुः ॥२॥

पदार्थः—हम लोग (नमसा) सत्कार से जिस जिस (प्राञ्चम्) पहिले प्राप्त होने वाले (यज्ञम्) सज्जनों की सङ्गतिरूप यज्ञ को (चकृम) करें उससे (समिद्भिः) इन्धनादि पदार्थों से (अग्निम्) अग्नि का (दुवस्यन्) सेवन करते हुए के समान हम लोगों की (गीः) अच्छी शिक्षा पाई हुई वाणी (वर्धताम्) बढ़े जो (कवीनाम्) मेधावियों के (दिवः) प्रकाश से (विदथा) विद्वानों को (तवसे) विद्यावृद्ध (गृत्साय) मेधावी के लिये (शशासुः) सिखावें और (गातुम्) पृथिवी की (ईषुः) चाहना करें उनको हम लोग सत्कार से (चित्) ही आनन्दित करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्य अवश्य विद्या से उत्तम शिक्षा पाई हुई वाणी को बढ़ाकर महान् विद्वानों के समीप से अच्छे शिक्षित होकर पृथिवी के राज्य करने की चाहना करें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मयो दधे मेधिरः पूतदक्षो दिवः सुबन्धुर्जनुषा पृथिव्याः ।
अविन्दन्नु दर्शतमप्स्व१न्तर्देवासो अग्निमपसि स्वसॄणाम् ॥३॥

पदार्थः—हे सज्जन ! जैसे (देवासः) विद्वान् जन (अप्सु) जल वा प्राणों (अन्तः) बीच (दर्शतम्) देखने योग्य (अग्निम्) विद्युत् रूप अग्नि को (अपसि) कर्म के निमित्त (अविन्दन्) प्राप्त होते हैं वैसे जो (दिवः) सूर्य और (पृथिव्याः) भूमि के बीच (जनुषा) जन्म से (स्वसॄणाम्) भगिनियों का (सुबन्धुः) सुन्दर भ्राता (पूतदक्षः) जिसका पवित्र बल वह (मेधिरः) सज्जनों का सङ्ग करने वाला होता हुआ (मयः) सुख को (दधे) धारण करता है वह (उ) ही जलों वा प्राणों में सब सुख को प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विद्वान् जन योगविद्या से अपने आत्माओं में ज्ञान का प्रकाश देख औरों को दिखला कर ज्ञान से उन्हें बढ़ाते हैं वैसे मनुष्यों को जिस प्रकार पुत्रों को विद्या

पढ़ाना चाहिये वैसे ही पुत्रियाँ भी विद्यासम्पन्न करनी चाहियें। जैसे भाई जन विद्याभ्यास करें वैसे भगिनी भी, ऐसे ही अत्यानन्द मिल सकता है॥३॥

अब स्त्री पुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अवर्धयन्त्सुभगं सप्त यह्वीः श्वेतं जज्ञानमरुषं महित्वा।
शिशुं न जातमभ्यारुरश्वा देवासो अग्निं जनिमन्वपुष्यन् ॥४॥

पदार्थः—हे (जनिमन्) प्रशंसित जन्म वा (वपुष्यन्) अपने को रूप की इच्छा करने वाले विद्वन्! जैसे (अश्वाः) विद्या व्याप्तिशील (देवासः) विद्वान् जन (श्वेतम्) श्वेतवर्ण (अरुषम्) अश्वरूप (अग्निम्) अग्नि को (सप्तयह्वीः) सात महान् स्त्री (सुभगम्) सुन्दर ऐश्वर्ययुक्त (जज्ञानम्) जन्म दिलाने वाले का (महित्वा) सत्कार (जातम्) उत्पन्न हुए (शिशुम्) बालक के (न) समान (अवर्धयन्) बढ़ावें वे निरन्तर सुख को (अभ्यारुः) प्राप्त होती हैं वैसे तुम भी प्रयत्न करो॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सात स्त्रियां एक पुत्र की वृद्धि करती हैं वैसे जो अग्निविद्या को जानकर ऐश्वर्य्य की उन्नति करते हैं वे महिमा को प्राप्त होते हैं॥४॥

फिर पुरुष विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

शुक्रेभिरङ्गैरज आततन्वान् क्रतुं पुनानः कविभिः पवित्रैः।
शोचिर्वसानः पर्यायुरपां श्रियो मिमीते बृहतीरनूनाः ॥५॥

पदार्थः—जो मनुष्य (शुक्रेभिः) वीर्यवान् बलवान् (अङ्गैः) अवयवों से (रजः) ऐश्वर्य को (आततन्वान्) सब ओर से विस्तारित किये हुए (पवित्रैः) पवित्र (कविभिः) विद्वानों से (क्रतुम्) विद्या वा कर्म को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (अपाम्) जलों के बीच (आयुः) जीवन और प्रकाश (वसानः) आच्छादित ढाँपे हुए (बृहतीः) बड़ी बड़ी जिनमें (अनूनाः) ऊनता नहीं विद्यमान उन शोभाओं वा धनों को (परिमिमीते) सब ओर से उत्पन्न करता है वह विद्वान् श्रीमान् कैसे न हो?॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जब तक तुम्हारे दृढ़ अङ्ग वाले शरीर, पवित्र बुद्धियाँ, धर्मात्मा आप्त विद्वानों का सङ्ग, जितेन्द्रियता से पूर्ण आयु नहीं होती तब तक अतुल लक्ष्मी और विद्या भी नहीं होती ऐसा जानना चाहिये॥५॥

अब स्त्रीपुरुषों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**व॒व्राजा॑ सी॒मन॑दती॒रद॑ब्धा दि॒वो य॒ह्वीरव॑साना॒ अन॑ग्नाः ।**
**सना॒ अत्र॑ यु॒वत॑यः॒ सयो॑नी॒रेकं॒ गर्भं॑ दधिरे स॒प्त वाणीः॑ ॥६॥**

**पदार्थः**—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् (सप्त, वाणीः) सात वाणियों को (सीम्) सब ओर से (वव्राज) प्राप्त होता वैसे (अत्र) यहाँ (अनदतीः) अविद्यमान अर्थात् अतीव सूक्ष्म जिनके दन्त (अदब्धाः) अहिंसनीय अर्थात् सत्कार करने योग्य (दिवः) देदीप्यमान (यह्वीः) बहुत विद्या और गुण स्वभाव से युक्त (अवसानाः) समीप में ठहरी हुई (अनग्नाः) सब ओर से वस्त्र वा आभूषण आदि से ढपी हुई (सनाः) भोगने वाली (सयोनीः) समान जिनकी योनि अर्थात् एक माता से उत्पन्न हुई सगी वे (युवतयः) प्राप्तयौवना स्त्री (एकम्) एक अर्थात् असहायक (गर्भम्) गर्भ को (दधिरे) धारण करतीं वे सुखी क्यों न हों ? ॥६॥

**भावार्थः**—जो समान विद्या रूप स्वभाव वाली स्त्रियां अपने अपने समान पतियों को अपनी इच्छा से प्राप्त होकर परस्पर प्रीति के साथ सन्तानों को उत्पन्न कर और उन की रक्षा कर उनको उत्तम शिक्षा दिलाती हैं वे सुखयुक्त होती हैं । जैसे परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी और कर्म्मोपासना ज्ञान प्रकाश करने वाली तीनों मिल कर सात वाणी सब व्यवहारों को सिद्ध करती हैं वैसे विद्वान् स्त्री पुरुष धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध कर सकते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**स्ती॒र्णा अ॑स्य सं॒हतो॑ वि॒श्वरू॑पा घृ॒तस्य॒ योनौ॑ स्र॒वथे॒ मधू॑नाम् ।**
**अस्थु॒रत्र॑ धे॒नवः॒ पिन्व॑माना म॒ही द॒स्मस्य॑ मा॒तरा॑ समी॒ची ॥७॥**

**पदार्थः**—जैसे (स्तीर्णाः) शुभगुणों से आच्छादित (विश्वरूपाः) नाना स्वरूपयुक्त (संहतः) एक हो रहीं (पिन्वमानाः) सेवन करती हुई (धेनवः) गौयें (अत्र) यहाँ (अस्य) इस व्यवहार के बीच (घृतस्य) जल के (योनौ) आधार में (मधूनाम्) मधुर पदार्थों की (स्रवथे) प्राप्ति के निमित्त (अस्थुः) स्थिर होती हैं वैसे (समीची) अच्छे प्रकार प्राप्त होने (मही) सत्कार करने योग्य (मातरा) पिता माता (दस्मस्य) दुःख नष्ट करने वाले बालक के पालने वाले होते हैं ॥७॥

**भावार्थः**—जैसे नदी और समुद्र मिल कर रत्नों को उत्पन्न करते हैं वैसे स्त्री पुरुष सन्तानों को उत्पन्न करें ॥७॥

अब विद्याजन्म की प्रशंसा को अगले मन्त्र में कहा है ॥

बभ्राणः सूनो सहसो व्यद्यौद्दधानः शुक्रा रभसा वपूंषि ।
श्चोतन्ति धारा मधुनो घृतस्य वृषा यत्र वावृधे काव्येन ॥८॥

पदार्थः—हे (सूनो) सन्तान ! जैसे (शुक्रा) शरीर आत्मा और बल तथा (रभसा) रोगरहित (वपूंषि) रूपवान् शरीरों को (दधानः) धारण करता हुआ जो (मधुनः) मीठे (घृतस्य) जल की (धाराः) धाराओं के समान वाणी (श्चोतन्ति) झरती हैं (यत्र) जिस व्यवहार में (वृषा) बलवान् जन (काव्येन) विद्वानों के निर्माण किये और पढ़े हुए कविताई आदि कर्म के साथ (वावृधे) बढ़ता है वा (सहसः) बल से (व्यद्यौत्) प्रकाशित होता है वैसे ही इन उक्त पदार्थों से (बभ्राणः) पुष्ट होते हुए बढ़ो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे उत्तम शिक्षा पाये हुए सज्जनों की वाणी जल के समान कोमल और सरस होती हैं जैसे ब्रह्मचारी बलवान् होता है वैसे सन्तानों को चाहिये कि विद्या सुशिक्षाओं को अच्छे प्रकार ग्रहण कर बलवान् और सुशील होवें ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पितुश्चिदूधर्जनुषा विवेद व्यस्य धारा असृजद्वि धेनाः ।
गुहा चरन्तं सखिभिः शिवेभिर्दिवो यह्वीभिर्न गुहा बभूव ॥९॥

पदार्थः—जैसे (ऊधः) रात्री (विवभूव) विशेषता से होती है वा जैसे (अस्य) इस जल की (धाराः) धाराओं के (चित्) समान प्रवाह (गुहा) बुद्धि में होते हैं वैसे जो (पितुः) पिता की उत्तेजना से गर्भ में स्थिर होकर (जनुषा) जन्म से प्रकट होकर (शिवेभिः) मङ्गलकारी (सखिभिः) मित्र वर्गों के साथ (दिवः) विद्या की दीप्ति जो (यह्वीः) बड़ी बड़ी उनके (न) समान (गुहा) कन्दरा में (चरन्तम्) विचरते हुए को (विवेद) जानता है (धेनाः) प्रीयमाण सन्तानों के समान (व्यसृजत्) विशेषता से उत्पन्न को वह सुख प्राप्त होता है ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अन्धकार में स्थित वस्तु नहीं दीख पड़ती जैसे दीप से प्राप्त होती वैसे पिता के शरीर में वर्त्तमान जीव गर्भ में स्थिर हुआ नहीं दीखता और जब इसका जन्म होता है तब दीखता है इस प्रकार जो मङ्गलाचरणों से मित्रों के साथ विद्याओं का ग्रहण करता है वह आत्मा को जान बड़ा होता है ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पितुश्च गर्भं जनितुश्च बभ्रे पूर्वीरेको अधयत्पीप्यानाः ।
वृष्णे सपत्नी शुचये सबन्धू उभे अस्मै मनुष्ये नि पाहि ॥१०॥

पदार्थः—जैसे (अस्मै) इस (शुचये) पवित्र (वृष्णे) वीर्य सेचने वाले मनुष्य के अर्थ (सपत्नी) समान जिसका पति वह स्त्री (गर्भम्) गर्भ को (बभ्रे) धारण करती वह (एकः) एक गर्भ (पितुः) पालन करने वाले (च) और सुन्दर अन्नादि और (जनितुः) जन्म देने वाले पिता की (च) और धाई की उत्तेजना से जन्म पाकर (पूर्वीः) पहले उत्पन्न हुईं (पीप्यानाः) बढ़ती हुई प्रजा (अधयत्) दुग्ध पीती हैं वैसे (उभे) दोनों स्त्री पुरुष (सबन्धू) एक समान बन्धुओं के समान प्रीति रखने वाले (मनुष्ये) मनुष्य के लिये जो हित उस के निमित्त (गर्भम्) गर्भ की रक्षा करते हैं वैसे हे विद्वन् ! एक होते हुए आप (नि, पाहि) निरन्तर पालना करो ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जब माता पिता गर्भ को धारण करते हैं और उसकी रक्षा कर दुग्धपान आदि से बढ़ाते हैं वैसे स्त्री पुरुष प्रीति को बढ़ाकर गर्भ को धारण कर उसे अच्छे प्रकार पाल मनुष्यों के हित के लिये अपने सन्तानों को विद्या ग्रहण करावें ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उरौ महाँ अनिबाधे ववर्धापो अग्निं यशसः सं हि पूर्वीः ।
ऋतस्य योनावशयद्दमूना जामीनामग्निरपसि स्वसॄणाम् ॥११॥

पदार्थः—जैसे (पूर्वीः) प्राचीन (आपः) जल मेघ से बढ़ते हैं वैसे (यशसः) कीर्ति से (महान्) जो बड़ा है वह (अनिबाधे) बाधा रहित (उरौ) बहुत व्यवहार में (अग्निम्) अग्नि को प्राप्त कर (हि, सं, ववर्ध) अच्छे प्रकार बढ़ता है जैसे (अग्निः) पावक (ऋतस्य) जल के (योनौ) कारण में (अशयत्) सोता है वैसे (जामीनाम्) भोगने वाली (स्वसॄणाम्) बहिनियों के (अपसि) कर्म में स्थिर होकर (दमूनाः) दमनशील जन विद्या में बढ़ता है ॥११॥

भावार्थः—जो निर्विघ्न विद्यार्थी विद्या के ग्रहण करने में प्रयत्न करें तो दम और शमादि गुणयुक्त होते हुए सब सम्बन्धियों को विद्यायुक्त कर सकें ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अक्रो न बभ्रिः समिथे महीनां दिदृक्षेयः सूनवे भाऋजीकः ।
उदुस्रिया जनिता यो जजानापां गर्भो नृतमो यह्वो अग्निः ॥१२॥

पदार्थः—(यः) जो सूर्य्य (अपाम्) जलों के बीच (गर्भः) स्तुति करने के योग्य (यह्वः) महान् (अग्निः) अग्निरूप (उस्रियाः) किरणों से संयुक्त जलों का (जनिता) उत्पन्न करने वाला होता है उस के (दिदृक्षेयः) देखने को चाहता मैं उत्तम (नृतमः) अतीव नेता सब का नायक (उज्जजान) उत्तमता से प्रकट होता है यह (सूनवे) सन्तान के लिये (महीनाम्) पूजनीय सेनाओं के (समिथे) संग्राम के बीच (वभ्रिः) धारण करने वाला (अक्रः) किसी प्रकार से आक्रमण करने को अयोग्य के (न) समान (भाऋजीकः) विद्यादीप्तियों से सरल होता है ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य जलों के गर्भ को उत्पन्न कर तथा मेघ के साथ अच्छे प्रकार युद्ध कर जल वर्षा कर सब को बढ़ाता है वैसे सन्तानों को शिक्षा देने वाले सब जगह विजयी होते हैं ॥१२॥

फिर विद्या की प्रशंसा को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपां गर्भं दर्शतमोषधीनां वना जजान सुभगा विरूपम् ।
देवासश्चिन्मनसा सं हि जग्मुः पनिष्ठं जातं तवसं दुवस्यन् ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (देवासः) विद्वान् जन (मनसा) अन्तःकरण और अभ्यास से (चित्) भी जिस (अपाम्) प्राण वा (ओषधीनाम्) ओषधियों के बीच (दर्शतम्) देखने योग्य (विरूपम्) जिसमें विविध रूप विद्यमान उस (गर्भम्) मध्यव्यापी अग्नि को (सं, जग्मुः) अच्छे प्रकार जानें वा प्राप्त हों तथा जो (हि) ही (सुभगा) सुन्दर ऐश्वर्य्य के देने वाले (वना) वन वा जङ्गलों को (जजान) उत्पन्न करता है जिस (जातम्) प्रसिद्ध (तवसम्) बल करने वाले (पनिष्ठम्) स्तुति करने योग्य अग्नि का (दुवस्यन्) सेवन करें उस विद्युत् रूप अग्नि को तुम लोग यथावत् जानो ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि जो अग्नि, वायु, जल और पृथिवी में तथा शरीर ओषधि आदि प्रत्यक्ष परोक्षभूत पदार्थों में व्याप्त उस को जान उस से सब कार्य्यों को सिद्ध करें ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

बृहन्त इद्भानवो भाऋजीकमग्निं सचन्त विद्युतो न शुक्राः ।
गुहेव वृद्धं सदसि स्वे अन्तरपार ऊर्वे अमृतन्दुहानाः ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (बृहन्तः) महान् (अमृतम्) कारणरूप से नाशरहित जल को (दुहानाः) पूर्ण करते हुए (भानवः) किरण वा दीप्ति (विद्युतः) बिजुलियों के (न) समान (शुक्राः) शुद्ध (सदसि) सभा में (वृद्धम्) विद्या और अव-

स्था से जो अतीव प्रशंसित उस के समान आत्मा को (गुहेव) बुद्धिस्थ जीव के समान (भाऋजीकम्) दीप्तियों में सरल (अग्निम्) अग्नि को (सचन्त) सम्बद्ध वा मेल करते हैं जो (अपारे) अगाध द्यावापृथिवी (स्वे) निज सम्बन्ध करने वाले (ऊर्वे) लोक सङ्घर्षण करने वाले अभिव्याप्त होकर (अन्तः) बीच में विराजमान हैं (इत्) उन्हीं को जानो ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो अग्नि सर्वत्र स्थित सूर्य वा भौमरूप से प्रसिद्ध बिजुली रूप से गुप्त मेघादि पदार्थों का निमित्त है उस को जानकर अभीष्ट सिद्ध करना चाहिये ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ईळे॑ च त्वा॒ यज॑मानो ह॒विर्भि॒रीळे॑ सखि॒त्वं सु॑म॒तिं निका॑मः ।
दे॒वैरवो॑ मिमीहि॒ सं ज॑रि॒त्रे रक्षा॑ च नो॒ दम्ये॑भि॒रनी॑कैः ॥१५॥

पदार्थः—(यजमानः) सब विद्या गुणों का सङ्ग करने वाला मैं (देवैः) विद्वानों के साथ (च) और (हविर्भिः) ग्रहण करने योग्य साधनों से जिन (त्वा) आप विद्वानों की (सम्, ईळे) सम्यक् स्तुति करता हूं वा (निकामः) निश्चित कामना वाला होता हुआ (सखित्वम्) मित्रपन वा (सुमतिम्) सुन्दर बुद्धि की (ईळे) प्रशंसा करता हूं वह आप (जरित्रे) स्तुति करने वाले मेरे लिये (अवः) रक्षा आदि को (मिमीहि) उत्पन्न करो (दम्येभिः) दमन करने योग्य (अनीकैः) सेनाजनों के साथ (नः) हम लोगों की (च) भी (रक्ष) रक्षा करो ॥१५॥

भावार्थः—मनुष्यों को प्रथम श्रेष्ठ अध्यापक ढूंढना चाहिये और फिर उस से समस्त विद्याओं को ढूंढना चाहिये तदनन्तर विचार पीछे साक्षात्कार अर्थात् प्रत्यक्ष करना उसके परे उपयोग करना चाहिये ॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उ॒प॒क्षे॒तार॒स्तव॑ सुप्रणी॒तेऽग्ने॒ विश्वा॑नि॒ धन्या॒ दधा॑नाः ।
सु॒रेत॑सा॒ श्रव॑सा॒ तुञ्ज॑माना अ॒भि ष्या॑म पृतना॒यूँरदे॑वान् ॥१६॥

पदार्थः—हे (सुप्रणीते) अपने से सुन्दर उत्तमोत्तम नीति का प्रकाश करने वाले (अग्ने) पूर्णविद्यायुक्त (तव) तुम्हारी उत्तेजना से विद्वान् होकर (पृतनायून्) सेनाओं में पूर्ण आयु जिनकी विद्यमान उन (अदेवान्) अविद्वान् (उपक्षेतारः) समीप प्राप्त हुए जनों को छिन्न भिन्न करने वाले (सुरेतसा) सुन्दर संयुक्त वीर्य्य और (श्रवसा) श्रवण से (विश्वानि) समस्त (धन्या) धन के योग्य पदार्थों को (दधानाः)

धारण करते और (तुञ्जमानाः) बल करते हुए हम लोग सुखी (अभिष्याम) सब ओर से होवें ॥१६॥

भावार्थः—जो मनुष्य अविद्वानों की उपेक्षा करके विद्वानों का सेवन करते हैं वे सब ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥१६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ देवानामभवः केतुरग्ने मन्द्रो विश्वानि काव्यानि विद्वान् ।
प्रति मर्ताँ अवासयो दमूना अनु देवान् रथिरो यासि साधन् ॥१७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तीव्रबुद्धिजन (केतुः) ज्ञानवान् (मन्द्रः) आनन्द के देने वाले आप (विश्वानि) समस्त (काव्यानि) कवियों से निर्म्माण किये हुए शास्त्रों को अध्ययन कर (देवानाम्) देवों के बीच (विद्वान्) ज्ञानवान् (आ, अभवः) हो तथा (दमूनाः) जितेन्द्रिय (रथिरः) और प्रशंसित रथ वाले (साधन्) साधना करते हुए आप (मर्त्तान्) मनुष्य जो (देवान्) विद्वान् उन के (प्रति) प्रति (अवासयः) निवास कराओ वा (अनु, यासि) उक्त मनुष्यों के प्रति अनुकूलता से प्राप्त होते हैं ॥१७॥

भावार्थः—जो विद्वानों के बीच स्थिर हो सब शास्त्रों को अध्ययन कर औरों को अध्ययन कराता है वह सब सुखों को प्राप्त होता है ॥१७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नि दुरोणे अमृतो मर्त्यानां राजा ससाद विदथानि साधन् ।
घृतप्रतीक उर्विया व्यद्यौदग्निर्विश्वानि काव्यानि विद्वान् ॥१८॥

पदार्थः—जो (अमृतः) आत्मरूप से मृत्यु धर्मरहित (विद्वान्) विद्वान् (दुरोणे) घर में (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के बीच (घृतप्रतीकः) घृत जिस का प्रकाश करने वाला (अग्निः) वह अग्नि (उर्विया) पृथिवी पर (वि, अद्यौत्) विशेषता से प्रकाशित होते हुए के समान (विश्वानि) समस्त (विदथानि) विज्ञानों वा (काव्यानि) विशेष आक्रमण करती हुई बुद्धियों वाले विद्वानों के बनाए शास्त्रों का अध्ययन कर सब का हित (साधन्) सिद्ध करते हुए मनुष्यों के बीच (निषसाद) स्थिर हो [वह] हम लोगों को सत्कार करने योग्य है ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि सूर्यरूप से सब को प्रकाशित करता है वैसे पूर्ण विद्यायुक्त सभापति राजा धर्म से प्रजाजनों की अच्छे प्रकार पालना कर विद्याओं का प्रकाश करता है वह सब को सत्कार करने योग्य कैसे न हो ? ॥१८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्म्महान्महीभिरूतिभिस्सरण्यन् ।
अस्मे रयिं बहुलं सन्तरुत्रं सुवाचं भागं यशसं कृधी नः ॥१९॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! आप (शिवेभिः) मङ्गलमय (सख्येभिः) मित्रों के किये हुए कर्म्मों के साथ (नः) हम लोगों को (आ, गहि) प्राप्त हूजिये (महीभिः) बड़ी बड़ी (ऊतिभिः) रक्षाओं से (अस्मे) हम लोगों को (सरण्यन्) प्राप्त होते हुए (महान्) बड़े सज्जन आप (सन्तरुत्रम्) दुःख से अच्छे प्रकार तारने वाले (सुवाचम्) सुन्दर वाणी के निमित्त (यशसम्) कीर्त्ति करने वाले (भागम्) सेवन करने योग्य (बहुलम्) बहुत प्रकार के (रयिम्) पुष्कल धन को प्राप्त (नः) हम लोगों को (कृधि) कीजिये ॥१९॥

भावार्थः—यदि मनुष्य सुन्दर मित्रों को प्राप्त हो तो उस को बड़ी लक्ष्मी कैसे न प्राप्त हो ॥१९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एता ते अग्ने जनिमा सनानि प्र पूर्व्याय नूतनानि वोचम् ।
महान्ति वृष्णे सवना कृतेमा जन्मञ्जन्मन् निहितो जातवेदाः ॥२०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् ! (ते) आप के (एता) इन (जनिम) जन्मों को जो कि (सनानि) कर्मों से संसेवित वा (नूतनानि) नवीन (महान्ति) बड़े बड़े (सवना) ऐश्वर्य्य साधक कर्म्म (जन्मन्, जन्मन्) जन्म जन्म में (कृता) किये हुए तथा (इमा) इन ऐश्वर्य्यसाधक कर्मों को (पूर्व्याय) पूर्वजों से किये हुए (वृष्णे) बल के लिये (प्र, वोचम्) कहूं उन को (निहितः) अच्छे प्रकार स्थित (जातवेदाः) जो उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान आप सुनो ॥२०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो कर्म जीवों को करने योग्य उन से किये जाते और किये जायंगे वे सब सुख दुःख मिश्रित फल भोगने वाले होते हैं ॥२०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

जन्मन्जन्मन् निहितो जातऽवेदा विश्वामित्रेभिरिध्यते अजस्रः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥२१॥

पदार्थः—हे जीव ! परमेश्वर ने (जन्मन् जन्मन्) जन्म जन्म में (निहितः) कर्मों के अनुसार संस्थापन किया (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों में न उत्पन्न हुए

के समान वर्त्तमान (विश्वामित्रेभिः) समस्त संसार जिन का मित्र उन सज्जनों से (अजस्रः) निरन्तर (इध्यते) प्रबोधित कराया जाता (तस्य) उस (यज्ञियस्य) यज्ञ के योग्य होते हुए प्राणी की (सुमतौ) प्रशंसित प्रज्ञा में और (भद्रे) कल्याण करने वाले व्यवहार में तथा (सौमनसे) सुन्दर मन के भाव में (अपि) भी हम लोग (स्याम) होवें ॥२१॥

भावार्थः— सब मनुष्यों को प्रसिद्ध जगत् में सुखदुःखादि न्यून अधिक फलों को देख कर पहिले जन्म में सञ्चित कर्म फल का अनुमान करना चाहिये जो परमेश्वर कर्मफल का देने वाला न हो तो व्यवस्था भी प्राप्त न हो इसलिये सब को श्रेष्ठ बुद्धि उत्पन्न कर वैर आदि छोड़ सब के साथ सत्य भाव से वर्त्तना चाहिये ॥२१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमं यज्ञं सहसावन् त्वं नो देवत्रा धेहि सुक्रतो रराणः ।
प्र यंसि होतर्बृहतीरिषो नोऽग्ने महि द्रविणमा यजस्व ॥२२॥

पदार्थः—हे (सहसावन्) प्रशस्त बल और (सुक्रतो) श्रेष्ठप्रज्ञायुक्त (अग्ने) विद्वान् (त्वम्) आप (नः) हमारे (इमम्) इस (यज्ञम्) रागद्वेषरहित न्याय दयामय यज्ञ को (देवत्रा) विद्वानों में (धेहि) स्थापन करें । वा हे (होतः) ग्रहण करने वाले विद्वान् (रराणः) दाता होते हुए आप (बृहतीः) बड़ी बड़ी (इषः) अन्नादि सामग्रियों को (नः) हम लोगों के लिये (प्र, यंसि) देते हैं वह (महि) बहुत (द्रविणम्) धन को (आ, यजस्व) दीजिये ॥२२॥

भावार्थः— ईश्वर ने विद्वान् को आज्ञा दी है कि जबतक जीवे तबतक तूं विद्या यज्ञ को मनुष्यों में अच्छे प्रकार विस्तारे और पुष्कल अन्न और उस से धनों को सब के अर्थ दे के सुखी होवे ॥२२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥२३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् (गोः) वाणी का (शश्वत्तमम्) अनादि भूत शब्दार्थ सम्बन्ध (हवमानाय) आनन्द के लिये (पुरुदंसम्) जिससे बहुत कर्म बनते हैं (सनिम्) अलग अलग किई हुई (इळाम्) स्तुति करने वाली वाणी को आप (साध) सिद्ध कीजिये । हे (अग्ने) विद्वान् ! जो (ते) तुम्हारी (सुमतिः) उत्तम बुद्धि होती है (सा) वह (अस्मे) हम लोगों के लिये (भूतु) हो जिससे (नः) हमारे (विजावा)

विशेष करके उत्पन्न भया हो ऐसा (तनयः) विस्तीर्ण बुद्धि वाला (सूनुः) पुत्र (स्यात्) हो ॥२३॥

भावार्थः—विद्वानों की यही योग्यता है कि सब कुमार और कुमारियों को पण्डित पण्डिता बनावें जिस से सब विद्या के फल को प्राप्त हो कर सुमति हों ॥२३॥

इस सूक्त में विद्वान् स्त्री पुरुष और विद्या जन्म की प्रशंसा करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह तीसरे मण्डल में प्रथम सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्वैश्वानरो देवता । १ । ३ । १० जगती । २ । ४ । ६ । ८ । ९ । ११ विराड् जगती । ५ । ७ । १२—१५ निचृज्जगती च छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले दूसरे सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के गुणों का उपदेश किया है ॥

वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृतं न पूतमग्नये जनामसि ।
द्विता होतारं मनुषश्च वाघतो धिया रथं न कुलिशः समृण्वति ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ऋतावृधे) सत्य के बढ़ाने वाले (वैश्वानराय) समस्त मनुष्यों में प्रकाशमान (अग्नये) अग्नि के लिये (पूतम्) पवित्र (घृतम्) घृत के (न) समान (धिषणाम्) प्रगल्भ बुद्धि को (जनामसि) उत्पन्न करें (वाघतः) मेधावी जन (धिया) प्रज्ञा वा कर्म से (कुलिशः) वज्र (रथम्) रथ को (न) जैसे वैसे (समृण्वति) अच्छे प्रकार प्राप्त होता (द्विता) दो के होने (होतारम्) होमकर्त्ता मनुष्य (च) और (मनुषः) मनुष्यों को सम्यक् प्राप्त होता वैसे ही तुम भी आचरण करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे ऋत्विग् जन घृत आदि हवि को अच्छे प्रकार शोध कर अग्नि में हवन करने से अग्नि की वृद्धि करते हैं वैसे अध्यापक और उपदेशक जन शिष्यों तथा श्रोताओं की बुद्धियों को बढ़ावें, जैसे कुल्हाड़ी आदि साधनों से काष्ठ छील कर यान बनाये जाते हैं वैसे उत्तम शिक्षा और ताड़नाओं से शिष्य लोग

[विद्या से] सम्पन्न किये जावें जैसे अध्यापक और अध्येता प्रीति से वर्त्तमान हैं वैसे सबको वर्त्तमान करना चाहिये ॥१॥

अब अग्नि के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स रोचयज्जनुषा रोदसी उभे स मात्रोरभवत् पुत्र ईड्यः ।
हव्यवाडग्निरजरश्चनोहितो दूळभो विशामतिथिर्विभावसुः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (सः) वह (अग्निः) अग्नि (जनुषा) जन्म से अर्थात् उत्तेजना से (उभे) दोनों (रोदसी) सूर्य्य और भूमि को (रोचयत्) प्रकाशित करे और (सः) वह अग्नि (मात्रोः) इन मान करने वाली सूर्य्यभूमियों में (ईड्यः) स्तुति करने योग्य (पुत्रः) पुत्र के समान हो तथा जो (अग्निः) अग्नि (हव्यवाट्) हव्य पदार्थ को पहुंचाने वाला (अजरः) जीर्णावस्थारहित (चनोहितः) अन्नादि पदार्थों का हितकारी (दूडभः) दुःख से प्राप्त होने योग्य (विभावसुः) जो विविध प्रकार की कान्तियों का बसाने वाला (विशाम्) प्रजाओं के समीप (अतिथिः) निरन्तर पहुँचने वाला हो उसको यथावत् जानो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो ब्रह्मचर्य्य से विद्या और उत्तम शिक्षाओं को प्राप्त सत्पुत्र हो वह भूमि और आकाश के बीच विराजमान हो सूर्य के समान सबका हितकारी हो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

क्रत्वा दक्षस्य तरुषो विधर्मणि देवासो अग्निं जनयन्त चित्तिभिः ।
रुरुचानं भानुना ज्योतिषा महामत्यं न वाजं सनिष्यन्नुप ब्रुवे ॥३॥

पदार्थः—जैसे (देवासः) विद्या की कामना करने वाला (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म से (दक्षस्य) बल (तरुषः) जो कि दुःखों से अच्छे प्रकार तारने वाला उसके (विधर्मणि) विविध कर्म में (चित्तिभिः) इन्धन आदि की चयन क्रियाओं से (भानुना) जो प्रकाश उससे (रुरुचानम्) अत्यन्त दीप्तिमान् (ज्योतिषा) तेजसे (महाम्) महान् (वाजम्) वेगवान् (अग्निम्) अग्नि को (अत्यम्) अश्व के (न) समान (जनयन्त) उत्पन्न करें वैसे इस अग्नि को [(सनिष्यन्) सेवन करता हुआ] मैं औरों को (उप, ब्रुवे) उपदेश करता हूं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। यदि क्रिया कौशलता के साथ अग्नि से उपकार लिया चाहें तो यह अत्यन्त कार्य्यसिद्धि करने वाला हो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ मन्द्रस्य सनिष्यन्तो वरेण्यं वृणीमहे अह्रयं वाजमृग्मियम् ।
रातिं भृगूणामुशिजं कविक्रतुमग्निं राजन्तं दिव्येन शोचिषा ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे जिस (मन्द्रस्य) अच्छे प्रकार आनन्द देने वाले के लाभ के लिये (अह्रयम्) लज्जारहित (वाजम्) वेगवान् (ऋग्मियम्) ऋचाओं से जिस का प्रक्षेप होता अर्थात् जिसमें क्रिया होती उस (भृगूणाम्) अविद्या जलाने वालों के (रातिम्) देने वाले (उशिजम्) मनोहर (दिव्येन) शुद्ध और (शोचिषा) स्वरूप से (राजन्तम्) प्रकाशमान (कविक्रतुम्) कवियों के यज्ञ के समान उपकार जिस का उस (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (अग्निम्) अग्नि को (सनिष्यन्तः) बांटते हुए हम लोग (आ, वृणीमहे) अच्छे प्रकार स्वीकार करते हैं वैसे तुम भी उस को स्वीकार करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो युक्ति से अग्नि को सेवन करें तो क्या क्या दिव्य सुख वा वस्तु न सिद्ध करें ? ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः ।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (यतस्रुचः) जिन्हों ने यज्ञ करने की स्रुचा ग्रहण किई और (वृक्तबर्हिषः) यज्ञ धूम से अन्तरिक्ष छेदन किया वे (जनाः) ऋत्विज् मनुष्य (इह) इस वर्त्तमान समय में (सुम्नाय) सुख के लिये (सुरुचम्) सुन्दर प्रकाशित (विश्वदेव्यम्) समस्त दिव्य पदार्थों में उत्पन्न हुए (रुद्रम्) किन्हीं को रुलाने वाले (यज्ञानाम्) यज्ञ कर्मों के (साधदिष्टिम्) हवन कर्म को जिससे सिद्ध करते वा अन्य (अपसाम्) कर्मों के बीच (वाजश्रवसम्) वेग और अन्न को सिद्ध करते उस (अग्निम्) अग्नि को (पुरः) प्रथम सब कर्मों से पहिले (दधिरे) धारण करते हैं वैसे हम लोगों को भी अनुष्ठान करना चाहिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे ऋत्विग् जन यज्ञों में अग्नि से वायु और वर्षा के जल की शुद्धि आदि काम करते हैं वैसे शिल्पि आदि जनों को भी पावक अग्नि से कार्य सिद्ध करने चाहिये ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पावकशोचे तव हि क्षयं परि होतर्यज्ञेषु वृक्तबर्हिषो नरः ।
अग्ने दुव इच्छमानास आप्यमुपासते द्रविणं धेहि तेभ्यः ॥६॥

पदार्थः—हे (पावकशोचे) अग्नि के समान कान्ति वाले (होतः) दानशील (अग्ने) विद्वान् (तव) आप के (हि) ही (क्षयम्) घर को (यज्ञेषु) यज्ञों में (दुवः) सेवन (इच्छमानासः) चाहते हुए (वृक्तबर्हिषः) ऋत्विग्जन (नरः) नायक सर्व शिरोमणि जनों के समान (आप्यम्) जो प्राप्त होने योग्य अग्नि की (उपासते) उपासना करते हैं (तेभ्यः) उन के लिये (द्रविणम्) धन वा यश (धेहि) धरिये ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वन्! जो तुम्हारे निकट तुम्हारी सेवा करते हुए अग्नि विद्या की याचना करते हैं उनके प्रति इस विद्या का उपदेश कीजिये जिससे वे धनाढ्य होवें ॥६॥

अब अग्नि विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ रोदसी अपृणदा स्वर्महज्जातं यदेनमपसो अधारयन् ।
सो अध्वराय परि णीयते कविरत्यो न वाजसातये चनोहितः ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप जैसे (चनोहितः) अन्न के लिये हित कराने वाला (वाजसातये) अन्नादि पदार्थों के विभाग करने को (अत्यः) जैसे व्याप्तिशील अर्थात् चालों में व्याप्ति रखने वाला अश्व (न) वैसे (कविः) चञ्चल देखा जाय ऐसा अग्नि (रोदसी) आकाश और पृथिवी (आ, अपृणत्) अच्छे प्रकार पूर्ण करता है वा (यत्) जिस (महत्) बहुत (जातम्) उत्पन्न हुए (स्वः) सुख को (आ) अच्छे प्रकार परिपूर्ण करता है (सः) वह (अध्वराय) अहिंसारूप यज्ञ के लिये (परिणीयते) प्राप्त किया जाता है वैसे (एनम्) उक्त अग्नि को (अपसः) कर्म से (अधारयन्) धारण करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्युत् रूप अग्नि सूर्य पृथिवी उनमें स्थित और अन्तरिक्षस्थ पदार्थों को प्रकाशित करता है यदि वह यानों में प्रयुक्त किया जाय तो सबका हितकारी हो ॥७॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नमस्यत हव्यदातिं स्वध्वरं दुवस्यत दम्यं जातवेदसम् ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो विचर्षणिरग्निर्देवानामभवत् पुरोहितः ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वानो! जो (रथीः) प्रशंसित रथवान् (ऋतस्य) सत्य (बृहतः) बड़े कार्य का (विचर्षणिः) देखने वाला (देवानाम्) विद्वानों का (पुरोहितः) पहिले जिसको धारण करते (अग्निः) पवित्र करने वाला (अभवत्) होता है और (हव्यदातिम्) होमने योग्य पदार्थों का देने वाला (स्वध्वरम्) जिससे कि सुन्दर यज्ञ होता उस (दम्यम्) दानशील (जातवेदसम्) और उत्पन्न हुए पदार्थों से विद्यमान विद्वान् को (नमस्यत) नमस्कार करो और उसकी (दुवस्यत) सेवा करो ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो बहुत विद्या वाला अहिंसक जितेन्द्रिय विद्वानों के बीच विद्वान् हो वही तुम लोगों को नमस्कार करने और सेवने योग्य भी हो ॥८॥

अब अग्नि के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तिस्रो यह्वस्यं समिधः परिज्मनोऽग्नेरपुनन्नुशिजो अमृत्यवः।
तासामेकामदधुर्मर्त्ये भुजमु लोकमु द्वे उप जामिमीयतुः ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (यह्वस्य) महान् (परिज्मनः) सर्वत्र व्याप्त (अग्नेः) अग्नि की जो (उशिजः) मनोहर (अमृत्यवः) मृत्यु धर्म रहित (तिस्रः) तीन प्रकार बिजुली भूमिगत और सूर्यरूप से स्थित ज्योतिः (समिधः) सम्यक् प्रदीप्त लपटें हैं वे सबको (अपुनन्) पवित्र करती हैं (तासाम्) उनमें से (उ) ही (एकाम्) एक को (मर्त्ये) मनुष्य लोक में (अदधुः) स्थापन करते हैं (द्वे) शेष दो (भुजम्) पालने वाली पृथ्वी तथा (लोकम्) देखने योग्य लोक के समूह को (उ) और (जामिम्) जायमान वस्तुमात्र को (उपेयतुः) प्राप्त होती हैं उनको अच्छे प्रकार जानो ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य तीन प्रकार के अग्नि को जान के ऊपर नीचे स्थित जो प्रयोजन उन को सिद्ध करने को प्रवृत्त हों तो उन को कोई काम असाध्य न हो ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विशां कविं विश्पतिं मानुषीरिषः सं सीमकृण्वन्त्स्वधितिं न तेजसे।
स उद्वतो निवतो याति वेविषत्स गर्भमेषु भुवनेषु दीधरत् ॥१०॥

पदार्थः जिस (विशाम्) प्रजाओं में (कविम्) प्रविष्ट बुद्धि वाले (विश्पतिम्) प्रजापालक विद्वान् को (मानुषीः) मनुष्यों की (इषः) इच्छा (तेजसे) तेज के लिये (स्वधितिम्) वज्र के (न) समान (सीम्) सब ओर से (अकृण्वन्) परिपूर्ण

करती हैं (सः) वह (उद्वतः) ऊपर से और (निवतः) नीचे के मार्गों को (संयाति) अच्छे प्रकार जाता है और (सः) वह (एषु) इन (भुवनेषु) स्थिति करने के आधार रूप लोकलोकान्तरों में (वेविषत्) निरन्तर व्याप्त होता है और (गर्भम्) गर्भ को (दीधरत्) धारण करता है ॥१०॥

भावार्थः—जैसे गर्भ अदृश्य होता है वैसे अग्नि भी सब पदार्थों में वर्त्तमान है, जो मनुष्य इस को साधक करें तो इस अग्नि से युक्त यानों से भूमि और आकाश मार्गों को और नीचे ऊपरली गतियों को कर सकें और प्रजा भी पाल सकें ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स जिन्वते जठरेषु प्रजज्ञिवान् वृषा चित्रेषु नानदन्न सिंहः ।
वैश्वानरः पृथुपाजा अमर्त्यो वसु रत्ना दयमानो वि दाशुषे ॥११॥

पदार्थः—मनुष्यों को उचित है कि जो (जठरेषु) उदरों में (प्रजज्ञिवान्) प्रबलता से उत्पन्न होता हुआ (चित्रेषु) अद्भुत स्थानों में (वृषा) वीर्य करने वाला (पृथुपाजाः) विस्तीर्ण बलवान् (अमर्त्यः) मरणधर्मरहित (वैश्वानरः) सबका नायक (दाशुषे) दान करने वाले के लिए (रत्ना) रमणीय हीरा आदि मणिरूप (वसु) धन को (दयमानः) देता हुआ (सिंहः) सिंह के समान (न, नानदत्) निरन्तर शब्द नहीं करता है (सः) वह सबको (वि, जिन्वते) विशेषता से तृप्त करता है ऐसा जानें ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्यों को अग्नि में अद्भुत गुण कर्म स्वभावों को जान के अतुल लक्ष्मियों को सिद्ध कर अच्छे मार्गों में देने वालों को देनी चाहिये । जो जाठराग्नि शान्त हो तो किसी के जीवन का सम्भव न हो और न इसके विना बल भी कोई पा सकता है ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वैश्वानरः प्रत्नथा नाकमारुहद्दिवस्पृष्ठं भन्दमानः सुमन्मभिः ।
स पूर्ववज्जनयञ्जन्तवे धनं समानमज्मं पर्येति जागृविः ॥१२॥

पदार्थः—जो (भन्दमानः) कल्याण को करता हुआ (जागृविः) जागता सा (वैश्वानरः) अग्नि (प्रत्नथा) पुरातनों के समान (दिवः) दिव्य आकाश के समान (पृष्ठम्) पर भाग (नाकम्) स्वर्ग सुख भोग विशेष को (आरुहत्) चढ़ता है जो (अज्मम्) गमन होने वाले मार्ग में (पर्य्येति) सब ओर से जाता है (जन्तवे) वा

प्राणी के लिये (समानम्) तुल्य (धनम्) धन को (पूर्ववत्) पूर्व के समान (जनयन्) उत्पन्न करता है (सः) वह (सुमन्मभिः) समस्त उत्तम विचार वाले विद्वानों को विशेषता से जानने योग्य है ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। यह अग्नि अपूर्व नहीं है जो व्यतीत हुए कल्पों में जैसा हुआ वैसा ही अब वर्त्तमान है भविष्यत्काल में भी होगा यदि यह सब का प्रकाशक के समान रवि के योग से कार्यकारी वर्त्तमान है तो वह यथावत् जाना और प्रयोग किया हुआ मङ्गल का अच्छे प्रकार देने वाला होता है ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतावानं यज्ञियं विप्रमुक्थ्य१ मा यं दधे मातरिश्वा दिवि क्षयम्।
तं चित्रयामं हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्निं सुविताय नव्यसे ॥१३॥

पदार्थः—(यम्) जिस (ऋतावानम्) सत्यकारणमय (यज्ञियम्) यज्ञसम्पादक (उक्थ्यम्) प्रशंसा करने योग्य (दिवि, क्षयम्) दिव्य आकाश में निवास करते हुए (चित्रयामम्) चित्र विचित्र अद्भुत प्रहर जिसमें होते हैं वा चित्र विचित्र याम प्राप्ति जिस की वा (सुदीतिम्) सुन्दर दान जिससे होता उस (हरिकेशम्) हरणशील रश्मियों वाले (अग्निम्) अग्नि को (नव्यसे) नवीन (सुविताय) अभिषव के लिये (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में सोने वाला वायु (आ, दधे) अच्छे प्रकार धारण करता है (तम्) उसे जो जानता है उस (विप्रम्) मेधावी पुरुष को हम लोग (ईमहे) याचते हैं ॥१३॥

भावार्थः—अग्नि के निमित्त कारण को धारण करने वाला वायु वर्त्तमान है जिस अन्तरिक्ष में वायु है वहीं अग्नि भी है जिस से प्रलय होता वा यज्ञ सिद्ध होते हैं उस अद्भुत गुण कर्म स्वभाव वाले अग्नि को नवीनता और विद्या प्राप्ति के लिये विद्वान् जन ढूंढें ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शुचिं न यामन्निषिरं स्वर्दृशं केतुं दिवो रोचनस्थामुषर्बुधम्।
अग्निं मूर्द्धानं दिवो अप्रतिष्कुतं तमीमहे नमसा वाजिनं बृहत् ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम लोग विद्वानों की उत्तेजना से (नमसा) सत्कार से जिस (शुचिम्) पवित्र और पवित्र करने वाले के (न) समान (यामन्) जिससे गमन करते हैं उस मार्ग में (इषिरम्) इच्छा करने योग्य (स्वर्दृशम्) जिस से कि सुख दीखता है उस (केतुम्) रूपादि प्रापक (दिवः) प्रकाश के बीच (रोचनस्थाम्)

उजाले में स्थित होने (उपबुंधम्) प्रातःकाल वोध दिलाने और (दिवः) दिव्य आकाश के बीच (मूर्द्धानम्) खींचने से बांधने (अप्रतिष्कुतम्) इधर उधर से लोकान्तर के चारों ओर से भ्रमण रहित (बृहत्) महान् (वाजिनम्) बहुत वेग वाले (अग्निम्) अग्नि को (ईमहे) याचते हैं (तम्) उस अग्नि को उन हम लोगों से तुम भी चाहो वा मांगो ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्यों को आप्त विद्वानों से अग्न्यादि विद्या प्राप्त करनी चाहिये, जो जिस से विद्या ग्रहण की इच्छा करे वह उस का निरन्तर सत्कार करे, सूर्य किसी लोक का परिक्रमण नहीं करता और सब से बड़ा भी है ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मन्द्रं होतारं शुचिमद्वयाविनं दमूनसमुक्थ्यं विश्वचर्षणिम् ।
रथं न चित्रं वपुषाय दर्शतं मनुर्हितं सदमिद्राय ईमहे ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस (होतारम्) ग्रहण करने और (मन्द्रम्) आनन्द देने वाले (दमूनसम्) दमनशील (उक्थ्यम्) प्रशंसा करने योग्य (शुचिम्) पवित्र (विश्वचर्षणिम्) सब के देखने और (मनुर्हितम्) मनुष्यों के हित करने वाले विद्वान् को प्राप्त हो कर (रथम्) दृढ़ रमणीय यान के (न) समान (चित्रम्) अद्भुत और (वपुषाय) जिस व्यवहार में रूप विद्यमान उस व्यवहार के लिये (दर्शतम्) देखने योग्य (सदम्) अवस्थित और (अद्वयाविनम्) जो दो में नहीं विद्यमान ऐसे सीधे चलने वाले अग्नि को (ईमहे) जांचते और उस से (रायः) धनों को जांचते हैं उस (ईत्) ही को तुम लोग भी जांचो ॥१५॥

भावार्थः—जो इन्द्रियों को दमन करने वाले विद्वानों के निकट स्थित हो कर अग्निविद्या को जानें तो मनुष्य किस किस धन को न प्राप्त हों ? ॥१५॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह दूसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । वैश्वानरोऽग्निर्देवता । १ । ५ निचृज्जगती । २—४ । ६ । ८ । ९ जगती । ७ । १० विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले तीसरे सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों का विषय वर्णन करते हैं ॥

वैश्वानराय पृथुपाजसे विपो रत्ना विधन्त धरुणेषु गातवे ।
अग्निर्हि देवाँ अमृतो दुवस्यत्यथा धर्माणि सनता न दूदुषत् ॥१॥

पदार्थः—जैसे (अमृतः) मरणधर्मरहित (अग्निः) अग्नि के समान विद्वान् (हि) ही (देवान्) दिव्य गुणों वाले पृथिव्यादिकों की (दुवस्यति) सेवा करता (अथ) अनन्तर इस के (न) नहीं (दूदुषत्) दूषित काम कराता वैसे (विपः) मेधावी जन (वैश्वानराय) समस्त मनुष्यों में प्रकाशमान (पृथुपाजसे) महाबली (गातवे) और स्तुति करने वाले के लिये (सनता) सनातन (रत्ना) रमणीय रत्नों (धर्माणि) और धर्मों को तथा (धरुणेषु) आधारों में रत्नरूपी रमणीय धनों को (विधन्त) सेवन करते हैं ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि अपने सनातन गुणकर्म स्वभावों को सेवता है कभी दोषी नहीं होता वैसे विद्वान् जन जिज्ञासुओं के हित के लिये विद्या देके अपने अपने स्वभावों को भूषित करते हैं कभी अधर्माचरण से दूषित नहीं होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अन्तर्दूतो रोदसी दस्म ईयते होता निषत्तो मनुषः पुरोहितः ।
क्षयं बृहन्तं परि भूषति द्युभिर्देवेभिरग्निरिषितो धियावसुः ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप जैसे (होता) ग्रहण करने वाला (निषत्तः) निश्चित स्थित (मनुषः) मनुष्यों का (पुरोहितः) पहिले हित करने वाला (धियावसुः) जो प्रबल बुद्धियों और कर्मों को वास देता (इषितः) ढूंढा हुआ (दस्मः) मूर्तिमान् पदार्थों का छिन्न भिन्न करने हारा और (अन्तः) बीच में (दूतः) दूत के समान वर्त्तमान (अग्निः) अग्नि (द्युभिः) देदीप्यमान (देवेभिः) किरणों के साथ (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी को (ईयते) प्राप्त होता और (बृहन्तम्) महान् (क्षयम्) निवास स्थान को (परि, भूषति) सब ओर से भूषित करता है वैसे तुम को सब मनुष्य सुभूषित करने चाहिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को देश के अवयवों को प्राप्त होकर उत्तम विद्याध्ययन अध्यापन और उपदेशादि कर्मों के साथ समस्त मनुष्य सुभूषित करने चाहिये और इससे सब का हित सिद्ध करना चाहिये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

केतुं यज्ञानां विदथस्य साधनं विप्रासो अग्निं महयन्त चित्तिभिः ।
अपांसि यस्मिन्नधि सन्दधुर्गिरस्तस्मिन्त्सुम्नानि यजमान आ चके ॥३॥

पदार्थः—(विप्रासः) विद्वान् मेधावी जन (यस्मिन्) जिस अग्नि में (गिरः) वाणी और (अपांसि) कर्मों को (चित्तिभिः) काष्ठ आदि के इकट्ठे समूहों से (अग्निम्) अग्नि के समान (अधि, सन्दधुः) अच्छे प्रकार धारण करें वा जिस में (यज्ञानाम्) मिले हुए व्यवहारों का (केतुम्) उत्तमता से ज्ञान दिलाने और (विदथस्य) दूसरे के लिये विज्ञान के (साधनम्) सिद्ध कराने वाले का (महयन्त) सत्कार करें वा (सुम्नानि) सुखों को अच्छे प्रकार धारण करें वा जिस में (यजमानः) विद्वानों की सेवा और सङ्गति का करने वाला जन (सुम्नानि) सुखों की (आ चके) अच्छे प्रकार कामना करता है (तस्मिन्) उस में सब मनुष्य सुखों का अच्छे प्रकार धारण करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । समस्त पदार्थविद्या के बीच अग्नि के तुल्य कोई और पदार्थ कार्यसाधक नहीं है, इस से इस अग्नि का ही परिज्ञान उत्तम यत्न के साथ सब लोगों को करना चाहिये ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पिता यज्ञानामसुरो विपश्चितां विमानमग्निर्वयुनं च वाघताम् ।
आ विवेश रोदसी भूरिवर्पसा पुरुप्रियो भन्दते धामभिः कविः ॥४॥

पदार्थः हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर (यज्ञानाम्) प्राप्त हुए व्यवहारों का (पिता) पालने वाला (असुरः) समस्त भूगोलादि पदार्थों का यथाक्रम अर्थात् यथा स्थान फेंकने वाला (विपश्चिताम्) विद्वानों का लिये (विमानम्) विमान के समान (वाघताम्) (च) और मेधावी जनों का (वयुनम्) उत्तम ज्ञान (भूरिवर्पसा) बहुत पराक्रम के (धामभिः) स्थानों के साथ (पुरुप्रियः) बहुतों को तृप्त करने वाला (कविः) विशेष क्रम से जिसका दर्शन होता वह (भन्दते) प्रसन्न करता है और (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (आ, विवेश) प्रविष्ट हुआ है वैसे (अग्निः) अग्नि भी तुम लोगों को जानने योग्य है ॥४॥

भावार्थः—जैसे ईश्वर सर्वत्र व्याप्त होकर सब की व्यवस्था करता है वैसे अग्नि पृथिव्यादिकों को अभिव्याप्त होकर आकर्षण से सब पदार्थों की व्यवस्था करता है । जैसे अग्नि अच्छे प्रकार युक्त किये हुए विमान को

आकाश में शीघ्र चलाता है वैसे विद्वानों की सेवापूर्वक योगाभ्यास के विज्ञान से सेवा किया हुआ जगदीश्वर चिदाकाश में मुक्त जनों को शीघ्र प्रवेश कर विहार कराता है ॥४॥

अब अग्नि विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

चन्द्रमग्निं चन्द्ररथं हरिव्रतं वैश्वानरमप्सुषदं स्वर्विदम् ।
विगाहन्तूर्णिं तविषीभिरावृतं भूर्णिं देवास इह सुश्रियन्दधुः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (देवासः) विद्वान् जन (इह) इस संसार के बीच (चन्द्ररथम्) जिससे चन्द्रमा के समान रथ बनता है (हरिव्रतम्) वा जिस के घोड़े शीलरूप (अप्सुसदम्) वा प्राण और जलों में स्थिर होता (स्वर्विदम्) वा जिस से जीव सुख को प्राप्त होता (विगाहम्) वा जिस के निमित्त से विविध प्रकार के पदार्थों को विलोड़ता वा (तूर्णिम्) जो शीघ्र गमन कराने वाला (तविषीभिः) बलादि गुणों के साथ (आवृतम्) संयुक्त (भूर्णिम्) और पदार्थों का धारण करने वाला (सुश्रियम्) जिस से उत्तम श्री लक्ष्मी उत्पन्न होती वा (वैश्वानरम्) समस्त प्राप्त पदार्थों में व्याप्त (चन्द्रम्) आनन्द करने वाला निरन्तर प्रकाशमान (अग्निम्) अग्नि को (दधुः) धारण करें वैसे इस को तुम भी धारण करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब तक पदार्थ-विद्या में अग्निविद्या न हो तब तक आभूषणरहित स्त्री के समान नहीं शोभती है ॥५॥

फिर अग्निविद्या के उपदेश को कहते हैं ॥

अग्निर्देवेभिर्मनुषश्च जन्तुभिस्तन्वानो यज्ञं पुरुपेशसं धिया ।
रथीरन्तरीयते साधदिष्टिभिर्जीरो दमूना अभिशस्तिचातनः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अभिशस्तिचातनः) सब ओर से हिंसा की निचालना करता (दमूनाः) और दमनशील (साधदिष्टिभिः) अच्छे प्रकार सिद्ध किई हुई इच्छाओं के साथ (जीरः) वेगवान् (रथीः) जिस के बहुत रथ विद्यमान (जन्तुभिः) मनुष्यों के साथ (मनुषः) मनुष्यों को (तन्वानः) विस्तार अर्थात् उन को वृद्धि देता हुआ और (देवेभिः) दिव्य गुणों के साथ (अग्निः) अग्नि (ईयते) जाता है तथा (धिया) कर्म से (पुरुपेशसम्) बहुत रूपों वाले [(यज्ञम्)] प्राप्त संसार को सिद्ध करता है उसको जानो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को जो अग्नि सामान्य रूप से सब पदार्थों को पुष्ट करता वा विशेष रूप से उन

को नष्ट करता वा पृथिव्यादिकों के भीतर व्याप्त है अर्थात् उनके प्रत्येक परमाणु के साथ है वा जिससे वहुत व्यवहार सिद्ध होते हैं वह अग्नि विशेषता से जानने योग्य है ॥६॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने जरस्व स्वपत्य आयुन्यूर्जा पिन्वस्व समिषो दिदीहि नः ।
वयांसि जिन्व बृहतश्च जागृव उशिग्देवानामसि सुक्रतुर्विपाम् ॥७॥

पदार्थः—हे (जागृवे) जागते हुए के तुल्य (अग्ने) जानने वाले महाशय ! आप (स्वपत्ये) अपने सन्तान के निमित्त (आयुनि) प्राप्त हुए पीछे (ऊर्जा) अन्न से (पिन्वस्व) सेवो, विद्वानों की (जरस्व) स्तुति करो (नः) हम लोगों की (इषः) चाहना करो और (वयांसि) अच्छे अच्छे अन्नों को (सं, दिदीहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (च) और (बृहतः) बहुतों को (जिन्व) तृप्त कीजिये जिससे आप (विपाम्) बुद्धिमान् (देवानाम्) विद्वानों के वीच (उशिक्) मनोहर (सुक्रतुः) सुन्दर बुद्धिमान् (असि) हैं उस से विद्वान् हुए हो ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने सन्तानों को योग्य आहार विहार से अच्छे प्रकार पाल के उत्तम शिक्षा और विद्या के दान से विद्वान् करते हैं वे सदैव विद्वानों के सत्सङ्ग की कामना करने वाले धर्म के चाहने वाले होकर बुद्धिमान् होते हैं ॥७॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विश्पतिं यह्वमतिथिं नरः सदा यन्तारं धीनामुशिजं च वाघताम् ।
अध्वराणां चेतनं जातवेदसं प्र शंसन्ति नमसा जूतिभिर्वृधे ॥८॥

पदार्थः—जो (नरः) अपने आत्मा इन्द्रियां और शरीरों को धर्म की ओर पहुंचाने वाले जन (वृधे) वृद्धि के लिये (जूतिभिः) वेगादि गुणों से (विश्पतिम्) समस्त प्रजा के पालने वाले (यह्वम्) वड़े (यन्तारम्) नियन्ता अर्थात् सव कामों को यथानियम पहुँचाने वाले (अतिथिम्) अतिथि के समान सत्कार करने योग्य (धीनाम्) उत्तम कर्म और बुद्धियों वा (वाघताम्) बुद्धिमान् (च) और (अध्वराणाम्) अहिंसनीय व्यवहारों के वीच (उशिजम्) कामना की ओर (जातवेदसम्) उत्पन्न हुए सव पदार्थों में अपनी व्याप्ति से विद्यमान अथवा उत्पन्न हुए समस्त पदार्थों को जानने वाले (चेतनम्) अच्छे प्रकार ज्ञानस्वरूप परमात्मा की (नमसा) सत्कार से (सदा) सदैव (प्र, शंसन्ति) प्रशंसा करते हैं वे ब्रह्मवेत्ता होते हैं ॥८॥

भावार्थः—मनुष्यों को, आप्त विद्वानों ने स्तुति किया हुआ महान्

प्रजापालक ज्ञानस्वरूप परमेश्वर स्तुति करने योग्य है, इस की उपासना के विना किसी को पूरा लाभ प्राप्त नहीं होता ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

विभावा देवः सुरणः परि क्षितीरग्निर्बभूव शवसा सुमद्रथः ।
तस्य व्रतानि भूरिपोषिणो वयमुप भूषेम दम आ सुवृक्तिभिः ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! जैसे आप (विभावा) विविध दीप्तिमान् (देवः) मनोहर (सुरणः) सुन्दर रण जिस से होता वा (सुमद्रथः) जिस से प्रशंसित ज्ञानों का रथ के समान रथ होता (अग्निः) ऐसा अग्नि (सुवृक्तिभिः) सुन्दर वर्त्तावों से और (शवसा) बल से (क्षितीः) पृथिवियों को (परि, बभूव) सब ओर से व्याप्त होता अर्थात् उनका तिरस्कार करता (तस्य) उसके (व्रतानि) शीलों को (भूरिपोषिणः) बहुत प्रकार पोषण पुष्टि जिन के विद्यमान वे (वयम्) हम लोग (दमे) घर में (उपाभूषेम) अपने समीप अच्छे प्रकार भूषित करते हैं ॥९॥

भावार्थः—जैसे विद्वान्जन मनुष्यों के बीच बहुत पुष्टि देने और ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले तथा परोपकार से अलंकृत हों वे राज्य के ऐश्वर्य को प्राप्त हों ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वैश्वानर तव धामान्या चके येभिः स्वर्विदभवो विचक्षण ।
जात आपृणो भुवनानि रोदसी अग्ने ता विश्वा परिभूरसि त्मना ॥१०॥

पदार्थः हे (विचक्षण) अति चतुर (वैश्वानर) प्रधान पुरुष ! (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान आप (त्मना) अपने से जिन (विश्वा) समस्त (भुवनानि) लोकों को (आ, अपृणः) अच्छे प्रकार पुष्ट करें जैसे अग्नि समस्त लोकों वा (रोदसी) आकाश और पृथिवी को अभिव्याप्त है वैसे आप (परिभूः) सब ओर से होने वाले (असि) हैं वह आप मनुष्य (तव) आप के (येभिः) जिन (धामानि) जन्मस्थान नामों को (आचके) अच्छे प्रकार कामना करे (ता) उन को जानकर (जातः) प्रसिद्ध होते हुए (स्वर्वित्) प्राप्त सुख (अभवः) हूजिये ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है । जो मनुष्य अग्नि के समान धर्म और विद्याओं के प्रकाश करने वाले सब के बीच प्राणियों के सुख दुःख की व्यवस्था से अपने समान बुद्धि रखने वाले हैं वे सुखी होते हैं ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वैश्वानरस्य दंसनाभ्यो बृहदरिणादेकः स्वपस्यया कविः ।
उभा पितरा महयन्नजायताग्निर्द्यावापृथिवी भूरिरेतसा ॥११॥

पदार्थः—जो (एकः) एकाकी (कविः) सर्व शास्त्रों को जानने वाला (स्वपस्यया) अपने को उत्तम की इच्छा से (वैश्वानरस्य) सर्वत्र प्रकाशमान अग्नि की (दंसनाभ्यः) सुख करने वाली क्रियाओं से (बृहत्) महान् कार्य को (अरिणात्) प्राप्त होवे वा (अग्निः) अग्नि (भूरिरेतसा) बहुत जल जिस में विद्यमान उस अन्तरिक्ष के साथ वर्त्तमान (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी को प्रकाशित करता हुआ (अजायत) प्रसिद्ध होता है वैसे (उभा) दोनों (पितरा) माता पिता को (महयन्) सत्कार करता हुआ वर्त्तमान है वह सुखी कैसे न होवे ? ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य विद्वानों के तुल्य कर्म और माता पिताओं का सत्कार करते वे पृथिवी और सूर्य के समान उत्तम गुण वाले होते हैं ॥११॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह तीसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । आप्रियो देवता । १ । ४ । ७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ३ । ५ त्रिष्टुप् । ६ । ८ । १० । ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ९ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले चौथे सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय को कहते हैं ॥

समित्समित्सुमना बोध्यस्मे शुचाशुचा सुमतिं रासि वस्वः ।
आ देव देवान्यजथाय वक्षि सखा सखीन्त्सुमना यक्ष्यग्ने ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशमान विद्वन् ! आप जैसे (समित्समित्) प्रतिसमिध (शुचाशुचा) शुच् शुच् * प्रत्येक होम के साधन से अग्नि (बोधि) प्रबुद्ध होता जाना जाता है वैसे पढ़ाने और उपदेश करने से (अस्मे) हम लोगों के लिये (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि और (वस्वः) धनों को (रासि) देते हैं । हे (देव) विद्वन् ! (सुमनाः) सुन्दर मन वाले होते हुए आप आहुतियों को अग्नि के

* होम जिस से किया जाता वह चमसा रूप शुच् कहाती है ।

समान (यजथाय) समागम के लिये (देवान्) विद्वानों को (आ वक्षि) प्राप्त करते हो (सुमनाः) सुन्दर हृदय वाले (सखा) मित्र होते हुए आप (सखीन्) मित्र वर्गों को (यक्षि) सङ्ग करते हो। उक्त कारण से सत्कार करने योग्य हो ॥१॥

भावार्थः- –इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वानो ! जैसे समिधों वा होमने योग्य घृतादि पदार्थ से अग्नि बढ़ता है वैसे अध्यापन और उपदेश से मनुष्यों की बुद्धि बढ़ानी चाहिये और आप लोग सदैव मित्र हो कर सब को विद्वान् और श्रीमान् कीजिये ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यं देवासस्त्रिरहन्नायजन्ते दिवेदिवे वरुणो मित्रो अग्निः ।
सेमं यज्ञं मधुमन्तं कृधी नस्तनूनपाद् घृतयोनिं विधन्तम् ॥२॥

पदार्थः—(यम्) जिस (इमम्) इस (मधुमन्तम्) बहुत होमने योग्य पदार्थ वा (घृतयोनिम्) दीप्तिकारक कारण वाले (विधन्तम्) सेवते हुए और (यज्ञम्) सङ्ग करने योग्य व्यवहार का (वरुणः) चन्द्रमा (मित्रः) वायु और (अग्निः) अग्नि (अहन्) एक दिन में (दिवेदिवे) वा प्रतिदिन (त्रिः) तीन वार (आयजन्ते) अच्छे प्रकार मिलाते हैं और जिस को (देवासः) दिव्य विद्वान् जन मिलाते (सः) वह पूर्वोक्त गुणों से युक्त (तनूनपात्) शरीर की रक्षा करने वाले आप (नः) हमारे इस यज्ञ को सिद्ध (कृधि) कीजिये ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन अग्न्यादि पदार्थों की विद्या-प्राप्ति के लिये जैसी क्रिया करें वैसे ही तुम भी करो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र दीधितिर्विश्ववारा जिगाति होतारमिळः प्रथमं यजध्यै ।
अच्छा नमोभिर्वृषभं वन्दध्यै स देवान्यक्षदिषितो यजीयान् ॥३॥

पदार्थः–(विश्ववारा) संसार के बीच जिस का स्वीकार है वह जिस की (दीधितिः) दीप्ति (इळः) पृथिवियों की (यजध्यै) सङ्गति करने के (होतारम्) ग्रहण करने वाले की तथा (नमोभिः) अन्नों से (प्रथमम्) पहिले (वृषभम्) प्रशंसित की (वन्दध्यै) वन्दना करने अर्थात् स्तुति करने को (प्र, जिगाति) अच्छे प्रकार स्तुति करता है (सः) वह (इषितः) इच्छा से प्रयुक्त किया हुआ (यजीयान्) अतीव यज्ञ करनेहारा होता हुआ (देवान्) विद्वानों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (यक्षत्) सङ्गत कर मिलावे ॥३॥

भावार्थः—जिस की प्रकाशमान दीप्ति विजुली के समान विद्या देने वाले की प्रशंसा करती है उस का सब विद्यार्थी जन सङ्ग कर दिव्य गुणों को प्राप्त हो कर धनधान्य युक्त होवें ॥३॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऊर्ध्वो वां गातुरध्वरे अकार्यूर्ध्वा शोचींषि प्रस्थिता रजांसि ।
दिवो वा नाभा न्यसादि होता स्तृणीमहि देवव्यचा वि बर्हिः ॥४॥

पदार्थः—हे यज्ञ करने और यज्ञ सिद्ध कराने वालो ! (वाम्) तुम्हारे (अध्वरे) न नष्ट करने योग्य व्यवहार में वह (ऊर्ध्वः) ऊपर जाने (गातुः) और स्तुति करने वाला (अकारि) किया जाता (देवव्यचाः) बहुत यज्ञ पृथिव्यादिकों को व्याप्त होने वा (होता) पदार्थों को ग्रहण करने वाला (नि, असादि) सिद्ध किया जाता है जिस यज्ञ से हम लोग (ऊर्ध्वाः) ऊपर जाने वाले (प्रस्थिताः) जाने का आरम्भ किये हुए (शोचींषि) तेजों को और (रजांसि) लोकों को तथा (दिवः) किरणों को (वा) वा (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (नाभा) नाभि के बीच (विस्तृणीमहि) विस्तारते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो यज्ञकर्त्ता और यज्ञ कराने वाले विद्वान् हों और सुन्दर शुद्ध पदार्थों को अग्नि में छोड़ें तो क्या क्या सुख प्राप्त न हों ? ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सप्त होत्राणि मनसा वृणाना इन्वन्तो विश्वं प्रति यन्नृतेन ।
नृपेशसो विदथेषु प्र जाता अभीमं यज्ञं वि चरन्त पूर्वीः ॥५॥

पदार्थः—जो (विदथेषु) यज्ञों में (प्रजाताः) उत्पन्न हुए (नृपेशसः) मनुष्यों के रूप के समान जिन का रूप वे पदार्थ (मनसा) विज्ञान से (सप्तहोत्राणि) सात प्रकार के हवन सम्बन्धी कामों को (वृणानाः) स्वीकार करते और (विश्वम्) समस्त जगत् को (इन्वन्तः) व्याप्त होते हुए (ऋतेन) जल के साथ (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ को (अभि) सब ओर से (येन) जिस से विश्व को (प्रतियन्) प्रतीति से प्राप्त होते हैं तथा (पूर्वीः) पूर्व सिद्ध हुई आहुतियां (विचरन्त) विशेषता से प्राप्त होतीं वह यज्ञ सब विद्वानों को करने योग्य है ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य सुगन्ध्यादियुक्त पदार्थों के अग्नि में छोड़ने से वायु, वृष्टि, जल, ओषधि और अन्नों को अच्छे प्रकार शोधें तो सब आरोग्यपन को प्राप्त हों ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ भन्दमाने उपसा उपाके उत स्मयेते तन्वा३ विरूपे ।

यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ॥६॥

पदार्थः—(यथा) जैसे (भन्दमाने) सुख करने वाले (उपाके) समीप वर्त्तमान (उत) और (तन्वा) शरीर के (विरूपे) प्रकाश और अन्धकार से विरुद्ध स्वरूप (उपसौ) रात्रि और दिन स्त्री पुरुष (आ, स्मयेते) अच्छे प्रकार मुसकियाते जैसे वैसे वर्त्तमान (नः) हम लोगों को सेवन करते हैं वैसे (महोभिः) बड़े गुण कर्म स्वभावों के साथ (मित्रः) वायु (वरुणः) जल (उत) और (मरुत्वान्) प्रशंसित रूप वाला (इन्द्रः) बिजुली आदि अग्नि (वा) अथवा हम लोगों को (जुजोषत्) निरन्तर सेवते हैं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। यदि ईश्वर रात्रि और दिन न बनावे तो किसी का व्यवहार यथावत् सिद्ध न हो, जो भगवान् जल सूर्य्य और वायु को न रचे तो किसी का जीवन न हो ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दैव्या होतारा प्रथमान्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।

ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥७॥

पदार्थः—जो (प्रथमा) विस्तार करने वाले (दैव्या) दिव्य गुणी (होतारा) अनेक पदार्थों के ग्रहण कर्त्ता (सप्त) सात प्रकार के होमने योग्य पदार्थों को अच्छे प्रकार धारण करते हैं वा जो (ऋतम्) जल का (पृक्षासः) सम्बन्ध करने वाले (ऋतम्) सत्य की (इत्) ही (शंसन्तः) स्तुति करते हुए (दीध्यानाः) देदीप्यमान (व्रतपाः) उत्तम शील की रक्षा करने वाले (अनु, व्रतम्) अनुकूल शील को (आहुः) कहें (ते) वे (स्वधया) अन्न और जल से (मदन्ति) हर्षित होते हैं उन सब को मैं (नि, ऋञ्जे) न नष्ट करूं ॥७॥

भावार्थः—जो यज्ञ की आहुतियों से शुद्ध पवन, जल और अन्नादिकों का सेवन करते हैं, वे सुशील होते हुए प्रशंसा वाले होकर आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।

सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥८॥

पदार्थः—जो (भारतीभिः) सुन्दर शिक्षित वाणियों के साथ (सजोषाः) एकसी सेवा और प्रीति वाली (भारती) विद्या और शिक्षा से धारण किई हुई वाणी वा (देवैः) दिव्य गुण और (मनुष्येभिः) विचारशील पुरुषों के साथ समान सेवा और प्रीति वाली (इला) पृथिवी और (अग्निः) प्रकाशमान अग्नि वा (सारस्वतेभिः) वाणी में उत्पन्न हुए भावों के साथ (सरस्वती) प्रशंसित विज्ञानयुक्त वाणी (तिस्रः) उक्त तीनों (देवीः) देदीप्यमान (अर्वाक्) नीचे से (इदम्) इस (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (आ) अच्छे प्रकार स्थिर होती हैं उन को सब मनुष्य (आ, सदन्तु) आसादन करें उनका आश्रय लें अर्थात् उन में अच्छे प्रकार स्थिर हों ॥८॥

भावार्थः—जिन मनुष्यों की विद्वानों की धारणा के अनुकूल धारणा, प्रशंसा के अनुकूल स्तुति, वाणी के अनुकूल वर्त्ताव वाली वाणी वर्त्तमान है, वे अन्तरिक्षस्थ शुभ वाणी को प्राप्त हो कर आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥९॥

पदार्थः—हे (देव) दिव्य गुणों के देने वाले (त्वष्टः) छिन्न भिन्न कर्त्ता (रराणः) रमण करते हुए आप (नः) हमारी जो (तुरीपम्) शीघ्र कर्त्ता यज्ञ (अध) इस के अनन्तर (पोषयित्नु) पुष्टि की करने वाली यज्ञक्रिया (तत्) उन दोनों को (वि, स्यस्व) बीच में करो जिस से हम लोगों के कुल में (सुदक्षः) उत्तम बली (युक्तग्रावा) जिस में मेघयुक्त हैं (कर्मण्यः) जो कर्म से सिद्ध होता है (देवकामः) और दिव्य गुणों वा विद्वानों की कामना करता ऐसा (वीरः) शुभ गुणों में व्याप्त होने वाला वीर पुरुष (जायते) उत्पन्न होता है ॥९॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन हमारे लिये दुःख से तारने और पुष्टि करने वाले उपदेश को करें उन्हें शुभ गुण कर्म स्वभाव की कामना करने वाले हम लोग सदैव सेवें, जिस से हमारा कुल उत्कर्ष उन्नति को प्राप्त हो ॥९॥

अब अग्नि के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) किरणों के पालने वाले (यथा) जैसे (अग्निः)

अग्नि (हविः) होमने योग्य पदार्थों को (सूदयाति) वर्षाता है वैसे (देवान्) दिव्य गुणों को (उप, सृज) अपने समीप उत्पन्न कराओ दोषों को (अव) न उत्पन्न करो। जो (सत्यतरः) अतीव सत्य (होता) गुणों का ग्रहण करने वाला जैसे (देवानाम्) विद्वानों वा दिव्य पदार्थों के (जनिमानि) जन्मों को (वेद) जाने (सः, इत्) वही (उ) तर्क वितर्क के साथ (शमिता) शान्ति करने वाला (यजाति) यज्ञ करे ।।१०।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे सूर्य्य की किरणें दिव्य गुणों को उत्पन्न करती और दोषों को दूर करती हैं, वैसे विद्वान् लोग जगत् में गुणों को उत्पन्न करके दोषों को दूर करें ।।१०।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।**
**बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ।।११।।**

पदार्थः—हे (अग्ने) वह्नि के समान प्रकाशमान विद्वान् ! जैसे (समिधानः) प्रदीप्त (अर्वाङ्) और नीचे जाने वाला (इन्द्रेण) पवन वा बिजुली और (देवैः) दिव्य (तुरेभिः) शीघ्रगामी घोड़ों के साथ (सरथम्) रथ के सहित वर्त्तमान (बर्हिः) जो अन्तरिक्ष (न) उस के समान व्याप्त होता है वैसे आप (आ, याहि) आओ वा जैसे (सुपुत्रा) सुन्दर पुत्रों वाली (अदितिः) माता सुखिनी (आस्ताम्) हो वैसे (अमृताः) आत्मस्वरूप से नित्य (देवाः) दिव्य विद्या वाले विद्वान् जन हम लोगों को (स्वाहा) उत्तम अन्न वा सुशिक्षित वाणी से (मादयन्ताम्) हर्षित करें ।।११।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे बिजुली आदि पदार्थों से चलाये हुए रथ आदि यान भू समुद्र और अन्तरिक्ष में शीघ्र जाते हैं वैसे विद्वानों की शिक्षा से विद्याओं को प्राप्त हो कर शीघ्र गुरुकुल जा कर और ब्रह्मचारियों को प्राप्त हो कर सब को आनन्द करें ।।११।।

इस सूक्त में वह्नि, विद्वान् और वाणी के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

यह चौथा सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ । ११ भुरिक् पङ्क्तिः । ३ पङ्क्तिः । ६ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ त्रिष्टुप् । ५ । ७ । १० निचृत्त्रिष्टुप् । ८ । ९ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले पांचवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के सम्बन्ध से अग्नि के गुणों को कहते हैं ।।

प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानोऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (अग्निः) अग्नि (उषसः) प्रभात समयों के (प्रति, अबोधि) प्रति जाना जाता है वैसे (चेकितानः) ज्ञान देने वाला अर्थात् समझाने वाला (कवीनाम्) विद्वानों की (पदवीः) पदवियों को प्राप्त होता (पृथुपाजाः) महान् बल वाला (विप्रः) बुद्धिमान् विद्वान् जन (देवयद्भिः) विद्वानों की कामना करते हुओं के साथ जाना जाता है जैसे (समिद्धः) प्रदीप्त (वह्निः) और पदार्थों को गति कराने वाला अग्नि (तमसः) अन्धकार से ढपे हुए (द्वारा) द्वारों को (अप, आवः) खोलता है वैसे विद्वान् हो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि प्रातःकाल में सब प्राणियों को जगाता और अन्धकार को निवृत्त करता है वैसे विद्वान् जन अविद्या में सोते हुए मनुष्यों को जगाते हैं और इन के आत्माओं को अज्ञान के आवरण से अलग करते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्रेद्वग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीरृतस्य संदृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ॥२॥

पदार्थः—जैसे (दूतः) परिताप देने वाला (अग्निः) अग्नि इन्धनों से (प्र, वावृधे) अच्छे प्रकार बढ़ता है वैसे (स्तोतॄणाम्) समस्त विद्या प्रशंसा करने वालों के (स्तोमेभिः) उन व्यवहारों से जिन से सब विद्याओं की स्तुति करते हैं (गीर्भिः) तथा सुशिक्षित वाणियों से (उक्थैः) और सब विद्याओं का सम्बन्ध जिन में करते हैं उन व्यवहारों से (नमस्यः) जो सत्कार करने योग्य है वह बढ़ता है जैसे अग्नि (विरोके) सब ओर से जिन में प्रीति है उस व्यवहार के वा प्रकाश के निमित्त (उषसः) प्रभात समयों को (अद्यौत्) प्रकाशित करता है वैसे (संदृशः) अच्छे प्रकार देखने को (ऋतस्य) सत्य सम्बन्धी (पूर्वीः) पूर्ण बहुत विद्या की (चकानः) कामना करता हुआ (इत्, उ) ही तर्क वितर्क के साथ विद्वान् (सम्) अच्छे प्रकार प्रकाशित होता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे इन्धन और घृतादिकों से अग्नि प्रवृद्ध हो कर प्रकाशित होता वैसे ब्रह्मचर्य और विद्या-

भ्यासादिकों से मनुष्यों का आत्मज्ञान वृद्ध हो कर सनातन विद्या सब को दे कर पूज्यतम होते हैं ।।२।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

अधा॑य्य॒ग्निर्मानु॑षीषु वि॒क्ष्व१॒॑पां गर्भो॑ मि॒त्र ऋ॒तेन॒ साध॑न् ।
आ ह॑र्य॒तो य॑ज॒तः सान्व॑स्थादभू॑दु॒ विप्रो॒ हव्यो॑ मती॒नाम् ।।३।।

पदार्थः—जैसे विद्वानों ने (अपाम्) प्राणों को (गर्भः) गर्भ के समान हो कर (अग्निः) अग्नि (मानुषीषु) मनुष्य सम्बन्धी इन (विक्षु) प्रजाओं में (अधायि) धारण किया जाता वैसे (मतीनाम्) विशेष बुद्धिमानों का (मित्रः) मित्र जो (ऋतेन) सत्य से (साधन्) कार्यसिद्ध करता हुआ (हर्यतः) मनोहर (यजतः) सङ्गम (हव्यः) और ग्रहण करने योग्य (विप्रः) बुद्धिमान् जन धारण किया हुआ है वह (उ) ही (सानु) विभाग करने योग्य पदार्थ की (आ, अस्थात्) प्रतिज्ञा करता और प्रसिद्ध (अभूत्) होता है ।।३।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! तुम जैसे ईश्वर ने अग्नि सकल प्रजा का प्रकाश करने वाला स्थापित किया वैसे विद्या और धर्म के प्रकाश करने वाले विद्वानों को जानो ।।३।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

मि॒त्रो अ॒ग्निर्भ॑वति॒ यत्समि॑द्धो मि॒त्रो होता॒ वरु॑णो जा॒तवे॑दाः ।
मि॒त्रो अ॑ध्व॒र्युरि॑षि॒रो दमू॑ना मि॒त्रः सिन्धू॑नामु॒त पर्व॑तानाम् ।।४।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (सिन्धूनाम्) नदियों (उत) और (पर्वतानाम्) बड़ी शिलाओं के बीच (समिद्धः) प्रदीप्त (अग्निः) अग्नि के समान (मित्रः) मित्र वा (होता) ग्रहण करने हारे के तुल्य (मित्रः) मित्र वा (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों के जानने वाले जगदीश्वर के समान (वरुणः) श्रेष्ठ वा (अध्वर्युः) अपने को अहिंसा धर्म की इच्छा करने वाले के समान (मित्रः) मित्र वा (इषिरः) इच्छा करने वाले (दमूनाः) दमनशील के समान (मित्रः) मित्र (भवति) होता है उस का सत्कार करिये ।।४।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य, नदी, शैल और ओषधि आदिकों को किरणों के द्वारा पुष्ट करने वा उन को सुखाने वाला होता है वैसे मित्र जन धर्म में पुष्टि कारक और अधर्म से निवर्त्तक होते हैं ।।४।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पाति प्रियं रिपो अग्रं पदं वेः पाति यह्वश्चरणं सूर्य्यस्य ।
पाति नाभा सप्तशीर्षाणमग्निः पाति देवानामुपमादमृष्वः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! जैसे (अग्निः) अग्नि (वेः) चलती हुई (रिपः) पृथिवी के (अग्रम्) ऊपरले (प्रियम्) प्रिय (पदम्) प्राप्त होने योग्य स्थान को (पाति) प्राप्त होता और (यह्वः) बड़ा बहुत होता हुआ (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (चरणम्) गमन को (पाति) प्राप्त होता वा (नाभा) बीच में वर्त्तमान अन्तरिक्ष में (सप्तशीर्षाणम्) सात प्रकार की शिररूप किरणें जिस में विद्यमान उस सूर्य्यमण्डल को (पाति) प्राप्त होता वा (ऋष्वः) प्राप्ति कराने वाला होता हुआ (देवानाम्) दिव्य विद्वानों के (उपमादम्) उस व्यवहार को जो उपमा दिलाता है (पाति) प्राप्त होता है वैसे तुम होओ ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वान् ! जैसे वह्नि, चाल वाले पृथिवी आदि लोकों की रक्षा और प्रकाश के निमित्त से उन की रक्षा करने वाला वर्त्तमान होता है, वैसे आप सब की रक्षा करने वाले होओ ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋभुश्चक्र ईड्यं चारु नाम विश्वानि देवो वयुनानि विद्वान् ।
ससस्य चर्म घृतवत्पदं वेस्तदिदग्नी रक्षत्यप्रयुच्छन् ॥६॥

पदार्थः—जो (ऋभुः) बड़ा (देवः) देने वाला (अप्रयुच्छन्) प्रमाद न करता हुआ (विद्वान्) विद्वान् (ईड्यम्) स्तुति के योग्य कर्म (चारु) सुन्दर (नाम) वाणी वा जल को और (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) उत्तम ज्ञानों को (चक्रे) करता है वह (तत्, इत्) उन्हीं को प्राप्त हुआ (अग्निः) अग्नि के समान (वेः) पाये (ससस्य) और सोते हुए मनुष्य के (पदम्) पद और (चर्म) त्वचा की (घृतवत्) घी के तुल्य (रक्षति) रक्षा करता है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे प्राणाग्नि शरीर की रक्षा करता है, सोते हुए को जगाता है, वैसे अध्यापक और उपदेशक उत्तम शिक्षा को पाये हुए वाणी के समस्त विज्ञानों की प्राप्ति करा कर मनुष्यों को जगाते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ योनिमग्निर्घृतवन्तमस्थात्पृथुप्रगाणमुशन्तमुशानः ।
दीद्यानः शुचिॠष्वः पावकः पुनःपुनर्मातरा नव्यसी कः ॥७॥

पदार्थः—जैसे (पावकः) पवित्र करने वाला (अग्निः) अग्नि (पुनः पुनः) वारंवार (नव्यसी) अतीव नवीन (मातरा) माता पिता को (कः) प्रसिद्ध करता है वा (घृतवन्तम्) घी जिस में विद्यमान उस (योनिम्) घर को (आ, अस्थात्) आस्था करता अर्थात् सब प्रकार उस में स्थिर होता है वैसे (दीद्यानः) देदीप्यमान (शुचिः) पवित्र (ऋष्वः) और प्राप्त होने योग्य जन (पृथुप्रगाणम्) जिस में विशेष गान वा स्तुति विद्यमान हैं वा जो (उशन्तम्) कामना किया जाता है उस को (उशानः) कामना करता हुआ विद्या और पढ़ाने वाले को माता पिता के तुल्य मान अपने स्वभाव रूपी घर को अच्छा स्थित हो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विद्युत्रूप अग्नि पृथिवी आदि पदार्थों में स्थिर और सब ओर से अभिव्याप्त हो कर किसी से विरुद्ध नहीं होता, वैसे विद्वान् जन किसी से विरुद्ध आचरण न करें, जैसे अग्नि शुद्ध और दूसरों को शुद्ध करने वाला है वैसे पवित्र होता हुआ औरों को पवित्र करे ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सद्यो जात ओषधीभिर्ववक्षे यदी वर्धन्ति प्रस्वो घृतेन ।
आप इव प्रवता शुम्भमाना उरुष्यदग्निः पित्रोरुपस्थे ॥८॥

पदार्थः—(यदि) जो (प्रस्वः) उत्पन्न होती हैं वे ओषधी (घृतेन) जल से (शुम्भमानाः) सुन्दर शोभित (आपइव) जलों के समान (वर्धन्ति) बढ़ती हैं तो उन (ओषधीभिः) ओषधियों के साथ (प्रवता) नीचला मार्ग है जिसका अर्थात् टपकता हुआ जो घृत उससे जो (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रकट होता हुआ (अग्निः) अग्नि (ववक्षे) रूठे के समान विरुद्ध होता है जो अग्नि (पित्रोः) माता पिता स्थानीय आकाश और पृथिवी के (उपस्थे) उस भाग में जिसमें स्थित होते हैं (उरुष्यत्) अपने को बहुत के समान आचरण करता है उसको जानो ॥८॥

भावार्थः—यदि अग्नि सूर्यरूप से भूमि के जल को खींचकर वर्षा न करावे तो कोई भी ओषधि न हो। जैसे कोई रूठा हुआ किसी को मारता है वैसे जलता हुआ अग्नि पाये हुए पदार्थों को जला देता है। और जैसे प्रसन्न होता हुआ मित्र मित्र की रक्षा करता है वैसे युक्ति से सेवन किया हुआ अग्नि पदार्थों की रक्षा करता है ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदु ष्टुतः समिधा यह्वो अद्यौद्वर्ष्मन्दिवो अधि नाभा पृथिव्याः ।
मित्रो अग्निरीड्यो मातरिश्वा दूतो वक्षद्यजथाय देवान् ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वान्! जैसे (ईड्यः) स्तुति करने योग्य (अग्निः) अग्नि (समिधा) समिधा से (वर्म्मन्) सेचन के विषय में (दिवा) प्रकाश और (पृथिव्याः) भूमि के (नाभा) बीच में (उत्, अद्यौत्) उदय होता है वा जो (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में सोने वाला (दूतः) दूत के समान होता हुआ (यजथाय) सङ्गम करने वाले के लिये (देवान्) दिव्य गुणों को (अधिवक्षत्) अधिकता से प्राप्त करे (उ) वैसे ही (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त हुआ (यह्वः) महान् (ईड्यः) स्तुति करने योग्य (मित्रः) मित्र हो ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इस ब्रह्माण्ड में सूर्य्यरूप से अग्नि सब को तपाता है वैसे महान् मित्र अपने मित्रों को आनन्दित करता और दिव्य गुणों की प्राप्ति कराता है ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उदस्तम्भीत्समिधा नाकमृष्वो३ऽग्निर्भवन्नुत्तमो रोचनानाम्।
यदी भृगुभ्यः परि मातरिश्वा गुहा सन्तं हव्यवाहं समीधे ॥१०॥

पदार्थः—यदि (रोचनानाम्) प्रकाशमानों में (उत्तमः) उत्तम (भवन्) होता हुआ (ऋष्वः) महान् (अग्निः) अग्नि (भृगुभ्यः) भुंजते हुए पदार्थों से (समिधा) अच्छे प्रकार प्रकाश के साथ (नाकम्) सुख का (उदस्तम्भीत्) उत्थान करता है तो मैं (गुहा) पदार्थों के भीतर (सन्तम्) वर्त्तमान (हव्यवाहम्) और जो होम के पदार्थों को अन्तरिक्ष को पहुँचाता उस अग्नि को (परिसमीधे) सब ओर से प्रदीप्त करूं ॥१०॥

भावार्थः—जैसे अग्नि बिजुली सूर्य्यरूप से सबको धारण करता है वैसे उसको मैं धारण करता हूँ ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन्! आप (गोः) वाणी के (शश्वत्तमम्) अनादि व्यवहार को (हवमानाय) ग्रहण करने वाले के लिए (पुरुदंसम्) बहुत कर्मों की सिद्धि करने (सनिम्) और अच्छे प्रकार विभाग करने वाले तथा (इडाम्) प्रशंसा करने योग्य क्रिया को (साध) सिद्ध कीजिये। हे (अग्ने) विद्वान्! जो (ते) तुम्हारी (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (सा) वह (अस्मे) हम लोगों में (भूतु) हो जिससे (नः) हम लोगों के बीच (विजावा) विशेषता से उत्पन्न होने वाला (सूनुः) बालक और (तनयः) काम का देने वाला कुमार (स्यात्) हो ॥११॥

भावार्थः—विद्वान् जनों को सर्व विद्या मन्थने के सारयुक्त अपनी वाणी और मति का विधान कर औरों की भी वैसी ही करनी चाहिये। जैसे औरों से वुद्धि और उत्तम शिक्षा ग्रहण किई जाय वैसे औरों को भी देनी चाहिये, जिस से सब के सन्तान विद्वान् होवें ॥११॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ५ विराट् त्रिष्टुप् । २ । ७ त्रिष्टुप् । ३ । ४ । ८ निचृत्त्रिष्टुप् । १० भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ । ११ भुरिक् पङ्क्तिः । ९ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले छठे सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि के सम्बन्ध से विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

प्र कारवो मनना वच्यमाना देवद्रीचीं नयत देवयन्तः ।
दक्षिणावाड्वाजिनी प्राच्येति हविर्भरन्त्यग्नये घृताची ॥१॥

पदार्थः—(देवद्रीचीम्) जिससे मनुष्य विद्वानों का सत्कार करता है उस की तथा (देवयन्तः) विद्वानों की कामना करने वाले हे (कारवः) शिल्प कामों के कर्त्ता विद्वानो ! तुम जो (मनना) मानने वा जानने योग्य (वच्यमानाः) वा जो कही जाती वा (दक्षिणावाट्) जो दक्षिण दिशा को प्राप्त होती हुई (वाजिनी) जो प्राप्त होने वाली वा (प्राची) जो पहिले प्राप्त होती पूर्व दिशा वा (घृताची) जो जल को प्राप्त होती हुई (अग्नये) अग्नि के लिये (हविः) देने योग्य पदार्थ को (भरन्ती) धारण करती वा पुष्ट करती हुई (एति) प्राप्त होती है उन सबको (प्र, णयत) प्राप्त करो ॥१॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोग रात्रि और रात्रि के व्यवहारों को जानते हैं वैसे औरों को भी जानना चाहिये ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ रोदसी अपृणा जायमान उत प्र रिक्था अध नु प्रयज्यो ।
दिवश्चिदग्ने महिना पृथिव्या वच्यन्तां ते वह्नयः सप्तजिह्वाः ॥२॥

पदार्थः—हे (प्रयज्यो) उत्तम यज्ञ करने वाले (अग्ने) अग्नि के समान

विद्वान् ! (दिवः) प्रकाश और (पृथिव्याः) भूमि के (महिना) महत्त्व से (सप्तजिह्वाः) काली आदि सात जिह्वा ज्वाला वाले (वह्नयः) पदार्थ को देशान्तर में पहुंचाने वाले अग्नि तुम्हें (वच्यन्ताम्) कहने चाहिये और सो आप (जायमानः) उत्पन्न होते हुए (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (अपृणाः) परिपूर्ण कीजिये (उत) और (आ, प्र, रिक्थाः) दोषों को सब ओर से अच्छे प्रकार दूर कीजिये (अध) इस के अनन्तर (ते) आप को (चित्) (नु) शीघ्र निश्चय कर के सुख हो ॥२॥

भावार्थः—जैसे सूर्य पृथिवी और अग्नि की महिमा वर्त्तमान है वैसे जो अग्निविद्या और भूगर्भविद्या को जानता है वह निरन्तर सुखी हो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**द्यौश्च त्वा पृथिवी यज्ञियासो नि होतारं सादयन्ते दमाय ।**
**यदी विशो मानुषीर्देवयन्तीः प्रयस्वतीरीळते शुक्रमर्चिः ॥३॥**

पदार्थः—हे राजन् ! (यदि) जो (प्रयस्वतीः) बहुत प्रकार का जिन में तर्प्पण तृप्ति विद्यमान वे (देवयन्तीः) विद्वानों की कामना करने वाली (मानुषीः) मनुष्य सम्बन्धी (विशः) प्रजा जिन (त्वा) आप (शुक्रम्) आप के पराक्रम और (अर्चिः) विद्या के प्रकाश की (ईळते) स्तुति करती हैं उन (होतारम्) दानशील आप को (दमाय) जितेन्द्रिय[त्व] के लिये (यज्ञियासः) यज्ञ की सिद्धि करने वाले (नि, सादयन्ते) निरन्तर स्थापन करते हैं (द्यौः) प्रकाश (च) और (पृथिवी) पृथिवी भी प्राप्त होती हैं ॥३॥

भावार्थः—जब राजा और राजपुरुष विद्या विनय और नीतियों से अपनी प्रजाओं को प्रसन्न करते और जितेन्द्रिय हो कर दुष्ट व्यसनों से रहित होते हैं वे धर्म, अर्थ, काम और मोक्षों को प्राप्त होते हैं। यहाँ वीर्य और विद्या की उन्नति को उत्तम कारण जानो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**महान्त्सधस्थे ध्रुव आनिषत्तोऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।**
**आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥४॥**

पदार्थः—जो (महान्) बड़े परिमाण वाला (सधस्थे) समानस्थान में (ध्रुवः) निश्चल (माहिने) महत्त्व के लिये (हर्यमाणः) कामना करता हुआ (द्यावा) आकाश और पृथिवी के (अन्तः) बीच में (आ, निषत्तः) निरन्तर स्थिर

अग्नि (आस्क्रे) जिन का आक्रमण करना अर्थात् अनुक्रम से चलना स्वभाव (अजरे) जो जीर्ण अवस्थारहित (अमृक्ते) विकार अवस्था से अशुद्ध (सबर्दुघे) एक से स्वीकार को अच्छे प्रकार पूरे करने वाली (उरुगायस्य) बहुतों से जो स्तुति को प्राप्त हुआ उस की (सपत्नी) सपत्नी के समान वर्त्तमान वा (धेनू) दो गौओं के समान पालन करने वाली हैं उन को व्याप्त होता है वह सब को जानने योग्य है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो यह सूर्य-लोक दीख पड़ता है वह सब से बड़ा और अपनी परिधि में निरन्तर बसता हुआ सब भूगोलों को प्रकाशित करता है जिस से कि दिन रात्रि होते हैं उस को जानो ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

व्रता ते अग्ने महतो महानि तव क्रत्वा रोदसी आ ततन्थ ।
त्वं दूतो अभवो जायमानस्त्वं नेता वृषभ चर्षणीनाम् ॥५॥

पदार्थः—हे (वृषभ) वर्षा करने वाले (अग्ने) विद्वान् जन ! जैसे सूर्य्य वा बिजुली (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (आ, ततन्थ) विस्तारता और (दूतः) दूत होता है वैसे (त्वम्) आप (अभवः) हूजिये जिन (महतः) महान् (ते) आप के (महानि) बड़े बड़े (व्रता) शील (तव) आप के (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि वा कर्म से प्रसिद्ध होते हैं सो (त्वम्) आप (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के दूत हूजिये तथा (जायमानः) प्रसिद्ध होते हुए आप (नेता) अग्रगन्ता सभों में श्रेष्ठ हूजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि के महान् गुण कर्म स्वभाव हैं वैसे गुणकर्मस्वभाव वाला जो मनुष्य हो वही राजदूत और मनुष्यों का नायक भी हो ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋतस्य वा केशिना योग्याभिर्घृतस्नुवा रोहिता धुरि धिष्व ।
अथा वह देवान्देव विश्वान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥६॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) जो उत्पन्न हुए पदार्थों को जानता है वह हे (देव) दान देने वाले विद्वान् ! आप (धुरि) धुरे पर (ऋतस्य) जल के (योग्याभिः) योग्य पृथिवियों से (केशिना) जिनमें बहुतसी किरणें विद्यमान वा (घृतस्नुवा) जो जल को चुआते (रोहिता) उन रत्न गुण वाले अश्वों को धुरे में (धिष्व) धरो लगाओ (वा) वा (स्वध्वरा) जिन से सुन्दर यज्ञ होता उन को (कृणुहि) अच्छे प्रकार सिद्ध

करो (अथ) इस के अनन्तर (विश्वान्) समस्त (देवान्) दिव्य गुणों को (आ, वह) प्राप्त करो ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर ने सूर्य और विजुली सब के चलाने वाले ब्रह्माण्ड में धरे स्थापन किये वैसे तुम लोग अश्वादिकों को धारण करो और इस काम से समस्त गुणों को स्वीकार करो ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दि॒वश्चि॑दा ते॑ रुचयन्त रो॒का उ॒षो वि॑भा॒तीरनु॑ भासि पू॒र्वीः ।
अ॒पो यद॑ग्न उ॒शध॒ग्वने॑षु होतु॑र्म॒न्द्रस्य॑ प॒नय॑न्त दे॒वाः ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् ! (दिवः) प्रकाश से लेकर (चित्) ही (ते) आप के (रोका) रुचि करने वाले प्रकाश (आ, रुचयन्त) अच्छे प्रकार रुचते हैं जैसे सूर्य (पूर्वीः) प्राचीन (विभातीः) और विशेपता से प्रकाश होती हुई (उषः) प्रभात वेलाओं को प्रकाशित करता वा (अपः) जलों को वर्षाता है (यत्) जो आप विद्या के (अनुभासि) अनुकूलता से प्रकाशित होते हो उन (मन्द्रस्य) आनन्द देने वाले (होतुः) दानशील (तव) आप के गुणों के जैसे (वनेषु) जङ्गलों में (उशधक्) मनोहर पदार्थों को जिससे जलाता वह अग्नि वर्त्तमान है वैसे (देवाः) विद्वान् जन (पनयन्त) प्रशंसित करो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो मनुष्य सूर्य के समान प्रकाश कराने दुष्टों को जलाने और श्रेष्ठों की स्तुति प्रशंसा करने वाले होते हैं वे विजुली के समान कार्य के सिद्ध करने वाले होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उ॒रौ वा॒ ये अ॒न्तरि॑क्षे॒ मद॑न्ति दि॒वो वा॒ ये रो॑च॒ने सन्ति॑ दे॒वाः ।
ऊमा॑ वा॒ ये सु॒हवा॑सो॒ यज॑त्रा आयेमि॒रे र॒थ्यो॑ अग्ने॒ अश्वाः॑ ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! जो (ऊमाः) मनोहर (वा) वा (ये) जो (सुहवासः) सुन्दर ग्रहण करने वाली (वा) वा (ये) जो (यजत्राः) सङ्गम को प्राप्त (रथ्यः) रथ के लिये हितरूप (अश्वाः) और व्याप्ति रखने वाली किरणें (वा) वा (ये) जो (रोचने) प्रकाश में (देवाः) दिव्य किरणें (सन्ति) विद्यमान हैं वे (उरौ) पुष्कल (अन्तरिक्षे) आकाश में (दिवः) प्रकाश से (आयेमिरे) विथरती हैं उन को जो जानते हैं वे सर्वदा (मदन्ति) हर्षित होते हैं ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध रूप अग्नि की जो कि किरणें और गुण सब के प्रकाश करने वाले रथादिकों के लिये हितरूप और आकर्षणशक्तियुक्त हैं, उन को जान कर सब प्राणियों की रक्षा करने वाले होओ ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऐभिरग्ने सरथं याह्यर्वाङ् नानारथं वा विभवो ह्यश्वाः ।
पत्नीवतस्त्रिंशतं त्रींश्च देवाननुष्वधमा वह मादयस्व ॥९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान ज्ञान से प्रकाशमय जो अग्नि की (विभवः) व्यापक (अश्वाः) किरणें (नानारथम्) जिनमें अनेक रथ विद्यमान उसे (वा) वा (त्रीन्) तीन (त्रिंशतम्, च) और तीस (पत्नीवतः) प्रशस्त पत्नियों वाले (देवान्) पृथिवी आदि लोकों को (अनुस्वधम्) अन्न के अनुकूल पहुँचाती हैं (एभिः) इन से आप (अर्वाङ्) जो नीचे को प्राप्त होता वा ऊपर को पहुंचता है उस (सरथम्) रथों के सहित वर्त्तमान मार्ग को (आ, याहि,) आओ प्राप्त होओ और हम लोगों को (आ, वह) प्राप्त कीजिये तथा (मादयस्व) हर्षित कीजिये ॥९॥

भावार्थः—जैसे अग्नि, तेंतीस पृथिवी आदि दिव्य गुणी पदार्थों को धारण करता और वहां व्यापक होकर अपने रूप कर देता है, वैसे विद्वान् जन विज्ञान से सब को जानकर तथा औरों के प्रति उपदेश कर आनन्द देते हैं ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स होता यस्य रोदसी चिदुर्वी यज्ञंयज्ञमभि वृधे गृणीतः ।
प्राची अध्वरेव तस्थतुः सुमेके ऋतावरी ऋतजातस्य सत्ये ॥१०॥

पदार्थः—(यस्य) जिस अग्नि के सम्बन्ध में (उर्वी) बहुस्वरूप वाले (अध्वरेव) न नष्ट करने योग्य यज्ञों के समान (प्राची) प्राक्तन (सुमेके) अच्छे प्रकार प्रक्षेप किये हुए (ऋतावरी) जिन में बहुत उदक जल विद्यमान (ऋतजातस्य) सत्य कारण से उत्पन्न हुए संसार के बीच (सत्ये) विद्यमान पदार्थों में हित या कारण रूप से नित्य (रोदसी) जो आकाश और पृथिवी (वृधे) वृद्धि के लिये (यज्ञंयज्ञम्) प्रति व्यवहार को (अभिगृणीतः) सम्मुख कहते (चित्) ही (तस्थतुः) स्थित होते हैं (सः) वह (होता) ग्रहण कर्त्ता वा सर्व पदार्थों को धारण कर्त्ता अग्नि सब को जानने योग्य है ॥१०॥

भावार्थः—यदि भूमि सूर्य्य उदय को न प्राप्त हों तो किसी व्यवहार के सिद्ध करने को कोई योग्य न हो और न किसी की वृद्धि हो ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।

स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥११॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् ! आप (हवमानाय) स्पर्द्धा करते हुए के लिये (गोः) पृथिवी के (शश्वत्तमम्) अतीव अनादि स्वरूप को (पुरुदंसम्) जो कि बहुत कर्मों से युक्त है उस (सनिम्) विभाग युक्त को तथा (इलाम्) प्रशस्त भूमि को (साध) सिद्ध करो जिस से (नः) हमारा (विजावा) विशेष गति वाला वा विशेष ज्ञान वाला वा विशेष प्रतिज्ञा वाला (सूनुः) उत्पन्न (तनयः) पुत्र हो । हे (अग्ने) विद्वान् ! जो (ते) आप की (सुमतिः) सुन्दर श्रेष्ठ मति है (सा) वह (अस्मे) हम लोगों में (भूतु) हो ॥११॥

भावार्थः—यदि मनुष्य अग्नि और पृथिवी आदि के स्वरूप को जान कर अच्छे प्रकार कार्यों में प्रयुक्त करें तो उन में पुत्र, पौत्र, धन, धान्य, विद्या और ऐश्वर्य समर्थित हो ॥११॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तृतीय मण्डल में छठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ६ । ९ । १० त्रिष्टुप् । २—५ । ७ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ८ स्वराट् पङ्क्तिः ११ । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले सातवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्युत् अग्नि के गुणों का वर्णन किया है ॥

प्र य आरुः शितिपृष्ठस्य धासेरा मातरा विविशुः सप्त वाणीः ।

परिक्षिता पितरा सं चरेते प्र सर्स्राते दीर्घमायुः प्रयक्षे ॥१॥

पदार्थः—(ये) जो लोग (शितिपृष्ठस्य) जिस का पूंछना सूक्ष्म है (धासेः) उस धारण करने वाले विद्युत् अग्नि के सम्बन्धी (परिक्षिता) सब ओर से निवास करते हुए (पितरा) पालक (मातरा) जल और अग्नि को (प्र, आरुः) प्राप्त होवें ।

जो जल अग्नि दोनों को (सम्, चरेते) सम्यक् विचरते हैं तथा (प्र, सस्रति) विस्तार पूर्वक प्राप्त होते हैं वे (दीर्घम्, आयुः) बड़ी अवस्था को और (प्रयक्षे) अच्छे प्रकार यज्ञ करने के लिये (सप्त, वाणीः) सात द्वारों में फैली वाणियों को (आ, विविशुः) प्रवेश करें सब प्रकार जानें ॥१॥

भावार्थः—जो शरीर में विद्युत् रूप अग्नि फैला न हो तो वाणी कुछ भी न चले। उस विद्युत् अग्नि का जो ब्रह्मचर्यादि उत्तम कर्मों में यथावत् सेवन करते हैं वे बड़ी अवस्था को प्राप्त होते हैं ॥१॥

मनुष्यों को कैसी वाणी का सेवन करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद्वहन्तीः ।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्त्तनिं गौः ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष! जो (ऋतस्य) सत्य की (सदसि) सभा में (दिवक्षसः) प्रकाश को प्राप्त हो व्याप्त हुई (वृष्णः) बलिष्ठ पुरुष के (अश्वाः) शीघ्रगामी घोड़ों के समान (देवीः) दिव्य स्वरूप (मधुमत्) कोमल विज्ञान वाले उस सुख को (वहन्तीः) प्राप्त कराती हुई (धेनवः) वाणी (क्षेमयन्तम्) रक्षा करते हुए (त्वा) आप को (एका) एक (गौः) अपनी कक्षा में चलने वाली भूमि (वर्त्तनिम्) मार्ग को (परि, चरति) सब ओर से चलती हुई सी (आ, तस्थौ) स्थित होती उन वाणियों को आप यथावत् जानो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे असहाय पृथिवी अपने कक्षा मार्ग में नित्य चलती हैं वैसे ही सभ्य जनों की वाणी नियम से मिथ्याभाषण को छोड़ सत्य मार्ग में चलती हैं। जो ऐसी वाणी का सेवन करते हैं उन की कुछ भी हानि नहीं होती ॥२॥

फिर राजा क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ सीमरोहत्सुयमा भवन्तीः पतिश्चिकित्वान् रयिविद्रयीणाम् ।
प्र नीलपृष्ठो अतसस्य धासेस्ता अवासयत्पुरुधप्रतीकः ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वन् (चिकित्वान्) ज्ञानी (रयिवित्) द्रव्यवेत्ता (रयीणाम्) धनों के (पतिः) स्वामी ! आप जैसे (पुरुधप्रतीकः) अनेकों के पोषण के वा धारण के हेतु प्रतीतिकारी कर्म वाला (नीलपृष्ठः) जिसके पिछले भाग में नीलवर्ण है ऐसा (सीम्) सूर्य्यमण्डल (अतसस्य) व्याप्त बुद्धि (धासेः) पोषण करने वाले राजा की जो (भवन्तीः) वर्त्तमान (सुयमाः) सुन्दर नियम वाली प्रजाओं को (प्र, आ, अवासयत्)

अच्छे प्रकार वास कराता और (अरोहत्) अपने काम में आरूढ़ होता है वैसे (ताः) उन सुन्दर नियमयुक्त प्रजाओं को अच्छे प्रकार वास कराइये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य सब प्रजाओं को उठा के अच्छे प्रकार वास कराता है वैसे ही राजा सुशिक्षित रक्षा की हुई प्रजाओं को भूगोल के सब देशों में वसा के धनाढ्य करे ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

महिं त्वाष्ट्रमूर्जयन्तीरजुर्य्यं स्तभूयमानं वहतो वहन्ति ।

व्यङ्गेभिर्दिद्युतानः सधस्थ एकामिव रोदसी आ विवेश ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस सूर्य के (अजुर्यम्) जीर्ण अवस्था से रहित (महि) बड़े (स्तभूयमानम्) लोकों के धारक (त्वाष्ट्रम्) तेज को (उर्जयन्तीः) बल देती हुई शक्तियों को यथास्थान (वहतः) पहुँचाने वाले किरण (व्यङ्गेभिः) विविध प्रकार के अङ्गों से (वहन्ति) पहुँचाते हैं। जो (दिद्युतानः) देदीप्यमान हुआ अग्नि जैसे पति (सधस्थे) एक स्थान में (एकामिव) एक अपनी स्त्री का सङ्ग करता है वैसे (रोदसी) आकाश भूमि को (आ, विवेश) आवेश करता है उस विद्युत् रूप अग्नि को कार्य्यसिद्धि के लिये संप्रयुक्त करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि सर्वत्र अभिव्याप्त विद्युत् स्वरूप अग्नि के गुण कर्म स्वभावों को जान के कार्य्यसिद्धि करें ॥४॥

अब कौन महात्मा होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

जानन्ति वृष्णो अरुषस्य शेवमुत ब्रध्नस्य शासने रणन्ति ।

दिवोरुचः सुरुचो रोचमाना इळा येषां गण्या माहिना गीः ॥५॥

पदार्थः—(येषाम्) जिनकी (गण्या) गणना करने योग्य (इडा) स्तुति और (माहिना) सत्कार करने योग्य (गीः) वाणी है वे (रोचमानाः) रुचि वाले हुए (दिवोरुचः) विज्ञानरूप प्रकाश में रुचि करने वाले (सुरुचः) सुन्दर प्रीति के उत्पादक विद्वान् लोग (रणन्ति) शब्द करते हैं तथा (वृष्णः) बलिष्ठ (अरुषस्य) घोड़े के तुल्य वेगयुक्त (ब्रध्नस्य) महान् राजपुरुष की (शासने) शिक्षा में (शेवम्) सुख (उत) और विज्ञान को (जानन्ति) जानते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों की शिक्षा में स्थिर होते हैं वे प्रशंसित विद्वान् होकर महात्मा होते हैं ॥५॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है ॥

उतो पितृभ्यां प्रविदानु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोरनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्मचारी लोग (महद्भ्याम्) पूज्य अध्यापक उपदेशकों से (महः) बड़े ब्रह्मचर्य्य को (उतो) और (पितृभ्याम्) माता पिता के साथ (प्रविदा) प्रकृष्ट ज्ञान से (घोषम्) विद्याशिक्षायुक्त वाणी और (शूषम्) बल को (अनु, अनयन्त) अनुकूल प्राप्त हों (यत्र) जहां (उक्षा) सेचन करने वाला सूर्य्य (अक्तोः) रात्रि के (परि, धानम्) सब ओर से धारण को (जरितुः) स्तुतिकर्त्ता के (ह) ही (स्वम्, धाम) अपने स्थान को अर्थात् प्राप्त अवस्था को (अनु, ववक्ष) पहुँचाता है उस का सत्कार करो ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्मचारी लोग पिता आचार्य्य आदि महान् पुरुषों के सेवन से विद्या तेज को पाते हैं वैसे तुम लोग प्रातःकाल ईश्वर की स्तुति आदि से धर्म से हुए सुख को प्राप्त होओ ॥६॥

अब उपदेशक लोग किसके सदृश क्या करते हैं, इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है ॥

अध्वर्य्युभिः पञ्चभिः सप्त विप्राः प्रियं रक्षन्ते निहितं पदं वेः ।
प्राञ्चो मदन्त्युक्षणो अजुर्या देवा देवानामनु हि व्रता गुः ॥७॥

पदार्थः—जो (प्राञ्चः) प्रकृष्ट विद्यायुक्त (उक्षणः) सुख फैलाने हारे (अजुर्य्याः) शरीर आत्मा की जीर्ण अवस्था से रहित (देवाः) विद्वान् लोग (हि) ही (देवानाम्) विद्वानों के (व्रता) सत्यभाषणादि उत्तम स्वभावों को (अनु, गुः) अनुकूलता पूर्वक प्राप्त हों वे (अध्वर्य्युभिः) यज्ञ रचने वाले (पञ्चभिः) होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा और सभ्य इन पांच ऋत्विजों और पत्नी यजमानों के साथ वर्त्तमान (सप्त) सात (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (वेः) व्यापक परमेश्वर के (प्रियम्) प्रिय (निहितम्) स्थित (पदम्) प्राप्त करने योग्य स्वरूप की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं वे ही (मदन्ति) आनन्दित होते हैं ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सात ऋत्विज् लोग यज्ञ करके प्रजाओं को सुखी करते हैं वैसे ही उपदेशक विद्वान् लोग सुशील धार्मिक हो के अध्यापन और उपदेश से सब मनुष्यों को आनन्दित करते हैं ॥७॥

फिर भी उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।

दैव्या होतारा प्रथमा न्यृञ्जे सप्त पृक्षासः स्वधया मदन्ति ।
ऋतं शंसन्त ऋतमित्त आहुरनु व्रतं व्रतपा दीध्यानाः ॥८॥

पदार्थः—जो (सप्त) सात (पृक्षासः) कोमल स्वभाव वाले जन (स्वधया) अन्न से (मदन्ति) आनन्द करते हैं (ऋतम्) सत्य की (शंसन्तः) स्तुति करते हैं (ऋतम्) सत्य (व्रतम्) आचरण को (इत्) ही (ते) वे (व्रतपाः) सत्याचरण के रक्षक (दीध्यानाः) विद्यादि सद्गुणों से प्रकाशमान पुरुष (अनु, आहुः) अनुकूल उपदेश करते हैं और (दैव्या) विद्वानों में कुशल (प्रथमा) प्रख्यात (होतारा) विद्या के देने वाले दो विद्वान् अध्यापक उपदेशक भी अनुकूल उपदेश करते हैं उनको मैं (नि) निरन्तर (ऋञ्जे) प्रसिद्ध करूं ॥ ८ ॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग धर्मयुक्त व्यवहार से धन धान्यों को प्राप्त हो सत्य का उपदेश कर उसी का आचरण करके सब को शिक्षा करते हैं वे सत्कार करने योग्य हों ॥ ८ ॥

फिर विद्वान् लोग क्या करते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वृषायन्ते महे अत्याय पूर्वीर्वृष्णे चित्राय रश्मयः सुयामाः ।
देव होतर्मन्द्रतरश्चिकित्वान्महो देवान् रोदसी एह वक्षि ॥९॥

पदार्थः—हे (देव) प्रकाशमान (होतः) सब के लिये सुख देने हारे विद्वान् (मन्द्रतरः) अति आनन्दकारक (चिकित्वान्) चिताने हारे ! आप जैसे (सुयामाः) सुन्दर प्रहर आदि समय वाली (रश्मयः) किरणें (महे) बड़े (अत्याय) सब विद्याओं में व्यापनशील (चित्राय) आश्चर्य स्वभाव वाले (वृष्णे) विद्या के प्रचारक विद्वान् के अर्थ (पूर्वीः) पहिले से वर्त्तमान प्रजाजनों को (वृषायन्ते) बैल के समान उत्साहित करती (रोदसी) सूर्य भूमि प्रकट करती हैं वैसे (इह) इस जगत् में (महः) महान् (देवान्) विद्वानों को (आ, वक्षि) अच्छे प्रकार प्राप्त कराइये ॥ ९ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य की किरणें प्रकाश से वृष्टि द्वारा सब प्रजा को सुखी करती हैं वैसे ही विद्वान् लोग सब प्रजाजनों को विद्वान् कर सुन्दर ज्ञानयुक्त करते हैं ॥९॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः ।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् ! (द्रविणः) प्रशस्त द्रव्य जिस के विद्यमान ऐसे आप (महिना) महिमा से (महे) बड़े सौभाग्य के लिये (पृक्षप्रयजः) शुभ गुण और कोमल भाव से यज्ञ करने हारे (उषसः) प्रभात वेला के तुल्य वर्त्तमान (सुवाचः) सुन्दर सत्य वाणी से युक्त (सुकेतवः) सुन्दर बुद्धि वाले (रेवत्) द्रव्य के समान (ऊषुः) वसें (उतो) और अन्धकार को निवृत्त करते हैं वैसे (पृथिव्याः) भूमि के मध्य में (कृतम्) किया हुआ (एनः) पाप (चित्) शीघ्र आप (सम्, वक्षस्व) सम्यक् नष्ट करो (चित्) और सुन्दर कर्म को प्राप्त करो ॥ १० ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वानो ! तुम लोग प्रभात वेला के तुल्य मनुष्यों के आत्माओं को प्रकाशित कर विज्ञान दे और अधर्माचरण को छुड़ा के सब मनुष्यों को सत्यवादी विद्वान् करो जिससे पृथिवी पर पापाचरण न बढ़े ॥ १० ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इळा॑मग्ने पुरु॒दंसं॑ स॒निं गोः श॑श्वत्त॒मं हव॑मानाय साध ।

स्यान्नः॑ सू॒नुस्तन॑यो वि॒जावाग्ने॒ सा ते॑ सुम॒तिर्भू॑त्व॒स्मे ॥११॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अपने शरीरात्मा के प्रकाश से युक्त विद्वान् ! आप (पुरुदंसम्) बहुत कर्मों वाली (सनिम्) सम्यक् सेवन की हुई (इळाम्) प्रशंसा के योग्य वाणी को (साध) साधो (गोः) पृथिवी के बीच (हवमानाय) ग्रहण करते हुए के अर्थ (शश्वत्तमम्) सदैव वर्त्तमान विज्ञान को सिद्ध करो जिससे (नः) हमारा (विजावा) विशेष कर प्रसिद्ध (तनयः) विद्या और सुख का प्रचार करने हारा (सूनुः) सन्तान (स्यात्) होवे। हे (अग्ने) विद्वन् ! (ते) आप की (सा) वह (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (अस्मे) हमारे लिये (भूतु) हो ॥ ११ ॥

भावार्थः- मनुष्यों को चाहिये कि सदैव विद्यायुक्त वाणी और बुद्धि को प्राप्त हो सन्तानों को उत्तम शिक्षा दे के अनादि रूप सुख को प्राप्त होवें और सदैव सत्यवादी विद्वानों की वृद्धि सर्वत्र फैलावें ॥ ११ ॥

इस सूक्त में अग्नि सूर्य्य और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सातवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः । १ । ८—१० निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ५ । ६ । ११ त्रिष्टुप् । ४ स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ७ स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब तीसरे मण्डल के आठवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्य लोग किस की कामना करें, इस विषय को कहा है ॥

अञ्जन्ति त्वामध्वरे देवयन्तो वनस्पते मधुना दैव्येन ।
यदूर्ध्वस्तिष्ठा द्रविणेह धत्ताद्यद्वा क्षयो मातुरस्या उपस्थे ॥१॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) किरणों के रक्षक सूर्य्य के समान वर्त्तमान तेजस्वी विद्वन् ! (मधुना) (दैव्येन) विद्वानों में हुए कोमल स्वभाव के साथ वर्त्तमान (देवयन्तः) कामना करते हुए विद्वान् (यत्) जिन (त्वाम्) आप को (अध्वरे) पढ़ने पढ़ाने और राज्य पालनादि व्यवहार में (अञ्जन्ति) चाहते हैं। सो आप जिन के बीच (ऊर्ध्वः) श्रेष्ठ गुणों से बढ़े हुए (तिष्ठाः) स्थित हूजिये (वा) और (इह) इस संसार में (द्रविणा) धनों को (धत्तात्) धारण करो (अस्याः) इस (मातुः) मान देने वाली भूमि के (उपस्थे) समीप गोद में (यत्) जो (क्षयः) निवासस्थान है उस को हम लोग भी ग्रहण करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब प्राणी दिन को चाहते हैं वैसे ही उत्तम विद्वान् लोगों को सब मनुष्य चाहें। सब मिल के प्रीति से उत्तम घर और ऐश्वर्य्य की सिद्धि करें ॥ १ ॥

अब कौन मनुष्य कल्याण को प्राप्त होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

समिद्धस्य श्रयमाणः पुरस्ताद्ब्रह्म वन्वानो अजरं सुवीरम् ।
आरे अस्मदमतिं बाधमान उच्छ्रयस्व महते सौभगाय ॥२॥

पदार्थः—हे रश्मिरक्षक सूर्य के समान तेजस्वी विद्वन् ! आप (पुरस्तात्) पहिले से (समिद्धस्य) प्रदीप्त तेजस्वी विद्वान् का (श्रयमाणः) सेवन करते और (अजरम्) अक्षय (सुवीरम्) जिस से उत्तम वीर पुरुष हों ऐसे (ब्रह्म) बड़े धन को (वन्वानः) सेवन करते हुए (अस्मत्) हमारे (आरे) समीप वा दूर में (अमतिम्) अधर्मयुक्त विरुद्ध बुद्धि को (बाधमानः) नष्ट करते हुए (महते) बड़े (सौभगाय) उत्तम ऐश्वर्य्य होने के लिये निरन्तर (उत्, श्रयस्व) अच्छे प्रकार सेवन करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में पूर्व मन्त्र से 'वनस्पते' इस पद की अनुवृत्ति आती है। जो मनुष्य अच्छी शिक्षा से कुबुद्धि का निवारण करते और धनादि ऐश्वर्य के साथ सुशिक्षा विद्या और धर्म का प्रचार करते हुए सब के कल्याण की इच्छा करें वे सदैव कल्याण भागी होवें ॥ २ ॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उच्छ्रयस्व वनस्पते वर्ष्मन् पृथिव्या अधि ।
सुमिती मीयमानो वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥३॥

पदार्थः—हे (वर्ष्मन्) श्रेष्ठ गुणों के प्रचारक (वनस्पते) सेवने योग्य धन के रक्षक विद्वान् ! आप (पृथिव्याः) भूमि के (अधि) ऊपर स्तम्भ के तुल्य (उत्, श्रयस्व) ऊँचे हूजिये (मीयमानः) सत्कार किये हुए (सुमती) सुन्दर बुद्धि से (यज्ञवाहसे) पढ़ने पढ़ाने आदि यज्ञ के प्राप्त कराने हारे विद्यार्थी के लिये (वर्चः) पढ़ने रूप तेज को (धाः) धारण कीजिये ॥३ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वड़ आदि वनस्पति जड़ स्कन्ध डाली आदि से वढ़ते हैं वैसे ही पुरुषार्थ के साथ विद्याओं का प्रचार कर मनुष्यों को वढ़ाना चाहिये ॥ ३ ॥

फिर कैसा विद्वान् हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

युवा सुवासाः परिवीत आगात्स उ श्रेयान्भवति जायमानः ।
तं धीरासः कवय उन्नयन्ति स्वाध्यो॒ मनसा देवयन्तः ॥४॥

पदार्थः—जो आठ वर्ष से लेकर ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्या ग्रहण किये (युवा) युवावस्था को प्राप्त (सुवासाः) सुन्दर वस्त्रों को धारण किये (परिवीतः) और सब ओर से विद्या में व्याप्त हुए ब्रह्मचर्य से पर को (आ, अगात्) आवे (स, उ) वही विद्या में (जायमानः) प्रसिद्ध हुआ (श्रेयान्) अति प्रशस्त (भवति) होता है (तम्) उसको (देवयन्तः) कामना करते हुए (धीरासः) बुद्धिमान् (स्वाध्यः) सुन्दर विद्या का आधान करने वाले (कवयः) सर्वोत्तम विद्वान् लोग (मनसा) विज्ञान वा अन्तःकरण से (उत्, नयन्ति) उन्नत करते उत्तम मानते हैं ॥ ४ ॥

भावार्थः—कोई भी मनुष्य विद्या की उत्तम शिक्षा और ब्रह्मचर्य्य सेवन के विना दीर्घायु और सभा के योग्य विद्वान् नहीं हो सकता और न वह मनुष्य कहीं सत्कार पाने योग्य होता है जिस मनुष्य की धार्मिक विद्वान् प्रशंसा करते हैं वही विद्वान् है ॥ ४ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्द्धमानः ।
पुनन्ति धीरा अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्त्ति वाचम् ॥५॥

पदार्थः—जो (समर्ये) युद्ध में शूरवीर पुरुष के समान (अह्नाम्) दिनों के (सुदिनत्वे) सुन्दर दिनों के होने में (विदथे) विज्ञान सम्बन्धी व्यवहार में (जातः) प्रसिद्ध (वर्द्धमानः) बढ़ता हुआ (जायते) उत्पन्न होता है। जो (मनीषा) बुद्धि से (अपसः) कर्मों को करता हुआ (देवयाः) विद्वानों का पूजन करने वाला नियतात्मा (विप्रः) समस्त विद्याओं से युक्त बुद्धिमान् जन (वाचम्) शुद्ध वाणी को (उत्, इयर्त्ति) प्राप्त होता है उस को (धीराः) बुद्धिमान् जन (आ, पुनन्ति) अच्छे प्रकार पवित्र करते हैं॥ ५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। उन्हीं का सुदिन होता है जो विद्या और उत्तम शिक्षा का संग्रह कर विद्वान् होते हैं। जैसे शूरवीर पुरुष दुष्टों को जीत के धनादि ऐश्वर्य्य के साथ सब ओर से बढ़ते हैं वैसे ही विद्या से विद्वान् बढ़ते हैं॥ ५॥

मनुष्यों को किनका ग्रहण वा त्याग करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

यान्वो नरो देवयन्तो निमिम्युर्वनस्पते स्वधितिर्वा ततक्ष।
ते देवासः स्वरवस्तस्थिवांसः प्रजावदस्मे दिधिषन्तु रत्नम्॥६॥

पदार्थः—हे (नरः) नायक लोगो! (यान्, वः) जिन तुम को (देवयन्तः) कामना करते हुए जन (निमिम्युः) निरन्तर मान करें (ते) वे (स्वरवः) अपने विद्याबोधक शब्दों से युक्त (तस्थिवांसः) स्थिर बुद्धि वाले (देवासः) आप विद्वान् लोग (अस्मे) हमारे (प्रजावत्) प्रजावान् (रत्नम्) धन का (दिधिषन्तु) उपदेश करें। (वा) अथवा हे (वनस्पते) वनों के रक्षक पुरुष! जैसे (स्वधितिः) वज्र मेघ को (ततक्ष) काटता है वैसे आप दुष्टता को काटो॥ ६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जिनके सङ्ग से अन्य जन सभ्य विद्वान् हों उन्हीं का सङ्ग तुम लोग भी करो। जिनके समागम से दुर्व्यसन बढ़ें उनको सब लोग त्याग देवें॥६॥

अब विद्या से क्या होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

ये वृक्णासो अधि क्षमि निमितासो यतस्रुचः।
ते नो व्यन्तु वार्य्यं देवत्रा क्षेत्रसाधसः॥७॥

पदार्थः—(ये) जो (वृक्णासः) अविद्या से पृथक् हुए (निमितासः) सदैव सत्य सत्य ज्ञान वाले (यतस्रुचः) जिन्होंने यज्ञ-साधन नियत किया और (क्षमि) (अधि)

पृथिवी पर वर्त्तमान हैं (ते) वे (देवत्रा) विद्वानों में (क्षेत्रसाधसः) खेतों को साधने वाले (नः) हमारे (वार्य्यम्) स्वीकार के योग्य ज्ञान को (व्यन्तु) प्राप्त हों ॥७॥

भावार्थः—जैसे कुल्हाड़े से काटे हुए वृक्ष फिर नहीं जमते वैसे ही विद्या से नष्ट हुई अविद्या नहीं बढ़ती ॥७॥

फिर उसी अहिंसाधर्म की उन्नति के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आदित्या रुद्रा वसवः सुनीथा द्यावाक्षामा पृथिवी अन्तरिक्षम् ।
सजोषसो यज्ञमवन्तु देवा ऊर्ध्वं कृण्वन्त्वध्वरस्य केतुम् ॥८॥

पदार्थः – हे मनुष्यो ! जैसे (आदित्याः) बारह मास (रुद्राः) प्राण (वसवः) पृथिवी आदि (पृथिवी) विस्तारयुक्त (द्यावाक्षामा) सूर्य्य और भूमि तथा (अन्तरिक्षम्) आकाश ये सब (सजोषसः) सबके साथ समान प्रीति के सेवक (सुनीथाः) सुन्दर सङ्गति को प्राप्त (यज्ञम्) यज्ञ को (वर्द्धयन्ति) बढ़ाते हैं वैसे (सजोषसः) समान प्रीति वाले (देवाः) कामना करते हुए विद्वान् यज्ञ की (अवन्तु) रक्षा करें (अध्वरस्य) रक्षा योग्य धर्म की (केतुम्) बुद्धि को (ऊर्ध्वम्) उत्तेजित (कृण्वन्तु) करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे विद्वानो ! जैसे महीने प्राण और पृथिवी आदि पदार्थ अविरुद्धता के साथ वर्त्तमान रहते हैं, वैसे ही सबको सबके साथ प्रीति उत्पन्न कर विज्ञान बढ़ा के अहिंसाधर्म की उन्नति करनी चाहिये ॥८॥

फिर कौन पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

हंसाइव श्रेणिशो यतानाः शुक्रा वसानाः स्वरवो न आगुः ।
उन्नीयमानाः कविभिः पुरस्ताद्देवा देवानामपि यन्ति पाथः ॥९॥

पदार्थः—जो (देवाः) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले पण्डित लोग (श्रेणिशः) पङ्क्ति बाँधे (यतानाः) यत्न करते और (शुक्राः) जलों को (वसानाः) आच्छादन करते हुए (स्वरवः) सुन्दर स्वरों का सेवन करने हारे (हंसाइव) हंसों के तुल्य दर्शनीय (नः) हमको (उन्नीयमानाः) उत्तम गुणों को प्राप्त कराते हुए (पुरस्तात्) पहिले से (कविभिः) बुद्धिमानों के साथ वर्त्तमान (देवानाम्) विद्वानों के (पाथः) मार्ग को (अपि, यन्ति) चलते हैं वे भी हमको (आ, अगुः) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो हंसों के तुल्य मिल के प्रयत्न से सब की उन्नति कर अपने आप उन्नति को प्राप्त हुए आप्त

सत्यवादियों के मार्ग में चल के पराक्रम वढ़ाते हैं वे ही पूर्ण सुख को भोगते हैं ॥६॥

अब कौन विद्वान् जन सत्कार पाते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**शृङ्गाणीवेच्छृङ्गिणां सं ददृश्रे चषालवन्तः स्वरवः पृथिव्याम् ।**
**वाघद्भिर्वा विहवे श्रोषमाणा अस्माँ अवन्तु पृतनाज्येषु ॥१०॥**

पदार्थः—जो (चषालवन्तः) वहुत भोगों वाले (स्वरवः) प्रशंसक लोग (विहवे) विशेष कर जहाँ पठन पाठनादि का शब्द करते उस स्थान में (श्रोषमाणाः) सुनते हुए (वाघद्भिः) ऋत्विजों के साथ वर्त्तमान (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (शृङ्गिणाम्) भैंसा आदि के (शृङ्गाणीव) सींगों के तुल्य (सं ददृश्रे) सम्यक् दीख पड़ते हैं वे (इव) ही (पृतनाज्येषु) संग्रामों (वा) अथवा अन्य व्यवहारों में (अस्मान्) हम को (अवन्तु) रक्षित करें ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो वहुश्रुत विद्वान् लोग अपने आत्मा के तुल्य सवकी रक्षा करते हैं वे उत्तम कीर्त्ति से श्रेष्ठाङ्ग मस्तक में वर्त्तमान सव पशुओं के सींगों के तुल्य उत्तम पद को प्राप्त होकर संसार में स्तुति किये हुए सव के सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

अव ब्रह्मचर्य्य के अनुष्ठान से क्या होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**वनस्पते शतवल्शो वि रोह सहस्रवल्शा वि वयं रुहेम ।**
**यं त्वामयं स्वधितिस्तेजमानः प्रणिनाय महते सौभगाय ॥११॥**

पदार्थः—हे (वनस्पते) वनस्पति के समान वर्त्तमान परोपकारी सज्जन ! जैसे (शतवल्शः) सैकड़ों अंकुर वाला वांस आदि वृक्ष विशेष वढ़ता है वैसे आप (वि, रोह) वृद्धि को प्राप्त हूजिये और सुख को (प्रणिनाय) उत्तम प्रकार से प्राप्त कीजिये । जैसे (सहस्रवल्शाः) हजारों अंकुर वाले वनस्पतियों के तुल्य सांगोपांग वर्त्तमान दूर्वा आदि वढ़ते हैं वैसे ही (वयम्) हम लोग (वि, रुहेम) विशेष कर वढ़ें। जैसे (अयम्) यह (तेजमानः) तीक्ष्ण किया (स्वधितिः) वज्ररूप विद्युत् अग्नि (महते) वड़े (सौभगाय) सुन्दर धन होने के लिये (यम्) जिस (त्वाम्) आप को वढ़ाता है वैसे हम लोग भी वढ़ावें ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य विद्या सुशिक्षा धर्म और पुरुषार्थों से युक्त हुए कार्य्यसिद्धि के अर्थ प्रयत्न करते हैं वे वांस आदि वृक्षों के तुल्य सव ओर से वढ़ते हैं। जैसे

सुन्दर तीक्ष्ण शस्त्रों से शत्रुओं को जीत के अजातशत्रु होते हैं उनको जैसे विद्युत् मेघ को वैसे शत्रु दलों को जलाने को समर्थ हो के महान् ऐश्वर्य्य को उत्पन्न करें ॥११॥

इस सूक्त में विद्वान् वेदपाठी और ब्रह्मचारी के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ।

यह आठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ४ बृहती । २ । ५—७ निचृद्बृहती । ३ । ८ विराट् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ९ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले नवमें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को अहिंसा धर्म का ग्रहण करना चाहिये इस विषय को कहा है ॥

सखायस्त्वा ववृमहे देवं मर्त्तास ऊतये ।
अपां नपातं सुभगं सुदीदितिं सुप्रतूर्त्तिमनेहसम् ॥१॥

पदार्थः—हे उपदेशक सज्जन ! (मर्त्तासः) मननशील (सखायः) मित्र हुए हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (अपाम्) प्राणों के बीच (नपातम्) आत्मभाव से नाशरहित (अनेहसम्) न मारने हारे (सुप्रतूर्त्तिम्) सुन्दर शीघ्रतायुक्त (सुदीदितिम्) विद्या और विनय के प्रकाश से युक्त (सुभगम्) उत्तम ऐश्वर्य्य वाले (देवम्) विद्वान् (त्वा) आप को (ववृमहे) स्वीकार करें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्यादि सौभाग्य जानने के लिये मित्रभाव का आश्रय कर और आप्त सत्य वक्ता विद्वान् के शरण को प्राप्त हो के अहिंसाधर्म का संग्रह करें ॥१॥

विद्यार्थी किस को पाकर सुखी होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कायमानो वना त्वं यन्मातॄरजगन्नपः ।
न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्त्तनं यद्दूरे सन्निहाभवः ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) शुभ गुणों से प्रकाशमान सज्जन ! (कायमानः) पढ़ाते वा उपदेश करते (सन्) हुए (त्वम्) आप (यत्) जिससे (मातॄः) माताओं के तुल्य रक्षक वा प्रिय (अपः) प्राणों को (अजगन्) प्राप्त होवें । और (यत्) जिससे

(निवर्त्तनम्) अन्यायाचरण से पृथक् होने को (दूरे) दूर फेंकिये और मंगल के अर्थ (इह) यहां (अभवः) हूजिये (तत्) इस से (ते) आप से मैं (वना) मांगने योग्य पदार्थों को (प्रमृषे) सुखों से संयुक्त करूं और मुझ से आप दूर न हूजिये ॥२॥

भावार्थः—जैसे प्यासा जन जल को पा के तृप्त होता वैसे ही आप्त अध्यापक और उपदेशक को विद्यार्थी जन प्राप्त हो के सब ओर से सुखी होता है ॥२॥

अब कौन मनुष्य जगत् में पूज्य होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अति॑ तृ॒ष्टं व॑वक्षि॒थाथै॒व सु॒मना॑ असि ।

प्रप्रा॒न्ये यन्ति॒ पर्य॒न्य आ॑सते॒ येषां॑ स॒ख्ये असि॑ श्रि॒तः ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् जन ! जिस कारण आप (तृष्टम्) प्यासे को (ववक्षिथ) प्राप्त करना चाहते (अथ) अथवा (सुमनाः) प्रसन्नचित्त (एव) ही (असि) हैं तथा (येषाम्) जिनकी (सख्ये) मित्रता वा मित्र कर्म में आप (श्रितः) संयुक्त (असि) हैं उन में से (अन्ये) अन्य लोग (प्रप्र, अति, यन्ति) विशेष कर अत्यन्त प्राप्त होते तथा (अन्ये) अन्य लोग (परि, आसते) सब ओर से बैठते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो लोग मित्र भाव से प्यासे के लिये जल के तुल्य विद्या चाहने वाले के अर्थ विद्या देकर प्रसन्नरूप करते हैं वे ही जगत् में पूज्य होते हैं ॥३॥

फिर पाखण्डी लोग कैसे दूर होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ई॒यि॒वांस॒मति॒ स्रिधः॒ शश्व॑तीरति॒ स॒श्चतः॑ ।

अन्वी॑मविन्दन्निचि॒रासो॑ अ॒द्रुहो॑ऽ॒प्सु सिं॒हमि॑व श्रि॒तम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (अति, स्रिधः) अतिसहनशील (शश्वतीः) सनातन (अति, सश्चतः) अत्यन्त आपस में मिले हुए (निचिरासः) निश्चय से प्राचीन (अद्रुहः) द्रोहरहित प्रजाजन (ईयिवांसम्) प्राप्त होते हुए (अप्सु) जलों में (श्रितम्) आश्रित (सिंहमिव) सिंह के तुल्य (ईम्, अनु, अविन्दन्) सब ओर से अनुकूल प्राप्त हों उनको तुम लोग सुख भोगने वाले जानो ॥४॥

भावार्थः—जैसे सिंह को देख के हरिण आदि भाग जाते हैं वैसे ही सुशिक्षायुक्त विद्वान् प्रजाजनों को देखकर पाखण्डी लोग नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं ॥४॥

फिर आत्मज्ञान विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ससृवांसमिव त्मनाऽग्निमित्था तिरोहितम् ।
ऐनं नयन्मातरिश्वा परावतो देवेभ्यो मथितं परि ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (मातरिश्वा) वायु (परावतः) दूर देश से (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (मथितम्) मन्थन किये (तिरोहितम्) परिच्छिन्न (अग्निम्) अग्नि को (ससृवांसमिव) प्राप्त होते हुए मनुष्य के समान (परि, आ, नयत्) सब ओर से सब प्रकार प्राप्त कराता है (इत्था) इस प्रकार उस (एनम्) अग्नि को (त्मना) आत्मा से तुम लोग विशेष कर जानो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। हे मनुष्यो ! जैसे प्रयत्न के साथ मन्थन आदि से उत्पन्न हुए अग्नि को वायु बढ़ाता और दूर पहुँचाता है तथा अग्नि प्राप्त हुए पदार्थों को जलाता है और दूरस्थ पदार्थों को नहीं जलाता। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य्य, विद्या, योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान और सत्पुरुषों के सङ्ग से साक्षात् किया आत्मा और परमात्मा सब दोषों को जला के सुन्दर प्रकाशित ज्ञान को प्रकट करता है ॥ ५ ॥

फिर उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तन्त्वा मर्त्ता अगृभ्णत देवेभ्यो हव्यवाहन ।
विश्वान्यद्यज्ञाँ अभिपासि मानुष तव क्रत्वा यविष्ठ्य ॥६॥

पदार्थः—हे (मानुष) मननशील (हव्यवाहन) ग्रहण करने योग्य शास्त्रीय युक्तियुक्त वचनों को प्राप्त कराने हारे (यविष्ठ्य) अत्यन्त ब्रह्मचर्य और विद्या के अभ्यास से युवावस्था को प्राप्त उपदेशक विद्वन् ! (यत्) जो आप (विश्वान्) समस्त (यज्ञान्) विद्यादि के प्रापक व्यवहारों की (अभि, पासि) सब ओर से रक्षा करते हैं उन (तव) आपकी (क्रत्वा) बुद्धि से (मर्त्ताः) मरण धर्म वाले मनुष्य (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (तम्) उन (त्वा) आपको (अगृभ्णत) ग्रहण करें ॥ ६ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस के उपदेश से वुद्धि को प्राप्त होकर समग्र सुखों को आप लोग प्राप्त होवें उस का सब ओर से सत्कार करो ॥ ६ ॥

फिर मनुष्य कैसे सब भय से रहित होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तद्भद्रं तव दंसना पाकाय चिच्छदयति ।
त्वां यदग्ने पशवः समासते समिद्धमपिशर्वरे ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि ! (यत्) जो मनुष्य (अपिशर्वरे) निश्चित अन्धकार रूप रात्रि में भी (समिद्धम्) प्रज्वलित अग्नि के निकट जैसे (पशवः) गौ आदि पशु शीत निवारणार्थ वैसे (त्वाम्) आप के निकट (समासते) बैठते हैं उनके (पाकाय) परिपक्व दृढ़ होने के लिये अग्नि के (चित्) तुल्य (तत्) उस (भद्रम्) कल्याणकारक बुद्धि से उत्पन्न ज्ञान को (तव) आपका (दंसना) दर्शन शास्त्र (छदयति) बढ़ाता है ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे वन में अग्नि के चारों ओर स्थित हुए पशु सिंह आदि से रक्षित होते हैं, वैसे ही विद्वानों के ज्ञान का आश्रय मनुष्यों की सब ओर के भय से रक्षा करता है ॥ ७ ॥

फिर ईश्वर का ही ध्यान करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ जुहोत स्वध्वरं शीरं पावकशोचिषम् ।
आशुं दूतमजिरं प्रत्नमीड्यं श्रुष्टी देवं सपर्यत ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! तुम लोग जैसे (स्वध्वरम्) हिंसा न करने योग्य (शीरम्) विद्युत् रूप से सब जगह भरे हुए (पावकशोचिषम्) शुद्ध प्रकाश वाले (आशुम्) शीघ्रगामी (दूतम्) दूत के तुल्य देशान्तर में समाचार पहुँचाने वाले (अजिरम्) फेंकने हारे (प्रत्नम्) प्राचीन (ईड्यम्) खोजने योग्य विद्युत् रूप अग्नि का (आ, जुहोत) अच्छे प्रकार ग्रहण करो, वैसे ही स्वयं प्रकाशरूप सर्वत्र व्यापक (देवम्) उत्तम गुणकर्मस्वभावयुक्त सब आनन्द देने वाले परमात्मा की (श्रुष्टी) शीघ्र (सपर्यत) सेवा करो ॥ ८ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो बिजुली के तुल्य व्यापक स्वयं प्रकाशरूप अविद्यादि दोषों का नाश करने वाला सनातन अनादि काल से प्रशंसा करने योग्य परमात्मा है उसी का नित्य ध्यान करो ॥ ८ ॥

फिर अग्नि क्या करता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्य्यन् ।
औक्षन् घृतैरस्तृणन् बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जिस (अग्निम्) अग्नि को (त्रीणि) तीन (शता) सैकड़े (त्री) तीन (सहस्राणि) हजार तत्व (च) और (त्रिंशत्) पृथिवी आदि तीस तथा तीन तेंतीस (च) और (नव) नौ हिरण्यगर्भादि (देवाः) दिव्य गुण वाले पदार्थ (असपर्यन्) सेवन करते (घृतैः) जलों से (औक्षन्) सींचते (अस्मै) इस अग्नि के लिये (बर्हिः) पदार्थ वृद्धि का (अस्तृणन्) विस्तार करते उस (आत्) विद्याप्राप्ति के पश्चात् (होतारम्) आदर करने वाले कार्यसाधक (इत्) को ही तुम लोग (नि, असादयन्त) कार्य्यों में निरन्तर युक्त करो ॥ ९ ॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसके आश्रय में तेंतीस हजार तीन सौ वयालीस तत्व हैं, जो एक सब को विद्युत् रूप से व्याप्त है, उस अग्नि के आश्रय से आप लोग सब कार्य्य सिद्ध करो ॥ ९ ॥

इस सूक्त में अग्नि और मनुष्यादि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह नवमां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ५ । ८ विराडुष्णिक् । ३ उष्णिक् । ४ । ६ । ७ । ९ निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ भुरिग् गायत्री छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ नौ ऋचा वाले दशमें सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र में ईश्वर क्या करता है इस विषय को कहते हैं ॥

त्वामग्ने मनीषिणः सम्राजं चर्षणीनाम् ।
देवं मर्त्तास इन्धते समध्वरे ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) स्वयं प्रकाशरूप जगदीश्वर ! (मनीषिणः) मननशील (मर्त्तासः) मनुष्य जिन (चर्षणीनाम्) मनुष्यादि प्रजाओं के (सम्राजम्) सम्यक् न्यायाधीश राजा (देवम्) सब सुख देने वाले (त्वाम्) आप को (अध्वरे) रक्षणीय धर्मयुक्त व्यवहार में (सम्, इन्धते) सम्यक् प्रकाशित करते हैं । उन्हीं आप की हम भी उपासना करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि सूर्य्यादि रूप से सब जगत् को प्रकाशित और उपकृत कर आनन्दित करता है वैसे ही परमात्मा अन्तर्यामी रूप से जिज्ञासु योगी लोगों के आत्माओं को विशेष और सामान्य से सब के आत्माओं को प्रकाशित कर और जगत् के असंख्य पदार्थों से उपकृत कर इस लोक परलोक के सुख देने से सदैव सुखी करता है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वां य॒ज्ञेष्वृ॒त्विज॒मग्ने॒ होता॑रमीळते ।
गो॒पा ऋ॒तस्य॑ दीदिहि॒ स्वे दमे॑ ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अविद्यादि दोषों के नाशक जगदीश्वर ! जो (ऋतस्य) सत्य के (गोपाः) रक्षक विद्वान् लोग (यज्ञेषु) अच्छे व्यवहारों वा यज्ञों में (ऋत्विजम्) ऋत्विज् के तुल्य सुखसाधक (होतारम्) सब के धारण करने हारे (त्वाम्) आप की (ईळते) स्तुति करते हैं सो आप (स्वे) अपने (दमे) नियमरूप व्यवहार में उन विद्वानों को (दीदिहि) विज्ञान दान दीजिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग सत्य भाषणादि धर्म का अनुष्ठान कर और असत्य भाषणादि रूप अधर्म को छोड़ के आप का भजन करते हैं वे आप को प्राप्त होके सदा आनन्दित हुए इस संसार में वसते हैं ॥२॥

अब मनुष्य कैसे सुखों को प्राप्त हों, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स घा॒ यस्ते॒ ददा॑शति स॒मिधा॑ जा॒तवे॑दसे ।
सो अ॑ग्ने धत्ते सु॒वीर्य्यं॒ स पु॑ष्यति ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सब के प्रकाशक जन ! (यः) जो (समिधा) सम्यक् प्रकाशक इन्धन वा सुन्दर विज्ञान से (जातवेदसे) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान वा वृद्धि को प्राप्त हुए (ते) आप के लिये आत्मा अपने स्वरूप को (ददाशति) देता प्राप्त कराता है (सः, घ) वही (सुवीर्य्यम्) सुन्दर विज्ञानादि धन वा पराक्रम को (धत्ते) धारण करता (सः) वह (पुष्यति) सब ओर से पुष्ट होता और (सः) वह दूसरों को पुष्ट करता है ॥३॥

भावार्थः—जैसे प्राणी अग्नि में घृतादि उत्तम द्रव्य का होम कर वायु आदि की शुद्धि होने से सब आनन्द को प्राप्त होते हैं वैसे ही विद्वान्

लोग परमात्मा में अपने आत्मा का समर्पण कर समस्त सुखों को प्राप्त होते हैं ॥३॥

अब उपदेशक का कर्त्तव्य कहते हैं ।

स केतुरध्वराणामग्निर्देवेभिरागमत् ।
अञ्जानः सप्त होतृभिर्हविष्मते ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे (सः) वह (केतुः) ध्वजा के तुल्य प्रज्ञापक (अञ्जानः) दिव्य गुणों को प्रकट करता हुआ प्रसिद्ध (अग्निः) अग्नि (देवेभिः) दिव्य गुणों वाले पदार्थों के तुल्य विद्वानों और (होतृभिः) ग्रहण करने हारे (सप्त) पांच प्राण मन और बुद्धि के साथ (अध्वराणाम्) अहिंसारूप यज्ञों के सम्बन्धी (हविष्मते) प्रशस्त देने योग्य पदार्थों वाले जन के लिये (आ, अगमत्) आवे प्राप्त होवे अर्थात् अग्निविद्यायुक्त होवे वैसे तू प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे विज्ञान कर सम्यक् सेवन किया अग्नि दिव्य गुणों को देता है, वैसे ही सेवन किये आप्त विद्वान् जन अहिंसादि रूप धर्म को जता कर श्रोताओं के लिये दिव्य सुखों को देते हैं ॥४॥

अब अध्यापक और विद्वान् के कर्त्तव्य को कहते हैं ॥

प्र होत्रे पूर्व्यं वचोऽग्नये भरता बृहत् ।
विपां ज्योतींषि बिभ्रते न वेधसे ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वज्जनो ! (होत्रे) ग्रहण करने वाले (अग्नये) अग्नि के (न) समान (विपाम्) उत्तम बुद्धि वालों के (ज्योतींषि) विद्यारूप तेजों को (बिभ्रते) धारण करते हुए (वेधसे) बुद्धिमान् के लिये (बृहत्) महत् प्रयोजन वाले (पूर्व्यम्) प्राचीन विद्वानों से उपदेश किये हुए (वचः) वचन को (प्र, भरत) उपदेश कीजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे यज्ञ करने वाले यज्ञ के लिये घृत आदि पदार्थों से उत्तम प्रकार पूर्वक पकाये हुए अन्नों से अग्नि की वृद्धि करते हैं वैसे ही अध्यापक पुरुष अङ्ग और उपाङ्गों के सहित सम्पूर्ण विद्याओं के प्रचार से विद्यार्थी और श्रोतृजनों को तृप्त करें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निं वर्द्धन्तु नो गिरो यतो जायत उक्थ्यः ।
महे वाजाय द्रविणाय दर्शतः ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वज्जनो ! आप लोग जैसे समिधों से (अग्निम्) अग्नि बढ़ता है वैसे (नः) हम लोगों की (गिरः) उत्तम प्रकार से शिक्षित वाणियों को (वर्धन्तु) वृद्धि करें (यतः) जिस से (महे) श्रेष्ठ (वाजाय) विज्ञान और (द्रविणाय) ऐश्वर्य के लिये (दर्शतः) देखते और (उक्थ्यः) प्रशंसा करने योग्य विद्वान् पुरुष (जायते) प्रकट होता है ॥६॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। अध्यापक और उपदेशक पुरुषों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिस से कि पढ़ने और सुनने वाले जनों की उत्तम शिक्षा विद्या और सभ्यता वढ़े और वे धनवान् होवें ॥६॥

फिर विद्वान् के कृत्य को कहते हैं ॥

अग्ने यजिष्ठो अध्वरे देवान् देवयते यज ।
होता मन्द्रो वि राजस्यति स्रिधः ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान (होता) देने हारे (मन्द्रः) प्रसन्न करने तथा (यजिष्ठः) अतिशय यज्ञ करने वाले ! आप (अध्वरे) अहिंसारूप यज्ञ में (देवयते) दिव्य गुण कर्म स्वभावों की कामना करने वाले के लिये (देवान्) उत्तम गुणों को (यज) संयुक्त कीजिये जिस से (अति) (स्रिधः) विद्या आदि उत्तम व्यवहार के विरोधी पुरुषों को उत्तम अधिकारों से पृथक् करके (वि) (राजसि) अत्यन्त प्रकाशित होते हो इस से उत्तम सत्कार करने योग्य हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि उत्तम प्रकार से यन्त्रों में संयुक्त किया हुआ शिल्पविद्या आदि व्यवहारों की सिद्धि करके दारिद्र्य का नाश करता है वैसे ही पूजित हुए विद्वान् पुरुष विद्या का प्रचार करके अविद्या आदि दुष्ट स्वभावों का नाश करते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स नः पावक दीदिहि द्युमदस्मे सुवीर्य्यम् ।
भवा स्तोतृभ्यो अन्तमः स्वस्तये ॥८॥

पदार्थः—हे (पावक) अग्नि के तुल्य पवित्रकारक विद्वान् पुरुष ! आप (स्तोतृभ्यः) विद्याओं के प्रचार करने वाले (अस्मे) हम लोगों को (द्युमत्) प्रशंसा करने योग्य सद्विद्या के विज्ञान से युक्त (सुवीर्य्यम्) श्रेष्ठ धन दीजिये (सः) वह आप (नः) हम लोगों को (दीदिहि) प्रकाशित करो (स्वस्तये) सुख प्राप्ति के लिये (अन्तमः) समीप में वर्त्तमान (भव) हूजिये ॥८॥

भावार्थः—विद्वज्जन जो कि स्वयं पवित्र हैं उन को चाहिये कि औरों को भी विद्या और उत्तम शिक्षा से पवित्र करें, जिस से सम्पूर्ण पुरुष मित्र होकर सुख करने के लिये समर्थ हों ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तन्त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥९॥

पदार्थः—हे सत्य कहने वाले विद्वान् पुरुष ! जो लोग (जागृवांसः) अविद्यारूप निद्रा से उठे विद्या में जागते हुए और (विपन्यवः) विशेष प्रकार से प्रशंसा किये गये (विप्राः) बुद्धिमान् जन (तम्) उन सम्पूर्ण विद्याओं के प्रकाश करने वाले वक्ता (हव्यवाहम्) देने के योग्य विज्ञान के दाता (अमर्त्यम्) मनुष्य के स्वभाव से रहित होने से देवता स्वभाव वाले (सहोवृधम्) वल से वढ़ते वा बल को वढ़ाने वाले (त्वा) आप को (सम्, इन्धते) प्रकाशित करते हैं उन को आप सब ओर से शुभ गुणों के साथ प्रकाशित कीजिये ॥९॥

भावार्थः—विद्वान् ही लोग विद्वानों के परिश्रम को जान सकते हैं अन्य जन नहीं, इस से विद्वज्जन विद्वान् पुरुषों ही का सत्कार करें मूर्खों का नहीं ॥९॥

इस सूक्त में अग्नि, परमात्मा और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह दशवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ । ५ । ७ । ८ निचृद्गायत्री । ३ । ९ विराड् गायत्री । ४ । ६ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब ग्यारहवें सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र से अग्न्यादि के दृष्टान्त से विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को कहा है ॥

अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः । स वेद यज्ञमानुषक् ॥१॥

पदार्थः—जो मनुष्य (अध्वरस्य) जिस में हिंसा न हो ऐसे कर्म का (विचर्षणिः) प्रकाशकर्त्ता (होता) दानकारक (पुरोहितः) सब जीवों के हित करने वाले (अग्निः) अग्नि के सदृश होता है (सः) वह (आनुषक्) अनुकूलता से वर्त्तता हुआ (यज्ञम्) विधि यज्ञादि कर्म को (वेद) जानता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष ब्रह्मचर्य और विद्या आदि उत्तम गुणों के ग्रहण करने में तत्पर होते हैं वे ही अग्नि आदि पदार्थों को जान कर अर्थात् शिल्पविद्या में निपुण हो कर संसार में प्रशंसा होने योग्य कर्म करने वाले होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स हव्यवाळमर्त्य उशिग्दूतश्चनोहितः । अग्निर्धिया समृण्वति ॥२॥

पदार्थः—जो पुरुष (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (हव्यवाट्) ग्रहण करने योग्य हवन सामग्री को प्राप्त (अमर्त्यः) मरणरूप धर्म से रहित (उशिक्) कामना करता हुआ (दूतः) अविद्या आदि से पृथक् दूर विद्या को प्राप्त कराने वाला (चनोहितः) अन्नादिकों में वृद्धिरूप हित कर्म करने वाला विद्वान् पुरुष (धिया) सुकर्म से वा उत्तम बुद्धि से (सम्) (ऋण्वति) चलता वा श्रेष्ठ बुद्धियुक्त होकर उन कर्मों को जानता है (सः) वही पुरुष हम लोगों को शिक्षा कर सकता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि अपने व्यापार से दूत के सदृश कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही विद्वान् लोग राज्य के कार्य्य आदिकों को सिद्ध कर सकते हैं ॥२॥

मनुष्यों को किन का सेवन करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निर्धिया स चेतति केतुर्यज्ञस्य पूर्व्यः । अर्थं ह्यस्य तरणि ॥३॥

पदार्थः—जो विद्वान् पुरुष (अग्निः) अग्नि के सदृश तेजस्वी (केतुः) उपदेश द्वारा बुद्धि का प्रकाश करने तथा (तरणि) सद्विद्या से दुःख का छुड़ाने वाला (पूर्व्यः) प्राचीन विद्वानों में चतुर (धिया) कर्म से वा बुद्धि से (हि) जिस कारण से (अस्य) इस (यज्ञस्य) विद्वानों के सत्काररूप व्यवहार के (अर्थम्) प्रयोजन को (चेतति) उत्तम प्रकार जानता वा अन्यों को जनाता है इस से (सः) वह सेवा करने योग्य है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो पुरुष विद्यारूप यज्ञ को उत्तम प्रकार से जानते हैं, उन्हीं पुरुषों की विद्या की उन्नति होने के लिये सेवा करो ॥३॥

अब सन्तानों की शिक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒ग्निं सू॒नुं सन॑श्रुतं॒ सह॑सो जा॒तवे॑दसम् । वह्निं॑ दे॒वा अ॑कृण्वत ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! स्वयं (देवाः) विद्वान् हुए आप लोग (सहसः) प्रशंसा करने योग्य विद्या बल वाले के (सूनुम्) पुत्र के सदृश सेवा करने (वह्निम्) अच्छे ही गुणों को धारण करने और (सनश्रुतम्) सनातन शास्त्रों को श्रवण करने वाले (जातवेदसम्) विद्या से युक्त जिज्ञासु को (अग्निम्) अग्नि के समान तेजस्वी (अकृण्वत) करो ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को चाहिये कि अपने पुत्रों के सदृश और लोगों के पुत्रों को समझ कर स्नेह से विद्यायुक्त और बहुत शास्त्रों को सुनने वाले अर्थात् जिन्होंने बहुत शास्त्र सुने हों ऐसे करके आनन्द सहित करें ॥४॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अदा॑भ्यः पुरए॒ता वि॒शाम॒ग्निर्मा॑नु॒षीणा॑म् ।
तूर्णी॒ रथः॒ सदा॒ नवः॑ ॥५॥

पदार्थः—विद्वान् पुरुष (तूर्णिः) शीघ्र चलने वाला और (नवः) नवीन (रथः) उत्तम सवारी और (अग्निः) अग्नि के सदृश प्रकाशित (मानुषीणाम्) मनुष्य सम्बन्धिनी (विशाम्) प्रजाओं की (सदा) सब काल में (अदाभ्यः) परस्पर हिंसा का वारणकर्त्ता और (पुरएता) अग्रगामी होवे ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् लोग जैसे शीघ्रगामी नवीन रथ से शीघ्र अपने वांछित स्थान को कोई एक मनुष्य पहुँचता है वैसे वैर को त्याग के सब लोगों को अपनी इच्छानुकूल सद्विद्याओं की शीघ्र शिक्षा देकर उन का जन्म सफल करें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सा॒ह्वान्विश्वा॑ अ॒भि॒युजः॒ क्रतु॑र्दे॒वाना॒मर्मृ॑क्तः ।
अ॒ग्निस्तु॒विश्र॑वस्तमः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो कि (अमृक्तः) औरों से न मारा जा सके

(साह्वान्) क्रोधरहित (क्रतुः) बुद्धिमान् और (अग्निः) अग्नि के सदृश शुद्धस्वभाव वाला (तुविश्रवस्तमः) अतिशय कर बहुत शास्त्रों को जिस ने सुना हो (देवानाम्) पण्डितों के बीच में (विश्वाः) सम्पूर्ण (अभियुजः) अपने अनुकूल व्यवहार करने वाली प्रजाओं की सब प्रकार रक्षा करता है वही सब प्रजाजनों से सत्कार पाने योग्य है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो किसी को नहीं मारता उस को मारने की कोई इच्छा नहीं करता, जो पुरुष बहुत शास्त्रों को पढ़ने और सुनने की इच्छा करता है वह अति बुद्धिमान् होता है, जो जैसी भावना से प्रजा में वर्त्ताव रखता है उसके साथ प्रजा भी उसी भावना से वर्त्ताव रखती है ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अभि प्रयाँसि वाहसा दाश्वाँ अश्नोति मर्त्यः ।

क्षयं पावकशोचिषः ॥७॥

पदार्थः—जो (दाश्वान्) देने वाला (मर्त्यः) मनुष्य (पावकशोचिषः) अग्नि की दीप्ति के सदृश दीप्ति युक्त विद्वान् पुरुष के (क्षयम्) विद्या स्थान को (अश्नोति) प्राप्त होता वह (वाहसा) उत्तम पदवी को प्राप्त होने से (प्रयांसि) कामना अभिलाषा के योग्य अन्न आदि को (अभि) प्राप्त होता है ॥७॥

भावार्थः—जब मनुष्य विद्वानों की विद्या पदवी को प्राप्त होते हैं तब ही उनके मनोरथ पूर्ण होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

परि विश्वानि सुधिताग्नेरश्याम मन्मभिः ।

विप्रासो जातवेदसः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (जातवेदसः) विद्वान् हुए (विप्रासः) बुद्धिमान् हम लोग (मन्मभिः) विज्ञान विशेषों के सहित (अग्नेः) अग्नि के सदृश (विश्वानि) सम्पूर्ण (सुधिता) उत्तम प्रकार धारण किये शास्त्रों को (परि) सब ओर से (अश्याम) प्राप्त हों वैसे ही आप लोग भी प्राप्त हूजिये ॥८॥

भावार्थः—विद्वान् मनुष्यों को चाहिये कि जैसे बुद्धिमान् विद्वान् सृष्टि और आत्मा की विद्या ग्रहण के लिये प्रयत्न करते हैं वैसे ही विद्या-वृद्धि के लिये प्रयत्न करें ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने विश्वानि वार्य्या वाजेषु सनिषामहे ।
त्वे देवास एरिरे ॥९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्याओं से उत्तम प्रकार प्रकाशयुक्त विद्वन् पुरुष ! जिन (त्वे) आप के विषय में (देवासः) विद्वान् लोग हम लोगों को (आ) (ईरिरे) प्रेरणा करते हैं फिर प्रेरित हुए हम लोग (वाजेषु) संग्राम आदि व्यवहारों में (विश्वानि) सम्पूर्ण (वार्या) अच्छे प्रकार स्वीकार करने योग्य धनादि वस्तुओं को (सनिषामहे) यथाभाग प्राप्त होवें ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस धर्मयुक्त पुरुषार्थ में विद्वान् लोग तुम लोगों को प्रेरणा करें तो जैसे हम लोग उन की आज्ञानुकूल वर्त्ताव कर के विद्या और धन को प्राप्त होवें वैसे ही उन पुरुषों की आज्ञानुसार वर्त्ताव करके आप लोग भी विद्या और धनयुक्त होइये ॥९॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् पुरुष के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह ग्यारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । १ । ३ । ५ । ८ । ९ निचृद्गायत्री । २ । ४ । ६ गायत्री । ७ यवमध्या विराड् गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले बारहवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अध्यापक और उपदेशक का विषय कहते हैं ॥

इन्द्राग्नी आ गतं सुतं गीर्भिर्नभो वरेण्यम् ।
अस्य पातं धियेषिता ॥१॥

पदार्थः—हे विद्या पढ़ाने और उपदेश देने वाले पुरुषो ! आप दोनों (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के सदृश (अस्य) इस संसार में वर्त्तमान होकर (इषिता) बोध देते हुए (गीर्भिः) उत्तम शिक्षाओं से पूरित वाणियों के सहित (धिया) श्रेष्ठ बुद्धि से (नभः) अन्तरिक्ष नामक अवकाश की और (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (सुतम्) विद्या से उपार्जित धन से युक्त पुत्र वा शिष्य की (पातम्) रक्षा कीजिये और (आ, गतम्) विद्या के प्रचार के लिये आइये ॥ १ ॥

भावार्थः--हे अध्यापक और उपदेशक पुरुषो ! जैसे वायु और सूर्य्य सम्पूर्ण जगत् के रक्षाकारक हैं वैसे ही विद्या और उत्तम शिक्षा से सम्पूर्ण जगत् के रक्षक हूजिये ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्राग्नी जरितुः सचा यज्ञो जिगाति चेतनः ।
अया पातमिमं सुतम् ॥२॥

पदार्थः---हे (इन्द्राग्नी) धन और विद्यायुक्त पुरुषो ! जो (चेतनः) उत्तम रीति से जानने वाला (यज्ञः) पूजा करने योग्य पुरुष आप दोनों के (जिगाति) शरण को प्राप्त होवे । वे दोनों आप (जरितुः) स्तुतिकर्त्ता पुरुष के (सचा) सम्बन्धी हुए (अया) इस विद्या सुशिक्षा सहित वाणी से (इमम्) इस वर्त्तमान (सुतम्) उत्पन्न संसार को (पातम्) पालो ॥ २ ॥

भावार्थः—हे अध्यापक और विद्योपदेशक लोगो ! जो पुरुष विद्या के उपदेश ग्रहण करने के लिये आप लोगों के शरण आवें, उनकी जैसे वायु सूर्य्य जगत् की रक्षा करते हैं वैसे निरन्तर पालना करो ॥ २ ॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रमग्निं कविच्छदा यज्ञस्य जूत्या वृणे । ता सोमस्येह तृम्पताम् ॥३॥

पदार्थः—मैं जिन (जूत्या) वेग के सहित वर्त्तमान (कविच्छदा) विद्वानों का सत्सङ्ग करने वाले (इन्द्रम्) दुष्टों के दोषों के नाशकर्त्ता और (अग्निम्) अग्नि के सदृश दुष्टों के भस्मकारक जनों को (वृणे) स्वीकार करता हूं (ता) वे (इह) इस संसार में (सोमस्य) ऐश्वर्य्य और (यज्ञस्य) धर्मसम्बन्धी व्यवहार के मध्य में (तृम्पताम्) सुख भोगें और सब को सुखी करें ॥ ३ ॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि मूर्ख लोगों का सङ्ग त्याग के और विद्वानों का सङ्ग करके उत्तम आचरण करने से इस संसार में ऐश्वर्य्य का संग्रह करके सदा ही आनन्दयुक्त रहें ॥३॥

अब राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तोशा वृत्रहणा हुवे सजित्वानापराजिता । इन्द्राग्नी वाजसातमा ॥४॥

पदार्थः—हे सभासेना के अध्यक्षो ! मैं (वृत्रहणा) असुर स्वभाव वाले दुष्ट के नाशकारक (इन्द्राग्नी) सूर्य्य बिजुली के सदृश वर्त्तमान (तोशा) बढ़ाने वाले वा विज्ञानशील (सजित्वाना) जीतने वाले वीरों के साथ वर्त्तमान (अपराजिता) शत्रुओं

से नहीं हारने योग्य (वाजसातमा) विज्ञान वा धन का अतिशय विभाग करने वाले आप लोगों की (हुवे) प्रशंसा करता हूँ॥ ४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा लोग शत्रुओं के जीतने और शत्रुओं से नहीं हारने वाले न्यायकर्त्ता पुरुषों का सम्मानपूर्वक स्वीकार करते हैं, उनका सर्वदा विजय होता है॥ ४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

प्र वा॑मर्चन्त्युक्थिनो॑ नीथाविदो॑ जरि॒तारः॑।

इन्द्रा॑ग्नी॒ इष॒ आ वृ॑णे॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) बिजुली और सूर्य्य के सदृश प्रकाश सहित विद्यमान सभापति सेनापतियो! जो (नीथाविदः) नम्रतायुक्त (उक्थिनः) उत्तम गुणों की प्रशंसा करने तथा (जरितारः) ईश्वर की स्तुति करने वाले (वाम्) तुम दोनों को (प्र, अर्चन्ति) विशेष सत्कार करते हैं उन से मैं (इषः) अन्न आदि को (आ, वृणे) सब ओर से प्राप्त होऊं॥ ५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पुरुष पृथिवी आदि पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को जानते हैं, वे ही युद्ध और न्यायाचरण कर सकते हैं॥ ५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रा॑ग्नी नव॒तिं पुरो॑ दा॒सप॑त्नीरधूनुतम्। सा॒कमेके॑न॒ कर्म॑णा॥६॥

पदार्थः—हे सभापति सेनापतियो! जैसे (इन्द्राग्नी) वायु और अग्नि को (साकम्) एक साथ (एकेन) (कर्मणा) एक कर्म से (नवतिम्) नव्वे संख्यायुक्त (पुरः) पालन करने वाली (दासपत्नीः) शत्रुओं को युद्ध में दूर फेंकने वाले पुरुषों की स्त्रियों के तुल्य वर्त्तमान सूर्य्य की किरणें (अधूनुतम्) कंपाती हैं वैसे आप दोनों सेना आदिकों से शत्रुओं को कम्पावें॥ ६॥

भावार्थः—सभाध्यक्षादि मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर एक सम्मति से दुष्ट पुरुषों को उत्तम स्थानों से दूर कर और श्रेष्ठ पुरुषों का सत्कार करके धर्म्मपूर्वक व्यवहार से राज्यप्रबन्ध करें॥ ६॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

इन्द्रा॑ग्नी॒ अप॑स॒स्पर्युप॒ प्र य॑न्ति धी॒तयः॑। ऋ॒तस्य॑ प॒थ्या॒३॑ अनु॑॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली (ऋतस्य) सत्य

(अपसः) कर्म के (परि) सब ओर से (पथ्याः) मार्ग में सुखकारक सड़कों के (अनु) अनुकूल जाते हुए इन वायु विजुलियों की गति (धीतयः) अंगुलियों के समान (उप) समीप में (प्र, यन्ति) प्राप्त होती हैं, वैसे ही आप लोग भी श्रेष्ठ मार्ग में नियम-पूर्वक चलिये ॥ ७ ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर की सृष्टि में सूर्य्य आदि पदार्थ नियम के साथ अपने अपने मार्ग पर चलते हैं, वैसे ही मनुष्य लोग भी धर्मयुक्त मार्ग में चलें ॥ ७ ॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्राग्नी तविषाणि वां सधस्थानि प्रयांसि च ।
युवोरप्तूर्य्यं हितम् ॥८॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) वायु विजुली के सदृश ऐक्यमत्त से वर्त्तमान सेना और सेना के मुख्य अधिष्ठाता ! (वाम्) आप दोनों के (सधस्थानि) तुल्य स्थान में विद्यमान (प्रयांसि) कामना करने योग्य (तविषाणि) बल पराक्रम (च) और (युवोः) आप दोनों के (अप्तूर्य्यम्) कर्म करने के लिये शीघ्रता (हितम्) सुखसाधक हो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो वायु और विजुली के संयोग के समान परस्पर सेना और सेना के स्वामी प्रेमभाव से विरोध छोड़ के वर्त्ताव करें तो सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हों ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्राग्नी रोचना दिवः परि वाजेषु भूषथः ।
तद्वां चेति प्र वीर्य्यम् ॥९॥

पदार्थः—हे सेना और सेना के स्वामी ! जैसे (इन्द्राग्नी) वायु विजुली (दिवः) प्रकाश के मध्य में (रोचना) प्रीतिकारक कर्मों को (परि) सब ओर से (भूषथः) शोभित करते हैं वैसे (वाजेषु) संग्रामों में विजय से सेना के पुरुष आप दोनों को शोभित करें और (तत्) वह कर्म (वाम्) आप दोनों के (प्र) उत्तम (वीर्य्यम्) पराक्रम को (चेति) सम्यक् जनाता है ॥९॥

भावार्थः—जो राजा लोग राज्यकार्य्य में सब प्रकार से निपुण सेना और सेना के स्वामियों को अधिकार देते हैं उनका सब काल में विजय ही होता है ॥९॥

इस सूक्त में इन्द्र अग्नि अध्यापक उपदेशक और सेना तथा सेना के स्वामी के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ । ३ । ५—७ निचृदनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले तेरहवें सूक्त का आरम्भ है । उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वो॑ दे॒वाया॒ग्नये॒ बर्हि॑ष्ठमर्चास्मै ।
गम॑द्दे॒वेभि॒रा स नो॒ यजि॑ष्ठो ब॒र्हिरा स॑दत् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो पुरुष (देवेभिः) उत्तम गुणों के साथ (अस्मै) इस (देवाय) श्रेष्ठ गुणयुक्त (अग्नये) अग्नि के सदृश तेजधारी के लिये (वः) आप लोगों को (आ) सब प्रकार (गमत्) प्राप्त होवे उस (बर्हिष्ठम्) यज्ञ में बैठने वाले का (प्र) (अर्च) विशेष सत्कार करो (सः) वह (यजिष्ठः) अतिशय यज्ञ करने वाला (नः) हम लोगों को (बर्हिः) अन्तरिक्ष में (आ) (सदत्) प्राप्त होवे ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो लोग आप लोगों का सत्कार करते हैं उन का आप लोग भी सत्कार करें । जैसे विद्वज्जन विद्वान् पुरुषों से विद्यायुक्त शुभ गुणों को ग्रहण करते हैं उन विद्वज्जनों की आप लोग भी सेवा करें और हम लोगों को उत्तम गुण प्राप्त हों ऐसी इच्छा करो ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऋ॒तावा॒ यस्य॒ रोद॑सी॒ दक्षं॒ सच॑न्त ऊ॒तयः॑ ।
ह॒विष्म॑न्तस्तमी॑ळते॒ तं स॑नि॒ष्यन्तोऽव॑से ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! (ऋतावा) सत्य की प्रार्थना करने वाले आप (यस्य) जिसके (दक्षम्) पराक्रम वा चतुराई और (ऊतयः) रक्षा करने वाले गुण (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (सचन्ते) सम्बद्ध करते अर्थात् उन में व्याप्त होते हैं (तम्) उसके (हविष्मन्तः) प्रशंसा करने योग्य दानयुक्त जन सम्बन्धी होते हैं

(तम्) उसकी (अवसे) रक्षा आदि के लिये (सनिष्यन्तः) सेवन करने वाले लोग (ईळते) प्रशंसा करते हैं, उसी की प्रशंसा करो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस की कीर्त्ति आकाश और पृथिवी में व्याप्त, जिसके न्याय से प्रशस्त रक्षा आदि कर्म होते हैं उसी विद्वान् सभापति का रक्षा आदि के लिये तुम आश्रय करो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स यन्ता विप्र एषां स यज्ञानामथा हि षः ।
अग्निं तं वो दुवस्यत दाता यो वनिता मघम् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष (एषाम्) इन विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त (यज्ञानाम्) करने योग्य व्यवहारों का और (वः) आप लोगों का (यन्ता) कुमार्ग से निवारणकर्त्ता (दाता) दानशील (वनिता) मांगने वाला होवे (तम्) उस (अग्निम्) अग्नि के सदृश प्रकाशमान जन को और उससे प्राप्त हुए (मघम्) अत्यन्त पूजने योग्य धन को (दुवस्यत) सेवो (सः) वह (हि) जिस से कि अपने आप ही जितेन्द्रिय इस से (सः) वह अपने आप ही बुद्धिमान् (अथ) इस के अनन्तर (सः) वह स्वयं दानशील यज्ञों के करने से उत्तम गुणों का मांगने वाला होवे ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो पुरुष अपने आप धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, सत्य का प्रचारक, श्रेष्ठ गुणों का देने और ग्रहण करने वाला, स्वभाव का धर्म में प्रवर्त्तनकर्त्ता होवे, उसकी सम्पूर्ण उपायों से सेवा करो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स नः शर्माणि वीतयेऽग्निर्यच्छतु शन्तमा ।
यतो नः प्रुष्णवद्वसु दिवि क्षितिभ्यो अप्स्वा ॥४॥

पदार्थः—(सः) वह पूर्व मन्त्र में कहा हुआ विद्वान् (अग्निः) अग्नि के सदृश (वीतये) विज्ञान आदि धन की प्राप्ति के लिये (नः) हम लोगों को (शन्तमा) अतिशय कल्याणकारक (शर्माणि) उत्तम गृहों को (क्षितिभ्यः) पृथ्वी में विराजमान देशों से (दिवि) प्रकाश में (अप्सु) प्राणों जलों वा अन्तरिक्ष में (आ) चारों ओर से (यच्छतु) देवे (यतः) जिस से (नः) हम लोगों को (प्रुष्णवत्) अच्छे ऐश्वर्ययुक्त जैसा (वसु) धन प्राप्त होवे ॥४॥

भावार्थः—गृहस्थ लोगों को चाहिये कि सर्वदा सुखोत्पादक गृहों को निर्मित करके और जल स्थल अन्तरिक्ष मार्ग से गमन के लिये उत्तम वाहन

तथा अन्य यन्त्रादि साधनों को रच कर सम्पूर्ण समृद्धियां सञ्चित करें, फिर उन से अपना विज्ञान बढ़ावें ॥४॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दीदिवांसमपूर्व्यं वस्वीभिरस्य धीतिभिः ।
ऋक्वाणो अग्निमिन्धते होतारं विश्पतिं विशाम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो पुरुष (ऋक्वाणः) स्तुति करने योग्य गुणों के स्तुतिकर्त्ता (धीतिभिः) अंगुलियों के सदृश (वस्वीभिः) धन प्राप्त कराने वाली क्रियाओं से (अस्य) इस संसार के मध्य में (अग्निम्) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान (दीदिवांसम्) उत्तम गुणों के प्रकाश से युक्त (अपूर्व्यम्) अपूर्व श्रेष्ठ गुणों में निपुण (होतारम्) सुखदायक (विशाम्) प्रजाओं के बीच (विश्पतिम्) विशिष्टों के पालनकर्त्ता जन को (इन्धते) प्रकाशित करता है, उस की आप लोग सेवा करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोगों को इस संसार में श्रेष्ठ पुरुषों का आश्रय करना, दुष्टों का सङ्ग त्यागना, विद्या धन की वृद्धि करनी और विद्या विनय से युक्त राजा का सेवन करना योग्य है, ऐसा समझो ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत नो ब्रह्मन्नविष उक्थेषु देवहूतमः ।
शं नः शोचा मरुद्वृधोऽग्ने सहस्रसातमः ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य कीर्त्ति से प्रकाशमान ! आप (ब्रह्मन्) धन और (उक्थेषु) प्रशंसनीय पदार्थों के निमित्त (नः) हम को (अविषः) संयुक्त कीजिये (उत) और (देवहूतमः) विद्वानों से अति प्रशंसा को प्राप्त (सहस्रसातमः) असंख्य उपदेश वा धनों को अत्यन्त देने वाले आप (मरुद्वृधः) मनुष्यों से बढ़ते हुए (नः) हमारे (शम्) सुख का (शोच) विचार कीजिये वा सुख प्राप्त कीजिये ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के शरण जा के प्रथम से ब्रह्मचर्य्य विद्या आदि का ग्रहण तदनन्तर धन ऐश्वर्य की वृद्धि के उपाय की प्रार्थना करें और फिर धन को प्राप्त होके उत्तम विद्यावान् पुरुषों और श्रेष्ठ मार्ग में खर्चें ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नू नो रास्व सहस्रवत्तोकवत्पुष्टिमद्वसु ।
द्युमदग्ने सुवीर्य्यं वर्षिष्ठमनुपक्षितम् ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर वा विद्वान् पुरुष ! आप (नः) हम लोगों के लिये (सहस्रवत्) असंख्यपरिमाणयुक्त (तोकवत्) प्रशंसा करने योग्य सन्तानों से पूरित (पुष्टिमत्) अनेक प्रकार की पुष्टि के दाता (सुवीर्य्यम्) प्रचण्ड बल को बढ़ाने वाले (द्युमत्) ज्ञान के प्रकाश से युक्त (वर्षिष्ठम्) अतिशय वृद्धि से युक्त और (अनुपक्षितम्) खर्च करने से नहीं न्यून होने वाले (वसु) विद्या सुवर्ण आदि धन को (नु) शीघ्र (रास्व) दीजिये ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परम ऐश्वर्य्ययुक्त ईश्वर वा किसी विद्वान् पुरुष से प्रार्थना करके प्राप्ति के योग्य विद्या ऐश्वर्य्य उत्तम सन्तान श्रेष्ठ बल, पुरुषार्थ से बढ़ावें जिससे सब जनों की शीघ्र वृद्धि कर सकें ॥७॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह तेरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

ऋषभो वैश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ७ निचृत् त्रिष्टुप् । २ । ५ त्रिष्टुप् । ३ । ४ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ६ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले चौदहवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में शिल्पविद्या विषय को कहते हैं ॥

आ होता मन्द्रो विदथान्यस्थात्सत्यो यज्वा कवितमः स वेधाः ।
विद्युद्रथः सहसस्पुत्रो अग्निः शोचिष्केशः पृथिव्यां पाजो अश्रेत् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (मन्द्रः) अच्छे और प्रसन्न कराने (सत्य) श्रेष्ठ पुरुषों का आदर करने (यज्वा) मेल करने और (होता) सब विद्या का देने वाला (कवितमः) अत्यन्त विद्वान् (वेधाः) बुद्धिमान् पुरुष है (सः) वह (विदथानि) विज्ञानों को (आ) (अस्थात्) प्राप्त होकर उत्पन्न करे (विद्युद्रथः) बिजुली से रथ चलवाने वाला (सहसः) बलयुक्त वायु के (पुत्रः) सन्तान के सदृश (शोचिष्केशः) केशों के सदृश तेजों को धारणकर्त्ता (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी इस (पृथिव्याम्) पृथिवी में

(पाजः) बल का (अश्रेत्) आश्रय करे उस से विमानरचना और शिल्पविद्या में निपुण होइये ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य पदार्थविद्या में कुशल होकर हाथ की कारीगरी से यन्त्रकला सिद्ध करके बिजुली से चलाने योग्य वाहनों को रचें तो वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होवें ॥१॥

अब पढ़ने पढ़ाने रूप विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**अयामि ते नमउक्तिं जुषस्व ऋतावस्तुभ्यं चेतते सहस्वः ।**
**विद्वाँ आ वक्षि विदुषो नि षत्सि मध्य आ बर्हिरूतये यजत्र ॥२॥**

पदार्थः—हे (ऋतावः) सत्यप्रकाशकशील ! मैं (ते) आप के (नमउक्तिम्) नमस्कारों के वचन को (अयामि) प्राप्त होता हूं (जुषस्व) उसका आप आदर सहित ग्रहण कीजिये । हे (सहस्वः) अति बलयुक्त वा सम्पूर्ण विद्या जानने वाले जो (विद्वान्) विद्वान् आप (विदुषः) विद्वानों को (आ) (वक्षि) सब प्रकार उपदेश देते हो ऐसे आप के साथ विद्वानों को प्राप्त होता हूँ । हे (यजत्र) पूजन करने योग्य ! जो आप (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (बर्हिः) अन्तरिक्ष के (मध्ये) मध्य में (आ) (नि) अच्छे प्रकार निश्चित (सत्सि) विराजो उस (चेतते) बोध देने वाले (तुभ्यम्) आप के लिये नमस्काररूप वचन करता हूँ ॥२॥

भावार्थः—जैसे विद्यार्थी लोग नमस्कार आदि सेवा से अध्यापकों को प्रसन्न करें वैसे अध्यापक लोग उत्तम शिक्षारूप विद्यादान से विद्यार्थियों को प्रसन्न सन्तुष्ट करें ॥२॥

मनुष्यों को नियम का आश्रय करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।**
**यत्सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिरा वन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥३॥**

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशयुक्त विद्वान् पुरुष ! (ते) आप के लिये जैसे (वाजयन्ती) बोध कराती हुई (उषसा) प्रातःकाल सन्ध्याकाल दोनों वेला (द्रवताम्) प्रवाह से चलें वा (वातस्य) वायु के (पथ्याभिः) मार्ग में उत्तम गमनों से (दुरोणे) गृह में (अच्छ) उत्तम प्रकार (तस्थतुः) वर्त्तमान होवें (वन्धुरेव) बन्धनों के सदृश कारीगर लोग (हविर्भिः) ग्रहण करने योग्य साधनों से (यत्) जिस (पूर्व्यम्) प्राचीन लोगों से रचे गये वाहन विशेष को (सीम्) (आ, अञ्जन्ति) सब

प्रकार प्रकट करते हैं उन दोनों सायं प्रातः वेला की आप यथायोग्य सेवा करें और उस वाहन को सिद्ध करो ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर से नियत किई सन्ध्या और प्रातः समय की वेला नियम से वर्त्तमान हैं और जैसे चतुर कारीगरों से बनाये गये कलायन्त्रों से युक्त वाहन नियम सहित जाते आते हैं वैसे ही अपने आप नियम पूर्वक वर्ताव करके नियत यानों को रच के अपनी इच्छानुकूल व्यवहार को उत्तम प्रकार सिद्ध करें ॥३॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मित्रश्च तुभ्यं वरुणः सहस्वोऽग्ने विश्वे मरुतः सुम्नमर्चन् ।
यच्छोचिषा सहसस्पुत्र तिष्ठा अभि क्षितीः प्रथयन्त्सूर्यो नॄन् ॥४॥

पदार्थः—हे (सहस्वः) अत्यन्त बलधारी (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रतापयुक्त जन ! (तुभ्यम्) आप के लिये जो (वरुणः) श्रेष्ठ (मित्रः) प्रेमी (च) और व्यवहार-ज्ञाता आदर करते हैं तो उनका आप भी आदर करें । हे (सहसः) बल के (पुत्र) पुत्र के सदृश तेज से विद्यमान ! (यत्) जिस कारण (शोचिषा) प्रकाश से (सूर्य्यः) सूर्य्य के तुल्य आप जिन (क्षितीः) मनुष्यों वा (नॄन्) मुख्य पुरुषों को (प्रथयन्) प्रकट करते हुए (अभि) सम्मुख (तिष्ठाः) उपस्थित होइये जिससे आप को (विश्वे) सम्पूर्ण (मरुतः) मनुष्य (सुम्नम्) सुखपूर्वक (अर्चन्) स्तवन करें ॥४॥

भावार्थः - जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों से विद्या द्वारा उपकार ग्रहण करें तो वे परस्पर मित्रों के तुल्य सुख भोग करें ॥४॥

फिर अध्यापक और अध्येता के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वयं ते अद्य ररिमा हि काममुत्तानहस्ता नमसोपसद्य ।
यजिष्ठेन मनसा यक्षि देवानस्रेधता मन्मना विप्रो अग्ने ॥५॥

पदार्थः - हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (हि) जिससे (विप्रः) बुद्धिमान् आप (यजिष्ठेन) अत्यन्त संलग्न और (अस्रेधता) नहीं खिन्न हुए (मन्मना) विज्ञान से युक्त (मनसा) चित्त से हम (देवान्) विद्वानों का (यक्षि) संग कीजिये उससे (अद्य) इस समय (उत्तानहस्ताः) हाथ उठाये हुए (वयम्) हम लोग आप को (नमसा) सत्कार से वा अन्न आदि से (उप, सद्य) समीप प्राप्त हो के (ते) आप के (कामम्) मनोरथ को (ररिम) देवें ॥५॥

भावार्थः - जैसे अध्यापक लोग शिष्यों की विद्याविषयिणी इच्छा को सन्तृप्त करते हैं, वैसे ही विद्यार्थी जन भी अध्यापकों के मनोरथों को

सफल करें और सब काल में सम्पूर्ण पुरुष विद्या आदि शुभ गुणों के देने वाले होवें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वद्धि पुत्र सहसो वि पूर्वीर्देवस्य यन्त्यूतयो वि वाजाः ।
त्वं देहि सहस्रिणं रयिं नोऽद्रोघेण वचसा सत्यमग्ने ॥६॥

पदार्थः—हे (सहसः) बल के (पुत्र) पवित्रकर्त्ता (हि) जिससे जो (देवस्य) जगदीश्वर की (पूर्वीः) अतिकाल से उत्पन्न (वाजाः) विज्ञान और अन्नयुक्त (ऊतयः) रक्षा आदि क्रिया हम लोगों को (त्वत्) आप से (वि, यन्ति) प्राप्त होती हैं। हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी ! उससे (त्वम्) आप (अद्रोघेण) वैर रहित (वचसा) वचन से (नः) हम लोगों के लिये (सत्यम्) उत्तम व्यवहारों में व्यय होने योग्य (सहस्रिणम्) असंख्य वस्तुओं से पूरित (रयिम्) धन को (वि, देहि) दीजिये ॥६॥

भावार्थः—सकल शिष्य अध्यापक राजपुरुष और प्रजाजनों को चाहिये कि वैर आदि दोषों को त्याग परस्पर स्नेह उत्पन्न करके मेल कर असंख्य धन और विज्ञान परस्पर बढ़ावें ॥६॥

अब विद्वानों के तुल्य अन्य लोग आचरण करें, इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है ॥

तुभ्यं दक्ष कविक्रतो यानीमा देव मर्त्तासो अध्वरे अकर्म ।
त्वं विश्वस्य सुरथस्य बोधि सर्वं तदग्ने अमृत स्वदेह ॥७॥

पदार्थः—हे (दक्ष) अत्यन्त चतुर (कविक्रतो) पण्डितों के तुल्य बुद्धिमान् (देव) श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभावों के देने वाले (अमृत) अपने स्वरूप से नाशरहित (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (मर्त्तासः) हम मनुष्य लोग (अध्वरे) अहिंसा आदि रूप धर्म में (तुभ्यम्) आप के लिये (यानि) जो (इमा) ये धर्म सम्बन्धी कर्म उन को (इह) इस संसार में (अकर्म) करें (तत्) उस (सर्वम्) सम्पूर्ण कर्म को (त्वम्) आप (विश्वस्य) सम्पूर्ण (सुरथस्य) उत्तम रथ आदि अङ्गों से युक्त विद्या-प्रकाशकारक व्यवहार के बीच (बोधि) जानिये और उत्तम प्रकार पाक से सिद्ध किये हुए अन्नों का (स्वद) स्वादपूर्वक भोग करें ॥७॥

भावार्थः—सम्पूर्ण मनुष्यों को चाहिये कि जैसे विद्वान् लोग धर्म योग्य कर्म करें वैसे वे भी करें और सम्पूर्ण जन एक सम्मति करके इस संसार में विद्या और सुख की उन्नति करें ॥७॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के साथ सङ्गति है यह समझना चाहिये ॥

यह चौदहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

उत्कील: कात्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ४ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ पङ्क्तिः । ३ । ७ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तृतीय मण्डल में सात ऋचा वाले पन्द्रहवें सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहा है ॥

वि पाजसा पृथुना शोशुचानो बाधस्व द्विषो रक्षसो अमीवाः ।
सुशर्मणो बृहतः शर्मणि स्यामग्नेरहं सुहवस्य प्रणीतौ ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! (शोशुचानः) अति पवित्र हुए आप (पृथुना) विस्तारयुक्त (पाजसा) बल से जो (अमीवाः) रोग के सदृश औरों को पीड़ा देते हुए (रक्षसः) निकृष्ट स्वभाव वाले (द्विषः) वैरी लोग हैं उन को (वि) (बाधस्व) त्यागो। जिस से (अहम्) मैं (सुहवस्य) उत्तम प्रकार प्रशंसित (सुशर्मणः) उत्तम गृहों से युक्त (बृहतः) विद्या आदि शुभ गुणों से वृद्धभाव को प्राप्त (अग्नेः) अग्नि के सदृश उत्तम गुणों के प्रकाशकर्त्ता आप की (प्रणीतौ) श्रेष्ठ नीतियुक्त (शर्मणि) गृह में (स्याम्) स्थिर होऊं ॥१॥

भावार्थः—विद्वान् लोगों को चाहिये कि स्वयं दोषरहित हों औरों के दोष छुड़ा और गुण देकर विद्या तथा उत्तम शिक्षा से युक्त करें जिस से कि सकल जन पक्षपातशून्य न्याययुक्त धर्म में दृढ़भाव से प्रवृत्त होवें ॥१॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ॥२॥

पदार्थः—हे (सुजात) उत्तम प्रकार प्रसिद्ध (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (गोपाः) रक्षाकारक विद्वान् पुरुष ! (त्वम्) आप (अस्याः) इस (उषसः) प्रभात समय के (व्युष्टौ) अति प्रकाश होने पर (नः) हम लोगों को (बोधि) जगाइये (त्वम्) आप (सूरे) सूर्य्य के (उदिते) उदय को प्राप्त होने पर हम को जगाइये (नित्यम्) अतिकाल प्राणधारी (तनयम्) पुत्र को (जन्मेव) जैसे प्रारब्ध कर्म प्रकट करता है

वैसे (मे) मेरे (तन्वा) शरीर से (स्तोमम्) विद्या सम्बन्धिनी प्रशंसा को (जुषस्व) आदर कीजिये वा ग्रहण कीजिये ॥२॥

भावार्थः--इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे गर्भाशय में वर्त्तमान पुरुष गर्भों के स्वरूप को नहीं जानते हैं वैसे ही निद्रावस्थापन्न और अविद्या में लिप्त पुरुष विज्ञान से रहित होते हैं और जैसे जन्म धारण होने के अनन्तर शरीरसहित जीवात्मा प्रकट होता है वैसे ही निद्रा को त्याग के प्रातःकाल में जागृत पुरुषों के सदृश अविद्या को त्याग के विद्या में कुशल जन प्रशंसनीय होते हैं ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वं नृचक्षा वृषभानु पूर्वीः कृष्णास्वग्ने अरुषो वि भाहि ।
वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः कृधी नो राये उशिजो यविष्ठ ॥३॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवा (वृषभ) वीरतायुक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्या से प्रकाशमान (त्वम्) आप सूर्य्य के सदृश (अरुषः) रक्षक और (नृचक्षाः) मनुष्यों के सत् असत् कर्म में विवेकी हो कर (कृष्णासु) अविद्यान्धकारयुक्त नीच प्रजाओं में (अनु) (पूर्वीः) प्रथम ईश्वर से प्रकट की गईं प्रजाओं को (वि) (भाहि) प्रकाशमान कीजिये। हे (वसो) उत्तम गुणधारी ! जिस से आप (राये) धन के लिये (उशिजः) कामनाविशिष्ट पुरुषों के योग्य (नेषि) प्राप्त कराते (च) मनोरथों को पूर्ण (च) और (पर्षि) दुःखों से रहित तथा (अंहः) बुरे आचरण को (अति) दूर कीजिये इस से आप (नः) हम लोगों को श्रेष्ठ (कृधि) कीजिये ॥३॥

भावार्थः—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों को चाहिये कि जैसे सूर्य्य अपने किरणों के द्वारा सब जनों का पालन करता है वैसे विद्या और उत्तम शिक्षा से सम्पूर्ण प्रजा को विद्या-धन से युक्त तथा पाप से निवृत्त करके पुण्य कर्मों में प्रीतिपूर्वक प्रवृत्त करावें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अषाळ्हो अग्ने वृषभो दिदीहि पुरो विश्वाः सौभगा सञ्जिगीवान् ।
यज्ञस्य नेता प्रथमस्य पायोर्जातवेदो बृहतः सुप्रणीते ॥४॥

पदार्थः---हे (सुप्रणीते) उत्कृष्टन्यायकारी (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (अषाळ्हः) दूसरे से नहीं पराजय के योग्य विद्वान् (वृषभः) बलवान् पुरुष ! आप (विश्वा) सम्पूर्ण (सौभगा) उत्तम ऐश्वर्य वाली (पुरः) नगरियों में (दिदीहि) धर्मं-मिश्रित कर्मों का प्रकाश कीजिये। हे (जातवेदः) सकलविद्यापूरित विद्वन् पुरुष !

(प्रथमस्य) प्रथमाश्रम ब्रह्मचर्य्यरूप (पायोः) रक्षाकारक (बृहतः) श्रेष्ठ (यज्ञस्य) अहिंसा धर्म के (नेता) उत्तम रीति से निर्वाहक हुए और (सञ्जिगीवान्) उत्तम प्रकार जयशाली होइये ॥४॥

भावार्थः--हे राजपुरुषो ! विद्या और विनय से सम्पूर्ण प्रजाओं को प्रसन्न तथा ब्रह्मचर्य्य आदि आश्रमों के निर्वाह से उन में विद्या उत्तम शिक्षा श्रेष्ठता अति काल जीवन आदि बढ़ाय के ऐश्वर्य्यों का आधिक्य कीजिये ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अच्छिद्रा शर्म्मं जरितः पुरूणि देवाँ अच्छा दीद्यानः सुमेधाः ।
रथो न सस्निरभि वक्षि वाजमग्ने त्वं रोदसी नः सुमेके ॥५॥

पदार्थः--हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रतापी ! (त्वम्) आप जैसे अग्नि (सुमेके) अच्छे प्रकार फैलाये गये (रोदसी) अन्तरिक्ष पृथिवी को प्रकाशित करता है उसी प्रकार (नः) हम लोगों के (दीद्यानः) प्रकाशयुक्त वा प्रकाशक (सुमेधाः) श्रेष्ठ बुद्धिमान् और (सस्निः) सुडौल (रथः) उत्तम रथ के (न) सदृश हम लोगों के लिये (अभि) सम्मुख (वाजम्) विज्ञान को (वक्षि) कहिये । हे (जरितः) सत्य गुणों की स्तुतिकर्त्ता विद्वान् पुरुष ! आप (अच्छिद्रा) अति पुष्ट (पुरूणि) बहुत (शर्म) गृह और (देवान्) विद्वान् वा उत्तम गुणों से प्रसन्नतापूर्वक (अच्छ) उत्तम प्रकार संयुक्त कीजिये ॥५॥

भावार्थः--इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सुडौल बने हुए और दृढ़ रथ से अभिवाञ्छित स्थानों को शीघ्र पहुंचते हैं वैसे ही जो पुरुष आलस्य त्याग कर पुरुषार्थी हैं वे उत्तम स्थानों की कामना करते हुए विद्वानों के सङ्ग द्वारा श्रेष्ठ गुणों से संयुक्त होकर अन्य जनों के लिये भी उपदेश देते हैं वे पुरुष उत्तम प्रकार सुख भोगते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र पीपय वृषभ जिन्व वाजानग्ने त्वं रोदसी नः सुदोघे ।
देवेभिर्देव सुरुचा रुचानो मा नो मर्त्तस्य दुर्मतिः परि ष्ठात् ॥६॥

पदार्थः--हे (वृषभ) शरीर और आत्मा के बल से युक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी ! (त्वम्) आप जैसे (सुदोघे) कामनाओं की उत्तम प्रकार पूर्तिकारक (रोदसी) अन्तरिक्ष पृथिवी को सूर्य्य प्रकाशित और सुखयुक्त करता है वैसे (वाजान्) विज्ञानयुक्त (नः) हम लोगों को (पीपय) सम्पत्तियुक्त कीजिये । हे (देव) उत्तम गुण

प्रदाता ! आप (देवेभिः) विद्वानों के साथ (सुरुचा) उत्तम तेज से प्रीतिसहित (रुचानः) प्रीतियुक्त हुए (नः) हम लोगों को (प्र) (जिन्व) आनन्दित कीजिये जिस से कि हम लोगों के लिये (मर्त्तस्य) मनुष्य सम्बन्धिनी (दुर्मतिः) दुष्ट बुद्धि (मा) नहीं (परि) सब ओर से (स्यात्) स्थित हो ॥६॥

भावार्थः—जिस देश में विद्वान् लोग प्रीति से सब लोगों को बढ़ाने की इच्छा करते हैं और दुष्ट बुद्धि का नाश करते हैं, वहां सब लोग वृद्धि को प्राप्त विज्ञानरूप धन वाले होते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्याप्रकाशकारक विद्वन् ! आप (हवमानाय) प्रशंसाकर्त्ता के लिये (शश्वत्तमम्) अनादि से उत्पन्न (पुरुदंसम्) अत्यन्त धर्म सहित कर्मयुक्त (इळाम्) उत्तम शिक्षायुक्त वाणी को (गोः) पृथिवी के मध्य में (सनिम्) न्याय से सत्य और असत्य के विभागकारक ऐश्वर्य्य को (साध) सिद्ध करिये जिससे (नः) हम लोगों का (सूनुः) सन्तान (तनयः) धार्मिक पुत्र (विजावा) विजयशील (स्यात्) हो । हे (अग्ने) विद्वन् ! जो (ते) आप की (सुमतिः) उत्तम बुद्धि है (सा) वह (अस्मे) हम लोगों के लिये (भूतु) होवे ॥७॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि जिज्ञासु जनों के लिये विद्या उत्तम शिक्षा धर्मानुष्ठान तथा ऐश्वर्य्यवृद्धि सिद्ध करें और जैसे कि सम्पूर्ण मनुष्यों के लड़के लड़कियां उत्तम कर्मयुक्त तथा सब के सन्तान विद्या बलयुक्त होवें ऐसा प्रयत्न करें अर्थात् सब स्थान से विद्या ग्रहण करके सब को देवें ॥७॥

इस सूक्त में विद्वान् अध्यापक अध्येता और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह पन्द्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

उत्कीलः कात्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ५ भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ । ६ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ निचृद्बृहती । ४ भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले सोलहवें सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुणों को कहते हैं ॥

अयमग्निः सुवीर्य्यस्येशे महः सौभगस्य राय ईशे ।
स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥१॥

पदार्थः—जैसे (वृत्रहथानाम्) मेघ के सदृश वर्त्तमान शत्रुओं के हननकारियों के मध्य में (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि के सदृश प्रकाशमान राजा (महः) श्रेष्ठ (सुवीर्य्यस्य) उत्तम वल का (ईशे) स्वामी तथा (सौभगस्य) श्रेष्ठ ऐश्वर्यभाव और (रायः) धन का (ईशे) स्वामी है (गोमतः) उत्तम वाणी तथा पृथिवी आदि युक्त पुरुप का स्वामी है (स्वपत्यस्य) उत्तम सन्तानयुक्त पुरुप का स्वामी है वैसे ही मैं इन पुरुपों के मध्य में दोप का (ईशे) स्वामी हूँ ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्य लोग जैसे उत्तम प्रकार होम तथा यन्त्र आदि से सिद्ध किये हुए अग्नि से उत्तम वल श्रेष्ठ ऐश्वर्य और उत्तम सन्तानों को प्राप्त होके शत्रु लोगों का नाश करते वैसे ही मनुष्य लोगों को चाहिये कि उत्तम पुरुपार्थ से उत्तम सेना अतुल ऐश्वर्य्य शरीर आत्मा वल से युक्त सन्तानों को प्राप्त हो कर शत्रुओं के समान क्रोध आदि दोषों को त्यागें ॥१॥

फिर उसी विपय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमं नरो मरुतः सश्चता वृधं यस्मिन् रायः शेवृधासः ।
अभि ये सन्ति पृतनासु दूढ्यो विश्वाहा शत्रुमादभुः ॥२॥

पदार्थः—हे (मरुतः) वायु के सदृश वलयुक्त मनुष्यो ! (नरः) विद्या और नम्रता के नायक आप लोग (यस्मिन्) जिस व्यवहार में (शेवृधासः) सुखवृद्धिकारक (रायः) धन (सन्ति) होते हैं उस (इमम्) इस (वृधम्) पुत्र आदि की वृद्धिकारक व्यवहार को (विश्वाहा) सर्वदा (सश्चत) प्राप्त करो (ये) जो (पृतनासु) मनुष्यों की सेनाओं में (दूढ्यः) कठिनता से पराजित होने योग्य पुरुप हैं ऐसे और (शत्रुम्) शत्रु को (आदभुः) सब ओर से नाश करें उन पुरुपों को (अभि) सब प्रकार प्राप्त होओ ॥२॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि जिस प्रकार धन राजस्थिति और प्रतिष्ठा वढ़े और जिस प्रकार सेनाओं में उत्तम वीर पुरुप होवें वैसा सत्य व्यवहार सदा करें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स त्वं नो रायः शिशीहि मीढ्वो अग्ने सुवीर्य्यस्य ।

तुविद्युम्न वर्षिष्ठस्य प्रजावतोऽनमीवस्य शुष्मिणः ॥३॥

पदार्थः—हे (मीढ्वः) सुखों के दाता (तुविद्युम्न) बहुत प्रकार के धन वा यश से युक्त (अग्ने) अग्नि के समान तेजोवान् (सः) वह (त्वम्) आप (नः) हम लोगों के लिये (सुवीर्य्यस्य) उत्तम वीरों में उत्पन्न (वर्षिष्ठस्य) अति वृद्ध और (प्रजावतः) अत्यन्त प्रजायुक्त (अनमीवस्य) रोग रहित (शुष्मिणः) अत्यन्त बल सहित पुरुष के (रायः) धनों को (शिशीहि) अति बढ़ाइये ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य धन से सेना श्रेष्ठता प्रजा आरोग्य और बल को बढ़ाते हैं वे लोग सर्वदा बहुत धन वाले होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

चक्रिर्यो विश्वा भुवनाभि सासहिश्चक्रिर्देवेष्वा दुवः ।

आ देवेषु यतत आ सुवीर्य्ये आ शंस उत नृणाम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवना) लोकों का (अभि, चक्रिः) अभिमुख कर्त्ता (देवेषु) उत्तम गुणों में (सासहिः) अति सहनशील और (दुवः) सेवन को (आ, चक्रि) अच्छे प्रकार करने वाला और जो (देवेषु) स्तुतिकारकों में (आ) (यतते) अच्छा यत्न करता है (उत) और भी (नृणाम्) वीर पुरुषों की (आ) (शंसे) स्तुति में (सुवीर्य्ये) श्रेष्ठ बल में (आ) सब प्रकार प्रयत्न करता है उस की सदा (सेवध्वम्) सेवा करो ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसने सम्पूर्ण लोक तथा मनुष्य आदि प्राणी रचे और उन प्राणियों के जीवनार्थ अन्न आदि पदार्थ रचे और जो विद्वानों से जानने योग्य उस ही परमात्मा का निरन्तर सेवन करना चाहिये ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मा नो अग्नेऽमतये मावीरतायै रीरधः ।

मागोतायै सहसस्पुत्र मा निदेऽप द्वेषांस्या कृधि ॥५॥

पदार्थः—हे (सहसः) बल के (पुत्र) पालक (अग्ने) विद्वन् पुरुष ! आप (नः) हम लोगों की (अमतये) विपरीत बुद्धि के लिये (मा) नहीं (रीरधः) वश में करो

तथा (अवीरतायै) कायरता के लिये (मा) नहीं वशीभूत करो (अगोतायै) इन्द्रिय-विकारता के लिये (मा) नहीं वशीभूत करो (निदे) निन्दक पुरुष के लिये (द्वेषांसि) द्वेष भावों को (मा) नहीं (अप) अलग करने में (आ) (कृधि) सब प्रकार कीजिये ॥५॥

भावार्थः—ज्ञान सुख की इच्छा करने वाले पुरुषों को चाहिये कि विद्वानों के समीप प्राप्त होकर बुद्धि वीरता जितेन्द्रियता विद्या उत्तम शिक्षा धर्म और ब्रह्मज्ञान की प्रार्थना करें तथा निन्दा आदि दोष और निन्दक पुरुषों का सङ्ग त्याग के सभ्यता ग्रहण करें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**शग्धि वाजस्य सुभग प्रजावतोऽग्ने बृहतो अध्वरे ।**
**सं राया भूयसा सृज मयोभुना तुविद्युम्न यशस्वता ॥६॥**

पदार्थः—हे (तुविद्युम्न) बहुत धन और कीर्ति से युक्त (सुभग) उत्तम ऐश्वर्य्यधारी (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! आप (प्रजावतः) प्रशंसा करने योग्य प्रजायुक्त (बृहतः) श्रेष्ठ (वाजस्य) अन्न आदि वा विज्ञान के (अध्वरे) अहिंसा आदि स्वरूप व्यवहार में (शग्धि) सामर्थ्यस्वरूप हो उस (भूयसा) बड़े (मयोभुना) सुखकारक (यशस्वता) अधिक यश सहित (राया) धन से हम को (संसृज) संयुक्त कीजिये ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सङ्ग से यह प्रार्थना करें कि हे विद्वानो ! हम लोगों को विद्या विनय और धन सुखों से संयुक्त करो ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है, यह जानना चाहिये ॥

यह सोलहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

उत्कीलः कात्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुणों को कहते हैं ॥

**समिध्यमानः प्रथमानु धर्मा समक्तुभिरज्यते विश्ववारः ।**
**शोचिष्केशो घृतनिर्णिक् पावकः सुयज्ञो अग्निर्यजथाय देवान् ॥१॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (समिध्यमानः) उत्तम प्रकार प्रकाशमान (विश्ववारः) सकल जन का प्रिय (शोचिष्केशः) तेजरूप केशवान् (घृतनिर्णिक्) तेजस्वी (पावकः) पवित्रकर्त्ता (सुयज्ञः) सुन्दर यज्ञ जिस से हों वह अग्नि(समक्तुभिः) उत्तम रात्रियों से (यजथाय) सङ्ग के लिये (प्रथमा) प्रसिद्ध (धर्म) धर्मों को (अज्यते) उत्तम प्रकार प्रसिद्ध करता तथा (देवान्) उत्तम गुणों का (अनु) प्रस्तार करता है उसको अच्छे प्रकार प्रेरणा करो ॥१॥

भावार्थः—जो अति गुणों से युक्त अग्नि आदि पदार्थ से कार्य्यों को सिद्ध करें तो सम्पूर्ण कार्य्य मनुष्य सिद्ध कर सकते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यथायंजो होत्रमग्ने पृथिव्या यथा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ।

एवानेन हविषा यक्षि देवान्मनुष्वद्यज्ञं प्र तिरेममद्य ॥२॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) उत्तम बुद्धियुक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी ! (यथा) जैसे आप (पृथिव्याः) भूमि या अन्तरिक्ष के मध्य में (होत्रम्) हवन करने के अभ्यास को (अयजः) करें और (यथा) जैसे (दिवः) प्रकाश के (यथा) (चिकित्वान्) ज्ञाता पुरुष आप (अनेन) इस (हविषा) हवन सामग्री से (एव) ही (देवान्) विद्वानों वा उत्तम पदार्थों का (यक्षि) आदर करो (अद्य) इस समय (इमम्) इस (यज्ञम्) सम्मेलन करने को (प्र) (तिर) विशेष सफल करो वैसे मैं भी (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य प्रसिद्ध करूं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य इस सृष्टि में सम्पूर्ण प्राण आदिकों से भी कार्य्य होने योग्य व्यवहार को सिद्ध करते वे श्रेष्ठ विज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्रीण्यायूंषि तव जातवेदस्तिस्र आजानीरुषसस्ते अग्ने ।

ताभिर्देवानामवो यक्षि विद्वानथा भव यजमानाय शं योः ॥३॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थ के ज्ञाता (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी और (विद्वान्) सत्य असत्य के ज्ञाता पुरुष ! आप जैसे (ते) आप का जाना अग्नि (यजमानाय) किसी पदार्थ में अग्नि का संयोग करने वाले के (शम्) कल्याणकारक होता है वैसे (तव) आप के जो (त्रीणि) तीन प्रकार के शरीर आत्मा मन के सुखकारक (आयूंषि) जीवन और जैसे अग्नि के सदृश तेजस्वी(तिस्रः) तीन (आजानीः) सब ओर से प्रसिद्ध (उषसः) प्रकाशकारक समय वैसे ही (योः)

संयोगकारक वा भेदक आप (यक्षि) सम्प्राप्त होते (ताभिः) उन वेलाओं से (देवानाम्) पदार्थों की वा विद्वानों की (अवः) रक्षा आदि कीजिये और कल्याण करने वाले भी (भव) हूजिये ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य बहुत काल पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य नियत भोजन और विहार से आयु बढ़ाने की इच्छा करें तो त्रिगुण अर्थात् तीन सौ वर्ष तक जीवन हो सकता है ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निं सुदीतिं सुदृशं गृणन्तो नमस्यामस्त्वेड्यं जातवेदः ।
त्वां दूतमरतिं हव्यवाहं देवा अकृण्वन्नमृतस्य नाभिम् ॥४॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों में प्रसिद्ध विद्वान् ! जिन (त्वा) आप (दूतम्) दूत के समान सन्तापकारी (अरतिम्) प्राप्तिकारक (हव्यवाहम्) हवन करने योग्य पदार्थों को प्राप्त होने वाले अग्नि के सदृश (अमृतस्य) मोक्ष का (नाभिम्) नाभि के सदृश बन्धनकर्त्ता (देवाः) विद्वान् लोग (अकृण्वन्) किया करते हैं उस (सुदीतिम्) उत्तम प्रकार रक्षाकारक (सुदृशम्) सम्यक् देखने योग्य वा दर्शक और (ईड्यम्) प्रशंसा करने योग्य (अग्निम्) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् (त्वाम्) आप को (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम लोग (नमस्यामः) नमस्कार करते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो पुरुष अग्नि के सदृश तेजस्वी विज्ञानदाता विद्वान् लोग धर्म अर्थ काम और मोक्ष के साधनों का उपदेश दें उनकी नित्य नमस्कारपूर्वक सेवा करनी चाहिये ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्द्विता च सत्ता स्वधया च शम्भुः ।
तस्यानु धर्म प्र यजा चिकित्वोऽथा नो धा अध्वरं देववीतौ ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! जो (त्वत्) आप के समीप से (होता) दानशील (पूर्वः) पूर्व विद्यावान् (यजीयान्) अतिशय यज्ञकारक वा सम्मेलकारी (द्विता) द्वित्व स्वरूप (च) और (सत्ता) स्थित (स्वधया) अन्न से (च) भी (शम्भुः) सुखकारक होवे (तस्य) उस के (धर्म) धारण करने योग्य को (अनु) (प्र) (यज) सम्प्राप्त होइये (अथ) इस के अनन्तर हे (चिकित्वः) विज्ञानशाली ! आप

(देववीतौ) विद्वानों के समूह में (नः) हम लोगों के (अध्वरम्) अहिंसा आदि गुणयुक्त व्यवहार को (धाः) धारण करिये ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् लोग आप लोगों की अपेक्षा प्राचीन तथा अन्न आदि सामग्रियों से अहिंसाख्य व्यवहार को धारण किया करें इससे वे सर्वदा सुखभोगी हों ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह सत्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

कतो वैश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३ । ५ त्रिष्टुप् । २ । ४ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब इस तृतीय मण्डल में अठारहवें सूक्त का आरम्भ है, उस के पहिले मन्त्र से विद्वानों को क्या करना योग्य है इस विषय को कहा है ॥

भवा नो अग्ने सुमना उपेतौ सखेव सख्ये पितरेव साधुः ।
पुरुद्रुहो हि क्षितयो जनानां प्रति प्रतीचीर्दहतादरातीः ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) कृपारूप विद्वान् पुरुष ! आप (उपेतौ) प्राप्ति में (पितरेव) जनकों के सदृश (सख्ये) मित्र-कर्म के लिये (सखेव) मित्र के तुल्य (नः) हम लोगों के लिये (सुमनाः) उत्तम मनयुक्त (भव) होइये और (साधुः) उत्तम उपदेश से कल्याणकारी होकर (जनानाम्) मनुष्यों के बीच में जो (क्षितयः) मनुष्य (पुरुद्रुहः) बहुत लोगों से द्वेषकर्त्ता होवें उन (प्रतीचीः) प्रतिकूल वर्त्तमान (अरातीः) शत्रुओं को (प्रति) (दहतात्) भस्म करिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिये कि जो विद्वान् लोग मनुष्य आदि प्राणियों में पिता और मित्र के तुल्य वर्त्तावकारी उनका सत्कार और जो द्वेषकारी उनका निरादर करके धर्मवृद्धि करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तपो ष्वग्ने अन्तराँ अमित्रान् तपा शंसमररुषः परस्य ।
तपो वसो चिकितानो अचित्तान्वि ते तिष्ठन्तामजरा अयासः ॥२॥

पदार्थः—हे (तपो) तपस्वी ! (अग्ने) दुष्ट जनों के अग्नि के सदृश दाहकर्त्ता

आप (अन्तरान्) भेद को प्राप्त (अमित्रान्) शत्रुओं को (सुतप) सन्तापयुक्त तथा (अररुषः) अहिंसायुक्त (परस्य) श्रेष्ठ जन की (शंसम्) प्रशंसा करो । हे (तपो) दुष्ट पुरुषों के दाहकारी (वसो) उत्तम गुणों में निवासी (चिकितानः) ज्ञानवान् वा बोध-कारक आप (अचित्तान्) दरिद्र दशायुक्त पुरुषों को सचेत कीजिये और ये (अजराः) वृद्धावस्था रूप रोग से रहित (अयासः) विज्ञानयुक्त पुरुष (ते) आप के समीप (वि) (तिष्ठन्ताम्) वर्त्तमान हों ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य शत्रुओं को पृथक् कर धार्मिक यथार्थवक्ता सत्यवादी पुरुषों का सत्कार करके सब जनों के लिये सुखवृद्धि करते हैं वे भी सुख पाते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इध्मेनाग्न इच्छमानो घृतेन जुहोमि हव्यन्तरसे बलाय ।
यावदीशे ब्रह्मणा वन्दमान इमान्धियं शतसेयाय देवीम् ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशित विद्यायुक्त ! जैसे (इध्मेन) समिध से तथा (घृतेन) उत्तम प्रकार के मन्त्रों से संस्कारयुक्त घृत से (इच्छमानः) इच्छाकारी मैं (तरसे) वेग तथा (बलाय) बल के लिये (हव्यम्) हवन सामग्री का (जुहोमि) होम करता हूं (ब्रह्मणा) अतिशय धन के साथ (वन्दमानः) स्तुति से उपासनाकारक मैं (शतसेयाय) शत आदि संख्या से पूरित धन प्राप्ति के लिये (इमाम्) विद्यमान इस (देवीम्) प्रकाशमान (धियम्) धारणायोग्य बुद्धि को (यावत्) जितने परिमाण से (ईशे) इच्छाकारक हूं उसी प्रकार आप हवन कीजिये उतनी इच्छा करो ॥३॥

भावार्थः—जैसे इन्धन और घृत से अग्नि बढ़ती है वैसे ही ब्रह्मचर्य्य तथा वेद के अभ्यास से बल और विद्या बढ़ती है, जितना वेद से ब्रह्मचर्य्य रखना योग्य है उतना अभ्यास करना चाहिये ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उच्छोचिषा सहसस्पुत्र स्तुतो बृहद्वयः शशमानेषु धेहि ।
रेवदग्ने विश्वामित्रेषु शं योर्मर्मृज्मा ते तन्वं१ भूरि कृत्वः ॥४॥

पदार्थः—हे (भूरि) (कृत्वः) बहुत पुरुषों से रचित (सहसस्पुत्र) बल के उत्पादक (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी वैद्यराज विद्वान् ! (स्तुतः) प्रशंसायुक्त आप (शोचिषा) तेज से (शशमानेषु) भोग अभ्यास उल्लंघनों तथा (विश्वामित्रेषु) सम्पूर्ण जनों के मित्रों में (रेवत्) प्रशंसा करने योग्य धन से युक्त (बृहत्) अधिक

(वयः) कामना योग्य अवस्था और बहुत (शम्) सुख को दीजिये (योः) दुःख के नाशक (मर्मृज्मा) अति पवित्र वा पवित्रकारक आप (ते) अपने (तन्वम्) शरीर को (उत्) (धेहि) स्थिर कीजिये ॥४॥

भावार्थः—हे पुरुषो ! आप लोगों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य द्वारा विद्या और अवस्था बढ़ा सब लोगों के साथ मित्रता करके सकल जनों को अधिक अवस्थायुक्त तथा बहुत विद्यावान् करो ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कृधि रत्नं सुसनितर्धनानां स घेदग्ने भवसि यत्समिद्धः ।
स्तोतुर्दुरोणे सुभगस्य रेवत्सृप्रा करस्ना दधिषे वपूंषि ॥५॥

पदार्थः—हे(सुसनितः)उत्तम प्रकार दानविभागकारी (अग्ने)बिजुली के समान शीघ्र धन वृद्धिकर्त्ता ! (यत्) जो आप (समिद्धः) प्रकाशमान अग्नि के सदृश प्रकाशमान होते (सः, घ) सो ही (धनानाम्) सुवर्ण आदि रूप धनों में (रत्नम्) उत्तम धन को (कृधि) संयुक्त कीजिये (सुभगस्य) उत्तम ऐश्वर्य और (स्तोतुः) हवनकर्त्ता वा प्रशंसाकर्त्ता के (इत्) समान (दुरोणे) गृह में जो (सृप्रा) अभीष्ट स्थान की प्राप्तिकारक (करस्ना) कर्मों की शुद्धिकारक आप के बाहुओं और (रेवत्) उत्तम धनयुक्त (वपूंषि) रूपवत् शरीरों को (दधिषे) धारण करते हो वह आप हम लोगों से आदर करने योग्य हो ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वानो ! आप लोगों को चाहिये कि मनुष्यों को उत्तम प्रकार शिक्षा तथा पुरुषार्थ से युक्त और विद्या धनयुक्त करके उत्तम सभ्य चिरञ्जीवी जन बनाइये ॥५॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अठारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

कुशिकपुत्रो गाथी ऋषिः । अग्निर्देवता । १ त्रिष्टुप् । २ । ४ । ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब इस तृतीय मण्डल में १९ उन्नीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों का धनादि ऐश्वर्य्य कैसे बढ़े, इस विषय को कहा है ॥

अग्निं होतारं प्र वृणे मियेधे गृत्सं कविं विश्वविदममूरम् ।
स नो यक्षद्देवताता यजीयान्राये वाजाय वनते मघानि ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! मैं जिस (मियेधे) घृतादि के प्रक्षेपण से होने योग्य यज्ञ में (होतारम्) हवनकर्त्ता वा दाता (विश्ववेदम्) सकल शास्त्रों के वेत्ता (अमूरम्) मूढ़ता आदि दोष रहित (कविम्) तीक्ष्णबुद्धियुक्त वा बहुत शास्त्रों के अध्यापक (गृत्सम्) शिक्षा देने में चतुर बुद्धिमान् और (अग्निम्) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष को (प्र) (वृणे) स्वीकार करता हूं (सः) वह (यजीयान्) अत्यन्त यज्ञकर्त्ता आप (वाजाय) ज्ञानदाता और (वनते) प्रसन्नता से दिये पदार्थों के स्वीकारकर्त्ता पुरुष के लिये तथा (राये) धन प्राप्ति के लिये (मघानि) आदर करने योग्य धन और (देवताता) विद्वानों को (नः) हम लोगों के लिये (यक्षत्) संयुक्त कीजिये ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जिस अधिकार में जिस पुरुष की योग्यता हो उसी ही के लिये वह अधिकार देवें। क्योंकि ऐसा करने पर धनधान्यरूप ऐश्वर्य्य की वृद्धि हो सकती है ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र ते अग्ने हविष्मतीमियर्म्यच्छा सुद्युम्नां रातिनीं घृताचीम् ।
प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः सं रातिभिर्वसुभिर्यज्ञमश्रेत् ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजधारी विद्वान् पुरुष ! मैं (ते) आप की शिक्षा से जैसे (उराणः) विद्वानों को आदर से श्रेष्ठकर्त्ता कोई (प्रदक्षिणित्) दक्षिण अर्थात् सन्मार्गगन्ता जन (वसुभिः) निवास के कारण (रातिभिः) सुखदान आदि के साथ (हविष्मतीम्) अतिशय हवन सामग्री युक्त (सुद्युम्नाम्) श्रेष्ठ प्रकाश से युक्त (रातिनीम्) दिये हुए हवन के पदार्थों से युक्त (देवतातिम्) उत्तम स्वरूपविशिष्ट (घृताचीम्) जल को प्राप्त होने वाली रात्रि और (यज्ञम्) शयनावस्था आदि में प्राप्त चित्त के व्यवहारों को (समश्रेत्) प्राप्त करे वैसे इस को (अच्छ) उत्तम रीति से (प्र) (इयर्मि) प्राप्त होता हूँ ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि दिन में शयन छोड़ सांसारिक व्यवहार की सिद्धि के लिये परिश्रम कर रात्रि के समय स्वस्थतापूर्वक पञ्चदश १५ घटिका पर्यन्त निद्रालु होवें और दिन भर पुरुषार्थ से धन आदि उत्तम पदार्थों को प्राप्त हो कर सुपात्र पुरुष तथा सन्मार्ग में दान देवें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स तेजीयसा मनसा त्वोत उत शिक्ष स्वपत्यस्य शिक्षोः ।
अग्ने रायो नृतमस्य प्रभूतौ भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) पूर्ण विद्या के प्रकाश से युक्त ! हम लोग जिस (स्वपत्यस्य) उत्तम सन्तान वा विद्यार्थियों के सहित (नृतमस्य) अत्यन्त शूरवीरों से विशिष्ट (शिक्षोः) शिक्षक पुरुष (ते) आप की शिक्षा में (सुष्टुतयः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता श्रेष्ठ पुरुष (तेजीयसा) तेजस्वी पवित्र स्वरूपवान् (मनसा) अन्तःकरण से (वस्वः) सुख पूर्वक निवास का कारण धन तथा (रायः) ऐश्वर्य्य के (प्रभूतौ) बहुत्वभाव में (भूयाम) वर्त्तमान होवें (सः) वह (त्वोतः) आप की कामना करता हुआ जो ऐसा पुरुष उसको (च) और हम लोगों को (उत) भी आप (शिक्ष) विद्योपदेश दीजिये ॥३॥

भावार्थः—जो पुरुष ब्रह्मचर्य्य और विद्या से धर्म सम्बन्धी कामों को करके निष्कपट अन्तःकरण तथा आत्मा से प्रयत्न करें उनको धनपति का अधिकार देना योग्य है ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

भूरीणि हि त्वे दधिरे अनीकाग्ने देवस्य यज्यवो जनासः ।
स आ वह देवतातिं यविष्ठ शर्धो यदद्य दिव्यं यजासि ॥४॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अतिशय युवावस्थासम्पन्न (अग्ने) बिजुली के सदृश सम्पूर्ण विद्याओं में व्यापी पुरुष ! जिस (देवस्य) उत्तम गुण कर्म स्वभाववान् जन के संग से (यज्यवः) आदर करने योग्य (जनासः) विद्या आदि गुणों से प्रकट जन (हि) जिससे (त्वे) आप में (भूरीणि) बहुत (अनीका) सेनाओं को (दधिरे) धारण करें (यत्) (अद्य) जो इस समय (दिव्यम्) पवित्र (शर्धः) बल को (यजासि) धारण करो (सः) वह आप (देवतातिम्) उत्तम स्वभाव को (आ) (वह) सब प्रकार प्राप्त होइये ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के सङ्ग से बहुतसी उत्तम प्रकार शिक्षित सेनाओं को ग्रहण करें वे अति बल को प्राप्त हो के उत्तम गुणों का आकर्षण करें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यत्त्वा होतारमनजन्मियेधे निषादयन्तो यजथाय देवाः ।
स त्वं नो अग्नेऽवितेह बोध्यधि श्रवांसि धेहि नस्तनूषु ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! (निषादयन्तः) अत्यन्त अधिकार में स्थित कराने वा जनाने वाले (देवाः) विद्वान् पुरुष (मियेधे) प्राप्त होने योग्य यज्ञ में (यजथाय) विद्या में बोध कराने के लिये (यत्) जिन (होतारम्) विद्यादाता (त्वा)

आप की (अनजन्) कामना करें (सः) वह (त्वम्) आप (इह) इस संसार में (नः) हम लोगों की (अविता) रक्षा आदि के कर्त्ता हुए हम लोगों को (बोधि) बोध कराइये और (नः) हम लोगों के (तनूषु) शरीरों में (श्रवांसि) प्रिय अन्नों के सदृश सम्पदाओं को (अधि) उत्तम प्रकार (धेहि) स्थित करो ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! जिन अधिकारों में आप लोग नियुक्त किये जायँ उन अधिकारों में उत्तम प्रकार वर्त्तमान हो के सर्व जनों को श्रेष्ठ वनाइये और जिस शिक्षा से विद्या सभ्यता आरोग्यता और अवस्था वढ़े ऐसा उपाय निरन्तर करो ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गाथी ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । १ विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४ । ५ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तृतीय मण्डल के वीसवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन कैसे वर्ते इस विषय को कहा है ॥

अ॒ग्निमु॒षस॑म॒श्विना॑ द॒धि॒क्रां व्यु॑ष्टिषु हवते॒ वह्नि॑रु॒क्थैः ।
सु॒ज्योति॑षो नः शृण्वन्तु दे॒वाः स॒जोष॑सो अध्व॒रं वा॑वशा॒नाः ॥१॥

पदार्थः—हे अध्यापक उपदेशक जनो ! जैसे (वह्निः) पदार्थों का धारणकर्त्ता (व्युष्टिषु) प्रकाशकारक क्रियाओं में (अग्निम्) अग्नि (उषसम्) प्रातःकाल (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा और (दधिक्राम्) संसार के धारणकारकों के उल्लङ्घनकर्त्ता को (हवते) ग्रहण करता है वैसे (अध्वरम्) हिंसा भिन्न व्यवहार की (वावशानाः) अत्यन्त कामना करते हुए (सजोषसः) समान प्रीति के निर्वाहक (सुज्योतिषः) शोभन उत्तम बुद्धि के प्रकाशों से युक्त (देवाः) विद्वान् आप लोग (उक्थैः) प्रशंसा करने योग्य कर्मों से (नः) हम लोगों के प्रार्थनारूप वचन (शृण्वन्तु) सुनिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे वायु सम्पूर्ण प्रकाशकारी सूर्य आदि पदार्थों के धारण द्वारा सब जीवों का उपकार करता वैसे विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण जनों के साथ वैर छोड़नारूप अहिंसा धर्म के प्रचार के लिये एक सम्मति से सब संसार का उपकार करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने त्री ते वाजिना त्री सधस्था तिस्रस्ते जिह्वा ऋतजात पूर्वीः ।
तिस्र उ ते तन्वो देववातास्ताभिर्नः पाहि गिरो अप्रयुच्छन् ॥२॥

पदार्थः—हे (ऋतजात) सत्य आचरण करने में प्रसिद्ध (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशस्वरूप विद्वान् पुरुष ! (ते) आपके (त्री) तीन (वाजिना) ज्ञान गमन और प्राप्तिरूप (त्री) तीन (सधस्था) तुल्य स्थान वाले जन्मादि (ते) आपकी (तिस्रः) तीन प्रकार वाली (जिह्वा) वाणियाँ (पूर्वीः) प्राचीन (उ) और (ते) आपके (तिस्रः) तीन (तन्वः) शरीर सम्बन्धी (देववाताः) विद्वानों के साथ संवाद करने में उपकारक (गिरः) वचन हैं उनसे (अप्रयुच्छन्) अहङ्कार त्यागी आप (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग ब्रह्मचर्य अध्ययन और विचार से तीन कर्म करके तीन जन्म स्थान और नामों में कृतकृत्य अर्थात् जन्म सफल करो पढ़ाने तथा उपदेश से सबकी रक्षा करो और आप स्वयं प्रमाद-रहित होकर अन्य लोगों को वैसा ही करो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने भूरीणि तव जातवेदो देव स्वधावोऽमृतस्य नाम ।
याश्च माया मायिनां विश्वमिन्व त्वे पूर्वीः संदधुः पृष्टबन्धो ॥३॥

पदार्थः—हे (स्वधावः) प्रशंसनीय अमृतरूप अन्नयुक्त (जातवेदः) श्रेष्ठ विज्ञानयुक्त (देव) विद्वान् पुरुष ! (अग्ने) विद्या द्वारा प्रकाशकारक जो (तव) आपके (भूरीणि) बहुत (अमृतस्य) नाशरहित के (नाम) नाम हैं हे (पृष्टबन्धो) मनुष्यों के कर्मानुसार फलदायक ! (विश्वमिन्व) सम्पूर्ण जगत् में व्यापक (याः) जो (पूर्वीः) प्राचीन प्रजायें (त्वे) आपमें (सन्दधुः) स्थित की गई हैं (मायिनाम्) निकृष्ट बुद्धि-युक्त पुरुषों की (माया) बुद्धि नाश हो तो (च) भी अन्य पुरुष विज्ञानयुक्त होवें ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग सम्पूर्ण संसार ईश्वर से व्याप्य अर्थात् पूरित जानो और छली पुरुषों के छल को नाश तथा परमेश्वर के अर्थ सहित सम्पूर्ण नाम जान के अर्थ के अनुकूल भाव से अपने आचरणों को शुद्ध करो ॥३॥

फिर अग्नि के दृष्टान्त से विद्वान् का कर्त्तव्य कहते हैं ॥

अग्निर्नेता भग इव क्षितीनां दैवीनां देव ऋतुपा ऋतावा ।
स वृत्रहा सनयो विश्ववेदाः पर्षद्विश्वाति दुरिता गृणन्तम् ॥४॥

पदार्थः—जो (भगइव) सूर्य्य के तुल्य (दैवीनाम्) श्रेष्ठ गुणों में उत्पन्न (क्षितीनाम्) भूमियों का (नेता) अग्रणी (ऋतुपाः) ऋतुओं के रक्षक (ऋतावा) सत्कर्म निर्वाहक (देवः) सुखदायक (वृत्रहा) मेघों के नाशक सूर्य्य के सदृश (सनयः) अनादि सिद्ध (विश्ववेदाः) संसार के ज्ञाता (अग्निः) अग्नि के सदृश तेजस्वी (गृणन्तम्) स्तुतिकारक को (विश्वा) सम्पूर्ण पुरुषों के (दुरिता) दुष्ट आचरणों को (अति) उल्लङ्घन करके (पर्षत्) पार पहुँचावे (सः) वह परमात्मा हम लोगों से सेवने योग्य है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे अग्नि सूर्य्य आदि रूप धारण करके पृथिवी आदि पदार्थों को नियमपूर्वक अपने स्थान में स्थित रखता और जैसे जगदीश्वर सर्वदा सम्पूर्ण जगत् की व्यवस्था करता है वैसे ही उपासित हुआ ईश्वर तथा सेवित हुआ विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण पापाचरणों से पृथक् करके दुःखरूप समुद्र के पार पहुँचाता है ॥४॥

फिर विद्वान् मनुष्य के कर्त्तव्य को कहते हैं ॥

दधिक्रामग्निमुषसं च देवीं बृहस्पतिं सवितारं च देवम् ।
अश्विना मित्रावरुणा भगं च वसून्रुद्राँ आदित्याँ इह हुवे ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (इह) इस संसार में (दधिक्राम्) भूमि आदि धारण करने वाले पदार्थों को उल्लङ्घन करके वर्त्तमान (अग्निम्) बिजुली रूप अग्नि (देवीम्) प्रकाशमान तथा कामना करने योग्य (उषसम्) प्रातःकाल (च) और (बृहस्पतिम्) बड़े बड़े पदार्थों के रक्षक वायु (सवितारम्) सूर्य्य और सम्पूर्ण संसार की उत्पत्ति करने वाला (देवम्) कामना योग्य दानशील ईश्वर (च) और (अश्विना) अध्यापक उपदेशकर्त्ता (मित्रावरुणा) प्राण (च) और उदान वायु (भगम्) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य को देने वाला व्यवहार (वसून्) भूमि आदि पदार्थ (रुद्रान्) प्राण और (आदित्यान्) संवत्सरों के मासों की (हुवे) स्तुति करता हूं वा ग्रहण करता हूं वैसे ही तुम लोग इन की निरन्तर स्तुति वा ग्रहण करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को चाहिये कि जैसे विद्वान् लोग इस सृष्टि के उपकारक पदार्थों से सम्पूर्ण कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही उन पदार्थों के गुणों को जानकर सम्पूर्ण अभीष्ट कार्यों को सिद्ध करें और सर्व जनों से ईश्वर-उपासना करने योग्य है ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि आदि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

कौशिको गाथी ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ४ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ३ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ विराट् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले इक्कीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

इमं नो यज्ञममृतेषु धेहीमा हव्या जातवेदो जुषस्व ।
स्तोकानामग्ने मेदसो घृतस्य होतः प्राशान प्रथमो निषद्य ॥१॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता ! (मेदसः) चिकने (घृतस्य) घृत और (स्तोकानाम्) छोटे पदार्थों के (होतः) दाता (अग्ने) विद्वान् पुरुष (प्रथमः) पूर्व काल में वर्त्तमान आप (निषद्य) स्थित होकर (प्र) (अशान) सुख को भोगो (नः) हम लोगों के (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार सत्सङ्ग शुभ गुणों और दानरूप कर्म का (जुषस्व) सेवन कीजिये (इमा) इन (हव्या) धर्म अर्थ काम मोक्ष की सिद्धि के लिये योग्य साधनों को (अमृतेषु) नाश रहित पदार्थों में (धेहि) स्थापन करो ॥१॥

भावार्थः—जैसे अन्न जल आदि का दाता पुरुष अन्य पुरुषों को प्रिय होता वैसे विद्या उत्तम शिक्षा और धर्म सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त कराने वाला जन इन कर्मों को जानने की इच्छायुक्त पुरुषों का प्रिय होता है ॥१॥

अब धर्म्मोपदेशक किसके तुल्य रक्षा करते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

घृतवन्तः पावक ते स्तोकाः श्चोतन्ति मेदसः ।
स्वधर्मन्देववीतये श्रेष्ठं नो धेहि वार्य्यम् ॥२॥

पदार्थः—हे (पावक) अग्नि के सदृश पवित्रकर्त्ता ! जिन (ते) आप के (घृतवन्तः) उत्तम वा अधिक घृत वाले तथा जलयुक्त (मेदसः) चिकने (स्तोकाः) थोड़े पदार्थ (श्चोतन्ति) सिञ्चन करते हैं वह आप (देववीतये) विद्वानों की प्राप्ति के लिये (श्रेष्ठम्) अति उत्तम (वार्य्यम्) स्वीकार करने योग्य धन (स्वधर्मन्) अपने वैदिक धर्म में (नः) हम लोगों के लिये (धेहि) दीजिये ॥२॥

भावार्थः—जैसे अग्नि जल आदि पदार्थों को अपने कर्म से शुद्ध कर वर्षा आदि रूप से सम्पूर्ण पदार्थों को सींच कर सब जीवों की रक्षा करते हैं वैसे ही विद्या और धर्म के उपदेशक लोग सम्पूर्ण मनुष्यों का पालन करते हैं ॥२॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तुभ्यं स्तोका घृतश्चुतोऽग्ने विप्राय सन्त्य ।
ऋषिः श्रेष्ठः समिध्यसे यज्ञस्य प्राविता भव ॥३॥

पदार्थः—हे (सन्त्य) सत्य और असत्य के विभाग करने वालों में कुशल प्रवीण (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! जो (घृतश्चुतः) घृत से सींचे गए (स्तोकाः) स्तुतिकर्त्ता लोग (विप्राय) बुद्धिमान् (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये प्राप्त होते हैं और (श्रेष्ठः) उत्तम (ऋषिः) वेदमन्त्र और उन के अर्थ के ज्ञाता आप (समिध्यसे) प्रताप वा प्रकाशयुक्त किये जाते ऐसे आप (यज्ञस्य) सङ्गति के योग्य व्यवहार के (प्राविता) अत्यन्त रक्षाकारक (भव) होइये ॥३॥

भावार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जो लोग आप की स्तुति करते हैं उन पुरुषों को आप लोग वेद के अर्थ ज्ञान वाले कीजिये जिससे एक सम्मति से परस्पर रक्षा होवे ॥३॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तुभ्यं श्चोतन्त्यध्रिगो शचीवः स्तोकासो अग्ने मेदसो घृतस्य ।
कविशस्तो बृहता भानुनागा हव्या जुषस्व मेधिर ॥४॥

पदार्थः—हे (अध्रिगो) वेदमन्त्रों के ज्ञाता (शचीवः) प्रशंसनीय बुद्धियुक्त ! (मेधिर) बुद्धिमान् पुरुष (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशकारक जो पुरुष (स्तोकासः) उत्तम गुणों की स्तुतिकर्त्ता (मेदसः) चिकने (घृतस्य) घृत का (तुभ्यम्) तेरे लिये (श्चोतन्ति) सेचन करते उन के साथ (कविशस्तः) विद्वानों से प्रशंसित हुआ (बृहता) बड़े (भानुना) तेज से सूर्य के सदृश (आ) (अगाः) प्राप्त हो और (हव्या) देने योग्य वस्तुओं का (जुषस्व) सेवन करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जल से सींच कर वृक्षों को बढ़ाय फल प्राप्त होते हैं वैसे ही सत्सङ्ग से सत्पुरुषों का सेवन करके विज्ञान आदि फलों को प्राप्त करें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ओजिष्ठन्ते मध्यतो मेद उद्भृतं प्र ते वयं ददामहे ।
श्चोतन्ति ते वसो स्तोका अधि त्वचि प्रति तान्देवशो विहि ॥५॥

पदार्थः—हे (वसो) निवास के कारण ! (ते) आप के (मध्यतः) मध्य से

जो (ओजिष्ठम्)) अति बलयुक्त (मेदः) प्रीति (उद्भृतम्) उत्तम प्रकार धारण कियी गयी उस को (ते) आप के लिये (वयम्) हम लोग (प्र, ददामहे) देते हैं जो (स्तोकाः) स्तुतिकारक (ते) आप के (अधि) ऊपर (त्वचि) चर्म में (श्चोतन्ति) सिञ्चन करते हैं (तान्) उन (देवशः) विद्वानों के (प्रति) समीप (विहि) प्राप्त होइये ॥५॥

भावार्थः—जो पुरुष बहुत ही उत्तम वस्तु जिस पुरुष को देवे उस पुरुष को चाहिये कि उस देने वाले पुरुष को वैसी ही वस्तु देवे और जो लोग विद्वानों के सत्सङ्ग से श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होते हैं वे सम्पूर्ण जनों को कोमल स्वभावयुक्त कर सकते हैं ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि और मनुष्यों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इक्कीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

गाथी ऋषिः । पुरीष्या अग्नयो देवताः । १ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ३ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ विराडनुष्टुप् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब बाईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुण वर्णन विषय को कहते हैं ॥

**अयं सो अग्निर्यस्मिन्त्सोममिन्द्रः सुतं दधे जठरे वावशानः ।**
**सहस्रिणं वाजमत्यं न सप्तिं ससवान्त्सन्त्स्तूयसे जातवेदः ॥१॥**

पदार्थः—हे (जातवेदः) उत्तम विद्याधारी ! (यस्मिन्) जिस में (अयम्) यह (अग्निः) बिजुली (सहस्रिणम्) असंख्य पराक्रमयुक्त (वाजम्) वेग और (अत्यम्) व्यापक शीघ्र चलने वाले वायु के (न) तुल्य (सप्तिम्) अग्नि नामक अश्व को (दधे) धारण करता है उस में (वावशानः) अत्यन्त कामना करने वाला (इन्द्रः) जीवात्मा आप (जठरे) पेट की अग्नि में (सुतम्) उत्पन्न (सोमम्) पदार्थों के समूह के धारण-कर्त्ता आप (ससवान्) विभागकारक (सन्) होकर (स्तूयसे) स्तुति करने योग्य हो ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या से अग्नि को चलावें तो यह अग्नि हजारों घोड़ों के बल को धारण करता है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने यत्ते दिवि वर्चः पृथिव्यां यदोषधीष्वप्स्वा यजत्र ।
येनान्तरिक्षमुर्वाततन्थ त्वेषः स भानुरर्णवो नृचक्षाः ॥२॥

पदार्थः—हे (यजत्र) प्रीति के पात्र (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी ! (ते) आप के (दिवि) प्रकाश में (यत्) जो (वर्चः) तेज (यत्) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में (ओषधीषु) जो ओषधियों में और जो तेज (अप्सु) जलों में (आ) अच्छा वर्त्तमान है तथा (येन) जिस तेज से (अन्तरिक्षम्) पोलरूप (उरु) वक्षस्थल (आततन्थ) सब ओर से विस्तारकर्त्ता (सः) वह आप (त्वेषः) प्रकाशमान (भानुः) दीप्तियुक्त (अर्णवः) समुद्र के सदृश (नृचक्षाः) मनुष्यों के देखने वाले होइये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो विजुली नामक तेज सूर्य्य वायु भूमि और जल में तथा अन्य पदार्थों ओषधी आदि में वर्त्तमान उस को जान के सुख का विस्तार करो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने दिवो अर्णमच्छा जिगास्यच्छा देवाँ ऊचिषे धिष्ण्या ये ।
या रोचने परस्तात्सूर्य्यस्य याश्चावस्तादुपतिष्ठन्त आपः ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! आप जैसे अग्नि (दिवः) सूर्य्य के प्रकाश से (अर्णम्) जल को (अच्छ) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वैसे (अच्छ) उत्तम प्रकार (जिगासि) स्तुति करो (देवान्) उत्तम गुणयुक्त मनुष्यों की (ऊचिषे) अच्छे प्रकार स्तुति करते हो (याः) जो (सूर्य्यस्य) सूर्य्यमण्डल के (रोचने) प्रकाश में (परस्तात्) ऊपर (च) और (याः) जो (धिष्ण्याः) धर्षण करने योग्य (आपः) जल (अवस्तात्) नीचे से (उपतिष्ठन्ते) प्राप्त होते हैं (ये) जो लोग इन जलों के गुणों को जानते वे जलों से उपकार ले सकते हैं ॥३॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अन्धकार का नाश कर दिन को उत्पन्न कर और जल की वृष्टि करके सम्पूर्ण संसार का सुखकारक होता है वैसे ही विद्वान् लोग अविद्या का नाश विद्या की उत्पत्ति और सुख की वृष्टि कर के सब को आनन्दित करते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पुरीष्यासो अग्नयः प्रावणेभिः सजोषसः ।
जुषन्तां यज्ञमद्रुहोऽनमीवा इषो महीः ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग (पुरीष्यासः) पालक पृथिवी आदि पदार्थों में व्यापक भाव से वर्त्तमान (अग्नयः) अग्नियों के सदृश तेजयुक्त (सजोषसः) तुल्य प्रीति के निर्वाहक (अद्रुहः) द्वेषरहित (अनमीवाः) रोग से रहित हुए (प्रावणेभिः) गमन आदिकों से (यज्ञम्) मेलरूप यज्ञ (इषः) अन्न और (महीः) श्रेष्ठ वाणियों का (जुषन्ताम्) सेवन करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अग्नि आदि पदार्थ परस्पर मिल कर अनेक कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही मित्रभाव से वर्त्तमान रोग से रहित हुए विद्वान् लोग धनधान्य ऐश्वर्य्य और विद्या को प्राप्त होवें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इळामग्ने पुरुदंसं सनिं गोः शश्वत्तमं हवमानाय साध ।
स्यान्नः सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्या के प्रकाश करने वाले विद्वान् ! आप (हवमानाय) प्रशंसा करने वाले के लिये (इळाम्) पृथिवी (पुरुदंसम्) बहुत कर्मकर्त्ता (सनिम्) याचनाकारक (गोः) वाणी (शश्वत्तमम्) अनादि से वर्त्तमान चिह्न को हम लोगों के लिये (साध) सिद्ध करिये। हे (अग्ने) तेजस्वी पुरुष ! जिससे (नः) हम लोगों का (तनयः) विद्याविस्तारकर्त्ता (विजावा) सत्य और असत्य का विभागकारक (सूनुः) पुत्र (स्यात्) हो तथा (सा) वह (ते) आपकी (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (अस्मे) हम लोगों के लिये (भूतु) होवे ॥५॥

भावार्थः—विद्वान् पुरुष विद्या ग्रहण करने की इच्छा करने वाले पुरुष के लिये विद्या को सिद्ध करे तथा सब से गुणों का ग्रहण करे ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

देवश्रवा देववातश्च भारतावृषी । अग्निर्देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । २—५ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले तेईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से अग्नि के द्वारा शिल्प विद्या का उपदेश किया है ॥

**निर्मथितः सुधित आ सधस्थे युवा कविरध्वरस्य प्रणेता ।**
**जूर्यत्स्वग्निरजरो वनेष्वत्रा दधे अमृतं जातवेदाः ॥१॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सधस्थे) तुल्य स्थान में (निर्मथितः) अत्यन्त मथा अर्थात् प्रदीप्त किया गया (सुधितः) उत्तम प्रकार धारित (युवा) विभागकर्त्ता (कविः) उत्तम दर्शन सहित (प्रणेता) प्रेरणाकारक (अजरः) नित्य (जातवेदाः) धनों की उत्पत्ति करने वाला (अग्निः) अग्नि (जूर्यत्सु) वेगयुक्त (वनेषु) किरणों में (अध्वरस्य) अहिंसारूप शिल्पव्यवहार को (आदधे) धारण करता है (अत्र) इस शिल्पविद्या में (अमृतम्) जल को भी धारण करता वह अग्नि सम्पूर्ण उपायों से जानने योग्य है ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! कलायन्त्र आदिकों से युक्त वाहनों में अत्यन्त मथित होकर चलाया गया अग्नि सकल जनों के लिये वाहनों को वेगपूर्वक चलाता है यह जानना चाहिये ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**अमन्थिष्टां भारता रेवदग्निं देवश्रवा देववातः सुदक्षम् ।**
**अग्ने वि पश्य बृहताभि रायेषां नो नेता भवतादनु द्यून् ॥२॥**

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशयुक्त ! जैसे (भारता) धारणकर्त्ता और पालनकर्त्ता पुरुष (सुदक्षम्) श्रेष्ठ बल (अग्निम्) अग्नि का (अमन्थिष्टाम्) मन्थन करो वैसे (देवश्रवाः) विद्वानों के वचन श्रोता (देववातः) श्रेष्ठ प्रेरणाकारक से प्रेरित (अनु, द्यून्) अनुकूल दिवस (रेवत्) धन के तुल्य अग्नि का मन्थन करें जो (नः) हम लोगों के लिये (नेता) सुमार्ग में अग्रणी (भवतात्) होवे वह आप (बृहता) बड़े (राया) धन से (इषाम्) अन्न आदिकों के मध्य में (अभि) (वि, पश्य) सब प्रकार कृपादृष्टि से देखिये ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे शिल्पविद्या के पढ़ने पढ़ाने वाले लोग पदार्थों के क्रयविक्रय से धनवान् होते हैं वैसे ही आप लोग भी होइये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

**दश क्षिपः पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजातं मातृषु प्रियम् ।**
**अग्निं स्तुहि दैववातं देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥३॥**

पदार्थः—हे (देवश्रवः) विद्वानों के लिये उपकार-श्रोता ! आप जैसे (दश) दश संख्यायुक्त (क्षिपः) फैलने वाली अंगुलियाँ (मातृषु) नदियों में (प्रियम्) कामना करने योग्य (सुजातम्) उत्तम प्रकार सिद्ध (दैववातम्) विद्वानों से जाने हुओं के सम्बन्धी (पूर्व्यम्) प्राचीन जनों से उत्पन्न (अग्निम्) अग्नि को (सीम्) सब प्रकार (अजीजनम्) उत्पन्न करते हैं वैसे आप (स्तुहि) स्तुति करो और (यः) जो (जनानाम्) मनुष्यों के मध्य में (वशी) इन्द्रियजित् (असत्) होवे उस की प्रशंसा करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे हाथों की अंगुलियों से बहुत कार्य्य सिद्ध होते हैं वैसे ही अग्नि आदिकों से बहुत कार्यों को आप लोग सिद्ध करो ॥३॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नि त्वा॑ दधे॒ वर॒ आ पृ॑थि॒व्या इळा॑यास्प॒दे सु॑दिन॒त्वे अह्ना॑म् ।

दृ॒षद्व॑त्यां॒ मानु॑ष आप॒यायां॒ सर॑स्वत्यां रे॒वद॑ग्ने दिदीहि ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! मैं जैसे (त्वा) आप को (पृथिव्याः) भूमि वा अन्तरिक्ष के (वरे) उत्तम व्यवहार और (इळायाः) वाणी के (पदे) प्राप्त होने योग्य स्थान में (अह्नाम्) दिवसों के (सुदिनत्वे) उत्तम दिनों में (दृषद्वत्याम्) प्रस्तरयुक्त (आपयायाम्) प्राणों में व्यापक (सरस्वत्याम्) विज्ञान वाली वाणी और (मानुषे) मननशील में (रेवत्) श्रेष्ठ धन के तुल्य (नि) (दधे) धारण किया वैसे मननकर्त्ता आप मुझ को (आ) (दिदीहि) प्रकाशित करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर मित्रभाव से वर्त्तमान करके विद्या धर्म सज्जनता और सुखों को बढ़ावें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इळा॑मग्ने पुरु॒दंसं॑ स॒निं गोः श॑श्वत्त॒मं हव॑मानाय साध ।

स्यान्नः॑ सू॒नुस्तन॑यो वि॒जावाग्ने॒ सा ते॑ सुम॒तिर्भू॑त्व॒स्मे ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्या के प्रकाशकारी ! आप (हवमानाय) ग्रहण करने वाले के लिये (इळाम्) प्रशंसायुक्त वाणी को और (गोः) उत्तम वाणी के (शश्वत्तमम्) अनादि विज्ञान तथा (पुरुदंसम्) बहुत शुभ कर्मों के (सनिम्) विद्या आदि उत्तम गुणों के दान को (साध) सिद्ध करो जिससे (नः) हम लोगों का (विजावा) विशेष करके सम्पूर्ण जनों का सुखोत्पादक (सूनुः) पुत्र के सदृश शिष्य

(तनयः) सुख का विस्तारकारक (स्यात्) होवे । हे (अग्ने) उत्तम प्रकार परीक्षा लेने में निपुण विद्वन् ! जो (ते) आप की (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (भूतु) होवे (सा) वह (अस्मे) हम लोगों में होवे ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर जनों के प्रति शुभ गुणों के ग्रहण और दान का उपदेश दे और अपने सन्तानों के विद्या सुशिक्षा और विज्ञानों को निरन्तर वढ़ावें ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् मनुष्यों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ निचृद्गायत्री । ३—५ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले चौबीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र से राजधर्मविषय का उपदेश करते हैं ॥

अग्ने सहस्व पृतना अभिमातीरपास्य ।
दुष्टरस्तरन्नरातीर्वर्चो धा यज्ञवाहसे ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य दुष्टजनों के दाहकर्त्ता वीर पुरुष ! आप (पृतनाः) शत्रुओं की सेनाओं का (सहस्व) तिरस्कार करो (अभिमातीः) अभिमान-युक्त विघ्नकारी दुष्टों को (अपास्य) दूर करो (दुष्टरः) कठिनता से उल्लङ्घन करने योग्य आप और (अरातीः) शत्रुओं को (तरन्) उल्लङ्घन करते हुए (यज्ञवाहसे) यज्ञ के प्राप्त कराने वाले के लिये (वर्चः) अन्न को (धाः) धारण कीजिये ॥१॥

भावार्थः—राजपुरुषों को चाहिये कि अपनी प्रजा और सेनाओं को वलयुक्त कर और दुष्ट शत्रुओं को राज्य से पृथक् करके प्रजा की वृद्धि के लिये धन और विद्या की निरन्तर उन्नति करें ॥१॥

अब विद्वानों को कैसे दूसरों की उन्नति करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने इळा समिध्यसे वीतिहोत्रो अमर्त्यः ।
जुषस्व सू नो अध्वरम् ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्या के प्रकाश से युक्त पुरुष ! (अमर्त्यः)

आत्मरूप से मरणधर्मरहित (वीतिहोत्रः) उत्तम गुणों से पूरित विद्याओं के स्वीकारकारी आप जो (इळा) उत्तम प्रकार शिक्षित स्तुति करने योग्य वाणी है और जिससे आप (सम्) (इध्यसे) उत्तम प्रकार प्रकाशित हो उस के साथ (नः) हम लोगों के (अध्वरम्) अहिंसा आदि व्यवहार से युक्त यज्ञ का (सु, जुषस्व) अच्छे प्रकार सेवन करो ॥२॥

भावार्थः— विद्वानों को चाहिये कि जिस से अपनी वृद्धि हो उसी से अन्य जनों की उन्नति करें ॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने द्युम्नेन जागृवे सहसः सूनवाहुत । एदं बर्हिः सदो मम ॥३॥

पदार्थः—हे (जागृवे) राजधर्म के उत्तम प्रकार निर्वाहक (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र दुष्टों के नाशकर्त्ता (आहुत) चारों ओर से पुकारे गये (अग्ने) प्रतापयुक्त राजन् ! (द्युम्नेन) यशकारक धन के सहित विराजमान आप (मम) मेरे (इदम्) इस वर्त्तमान (बर्हिः) अत्यन्त श्रेष्ठ (सदः) बैठने योग्य आसन का (आ, जुषस्व) अच्छे प्रकार सेवन करो ॥३॥

भावार्थः— जो राजपुरुष यश बलयुक्त राजधर्म में कुशल न्यायाधीश हों वे अखण्डित राज्य की पालना कर सकें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने विश्वेभिरग्निभिर्देवेभिर्महया गिरः । यज्ञेषु य उ चायवः ॥४॥

पदार्थः - हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष ! (ये) जो पुरुष (यज्ञेषु) सङ्गति के योग्य व्यवहारों में (चायवः) सत्कार योग्य हों उन का ही (अग्निभिः) अग्नियों के सदृश तेजयुक्त (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (देवेभिः) श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्वानों के साथ (महय) सत्कार करो (उ) और उन्हीं लोगों की (गिरः) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त वाणियों का प्रमाण मानो ॥४॥

भावार्थः— जो राजपुरुष इस संसार में उत्तम कार्य्यों के कर्त्ता हों उनका सब लोग सत्कार करें और जो दुष्ट कर्म करते हों उन का अपमान करें ॥४॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने दा दाशुषे रयिं वीरवन्तं परीणसम् ।
शिशीहि नः सूनुमतः ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजयुक्त विद्वान् पुरुष! जैसे आप (दाशुषे) सब के सुखदाता जन के लिये (परीणसम्) बहुत प्रकार युक्त (वीरवन्तम्) बहुत वीरों से विशिष्ट (रयिम्) धन को (दाः) दीजिये और वैसे ही (सूनुमतः) पुत्रयुक्त (नः) हम लोगों को (शिशीहि) प्रबल कीजिये ॥५॥

भावार्थः—जो विद्या और धन के दाता विद्वान् हों उनके प्रति ऐसा कहना चाहिये कि आप लोग हम लोगों की सब प्रकार वृद्धि करो ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि, राजा और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौबीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । १—४ अग्निर्देवता । ५ इन्द्राग्नीदेवते । १ निचृदनुष्टप् । २ अनुष्टुप्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ३—५ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले पच्चीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र से सूर्यरूप अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों का कर्त्तव्य कहते हैं ॥

अग्ने॑ दि॒वः सू॒नुर॑सि॒ प्रचे॑ता॒स्तना॑ पृथि॒व्या उ॒त वि॒श्ववे॑दाः ।
ऋध॑ग्दे॒वाँ इ॒ह य॑जा चिकित्वः ॥१॥

पदार्थः—हे (चिकित्वः) विज्ञानवान् (अग्ने) विद्वन् पुरुष! जैसे (दिवः) बिजुली से (सूनुः) सूर्य्य के समान तेजस्वी (प्रचेताः) उत्तम विज्ञानयुक्त वा विज्ञानदाता (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (तना) विस्तारक (उत) और भी (विश्ववेदाः) धनदाता (असि) हो वह आप (इह) इस संसार में (देवान्) विद्वान् वा उत्तम गुणों को (ऋधक्) स्वीकार करने में (यज) संयुक्त कीजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य सम्पूर्ण स्वरूप वाले द्रव्यों का प्रकाशक है वैसे विद्वान् और विद्वानों से प्रेमकारी पुरुष इस संसार में सर्व जनों के आत्माओं के प्रकाशक होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒ग्निस्स॑नोति वी॒र्या॑णि वि॒द्वान्त्स॒नोति॒ वाज॑म॒मृता॑य॒ भूष॑न् ।
स नो॑ दे॒वाँ एह व॑ह पुरुक्षो ॥२॥

पदार्थः—हे (पुरुक्षो) अतिशय अन्न आदि से युक्त जो (विद्वान्) विद्यावान् पुरुष! आप जैसे (अग्निः) अग्नि के सदृश (वीर्य्याणि) पराक्रमों का (सनोति) धारण करने वाले वैसे (सः) वह (अमृताय) नाशरहित मोक्षसुख की प्राप्ति के लिये (नः) हम (देवान्) विद्वानों को (इह) इस संसार में (भूषन्) शोभित करते हुए (वाजम्) विज्ञान को (सनोति) देता है उस प्रकाशित करने वाले पुरुष को हम लोगों के लिये (आ) (वह) अच्छे प्रकार प्राप्त करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य आकार वाले पदार्थों को उत्तम प्रकार शोभित करता है वैसे ही विद्वान् लोग विद्या उत्तम शिक्षा और सभ्यता से सम्पूर्ण मनुष्यों को शोभित करें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निर्द्यावापृथिवी विश्वजन्ये आ भाति देवी अमृते अमूरः।
क्षयन्वाजैः पुरुश्चन्द्रो नमोभिः ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् जन! जैसे (पुरुश्चन्द्रः) बहुत आनन्दकारक (वाजैः) विज्ञान वेग आदिकों से (नमोभिः) अन्न वा सत्कारों के साथ (क्षयन्) निवास करने वाला (अग्निः) सूर्य्य वा विद्युत् रूप अग्नि (विश्वजन्ये) सब के उत्पादक (देवी) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त (अमृते) कारणरूप से नाशरहित (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि को (आ) सब ओर से (भाति) प्रकाशित करता है वैसे (अमूरः) मूढ़ता आदि दोषों से रहित होकर सम्पूर्ण सज्जनों को अपनी विद्या और विनय से सब प्रकार प्रकाशित करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग पृथिवी के सदृश क्षमाशील, सूर्य्य के सदृश सत्य असत्य के प्रकाशकर्त्ता, मूढ़ लोगों को उपदेशदाता और सब लोगों को धार्मिक करते हैं उन लोगों का ही सत्कार करना चाहिये ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्न इन्द्रश्च दाशुषो दुरोणे सुतावतो यज्ञमिहोप यातम्।
अमर्धन्ता सोमपेयाय देवा ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशित विद्वान् पुरुष! जैसे (अमर्धन्ता) सब को सुखाते हुए (देवा) श्रेष्ठ गुणों से युक्त पुरुष (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्यकारक बिजुली सम्बन्धी अग्नि (च) और पवन तथा (सोमपेयाय) ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (सुतावतः) ऐश्वर्य से युक्त (दाशुषः) विद्यासम्बन्धी सुख के दाता

(दुरोणे) गृह में (यज्ञम्) विद्वान् सत्कार आदि स्वरूप व्यवहार को (इह) इस संसार में (उप) (यातम्) प्राप्त हों और वैसे आप भी प्राप्त होइये और अध्यापक तथा उपदेशक भी प्राप्त हों ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जहां वायु और बिजुली के तुल्य वर्त्तमान अविद्या के विनाश और विद्या के प्रकाश-कर्त्ता धर्म के उपदेशकर्त्ता अध्यापक और उपदेशक होवें वहां सम्पूर्ण सुख बढ़ें ॥४॥

विद्वानों को परमात्मा के तुल्य जगत् को आनन्दित करना चाहिये,
इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने॑ अ॒पां समि॑ध्यसे दुरो॒णे नित्यः॑ सूनो सहसो जातवेदः ।
स॒धस्था॑नि म॒हय॑मान ऊ॒ती ॥५॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र के तुल्य वर्त्तमान वा अविद्या के नाशकारक (जातवेदः) सम्पूर्ण उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (नित्यः) अपने स्वरूप से नाशरहित (महयमानः) पूजने अर्थात् आदर करने योग्य जो आप (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (अपाम्) प्राणों के मध्य में सूर्य के सदृश (दुरोणे) रहने के स्थान गृह में (सम्) (इध्यसे) प्रकाशित होते उन आप को चाहिये कि सम्पूर्ण मनुष्यों के (सधस्थानि) तुल्य स्थानों और आत्माओं को विद्या धर्म्म विनय से प्रकाशित करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावयुक्त और सच्चित् आनन्द आदि लक्षण विशिष्ट परमात्मा सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न और रक्षित कर आनन्दित करता है वैसे ही सत्य-वक्ता विद्वान् पुरुषों को चाहिये कि सम्पूर्ण इस संसार को आनन्दयुक्त करें ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

१ । ६ । ८ । ९ विश्वामित्रः । ७ आत्मा ऋषिः । १ । ३ वैश्वानरः । ४ । ६ मरुतः। ७ । ८ अग्निरात्मा वा । ९ विश्वामित्रोपाध्यायो देवता । १—६ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ७—९ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।

अब नव ऋचा वाले छब्बीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि आदि से विद्वान् क्या सिद्ध करें इस विषय को कहते हैं ॥

वैश्वानरं मनसाग्निं निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्यं स्वर्विदम् ।
सुदानुं देवं रथिरं वसूयवो गीर्भी रण्वं कुशिकासो हवामहे ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (कुशिकासः) उपदेशक जन (हविष्मन्तः) देने योग्य वस्तुओं से युक्त (वसूयवः) धन इकट्ठा करने में तत्पर हम लोग (मनसा) विज्ञान से (निचाय्य) निश्चय कराकर (स्वर्विदम्) धन की प्राप्ति कराने वाले (रण्वम्) शब्द करते हुए (रथिरम्) सुन्दर वाहनों से युक्त (अनुषत्यम्) सत्य के अनुकूल (सुदानुम्) उत्तम पदार्थों के देने वाले (देवम्) प्रकाशकारक (वैश्वानरम्) सम्पूर्ण मनुष्यों के प्रकाशकर्त्ता (अग्निम्) अग्नि को (हवामहे) ग्रहण करते हैं वैसे आप लोग भी इस अग्नि का (गीर्भिः) वाणियों से स्वीकार करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे मनुष्य अग्नि के गुणकर्मस्वभावों का निश्चय करके कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही पृथिवी आदि पदार्थों के गुणकर्मस्वभावों के निश्चय और उपकार से कार्यों को सिद्ध करो ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तं शुभ्रमग्निमवसे हवामहे वैश्वानरं मातरिश्वानमुक्थ्यम् ।
बृहस्पतिं मनुषो देवतातये विप्रं श्रोतारमतिथिं रघुष्यदम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (मनुषः) मननकर्त्ता (देवतातये) उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये (रघुष्यदम्) शीघ्रगामी (विप्रम्) बुद्धिमान् (श्रोतारम्) वेदशास्त्र आदि सुनने वाले को (अतिथिम्) अतिथि के तुल्य जिस को (अवसे) रक्षण आदि के लिये (मातरिश्वानम्) वायु में श्वासकारी (उक्थ्यम्) प्रशंसा करने योग्य (बृहस्पतिम्) पृथिवी आदि पदार्थों के धारक (वैश्वानरम्) राजा आदि में विराजमान (शुभ्रम्) प्रकाशमान (अग्निम्) बिजुली आदि स्वरूप अग्नि का (हवामहे) स्वीकार करते हैं (तम्) उसको आप लोग भी जानो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे पूर्ण विद्वान् अतिथि जन श्रोता जनों को ज्ञानयुक्त करता है उसी प्रकार अग्नि शिल्पी जनों के लिये अत्यन्त धनों को उत्पन्न करता है ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अश्वो न क्रन्दञ्जनिभिः समिध्यते वैश्वानरः कुशिकेभिर्युगेयुगे ।
स नो अग्निः सुवीर्यं स्वश्व्यं दधातु रत्नममृतेषु जागृविः ॥३॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! जो (वैश्वानरः) सम्पूर्ण मनुष्यों का प्रकाशकर्त्ता (जागृविः) जागरणशील (अग्निः) अग्नि (जनिभिः) उत्पन्न करने वाली घोड़ियों के साथ (क्रन्दन्) शब्द करते हुए (अश्वः) घोड़े के (न) तुल्य (कुशिकेभिः) शब्द करने वालों से (युगेयुगे) प्रत्येक वर्ष में (सम्) (इध्यते) प्रदीप्त होता है (सः) वह (नः) हम लोगों के लिये (सुवीर्यम्) उत्तम बल करने वाले (स्वश्व्यम्) उत्तम घोड़ों से युक्त (अमृतेषु) सुवर्ण आदि धनों में (रत्नम्) धन को (दधातु) धारण करता है उस का आप लोग भी संप्रयोग करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो मनुष्य लोग अग्नि को वाहन के चालन आदि कार्यों में संप्रयुक्त करते हैं तो यह अग्नि किस किस धन आदि वस्तु की वृद्धि न करे अर्थात् सब वस्तुओं की वृद्धि कर सकता है ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र यन्तु वाजास्तविषीभिरग्नयः शुभे संमिश्लाः पृषतीरयुक्षत ।
बृहदुक्षो मरुतो विश्ववेदसः प्र वेपयन्ति पर्वताँ अदाभ्याः ॥४॥

पदार्थः—हे वीरो ! आप लोग (तविषीभिः) पराक्रम आदिकों के साथ जैसे (वाजाः) वेग वाले (अग्नयः) अग्नि (विश्ववेदसः) सम्पूर्ण धनों से युक्त (बृहदुक्षः) अतिशय सेचनकारक (मरुतः) वायु (शुभे) जल में (संमिश्लाः) अच्छे प्रकार मिली हुई या सुन्दर प्रयुक्त (पृषतीः) सेचन में कारण (प्र) (यन्तु) प्राप्त होवें और (अदाभ्याः) नहीं मारने योग्य होकर (पर्वतान्) पर्वतों के सदृश ऊंचे मेघों को (प्र) (वेपयन्ति) कंपाते हैं वैसे आप लोग भी परस्पर मित्र होकर शत्रुओं को कंपाओ और बलयुक्त सेना का सञ्चय करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे जल में मिले हुए पृथिवी अग्नि वायु वर्त्तमान हैं वैसे ही जो लोग सेना में मित्र होकर वर्त्तमान उनका निश्चय विजय होता है ॥४॥

फिर वायु आदि से क्या सिद्ध करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निश्रियो मरुतो विश्वकृष्टय आ त्वेषमुग्रमव ईमहे वयम् ।
ते स्वानिनो रुद्रिया वर्षनिर्णिजः सिंहा न हेषक्रतवः सुदानवः ॥५॥

पदार्थः हे मनुष्यो! जैसे (वयम्) हम लोग जो (विश्वकृष्टयः) सम्पूर्ण सृष्टि के उत्पन्नकर्त्ता (अग्निश्रियः) अग्नि से धनयुक्त (स्वानिनः) अतिशय शब्दों से विशिष्ट (रुद्रियाः) अग्नि में उत्पन्न होने वाले (वर्षनिर्णिजः) वृष्टि के पवित्र करने वा पुष्ट करने वाले (मरुतः) वायुदल (सिंहाः) व्याघ्रों के (न) सदृश शब्द करते जिन को (हेषक्रतवः) शब्दरूप बुद्धि वा क्रिया वाले (सुदानवः) उत्तम दान-कारक हम लोग (आ, ईमहे) अच्छे प्रकार याचना करते हैं (ते) वे सब प्रकार मांगने योग्य हैं उन से हम लोग (उग्रम्) कठिन (त्वेषम्) प्रकाश और कठिन (अवः) रक्षण आदि की याचना करते हैं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि विद्वान् लोगों के सङ्ग से बुद्धिमान् होकर वायु आदि की सम्बन्धिनी पदार्थविद्या की प्रार्थना करें और सिंह के समान पराक्रम को धारण करें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिरग्नेर्भामं मरुतामोज ईमहे।

पृषदश्वासो अनवभ्रराधसो गन्तारो यज्ञं विदथेषु धीराः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (पृषदश्वासः) सेचनकर्त्ता और वेग आदि गुणयुक्त (अनवभ्रराधसः) अविनाशी धनों के दाता (गन्तारः) प्राप्त होने वाले पवनों के तुल्य (सुशस्तिभिः) सुन्दर स्तुतियों के साथ वर्त्तमान (धीराः) ध्यान वाले विद्वान् पुरुष (विदथेषु) विज्ञान आदिकों में (यज्ञम्) मेल करने और (अग्नेः) अग्नि से उत्पन्न (भामम्) तेज को (मरुताम्) पवनों के समीप से (ओजः) बल और अन्य पदार्थों के (व्रातंव्रातम्) वर्त्तमान वर्त्तमान (गणंगणम्) समूह समूह की याचना करते हैं वैसे ही हम लोग इस सब की (ईमहे) याचना करते हैं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य अग्नि वायु आदि पदार्थों से कार्य्यों के समूह को साधते हैं वे विद्वान् कहाते हैं ॥६॥

फिर मनुष्यों को विद्युत् के तुल्य वर्त्तना चाहिये, इस
विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्।

अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (अग्निः) अग्नि के सदृश (जन्मना) जन्म से

(जातवेदाः) ज्ञानयुक्त मैं (अस्मि) वर्त्तमान हूँ (मे) मेरा (चक्षुः) नेत्र इन्द्रिय (घृतम्) प्रकाशमान (मे) मेरे (आसन्) मुख में (अमृतम्) अमृतस्वरूप रस हो जैसे (रजसः) लोक समूह का (विमानः) अनेक प्रकार के मानसहित (त्रिधातुः) तीन धातुओं से युक्त (अर्कः) वज्र या बिजुली (अजस्रः) निरन्तर चलने वाला (घर्मः) प्रदीप्त सूर्य्य (हविः) हवन सामग्री है वैसे ही (नाम) प्रसिद्ध मैं (अस्मि) हूँ ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि बिजुली के सदृश कार्य्यसिद्धि का धारण रोग का नाशकारक भोजन करना और शत्रुओं का निवारण करें तो बिजुली का फल प्राप्त होवे ॥७॥

अब शुद्ध मनुष्य कौन हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्रिभिः पवित्रैरपुपोद्ध्यर्१्कं हृदा मतिं ज्योतिरनु प्रजानन् ।
वर्षिष्ठं रत्नमकृत स्वधाभिरादिद् द्यावापृथिवी पर्य्यपश्यत् ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (त्रिभिः) शरीर वाणी और मन से (पवित्रैः) पवित्र करने में कारण तेजों और (हृदा) हृदय से (अर्कम्) उत्तम प्रकार संस्कार किये अन्न को (अपुपोत्) पवित्र करे (हि) जिससे (ज्योतिः) प्रकाश तथा (मतिम्) बुद्धि को (अनु) (प्रजानन्) अनुकूल जानता हुआ (स्वधाभिः) अन्न आदिकों से (वर्षिष्ठम्) अतिशय वृद्धियुक्त (रत्नम्) सुन्दर धन को (अकृत) करे वह (आत्) (इत्) अनन्तर ही (द्यावापृथिवी) प्रकाश और अन्तरिक्ष को (परि) सब प्रकार (अपश्यत्) देखे ॥८॥

भावार्थः—वे ही शुद्ध मनुष्य हैं जो कि उत्तम बुद्धि को प्राप्त होकर अन्य मनुष्यों को विद्या और विनयों से सन्तुष्ट करके लक्ष्मी आदि की उन्नति सिद्ध करें ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शतधारमुत्समक्षीयमाणं विपश्चितं पितरं वक्त्वानाम् ।
मेळिं मदन्तं पित्रोरुपस्थे तं रोदसी पिपृतं सत्यवाचम् ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (उत्सम्) कूप के सदृश (अक्षीयमाणम्) विद्या के विज्ञान से थाहरहित पूर्ण विद्यायुक्त (शतधारम्) सैकड़ों प्रकार की उत्तम शिक्षा सहित वाणी वाले (पितरम्) पिता के तुल्य वर्त्तमान (वक्त्वानाम्) कहने को इकट्ठे किये गये वाक्यों के वक्ता (मेळिम्) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी और (मदन्तम्) स्तुतिकारक (सत्यवाचम्) सत्य वाणीयुक्त जिस (विपश्चितम्) विद्वान् पुरुष को

(पित्रोः) पिता माता के (उपस्थे) समीप में (रोदसी) भूमि सूर्य्य (पिपृतम्) पालते हैं उस ही की सब लोग अपने आत्मा के तुल्य सेवा करो ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो पूर्ण विद्वान् अति सूक्ष्म बुद्धि युक्त पृथिवी के सदृश क्षमाशील सूर्य्य के सदृश अन्तःकरण से शुद्ध विद्वान् मनुष्यों में पिता के सदृश वर्त्ताव रक्खे उसी की सब लोग अपने आत्मा के तुल्य सेवा करें ॥९॥

इस सूक्त में विद्वान् अग्नि और वायु के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । १ ऋतवोऽग्निर्वा । २—१५ अग्निर्देवता । १ । ७—१० । १४ । १५ निचृद्गायत्री । २ । ३ । ६ । ११ । १२ गायत्री । ४ । ५ । १३ विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले सत्ताईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वो॒ वाजा॑ अ॒भिद्य॑वो ह॒विष्म॑न्तो घृ॒ताच्या॑ ।

दे॒वाञ्जि॑गाति सुम्न॒युः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वः) आप लोगों के (अभिद्यवः) चारों ओर से प्रकाशमान (हविष्मन्तः) बहुत सी देने योग्य वस्तुओं से युक्त (वाजाः) विज्ञान आदि पदार्थ (घृताच्या) जल को प्राप्त होने वाली रात्रि के सहित वर्त्तमान हैं उन से युक्त जो (सुम्नयुः) अपने सुख का अभिलाषी (देवान्) विद्वानों की (प्र, जिगाति) उत्तम प्रकार स्तुति करता है उन विद्वानों और स्तुतिकारक उस पुरुष को आप लोग प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थः—जैसे दिन में पदार्थ सूखते और रात्रि में गीले होते हैं उसी प्रकार जो अपने पदार्थ हैं वे औरों के और जो औरों के हैं वे अपने हैं इस प्रकार सुख की इच्छा से विद्वानों का सङ्ग करना चाहिये ॥१॥

फिर अग्नि से क्या सिद्ध होता है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ई॒ळे अ॒ग्निं वि॑प॒श्चितं॑ गि॒रा य॒ज्ञस्य॒ साध॑नम् ।

श्रु॒ष्टी॒वानं॑ धि॒ताव॑नम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (गिरा) वाणी से (यज्ञस्य) अहिंसारूप यज्ञ की (साधनम्) सिद्धि करने (श्रुष्टीवानम्) शीघ्र चलने वा चलाने वाले (धितावानम्) पदार्थों के धारणकर्त्ता (अग्निम्) अग्नि के सदृश तेजस्वी (विपश्चितम्) पण्डित विद्वान् की (ईळे) स्तुति करता हूं वैसे आप लोग भी स्तुति करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे किसी पदार्थ के जोड़ने आदि व्यवहार की सिद्धि के लिये अग्नि मुख्योपकारी है वैसे ही धर्म अर्थ काम और विद्या की प्राप्ति के लिये विद्वान् जन मुख्य है ऐसा जानना चाहिये ॥२॥

विद्वानों का सङ्ग सब को करना चाहिये, इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने॑ श॒केम॑ ते व॒यं यमं॑ दे॒वस्य॑ वा॒जिनः॑ । अति॒ द्वेषाँ॑सि तरेम ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश पवित्र पुरुषार्थी पुरुष ! आप जैसे (वयम्) हम लोग (वाजिनः) विज्ञानयुक्त (देवस्य) विद्वान् (ते) आप के (यमम्) उत्तम नियम को प्राप्त होने के लिये (शकेम) समर्थ हों और (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कर्मों के (अति) (तरेम) पार पहुंचें ऐसा यत्न करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मोक्ष आदि की जिज्ञासाकारक पुरुषों को चाहिये कि विद्वान् पुरुषों की ऐसे प्रार्थना करें कि जिस प्रकार हम लोग उत्तम नियमों को प्राप्त होकर द्वेष आदि दुष्ट व्यसनों के पार जायं ऐसी हम लोगों के ऊपर कृपा करिये ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स॒मि॒ध्यमा॑नो अध्व॒रे॒३॒॑ग्निः पा॑व॒क ईड्यः॑ । शो॒चिष्के॑श॒स्तमी॑महे ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अध्वरे) अहिंसा रूप यज्ञ में (समिध्यमानः) उत्तम रीति से प्रकाशमान (शोचिष्केशः) केशों के सदृश तेजों से युक्त (पावकः) पवित्र करने वाला (अग्निः) बिजुली के सदृश (ईड्यः) स्तुति करने योग्य होवे (तम्) उस की हम लोग (ईमहे) याचना करते हैं आप लोग भी इस का सेवन करिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे इस संसार में अग्निरूप पदार्थ ही सम्पूर्ण पदार्थों से श्रेष्ठ है इसलिये इस अग्नि विषयिणी विद्या की प्रार्थना करनी योग्य है, वैसे ही विद्वान् लोग सम्पूर्ण मनुष्यों में श्रेष्ठ और उन की विद्याप्राप्ति के लिये प्रार्थना करनी चाहिये ॥४॥

विद्वान् लोग अग्नि के तुल्य कार्यसाधक होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पृथुपाजा अमर्त्यो घृतनिर्णिक् स्वाहुतः ।
अग्निर्यज्ञस्य हव्यवाट् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जो (पृथुपाजाः) विस्तार सहित बलयुक्त (अमर्त्यः) अपने स्वरूप से नाशरहित (यज्ञस्य) राज्यपालन आदि व्यवहार के (हव्यवाट्) प्राप्त होने योग्य वस्तुओं को धारण करने वाले (घृतनिर्णिक्) जल और घी के शोधने वाले (अग्निः) अग्नि के सदृश (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार आदर पूर्वक पुकारे गये उस विद्वान् पुरुष की निरन्तर सेवा करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे साधन और उपसाधनों से उपकार में लाया गया अग्नि कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही सेवा से संतुष्टता को प्राप्त किये विद्वान् लोग विद्या आदि की सिद्धि को सम्पादन करते हैं ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तं सबाधो यतस्रुच इत्था धिया यज्ञवन्तः । आ चक्रुरग्निमूतये ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (सबाधः) दुष्ट व्यसनों के नाशकर्त्ता (यतस्रुचः) उद्योगयुक्त कर्मसाधनों के सहित (यज्ञवन्तः) प्रशंसा करने योग्य प्रयत्न करने वाले जन (धिया) बुद्धि वा कर्म से (ऊतये) रक्षण आदि के लिये (अग्निम्) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष को (आ) (चक्रुः) आदर करते हैं वैसे (तम्) उस विद्वान् पुरुष की (इत्था) इसी प्रकार आप लोग भी सेवा करें ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे बुद्धि और कर्म में चतुर पुरुष उत्तम व्यवहारों को सिद्ध करते हैं वैसे ही धर्म आदि को जानने की इच्छायुक्त पुरुष, विद्वान् जन को प्रसन्न करके उत्तम गुणों को ग्रहण करें ॥६॥

फिर विद्यार्थी क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

होता देवो अमर्त्यः पुरस्तादेति मायया । विदथानि प्रचोदयन् ॥७॥

पदार्थः—हे धर्म आदि को जानने की इच्छा करने वाले पुरुषो ! जैसे (अमर्त्यः) मरणधर्म से रहित (होता) देने वाला (देवः) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त पुरुष (पुरस्तात्) पहिले से (मायया) उत्तम बुद्धि के साथ (विदथानि) विज्ञानों का (प्रचोदयन्) प्रचार करता हुआ आप लोगों को (एति) प्राप्त होता है वैसे उस को आप लोग भी प्राप्त होइये ॥७॥

भावार्थः—हे विद्यार्थी जनो ! जो अध्यापक पुरुष आप लोगों के लिये कपट त्याग के विद्या आदि उत्तम गुणों को देकर उत्तम शिक्षा देवे उसकी आप लोग भी अपने आत्मा के तुल्य सेवा करो ॥७॥

फिर विद्वानों से भिन्न जन क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वाजी वाजेषु धीयतेऽध्वरेषु प्र णीयते । विप्रो यज्ञस्य साधनः ॥८॥

पदार्थः—हे धर्म आदि की जिज्ञासा करने वाले पुरुषो ! जैसे ऋत्विजों से (वाजेषु) विज्ञान और क्रियास्वरूप (अध्वरेषु) मित्रता आदि गुणयुक्त व्यवहारों वा यज्ञों में (यज्ञस्य) उत्तम व्यवहार का (साधनः) सिद्धिकर्त्ता (वाजी) वेगयुक्त अग्नि (धीयते) धारण किया जाता है वैसे (विप्रः) बुद्धिमान् (प्र) (नीयते) प्राप्त किया जाता है ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे अग्निहोत्र आदि क्रियास्वरूप यज्ञों में मुख्यभाव से अग्नि का आश्रय किया जाता है वैसे ही विद्या विनय और उत्तम शिक्षा के व्यवहारों में विद्वान् का आश्रय करना चाहिये ॥८॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

धिया चक्रे वरेण्यो भूतानां गर्भमा दधे । दक्षस्य पितरं तना ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वरेण्यः) आदर करने योग्य अति श्रेष्ठ पुरुष (तना) विस्तारयुक्त (धिया) श्रेष्ठ बुद्धि वा शिक्षा से (दक्षस्य) चतुर विद्यार्थीपुरुष के (पितरम्) पिता के सदृश पालनकर्त्ता (भूतानाम्) प्राणियों के (गर्भम्) विद्या आदि उत्तम गुणों को स्थिति करने रूप गर्भ को (आ) (दधे) सब प्रकार धारण करै और विद्या सम्बन्धी वृद्धि को (चक्रे) करै तो उस की अपने आत्मा के सदृश सेवा करो ॥९॥

भावार्थः—जैसे पति अपनी स्त्री में गर्भ को धारण करके श्रेष्ठ सन्तानों को उत्पन्न करता है वैसे ही विद्वान् लोग मनुष्यों की बुद्धि में विद्या सम्बन्धी गर्भ की स्थिति करके उत्तम व्यवहारों को उत्पन्न करें ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नि त्वा दधे वरेण्यं दक्षस्येळा सहस्कृत ।
अग्ने सुदीतिमुशिजम् ॥१०॥

पदार्थः—हे (सहस्कृत) बलकारक (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजयुक्त पुरुष ! जैसे मैं (इळा) उत्तम उपदेश वा उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न आदि से (दक्षस्य)

पराक्रम के (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (सुदीतिम्) उत्तम विज्ञान के प्रकाश से युक्त (उशिजम्) उत्तम गुणों के प्रचार की कामना करने वाले (त्वा) आप को (नि) निश्चय से (दधे) धारण करूं वैसे ही आप मुझ को विद्या का पात्र करो ॥१०॥

भावार्थः—जैसे विद्यार्थी जन अध्यापक लोगों की इच्छा के अनुसार कर्म्मों को कर प्रसन्न रखते हैं वैसे ही अध्यापक लोग विद्यार्थियों की इच्छा के अनुकूल उत्तम गुणों को देकर प्रसन्न करें ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अ॒ग्निं य॒न्तुर॑म॒प्तुर॑मृ॒तस्य॒ योगे॑ व॒नुषः॑ । विप्रा॒ वाजैः॒ समि॑न्धते ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (वनुषः) याचना करने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् जन (ऋतस्य) सत्य के (योगे) योग में (वाजैः) विज्ञान आदिकों से (यन्तुरम्) प्राप्ति कारक (अप्तुरम्) प्राण वा जलों की प्रेरणाकर्त्ता (अग्निम्) अग्नि के सदृश तेजस्वी को (सम्) (इन्धते) उत्तम प्रकार प्रदीप्त करें वैसे ही सम्पूर्ण जनों से विद्याप्रकाश करने योग्य है ॥११॥

भावार्थः—जिस समय विद्वान् पुरुषों का सङ्ग होवे उस समय उत्तम विज्ञान ही की प्रश्न उत्तरों से याचना करनी चाहिये इस से अधिक लाभ और न समझना चाहिये ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ऊ॒र्जो नपा॑तमध्व॒रे दी॑दि॒वांस॒मुप॒ द्यवि॑ । अ॒ग्निमी॑ळे क॒विक्र॑तुम् ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस को (द्यवि) प्रकाश तथा (अध्वरे) मेल को प्राप्त संसार में (अग्निम्) अग्नि के सदृश तेजयुक्त (ऊर्जः) बल से (नपातम्) विनाशरहित (कविक्रतुम्) विद्वानों की बुद्धि वा कर्म को यज्ञ समझने वाला (दीदिवांसम्) प्रकाशमान विद्वान् पुरुष के (उप) समीप (ईळे) स्तुति करता हूं वैसे इस की आप लोग भी प्रशंसा करो ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे यज्ञ में अग्नि प्रकाशमान होकर शोभित होता है वैसे ही विद्या के प्रकाशकर्त्ता व्यवहार में विद्वान् जन प्रकाशित होते हैं ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ई॒ळेन्यो॑ नम॒स्य॑स्ति॒रस्तमां॑सि दर्श॒तः । सम॒ग्निरि॑ध्यते॒ वृषा॑ ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (तमांसि) रात्रियों के (तिरः) तिरस्कार करने वाले (अग्निः) अग्नि के सदृश प्रकाशमान (वृषा) वृष्टिकर्त्ता (दर्शतः) देखने (ईळेन्यः)

स्तुति करने और (नमस्यः) सत्कार करने योग्य पुरुष (सम्) उत्तम प्रकार (इध्यते) प्रकाशित किया जाता है उस का आप निरन्तर आदर करो ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य अन्धकार को दूर कर प्रकाश उत्पन्न करता है वैसे ही यथार्थवक्ता विद्वान् लोग अविद्या का नाश और विद्या का प्रकाश करते हैं ॥१३॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वृषो अग्निः समिध्यतेऽश्वो न देववाहनः । तं हविष्मन्त ईळते ॥१४॥

पदार्थः—जो (वृषः) वृष्टिकर्त्ता (देववाहनः) उत्तम वेग आदि गुणों को प्राप्त कराने वाला (अग्निः) अग्नि (अश्वः) शीघ्र चलने वाले घोड़े के (न) सदृश (सम्) (इध्यते) प्रकाशित किया जाता है (तम्) उस की (हविष्मन्तः) बहुत शीघ्र ग्रहण करने योग्य वस्तुओं से युक्त पुरुष (ईळते) स्तुति करते हैं ॥१४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे वल और वेग से युक्त घोड़े वाहन को शीघ्र ले चलते हैं वैसे ही अग्नि को भी समझना चाहिये और जैसे इस अग्नि के गुणों को विद्वान् लोग जानते हैं वैसे आप लोग भी जानिय ॥१४॥

फिर पढ़ने पढ़ाने के विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

वृषणं त्वा वयं वृषन्वृषणः समिधीमहि ।
अग्ने दीद्यतं बृहत् ॥१५॥

पदार्थः—हे (वृषन्) वलयुक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशकर्त्ता जन ! जैसे आप (बृहत्) बड़े (दीद्यतम्) प्रकाशकर्त्ता विज्ञान को प्रकाशित करते हैं वैसे ही (वयम्) हम लोग (वृषणम्) सुखवृष्टिकारक (त्वा) आप और अन्य जनों को (वृषणः) वलयुक्त (सम्) उत्तम प्रकार (इधीमहि) प्रकाशित करें ॥१५॥

भावार्थः—हे पढ़ाने और पढ़ने वाले पुरुषो ! आप लोगों को चाहिये कि विरोध को त्याग और प्रीति को उत्पन्न करके परस्पर की वृद्धि करो जिस से विद्या आदि उत्तम गुणों के प्रकाश से सम्पूर्ण मनुष्य वलयुक्त और न्यायकारी होवें ॥१५॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्ताईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । १ गायत्री । २ । ६ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ३ स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ निचृज्जगती छन्दः निषादः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले अट्ठाईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र से अग्नि और विद्वानों का वर्णन करते हैं ॥

अग्ने जुषस्व॑ नो ह॒विः पु॑रो॒ळाशं॑ जातवेदः ।
प्रा॒तः॒सा॒वे धि॑यावसो ॥१॥

पदार्थः—हे (धियावसो) उत्तम बुद्धि वा उत्तम गुणों के प्रचारकर्त्ता (जातवेदः) सकल उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष ! जैसे अग्नि (प्रातःसावे) प्रातःकाल के अग्निहोत्र आदि कर्म में (नः) हमारे (हविः) भक्षण करने योग्य (पुरोळाशम्) मन्त्रों से संस्कारयुक्त अन्न विशेष का सेवन करते हैं वैसे इस का आप (जुषस्व) सेवन करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे प्रातःकाल अग्निहोत्र आदि कर्मों में वेदी में स्थापित किया गया अग्नि घृत आदि का सेवन तथा उसको अन्तरिक्ष में फैलाय के जनों को सुख देता है वैसे ही ब्रह्मचर्य्यधर्म्म में वर्त्तमान विद्यार्थी जन विद्या और विनय का ग्रहण कर संसार में उन का प्रचार कर के सकल जनों को सुख देवें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पु॒रो॒ळा अ॑ग्ने पच॒तस्तुभ्यं॑ वा घा॒ परि॑ष्कृतः ।
तं जु॑षस्व यविष्ठ्य ॥२॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ्य) अतिशय युवा पुरुषों में चतुर (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी जन ! जो (तुभ्यम्) आप के लिये (पुरोळाः) वेदविधि से संस्कारयुक्त (पचतः) पाककर्त्ता हुआ (वा) अथवा (परिष्कृतः) सब प्रकार शुद्ध किया गया है (तम्) उस को (घ) ही (जुषस्व) सेवन करो ॥२॥

भावार्थः—जैसे भोजन में प्रीतिकर्त्ता पुरुष अपने लिये उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न आदि पदार्थों को सिद्ध और उनका भोजन करके आनन्दयुक्त होता है वैसे ही उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त हवन की सामग्री को प्राप्त होकर अग्नि सम्पूर्ण जनों को आनन्द देता है ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुतं तिरोअह्न्यम् ।

सहसः सूनुरस्यध्वरे हितः ॥३॥

पदार्थः– हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष ! आप अग्नि के तुल्य (तिरोअह्न्यम्) दिन के प्रथम भाग में उत्पन्न वा उत्तम (आहुतम्) चारों ओर से दिये गये (पुरोळाशम्) अनेक प्रकारों के संस्कारों से युक्त अन्न को (वीहि) प्राप्त होइये जिससे आप (सहसः) बल वा बलवान् वायु के (सूनुः) पुत्र के तुल्य (अध्वरे) दयारूप व्यवहार में सब के (हितः) हितकारी (असि) वर्त्तमान हैं इस कारण से सत्कार करने योग्य हैं ॥३॥

भावार्थः– इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि वायु से उत्पन्न होकर स्वरूपवान् द्रव्य को भस्म करके विभाग करता है वैसे ही विद्या से पवित्रात्मा पुरुष अविद्या के व्यवहार को भस्म अर्थात् दूर करके सत्य और असत्य का विभाग करता है ॥३॥

अब कौन मनुष्य सुखी होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

माध्यंदिने सवने जातवेदः पुरोळाशमिह कवे जुषस्व ।

अग्ने यह्वस्य तव भागधेयं न प्र मिनन्ति विदथेषु धीराः ॥४॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) विज्ञान से युक्त (कवे) उत्तम बुद्धिमान् (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजयुक्त ! आप (इह) इस संसार में जो (धीराः) योगी जन (यह्वस्य) श्रेष्ठ (तव) आप के (विदथेषु) विज्ञान वा संग्रामों में (भागधेयम्) भाग्य को (न) नहीं (प्र) (मिनन्ति) नाश करते हैं उस शिक्षा से सहित होकर (माध्यन्दिने) दिन के मध्य समय के (सवने) होम आदि कर्म में अग्नि के सदृश (पुरोळाशम्) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न आदि का (जुषस्व) सेवन करो ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रातःकाल तथा दिन के मध्यभाग समय के होमों को करके उत्तम प्रकार छौंकने आदि से संस्कारयुक्त नित्य नियमित अन्न का भोजन करते हैं वे ही भाग्यशाली होकर बड़े सुख और निश्चित विजय को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने तृतीये सवने हि कानिषः पुरोळाशं सहसः सूनवाहुतम् ।

अथा देवेष्वध्वरं विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृविम् ॥५॥

पदार्थः—हे (कानिषः) कामना करने योग्य (सहसः) बलयुक्त के (सूनो) पुत्र (अग्ने) बिजुली के सदृश बलयुक्त ! आप (हि) जैसे (विपन्यया) विशेष करके स्तुतियुक्त प्रशंसा सहित बुद्धि वा क्रिया से (तृतीये) तीसरे समय के (सवने) होम आदि कर्म में (अथ) और (देवेषु) विद्वान् वा उत्तम गुणों में (अमृतेषु) नाशरहित जगदीश्वर आदि पदार्थों में (जागृविम्) जागने वाले (रत्नवन्तम्) बहुत रत्नों से विशिष्ट (आहुतम्) सब प्रकार स्वीकार किये गये (अध्वरम्) अहिंसा आदि स्वरूप धर्मयुक्त व्यवहार और (पुरोळाशम्) रोग के दूर करने वाले अन्न को (धाः) धारण करो ॥५॥

भावार्थः—जो लोग परमेश्वर आदि पदार्थों के विज्ञान से अहिंसा आदि व्यवहार में वर्त्तमान नियमपूर्वक भोजन विहारयुक्त होकर ऐश्वर्य की वृद्धि करने की इच्छा करते हैं वे सब प्रकार सुखी होते हैं ॥५॥

फिर विद्वान् लोग कैसा वर्त्ताव करते, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्ने॑ वृधा॒न आहु॑तिं पु॒रो॒ळाशं॑ जातवेदः ।

जु॒षस्व॑ ति॒रोअ॑ह्न्यम् ॥६॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) सम्पूर्ण उत्पन्न हुए पदार्थों में व्यापक (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी ! जैसे (वृधानः) बढ़ा हुआ अग्नि (आहुतिम्) चारों ओर अग्नि में छोड़े गये (तिरोअह्न्यम्) प्रातःकाल किये गये (पुरोळाशम्) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न आदि का सेवन करते हैं वैसे उसकी आप (जुषस्व) सेवा करो ॥६॥

भावार्थः—जैसे बिजुली सब स्थानों में व्याप्त होकर सम्पूर्ण मूर्तिमान् पदार्थों का सेवन करती है वा प्रसिद्ध हुई बढ़ती है वैसे ही विद्याओं में व्यापक विद्वान् जन धर्म की सेवा करते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अट्ठाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । १—४ । ६—१६ अग्निः । ५ ऋत्विज अग्निर्वा देवता । १ निचृदनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् । १० । १२ भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ भुरिक् पङ्क्तिः । १३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ५ । ६ त्रिष्टुप् । ७ –९ । १६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ११ । १४ । १५ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब तृतीय मण्डल में सोलह ऋचा वाले उनतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मंत्र से विद्युत् अग्नि और वायु से विद्वान् लोग किस किस कार्य को सिद्ध करते हैं इस विषय को कहा है॥

अस्तीदमधिमन्थनमस्ति प्रजननं कृतम्।
एतां विश्पत्नीमा भराग्निं मन्थाम पूर्वथा ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! जो (इदम्) यह (अधिमन्थनम्) ऊपर के भाग में वर्त्तमान मथने का वस्तु (अस्ति) विद्यमान है और जो (प्रजननम्) प्रकट होना (कृतम्) किया (अस्ति) है उन दोनों से (एताम्) इस (विश्पत्नीम्) प्रजाजनों के पालन करने वाली को हम लोग (पूर्वथा) प्राचीन जनों के तुल्य (अग्निम्) विद्युत् को (मन्थाम) मन्थन करें और (आ) (भर) सब ओर से आप लोग ग्रहण करो ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य ऊपर और नीचे के भाग में स्थित मथने की वस्तुओं के द्वारा घिसने से विजुलीरूप अग्नि को उत्पन्न करें वे प्रजाओं के पालन करने वाले सामर्थ्य को प्राप्त होते हैं और जैसे पूर्व काल के कारीगरों ने शिल्पक्रिया से अग्नि आदि सम्बन्धिनी विद्या की सिद्धि की हो उस ही प्रकार से सम्पूर्ण जन इस अग्निविद्या को ग्रहण करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भइव सुधितो गर्भिणीषु।
दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः ॥२॥

पदार्थः—जिन (हविष्मद्भिः) बहुत साधनों के ग्रहण करने तथा (जागृवद्भिः) अविद्या आलस्य और निद्रा त्याग विद्या और पुरुषार्थ आदि को प्राप्त होने और (मनुष्येभिः) मनन करने वाले पुरुषों ने (अरण्योः) ऊपर और नीचे के भाग में वर्त्तमान साधनों के मध्य में (निहितः) स्थित (गर्भिणीषु) गर्भवती स्त्रियों में (गर्भइव) जैसे गर्भ रहता वैसे वर्त्तमान (दिवेदिवे) प्रतिदिन (ईड्यः) खोजने योग्य (जातवेदाः) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण पदार्थों में वर्त्तमान (अग्निः) अग्नि (सुधितः) उत्तम प्रकार धारण किया उन पुरुषों को भाग्यशाली जानना चाहिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य सृष्टि के क्रम से वर्त्तमान अग्नि आदि पदार्थों की प्रतिदिन परीक्षा करें करावें तो वे क्यों दरिद्र होवें ? ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत्तानायामव भरा चिकित्वान्सद्यः प्रवीता वृषणं जजान ।
अरुषस्तूपो रुशदस्य पाज इळायास्पुत्रो वयुनेऽजनिष्ट ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष (चिकित्वान्) बुद्धिमान् ! आप (उत्तानायाम्) सीधेपन से सोते हुए मनुष्य के तुल्य वर्त्तमान भूमि में जो (प्रवीता) बहुत व्याप्त विजुली (वृषणम्) वृष्टिकर्त्ता सूर्य को (जजान) उत्पन्न करती है उस को (अव) (भर) धारण करो और जो (अरुषस्तूपः) मर्मस्थलों में क्लेशदायकों में प्रशंसायुक्त (अस्य) इस संसार के (पाजः) बल के (रुशत्) नाशकारक (इळायाः) वाणी के (पुत्रः) पुत्र के सदृश स्थित (वयुने) विज्ञान में (अजनिष्ट) उत्पन्न होता है उस को (सद्यः) शीघ्र धारण करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य पुत्र को माता के तुल्य अग्निविद्या को धारण करते हैं वे अपना बल बढ़ाकर विज्ञान को उत्पन्न करते हैं और जब नीचे के भाग में अग्नि ऊपर जल स्थित करके वायु से प्रज्वलित करते हैं तब अग्नि और जल द्वारा बहुत से कार्य सिद्ध कर सकते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इळायास्त्वा पदे वयं नाभा पृथिव्या अधि ।
जातवेदो नि धीमह्यग्ने हव्याय वोढवे ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो ! जैसे (वयम्) हम लोग (इळायाः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (पदे) प्राप्त होने पर (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के (नाभा) मध्य में (हव्याय) प्रशंसा करने योग्य (वोढवे) वाहन के लिये (त्वा) उस (जातवेदः) धनों के उत्पन्नकर्त्ता (अग्ने) अग्नि को (नि) (धीमहि) उत्तम प्रकार धारण करें वैसे ही आप लोग भी धारण करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग इस अग्नि की पृथिवी के ऊपर और अन्तरिक्ष के मध्य में उत्तम प्रकार परीक्षा ले के वाहन आदि चलाने के लिये अग्नि को धारण करते हैं वे धनयुक्त होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मन्थता नरः कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं सुप्रतीकम् ।
यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरस्तादग्निं नरो जनयता सुशेवम् ॥५॥

पदार्थः—हे (नरः) नायको ! आप लोग (कविम्) तेजस्वी स्वरूपयुक्त (अद्वयन्तम्) अपने केवल रूप से रहित के सदृश आचरण करते हुए (प्रचेतसम्) अतिशय प्रकटकर्त्ता (अमृतम्) अपने स्वरूप से नाशरहित (सुप्रतीकम्) उत्तम प्रकार विश्वासकर्त्ता (अग्निम्) अग्नि का (मन्थत) मन्थन करो । हे (नरः) प्रधान पुरुषो ! (यज्ञस्य) अहिंसारूप यज्ञ के (केतुम्) पताका के सदृश जनाने वाले (प्रथमम्) प्रसिद्ध (सुशेवम्) सुन्दर द्रव्यपात्र के सदृश अग्नि को (पुरस्तात्) प्रथम से उत्पन्न करो ॥५॥

भावार्थ—जो मनुष्य मथ कर अग्नि को उत्पन्न करके कार्य्यों को सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदी मन्थन्ति बाहुभिर्वि रोचतेऽश्वो न वाज्यरुषो वनेष्वा ।
चित्रो न यामन्नश्विनोरनिवृतः परि वृणक्त्यश्मनस्तृणा दहन् ॥६॥

पदार्थ—जो मनुष्य (बाहुभिः) बाहुओं से (यदि) यदि अग्नि को (मन्थन्ति) मन्थते हैं तो वह (वनेषु) किरणों में (अरुषः) मर्मस्थलों में वर्त्तमान (वाजी) वेगयुक्त (अश्वः) उत्तम घोड़े के (न) सदृश (वि) (आ, रोचते) विशेष भाव से प्रकाशित होता है (अश्विनोः) सूर्य्य चन्द्रमा के मध्य में (अनिवृतः) निरन्तर प्राप्त (यामन्) रात्रि में (चित्रः) अद्भुत के (न) तुल्य (तृणा) घास विशेषों को (दहन्) भस्म करता हुआ (अश्मनः) पत्थर वा मेघ का (परि) सब प्रकार (वृणक्ति) छेदन करता है उस को इस प्रकार सब लोग प्रकट करें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। घिसने से बलयुक्त हुआ अग्नि काष्ठ आदि को जलाता और घोड़े के तुल्य वेगवान् होता हुआ अद्भुत कार्यों को सिद्ध करता है, यह जानना चाहिये ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

जातो अग्नी रोचते चेकितानो वाजी विप्रः कविशस्तः सुदानुः ।
यं देवास ईड्यं विश्वविदं हव्यवाहमदधुरध्वरेषु ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (देवासः) विद्वान् लोग (अध्वरेषु) मेल करने रूप व्यवहारों में (यम्) जिस (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (विश्वविदम्) सम्पूर्ण वस्तुओं के ज्ञाता (हव्यवाहम्) हवन करने योग्य पदार्थों के धारणकर्त्ता अग्नि को (अदधुः) धारण करें वह (चेकितानः) उत्तम कार्य्यों का जताने (सुदानुः) उत्तम प्रकार देने वाला और (कविशस्तः) उत्तम पुरुषों से प्रशंसित हुए (विप्रः) बुद्धिमान् के सदृश

(जातः) प्रकटता को प्राप्त (वाजी) वेगयुक्त (अग्निः) अग्नि (रोचते) प्रकाशित होता है ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो बिजुली सम्बन्धी विद्या को सिद्ध करें तो यह विद्या यथार्थवक्ता विद्वान् पुरुष के तुल्य सत्य और योग्य कार्य्यों को सिद्ध करै ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सीद॑ होतः॒ स्व उ॑ लो॒के चि॑कि॒त्वान्त्सा॒दया॑ य॒ज्ञं सु॑कृ॒तस्य॒ योनौ॑ ।
दे॒वा॒वीर्दे॒वान्ह॒विषा॑ यजा॒स्यग्ने॑ बृ॒हद्यज॑माने॒ वयो॑ धाः ॥८॥

पदार्थः—हे (होतः) सुख देने वाले (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष ! आप (स्वे) अपने (लोके) दर्शन में (सीद) वर्त्तमान हो (चिकित्वान्) ज्ञानयुक्त होकर (सुकृतस्य) पुण्य कर्म के (योनौ) कारण वा स्थान में (यज्ञम्) धर्मसम्बन्धी व्यवहार को (सादय) स्थित करो (देवावीः) विद्वानों की रक्षाकर्त्ता (हविषा) दान से (देवान्) उत्तम गुण वा विद्वान् पुरुषों को (यजासि) यज्ञ करैं वा स्वीकार करैं (उ) यह तर्क है कि (यजमाने) योग्य धर्मसम्बन्धी व्यवहार के कर्त्ता पुरुष में (बृहत्) बड़े (वयः) जीवन वा धर्म आदि को (धाः) धारण करैं ॥८॥

भावार्थः—जैसे अग्निहोत्र आदि वा शिल्प आदि सङ्गति के योग्य व्यवहार में संयुक्त किया गया अग्नि उत्तम गुणों को प्रकट करता है वैसे ही विद्वान् पुरुष को चाहिये कि धर्मसम्बन्धी कर्मों से युक्त करके उत्तम सुखों को संसार में फैलावे ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

कृ॒णोत॑ धू॒मं वृष॑णं सखा॒योऽस्रे॑धन्त इतन॒ वाज॒मच्छ॑ ।
अ॒यम॒ग्निः पृ॑तना॒षाट् सु॒वीरो॒ येन॑ दे॒वासो॒ अस॑हन्त॒ दस्यू॑न् ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (अस्रेधन्तः) उत्साह से पूरित (सखायः) मित्र हुए (वृषणम्) जल से अच्छे प्रकार सींचे गये (धूमम्) भाफ को (कृणोत) करो (वाजम्) अन्न वेग और विज्ञान आदि को (अच्छ) उत्तम प्रकार (इतन) प्राप्त होओ तो (अयम्) यह (अग्निः) बिजुली के सदृश तेजस्वी (पृतनाषाट्) सेनाओं के सहित वर्त्तमान (सुवीरः) श्रेष्ठ वीरों से युक्त और (येन) जिस पुरुष के साथ (देवासः) विद्वान् वा शूर लोग (दस्यून्) अति दुष्ट कर्म करने वाले जनों को (असहन्त) सहते हैं उस को प्राप्त होइये ॥९॥

भावार्थः—हे विद्वान् जनो ! काष्ठ अग्नि और जल के संयोग से

उत्पन्न हुये धूम से अनेक कार्य्यों को परस्पर मित्र भाव के साथ सिद्ध करो जैसे धर्मपूर्वक वर्त्ताव रखने वाले विद्यायुक्त शूरवीर पुरुष दुष्टकर्मकारियों का नाश करके राजा होते हैं वैसे ही यह अग्नि उत्तम प्रकार यन्त्र आदि से युक्त किया गया दारिद्र्य आदि को नाश करके अनगिनती धन को उत्पन्न करता है ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ सीदाथा नो वर्धया गिरः ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! जो (ते) आप का (अयम्) यह अग्नि आदि पदार्थ विद्या के ज्ञान का आधार (ऋत्वियः) समयों के योग्य (योनिः) सुख का घर है (यतः) जहां से (जातः) प्रकट हुआ (अरोचथाः) प्रकाशित हो (तम्) उसको (जानन्) जानते हुए यहां (आ) (सीद) स्थिर होइये और (अथ) इसके अनन्तर (नः) हम लोगों की (गिरः) विद्या और उत्तम शिक्षा-युक्त वाणियों की (वर्धय) उन्नति कीजिये ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि जिस जिस कर्म से शरीर आत्मा और ऐश्वर्य्यों की वृद्धि हो वह वह कर्म सब काल में करें ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

तनूनपादुच्यते गर्भ आसुरो नराशंसो भवति यद्विजायते ।
मातरिश्वा यदमिमीत मातरि वातस्य सर्गो अभवत्सरीमणि ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (तनूनपात्) सर्वत्र व्यापक (उच्यते) कहा जाता है (आसुरः) प्रकटरूप से रहित वायु से उत्पन्न (गर्भः) मध्य में वर्त्तमान (नराशंसः) मनुष्यों से प्रशंसित (भवति) होता है (मातरिश्वा) वायु में श्वास लेने वाला (विजायते) विशेषभाव से उत्पन्न होता है और (यत्) जो (वातस्य) वायु सम्बन्धी (मातरि) आकाश में (सर्गः) उत्पत्ति (अमिमीत) रची जाती है (सरीमणि) गमनरूप व्यवहार में (अभवत्) होवै वह अग्नि सम्पूर्ण जनों से जानने योग्य है ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य वायु और अग्नि से कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे सुखों से संयुक्त होते हैं ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सुनिर्मथा निर्मथितः सुनिधा निहितः कविः ।
अग्ने स्वध्वरा कृणु देवान्देवयते यज ॥१२॥

पदार्थः—(अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् पुरुष ! जैसे (सुनिर्मथा) सुन्दर मथने के वस्तु से (निर्मथितः) अत्यन्त मथा (सुनिधाः) उत्तम आधार वस्तु में (निहितः) धरा गया (कविः) और सर्वत्र दीख पड़ने वाला अग्नि बहुत से कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही (स्वध्वरा) उत्तम अहिंसा आदि कर्मों से युक्त (देवान्) उत्तम गुणों को (कृणु) धारण करो और इन (देवयते) उत्तम गुणों की कामना करते हुए पुरुष के लिये उन गुणों को (यज) दीजिये ॥१२॥

भावार्थः—जैसे विद्या से रचे हुए कलायन्त्रों में रक्खा गया अग्नि अत्यन्त मथने और घिसने से वेग आदि गुणों को उत्पन्न कर बहुत से कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही उत्तम कर्म्मों को करके श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होओ ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अजीजनन्नमृतं मर्त्यासोऽस्रेमाणं तरणिं वीळुजम्भम् ।
दश स्वसारो अग्रुवः समीचीः पुमांसं जातमभि सं रभन्ते ॥१३॥

पदार्थः—जैसे (अग्रुवः) आगे चलने वाली (समीचीः) उत्तम प्रकार मिली हुई (दश) दश संख्या परिमित (स्वसारः) बहिनों के समान वर्त्तमान अंगुलियां (जातम्) प्रसिद्ध (पुमांसम्) पुरुषार्थ से युक्त मनुष्य को (अभि) सम्मुख (सम्) उत्तम प्रकार (रभन्ते) प्रवृत्त करती हैं वैसे (मर्त्यासः) मनुष्य (वीळुजम्भम्) मुख के सदृश ज्वाला से शोभित (तरणिम्) मार्गों से यत्न द्वारा इष्ट स्थान में पहुंचाने वाला (अस्रेमाणम्) नाश रहित (अमृतम्) नित्य अग्नि को (अजीजनन्) उत्पन्न करते हैं ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे हाथों की अंगुलियां परस्पर मिली हुई शरीरधारी मनुष्य को कार्य्यों में प्रवृत्त करती हैं वैसे ही विद्वान् पुरुष अग्नि को क्रिया में लगाते अर्थात् उसके द्वारा कार्य्य सिद्ध करते हैं ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

प्र सप्तहोता सनकादरोचत मातुरुपस्थे यदशोचदूधनि ।
न नि मिषति सुरणो दिवेदिवे यदसुरस्य जठरादजायत ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सप्तहोता) सात प्राणों से ग्रहण करने योग्य अग्नि (सनकात्) अनादि परम्परा से सिद्ध कारण से उत्पन्न हुआ (मातुः) वायु के (उपस्थे) समीप में (प्रारोचत) प्रकाशित होता है (यत्) जो (ऊधनि) रात्रि में (अशोचत्) प्रकाशित होता है और जो (सुरणः) श्रेष्ठ युद्ध का साधन (दिवेदिवे) प्रतिदिन (न) (नि) अत्यन्त (मिषति) नहीं सींचता है (यत्) जो (असुरस्य) रूप से रहित वायु के (जठरात्) मध्य से (अजायत) उत्पन्न होता है उसको अच्छे प्रकार जानो ॥१४॥

भावार्थः— जो अग्नि अन्न आदि को शुष्क करने वाला वायु रूप कारण से प्रसिद्ध प्रकृति नामक कारण से उत्पन्न हुआ है उस को जान कर वहुत से व्यवहारों को सकल जन प्रसिद्ध करें ॥१४॥

फिर उसी विषयको अगले मन्त्र में कहा है ॥

अमित्रायुधो मरुतामिव प्रयाः प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदुः ।
द्युम्नवद्ब्रह्म कुशिकास एरिर एकएको दमे अग्निं समीधिरे ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (मरुतामिव) मनुष्यों के सदृश (अमित्रायुधः) शत्रुओं के ऊपर शस्त्र चलाने (प्रयाः) शीघ्र चलने वाले (प्रथमजाः) प्रथम कारण से उत्पन्न (कुशिकासः) उच्च पदवी को प्राप्त (एकएकः) प्रत्येक जन (दमे) गृह में (अग्निम्) अग्नि को (सम्) (ईधिरे) प्रज्वलित करें और जो (ब्रह्मणः) परमात्मा के (विश्वम्) सम्पूर्ण जगत् को (विदुः) जानते हैं वे (इत्) ही (द्युम्नवत्) उत्तम यशयुक्त (ब्रह्म) वहुत धन को (आ, ईरिरे) प्राप्त होते हैं ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे पवन सम्पूर्ण स्थानों में प्रवलता से प्राप्त होने अग्नि आदि पदार्थों को प्रज्वलित करने और संसार में व्यापक होने वाले सम्पूर्ण जीवों के प्राणों की रक्षा करके आनन्द देते हैं वैसे ही अग्नि आदि पदार्थों की विद्यायुक्त पुरुष सम्पूर्ण जनों के लिये आनन्द देते हैं ॥१५॥

अब किन पुरुषों को निश्चल ऐश्वर्य प्राप्त होता, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यदद्य त्वा प्रयति यज्ञे अस्मिन् होतश्चिकित्वोऽवृणीमहीह ।
ध्रुवमया ध्रुवमुताशमिष्ठाः प्रजानन्विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥१६॥

पदार्थः—हे (चिकित्वः) विज्ञानयुक्त (होतः) साधन जो मुख्य कारण उपसाधन अर्थात् सहायि कारणों के ग्रहणकर्त्ता ! (यत्) जो हम लोग (अद्य) इस

समय (अस्मिन्) इस (प्रयति) प्रयत्न से सिद्ध और (यज्ञे) ऐकमत्य होने योग्य व्यवहार में जिन (त्वा) आप को (अवृणीमहि) स्वीकार करें वह आप (इह) इस संसार में (ध्रुवम्) दृढ़ स्थिर (अशमिष्ठाः) शान्ति करो (उत) और भी (प्रजानन्) विज्ञानयुक्त हुए (ध्रुवम्) निश्चल धर्म को (अयाः) सङ्गत कीजिये (विद्वान्) विद्वान् पुरुष आप (सोमम्) ऐश्वर्य को (उप) (याहि) प्राप्त होइये ॥१६॥

भावार्थः—जो लोग इस संसार में प्रयत्न से सृष्टि के पदार्थों के विद्या-क्रम को जानते हैं वे निरन्तर उन पदार्थों से उपकार ग्रहण कर सकते हैं, उनके निश्चय से ऐश्वर्य होता है ॥१६॥

इस सूक्त में अग्नि वायु और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ६—११ । १४ । १७ । २० निचृत्त्रिष्टुप् । ५ । ६ । ८ । १३ । १६ । २१ । २२ । त्रिष्टुप् । १२ । १५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ४ । ७ । १६ । १८ । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ तीसरे मण्डल में बाईस ऋचा वाले तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके पहिले मन्त्र से विद्वान् के कर्त्तव्य का उपदेश करते हैं ॥

**इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।**
**तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनानामिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥१॥**

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य के दाता ! जो (सोम्यासः) परस्पर स्नेह रस के वर्द्धक (सखायः) मित्रभाव से वर्त्तमान (त्वा) आप की (इच्छन्ति) इच्छा करते हैं वे (सोमम्) परम ऐश्वर्य को (सुन्वन्ति) सिद्ध करते (प्रयांसि) कामना करने योग्य वस्तुओं को (दधति) धारण करते और (जनानाम्) मनुष्य लोगों की (अभिशस्तिम्) चारों ओर से हिंसा को (आ) (तितिक्षन्ते) सहते हैं (हि) जिससे (त्वत्) आप से अन्य (कः) (चन) कोई भी पुरुष (प्रकेतः) उत्तम बुद्धि वाला नहीं है इस से इन मनुष्यों की सर्वदा रक्षा कीजिये ॥१॥

भावार्थः—जो लोग परस्पर मित्रभाव से वर्त्ताव करते हुए प्रयत्न के साथ ऐश्वर्य की इच्छा करते हैं वे सुख दुःख निन्दा आदि को सह और विद्वानों का सङ्ग करके आनन्द को बढ़ावें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

न ते दूरे परमा चिद्रजांस्या तु प्र याहि हरिवो हरिभ्याम् ।
स्थिराय वृष्णे सवना कृतेमा युक्ता ग्रावाणः समिधाने अग्नौ ॥२॥

पदार्थः—हे (हरिवः) उत्तम घोड़ों के वाहनों से युक्त ! आप (हरिभ्याम्) घोड़ों से (प्र)(आ, याहि) आइये ऐसा करने से (परमा) उत्तम (रजांसि) लोकों के स्थान (ते) आप के (दूरे) दूर (न) नहीं होंगे जो (समिधाने) हवन करने योग्य प्रदीप्त किये जाते हुए (अग्नौ) अग्नि में (स्थिराय) दृढ़ (वृष्णे) बलवान् के लिये (कृता) किये गये (इमा) इन (सवना) ऐश्वर्य-वृद्धि के साधक कर्मों को करो (तु) तो (युक्ताः) उद्यत (ग्रावाणः) मेघ (चित्) भी बहुत से होवें ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य यदि शीघ्र चलने वाले घोड़ों से देशान्तर जाने की इच्छा करें तो सब समीप ही है। यदि नियम से अग्नि को प्रज्वलित कर उस में होम करें तो वर्षा होना सुगम ही जानो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रः सुशिप्रो मघवा तरुत्रो महाव्रातस्तुविकूर्मिर्ऋघावान् ।
यदुग्रो धा बाधितो मर्त्येषु क्व१ त्या ते वृषभ वीर्याणि ॥३॥

पदार्थः—हे (वृषभ) बलिष्ठ ! (मर्त्येषु) मनुष्यों में (बाधितः) पीड़ित (उग्रः) तेजस्वी स्वभाव से युक्त (यत्) जो दुःख दूर करने वाले हैं उन को (धाः) धारण करो (ते) आप के (त्या) वे (वीर्य्याणि) वीर पुरुषों में हुए योग्य बल (क्व) किस में हैं इस प्रकार (सुशिप्रः) सुन्दर ठोढ़ी और नासिका युक्त (मघवा) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त (तरुत्रः) दुःखों से छुड़ाने वाला (महाव्रातः) सत्य आदि व्रतों में श्रद्धालु पुरुषों का मित्र (तुविकूर्मिः) बहुत प्रकार के कर्मों के आरम्भ में उत्साही (ऋघावान्) शत्रुओं के नाशकर्त्ता बहुत से शूरवीरों के सहित वर्त्तमान (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त आप होवें ॥३॥

भावार्थः—जब मनुष्य के अनेक प्रकार की पीड़ायें प्रकट हों तब बहुत से उपायों को युक्त करें, इस प्रकार पुरुषार्थ से विघ्नों को दूर कर के शोभा और बल निरन्तर बढ़ाने योग्य हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वं हि ष्मा च्यावयन्नच्युतान्येको वृत्रा चरसि जिघ्नमानः ।
तव द्यावापृथिवी पर्वतासोऽनु व्रताय निमितेव तस्थुः ॥४॥

पदार्थः—हे राजन् ! (त्वम्) आप (एकः) सहाय के बिना स्वयं बलवान् (हि) जिस से (अच्युतानि) प्रबल शत्रुओं की सेनाओं को (च्यावयन्) भय से गिराते हुए (स्म) ही (चरसि) वर्त्तमान हैं जैसे सूर्य के सम्बन्ध में (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (पर्वतासः) पर्वत के सदृश बड़े बड़े मेघ और (वृत्रा) मेघों के टुकड़े रूप बद्दल (निमितेव) जैसे निरन्तर प्रमाण किये हुए पदार्थ वैसे (तस्थुः) स्थिर होते हैं वैसे ही (अनु) (व्रताय) सत्य भाषण आदि कर्म वा उत्तम स्वभाव के लिये शत्रुओं का (जिघ्नमानः) नाशकर्त्ता होओ तो (ते) आप का निश्चय से विजय होवै ।।४।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे सूर्य नियमपूर्वक वर्त्तमान हो के निवारण करने योग्य पदार्थों का निवारण करके रक्षा करने योग्य पदार्थों की रक्षा करता है वैसे ही आप वर्जने योग्य शत्रुओं का वर्जन करके प्रजाओं की निरन्तर रक्षा कीजिये ।।४।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।।

उताभये पुरुहूत श्रवोभिरेको दृळ्हमवदो वृत्रहा सन् ।
इमे चिदिन्द्र रोदसी अपारे यत्संगृभ्णा मघवन्काशिरित्ते ।।५।।

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुत जनों से प्रशंसित (मघवन्) बहुत धन से युक्त (इन्द्र) सूर्य्य के तुल्य प्रकाशमान ! आप (एकः) बिना सहाय स्वयं बलवान् (सन्) हुए (अभये) भय से रहित व्यवहार में (श्रवोभिः) अनेक प्रकार के सुनने योग्य वचनों के सहित (दृढम्) निश्चय (अवदः) बोलैं (उत) और भी जैसे (वृत्रहा) सूर्य्य (चित्) भी (इमे) इन (अपारे) अवधिरहित (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को प्राप्त होता है वैसे हो कर (यत्) जो (ते) आप के (काशिः) न्याय विनय आदि उत्तम गुणों का प्रकाश है उस को (इत्) ही (संगृभ्णाः) ग्रहण करैं ।।५।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । राजा के पुरुषों को चाहिये कि अनेक प्रकार के उपायों से प्रजाओं में उपद्रवों से भय का नाश और सूर्य के तुल्य न्यायविद्या का प्रकाश करें ।।५।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ।

प्र सू त इन्द्र प्रवता हरिभ्यां प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून् ।
जहि प्रतीचो अनूचः पराचो विश्वं सत्यं कृणुहि विष्टमस्तु ।।६।।

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य के सदृश प्रकाशमान ! (हरिभ्याम्) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त घोड़ों से युक्त रथ में (प्रवता) उत्तम मार्ग से आप जैसे (वज्रः) किरणों के सदृश शस्त्रों का समूह और (शत्रून्) दुष्ट कर्म करने वालों को (प्रमृणन्) अत्यन्त

नाश करते हुए (प्र, एतु) प्राप्त हूजिये इस प्रकार (ते) आप का विजय होता है आप (प्रतीचः) पीछे वर्त्तमान (अनूचः) और कपट से अनुकूल अर्थात् (पराचः) दूर स्थल में विराजमान शत्रुओं की (प्र) (जहि) हिंसा करो तथा (विश्वम्) सम्पूर्ण (सत्यम्) सत्य को (सुकृणुहि) अच्छे प्रकार बढ़ाओ जिस से वह (विष्टम्) व्याप्त (अस्तु) हो ॥६॥

भावार्थः – जो मनुष्य दुष्ट आचरण करने वाले मनुष्य आदि प्राणियों का निवारण करके सत्य का प्रचार करें वे सुख से आनन्द भोगते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यस्मै धायुरदधा मर्त्यायाभक्तं चिद्भजते गेह्यं१ सः ।

भद्रा त इन्द्र सुमतिर्घृताची सहस्रदाना पुरुहूत रातिः ॥७॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) (इन्द्र) सुख के दाता आप (यस्मै) जिस (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (अभक्तम्) विभाग से रहित (गेह्यम्) गृह गृह में उत्पन्न हुए धन की (भजते) सेवा करते हैं जिस के लिये (धायुः) उत्तम पदार्थों के धारणकर्त्ता (चित्) भी आप सुख को (अदधाः) धारण करें उन (ते) आप की जो (घृताची) सुख देने वाली रात्रि के सदृश (भद्रा) कल्याण करने वाली (सुमतिः) उत्तम बुद्धि और (सहस्रदाना) अनगिनती दान जिस में दिये जाते हों ऐसी (रातिः) दान सम्बन्धिनी क्रिया है उस को (सः) वह स्वीकार करे ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य पिता और पितामह का धन आदि जो कि नहीं बटा हुआ उस की रक्षा वा सेवा करें और परस्पर दोषों को त्याग के गुणों का ग्रहण करें वे कल्याण के भागी होवें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सहदानुं पुरुहूत क्षियन्तमहस्तमिन्द्र सं पिणक्कुणारुम् ।

अभि वृत्रं वर्धमानं पियारुमपादमिन्द्र तवसा जघन्थ ॥८॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुत जनों से प्रशंसित अर्थात् यश को प्राप्त (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश तेजस्वी ! जैसे (सहदानुम्) दान से युक्त (क्षियन्तम्) रहते हुए (अहस्तम्) अविद्यमान (कुणारुम्) शब्द करते और (वर्द्धमानम्) बढ़ते हुए (पियारुम्) पिये गये (अपादम्) पादों से हीन (वृत्रम्) मेघ को (अभि) सम्मुख पीसता है वैसे शत्रुओं का आप (सम्, पिणक्) नाश करो और (इन्द्र) हे दुष्टों को विदीर्ण करने वाले ! आप (तवसा) बल से दुष्ट पुरुषों का (जघन्थ) नाश करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य मेघों

के आकर्षण और वर्षाने से सम्पूर्ण जगत् को पालता है वैसे ही दुष्टों के नाश करने और श्रेष्ठ पुरुषों के धारण करने से राजा को सम्पूर्ण प्रजाओं की पालना करनी चाहिये ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नि सामनामिषिरामिन्द्र भूमिं महीमपारां सदने ससत्थ ।
अस्तभ्नाद् द्यां वृषभो अन्तरिक्षमर्षन्त्वापस्त्वयेह प्रसूताः ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य्य के तुल्य प्रकाश से युक्त राजन् ! आप जैसे (वृषभः) वृष्टिकर्त्ता सूर्य (द्याम्) अन्तरिक्ष को (अस्तभ्नात्) पुष्टता से धारण करता है वैसे (सामनाम्) उत्तम उपमाओं से युक्त (इषिराम्) बहुत पदार्थों की प्राप्ति कराने वाली (महीम्) बड़े परिमाण से युक्त (अपाराम्) जिस का पार नहीं (भूमिम्) जिस में बहुत पदार्थ होते हैं उस भूमि को प्राप्त होकर (इह) इस (सदने) स्थान में (नि, ससत्थ) बैठो (त्वया) आप से (प्रसूताः) प्रेरित हुए (आपः) जल (अन्तरिक्षम्) आकाश को (अर्षन्तु) प्राप्त होवें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य नियमपूर्वक प्रकाश और भूमि को धारण करता है वैसे ही न्याय से राजा राज्य को धारण करे और सब काल में प्रजाओं में ही बल बढ़ाया करे ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अलातृणो वल इन्द्र व्रजो गोः पुरा हन्तोर्भयमानो व्यार ।
सुगान्पथो अकृणोन्निरजे गाः प्रावन्वाणीः पुरुहूतं धमन्तीः ॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य के दाता ! (अलातृणः) सम्पूर्ण संसार के प्रलयकर्त्ता (वलः) बलयुक्त (व्रजः) चलने वाले (भयमानः) भय को प्राप्त होते हुए आप (सुगान्) सुख से जिन में मनुष्य आदि चलें ऐसे (पथः) मार्गों को (वि) (आर) विशेष कर के प्राप्त होइये जो (पुरा) प्रथम (गोः) पृथिवी का (हन्तोः) नाश करने को (अकृणोत्) क्रिया करै वा जो (पुरुहूतम्) बहुतों से प्रशंसायुक्त (धमन्तीः) शब्द करती हुईं (वाणीः) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त (गाः) चलने वाली वाणी (प्र) (आवन्) अतिशय रक्षा करती हैं उस को और उन को (निरजे) अत्यन्त चलने के लिये विशेष करके प्राप्त होइये ॥१०॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदा ही अधर्म के आचरण से डरके धर्म में प्रवृत्त हों और बुरे व्यसनों को त्याग के धर्मयुक्त मार्ग से चलें ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एको द्वे वसुमती समीची इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम् ।
उतान्तरिक्षादभि नः समीक इषो रथीः सयुजः शूर वाजान् ॥११॥

पदार्थः—हे (शूर) दुष्टजनों के नाशकारक ! जैसे (एकः) सहाय रहित अकिल्ली (रथीः) प्रशंसनीय रथरूप वाहन के सहित (इन्द्रः) बिजुली (द्वे) दो (समीची) समानता को प्राप्त (वसुमती) बहुत धनों से युक्त (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष वा भूमि को (उत) और भी (द्याम्) प्रकाश को (आ) (पप्रौ) पूर्ण करती (समीके) समीप में (अन्तरिक्षात्) मध्य में वर्त्तमान अवकाश से (सयुजः) तुल्यता के साथ परस्पर मिले हुए मित्र जन (नः) हम लोगों के लिये (इषः) इच्छाओं को (उत) और (वाजान्) अन्न आदि वस्तुओं को (अभि) सब ओर से पूर्ण करते वे सम्पूर्ण जनों से सत्कार करने योग्य हैं ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो भूमि के सदृश प्रजाओं के धारण करने और बिजुली के सदृश अति उत्तम ऐश्वर्य्य के देने वाले प्रजाजन हों वे सम्पूर्ण राज्य की रक्षा कर सकें ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दिशः सूर्य्यो न मिनाति प्रदिष्टा दिवेदिवे हर्य्यश्वप्रसूताः ।
सं यदानळध्वन आदिदश्वैर्विमोचनं कृणुते तत्त्वस्य ॥१२॥

पदार्थः—जो (सूर्य्यः) सूर्य्य के (न) तुल्य (दिवेदिवे) प्रतिदिन (हर्य्यश्वप्रसूताः) हरणशील किरणों वाले से उत्पन्न (प्रदिष्टाः) सूचना से दिखाई गई (दिशः) दिशाओं को (मिनाति) अलग अलग करता है (आत्) अनन्तर (यत्) जो (अश्वैः) घोड़ों से (अध्वनः) मार्गों को (सम्) (आनट्) व्याप्त होता तथा (विमोचनम्) त्याग (कृणुते) करता है (तत्, इत्) वही (तु) तो (अस्य) इस का भूषण है ऐसा जानना चाहिये ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पुरुष अविद्या दुष्ट संस्कार और दुःखों को त्याग के जैसे सूर्य्य अन्धकार को दूर करता है वैसे अन्याय को दूर करके सम्पूर्ण दिशाओं में यश को फैलाते हैं यही इन का कर्त्तव्य कर्म है ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

दिदृक्षन्त उषसो यामन्नक्तोर्विवस्वत्या महि चित्रमनीकम् ।
विश्वे जानन्ति महिना यदागादिन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ॥१३॥

पदार्थः—(यत्) जो (विश्वे) सम्पूर्ण मनुष्य (विवस्वत्याः) सूर्य मण्डल के निमित्त व्यवहार वाली (उपसः) प्रभात वेलाओं को (अक्तोः) रात्रि के (यामन्) मार्ग में (विचक्षन्ते) देखने की इच्छा करते हैं (महिना) महिमा से (महि) बड़ी (चित्रम्) अद्भुत (अनीकम्) सेना को (जानन्ति) जानते हैं (इन्द्रस्य) बिजुली के (पुरूणि) बहुत (सुकृता) उत्तम प्रकार किये गये (कर्म) कर्मों को देखने की इच्छा करते हैं उन को जो (आ, अगात्) प्राप्त हो वह सुखी होवे ॥१३॥

भावार्थः—जो परीक्षक लोग प्रातःकाल उठ के प्रयत्न से व्यवहारों को सिद्ध करते हैं वे इस संसार में ज्ञान विशेष से प्रतिष्ठा को प्राप्त और बल से युक्त होते हैं ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

महि ज्योतिर्निहितं वक्षणास्वामा पक्वं चरति बिभ्रती गौः ।
विश्वं स्वाद्म सम्भृतमुस्रियायां यत्सीमिन्द्रो अदधाद्भोजनाय ॥१४॥

पदार्थः—(यत्) जो (गौः) चलने वाली (वक्षणासु) बहती हुई नदियों में (आमा) कच्चे वा(पक्वम्) पके हुए को (बिभ्रती) धारण करती हुई (चरति) चलती है जो इस संसार में (महि) बड़ा (निहितम्) स्थित (ज्योतिः) तेज वा (उस्रियायाम्) पृथिवी में (विश्वम्) सम्पूर्ण (स्वाद्म) अतिस्वादु (सम्भृतम्) उत्तम प्रकार धारण वा पोषण किये हुए पदार्थ को प्राप्त होती है वह(इन्द्रः) बिजुली (भोजनाय) पालन वा भोजन के लिये सब को (सीम्) सब ओर से (अदधात्) धारण करती है यह सब जनों को जानना चाहिये ॥१४॥

भावार्थः—जो बिजुली भूमि जल वायु और अन्तरिक्ष तथा उन के विकारों और पदार्थों में व्यापक हो और सब को धारण कर पालन करती है उसकी विद्या को सब लोग धारण वा स्वीकार करें ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्र दृह्य यामकोशा अभूवन्यज्ञाय शिक्ष गृणते सखिभ्यः ।
दुर्मायवो दुरेवा मर्त्यासो निषङ्गिणो रिपवो हन्त्वासः ॥१५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य के दाता ! जो (यामकोशाः) मार्गों के रोकने वाले (अभूवन्) होते हैं उन (सखिभ्यः) मित्रों तथा (यज्ञाय) सङ्गति जन्य विशेष ज्ञान और (गृणते) स्तुति करने वाले के अर्थ आप (शिक्ष) विद्या दान कीजिये जो (दुर्मायवः) बुरे प्रकार फेंकने वा (दुरेवाः) दुष्ट कर्म को पहुँचाने वाले

(हन्त्वासः) मारने के योग्य (निषङ्गिणः) बहुत विशेष शस्त्रों वाले (रिपवः) शत्रु (मर्त्यासः) मनुष्य हों उनका नाश करके (वृद्ध्य) बढ़िये ॥१५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सर्वदा सब प्रकार श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा विद्या और शिक्षा का दान और दुष्ट आचरण वालों का नाश करके सदैव बढ़ें ॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सं घोषः शृण्वेऽवमैरमित्रैर्जही न्येष्वशनिं तपिष्ठाम् ।
वृश्चेमधस्ताद्वि रुजा सहस्व जहि रक्षो मघवन्रन्धयस्व ॥१६॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुत धनों से युक्त ! मैं (अवमैः) नीच (अमित्रैः) शत्रुओं से हुई जो (घोषः) घोर वाणी उसको (सम्) बहुत (शृण्वे) सुनता हूं इससे उनको आप (जहि) मारिये और (एषु) इन शत्रुओं में (तपिष्ठाम्) अतिशय तपते हुए (अशनिम्) वज्र को फेंक के इनको (नि, वृश्च) उत्तम प्रकार विनाश कीजिये और इनको (अधस्तात्) नीचे गिराय के (ईम्) निरन्तर (वि) (रुज) रोगग्रस्त कीजिये और दुःख को (सहस्व) सहिये (रक्षः) दुष्ट स्वभाव वाले प्राणी का (जहि) नाश कीजिये और पापी लोगों को (रन्धयस्व) ताड़िये ॥१६॥

भावार्थः—हे वीर पुरुषो ! जो वाणी शत्रुओं से उच्चारण की जाय उस को सुन उन के सम्मुख जा और उनके ऊपर शस्त्रों का प्रहार करके उन्हें छिन्न भिन्न करो, इससे ऐश्वर्य वाले होओ ॥१६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उद्वृह रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि ।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥१७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुष्ट पुरुषों के नाशकर्त्ता ! आप (उत्) उत्तमता के साथ (वृह) सुख वृद्धि करो (सहमूलम्) जड़सहित (रक्षः) बुरे आचार को (वृश्च) तोड़ो (अस्य) इसके ऊपर (तपुषिम्) प्रतापयुक्त (हेतिम्) वज्र को फेंक के इसके (मध्यम्) मध्य में उत्पन्न हुए और (अग्रम्) अग्रभाग के (प्रति) प्रति (शृणीहि) नाश करो तथा (ब्रह्मद्विषे) ब्रह्म परमात्मा वा वेद के लिये वर्त्तमान (सललूकम्) अच्छी तरह लोभी (कीवतः) कितनों को (आ) (चकर्थ) सब प्रकार काटो ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि कभी भी धार्मिक पुरुषों के ऊपर शस्त्रों का प्रहार न करें और दुष्ट पुरुषों को शस्त्रों से मारे विना न छोड़ें, ऐसा करने से सब प्रकार सुख की वृद्धि होवे ॥१७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स्वस्तयें वाजिभिश्च प्रणेतः संयन्महीरिष आसत्सि पूर्वीः ।
रायो वन्तारो बृहतः स्यामास्मे अस्तु भर्ग इन्द्र प्रजावान् ॥१८॥

पदार्थः—हे (प्रणेतः) सत्य और असत्य के निश्चयकारक (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त ! (यत्) जो आप (वाजिभिः) घोड़ों के सदृश वेगयुक्त अग्नि आदि पदार्थों तथा साधनों से (पूर्वीः) पूर्व जनों से प्राप्त (महीः) बड़ी (इषः) इच्छाओं से (सम्) (आसत्सि) सब प्रकार वर्त्तमान हैं (जो) (बृहतः) बड़े (वन्तारः) विभाग करने वाले (रायः) धन हैं वे (अस्मे) हम लोगों के (स्वस्तये) सुख के लिये (अस्तु) होवें (प्रजावान्) बहुत प्रजाओं से युक्त (भगः) ऐश्वर्य और उन को प्राप्त हो कर हम लोग सुखी (स्याम) होवें ॥१८॥

भावार्थः—जो मनुष्य लोग सुख के लिये बहुत से साधनों को एकत्र करते वे ऐश्वर्य को प्राप्त हो के आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥१८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ नो भर भर्गमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके ।
ऊर्व इव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ॥१९॥

पदार्थः—हे (वसूनाम्) धनों के (वसुपते) धनपालक (इन्द्र) सुख के दाता ! जिस (देष्णस्य) देने वाले (ते) आप के (प्ररेके) उत्तम शङ्कायुक्त व्यवहार में हम लोग (नि) (धीमहि) धारण करें वह आप (नः) हम लोगों के लिये (द्युमन्तम्) उत्तम प्रकाशयुक्त (भगम्) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य्य को (आ) सब प्रकार (भर) धारण करो और जो (अस्मे) हम लोगों के लिये (कामः) इच्छा (ऊर्वइव) इन्धनयुक्त अग्नि के सदृश (पप्रथे) वृद्धि को प्राप्त होवे (तम्) उस को (आ) (पृण) पूर्ण करो ॥१९॥

भावार्थः—वही मनुष्य यथार्थवक्ता है जिस का सर्वस्व दूसरे पुरुषादि के उपकार के लिये होता है, इस विषय में कोई शङ्का नहीं है ॥१९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥२०॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! आप (गोभिः) गौओं (अश्वैः) घोड़ों (च) और (चन्द्रवता) बहुत सुवर्ण आदि धन जिस में है ऐसे (राधसा) धन से (पप्रथः)

प्रसिद्ध करो (इमम्) प्रत्यक्ष भाव से वर्त्तमान इस (कामम्) अभिलाषा को पूर्ण करो जैसे (स्वर्य्यवः) अपने सुख की कामना करने वाले (वाहः) स्तुतियों के धारण-कर्त्ता (कुशिकासः) शब्द करते हुए (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (मतिभिः) विचारशील मनुष्यों से साथ (तुभ्यम्) आप के तथा (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये उक्त अभिलाषा को (अक्रन्) करैं उनको आप (मन्दय) आनन्दित कीजिये ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो लोग आप लोगों को अभिलाषा पूर्ण करने से आनन्द देवैं, उनको आप लोग भी आनन्द देवैं ॥२०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आ नो गोत्रा दर्द्दहि गोपते गाः समस्मभ्यं सनयो यन्तु वाजाः ।
दिवक्षा असि वृषभ सत्यशुष्मोऽस्मभ्यं मघवन्बोधि गोदाः ॥२१॥

पदार्थः—हे (वृषभ) बलवान् (मघवन्) बहुत श्रेष्ठ धन से युक्त ! जिस से आप (गोदाः) वाणी आदि के दाता (सत्यशुष्मः) सत्य बल वाले (असि) हैं इस से (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (सु) (बोधि) आनन्ददायक हूजिये। हे (गोपते) भूमि के स्वामी ! जैसे (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (सनयः) संविभाग करने के योग्य (दिवक्षाः) विज्ञानरूप प्रकाश आदि से पूरित (वाजाः) विज्ञान और अन्न आदि के प्राप्त कराने वाले व्यवहार (सम्) (यन्तु) प्राप्त होवैं वैसे ही आप (नः) हम लोगों के (गोत्रा) कुलों और (गाः) पृथिवियों को (आ) सब प्रकार (दर्द्दहि) अत्यन्त वृद्धि कीजिये ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सत्य आचरण करने वाले विद्वान् लोग मनुष्यों के उपदेशकारक होवैं तो उन जनों का कुछ भी सुख अप्राप्त और अरक्ष्य न होवै ॥२१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥२२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस को (अस्मिन्) इस संग्राम में कि (भरे) जिस में धनों को धारण करते और (वाजसातौ) धन आदि पदार्थों का विभाग करते हैं। (शुनम्) ज्ञान से वृद्ध (मघवानम्) बहुत धन से युक्त (नृतमम्) अत्यन्त ही मनुष्यों में उत्तम (शृण्वन्तम्) सम्पूर्ण अर्थी अर्थात् मुद्दई और प्रत्यर्थी अर्थात् मुद्दाले के न्याय करने के लिये वचनों के श्रोता (उग्रम्) तेजःस्वभाव वाले पुरुष को (समत्सु)

संग्रामों में (वृत्राणि) घेरने वाली मेघों के सदृश शत्रुओं की सेनाओं के (घ्नन्तम्) नाशकर्त्ता और (धनानाम्) लक्ष्मियों के (संजितम्) उत्तम प्रकार जीतने वा (इन्द्रम्) देने वाले की हम लोग (हुवेम) प्रशंसा करें उसका आप लोग भी (ऊतये) रक्षा आदि के लिये आह्वान करें ॥२२॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! आप लोग शरीर और आत्मबल से बढ़े असंख्य धन के देने और मनुष्यों में उत्तम शत्रुओं के जीतने वाले धर्मिष्ठ पुरुष में नम्रस्वभाव और दुष्ट पुरुषों में तीव्रस्वभाव युक्त पालनकर्त्ता स्वामी को अपने ऊपर नियत कर के निरन्तर सुख को प्राप्त हूजिये ॥२२॥

इस सूक्त में इन्द्र और विद्वान् के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त में कहे अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्रः कुशिको वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । १४ । १६ विराट् पङ्क्तिः ३ । ६ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ५ । ९ । १५ । १७— २० निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । ७ । ८ । १० । १२ । २१ । २२ त्रिष्टुप् । ११ । १३ । स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ तृतीय मण्डल में बाईस ऋचा वाले ३१ वें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके पहिले मन्त्र में अग्नि के गुणों का विषय कहा है ॥

**शासद्वह्निर्दुहितुर्नप्त्यं गाद्विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन् ।**
**पिता यत्र दुहितुः सेकमृञ्जन्त्सं शग्म्येन मनसा दधन्वे ॥१॥**

पदार्थः - हे विद्वान् पुरुष ! (यत्र) जिस व्यवहार में (पिता) उत्पन्नकर्त्ता (वह्निः) वाहन करने अर्थात् व्यवहार में चलाने वाला (दुहितुः) कन्या के (सेकम्) सेचन को (ऋञ्जन्) सिद्ध करता हुआ (गात्) प्राप्त होवै उस व्यवहार में (विद्वान्) जानने योग्य व्यवहार का ज्ञाता (ऋतस्य) सत्य के (दीधितिम्) धारणकर्त्ता की (सपर्य्यन्) सेवा करता हुआ (दुहितुः) दूर में हितकारिणी कन्या के (नप्त्यम्) नाती में उत्पन्न हुए को (शासत्) शिक्षा देवै इससे (शग्म्येन) सुखों में वर्त्तमान (मनसा) अन्तःकरण से (सम्, दधन्वे) सम्यक् प्रसन्न होता है ॥१॥

भावार्थः— हे मनुष्यो ! जैसे पिता के समीप से कन्या उत्पन्न होती है वैसे ही सूर्य्य से प्रातःकाल की वेला प्रकट होती है और जैसे पति अपनी

स्त्री में गर्भ को धारण करता है वैसे कन्या के सदृश वर्त्तमान प्रातःकाल की वेला में सूर्य्य किरणरूप वीर्य्य को धारण करता है उस से दिवसरूप पुत्र उत्पन्न होता है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

न जामये तान्वो रिक्थमारैक् चकार गर्भं सनितुर्निधानम् ।
यदी मातरो जनयन्त वह्निमन्यः कर्त्ता सुकृतोरन्य ऋन्धन् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (जामये) जामाता के लिये (तान्वः) सूक्ष्म (रिक्थम्) धन को (न, आरैक्) नहीं देता जिस ने (सनितुः) विभागकर्त्ता के (निधानम्) निरन्तर धारण करता है उस (गर्भम्) गर्भ को (चकार) किया (अन्यः) अन्य जन (वह्निम्) पहुंचाने वाले को जैसे वैसे (यदि) जो (अन्यः) अन्य (ऋन्धन्) सिद्ध करता हुआ (सुकृतोः) उत्तम कर्मकारियों का (कर्त्ता) कर्त्ता पुरुष है उस को (मातरः) आदर की करने वाली (जनयन्त) उत्पन्न करती है ॥२॥

भावार्थः—जैसे माता सन्तानों को उत्पन्न कर उन की वृद्धि करती है वैसे ही अग्नि को उत्पन्न करके उस की वृद्धि करैं और वैसे ही प्रत्येक स्त्री सन्तानों की वृद्धि करै ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अग्निर्जज्ञे जुह्वा३ रेजमानो महस्पुत्राँ अरुपस्य प्रयक्षे ।
महान् गर्भो मह्या जातमेषां मही प्रवृद्धर्यश्वस्य यज्ञैः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे इन्धन और (जुह्वा) साधन और उपसाधनों से युक्त क्रिया से (अग्निः) अग्नि (जज्ञे) उत्पन्न होता है वैसे (रेजमानः) कंपता हुआ (महान्) बड़े उत्तम गुणों से युक्त (गर्भः) स्तुति करने योग्य पदार्थ उत्पन्न होता है और (अरुपस्य) नहीं हिंसा करने वाले के (महः) श्रेष्ठ (पुत्रान्) सन्तानों के (प्रयक्षे) अत्यन्त यजन अर्थात् सङ्गम करने को उत्पन्न होता है (प्रवृत्) प्रवृत्त होने वाला (हर्यश्वस्य) जिस के हरणशील घोड़े उसके (यज्ञैः) योग्य कर्मों से (मही) श्रेष्ठ वाणी उत्पन्न होती है (एषाम्) इन सवों के (महि) बड़े (आ, जातम्) अच्छे प्रकार उत्पन्न कर्म को तुम जानो ॥३॥

भावार्थः—जैसे शमीनामक काष्ठ के मध्य से अग्नि प्रकट हो कर बड़े बड़े कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही सुपात्र पुत्र सम्पूर्ण उत्तम कर्मों को करते हैं, इससे ब्रह्मचर्य्य आदि संस्कारों के ही द्वारा सन्तानों को श्रेष्ठ बनाना चाहिये ॥३॥

फिर सूर्यरूप अग्नि कैसा है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

अभि जैत्रीरसचन्त स्पृधानं महि ज्योतिस्तमसो निरजानन्।
तं जानतीः प्रत्युदायन्नुषासः पतिर्गवामभवदेक इन्द्रः॥४॥

पदार्थः—जो (जैत्रीः) जीतने वाले (अभि) सम्मुख (असचन्त) अनुसार चलते हैं (तमसः) अन्धकार के (महि) बड़े (ज्योतिः) प्रकाशरूप (स्पृधानम्) पदार्थों के साथ किरणों के सङ्घर्ष करने वाले सूर्य को (निः) निरन्तर (अजानन्) जानें (तम्) उस को (जानतीः) जानने वाली (उषासः) प्रातःकाल की वेलाओं के तुल्य (प्रति) (उत्) (आयन्) उद्योग करें वा प्राप्त हों जो (एकः) सहायरहित (इन्द्रः) सूर्य्य (गवाम्) किरणों का (पतिः) स्वामी (अभवत्) होवे उस के अनुसार चलते हैं॥४॥

भावार्थः—जैसे अन्धकार से ज्योति पृथक् होकर अन्धकार को दूर करती है वैसे ही अविद्या से पृथक् हुई विद्या अविद्या का नाश करती है और जैसे एक सूर्य्य सम्पूर्ण किरणों का एक साथ ही पालन करता है वैसे ही समभाव का आश्रय करके राजा प्रजाओं का पालन करे॥४॥

अब विद्वान् के सङ्ग से क्या होता है, इस विषय को
अगले मन्त्र में कहा है॥

वीळौ सतीरभि धीरा अतृन्दन्प्राचाहिन्वन्मनसा सप्त विप्राः।
विश्वामविन्दन्पथ्यामृतस्य प्रजानन्नित्ता नमसा विवेश॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (धीराः) उत्तम विचारयुक्त (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (प्राचा) प्राचीन (मनसा) अन्तःकरण से (सप्त) पांच प्राण बुद्धि और मन तथा (सतीः) वर्त्तमान प्रकृतियों को (अभि) (अहिन्वन्) बढ़ाते हैं और मिथ्या का (अतृन्दन्) नाश करें तथा (ऋतस्य) सत्य के (वीळौ) प्रशंसनीय बल में (विश्वाम्) सम्पूर्ण (पथ्याम्) मर्य्यादा के योग्य क्रिया को (अविन्दन्) प्राप्त होते हैं वैसे आप (ताः) उन को (नमसा) स्तुति से (प्रजानन्) जानते हुए (इत्) ही (आ) (विवेश) शुभ कर्म में प्रवेश कीजिये॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे युक्ति से सेवन किये हुए प्राण और अन्तःकरण दुःख के त्याग और सुख के लाभ के लिये समर्थ होते हैं वैसे ही विद्वानों के सङ्ग आदि कर्म दुःखों को निवृत्त करा के सुखों को उत्पन्न कराते हैं॥५॥

कौन स्त्री सुख देने वाली होती है, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है॥

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात्॥६॥

पदार्थः—हे बुद्धिमती स्त्री! (यदि) जो (सुपदी) उत्तम पादों वाली आप (सरमा) चलने वाले पदार्थों के नापने वाली हुई (अद्रेः) मेघ के (सध्र्यक्) एक साथ प्रकट (पूर्व्यम्) प्राचीन जनों से किये गये (महि) बड़े (पाथः) अन्न वा जल को (विदत्) प्राप्त होवें (रुग्णम्) रोगों से घिरे हुए को औषध से रोगरहित (कः) करती (अक्षराणाम्) अक्षरों के (अग्रम्) श्रेष्ठ (रवम्) शब्द को (अच्छ) उत्तम प्रकार (नयत्) प्राप्त करती है (प्रथमा) पहिली (जानती) जानती हुई (गात्) प्राप्त होवै तो सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होवै॥६॥

भावार्थः—जो स्त्री विजुली के सदृश विद्याओं में व्याप्त संस्कार और उपस्कार अर्थात् उद्योग आदि कर्म्मों में चतुर उत्तम रीति से बोलने तथा नम्र स्वभाव रखने वाली होवै वह वृष्टि के सदृश सुख देने वाली होती है॥६॥

फिर कौन पुरुष सुख देने वाला होता है, इस विषय
को अगले मन्त्र में कहा है॥

अगच्छदु विप्रतमः सखीयन्नसूदयत्सुकृते गर्भमद्रिः।
ससान मर्यो युवभिर्मखस्यन्नथाभवदङ्गिराः सद्यो अर्चन्॥७॥

पदार्थः—जो (मर्य्यः) मनुष्य (युवभिः) युवावस्थापन्न पुरुषों के सहित वर्त्तमान (सखीयन्) मित्र को चाहता वा (मखस्यन्) आत्मसम्बन्धी यज्ञ करने की इच्छा करता हुआ (अथ) उस के अनन्तर (अङ्गिराः) शरीरों में रस के सदृश वर्त्तमान (सद्यः) शीघ्र (अर्चन्) सत्कार करता हुआ (विप्रतमः) अत्यन्त बुद्धिमान् पुरुष उस स्त्री के समीप (अगच्छत्) प्राप्त होवे वह पुरुष (अद्रिः) मेघ जैसे (गर्भम्) गर्भ को वैसे (सुकृते) उत्तम कर्म के करने में उद्यत (अभवत्) होवे तथा सत्यासत्य का (ससान) विभाग करता है (उ) और भी निकृष्ट कर्म को (असूदयत्) नाश करै॥७॥

भावार्थः—जो ब्रह्मचर्य्य से विद्या और उत्तम शिक्षा को ग्रहण करके युवा पुरुष अपने तुल्य कन्या के साथ सुहृद्भाव और प्रीति को प्राप्त हो के उस को सत्कार करता हुआ विवाहै वह पुरुष जैसे मेघ से संसार सुख को प्राप्त होता है वैसे सुख को प्राप्त होवे॥७॥

फिर कौन सुखी होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

सतःसतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम् ।

प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखींरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥८॥

पदार्थः हे मनुष्यो ! जो पुरुष (पुरोभूः) पहले से चिताता (सतःसतः) विद्यमान विद्यमान के (प्रतिमानम्) परिमाण के साधक को वा (विश्वा) सम्पूर्ण (जनिमा) उत्पन्न हुए पदार्थों को (वेद) जानता और (शुष्णम्) शोककारक दुःख को (हन्ति) नाश करता है वह (गव्युः) अपने को विद्या चाहने वाला (नः) हम लोगों के (दिवः) प्रकाश की (पदवीः) प्रतिष्ठाओं को (प्र) प्राप्त करैं (सखीन्) मित्रों का (अर्चन्) सत्कार करता हुआ (सखा) मित्र होकर (अवद्यात्) धर्मरहित आचरण से (निः) निरन्तर (अमुञ्चत्) पृथक् करै वह अत्यन्त सुख को प्राप्त हो ॥८॥

भावार्थः—वे ही मनुष्य सुखी होते हैं जो कार्य्यकारणरूप सृष्टि को जान और सम्पूर्ण जनों के मित्र हो सम्पूर्ण जनों को पाप के आचरण से पृथक् करके धर्म के आचरण में प्रवृत्त करें। वे ही सत्य मित्र हैं ॥८॥

अब मोक्ष की इच्छा करने वालों को क्या करना चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

नि गव्यता मनसा सेदुरर्कैः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम् ।

इदं चिन्नु सदनं भूर्येषां येन मासाँ असिषासन्नृतेन ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (कृण्वानासः) करते हुए जन (गव्यता) अपनी वाणी के सदृश (मनसा) अन्तःकरण से (अर्कैः) सत्कार करने योग्य विद्वानों के साथ (अमृतत्वाय) मोक्ष के होने के लिये (गातुम्) प्रशंसायुक्त भूमि को (नि, सेदुः) प्राप्त होवें तथा (इदम्) इस (चित्) भी (भूरि) बहुत (सदनम्) प्राप्त होने योग्य स्थान को प्राप्त होवें (येन) जिस (ऋतेन) सत्य आचरण से (मासान्) चैत्र आदि महीनों के (असिषासन्) विभाग करने की इच्छा करें उससे (एषाम्) इन पुरुषों का कल्याण (नु) शीघ्र होता है ॥९॥

भावार्थः जो मनुष्य लोग मोक्ष की इच्छा करें तो विद्वानों का सङ्ग धर्म का अनुष्ठान और अधर्म का त्याग करके शीघ्र ही अन्तःकरण और आत्मा की शुद्धि करें ॥९॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

संपश्यमाना अमदन्नभि स्वं पयः प्रत्नस्य रेतसो दुघानाः ।

वि रोदसी अतपद्घोष एषां जाते निःष्ठामदधुर्गोषु वीरान् ॥१०॥

पदार्थः—जो लोग (स्वम्) अपने को (संपश्यमानाः) उत्तम प्रकार देखते और (प्रत्नस्य) प्राचीन (रेतसः) वीर्य के (पयः) दुग्ध को (दुघानाः) पूर्ण करते हुए (अभि) सम्मुख (अमदन्) आनन्द करते हैं (एषाम्) इन (निःष्ठाम्) उत्तम प्रकार स्थित विद्वानों की (घोषः) वाणी सूर्य्य जैसे (रोदसी) अन्तरिक्ष पृथिवी को वैसे दुष्ट पुरुषों को (वि) (अतपत्) तपाती है वे पुरुष (जाते) उत्पन्न हुए इस संसार में (गोषु) पृथिवी आदिकों में (वीरान्) उत्तम गुणों से युक्त पुरुषों को (अदधुः) धारण किया करें ॥१०॥

भावार्थः—जो उत्तम विचार करने वाले धार्मिक विद्वान् पुरुष अपने अनादिकालसिद्ध सामर्थ्य को बढ़ावें, सब लोगों के लिये सत्य और असत्य का उपदेश कर दुष्टता को दूर कर और श्रेष्ठता का धारण करें वे ही शूरवीर होते हैं यह जानना चाहिये ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

स जातेभिर्वृत्रहा सेदु हव्यैरुदुस्रिया असृजदिन्द्रो अर्कैः ।
उरूच्यस्मै घृतवद्भरन्ती मधु स्वाद्म दुदुहे जेन्या गौः ॥११॥

पदार्थः—जो (वृत्रहा) मेघ के नाशकर्त्ता सूर्य्य के सदृश (इन्द्रः) अति श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य का कारण (उस्रियाः) वाणियों को किरणों के सदृश (उत्, असृजत्) उत्पन्न करता है (अर्कैः) आदर करने योग्य मनुष्यों (हव्यैः) ग्रहण करने योग्य पदार्थों और (जातेभिः) उत्पन्न हुए व्यवहारों के साथ पदार्थों को (असृजत्) उत्पन्न करता है (स इत्) वही सुख को प्राप्त होता है जो (उरूची) बहुतों का सत्कार करती (घृतवत्) घृत वा जल उत्तमता युक्त (स्वाद्म) स्वादिष्ठ (मधु) मीठे गुण से युक्त पदार्थ को (भरन्ती) धारण करती हुई (जेन्या) जीतने योग्य (गौः) पृथिवी (अस्मै) उस ऐश्वर्य्य के लिये (दुदुहे) दुही जाती है उस को वह पुरुष (उ) ही जानै ॥११॥

भावार्थः- इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से सम्पूर्ण उत्पन्न हुए सृष्टि के पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे ही विद्वान् पुरुष विज्ञान से सम्पूर्ण पदार्थों को जान कर उस का सर्वत्र प्रकाश करें ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पित्रे चिच्चक्रुः सदनं समस्मै महि त्विषीमत्सुकृतो वि हि ख्यन् ।
विष्कभ्नन्तः स्कम्भनेना जनित्री आसीना ऊर्ध्वं रभसं वि मिन्वन् ॥१२॥

पदार्थः जो (सुकृतः) उत्तम धर्म सम्बन्धी कर्म करने और (विष्कभ्नन्तः)

विशेष करके धारण करने वाले महत्तत्त्व अर्थात् बुद्धि आदि की (जनित्री) उत्पन्न करने वाली प्रकृति के सदृश (आसीनाः) स्थिर (स्कम्भनेन) धारण करने से (ऊर्ध्वम्) ऊंचे (रभसम्) वेग को (वि) (मिन्वन्) विशेष करके फेंकते और विद्या को (वि) (स्थन्) प्रकाश करते वा (हि) जिस कारण (चित्) ही (अस्मै) इस (पित्रे) पालन करने वाले के लिये (त्विषीमत्) बहुत कान्तियों से युक्त (महि) बड़े (सदनम्) स्थान को (सम्) (चक्रुः) सम्पन्न करें वे कृतकृत्य विद्वान् होवें ॥१२॥

भावार्थः—जैसे व्यापक प्रकृति के द्वारा महत्तत्त्व आदि को रचकर सम्पूर्ण जगत् को ईश्वर रचता है वैसे ही विद्वान् जन पिता के सदृश वर्त्तमान होकर सम्पूर्ण जनों के लिये सुख धारण करते और पदार्थविद्या का प्रत्यक्ष अभ्यास करके शिक्षा देते हैं ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मही यदि धिषणा शिश्नथे धात्सद्योवृधं विभ्वं१रोदस्योः ।
गिरो यस्मिन्ननवद्याः समीचीर्विश्वा इन्द्राय तविषीरनुत्ताः ॥१३॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो ! आप लोगों से (यदि) जो (मही) अत्यन्त सत्कार करने योग्य (धिषणा) प्रगल्भ अर्थात् नहीं रुकने वाली वाणी (रोदस्योः) अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य में (सद्योवृधम्) शीघ्र वृद्धिकारक (विभ्वम्) व्यापक को (धात्) धारण करती है तो इस अविद्या का (शिश्नथे) नाश करती है (यस्मिन्) जिस में (अनवद्याः) निन्दारहित (समीचीः) सत्य को धारण करने वाली (तविषीः) बलयुक्त (अनुत्ताः) अनुकूलता से धारण की गई (विश्वाः) सम्पूर्ण (गिरः) वाणियां (इन्द्राय) परम ऐश्वर्य के लिये समर्थ होवें वह व्यवहार सदा सेवन करने योग्य है ॥१३॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग अनेक प्रकार की विद्याओं से युक्त वाणियों को धारण करके व्यापक परमात्मा के जानने की इच्छा करें वे बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मह्या ते सख्यं वंश्मि शक्तीरा वृत्रघ्ने नियुतो यन्ति पूर्वीः ।
महि स्तोत्रमव आगन्म सूरेरस्माकं सु मघवन्बोधि गोपाः ॥१४॥

पदार्थः—हे (मघवन्) अत्यन्त श्रेष्ठ धनयुक्त पुरुष ! मैं (ते) आप के (महि) अति आदर करने योग्य (सख्यम्) मित्रभाव की (आ, वश्मि) अच्छी कामना करता हूं विद्वान् जन जिस (वृत्रघ्ने) मेघ के नाशकर्ता सूर्य्य के तुल्य वर्त्तमान आप के लिये

(पूर्वीः) अनादि काल से सिद्ध (नियुतः) निश्चित (शक्तीः) सामर्थ्यों को (आ) (यन्ति) प्राप्त होते हैं उन (अस्माकम्) हम लोगों के मध्य में वर्त्तमान (सूरेः) परमोत्तम विद्वान् आप के समीप से (महि) बड़े (स्तोत्रम्) स्तुति करने के योग्य (अवः) रक्षा आदि को हम लोग (आ, अगन्म) प्राप्त होवें। आप हम लोगों की (गोपाः) रक्षा करते हुए (सु) (बोधि) जानिये ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्य लोगों को चाहिये कि विद्वान् जनों के साथ मित्रता कर सामर्थ्य पूर्ण कर और न्याय से सम्पूर्ण जनों की रक्षा करके सूर्य्य के प्रकाश के सदृश संसार में विद्या के बोध का प्रकाश करें ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

महि क्षेत्रं पुरुश्चन्द्रं विविद्वानादित्सखिभ्यश्चरथं समैरत् ।
इन्द्रो नृभिरजनदीद्यानः साकं सूर्य्यमुषसं गातुमग्निम् ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (विविद्वान्) ज्ञाता और (दीद्यानः) प्रकाशमान (इन्द्रः) बिजुली के सदृश सुख का वर्द्धक और दुःख का नाशक (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (इत्) ही (महि) बड़ा (पुरु) बहुत (चन्द्रम्) सुवर्ण (क्षेत्रम्) पदार्थों का आधार (चरथम्) गमन वा विज्ञान की (सम्) (ऐरत्) प्रेरणा करै (आत्) उसके अनन्तर (नृभिः) प्रधान जनों के (साकम्) साथ (सूर्य्यम्) सूर्य्य (उषसम्) प्रातःकाल (गातुम्) वाणी वा भूमि और (अग्निम्) अग्नि को (अजनत्) उत्पन्न करै उसका सदा सत्कार करो ॥१५॥

भावार्थः—जैसे विद्या से युक्त बिजुली सूर्य्य भूमि और अग्नि प्रातःकालादि समय में ऐश्वर्य को उत्पन्न कर मित्रों को सुख देते हैं वैसे ही विद्वान् लोग मनुष्य आदि प्राणियों को सुख देवें ॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अपश्चिदेष विभ्वो३ दमूनाः प्र सध्रीचीरसृजद्विश्वश्चन्द्राः ।
मध्वः पुनानाः कविभिः पवित्रैर्द्युभिर्हिन्वन्त्यक्तुभिर्धनुत्रीः ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो लोग (कविभिः) विद्वान् जनों के सहित (पवित्रैः) उत्तम व्यवहारों तथा (द्युभिः) दिनों और (अक्तुभिः) रात्रियों से (मध्वः) कोमल स्वभाव वाले मनुष्यों को (पुनानाः) पवित्र करते हुए जन (धनुत्रीः) धन और धान्य आदिकों से युक्त (हिन्वन्ति) बढ़ाते वा बढ़ते हैं जो (चित्) भी (एषः) यह (विभ्वः) व्यापक (दमूनाः) जितेन्द्रिय मनयुक्त (सध्रीचीः) एक साथ मिले हुए (विश्वश्चन्द्राः)

सम्पूर्ण सुवर्ण आदिकों से युक्त (अपः) जलों के सदृश व्याप्त विद्याओं को (प्र) (असृजत्) उत्पन्न करता है उन और उसका सर्व जन सङ्गम करें ॥१६॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग बहुत ऐश्वर्यों के जनक पदार्थों को कार्य-सिद्धि के लिये उपयोग में लाते तथा विद्वान् जनों के साथ शुद्ध आचरणों को करके सुख और ऐश्वर्य दिन रात्रि बढ़ाते वे भाग्यशाली हैं ॥१६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अनु कृष्णे वसुधिती जिहाते उभे सूर्यस्य मंहना यजत्रे ।
परि यत्ते महिमानं वृजध्यै सखाय इन्द्र काम्या ऋजिप्याः ॥१७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन्! (यत्) जो (ते) आप के (काम्याः) कामना करने योग्य (ऋजिप्याः) सरल व्यवहारों के वर्द्धक (सखायः) मित्र हुए (महिमानम्) महिमा को (अनु) (कृष्णे) खींची गयीं (उभे) दोनों (यजत्रे) परस्पर मिली हुई (वसुधिती) अन्तरिक्ष और पृथिवी (सूर्यस्य) सूर्य के (मंहना) महत्त्व से (वृजध्यै) रोकने को (परि) (जिहाते) प्राप्त होते से हैं उन को बढ़ाते हैं वे आप से सत्कार पाने योग्य हैं ॥१७॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने प्रताप से भूमि और प्रकाश का आकर्षण कर के धारण करता है और जैसे भूमि तथा प्रकाश सम्पूर्ण पदार्थों को धारण करते हैं वैसे उत्तम पुरुष को चाहिये कि महिमा को धारण और दुर्व्यसनों को त्याग करके मित्रों का सत्कार करें ॥१७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

पतिर्भव वृत्रहन्त्सूनृतानां गिरां विश्वायुर्वृषभो वयोधाः ।
आ नो गहि सख्येभिः शिवेभिर्महान्महीभिरूतीभिः सरण्यन् ॥१८॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) मेघ के नाशकारक सूर्य्य के सदृश तेजधारी राजन्! आप (महान्) प्रतिष्ठित (विश्वायुः) पूर्ण आयु से युक्त (वृषभः) सुखों की वृष्टि और (वयोधाः) जीवन के धारण करने वाले (शिवेभिः) मङ्गलकारक (सख्येभिः) मित्रों के कर्मों से (महीभिः) बड़ी (ऊतिभिः) रक्षाओं आदि से युक्त (सरण्यन्) अपने चलन वा विज्ञान की इच्छा करते हुए (सूनृतानाम्) उत्तम सत्य से युक्त (गिराम्) वाणियों के (पतिः) पालनकर्त्ता (भव) हूजिये और (नः) हम लोगों को (आ, गहि) प्राप्त हूजिये ॥१८॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्य बोलने शत्रुता को त्यागने अपने प्राण के

तुल्य सम्पूर्ण जनों के पालन करने और सूर्य्य के सदृश विद्या धर्म और नम्रता के प्रकाश करने वाले विद्वान् स्वामी हों वे श्रेष्ठ होवें ॥१८॥

फिर राजा और प्रजा के विषय को कहते हैं ॥

तमङ्गिरस्वन्नमसा सपर्यन्नव्यं कृणोमि सन्यसे पुराजाम् ।
द्रुहो वि याहि बहुला अदेवीः स्वश्च नो मघवन्त्सातये धाः ॥१९॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरस्वत्) विद्वानों के सहित विराजमान (मघवन्) श्रेष्ठ धनयुक्त राजन् ! (पुराजाम्) पहले उत्पन्न और (नव्यम्) नवीन के सदृश वर्त्तमान (तम्) प्रथम कहे हुए आप की मैं (सन्यसे) अलग अलग बँटे हुए पदार्थों में प्रयत्न करते हुए के लिये (नमसा) सत्कारपूर्वक (सपर्य्यन्) सेवा करता हुआ (कृणोमि) प्रसिद्ध करता हूं आप (बहुलाः) बहुत (द्रुहः) शत्रुतायुक्त (अदेवीः) विद्यारहित स्त्रियों को (वि, याहि) दूर कीजिये (नः) हम लोगों के (सातये) संविभाग के लिये (स्वः, च) सुख को भी (धाः) धारण कीजिये ॥१९॥

भावार्थः—प्रजारूप जनों को चाहिये कि न्याय विनय आदि शुभ गुणों से युक्त राजा आदि जनों का सदा ही सत्कार करें और राजा आदि पुरुषों को चाहिये कि प्रजाजनों का सदा पिता के तुल्य पालन करें और स्त्रियों को विद्यायुक्त करें इससे अनेक प्रकार के सुख की वृद्धि करें ॥१९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

मिहः पावकाः प्रतता अभूवन्त्स्वस्ति नः पिपृहि पारमासाम् ।
इन्द्र त्वं रथिरः पाहि नो रिषो मक्षूमक्षू कृणुहि गोजितो नः ॥२०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश तेजस्वी राजन् ! (रथिरः) रथ आदि वस्तुओं से युक्त (त्वम्) आप (नः) हम लोगों की (रिषः) हिंसाकारक जन से (पाहि) रक्षा कीजिये (नः) हम लोगों को (गोजितः) पृथिवी के जीतने वाले (मक्षूमक्षू) शीघ्र शीघ्र (कृणुहि) करिये (आसाम्) इन शत्रुओं की सेनाओं के (पारम्) पार पहुंचाइये जो (मिहः) सींचने वाले (प्रतताः) विस्तारस्वरूप और गुणों से युक्त (पावकाः) पवित्र और दूसरों को पवित्र करने वाले (अभूवन्) होते हैं उन लोगों से (नः) हम लोगों के (स्वस्ति) सुख को (पिपृहि) पूरा कीजिये ॥२०॥

भावार्थः—प्रजा और सेना के पुरुषों को चाहिये कि अपने प्रधान पुरुषों से इस प्रकार की याचना करें कि आप लोग हम लोगों से शत्रुओं को जीत जीत कर सुख उत्पन्न करो जैसे बिजुली आदि पदार्थ वृष्टि के द्वारा क्षुधा आदि दोष से दूर करके आनन्द देते हैं वैसे ही हिंसा करते

वाले प्राणियों से शीघ्र दूर कर और रक्षा करके निरन्तर आनन्द दीजिये ॥२०॥

अब कौन गुरु होने के योग्य हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्तः कृष्णाँ अरुषैर्धामभिर्गात् ।
प्र सूनृता दिशमान ऋतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः ॥२१॥

पदार्थः – हे विद्वान् पुरुष ! जैसे (वृत्रहा) मेघ का नाशक सूर्य्य अपनी किरणों से संसार की रक्षा करता है और जैसे (गोपतिः) गौओं का पालनकर्त्ता (गाः) गौओं की रक्षा करता तथा (अरुषैः) लाल गुण विशिष्ट घोड़ों और (धामभिः) स्थान विशेषों के साथ (कृष्णान्) काले वर्णों को (अन्तः) मध्य में (गात्) प्राप्त होवे (दुरः, च) और द्वारों को (अप, अवृणोत्) खोले वैसे (ऋतेन) सत्य के सदृश जल के सहित (विश्वाः) सम्पूर्ण (स्वाः) अपनी (सूनृताः) सत्य आदि लक्षणों से युक्त वाणियों के (प्र, दिशमानः) अच्छे प्रकार उपदेशक (अदेदिष्ट) आप अत्यन्त उपदेश कीजिये ॥२१॥

भावार्थः– इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो लोग सूर्य्य, गौओं के पालक और पिता के सदृश सब की रक्षा करते हैं वे ही गुरुजन होने योग्य हैं ॥२१॥

अब कौन विजयी होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥२२॥

पदार्थः हे वीर पुरुषो ! जैसे हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (वृत्राणि) मेघों के अवयवों को सूर्य्य के समान (अस्मिन्) इस वर्त्तमान (भरे) पुष्ट करने के योग्य (वाजसातौ) अन्न आदि के विभागकारक संग्राम में (धनानाम्) धनों के (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतने वाले (नृतमम्) अति प्रधान (समत्सु) संग्रामों में (घ्नन्तम्) नाश करते और (शृण्वन्तम्) सुनते हुए (उग्रम्) तेजस्वी (शुनम्) वृद्धिकर्त्ता (मघवानम्) अत्यन्त धन से युक्त (इन्द्रम्) शत्रुओं के विदारने वाले का (हुवेम) स्वीकार वा प्रशंसा करें वैसे इस पुरुष का आप लोग भी आह्वान करें ॥२२॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । उन्हीं लोगों का निश्चय विजय होता है कि जिन के अत्यन्त धन बलयुक्त और सब वचनों

के सुनने वाले श्रेष्ठ पुरुष संग्रामों में शत्रुओं के मारने जीतने वाले हों ॥२२॥

इस मन्त्र में अग्नि, विद्वान्, राजा की सेना, मित्र, वाणी, उपदेश-कर्त्ता और प्रजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १–३ । ७–९ । १७ त्रिष्टुप् । ११–१५ निचृत्त्रिष्टुप् । १६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ । १० भुरिक् पङ्क्तिः । ५ निचृत्पङ्क्ति । ६ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सत्रह ऋचा वाले बत्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के पहिले मन्त्र में नित्य कर्म का विधान कहते हैं ॥

इन्द्र सोमं सोमपते पिबेमं माध्यंन्दिनं सवनं चारु यत्ते ।
प्रप्रुथ्या शिप्रे मघवन्नृजीषिन्विमुच्या हरी इह मादयस्व ॥१॥

पदार्थः—हे (मघवन्) अत्यन्त श्रेष्ठ धनयुक्त (सोमपते) ऐश्वर्य्य के पालने और (इन्द्र) ऐश्वर्य्य की उत्पत्ति करने वाले ! आप (इमम्) इस (सोमम्) ऐश्वर्य-कारक सोम आदि ओषधि स्वरूप को (पिब) पीओ (चारु) सुन्दर भोजन करने के योग्य (माध्यन्दिनम्) बीच में होने वाले (सवनम्) भोजन वा होम आदि को सिद्ध करो । हे (ऋजीषिन्) शुद्धिकर्त्ता ! (ते) आप के (यत्) जो (शिप्रे) मुख के अव-यवों के सदृश ऐहिक और पारलौकिक व्यवहार हैं उन को (प्रप्रुथ्या) पूर्ण कर और दुर्व्यसनों को (विमुच्य) त्याग के (हरी) घोड़ों के सदृश धारण और खींचने का प्रयोग करके आप (इह) इस संसार में (मादयस्व) आनन्द दीजिये ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये प्रथम भोजन मध्य दिन के समीप में करें और अग्निहोत्र आदि व्यवहारों में भोजन के समय बलिवैश्वदेव को कर और दूषित वायु को निकाल के आनन्दित हों ॥१॥

कौन लोग श्रीमान् होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गवाशिरं मन्थिनमिन्द्र शुक्रं पिबा सोमं ररिमा ते मदाय ।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुःख के नाश करने वाले ! हम लोग (ते) आप के (मदाय) आनन्द के अर्थ जिस (गवाशिरम्) किरणों वा इन्द्रियों से मिले हुए (शुक्रम्) शीघ्र सुख पवित्र करने वा (मन्थिनम्) मथने का स्वभाव रखने और (सोमम्) ऐश्वर्य के करने वाले पान करने योग्य वस्तु को (ररिम) देवैं उस का आप (पिब) पान करिये और (ब्रह्मकृता) धन वा अन्न को करने वाले (मारुतेन) सुवर्ण आदि के सम्बन्धी (गणेन) गणना करने योग्य गिने हुए समूह से (रुद्रैः) प्राणों के सदृश मध्यम विद्वानों के साथ (सजोषाः) अपने तुल्य प्रीति का सेवन करने वाले (तृपत्) तृप्त होते हुए (आ) सब प्रकार (वृषस्व) वृषभ के तुल्य बलिष्ठ हूजिये ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य अन्य जनों में अपने तुल्य वर्त्तमान होकर उन लोगों के साथ सुख का ग्रहण और सुवर्ण आदि धन की वृद्धि करके तृप्त हुए बलिष्ठ होते वे ही श्रीमान् होते हैं ॥२॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये ते शुष्मं ये तविषीमवर्धन्नर्चन्त इन्द्र मरुतस्त ओजः ।
माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभिः सगणः सुशिप्र ॥३॥

पदार्थः—(सुशिप्र) सुन्दर ठोढ़ी और नासिका जिन की (वज्रहस्त) वा वज्र आदि शस्त्र हाथों में जिन के वह हे (इन्द्र) दुष्ट पुरुषों के समूह नाशक ! (ये) जो आप का (अर्चन्तः) सत्कार करने वाले (मरुतः) वायु के सदृश वीर पुरुष (ते) आप के समीप से (शुष्मम्) बल को (अवर्धन्) बढ़ावैं (ये) वा जो लोग (ते) आप की (तविषीम्) सेना और (ओजः) पराक्रम को बढ़ावैं उन (रुद्रेभिः) दुष्टों के रुलाने वाले वीर पुरुषों के साथ (सगणः) समूह के सहित वर्त्तमान आप (माध्यन्दिने) मध्य दिन में होने वाले (सवने) प्रेरणा करने में सूर्य्य के सदृश सोमलतादि ओषधि का पान करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो आप के मन्त्री लोग सेना, विजय, धन, राज्य, उत्तम शिक्षा, विद्या और धर्म को बढ़ावैं उनका आप निरन्तर सत्कार [कर] उनके साथ राज्य के सुख का सदा भोग करो ॥३॥

फिर कौन लोग विद्वान् होते हैं, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त इन्न्वस्य मधुमद्विविप्र इन्द्रस्य शर्धो मरुतो य आसन् ।
येभिर्वृत्रस्येषितो विवेदामर्मणो मन्यमानस्य मर्म ॥४॥

पदार्थ—(ये) जो (मरुतः) पवनों के सदृश वेग और बल से युक्त पुरुष (अस्य) इस वर्त्तमान (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष के (शर्धः) बल को (विविप्रे) फेंकते हैं (आसन्) मुख में (मधुमत्) बहुत मधुर आदि गुणों से युक्त वस्तुओं से पूर्ण पदार्थ को (इत्) ही रखते हैं जो (येभिः) जिन्हों से (इषितः) प्रेरित हुआ (वृत्रस्य) मेघ के सदृश शत्रु वा (अमर्मणः) मर्म से रहित (मर्म) प्रहार करने से नाश होने वाले स्थान को (मन्यमानस्य) जानने वाले को (विवेद) जानै (ते) वे पूर्व कहे हुए और वह पुरुष (नु) निश्चय अपने वाञ्छित फल को प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो लोग धन आदि ऐश्वर्य से सबके सुख की वृद्धि और दुःखों का निवारण करके सब लोगों को प्रसन्न करते हैं उनको ही धार्मिक विद्वान् मानना चाहिये ॥४॥

फिर विद्वान् जन क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मनुष्वदिन्द्र सवनं जुषाणः पिबा सोमं शश्वते वीर्याय ।
स आ ववृत्स्व हर्यश्व यज्ञैः सरण्युभिरपो अर्णा सिसर्षि ॥५॥

पदार्थः—(हर्य्यश्व) हरणकर्त्ता वा हरे रङ्ग और व्यापन स्वभाव वाले घोड़ों के समान अग्नि आदि पदार्थ जिन्होंने जाने वह हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के दाता ! जिससे आप (सरण्युभिः) अपने शरण प्राप्त होने की इच्छायुक्त पुरुषों और (यज्ञैः) विद्वानों का सत्कार शिल्पक्रिया और विद्या आदि के दानरूप व्यवहारों से (अर्णा) जलों को (अपः) अन्तरिक्ष के प्रति (सिसर्षि) पहुंचाते हैं इस से (सः) वह आप (सवनम्) ऐश्वर्य्य के (जुषाणः) सेवने वाले (शश्वते) निरन्तर अनादि सिद्ध (वीर्याय) बल के लिये (सोमम्) शरीर और आत्मा के बल तथा विज्ञान के बढ़ाने वाले महौषधि आदि के रस को (पिब) पीवो और (मनुष्वत्) विचार करने वाले विद्वान् पुरुष के तुल्य ऐश्वर्य्य का सेवने वाले शरीर और आत्मा के बल और विज्ञान के बढ़ाने वाले महौषधि आदि के रस को पीजिये तथा (आ) (ववृत्स्व) अच्छे प्रकार वर्त्ताव कीजिये ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य विद्या उत्तम शिक्षायुक्त भोजन विहार सत्पुरुषों का सङ्ग और धर्म के सेवन करने से उत्तम आत्मा और परमात्मा के योग से उत्पन्न हुए बल को बढ़ाते हैं वे लोग सब प्रकार उन्नत होते हैं । जैसे सूर्य्य जल को अन्तरिक्ष के प्रति वायु के साथ ऊपर ले जाता है वैसे ही विद्वान् लोग सम्पूर्ण जनों को प्रतिष्ठा के साथ उन्नति पर पहुँचाते हैं ॥५॥

फिर राजपुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वमपो यद्ध वृत्रं जघन्वाँ अत्याँइव प्रासृजः सर्त्तवाजौ ।
शयानमिन्द्र चरता वधेन वव्रिवांसं परि देवीरदेवम् ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशक ! (यत्) जो (त्वम्) आप ने जैसे (अत्यानिव) घोड़ों को सूर्य के समान (अदेवम्) विद्या प्रकाश से रहित अविद्वान् वा (वृत्रम्) दुष्ट को (जघन्वान्) नाश किया वा सूर्य (चरता) प्राप्त (वधेन) नाश से (शयानम्) सोते हुए से वर्त्तमान (वव्रिवांसम्) ढपे हुए को (देवीः) उत्तम किरणों और (अपः) जलों को (ह) निश्चय से उत्पन्न करता है उसी प्रकार से (सर्त्तवै) जानने योग्य (आजौ) युद्ध में (परि) चारों ओर से (प्र, असृजः) उत्पन्न करते हो वे आप हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हैं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा आदि वीर पुरुष जैसे सूर्य मेघ को वैसे संग्राम में चलाये शस्त्र और अस्त्रों से शत्रुओं को जीतते हैं वे ही प्रतापयुक्त होते हैं ॥६॥

फिर कैसे ईश्वर की उपासना करनी चाहिये, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम लोग (यस्य) जिस (यज्ञियस्य) पूजा अर्थात् प्रीति करने योग्य परमेश्वर के (महिमानम्) महत्त्व को (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी (न) नहीं (ममाते) नाप सकते और (प्रिये) प्रीति कराने वाले इस लोक और परलोक के सुखों ने नहीं (ममतुः) नापे हैं (इत्) उसी (युवानम्) सम्पूर्ण संसार के संयोग और विभाग के करने वाले (अजरम्) बुढ़ापे से रहित (ऋष्वम्) श्रेष्ठ (बृहन्तम्) बड़े (वृद्धम्) आयु को भोगे हुए वा विद्या से श्रेष्ठ (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य्य करने वाले परमेश्वर की (नमसा) सत्कार से (यजाम) पूजा करते हैं उस की तुम लोग भी पूजा करो ॥७॥

भावार्थः—जिस परमेश्वर की अपेक्षा कोई पदार्थ तुल्य वा अधिक नहीं जो सब से श्रेष्ठ व्यापक विनाशरहित और पूज्य है उसी परमात्मा की हम लोग निरन्तर उपासना करें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि व्रतानि देवा न मिनन्ति विश्वे ।
दाधार यः पृथिवीं द्यामुतेमां जजान सूर्य्यमुषसं सुदंसाः ॥८॥

**पदार्थः**—हे मनुष्यो ! (यः) जो (सुदंसाः) सुन्दर धर्म सम्बन्धी कर्मों से युक्त परमेश्वर (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि और (द्याम्) प्रकाशस्वरूप आदि लोक को तथा (सूर्यम्) सूर्य लोक को (उत) और भी (उषसम्) दिन को (जजान) उत्पन्न करता (दाधार) धारण करता वा पुष्ट करता है जिस (इन्द्रस्य) परमात्मा के (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) पृथिवी आदि वा विद्वान् लोग (व्रतानि) सत्य विचारों को (सुकृता) उत्तम (पुरूणि) बहुत (कर्म) कामों को (न) नहीं (मिनन्ति) नाश करते हैं उस की आप और हम लोग उपासना करें ॥८॥

**भावार्थः**—परमेश्वर के पवित्र होने से सम्पूर्ण सामर्थ्ययुक्त सब के उत्पन्न वा धारणकर्त्ता परमेश्वर के स्वरूप परिमित सामर्थ्य वा कर्म को कोई भी नाश नहीं कर सकता है और जो लोग इस परमेश्वर की सत्य भावना से उपासना करते हैं वे भी पवित्र हो कर सामर्थ्ययुक्त होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अद्रोघ सत्यं तव तन्महित्वं सद्यो यज्जातो अपिबो ह सोमम् ।
न द्याव इन्द्र तवसस्त ओजो नाहा न मासाः शरदो वरन्त ॥९॥

**पदार्थ**—हे (अद्रोघ) द्रोह से रहित (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के दाता जगदीश्वर ! (यत्) जो (सद्यः) तत्काल (जातः) प्रकट हुआ सूर्य (सोमम्) सब जगत् से रस को (अपिबः) पीता खींचता है (तत्) वह जिन (तव) आप के (सत्यम्) सत्य (महित्वम्) महिमा को (न) नहीं उल्लङ्घन कर सकता है (ते) आप के (तवसः) बल के (ओजः) प्रभाव को न (द्यावः) प्रकाशस्वरूप लोक (न) न (अहा) दिन (न) न (मासाः) चैत्र आदि महीने और न (शरदः) वसन्त आदि ऋतुयें (वरन्त) वारण करती हैं (भदन्तम, ह) उन्हीं आप की हम लोग निरन्तर सेवा करें ॥९॥

**भावार्थः**—हे मनुष्यो ! जैसे परमेश्वर किसी से द्रोह नहीं करता है वैसे आप लोग भी हूजिये जिस परमेश्वर की सृष्टि में सूर्य्य आदि बड़े बड़े पदार्थ विद्यमान हैं और जिस के स्वरूप वा प्रभाव के अन्त को कोई भी नहीं प्राप्त होता है वही हम लोगों का इष्टदेव है ॥९॥

जिस प्रकार जन्म की सफलता हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वं सद्यो अपिबो जात इन्द्र मदाय सोमं परमे व्योमन् ।
यद्ध द्यावापृथिवी आविवेशीरथाभवः पूर्व्यः कारुधायाः ॥१०॥

पदार्थः--हे (इन्द्र) इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव ! (त्वम्) आप (परमे) उत्तम (व्योमन्) आकाशवत् व्यापक आत्मज्ञान में (सद्यः) शीघ्र (जातः) प्रकट वा प्रसिद्ध हुए (मदाय) आनन्द के लिये (सोमम्) बल और बुद्धि के बढ़ाने वाले रस को (अपिबः) पीते हैं (अथ) इस के अनन्तर (यत्) जो (पूर्व्यः) पूर्व लोगों में श्रेष्ठ (कारुधायाः) शिल्पी जनों का धारणकर्त्ता (अभवः) हो वह आप (ह) निश्चय से (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि में (आ) सब ओर से (आविवेशीः) वारम्वार प्रवेश कीजिये ॥१०॥

भावार्थः हे मनुष्यो ! ब्रह्मचर्य्य से शीघ्र विद्वान् और नियमित आहार विहार से रोगरहित हो के परमात्मा की आराधना करते हुए सृष्टि और पदार्थविद्याओं में आप सब प्रवेश करें जिस से जन्म की सफलता हो ॥१०॥

फिर राजपुरुष क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अहन्नहिं परिशयानमर्णं ओजायमानं तुविजात तव्यान् ।
न ते महित्वमनु भूदध द्यौर्यदन्यया स्फिग्या३ क्षामवस्थाः ॥११॥

पदार्थः--हे (तुविजात) बहुत लोगों में प्रसिद्ध (तव्यान्) अत्यन्त बलयुक्त ! (यत्) जो आप जैसे (द्यौः) सूर्यप्रकाश (ओजायमानम्) बल को प्राप्त होते हुए (परिशयानम्) सब ओर से आकाश में सोते जैसे वर्त्तमान (अहिम्) मेघ को (अहन्) नाश करता है (अर्णः) जल को गिराता है और जैसे सूर्य्य का (महित्वम्) बड़ापन (अनु) (भूत्) हो वा जैसे यह मेघ (अध) तदनन्तर (अन्यया) दूसरो (स्फिग्या) मध्य के अवयवरूप से (क्षाम्) पृथिवी को ढांपता है वैसे आप शत्रुओं को (अवस्थाः) घेर के वर्त्तमान हूजिये जिस से (ते) वे आप की महिमा को (न) नहीं काटैं ॥११॥

भावार्थः हे राजपुरुषो ! जैसे सूर्य्य अन्तरिक्ष में वर्त्तमान बलवान् मेघ का नाश और भूमि में गिरा कर उस के जल से प्राणियों का पोषण करता है वैसे ही अधर्म में वर्त्तमान शत्रु का नाश कर के उस के ऐश्वर्य्य से राज्य का पालन करो ॥११॥

फिर मनुष्य क्या करें, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यज्ञो हि त इन्द्र वर्धनो भूदुत प्रियः सुतसोमो मियेधः ।
यज्ञेन यज्ञमव यज्ञियः सन्यज्ञस्ते वज्रमहिहत्य आवत् ॥१२॥

पदार्थः--हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के प्राप्त कराने वाले (हि) जिस से कि (ते) आप का (अहिहत्ये) वर्षा का निमित्त (यज्ञः) पदार्थों का संयोग करना रूप

व्यवहार (वर्धनः) उन्नतिकर्त्ता (सुतसोमः) ऐश्वर्य्य की उत्पत्तिकर्त्ता (मियेधः) दुःख का नाशकर्त्ता (उत) और भी (प्रियः) प्रीति की उत्पत्ति करने वाला (भूत्) होता है जिन (ते) आप का (यज्ञः) पदार्थों का मेल करना रूप व्यवहार (वज्रम्) शस्त्र विशेष की (आवत्) रक्षा करै वह (यज्ञियः) यज्ञों में चतुर (सन्) हुए आप (यज्ञेन) सङ्गत कर्म से (यज्ञम्) सङ्गत व्यवहार की (अव) रक्षा करो ॥१२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जो उत्तम क्रिया से उत्तम क्रियाओं को वढ़ावैं तो आप लोग रक्षित हुए अन्य जनों की भी रक्षा करने के योग्य होवैं ॥१२॥

अब कैसे मनुष्य सुख को प्राप्त हो सकते, इस विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

यज्ञेनेन्द्रमवसा चक्रे अर्वागैनं सुम्नाय नव्यसे ववृत्याम् ।
यः स्तोमेभिर्वावृधे पूर्व्येभिर्यो मध्यमेभिरुत नूतनेभिः ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (यः) जो (पूर्व्येभिः) प्राचीनों में कुशल और (मध्यमेभिः) वीच में हुए (उत) और भी (नूतनेभिः) नवीन (स्तोमेभिः) प्रशंसायुक्त कर्मों से (वावृधे) वढ़ता है (यः) जो (नव्यसे) नवीन (सुम्नाय) सुख के लिये (यज्ञेन) युक्त व्यवहार (अवसा) रक्षा आदि से (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य को (आचक्रे) अच्छा करता है (अर्वाक्) पीछे (एनम्) इस की रक्षा करता है उस के समीप (आ) (ववृत्याम्) प्राप्त होऊं वैसे आप लोग भी इस कर्म को करें ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य व्यतीत हुए व्यवहार के शेष मर्म को जानने मध्यम पुरुषों की रक्षा करने और नवीन प्रयत्न से वृद्धि को प्राप्त होते हैं वे लोग उस के अनन्तर नवीन नवीन सुख को प्राप्त होने योग्य होते हैं न कि अन्य आलस्य युक्त और मूर्ख पुरुष ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विवेष यन्मा धिषणा जजान स्तवै पुरा पार्यादिन्द्रमह्नः ।
अंहसो यत्र पीपरद्यथा नो नावेव यान्तमुभये हवन्ते ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (धिषणा) वाणी (मा) मुझ को (विवेष) व्याप्त होती और (जजान) उत्पन्न करती है उस की मैं (स्तवै) प्रशंसा करूं जो (अह्नः) दिन से (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को (पुरा) प्रथम (पार्य्यात्) पार पहुंचावे वा (यत्र) जिस व्यवहार में (अंहसः) अपराध से मुझ को (पीपरत्) पार लगावे वा (यथा)

जिस प्रकार से (नः) हम लोगों के अर्थ (यान्तम्) जाते हुए को (उभये) दूर और समीप में वर्त्तमान लोग (नावेव) नौका के सदृश (हवन्ते) पुकारते हैं वैसे हम लोगों को सब लोग पुकारें ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि उस वाणी और बुद्धि को ग्रहण करें जो सब समय में दुष्ट आचरण से पृथक् रख के दुःख से नौका के सदृश पार उतारें ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

आपूर्णो अस्य कलशः स्वाहा सेक्तेव कोशं सिसिचे पिबध्यै ।
समु प्रिया आववृत्रन्मदाय प्रदक्षिणिदभि सोमास इन्द्रम् ॥१५॥

पदार्थः—जो (सोमासः) ऐश्वर्य्य से युक्त (प्रियाः) कामना करने योग्य (मदाय) आनन्द के लिये (इन्द्रम्) सूर्य्य को (अभि) सम्मुख (आ) चारों ओर से (अववृत्रन्) घेरते हैं वे (उ) (अस्य) इस संसार के मध्य में (पिबध्यै) पान करने के लिये (सेक्तेव) पूर्ण करने वाले के तुल्य (कोशम्) मेघ को (सम्) (सिसिचे) सींचते हैं (स्वाहा) सत्य क्रिया से (आपूर्णः) चारों ओर से भरा हुआ (कलशः) घड़ा (प्रदक्षिणित्) दाहिनी ओर चलने वाला पूर्ण घड़े के तुल्य सुखकारक होता है ॥१५॥

भावार्थः—जो लोग धन आदि को प्राप्त हो के औरों के लिये सुपात्र और उत्तम व्यवहार करने वाले को जान के देते हैं वे लोग सींचने वाला घड़े को जैसे वैसे सम्पूर्ण जनों को पूर्ण सुखयुक्त करते हैं ॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुर्नाद्रयः परि षन्तो वरन्त ।
इत्था सखिभ्य इषितो यदिन्द्रा दृळ्हं चिदरुजो गव्यमूर्वम् ॥१६॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसा किये गये (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के दाता राजन् ! जिन (त्वा) आप को (गभीरः) गाम्भीर्य गुणों से युक्त (सिन्धुः) समुद्र (न) नहीं (परि) सब ओर से (वरन्त) वारण करते हैं (अद्रयः) मेघ वा पर्वत (सन्तः) वर्त्तमान होते हुए (न) नहीं सब ओर से वारण करते हैं (यत्) जो (दृढम्) स्थिर (चित्) भी (गव्यम्) गौओं का (ऊर्वम्) निरोधस्थान का (आ, अरुजः) भङ्ग करते हो वह (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (इषितः) प्रेरित हुए आप (इत्था) इस प्रकार किस जन से सत्कार नहीं करने योग्य होवें ॥१६॥

भावार्थ—हे विद्वान् लोगो ! जैसे समुद्र और पर्वत सूर्य्य को निवारण

नहीं कर सकते वैसे ही बहुत मित्रों वाले जन शत्रुओं से निवारण करने के शक्य नहीं होते हैं ॥१६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (समत्सु) संग्रामों में (घ्नन्तम्) नाश करने वाले (उग्रम्) तेजस्वभावयुक्त (धनानाम्) द्रव्यों के (सञ्जितम्) और उत्तम प्रकार शत्रुओं को जीतने वाले (वृत्राणि) सुवर्ण आदि धनों को (शृण्वन्तम्) सुनते हुए को (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) धन और अन्न आदि के विभाग करने वाले (भरे) संग्राम में (नृतमम्) उत्तमगुणों से सर्वोत्तम (मघवानम्) परम धनवान् और (इन्द्रम्) दुष्ट जनों के नाशकर्त्ता को (हुवेम) पुकारें और उस के सङ्ग से (शुनम्) सुख को प्राप्त होवें वैसे इस की स्तुति करके आप लोग भी इस को प्राप्त हों ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो राजा आदि प्रधान पुरुष, राजविद्या में चतुर, योद्धा, न्यायाधीश पुरुषों, प्राड्विवाकों (वकीलों) और सेवक पुरुषों का सत्कार करके ग्रहण करें तो उन राजाओं का सदैव विजय यश कीर्ति और ऐश्वर्य होता है ॥१७॥

इस सूक्त में सोम मनुष्य ईश्वर और बिजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । नद्यो देवताः । १ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिः । ७ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । १० विराट् त्रिष्टुप् । ३ । ८ । ११ । १२ त्रिष्टुप् । ४ । ६ । ९ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १३ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचा वाले तैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के पहिले मन्त्र में नदी के दृष्टान्त से स्त्री का वर्णन करते हैं ॥

प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वेइव विषिते हासमाने ।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो पढ़ाने और उपदेश देने वाली (मातरा) मान्य देने वालियों सी कन्याओं की शिक्षा को (उशती) कामना करने वाली (पर्वतानाम्) मेघों के (उपस्थात्) समीप से (अश्वेइव) घोड़े और घोड़ी के सदृश (विषिते) विद्या और शुभ गुणयुक्त कर्मों से व्याप्त वा घोड़े और घोड़ी के सदृश (हासमाने) परस्पर प्रेम करती (रिहाणे) प्रीति से एक दूसरे को सूंघती हुई (शुभ्रे) उत्तम गुणों से युक्त (गावेव) गौ और बैल के सदृश (पयसा) जल से (विपाट्) कई प्रकार चलने वा ढांपने वाली (शुतुद्री) शीघ्र दुःखदायक (प्र) (जवेते) चलती हैं वैसे वर्त्तमान होवें उन अध्यापिका और उपदेशिका को कन्या और स्त्रियों के पढ़ाने और उपदेश करने में नियुक्त करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे पर्वतों के मध्य में वर्त्तमान नदियाँ घोड़ों के सदृश दौड़ती और गौओं के सदृश शब्द करती हैं वैसे ही प्रसन्न और उत्तम गुण कर्म स्वभाव युक्त विद्या की उन्नति की कामना करने वाली स्त्रियां कन्याओं और स्त्रियों को निरन्तर शिक्षा देवें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रे॑षिते प्रस॒वं भिक्ष॑माणे॒ अच्छा॑ समु॒द्रं र॒थ्ये॑व याथः ।
समा॒रा॒णे ऊ॒र्मिभिः॒ पिन्व॑माने अ॒न्या वा॑म॒न्याम॒प्ये॑ति शुभ्रे ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रेषिते) सूर्य्य से वृष्टि के द्वारा प्रेरित की गई (पिन्वमाने) सींचने वाली (ऊर्मिभिः) तरङ्गों से (समुद्रम्) बहने वाले जलों से युक्त मेघ वा सागर को (रथ्येव) रथों में चलने योग्य घोड़ों वा नदियों के सदृश (प्रसवम्) उत्तम ऐश्वर्य्य की (भिक्षमाणे) याचना करती हुई (समाराणे) उत्तम प्रकार सब तरह दान देने वाली (शुभ्रे) शोभायुक्त हो कर पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्रियां (अच्छ, याथः) अच्छे प्रकार जावें (अन्या) कोई एक स्त्री (अन्याम्) दूसरी स्त्री को (अपि) (एति) प्रीति से मिलाती है वा हे पढ़ाने और उपदेश देने वालियो ! (वाम्) तुम दोनों के सम्बन्ध से जो स्त्रियां पढ़ने वा सुनने को प्राप्त हों वे स्त्रियां तुम को विद्या सम्बन्धी व्यवहार में नियुक्त करती तथा पढ़ानी चाहियें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे जवान स्त्रियां जवान पतियों को प्राप्त हो के गर्भोत्पत्ति की इच्छा करती हैं और नदियां समुद्र के प्रति जाती हैं और घोड़े मार्ग में रथ को ले चलते हैं वैसे ही पढ़ने और उपदेश देने वालियों को चाहिये कि विद्या और उत्तम शिक्षा के दान से सम्पूर्ण स्त्रियों को उत्तम गुणकर्म स्वभाव-युक्त करें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अच्छा सिन्धुं मातृतमामयासं विपाशमुर्वीं सुभगामगन्म ।
वत्समिव मातरा संरिहाणे समानं योनिमनु सञ्चरन्ती ॥३॥

पदार्थः—जैसे (मातृतमाम्) अत्यन्त माता के सदृश पालन करने वाली नदियां (सिन्धुम्) समुद्र के प्रति प्राप्त होती हैं वैसे ही हम (विपाशम्) बन्धन रहित (उर्वीम्) बड़ी (सुभगाम्) सौभाग्य से युक्त पढ़ाने और उपदेश देने वाली स्त्री को (अगन्म) प्राप्त हों और जैसे (संरिहाणे) उत्तम प्रकार आस्वाद करने वालीं स्त्रियां (समानम्) तुल्य (योनिम्) गृह को (अनु) (सञ्चरन्ती) अनुकूलता से उत्तम प्रकार चलतीं और जानती हुई (मातरा) माता के सदृश वर्त्तमान (वत्समिव) जैसे गौ बछड़े को वैसे मुझ को पढ़ाने और शिक्षा देने के लिये प्राप्त होवें उन को मैं (अच्छ, अयासम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होऊं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जैसे समुद्र को नदियाँ और बछड़ों को गौवें और स्त्री पुरुष एक गृह को प्राप्त होते हैं वैसे ही पढ़ाने और उपदेश देने वाली स्त्रियां हम लोगों को प्राप्त हों और हम लोग जो कन्या और सौभाग्य वाली स्त्रियां हों उन को प्राप्त हों ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एना वयं पयसा पिन्वमाना अनु योनिं देवकृतं चरन्तीः ।
न वर्तवे प्रसवः सर्गतक्तः किंयुर्विप्रो नद्यो जोहवीति ॥४॥

पदार्थः—जो (एना) इस (पयसा) जल से (पिन्वमानाः) सींचती हुई (देवकृतम्) विद्वानों ने किये शास्त्र और (योनिम्) जल को (अनु, चरन्तीः) अनुकूल प्राप्त होने वाली (नद्यः) नदियाँ (वर्त्तवे) स्वीकार करने को (न) नहीं निवृत्त होती हैं उनको (वयम्) हम लोग प्राप्त होवें जो (सर्गतक्तः) उत्पत्ति में प्रसन्न (प्रसवः) सन्तान (किंयुः) अपने को क्या इच्छा करने वाला (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष (जोहवीति) वारम्वार शब्द करता है वह हम लोगों को प्राप्त होवे ॥४॥

भावार्थः—जैसे जल सहित नदियां सब की उपकार करने वाली होतीं और कभी जल से हीन नहीं होती हैं वैसे जो ब्रह्मचर्य से युक्त स्त्री और पुरुष का सन्तान उत्पन्न हो और धर्मसम्बन्धी ब्रह्मचर्य्य से सम्पूर्ण विद्याओं को प्राप्त होकर विद्वान् होता है वही सब का उपकार कर सकता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

रमध्वं मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्त्तमेवैः ।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनुः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे (ऋतावरीः) बहुत जलों से युक्त नदी (सिन्धुम्) समुद्र को (उप) प्राप्त और स्थिर होती हैं वैसे ही (एवैः) प्राप्त कराने वाले गुणों से (मुहूर्त्तम्) दो दो घड़ी (मे) मेरे (सोम्याय) चन्द्रमा के तुल्य शान्ति गुणयुक्त (वचसे) वचन के लिये (रमध्वम्) क्रीड़ा करो वैसे ही (कुशिकस्य) विद्या के निचोड़ को प्राप्त हुए सज्जन के (सूनुः) पुत्र के सदृश वर्त्तमान (अवस्युः) अपने को रक्षा चाहने वाला मैं जो (बृहती) बड़ी (मनीषाः) बुद्धि उस की (अच्छ) उत्तम प्रकार (प्र) (अह्वे) प्रशंसा करता हूं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे नदियां समुद्र के सम्मुख जाती हैं वैसे ही मनुष्य लोग विद्या और धर्मसम्बन्धी व्यवहार को प्राप्त हों जिससे सुखपूर्वक समय व्यतीत होवै ॥५॥

अब सूर्य के दृष्टान्त से मनुष्य के कर्त्तव्य को कहते हैं ॥

इन्द्रो अस्माँ अरदद्वज्रबाहुरपाहन्वृत्रं परिधिं नदीनाम् ।
देवोऽनयत्सविता सुपाणिस्तस्य वयं प्रसवे याम उर्वीः ॥६॥

पदार्थः—हे राजन् (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् ! आप जैसे (सविता) सूर्य (देवः) उत्तम गुण कर्म और स्वभावयुक्त (नदीनाम्) नदियों के (परिधिम्) चारों ओर वर्त्तमान (वृत्रम्) ढांपने वाले मेघ को (अप) (अहन्) नाश करता है उस के अवयवों को (अरदत्) खोदै और जल, भूमि को (अनयत्) प्राप्त करता वैसे (वज्रबाहुः) शस्त्रधारी हो (अस्मान्) हम लोगों की रक्षा करके सेवकों के सहित शत्रुओं का नाश करैं जो (सुपाणिः) उत्तम हाथों से और उत्तम गुण कर्म स्वभाव से युक्त आप (उर्वीः) बहुत सुख की देने वाली प्रजाओं की रक्षा करैं (तस्य) उस के (प्रसवे) ऐश्वर्य्य में (वयम्) हम लोग आनन्द को (यामः) प्राप्त होवैं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य भूमि आदि पदार्थों को आकर्षण से यथास्थान ठहरा और वृष्टि करके ऐश्वर्य को उत्पन्न करता है वैसे ही हम लोग उत्तम गुणों का आकर्षण और शत्रुओं को जीत करके राज्य की शोभा को प्राप्त करें ॥६॥

फिर मनुष्य क्या करे, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रवाच्यं शश्वधा वीर्य्यं१ तदिन्द्रस्य कर्म यदहिं विवृश्चत् ।
वि वज्रेण परिषदो जघानायन्नापोऽयनमिच्छमानाः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो सूर्य्य (अहिम्) मेघ को (विवृश्चत्) काटता है (यत्) जो (इन्द्रस्य) सूर्य्य का (वीर्य्यम्) बलरूप (कर्म) कर्म है (तत्) वह (शश्वधा) निरन्तर ही (प्रवाच्यम्) कहने योग्य और जैसे (वज्रेण) किरण से विदीर्ण किये गये मेघ के (आपः) जल (अयनम्) भूमि स्थान को (आयन्) प्राप्त होवें मेघ को (विजघान) नाश करता है वैसे ही (इच्छमानाः) इच्छा करते हुए जन (परिषदः) जिन में बैठे उन सभा को करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो धर्मसम्बन्धी काम करके दुष्ट पुरुषों के निवारण के लिये अपना पराक्रम दिखावे उसके उस कर्म की प्रशंसा सब काल में करनी चाहिये। जो लोग सभा में श्रेष्ठ होवें वे न्याय से सब लोगों की उन्नति करने की इच्छा करें॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एतद्वचो जरितर्मापि मृष्ठा आ यत्ते घोषानुत्तरा युगानि ।
उक्थेषु कारो प्रति नो जुषस्व मा नो नि कः पुरुषत्रा नमस्ते ॥८॥

पदार्थः—हे (जरितः) प्रशंसा करने वाले ! आप (एतत्) इस (वचः) वचन को (मा) नहीं (अपि मृष्ठाः) सहो (ते) आप के (यत्) जो (उत्तरा) आगे के (युगानि) वर्ष (घोषान्) वाणी के प्रयोगों को प्राप्त होवे वह (उक्थेषु) प्रशंसा करने योग्य व्यवहारों में (नः) हम लोगों को प्राप्त होवें। (कारो) हे कर्त्ता पुरुष ! उन से (नः) हम लोगों की (प्रति, आ, जुषस्व) सेवा करो हम (पुरुषत्रा) पुरुषों का (मा, नि, कः) अपकार मत करो इससे (ते) आप के लिये (नमः) नमस्कार हो ॥८॥

भावार्थः- हे मनुष्यो ! जितना भूतकाल गया उसमें व्यतीत हुए कर्मों के शेष करने योग्य कार्य्य को जान के वर्त्तमान और भविष्यत् काल में जिस प्रकार उन्नति हो के विघ्न निवृत्त होवें वैसे ही करो ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ओ षु स्वसारः कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन ।
नि षू नमध्वं भवता सुपारा अधोअक्षाः सिन्धवः स्रोत्याभिः ॥९॥

पदार्थः—(ओ) हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (कारवे) शिल्पीजन के लिये (स्वसारः) भगिनी के तुल्य वर्त्तमान अङ्गुलियों (स्रोत्याभिः) वा स्रोतों में होने वाली गतियों से (सिन्धवः) नदियों के समान (अधोअक्षाः) नीचे को प्राप्त होती हुई इन्द्रियों से युक्त (सुपाराः) सुन्दर पालन आदि कर्म करने वाले (सु) (भवत) उत्तम प्रकार से हूजिये जो (अनसा) शकट और (रथेन) रथ से (दूरात्) दूर (वः) आप लोगों को (ययौ) प्राप्त होता है उसको (सु, शृणोत) उत्तम प्रकार सुनिये उसमें (नि) अत्यन्त (नमध्वम्) नम्र हूजिये ॥९॥

भावार्थः - इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग दूसरे दूसरे में प्रसन्न बहुत बातों को सुने हुए पुरुष, औरों से बनाए हुए शीघ्र चलने वाले वाहनों को देख और वैसे ही बनाय के जलाशयों के आर पार जाते हुए नम्र होवें उनको जैसे स्रोता नदियों को वैसे ऐश्वर्य्य गुण प्राप्त होते हैं ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ ते॑ कारो शृणवामा वचां॑सि य॒याथ॑ दू॒राद॑नसा॒ रथे॑न ।
नि ते॑ नंसै पीप्या॒नेव॒ योषा॒ मर्या॑येव क॒न्या॑ शश्व॒चै ते॑ ॥१०॥

पदार्थः—हे (कारो) शिल्पविद्याओं में चतुर ! (ते) आप के (वचांसि) विद्या के प्राप्त कराने वाले वचनों को (अनसा) शकट और (रथेन) रथ से (दूरात्) दूर से आय के हम लोग (आ) सब प्रकार (शृणवाम) सुनें और जैसे आप हम लोगों को (ययाथ) प्राप्त होवें वैसे हम लोग आप को प्राप्त होवें जो आप (पीप्यानेव) विद्या के वृद्ध दो पुरुषों के सदृश (नि, नंसै) नमस्कार करें (ते) आप के लिये हम लोग भी नम्र होवें (योषा) स्त्री (मर्यायेव) जैसे पुरुष के लिये और (कन्या) कन्या (शश्वचै) प्रीति से मिलने के लिये वैसे (ते) आप के लिये हम लोग अभिलाषा करें ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में [उपमा और] वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो लोग दूर से आय के विद्वानों के समीप से अनेक प्रकार की विद्याओं को प्राप्त करके नम्र होते हैं वे विद्यावृद्ध होकर जैसे पतिव्रता स्त्री पति और कन्या अभीष्ट वर को वैसे विद्या को प्राप्त हो के आनन्दित होते हैं ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यद॒ङ्ग त्वा॑ भर॒ताः स॒न्तरे॑युर्ग॒व्यन्ग्राम॑ इषि॒त इन्द्र॑जूतः ।
अर्षा॒दह॑ प्रस॒वः सर्ग॑तक्त॒ आ वो॑ वृणे सुम॒तिं य॒ज्ञिया॑नाम् ॥११॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) मित्र ! (यत्) जिस (त्वा) आप को (भरताः) सब के धारण वा पोषण करने वाले (सन्तरेयुः) तरे अर्थात् आप के स्वभाव से पार हो वह (ग्रामः) मनुष्यों के समूह के समान (इषितः) प्रेरणा को प्राप्त (इन्द्रजूतः) बिजुली के सदृश प्रताप और (प्रसवः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य युक्त (सर्गतक्तः) जल के संकोच करने वाले (गव्यन्) गौ के तुल्य आचरण करते हुए आप (अह) ग्रहण करने में (अर्षात्) प्राप्त होवैं वा हे विद्वानो ! जैसे मैं (यज्ञियानाम्) यज्ञ के सिद्ध करने वाले (वः) आप लोगों की (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (आ) सब प्रकार (वृणे) स्वीकार करता हूं वैसे आप लोग मेरी बुद्धि को स्वीकार करिये ॥११॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् लोग विद्या के पार जाय अर्थात् सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़ के बुद्धिमान् होते हैं वैसे और लोग भी हों। ऐसा करने से सम्पूर्ण जन दुःख के पार जाय अर्थात् दुःख को उल्लंघन करके सुखी होवैं ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अतारिषुर्भरता गव्यवः समभक्त विप्रः सुमतिं नदीनाम् ।
प्र पिन्वध्वमिषयन्तीः सुराधा आ वक्षणाः पृणध्वं यात शीभम् ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (गव्यवः) अपनी उत्तम शिक्षायुक्त वाणी की इच्छा करने तथा (भरताः)धारण और पोषण करने वाले नौका आदि से (नदीनाम्) नदियों के सदृश वर्त्तमान पढ़ी हुई स्त्रियों के ज्ञानप्रवाहों को (अतारिषुः) तरैं, जैसे (सुराधाः) उत्तम धनयुक्त (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (सम्, अभक्त) अच्छे प्रकार सेवन करे और जैसे (वक्षणाः) बहती हुई नदियां और बहती हैं वैसे (इषयन्तीः) अन्न को सिद्ध करने वाली स्त्रियों को (प्र, पिन्वध्वम्) सेवन करो, सब का (आ) (पृणध्वम्) पालन करो और उत्तम गुणों को (शीभम्) शीघ्र (यात) प्राप्त होओ ॥१२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि नदी और समुद्र आदि जलाशयों को विद्वानों के सदृश पार होके सुख का शीघ्र सेवन करें ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उद्व ऊर्मिः शम्या हन्त्वापो योक्त्राणि मुञ्चत ।
मादुष्कृतौ व्येनसाघ्न्यौ शूनमारताम् ॥१३॥

पदार्थः—हे स्त्रियो ! आप (शम्याः) कर्म में उत्पन्न (आपः) जलों के सदृश दुःख को (हन्तु) दूर करैं और (वः) आप का जो (ऊर्मिः) तरंग के सदृश उत्साह

उस से (योक्त्राणि) जोड़नों को तुम (मुञ्चत) त्याग करो हे स्त्री और पुरुष ! तुम दोनों (अदुष्कृतौ) दुष्टाचरण से रहित हुए दुष्ट कर्म को (मा) नहीं प्राप्त होओ (व्येनसा) पाप का आचरण नष्ट होने से (अघ्नचौ) नहीं मारने योग्य होते हुए पति और स्त्री दोनों (शूनम्) सुख को (उत्) उत्तम प्रकार (आ) (अरताम्) प्राप्त होवें ॥१३॥

भावार्थः— जो स्त्री और पुरुष दुःख के बन्धनों को काट और दुष्ट आचरण को त्याग के विद्या की उन्नति करें तो वे निरन्तर सुख को प्राप्त होवें ॥१३॥

इस सूक्त में मेघ, नदी, विद्वान्, मित्र, शिल्पी, नौका आदि और स्त्री पुरुष का कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ११ त्रिष्टुप् । ४ । ५ । ७ । १० निचृत्त्रिष्टुप् । ९ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ६ । ८ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले ३४ चौतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र से सूर्य के गुणों का उपदेश करते हैं ॥

इन्द्रः पूर्भिदातिरद्दासमर्कैर्विदद्वसुर्दयमानो वि शत्रून् ।
ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधानो भूरिदात्र आपृणद्रोदसी उभे ॥१॥

पदार्थः—हे राजपुरुष ! जैसे सूर्य्य (उभे) दोनों (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी के तुल्य विद्या और विनय को (आ) (अपृणत्) पूर्ण करै वैसे (विदद्वसुः) धनों से सम्पन्न (ब्रह्मजूतः) धनों को प्राप्त (दासम्) देने योग्य पर (दयमानः) कृपालु (तन्वा) शरीर से (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त होते हुए (भूरिदात्रः) अनेक प्रकार के दान देने (पूर्भित्) शत्रुओं के नगरों को तोड़ने और (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य के रखने वाले आप (अर्कैः) आदर करने योग्य विचारों से (शत्रून्) शत्रुओं का (वि, आ, अतिरत्) उल्लङ्घन करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य अपने किरणों से भूमि और अन्तरिक्ष को पूर्ण कर के अन्धकार को जीतता है वैसे ही श्रेष्ठ और ऐक्यमत युक्त विचारों से शत्रुओं को जीतें तथा सब

काल में शरीर और आत्मा के वल को वढ़ाय और श्रेष्ठ पुरुषों को सत्कार कर के दुष्ट जनों का अपमान करैं ॥१॥

अब राजा प्रजा सम्बन्धी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मखस्य॑ ते तविषस्य॒ प्र जूतिमिय॑र्मि॒ वाच॑मृ॒ताय॑ भूष॑न् ।
इन्द्र॑ क्षि॒तीना॑मसि॒ मानु॑षीणां वि॒शां दैवी॑नामु॒त पू॑र्व॒यावा॑ ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले ! (ते) आप के (मखस्य) मेल करने रूप व्यवहार और (तविषस्य) वल के (जूतिम्) वेग और (अमृताय) अविनाशी सुख के लिये (वाचम्) कही हुई सत्य वाणी को (भूषन्) शोभित करता हुआ मैं (प्र, इर्यमि)) प्राप्त होता हूँ जिस से आप (दैवीनाम्) उत्तम गुणों से युक्त (क्षितीनाम्) अपने राज्य में वसने वाली (मानुषीणाम्) मनुष्यरूप (विशाम्) प्रजाओं की (पूर्वयावा) प्राचीन राजनीति को प्राप्त (उत) अथवा अपने ही से विद्या और विनय से युक्त हो इस से श्रेष्ठ पुरुषों से सत्कार करने योग्य (असि) हो ॥२॥

भावार्थः—सम्पूर्ण प्रजा और राजजनों को चाहिये कि सव लोगों के स्वामी की आज्ञा का उल्लङ्घन न करें और सव लोगों के स्वामी को चाहिये कि धर्मयुक्त कर्मों से निरन्तर प्रजाओं का पालन करै ॥२॥

फिर सूर्य के दृष्टान्त से राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रो॑ वृ॒त्रम॑वृणो॒च्छर्ध॑नीतिः॒ प्र मा॒यिना॑ममिना॒द्वर्प॑णीतिः ।
अह॒न्व्यं॑समु॒शध॒ग्वने॑ष्वा॒विर्धेना॑ अकृणोद्रा॒म्याणा॑म् ॥ ३ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे सूर्य्य (वृत्रम्) मेघ को (व्यंसम्) कटे वाहु जिस के उस पुरुष के समान (अहन्) नाश करता है वैसे (शर्धनीतिः) सेना का नायक (वर्पणीतिः) रूप को प्राप्त कराने वाले (इन्द्रः) सूर्यवत् प्रतापी राजा आप (मायिनाम्) बुरी बुद्धि से युक्त पुरुषों की माया का (प्र, अमिनात्) नाश करैं (उशधक्) और युद्ध करने वालों का नाशकर्त्ता पुरुष (वनेषु) जंगलों में (धेनाः) वाणियों को (अवृणोत्) घेरैं (राम्याणाम्) सुन्दरों की वाणियों को (आविः) प्रकट (अकृणोत्) करै ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य मेघ का नाश करता है वैसे ही दुष्ट आचरण वाले जनों का नाश और विद्या सम्वन्धी वाणियों का प्रचार करके सव लोगों को सेना और शिक्षा की वृद्धि करनी चाहिये ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रः स्वर्षा जनयन्नहानि जिगायोशिग्भिः पृतना अभिष्टिः ।
प्रारोचयन्मनवे केतुमह्नामविन्दज्ज्योतिर्बृहते रणाय ॥४॥

पदार्थः—जो (स्वर्षाः) सुख के विभाग करने (अभिष्टिः) सम्मुख मेल करने वाले (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश तेजस्वी (पृतनाः) वीर पुरुषों की सेनाओं और (अहानि) दिनों को सूर्य्य के सदृश (जनयन्) प्रकट करने वाला पुरुष (उशिग्भिः) युद्ध की इच्छा रखते हुए वीरों के साथ शत्रुओं को (जिगाय) जीते (बृहते) बड़े (रणाय) संग्राम के लिये (अह्नाम्) दिनों के (ज्योतिः) युद्ध की विद्या के प्रकाश को (मनवे) और मनन करने वाले मनुष्य के लिये (केतुम्) बुद्धि को (अविन्दत्) प्राप्त होवे और संग्राम का (प्र) (अरोचयत्) उत्तम प्रकार प्रकाश करै वही पुरुष विजय-रूप आभूषण से शोभित होवे ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा लोग सम्पूर्ण जनों से अधिक प्रयत्न युद्धविद्या में करें वे उत्तम प्रकार प्रसन्नता-युक्त जो कि युद्ध के लिये पारितोषिक आदि से रुचि दिखाये गये वीर लोग उन के साथ शत्रुओं को जीत कर सूर्य्य के सदृश विजय के प्रकाश को प्रकट करें ॥४॥

कैसा मनुष्य राज्य में अधिकारी हो, इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आ विवेश नृवद्दधानो नर्य्या पुरूणि ।
अचेतयद्धिय इमा जरित्रे प्रेमं वर्णमतिरच्छुक्रमासाम् ॥५॥

पदार्थः—जो (इन्द्रः) राजा (आसाम्) इन प्रजाओं की (पुरूणि) बहुत (नर्या) मनुष्यों के लिये हितकारिणी सेनाओं को (नृवत्) प्रधान पुरुष के सदृश (दधानः) धारण करने वाला (बर्हणाः) वृद्धि को प्राप्त (तुजः) शत्रुओं के नाश करने वाले बल आदि से युक्त सेनाओं को (आ) (विवेश) प्राप्त होवें (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये (इमाः) इन वर्त्तमान में पाई हुई (धियः) बुद्धियों को (प्र) (अचेतयत्) बोध सहित करै वह पुरुष (इमम्) इस (शुक्रम्) शीघ्र कार्य्य करने वाले (वर्णम्) स्वीकार के (अतिरत्) पार उतरै ॥५॥

भावार्थः—वही पुरुष राज्य में प्रविष्ट हो सकता है कि जो बुद्धियुक्त धार्मिक पुरुषों को सब अधिकारों में नियुक्त कर और सेना की उन्नति कर के पिता के सदृश प्रजाओं का पालन कर सकै ॥५॥

फिर राजा तथा प्रजाजनों के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

महो महानि पनयन्त्यस्येन्द्रस्य कर्म सुकृता पुरूणि ।
वृजनेन वृजिनान्त्सं पिपेष मायाभिर्दस्यूँरभिभूत्योजाः ॥६॥

पदार्थः—जो (अभिभूत्योजाः) शत्रुपराजय करने वाले बल से युक्त राजपुरुष (वृजनेन) बल और (मायाभिः) बुद्धियों से (वृजिनान्) पापी (दस्यून्) साहसी चोरों को (सम्) (पिपेष) पीसै और जो (अस्य) इस (महः) श्रेष्ठ (इन्द्रस्य) सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त पुरुष के (पुरूणि) बहुत (महानि) बड़े (सुकृता) उत्तम धर्म के योग से किये गये (कर्म) कार्य्यों की (पनयन्ति) प्रशंसा करते हैं उन का ग्रहण करै वही पुरुष राजा का मन्त्री होने योग्य होवै ॥६॥

भावार्थः—जैसे राजा और प्रजाजनों को सब लोगों के स्वामी के धर्मयुक्त कर्म स्वीकार करने योग्य हैं वैसे ही सब के स्वामी राजा को चाहिये कि सब लोगों के उत्तम आचरणों का स्वीकार करै और अनिष्ट आचरणों का स्वीकार कोई न करै ॥६॥

फिर विद्वान् तथा राजपुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

युधेन्द्रो मह्ना वरिवश्चकार देवेभ्यः सत्पतिश्चर्षणिप्राः ।
विवस्वतः सदने अस्य तानि विप्रा उक्थेभिः कवयो गृणन्ति ॥७॥

पदार्थः—जो (देवेभ्यः) विद्वानों से शिक्षा पा के (सत्पतिः) श्रेष्ठ पुरुषों का पालन करने (चर्षणिप्राः) मनुष्यों को सत्य विद्या शिक्षा और उत्तम स्वभाव से पूर्ण करने वाला (इन्द्रः) राज्य के ऐश्वर्य से युक्त (मह्ना) बड़े (युधा) संग्राम से जिन कर्मों का (वरिवः) सेवन (चकार) करै उस (अस्य) इस राजपुरुष के (तानि) उन कर्मों की (विवस्वतः) सूर्य्य के (सदने) मण्डल में (कवयः) विद्यायुक्त (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (उक्थेभिः) प्रशंसा के वचनों से (गृणन्ति) स्तुति करते हैं ॥७॥

भावार्थः—उन्हीं लोगों को विद्वान् और धार्मिक जानना चाहिये कि जो राजा आदिकों की झूठी स्तुति को त्याग के धर्मसम्बन्धी कर्मों की प्रशंसा करते हैं और वे ही राजा होने के योग्य हैं कि जो धर्मयुक्त आचरणों को करते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां ससवांसं स्वरपश्च देवीः ।
ससान यः पृथिवीं द्यामुतेमामिन्द्रं मदन्त्यनु धीरणासः ॥८॥

पदार्थः—(यः) जो (सत्रासाहम्) सत्यों के सहने वाले (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (सहोदाम्)वल के देने तथा (ससवांसम्) पाप और पुण्य का विभाग करने वाले (स्वः) सुख (च) और (देवीः) उत्तम (अपः) प्राणों को (इमाम्) प्रत्यक्ष वर्त्तमान इस (पृथिवीम्) अन्तरिक्ष वा पृथिवी (उत) और इस (द्याम्) विजुली को (ससान) अलग अलग करैं उस (इन्द्रम्) तेजस्वी पुरुष को (धीरणासः) उत्तम बुद्धि और संग्राम से युक्त लोग (मदन्ति) आनन्दित करते हैं वह उन के (अनु) पीछे आनन्द को प्राप्त होवै ॥८॥

भावार्थः—जो असत्य का त्याग और सत्य का ग्रहण करने वल को वढ़ाने और प्रजा के सुख की इच्छा करने वाला पुरुष विजुली और पृथिवी आदि के गुणों का विद्या से विभागकर्त्ता हो उसी परीक्षा करने वाले जन को वुद्धिमान् वीर लोग प्राप्त हो के आनन्द करते हैं और वे भी ऐसे ही पुरुष से आनन्द को प्राप्त हो सकते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥९॥

पदार्थः—वह (इन्द्रः) सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त राजा वा मन्त्रियों का समूह (अत्यान्) उत्तम शिक्षा से घोड़ों के (ससान) विभाग को और (सूर्यम्) सूर्य के सदृश प्रतापयुक्त वीर पुरुष को (ससान) अलग करै (पुरुभोजसम्) बहुतों का पालन वा बहुतों को नहीं भोजन देने वाले पुरुष की (गाम्) वाणी वा भूमि का (उत) और (हिरण्ययम्) सुवर्ण आदि पदार्थों का (ससान) विभाग करै (उत) और (भोगम्) उत्तम भोजन आदि के पदार्थों का (ससान) विभाग करै वह पुरुष (दस्यून्) साहस कर्म करने वाले चोर आदि का (हत्वी) नाश कर के (आर्य्यम्) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त धार्मिक (वर्णम्) स्वीकार करने योग्य पुरुष की (प्र) (आवत्) रक्षा करै ॥९॥

भावार्थः—जो लोग उत्तम प्रकार परीक्षा करके भले और बुरे घोड़े, वीर पुरुष, न्यायाधीश, लक्ष्मी और उत्तम भोग का विभाग कर सकें वेही पुरुष दुष्ट पुरुषों का नाश कर श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा कर सकें ॥९॥

फिर राजादि जनों को क्या करना चाहिये, इस विषय
को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र ओषधीरसनोदहानि वनस्पतींरसनोदन्तरिक्षम् ।
बिभेद वलं नुनुदे विवाचोऽथाभवद्दमिताभिक्रतूनाम् ॥१०॥

पदार्थः वह (इन्द्रः) ऐश्वर्य देने वाला राजा (अहानि) दिनों दिन (ओषधीः) सोम आदि ओषधियों को (असनोत्) देवै (वनस्पतीन्) पीपल आदि वनस्पतियों को (असनोत्) देवै (अन्तरिक्षम्) जल और (बलम्) बल का (बिभेद) भेदन करै (विवाचः) अनेक प्रकार की वाणियों की (नुनुदे) प्रेरणा करै (अथ) और भी (अभिक्रतूनाम्) सहसा शीघ्र कर्म करने वाले शत्रुओं को (दमिता) दमन करने वाला (अभवत्) होवै ॥१०॥

भावार्थः—राजा आदि श्रेष्ठ जनों को चाहिये कि प्रतिदिन ओषधियों के रसादि उत्पन्न कर उन के रस का पान विद्यासम्बन्धी वाणी का प्रचार और सब जनों की बुद्धियों का अपनी बुद्धि से भी अधिकता के सहित दमन अर्थात् विषयों से निवृत्ति करैं जिस से आरोग्य और विद्याओं के प्रभाव प्रतिदिन बढ़ें ॥१०॥

मनुष्यों को कैसे राजा का सेवन करना चाहिये, इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (शुनम्) सुख देने वाले (मघवानम्) बहुत धन से युक्त (अस्मिन्) इस वर्त्तमान (वाजसातौ) विज्ञान अविज्ञान सत्य और असत्य के विभागकारक (भरे) मूर्ख और विद्वान् के अज्ञान और ज्ञान के विषय के विरोध रूप युद्ध में (नृतमम्) अत्यन्त सत्य और असत्य के निर्णय करने (इन्द्रम्) और दुष्ट जनों के नाश करने वाले पुरुष की (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (शृण्वन्तम्) अर्थी प्रत्यर्थी अर्थात् मुद्दई मुद्दाले के वचन सुनने के पीछे न्याय करने (उग्रम्) दुष्ट पुरुषों पर कठोर स्वभाव और श्रेष्ठ पुरुषों में शान्तस्वभाव रखने (समत्सु) संग्रामों में (वृत्राणि) मेघों के अवयवों के सदृश शत्रुओं की सेनाओं के (घ्नन्तम्) नाश करने और (धनानाम्) विज्ञान आदि पदार्थों के मध्य में (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार श्रेष्ठता को प्राप्त होने वाले राजा की (हुवेम) प्रशंसा करैं उस की आप लोग भी प्रशंसा करो ॥११॥

भावार्थः— मनुष्य लोग दुष्ट और श्रेष्ठ पुरुषों की परीक्षा करने, वादी और प्रतिवादी के वचनों को सुन के न्याय करने पण्डित और मूर्ख जन का आदर और निरादर करने पक्षपात से अलग रहने और सम्पूर्ण जनों के सुख देने वाले पुरुष को राजा मान के आनन्द करैं ॥११॥

इस सूक्त में सूर्य विजुली वीर राज्य राजा की सेना और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ७ । १०।११ । त्रिष्टुप् । २ । ३ । ६ । ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले पन्द्रहवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र से मनुष्यों को क्या करना चाहिये, इस विषय को कहते हैं ॥

तिष्ठा हरी रथ आ युज्यमाना याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छ ।
पिबास्यन्धो अभिसृष्टो अस्मे इन्द्र स्वाहा ररिमा ते मदाय ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् ! आप जिस (रथे) रथ में (युज्यमाना) जुड़े हुए (हरी) घोड़ों के सदृश जल और अग्नि वर्त्तमान हैं उस रथ में (आ) सब प्रकार (तिष्ठ) वर्त्तमान हूजिये इससे (वायुः) पवन के (न) तुल्य (नियुतः) श्रेष्ठ पुरुषों के साथ मिले और दुष्ट पुरुषों से अनमिले (नः) हम लोगों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (याहि) प्राप्त हूजिये और (अभिसृष्टः) सम्मुख प्रेरित होता हुआ जन (ते) आप के लिये (अस्मे) हमारे निकट से (अन्धः) उत्तम प्रकार संस्कार किये हुए अन्न को (मदाय) आनन्द के अर्थ (ररिम) देवें उस का (स्वाहा) सत्य वाणी से (पिबासि) पान कीजिये ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों से चलने वाले रथ पर चढ़ के अन्य अन्य देशों को वायु के सदृश जाते हैं वे बहुत भक्षण भोजन करने पीने और चूषने योग्य पदार्थों को प्राप्त होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उपाजिरा पुरुहूताय सप्ती हरी रथस्य धूर्ष्वा युनज्मि ।
द्रवद्यथा सम्भृतं विश्वतश्चिदुपेमं यज्ञमा वहात इन्द्रम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यथा) जैसे मैं जो (इमम्) इस प्रत्यक्ष (यज्ञम्) शिल्पविद्या से होने योग्य (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् काम को सब प्रकार चलाते

(विश्वतः) वा सब ओर से (द्रवत्) पिघलने को प्राप्त होते हुए (सम्भृतम्) उत्तम प्रकार धारण किये गये पदार्थ को (चित्) भी (उप) समीप में (आ, वहातः) वहाते उन (पुरुहूताय) वहुतों ने बुलाये गये के लिये वर्त्तमान (अजिरा) वाहनों के फेंकने (सप्ती) शीघ्र चलने (हरी) और यान को ले जाने वाले का (रथस्य) वाहन की (धूर्षु) धुरियों में जिन को (उप, आ, युनज्मि) जोड़ता हूं उन को आप लोग भी जोड़िये ॥२॥

भावार्थः—जो लोग वाहनों में विजुली आदि पदार्थों को संयुक्त करके चलाते हैं वे किस किस देश को न जा सकें ? और उनको कौन सा ऐश्वर्य्य है जो न प्राप्त होवै ? ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उपो नयस्व वृषणा तपुष्पोतेमव त्वं वृषभ स्वधावः ।
ग्रसेतामश्वा वि मुचेह शोणा दिवेदिवे सदृशीरद्धि धानाः ॥३॥

पदार्थः—हे (वृषभ) वलवान् ! (स्वधावः) अत्यन्त अन्नयुक्त (त्वम्) आप (इह) इस वाहन में जो (तपुष्पा) तपते हुए पदार्थों को रखने वाले (वृषणा) बल और (शोणा) लालरंगयुक्त (अश्वा) शीघ्रगामी अग्नि आदि इन्धनों को (ग्रसेताम्) भक्षण करें उन में कलाओं को (वि, मुच) छोड़ो (ईम्) जल को (उपो) उनके समीप में (नयस्व) पहुँचाओ (उत) और (दिवेदिवे) नित्य (सदृशीः) तुल्य परिमाण वाले (धानाः) अग्नि से संस्कार किये अन्न विशेषों को (अद्धि) भक्षण करो उन में बोझों को (अव) पेश करो ॥३॥

भावार्थः—जो शिल्पी जन अग्नि जल आदि पदार्थों को उत्तम कलाओं से युक्त वाहनों में संयुक्त करके चलाते हैं वे दारिद्रय को छोड़ के धन और धान्य को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ब्रह्मणा ते ब्रह्मयुजा युनज्मि हरी सखाया सधमाद आशू ।
स्थिरं रथं सुखमिन्द्राधितिष्ठन् प्रजानन् विद्वाँ उप याहि सोमम् ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शिल्पविद्यारूप ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष ! मैं (ते) आप के जिस वाहन में (ब्रह्मणा) अन्न आदि के सहित विद्यमान (ब्रह्मयुजा) धन के संग्रह कराने और (आशू) शीघ्र ले चलने वाले (हरी) जल और अग्नि को (सखाया) मित्रों के तुल्य (सधमादे) बरोबर के स्थान में (युनज्मि) संयुक्त करता हूं उस (सुखम्) आकाशमार्गियों के लिये हित करने वाले (स्थिरम्) दृढ़ (रथम्) वाहन

(अधि, तिष्ठन्) पर स्थिर हों तो (विद्वान्) इस विद्या को अंग और उपांगों के सहित जानते और (प्रजानन्) उत्तम प्रकार ज्ञान को प्राप्त होते हुए आप (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (उप, याहि) प्राप्त हूजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग अग्नि और जल आदि पदार्थों से चलाये गये वाहन पर बैठ अच्छे प्रकार विद्या द्वारा उसको चलाते हुए देशदेशान्तरों में जाय आय और ऐश्वर्य्य को पाय मित्रों का सत्कार करें वे ही विद्या और धर्म की वृद्धि कर सकें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा ते हरी वृषणा वीतपृष्ठा नि रीरमन्यजमानासो अन्ये।
अत्यायाहि शश्वतो वयन्तेऽरं सुतेभिः कृणवाम सोमैः ॥५॥

पदार्थः—हे प्रतापयुक्त पुरुष ! जो (अन्ये) इससे और (यजमानासः) विद्या की संगति के जानने वाले (ते) आप के (वीतपृष्ठा) चौड़ी पीठों से युक्त (वृषणा) बलिष्ठ (हरी) वाहनों के ले चलने वालों को (मा) नहीं (नि, रीरमन्) रमावें उन को आप (अत्यायाहि) बड़े वेग से प्राप्त हूजिये वा छोड़िये और (शश्वतः) अनादि काल से सिद्ध विद्यायुक्त पुरुषों को प्राप्त हूजिये जिस (ते) आप के (सुतेभिः) उत्पन्न (सोमैः) ऐश्वर्य्यों से (अरम्) पूरे काम को (वयम्) हम लोग (कृणवाम) करें वह आप हमारे पूरे काम को करो ॥५॥

भावार्थः—जो लोग अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को जाने विना इस विद्या के जानने वाले जनों का उत्साह नहीं बढ़ाते उन का उल्लङ्घन कर अनादि काल से सिद्ध विद्या के जानने वाले विद्वानों के शरण जा के शिल्पविद्या से उत्पन्न कार्यों से पूर्ण मनोरथ वाले हम लोग होवें इस प्रकार इच्छा करके नित्य प्रयत्न करें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तवायं सोमस्त्वमेह्यर्वाङ् शश्वत्तमं सुमना अस्य पाहि।
अस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्या दधिष्वेमं जठर इन्दुमिन्द्र ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के इच्छा करने वाले ! (तव) आप का जो (अयम्) यह (अर्वाङ्) अधोभाग में विद्यमान (सोमः) ऐश्वर्य्य का संयोग उस (शश्वत्तमम्) अत्यन्त अनादि काल से सिद्ध ऐश्वर्य्य संयोग को (त्वम्) आप (आ) (इहि) प्राप्त हूजिये (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) अति उत्तम (यज्ञे) शिल्पविद्या से होने योग्य व्यवहार में (निषद्य) निरन्तर स्थिर होकर (सुमनाः) प्रसन्नचित्त हुए

(इमम्) इस की (पाहि) रक्षा करो और (अस्य) इस ज्ञान की उत्तेजना से प्राप्त (इन्दुम्) गीले पदार्थ को (जठरे) उदर में (आ) सब प्रकार (वधिष्व) धारण कीजिये ॥६॥

भावार्थः - हे मनुष्यो ! इस सबसे उत्तम शिल्पविद्या से साध्य व्यवहार में चतुर हो के अनादि काल से उत्पन्न और प्राचीन विद्वानों से प्राप्त ऐश्वर्य्य को सिद्ध कर इस संसार की रक्षा के लिये स्थित करके योग्य आहार और विहार से आनन्द भोगो ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्तीर्णं ते बर्हिः सुत इन्द्र सोमः कृता धाना अत्तवे ते हरिभ्याम् ।
तदोकसे पुरुशाकाय वृष्णे मरुत्वते तुभ्यं राता हवींषि ॥७॥

पदार्थः —हे (इन्द्र) दरिद्रता के नाश करने वाले ! (ते) आप का (स्तीर्णम्) ढपा और (बर्हिः) वढ़ा हुआ जल वा (सुतः) उत्पन्न किया गया (सोमः) ऐश्वर्य्य का संयोग वा (कृताः) सिद्ध किये गये (धानाः) पके हुए अन्न विशेष वा (हरिभ्याम्) घोड़ों से संयुक्त वाहन पर बैठे हुए जो (ते) आप के जन और (तदोकसे) वाहनरूप स्थान वाले (पुरुशाकाय) अनेक प्रकार की शक्ति से (वृष्णे) वृष्टि कराने वाले (मरुत्वते) कार्य्य कराने वाले बहुत मनुष्यों के सहित विराजमान (तुभ्यम्) आप के लिये (अत्तवे) भोजन करने को जो (हवींषि) भोजन करने के योग्य अन्न आदि (राता) वर्त्तमान उन को भोगो ॥७॥

भावार्थः—सम्पूर्ण जन उत्तम पदार्थों के भोजन करने वाले हों और अन्याय से इकट्ठे किये हुए किसी भी पदार्थ का भोग न करें इस प्रकार वर्त्ताव करने पर धन, सामर्थ्य, विद्या और आयु बढ़ते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमं नरः पर्वतास्तुभ्यमापः समिन्द्र गोभिर्मधुमन्तमक्रन् ।
तस्यागत्या सुमना ऋष्व पाहि प्रजानन् विद्वान् पथ्या३ अनु स्वाः ॥८॥

पदार्थः—हे (ऋष्व) विद्या से पूर्ण (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले जो (नरः) प्रधान पुरुष (तुभ्यम्) आप के लिये (पर्वताः) मेघ और (आपः) जल के समान (गोभिः) पृथिवी आदि पदार्थों के सहित (इमम्) इस वर्त्तमान (मधुमन्तम्) मधुर आदि बहुत रसों से युक्त पदार्थ को (सम्, अक्रन्) अच्छे प्रकार करें उन का (पाहि) पालन करो (सुमनाः) और ईर्ष्यारहित मन वाले आप (प्रजानन्,

विद्वान्) जानते और विद्वान् होते हुए (तस्य) उस काम की (स्वाः, पथ्याः) मार्ग से निज चालियों को (आगत्य) प्राप्त होकर सब का (अनु) पालन करो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे वृष्टियों से सब का पालन होता है वैसे ही विमान आदि वाहन बनाने वाले जन संसार में सब के रक्षा करने वाले होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

याँ आभंजो मरुतं इन्द्र सोमे ये त्वामवर्धन्नभवन् गणस्तें।
तेभिरेतं सजोषां वावशानो३ग्नेः पिव जिह्वया सोममिन्द्र ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के देने वाले! आप ऐश्वर्य में (यान्) जिन विद्वानों को (मरुतः) प्राणों के सदृश प्रिय और श्रेष्ठ जान के (आ, अभजः) सेवन करो (ये) जो लोग (सोमे) ऐश्वर्य में (त्वाम्) आप की (अवर्धन्) वृद्धि करें जो (ते) आप का (गणः) समूह उस को प्राप्त होके आनन्दित (अभवन्) होवें (तेभिः) उन लोगों के साथ हे (इन्द्र) दुःख के नाश करने वाले! (सजोषाः) तुल्य प्रीति के सेवनकर्त्ता (वावशानः) अत्यन्त कामना करते हुए आप (अग्नेः) अग्नि की (जिह्वया) ज्वाला के सदृश वर्त्तमान गुण से (एतम्) इस (सोमम्) सोम रस का (पिब) पान करो ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो प्राण के सदृश प्रिय और श्रेष्ठ विद्वान् जनों की मनुष्य लोग सेवा करें तो इन मनुष्यों की वे विद्वान् लोग सब प्रकार वृद्धि करें और जैसे अग्नि ज्वाला से सम्पूर्ण रसों का पान करता है वैसे ही तीक्ष्ण क्षुधा के सहित वर्त्तमान पुरुष अन्न का भोजन करें और पान करने योग्य वस्तु का पान करें ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र पिब स्वधया चित्सुतस्याग्नेर्वा पाहि जिह्वया यजत्र।
अध्वर्योर्वा प्रयतं शक्र हस्ताद्धोतुर्वा यज्ञं हविषो जुषस्व ॥१०॥

पदार्थः—हे (यजत्र) आदर करने योग्य (शक्र) शक्तिमान् (इन्द्र) ऐश्वर्य वाले! आप (अग्नेः) अग्नि की (जिह्वया) ज्वाला के सदृश वर्त्तमान लपट से (वा) वा (स्वधया) अन्न से (चित्) भी (सुतस्य) सिद्ध हुए रस का (पिब) पान करिये (अध्वर्योः) आत्मसम्बन्धी यज्ञ की इच्छा करते हुए पुरुष के (वा) अथवा (प्रयतम्) प्रयत्न से सिद्ध (यज्ञम्) यज्ञ का (पाहि) पालन करो (होतुः) देने वाले के (हस्तात्)

हाथ और (हविषः) हवन की सामग्री से (वा) अथवा यज्ञ का (जुषस्व) सेवन करो ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिन मनुष्यों से उत्तम प्रकार सिद्ध किये हुए अन्न का भोजन और रस का पान कर रोग रहित हो और विद्वानों के साथ मेल करके यज्ञ का सेवन किया जाय वे सदा सुखी होवें ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (समत्सु) संग्रामों में (वृत्राणि) हम लोगों के बल को घेरने वाली शत्रु की सेनाओं को सूर्य्य के सदृश शत्रुओं के (घ्नन्तम्) नाशकारक (उग्रम्) तेजस्वी (शृण्वन्तम्) सत्पुरुष के वचनों के सुनने (धनानाम्) विद्या और सुवर्ण आदिकों के (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतने वाले (अस्मिन्) इस शिल्प व्यवहार (वाजसातौ) अन्नों के विभाग और (भरे) युद्ध में (नृतमम्) पुरुषोत्तम (शुनम्) सुखकारक (मघवानम्) बहुत धनयुक्त (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य वाले जन को (हुवेम) प्रशंसा से पुकारें वैसे इस की आप लोग भी प्रशंसा करें ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिन लोगों का निष्फल कर्म नहीं है उनको सब की रक्षा के लिये आप लोग स्वीकार करें ॥११॥

इस सूक्त में अग्नि आदि पदार्थों और घोड़े के दृष्टान्त से उपदेश करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्रः । १० घोर आङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ७ । १० । ११ त्रिष्टुप् । २ । ३ । ६ । ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ९ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले छत्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके पहिले मन्त्र से मनुष्य किस प्रकार के आचरण से सुख को प्राप्त हों, इस विषय को कहते हैं ॥

इमामू षु प्रभृतिं सातये धाः शश्वच्छश्वदूतिभिर्यादमानः ।
सुतेसुते वावृधे वर्धनेभिर्यः कर्मभिर्महद्भिः सुश्रुतो भूत् ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! (यः) जो विद्या की (याद्मानः) याचना करते हुए आप (ऊतिभिः) रक्षण आदिकों से (सातये) संविभाग के लिये (इमाम्) इस (प्रभृतिम्) उत्तम धारणा और (शश्वच्छश्वत्) व्यापक व्यापक वस्तु को (सु) उत्तम प्रकार (धाः) धारण करें (वर्धनेभिः) वृद्धि के साधनों और (महद्भिः) बड़े (कर्मभिः) करने वाले के अतीव चाहे हुए व्यवहारों से (सुतेसुते) उत्पन्न उत्पन्न हुए पदार्थ में (वावृधे) बढ़ें (उ) वही (सुश्रुतः) उत्तम प्रकार श्रोता (भूत्) होवैं ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य कार्य्य के विज्ञान का प्रारम्भ करके पर पर अर्थात् बड़े से छोटे उससे और छोटे उससे भी छोटे इत्यादि सूक्ष्म कारण पर्य्यन्त व्यापक परमाणुरूप पदार्थ को जान कर उपयोग करें कार्य में लावें वे इस संसार में अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होवैं और जो लोग विद्वान् जनों से केवल विद्या की ही याचना करते हैं वे बहुश्रुत होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्राय सोमाः प्रदिवो विदाना ऋभुर्येभिर्वृषपर्वा विहायाः ।
प्रयम्यमानान्प्रति षू गृभायेन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्णः ॥२॥

पदार्थ——हे मनुष्यो ! जैसे (वृषपर्वा) समर्थ पालनों वाला (विहायाः) अनर्थों का नाशकारी (ऋभुः) बुद्धिमान् जन (येभिः) जिन लोगों से (प्रयम्यमानान्) अत्यन्त नियमयुक्तों को जानता है वैसे (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के लिये (सोमाः) उत्पन्न करने वाले वा उत्पन्न किये गये पदार्थ (प्रदिवः) प्रकाशित विद्यायुक्त (विदानाः) प्राप्त हुए हों इन को आप लोग जानिये हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष ! आप इन लोगों को (प्रति, सु, गृभाय) अच्छे प्रकार ग्रहण कीजिये और (वृषधूतस्य) सेचनों से मथे हुए (वृष्णः) बढ़ाने वाले रस का (पिब) पान कीजिये ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! इस संसार में जैसे श्रेष्ठ यथार्थवक्ता पुरुष दुष्ट व्यवहार का त्याग और श्रेष्ठ आचरण का ग्रहण करके नियमित आहार विहार से रोगरहित और अधिक अवस्था वाले होते हैं वैसे ही आप लोग भी हूजिये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पिबा वर्धस्व तव घा सुतास इन्द्र सोमासः प्रथमा उतेमे ।
यथापिबः पूर्व्याँ इन्द्र सोमाँ एवा पाहि पन्यो अद्या नवीयान् ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले ! (यथा) जैसे (पन्यः) स्तुति करने योग्य (नवीयान्) नवीन आप (अद्य) इस समय (पूर्व्यान्) पूर्व हुए जनों से उत्पन्न (सोमान्) श्रेष्ठ सोमलता रसरूप ऐश्वर्य आदि से युक्त पदार्थों का (अपिबः) पान करते हैं वैसे ही उनका (पाहि) पालन करो । हे (इन्द्र) तेजस्वी जन (तव) आप के जो (इमे) ये (प्रथमाः) पहिले (सुतासः) उत्पन्न हुए (सोमासः) ऐश्वर्य करने वाले पदार्थ (घ) ही हैं उनका पालन करो (उत) और उत्तम रसों का (पिब) पान करो उन से (एव) ही (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त होओ ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य उत्तम प्रकार संस्कार युक्त रसों का पान करें उन की वृद्धि होवै और जो वृद्धि को प्राप्त होकर धर्म का आचरण करें वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

महाँ अमत्रो वृजने विरप्श्युग्रं शवः पत्यते धृष्ण्वोजः ।
नाह विव्याच पृथिवी चनैनं यत्सोमासो हर्यश्वममन्दन् ॥४॥

पदार्थः—जो (अमत्रः) ज्ञानी (विरप्शी) अनेक प्रकार के प्रसिद्ध उपदेशों से पूर्ण (महान्) श्रेष्ठ (वृजने) बल में (उग्रम्) कठिन दृढ़ (शवः) बल और (धृष्णु) प्रचण्ड (ओजः) पराक्रम (पत्यते) प्राप्त होता है (एनम्) इस को कोई पुरुष (चन) कुछ (न) नहीं (विव्याच) छलता है (अह) हा ! इस को (पृथिवी) भूमि प्राप्त होवै (यत्) जिस (हर्यश्वम्) ले चलने वाले घोड़ों से युक्त जन को (सोमासः) ऐश्वर्य से युक्त पुरुष (अमन्दन्) पसन्द करैं वह उन को निरन्तर प्रसन्न करै ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों में वही पुरुष श्रेष्ठ होता है जो शरीर आत्मा सेना मित्र बल आरोग्य धर्म और विद्या की वृद्धि करता है वह छल आदि दोषों का त्याग करके सब का उपकार करता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

महाँ उग्रो वावृधे वीर्याय समाचक्रे वृषभः काव्येन ।
इन्द्रो भगो वाजदा अस्य गावः प्र जायन्ते दक्षिणा अस्य पूर्वीः ॥५॥

पदार्थः—जो (वाजदाः) अन्न आदि का देने वाला (भगः) सेवा करने योग्य (वृषभः) बलयुक्त (उग्रः) उत्तम भाग्योदय विशिष्ट (महान्) अति आदर करने योग्य महाशय (इन्द्रः) ऐश्वर्य्य वाला (काव्येन) बुद्धिमान् पुरुष ने बनाये हुए शास्त्र से (वीर्याय) बल के लिये (वावृधे) बढ़ता और (समाचक्रे) संयुक्त करता है (अस्य) इस पुरुष की (गावः) गौवें और (अस्य) इस की (दक्षिणाः) दान कर्म (पूर्वीः) पूर्ण रूप से सिद्ध (प्र, जायन्ते) होते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो विद्यावान् पुरुष श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ सुपात्र कुपात्रों की उत्तम प्रकार परीक्षा करके सत्कार और अपकार यथायोग्य करता है उसी पुरुष के सम्पूर्ण पशु और आनन्द उपकार युक्त होते हैं ॥५॥

अब विद्वान् के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र यत्सिन्धवः प्रसवं यथायन्नापः समुद्रं रथ्येव जग्मुः ।
अतश्चिदिन्द्रः सदसो वरीयान्यदीं सोमः पृणति दुग्धो अंशुः ॥६॥

पदार्थः—(यथा) जैसे (सिन्धवः) नदियां (प्रसवम्) मेघ को वा (आपः) जल (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को (आयन्) प्राप्त होते हैं जैसे (यत्) जो उत्तम गुणों को प्राप्त होवै वा (रथ्येव) रथों में जो उत्तम चाल उसके सदृश सब स्थानों में (प्र, जग्मुः) प्राप्त हुए उन के साथ (चित्) भी (यत्) जो (इन्द्रः) राजा (वरीयान्) श्रेष्ठ पुरुष होता हुआ (सदसः) सभाओं को प्राप्त होवै (अतः) इससे वह (दुग्धः) गुणों से पूर्ण (अंशुः) ओषधियों का सार भाग और (सोमः) ओषधियों का समूह (ईम्) जल को जैसे प्राप्त हो वैसे सम्पूर्ण प्राणियों को (पृणति) सुख देता है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जो मनुष्य वैर को त्याग के सम्पूर्ण प्राणियों के उपकार करने की इच्छा करें उनके प्रति जैसे नदियां समुद्र को और जल अन्तरिक्ष के सम्मुख को प्राप्त होते हैं वैसे सम्मुख जाते हैं, उन से उत्तम शिक्षा को प्राप्त उत्तम प्रकार से सींचे गये ओषधियों के समूह के सदृश सम्पूर्ण प्राणियों के सुख देने को समर्थ होते हैं ॥६॥

अब राजा और प्रजा के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

समुद्रेण सिन्धवो यादमाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तः ।
अंशुं दुहन्ति हस्तिनो भरित्रैर्मध्वः पुनन्ति धारया पवित्रैः ॥७॥

पदार्थः—जो (समुद्रेण) सागर के साथ (सिन्धवः) नदियां जैसे वैसे विद्वानों के साथ मेल करके (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये विद्या की (यादमानाः) याचना करते

हुए (सुषुतम्) उत्तम प्रकार उत्पन्न [अंशुम्] (सोमम्) पदार्थों के समूह को (भरन्तः) धारण और पुष्ट करते हुए (हस्तिनः) उत्तम हाथों से युक्त पुरुष (मध्वः) मधुर गुण सम्बन्धी (पवित्रैः) उत्तम शुद्ध (भरित्रैः) धारण और पोषण किये गये धनों के साथ (धारया) तीक्ष्ण धार से (पुनन्ति) पवित्र करते हैं वे काम को (दुहन्ति) पूर्ण करते हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सब ओर से जल आदि का ग्रहण कर नदियां वेग से समुद्र को प्राप्त हो रत्नवाली और शुद्ध जलयुक्त होती हैं वैसे ही ब्रह्मचर्य्य से विद्याओं को धारण करके तीक्ष्ण वुद्धि से पूर्ण ज्ञान वाले हो पवित्र हुए और परमेश्वर को प्राप्त हो कर सिद्धियों से परिपूर्ण शुद्ध आनन्दी मनुष्य होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ह्रदाइव कुक्षयः सोमधानाः समीं विव्याच सवना पुरूणि ।

अन्ना यदिन्द्रः प्रथमा व्याश वृत्रं जघन्वाँ अवृणीत सोमम् ॥८॥

पदार्थः—जिस पुरुष के (कुक्षयः) दोनों ओर के उदर के अवयव (सोमधानाः) सोमरूप ओषधियों के बीजों से युक्त (ह्रदाइव) गम्भीर जलाशयों के सदृश वर्त्तमान हैं (यत्) तथा जो (पुरूणि) बहुत (सवना) ओषधियों के उत्पन्न रसों से युक्त (प्रथमा) प्रसिद्ध (अन्ना) अन्न और (ईम्) जल को (सम्, विव्याच) छलता है वह (इन्द्रः) सूर्य्य के समान महाप्रकाशमान (वृत्रम्) मेघ के (जघन्वान्) नाश करने वाले सूर्य्य के समान (सोमम्) ओषधियों के समूह का (अवृणीत) स्वीकार करता तथा स्वादुयुक्त पदार्थों का (वि, आश) स्वीकार करता है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पुरुष गम्भीर अभिप्राय से युक्त सूर्य्य के सदृश प्रतापी ऐश्वर्य्य के धारण करने वाले अपने और दूसरों के दोषों को नाश करके ऐश्वर्य्य का स्वीकार करते हैं वे ही प्रसन्नात्मा होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ तू भर माकिरेतत्परि ष्ठाद्विद्मा हि त्वा वसुपतिं वसूनाम् ।

इन्द्र यत्ते माहिनं दत्रमस्त्यस्मभ्यं तद्धर्यश्व प्र यन्धि ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के देने वाले (यत्) जो (ते) आप का (माहिनम्) अति श्रेष्ठ (दत्रम्) दान (अस्ति) है (तत्) उसे (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये आप (प्र, यन्धि) अच्छे प्रकार दीजिये और हे (हर्यश्व) वेगयुक्त घोड़ों वाले ! आप

(एतत्) इस को (माकिः) न (परि,ष्ठात्) सब ओर से रोकिये (हि) जिस से कि (वसूनाम्) धनों के (वसुपतिम्) स्वामी (त्वा) आप को हम लोग (विद्म) जानें इस से (तु) शीघ्र फिर आप इस सब को (आ) सब ओर से (भर) धारण करो ॥९॥

भावार्थः—विद्वान् जनों को चाहिये कि सम्पूर्ण जनों के प्रति ऐसा उपदेश देवैं कि आप लोग दोषों को त्याग गुणों को धारण और धन और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होके अन्य सुपात्र पुरुषों के लिये देवैं ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**अस्मे प्र यन्धि मघवन्नृजीषिन्निन्द्र रायो विश्ववारस्य भूरेः ।**
**अस्मे शतं शरदो जीवसे धा अस्मे वीराञ्छश्वत इन्द्र शिप्रिन् ॥१०॥**

पदार्थः—हे (शिप्रिन्) सुन्दर नासिका और ठोढ़ी वाले (इन्द्र) सुख के दाता ! आप (अस्मे) हम लोगों के लिये (शश्वतः) निरन्तर वर्त्तमान (वीरान्) पराक्रमी मनुष्यों को धारण करो हे (मघवन्) बहुत सत्कारयुक्त धन से परिपूर्ण (ऋजीषिन्) सरल स्वभाव वाले (इन्द्र) सूर्य के सदृश प्रतापी ! आप (अस्मे) हम लोगों का (विश्ववारस्य) सम्पूर्ण सुख स्वीकार किया जाता है जिस से उस (भूरेः) अनेक प्रकार (रायः) धन के भाग को (प्र, यन्धि) दीजिये (अस्मे) हम लोगों को (जीवसे) जीवने के लिये (शतम्, शरदः) सौ वर्षों को (धाः) धारण कीजिये ॥१०॥

भावार्थः—वे ही उत्तम स्वभाव वाले यथार्थवक्ता विद्वान् लोग हैं कि जो लक्ष्मी का विभाग करके अर्थात् अन्य जनों को बांट के फिर आप भोजन करते हैं और मनुष्यों को ब्रह्मचर्य्य के उपदेश से सौ वर्ष की अवस्था वाले करके सम्पूर्ण कर्मों में उत्साही भयरहित और पुरुषार्थी करते हैं ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।**
**शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) अन्न आदि का विभाग जिस में ऐसे (भरे) पालन में (शुनम्) सब प्राणियों के सुखकारक (मघवानम्) बहुत विद्या और धनयुक्त (नृतमम्) अतिशय पुरुषों में अग्रणी (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (शृण्वन्तम्) सकल शास्त्र सुनने वाले (उग्रम्) तेजधारी (समत्सु) संग्रामों में (वृत्राणि) मेघों के अवयवों को जैसे सूर्य वैसे शत्रुओं को (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतने वाले (इन्द्रम्) दुष्ट जनों के नाशकर्त्ता राजा को (हुवेम) स्वीकार करें वैसे इसका आप लोग भी स्वीकार करें ॥११॥

भावार्थ—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सम्पूर्ण विद्याविशिष्ट शुभ गुणी सब को सुख देने वाला प्रजाओं के पालन में तत्पर शत्रुओं के नाश करने में उद्यत धर्मी और पुरुषों में श्रेष्ठ पुरुष हो उसके लिये राज्य में अधिकार दे और उसकी आज्ञा में वर्त्तमान होकर सब लोग अत्यन्त सुख भोग करो ॥११॥

इस सूक्त में इन्द्र विद्वान् राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ । ७ निचृद्गायत्री । २ । ४—६ । ८—१० गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ११ निचृदनुष्टुप् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले सैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा के गुणों को कहते हैं ॥

वार्त्रहत्याय शवसे पृतनाषाह्याय च । इन्द्र त्वा वर्त्तयामसि ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेना के अधीश ! जैसे हम लोग (वार्त्रहत्याय) मेघ के नाश करने के लिये जो बल उस के लिये सूर्य के समान (पृतनाषाह्याय) संग्राम के सहने वाले (शवसे) बल के लिये (त्वा) आप का (वर्त्तयामसि) आश्रय करते हैं वैसे आप (च) भी हम लोगों को इस बल के लिये वर्त्तो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। युद्ध करने की विद्या के शिक्षकों को चाहिये कि सेनाओं के अध्यक्ष और नौकरों को उत्तम प्रकार शिक्षा देवें जिससे निश्चय विजय होवै ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अर्वाचीनं सु ते मन उत चक्षुः शतक्रतो । इन्द्र कृण्वन्तु वाघतः ॥२॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) असंख्य बुद्धियुक्त (इन्द्र) दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाले ! जैसे (वाघतः) वाणी से दोषों के नाश करने वाले बुद्धिमान् लोग (ते) आप के (अर्वाचीनम्) इस समय उत्तम शिक्षायुक्त (मनः) अन्तःकरण (उत) और (चक्षुः) नेत्र आदि इन्द्रिय को उत्तम गुणों से युक्त (सु, कृण्वन्तु) सिद्ध करें वैसे ही आप आचरण करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। राजा आदि जन

सदा यथार्थवक्ता पुरुष की शिक्षा में वर्त्तमान हो के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नामा॑नि ते शतक्रतो॒ विश्वा॑भिर्गी॒र्भिरी॑महे । इन्द्रा॑भिमाति॒षाह्ये॑ ॥३॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) बहुत बुद्धिमान् (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के कारण से राजन् ! जैसे हम लोग (विश्वाभिः) सम्पूर्ण (गीर्भिः) विद्या उत्तम शिक्षा और धर्म से युक्त वाणियों से जिन (ते) आप के (नामानि) संज्ञाओं को अर्थयुक्त होने की (ईमहे) याचना करते हैं वह आप हम लोगों के लिये (अभिमातिषाह्ये) अभिमान युक्त शत्रु लोग सहने योग्य हैं जिसमें ऐसे संग्राम में सहायता दीजिये ॥३॥

भावार्थः—राजमान, विद्या और विनयों से प्रकाशमान, वह राजा; मनुष्यों की पालना करता वह नृप; और भूमि का पालन करता है वह भूमिप इत्यादि सब राजा के नाम सार्थक हों और जब शत्रुओं के साथ संग्राम होवै तो सब प्रकार से रक्षा करने वाला राजा होवै । ऐसा होने से निश्चित विजय होता, नहीं तो नहीं होता है ॥३॥

अब प्रजा के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पु॒रु॒ष्टु॒तस्य॒ धाम॑भिः श॒तेन॑ महयामसि । इन्द्र॑स्य चर्षणी॒धृतः॑ ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (पुरुष्टुतस्य) बहुतों से प्रशंसा पाये हुए और (चर्षणीधृतः) मनुष्यों को धारण करने वाले (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजा का (शतेन) असंख्य (धामभिः) जन्म स्थान और नामों से (महयामसि) पूजन करें वैसे उस प्रशंसित का सत्कार आप लोग भी करो ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि राजा आदि न्यायकारी जनों का सब प्रकार सत्कार करें और राजा आदि भी प्रजाजनों का सदा सत्कार करें ऐसा करने पर राजा और प्रजा इन दोनों के मङ्गल की उन्नति होती है ॥४॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रं॑ वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे पुरुहू॒तमुप॑ ब्रुवे । भरे॑षु॒ वाज॑सातये ॥५॥

पदार्थः—हे सेना में वर्त्तमान वीर पुरुषो ! जिस प्रकार सेना का अधीश मैं (वृत्राय) न्याय के आवरण करने वाले शत्रु के (हन्तवे) नाश के लिये तथा (भरेषु) संग्रामों में (वाजसातये) धन आदि को बांटने के लिये (पुरुहूतम्) बहुतों से पुकारे

वा प्रशंसा किये गये (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले राजा को (उप) समीप में (ब्रुवे) कहता हूँ वैसे आप लोग भी इस के समीप कहो ।।५।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जब संग्राम प्रवृत्त होवै तो योधाओं के प्रति अध्यक्ष पुरुषों को चाहिये कि जिस प्रकार विजय हो वैसा उपदेश दें और योद्धा लोग अधिष्ठाता पुरुषों की आज्ञा में सब प्रकार वर्त्तमान होवें ऐसा करने से कैसे पराजय हो ? ।।५।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

**वाजे॑षु सास॒हिर्भ॑व॒ त्वामी॑महे शतक्रतो । इन्द्र॑ वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे ।।६।।**

पदार्थः—हे (शतक्रतो) अति सूक्ष्म बुद्धियुक्त (इन्द्र) दुष्ट पुरुषों के दल के नाश करने वाले ! हम लोग जिन (त्वाम्) आप को (वृत्राय) मेघ के सदृश शत्रु के (हन्तवे) नाश करने को (ईमहे) युद्ध के उपकारक वस्तुओं के साथ याचना करते हैं वह आप (वाजेषु) जिन में बहुत अन्न और विज्ञान आदि सामग्री अपेक्षित हैं ऐसे संग्रामों में (सासहिः) अत्यन्त सहने वाले (भव) हूजिये ।।६।।

भावार्थः—जिस कर्म में जिस का स्थापन सभा करै वह पुरुष उस अधिकार की यथायोग्य उन्नति करै और जिस अधिकार में जिस का नियोग होवै वहां जो आज्ञा उस का वह कदाचित् उल्लङ्घन न करै ।।६।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

**द्यु॒म्नेषु॑ पृत॒नाज्ये॑ पृत्सु॒तूर्षु॒ श्रवः॑सु च । इन्द्र॒ साक्ष्वा॒भिमा॑तिषु ।।७।।**

पदार्थः—हे (इन्द्र) तेजस्वी पुरुष ! आप (पृत्सुतूर्षु) सेनाओं में शीघ्रता से नाश करने वाले जनों वा (श्रवःसु) श्रवण वा अन्न आदि पदार्थों (द्युम्नेषु) वा यशस्वी वा धन की प्राप्ति कराने वाले विषयों में वा (पृतनाज्ये) सेना सम्बन्धी संग्राम में (साक्ष्व) सहन करो ।।७।।

भावार्थः—जो विद्यमान धन आदि पदार्थ वीर सेना व्याख्यान देने वाले और युद्ध के अभिमानी अपने प्रिय आनन्दित और पुष्ट पुरुषों के होने पर शत्रुओं के साथ संग्राम करते हैं वे ही पुरुष निश्चित विजय को प्राप्त होते हैं ।।७।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

**शु॒ष्मिन्त॑मं न ऊ॒तये॑ द्यु॒म्निनं॑ पाहि॒ जागृ॑विम् । इन्द्र॒ सोमं॑ शतक्रतो ।।८।।**

पदार्थः—हे (शतक्रतो) बहुत बुद्धि वा बहुत कर्मयुक्त (इन्द्र) सब के रक्षक राजन् ! आप (नः) हम लोगों की (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (शुष्मिन्तमम्)

प्रशंसित वा बहुत प्रकार का बल जिस के उस अतीव (द्युम्निनम्) यशस्वी लक्ष्मीवान् और (जागृविम्) जागने वाले जन और (सोमम्) ऐश्वर्य्य की (पाहि) रक्षा करो ॥८॥

भावार्थः—सब प्रजा और राजजनों को चाहिये कि सब के अधीश राजा और अन्य अध्यक्षों के प्रति ऐसा कहैं कि आप लोग हम लोगों के रक्षक पुरुषों की और ऐश्वर्य्य की रक्षा में निरालस और उद्यत होवैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पञ्चसु । इन्द्र तानि त आ वृणे ॥९॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) अपार बुद्धियुक्त (इन्द्र) ऐश्वर्य्य को योग करने वाले ! (पञ्चसु) पांच राज्य, सेना, कोश, दूतत्व, प्राड्विवाकत्व आदि पदवियों से युक्त अधिकारी और (जनेषु) प्रत्यक्ष अध्यक्षों में (या) जो (ते) आप के (इन्द्रियाणि) जीने के चिह्न हैं (तानि) उन (ते) आप के चिह्नों को मैं (आ) (वृणे) उत्तम गुणों से आच्छादन करता हूं ॥९॥

भावार्थः—वही पुरुष राज्य करने के योग्य है जो मन्त्रियों के चरित्रों को नेत्र से रूप के सदृश प्रत्यक्ष करता है। जैसे शरीर के इन्द्रिय के गोलक अर्थात् काले तारे वाले नेत्र के सम्बन्ध से जीव के सम्पूर्ण कार्य्य सिद्ध होते हैं वैसे राजा मन्त्री और सेना के योग से राजकार्यों को सिद्ध कर सकता है ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अगन्निन्द्र श्रवो बृहद्द्युम्नं दधिष्व दुष्टरम् । उत्ते शुष्मं तिरामसि ॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त ! जिस (बृहत्) बड़े (दुष्टरम्) शत्रुओं से दुःख से उल्लंघन करने योग्य (श्रवः) अन्न वा श्रवण (द्युम्नम्) यश वा धन और (शुष्मम्) बल को विद्वान् लोग (अगन्) प्राप्त होते हैं वा जिस (ते) आप के पूर्वोक्त अन्न श्रवण यश धन और बल को हम लोग (उत्) उत्तम प्रकार (तिरामसि) तरें उल्लङ्घैं अर्थात् उस से अधिक सम्पादन करें उस सब को आप (दधिष्व) धारण करो ॥१०॥

भावार्थः—उतना ही ऐश्वर्य राजा को धारण करना चाहिये कि जितना सेना और प्रजा के पालन के और मन्त्रियों की रक्षा के लिये पूरा होवै ऐसा करने से बड़ा यश बढ़ै ॥१०॥

अब राजा और प्रजा विषय को परस्पर सम्बन्ध से कहते हैं ॥

अर्वावतो न आगह्यथो शक्र परावतः ।
उ लोको यस्ते अद्रिव इन्द्रेह तत आ गहि ॥११॥

पदार्थः—हे (अद्रिवः) बहुत मेघों से युक्त सूर्य के सदृश वर्त्तमान (शक्र) सामर्थ्यवान् (इन्द्र) ऐश्वर्य से सुख के दाता ! (इह) इस संसार में (यः) जो (ते) आप का (लोकः) निवासस्थान है इस स्थान से (नः) हम लोगों को (आ, गहि) प्राप्त हूजिये (अथो) इस के अनन्तर (परावतः) दूर से भी हम लोगों को प्राप्त हूजिये (ततः) और इस से (आगहि) उत्तम प्रकार अन्य स्थान में जाइये ॥११॥

भावार्थः—जैसे मनुष्य लोग प्रीति से राजा को बुलावें और वह राजा उन प्रजाजनों के समीप अपने देश से प्राप्त हो और उस देश से अन्य देश में भी जाय इस प्रकार राजा और प्रजा जन परस्पर स्नेह की वृद्धि के लिये कर्मों को निरन्तर करें ॥११॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के कामों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस सूक्त से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

प्रजापतिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ६ । १० त्रिष्टुप् । २—५ । ८ । ९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले अड़तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

अभि तष्टेव दीधया मनीषामत्यो न वाजी सुधुरो जिहानः ।
अभि प्रियाणि मर्मृशत्पराणि कवींरिच्छामि संदृशे सुमेधाः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! जैसे मैं (संदृशे) उत्तम प्रकार दर्शन के लिये (कवीन्) धार्मिक विद्वानों की (इच्छामि) इच्छा करता हूं वैसे (सुमेधाः) उत्तम बुद्धि वाले (जिहानः) प्राप्त होते और (पराणि) परम उत्तम (प्रियाणि) कामना और आदर करने योग्य सुखों को (अभि, मर्मृशत्) अत्यन्त विचारते हुए (सुधुरः) सुन्दर धुरा को धारण किये हुए (अत्यः) निरन्तर चलने वाले (वाजी) वेगयुक्त घोड़े के

(न) समान (मनीषाम्) बुद्धि को (तष्टेव) काष्ठों के सूक्ष्मत्व अर्थात् छीलने से पतले करने वाले वढ़ई के सदृश आप (अभि) सम्मुख (दीधय) प्रकाश करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे घुरियों के धारण करने वाले उत्तम प्रकार शिक्षित घोड़े वाञ्छित कर्मों को सिद्ध करते हैं वैसे ही साधारण जन विद्वानों की उत्तम बुद्धि को ग्रहण कर के वढ़ई के सदृश व्यसनों का छेदन करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इनोत पृच्छ जनिमा कवीनां मनोधृतः सुकृतस्तक्षत द्याम्।
इमा उ ते प्रण्योऽ वर्धमाना मनोवाता अध नु धर्मणि ग्मन् ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वान् वा साधारण मनुष्यो ! जो (कवीनाम्) बुद्धिमान् लोगों के (मनोधृतः) विज्ञान के धारण करने और (सुकृतः) उत्तम कर्म करने वाले पुरुष (उ) और (इमाः) ये वर्त्तमान (प्रण्यः) उत्तम नीतियुक्त (वर्द्धमानाः) बढ़ती हुई (मनोवाताः) मन के सदृश वेग वाली स्त्रियां (धर्मणि) धर्म व्यवहार में (नु) शीघ्र (ग्मन्) प्राप्त हों (अध) इस के अनन्तर जो (द्याम्) बिजुली को प्राप्त हों और जो लोग (ते) तुम्हारे (जनिमा) जन्मों को प्राप्त हों उन स्त्रियों (उत) वा उन (इना) समर्थ पुरुषों को आप (पृच्छ) पूछिये और आप लोग भी अविद्या को (तक्षत) काटिये ॥२॥

भावार्थः—जो पुरुष और स्त्रियां धर्म के अनुष्ठान पूर्वक बुद्धिमान् लोगों के लक्षणों को धारण कर प्रश्नोत्तर और अन्तःकरण को शुद्ध करके समर्थ होते हैं वे पुरुष और वैसी स्त्रियां सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त होती हैं ॥२॥

अब भूमि विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नि षीमिदत्र गुह्या दधाना उत क्षत्राय रोदसी समञ्जन्।
सं मात्राभिर्ममिरे येमुरुर्वी अन्तर्मही समृते धायसे धुः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो स्त्रियां (अत्र) इस संसार में (गुह्या) गूढ़ विज्ञानों को (दधानाः) धारण किये हुई (क्षत्राय) राज्य के लिये (रोदसी) भूमि और विद्या के प्रकाश को (सीम्) सब प्रकार (सम्, अञ्जन्) प्रकट करें (उत) और (मात्राभिः) सूक्ष्म अवयवों से (नि) निरन्तर पदार्थों को (ममिरे) मापें और (उर्वी) बड़ी (मही) पृथ्वी को (समृते) अच्छे प्रकार सत्य व्यवहार में (धायसे) धारण करने को अपने

अन्तःकरण के (अन्तः) मध्य में (सम्, येमुः) संयुक्त करें वे (इत्) ही सुख को (धुः) धारण करें ॥३॥

भावार्थः—जो स्त्रियां ब्रह्मचर्य्य से विद्या के विज्ञानों को प्राप्त होकर पृथिवी आदि पदार्थों से उपकार का ग्रहण कर सकें वे रानी होने के योग्य होती हैं ॥३॥

अब सूर्य्य के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आतिष्ठन्तं परि विश्वे अभूषञ्छ्रियो वसानश्चरति स्वरोचिः ।
महत्तद्वृष्णो असुरस्य नामा विश्वरूपो अमृतानि तस्थौ ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (विश्वरूपः) सम्पूर्ण रूप हैं जिससे वा जो (श्रियः) धनों वा पदार्थों की शोभाओं को (वसानः) ढांपता वा ग्रहण करता हुआ और (स्वरोचिः) अपना प्रकाश जिसमें विद्यमान वह सूर्य्य (वृष्णः) वृष्टिकारक (असुरस्य) दोषों को दूर करने वा प्राणों में रमने वाले वायु सम्बन्धी (अमृतानि) अमृतस्वरूप (नामा) जलों को व्याप्त होकर (आ, तस्थौ) स्थित होता वा उस के समान जो (महत्) बड़ा है (तत्) उस को (चरति) प्राप्त होता है उस (आतिष्ठन्तम्) चारों ओर से स्थिर हुए को (विश्वे) सम्पूर्ण विद्वान् लोग (परि) सब प्रकार (अभूषन्) शोभित करें ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! वायुरूप आधार में वर्त्तमान सूर्य्य आदि लोक जल वृष्टि आदि के द्वारा सब लोगों को आनन्द देते हैं वैसे ही लक्ष्मी उत्पादन करने वाला पुरुष सब को शोभित करता है ॥४॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

असूत पूर्वो वृषभो ज्यायानिमा अस्य शुरुधः सन्ति पूर्वीः ।
दिवो नपाता विदथस्य धीभिः क्षत्रं राजाना प्रदिवो दधाथे ॥५॥

पदार्थः—हे (नपाता) नाशरहित (राजाना) सूर्य्य और बिजुली के सदृश प्रकाशयुक्त राजा और न्यायाधीश ! आप दोनों जैसे (पूर्वः) पालन करने वाला प्रथम (वृषभः) वृष्टिकर्त्ता (ज्यायान्) बड़ा वृद्ध (इमाः) इन (पूर्वीः) प्राचीन (शुरुधः) शीघ्र रुचिकारकों को (असूत) उत्पन्न करता है और (अस्य) इस के समीप से वृष्टि को वर्षाते हैं वैसे ही (दिवः) अन्तरिक्ष से (विदथस्य) विज्ञान करने वाले के (प्रदिवः) विद्या और विनय के प्रकाशों को तथा (धीभिः) बुद्धि वा कर्मों से (क्षत्रम्) रक्षा करने योग्य राज्य को (दधाथे) धारण करते हो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे क्रम से सूर्य

जल के धारण और वृष्टि से इस संसार का हित करता है वैसे ही उत्तम गुण और न्यायों के सहित वर्त्तमान हुए राजा आदि लोग उत्तम प्रकार रक्षित राज्य का पालन करें ॥५॥

अब सभा के कार्य्य का उपदेश अगले मन्त्र में किया है ॥

त्रीणि राजाना विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।
अपश्यमत्र मनसा जगन्वान्व्रते गन्धर्वाँ अपि वायुकेशान् ॥६॥

पदार्थः—हे (राजाना) राजा और प्रजाजनो ! मैं इस संसार में वर्त्तमान जिन (व्रते) सत्यभाषणादि व्यवहार में (गन्धर्वान्) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी वा पृथिवी को धारण करने और (वायुकेशान्) वायु के सदृश प्रकाश वाले और अन्य भी शिष्ट अर्थात् उत्तम पुरुषों को (मनसा) विज्ञान से (जगन्वान्) प्राप्त हुआ (अपश्यम्) देखता हूं उन लोगों से (त्रीणि) तीन (सदांसि) सभायें नियत करा के (विदथे) विज्ञान को प्राप्त कराने वाले व्यवहार में (पुरूणि) बहुत (विश्वानि) सम्पूर्ण व्यवहारों को (परि) सब प्रकार (भूषथः) शोभित करते हो इस से सम्पूर्ण कार्यों के सिद्ध करने वाले होते हो ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले यथार्थवक्ता विद्वान् पुरुषों की राजसभा विद्यासभा और धर्मसभा नियत कर और सम्पूर्ण राज्यसम्बन्धी कर्मों को यथायोग्य सिद्ध कर सकल प्रजा को निरन्तर सुख दीजिये ॥६॥

अब राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तदिन्न्वस्य वृषभस्य धेनोरा नामभिर्ममिरे सक्म्यं गोः ।
अन्यदन्यदसुर्यं१वसाना नि मायिनो ममिरे रूपमस्मिन् ॥७॥

पदार्थः—जो मनुष्य (अस्य) इस (वृषभस्य) बलिष्ट की (धेनोः) वाणी के (नामभिः) नामों से (नु) शीघ्र जिस को (आ, ममिरे) सब ओर से नापते हैं (तत्) उस (सक्म्यम्) संयोग जिस पदार्थ में करता है उस में उत्पन्न (गोः) वाणी से (अन्यदन्यत्) पृथक् पृथक् वर्त्तमान (असुर्यम्) मेघपन को (वसानाः) ढांपते हुए (मायिनः) उत्तम बुद्धि वाले (अस्मिन्) इस राज्य में (रूपम्) रूप को (नि, ममिरे) उत्पन्न करते हैं वे (इत्) ही राज्य कर सकते हैं ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य इस राज्य का कोमल वचनों से पालन करते हैं वे मेघ से जल के सदृश अनेक प्रकार के ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तदिन्न्वस्य सवितुर्नकिर्मे हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
आ सुष्टुती रोदसी विश्वमिन्वे अपीव योषा जनिमानि वव्रे ॥८॥

पदार्थः— जो (अस्य) इस (सवितुः) सूर्य्य की प्रकटता से उत्पन्न हुए प्रकाश के सदृश (याम्) जिस (हिरण्ययीम्) सुवर्ण आदि बहुत रत्नों से युक्त (अमतिम्) उत्तम शोभायुक्त लक्ष्मी को (योषा) स्त्री (अपीव) इकट्ठा की गई सी (जनिमानि) जन्मों को (वव्रे) स्वीकार करती और (सुष्टुती) उत्तम प्रशंसा से (विश्वमिन्वे) सर्वत्र व्यापक (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी के सदृश राजा और प्रजा के व्यवहारों का (नु) निश्चय (आ, अशिश्रेत्) आश्रय करै (तत्) वह (इत्)ही (मे) मेरे (नकिः) नहीं हुई ॥८॥

भावार्थः— इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे चन्द्र आदि लोक सूर्य के प्रकाश का आश्रय करके उत्तम शोभित देख पड़ते हैं और जैसे स्त्री स्नेहपात्र अपने प्रिय और उत्तम लक्षणों से युक्त पति को प्राप्त होकर सन्तानों को उत्पन्न करके आनन्द करती है वैसे ही पृथिवी के राज्य को प्राप्त होकर दुःखों से रहित हुए राजजन निरन्तर आनन्द करें ॥८॥

अब परस्परभाव से राज प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

युवं प्रत्नस्य साधथो महो यद्दैवी स्वस्तिः परि णः स्यातम् ।
गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि ॥९॥

पदार्थः—हे राजा और प्रजा जनो ! (युवम्) आप दोनों जैसे (विश्वे) सम्पूर्ण (मायिनः) उत्तम बुद्धि वाले (तस्थुषः) स्थिर पुरुष के (कृतानि) उत्पन्न किये हुए (विरूपा) अनेक प्रकार के रूपों से युक्त पदार्थों को (पश्यन्ति) देखते हैं वैसे (प्रत्नस्य) प्राचीन (गोपाजिह्वस्य) रक्षा करने वाली जिह्वा वाले पुरुष का (यत्) जो (महः) बड़ी (दैवी) देवताओं की (स्वस्तिः) स्वस्थता अर्थात् शान्ति है उस को (नः) हम लोगों के लिये (परि, साधथः) सब प्रकार सिद्ध करते हैं वैसे सब के सुखकारक हूजिये ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे बुद्धिमान् शिल्पीजन अनेक प्रकार की वस्तुओं को रच के सब को शोभित करते हैं वैसे ही राजा आदि जन प्रजा में स्वस्थता को स्थिर करके सब के कार्यों को सिद्ध करें ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥१०॥

पदार्थः - हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) सत्य और असत्य के विभाग और (भरे) पालन करने योग्य राज्य में (शुनम्) राजप्रजाजनित अर्थात् राजा प्रजा से उत्पन्न हुए सुख (मघवानम्) बहुत धन से युक्त वैश्य (शृण्वन्तम्) सुनते हुए (नृतमम्) उत्तम नायक (उग्रम्) पाप के नाश के लिये प्रतापी (समत्सु) संग्रामों में (घ्नन्तम्) शत्रुओं के नाश करने (वृत्राणि) धनों को देने और (धनानाम्) धनों को (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतने वाले (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् राजा को (हुवेम) ग्रहण करें वैसे इस को आप लोग भी ग्रहण करो ॥१०॥

भावार्थः — जो राजा और प्रजाजन परस्पर प्रसन्न परस्पर के सुख और दुःख की वार्त्ताओं को सुनते दुष्ट पुरुषों का ताड़न करते और सत्पुरुषों का सत्कार करते हुए परस्पर के उत्तम कर्मों की प्रशंसा करें वे अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होकर सुखी होवें ॥१०॥

इस सूक्त में विद्वान् शिल्पी सभा राजा प्रजा सूर्य और भूमि आदि के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह ३८ वां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ९ विराट् त्रिष्टुप् । ३ — ७ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ८ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले तीसरे मण्डल में उनतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रं मतिर्हृद आ वच्यमानाच्छा पतिं स्तोमतष्टा जिगाति ।
या जागृविर्विदथे शस्यमानेन्द्र यत्ते जायते विद्धि तस्य ॥१॥

पदार्थः — हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त विद्वान् पुरुष ! (या) जो (वच्यमाना) कही गई (विदथे) विज्ञान में (जागृविः) जागने वाली और विज्ञान में (शस्यमाना) स्तुति से युक्त हुई (स्तोमतष्टा) स्तुतियों से विस्तारयुक्त (मतिः) बुद्धि

(हृदः) हृदय से (इन्द्रम्) अत्यन्त सुख देने (पतिम्) और पालने वाले स्वामी की (अच्छ) उत्तम प्रकार (आ) सब ओर से (जिगाति) स्तुति करती है (यत्) जो बुद्धि (ते) आप की (जायते) उत्पन्न होती है उस बुद्धि से (तस्य) उस पालने वाले के उत्तम गुण कर्म और स्वभावों को (विद्धि) जानो ॥१॥

भावार्थः—जिन के हृदय में यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है वे सब लोगों के गुण और दोषों को जान गुणों को ग्रहण दोषों का त्याग गुणों की प्रशंसा और दोषों की निन्दा करके उत्तम कर्मों को करें ऐसा होने से वे इस संसार में प्रशंसायुक्त होवें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दि॒वश्चि॒दा पू॒र्व्या जाय॑माना॒ वि जागृ॑वि॒र्विद॑थे श॒स्यमा॑ना ।
भ॒द्रा वस्त्रा॒ण्यर्जु॑ना॒ वसा॑ना॒ सेयम॒स्मे स॑न॒जा पित्र्या॒ धीः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अस्मे) हम लोगों में (दिवः) विज्ञान के प्रकाश से (जायमाना) उत्पन्न हुई (पूर्व्या) प्राचीन विद्वानों से सिद्ध की गई (विदथे) विज्ञान के बढ़ाने वाले व्यवहार में (जागृविः) जागने वाली (शस्यमाना) स्तुति की जाती और (भद्रा) धारण करने योग्य और कल्याणकारक (अर्जुना) सुन्दररूपयुक्त (वस्त्राणि) वस्त्रों को (वसाना) ओढ़ती हुई सुन्दर स्त्री के तुल्य (सनजा) विभाग से प्रसिद्ध (पित्र्या) वा पितरों में प्रकट हुई (धीः) उत्तम बुद्धि (वि) विशेषता से उत्पन्न होती (सा, इयम्) सो यह आप लोगों में (चित्, आ) भी सब ओर से उत्पन्न होवे ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही श्रेष्ठ पुरुष हैं जो कि अपने आत्मा के तुल्य सम्पूर्ण जनों में बुद्धि आदि पदार्थों को उत्पन्न कराने को उद्यत होवें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

य॒मा चि॒दत्र॑ यम॒सूर॑सूत जि॒ह्वाया॒ अग्रं॒ पत॒दा ह्यस्था॑त् ।
वपूं॑षि जा॒ता मि॑थु॒ना स॑चेते तमो॒हना॒ तपु॑षो बु॒ध्न एता॑ ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (यमसूः) सूर्य्य को उत्पन्न करने वाली बिजुली (चित्) अथवा (अत्र) इस संसार में (यमा) सहचारी (मिथुना) परस्पर मिले हुए (तमोहना) अन्धकार का नाश करने वाले (तपुषः) जिस में सूर्य्य तपता है उस दिन के बीच वा (बुध्ने) बंधते अर्थात् इकट्ठे होते जल जिस में उस अन्तरिक्ष में (एता) वर्त्तमान इन सूर्य्य और चन्द्रमा को (असूत) उत्पन्न करती है (जिह्वायाः) तथा

जिह्वा के (अग्रम्) अग्रभाग को (हिं) जिस कारण (पतत्) जाती वा प्राप्त होती है और (जाता) उत्पन्न हुए (वपूंषि) रूपों को प्राप्त हो (आ, अस्थात्) स्थिर होती है जो अन्धकार के नाश करने वाले परस्पर मिले हुए सूर्य्य और चन्द्रमा सूर्य्यमण्डल जिस में तपता है उस दिन के बीच और जल जिस में इकट्ठे हों उस अन्तरिक्ष में (सचेते) सम्बन्ध करते हैं उन को (विद्धि) जानिये ॥३॥

भावार्थः- हे मनुष्यो ! आप जैसे विजुली सूर्य का और सूर्य चन्द्रादिक का प्रकाश और अन्धकार का नाश करता है वैसे ही परस्पर अनुकूल होकर उत्तम व्यवहार में तत्पर होओ ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नकिरेषां निन्दिता मर्त्येषु ये अस्माकं पितरो गोषु योधाः ।
इन्द्रं एषां दृंहिता माहिनावानुद्गोत्राणि ससृजे दंसनावान् ॥४॥

पदार्थः-- हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान (ये) वा जो (अस्माकम्) हम लोगों के (गोषु) पृथिवियों और (मर्त्येषु) मनुष्यों में (योधाः) योद्धा लोग और (पितरः) पालन करने वाले हैं (एषाम्) इन लोगों का (दृंहिता) बढ़ाने वाला (माहिनावान्) प्रशंसित पूजन हैं जिस के वह और (दंसनावान्) जो उत्तम कर्मों से युक्त है वह (गोत्राणि) वंशों को (उत्, ससृजे) उत्पन्न करता है उस की सेवा करो । जिस से (एषाम्) इन लोगों का (निन्दिता) गुणों में दोषों का आरोपक और दोषों में गुणों का आरोपक (नकिः) नहीं होवे ॥४॥

भावार्थः-- मनुष्यों को चाहिये कि ऐसा प्रयत्न करें कि जिस से निन्दित न हों और आप दूसरों की स्तुति करने वाले हों और जैसे सूर्य्य सम्पूर्ण जगत् का पालन करता है वैसे रक्षा करने वाले पितरों की सेवा करनी चाहिये ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सखा ह यत्र सखिभिर्नवग्वैरभिज्ञ्वा सत्वभिर्गा अनुग्मन् ।
सत्यं तदिन्द्रो दशभिर्दशग्वैः सूर्यं विवेद तमसि क्षियन्तम् ॥५॥

पदार्थः - हे मनुष्यो ! (यत्र) जिस स्थल में (नवग्वैः) नवीन गतियों और (सखिभिः) मित्रों के साथ (अभिज्ञु) सम्मुख जानुओं से युक्त (सखा) मित्र (सत्वभिः) पदार्थों के साथ (ह) निश्चय (गाः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी वा भूमियों के (आ, अनुग्मन्) अनुकूल प्राप्त होता हुआ जो (सत्यम्) श्रेष्ठ व्यवहारों में उत्तम अर्थात् सच्चापन जैसे हो वैसे (दशग्वैः) दश प्रकार की गतियों से युक्त (दशभिः)

दश प्रकार के पवनों के साथ (इन्द्रः) बिजुली (तमसि) रात्रि में (क्षियन्तम्) निवास करते अर्थात् अपना काम प्रकाश न करते हुए (सूर्यम्) सूर्य को (विवेद) प्राप्त होती है (तत्) उसको जो जानता है उसका अनुकरण सब लोग करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे मित्र के तुल्य वर्त्तमान वायु से बिजुली नामक अग्नि अन्धकार में सूर्य के परिणाम को प्राप्त हो और सबको प्रकाशित कर आनन्द देती है वैसे ही धार्मिक मित्रों के सहित मित्र विद्वान् शुद्धान्तःकरणता तथा विद्या से प्रकट होकर सब के आत्माओं का प्रकाश करके आनन्द देता है ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रो मधु सम्भृतमुस्रियायां पद्वद्विवेद शफवन्नमे गोः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु हस्ते दधे दक्षिणे दक्षिणावान् ॥६॥

पदार्थः—जो (इन्द्रः) बिजुली के समान मनुष्य (उस्रियायाम्) भूमि में (पद्वत्) पैरों के और (शफवत्) खुरों के सदृश (मधु) मधुर आदि रस (सम्भृतम्) जो कि उत्तम धारण किया गया उसे (नमे) नमें स्वीकार करे (विवेद) जाने (गोः) वाणी और (गुहा) बुद्धि में (हितम्) स्थित (अप्सु) प्राणों वा जलों में (गुह्यम्) गुप्त और (गूढम्) छपे हुए व्यवहार को (दक्षिणावान्) दक्षिणा को धारण किये हुए के समान (दक्षिणे) दहिने (हस्ते) हाथ में (दधे) धारण करे उसको सब लोग जानो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे मनुष्य पैरों और पशु खुरों से गमन करके दूसरे स्थान को प्रत्यक्ष करते हैं, वैसे ही बाहर भीतर वर्त्तमान बिजुली को विद्वान् पुरुष हस्त प्राप्त दक्षिणा के सदृश जान कर और हृदय में वर्त्तमान अपने आत्मा और परमात्मा तथा बाह्य सूर्य आदि को जानता है, इस के सहाय से धर्म अर्थ काम और मोक्षों को सब सिद्ध करें ॥६॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ज्योतिर्वृणीत तमसो विजानन्नारे स्याम दुरितादभीके ।
इमा गिरः सोमपाः सोमवृद्ध जुषस्वेन्द्र पुरुतमस्य कारोः ॥७॥

पदार्थः—हे (सोमवृद्ध) विद्यारूप ऐश्वर्य से वृद्ध और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त (सोमपाः) ऐश्वर्य की रक्षा करने वाले ! आप (पुरुतमस्य) अत्यन्त बहुत विद्या से युक्त (कारोः) शिल्पीजन की जो (इमाः) उन (गिरः) वाणियों का

(जुषस्व) सेवन करो और जैसे (विजानन्) विशेष प्रकार से जानते हुए आप हम लोगों से (आरे) दूरस्थल और (अभीके) समीप स्थल में (दुरितात्) दुष्ट आचरण से पृथक् होकर श्रेष्ठ आचरण और (तमसः) अविद्या से पृथक् होकर विद्या और (ज्योतिः) प्रकाश के समान विद्या का (वृणीत) स्वीकार करें वैसे इन आप की उन वाणियों का सेवन करके हम लोग विद्वान् होवें ॥७॥

भावार्थः--हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग पाप के आचरण से पृथक् होकर धर्म के आचरण और अविद्या से पृथक् होकर विद्या का ग्रहण करके आत्म-सम्बन्धी ज्ञान और शिल्प, क्रिया, कौशल का सेवन करते हैं वैसे ही आप लोग भी सेवन करने वाले हूजिये और सब हम लोग दूर और समीप में वर्त्तमान हुए भी मित्रता का त्याग नहीं करें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ज्योतिर्यज्ञाय रोदसी अनु ष्यादारे स्याम दुरितस्य भूरेः ।
भूरि चिद्धि तुजतो मर्त्यस्य सुपारासो वसवो बर्हणावत् ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (सुपारासः) सुन्दर विद्या का पार है जिन का और (वसवः) विद्याओं में स्वयं वसते वा अन्य जनों को वसाते वह हम लोग (यज्ञाय) विद्वानों के सत्कार आदि अनुष्ठान के लिये (रोदसी) भूमि और प्रकाश के सदृश विद्या और नीति को (आरे) दूर वा समीप में (दुरितस्य) दुःख से प्राप्त हुए (भूरेः) वहुत का (भूरि) वहुत (चित्) भी (तुजतः) वलवान् (मर्त्यस्य) मनुष्य का (बर्हणावत्) वृद्धिकारक विज्ञान वा धन जिस में विद्यमान ऐसा (ज्योतिः) सूर्य के प्रकाश के सदृश विज्ञान का प्रकाश (स्यात्) होवे ऐसी कामना करते हुए (अनु) पीछे (स्याम) होवें वैसे (हि) ही आप हूजिये ॥८॥

भावार्थः—वे ही श्रेष्ठ पुरुष हैं जो लोग दूर और समीप में वर्त्तमान पुरुषों में कृपा का अनुसन्धान विद्या और उपदेश का प्रचार करके वड़े कठिन वोध की सरलता को उत्पन्न करें, वे ही सब लोगों को सत्कार करने योग्य होवें ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥९॥

पदार्थः - हे मनुष्यो ! जिस को हम लोग (ऊतये) व्यवहार-सिद्धि-प्रवेश के लिये (अस्मिन्) इस (भरे) पालन करने योग्य संसार में (नृतमम्) अत्यन्त नायक

(मघवानम्) बहुत धन के दान करने और (वाजसातौ) पदार्थों की विभाग विद्या में (शृण्वन्तम्) सुनने वाले न्यायाधीश दण्ड देने वाले के सदृश (उग्रम्) तेजस्वीरूप और (समत्सु) संग्रामों में (घ्नन्तम्) विद्यावान् शूरवीर के सदृश (धनानाम्) लक्ष्मियों को (सञ्जितम्) शीघ्र जीतता है जिस से उस (इन्द्रम्) बिजुली रूप अग्नि को जान कर (वृत्राणि) धनों को और (शुनम्) सुखकारक विज्ञान को (हुवेम) स्वीकार करें वैसे इस को जानकर आप लोग प्राप्त हूजिये ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । यथार्थवक्ता विद्वान् लोग भूगर्भ बिजुली भूगोल खगोल और सृष्टिस्थ पदार्थों की विद्या के उपदेश से पदार्थविद्याओं को प्राप्त करा के सब की निरन्तर वृद्धि करें ॥९॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन, निन्दित जनों का निवारण, मित्रता करना, अज्ञान का त्याग कर, विद्या की प्राप्ति की इच्छा करना इत्यादि विषय वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह समझना चाहिये ॥

यह उन्तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १—४ । ६—९ गायत्री । ५ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब तृतीय मण्डल में नव ऋचा वाले चालीसवें सूक्त का आरम्भ है,
उस के प्रथम मन्त्र में राजा प्रजा के विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रं त्वा वृ॒ष॒भं व॒यं सु॒ते सोमे॑ हवामहे ।
स पा॑हि॒ मध्वो॒ अन्ध॑सः ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले ! (वयम्) हम लोग (मध्वः) मधुर आदि गुणों से युक्त (अन्धसः) अन्न आदि के (सुते) उत्पन्न (सोमे) ऐश्वर्य्य वा ओषधियों के समूह में जिस (वृषभम्) बलिष्ठ (त्वा) आप को (हवामहे) पुकारें (सः) वह आप हम लोगों की (पाहि) रक्षा कीजिये ॥१॥

भावार्थः—जो प्रजाजन राजा का हृदय से सत्कार करके इस राजा के लिए ऐश्वर्य्य देवें उनकी राजा अपने आत्मा के सदृश वा जैसे वैद्यजन ओषधियों से रोगी की रक्षा करता है वैसे रक्षा करे ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र क्रतुविदं सुतं सोमं हर्य्य पुरुष्टुत । पिबा वृषस्व तातृपिम् ॥२॥

पदार्थः -- हे (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसित (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले ! आप (तातृपिम्) अत्यन्त तृप्ति करने और (क्रतुविदम्) यज्ञ के सिद्ध करने वाले और (सुतम्) उत्तम संस्कारों से उत्पन्न (सोमम्) ओषधियों के समूह की (हर्य्य) कामना और (पिब) पान करो उन से (आ, वृषस्व) बल के सदृश बलिष्ठ होओ ॥२॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप बुद्धि के बढ़ाने वाले खाने तथा पीने योग्य वस्तु का भोजन और पान कर तृप्त होकर बल आरोग्य बुद्धि और नम्रता को बढ़ाइये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र प्र णो धितावानं यज्ञं विश्वेभिर्देवेभिः ।

तिरः स्तवान विश्पते ॥३॥

पदार्थः—हे (विश्पते) प्रजा का पालन (स्तवान) सत्य की स्तुति और (इन्द्र) दुष्टों का नाश करने वाले ! आप (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (देवेभिः) धार्मिक श्रेष्ठ विद्वानों के साथ (नः) हम लोगों के (धितावानम्) धारण किया है विभाग जिससे उस (यज्ञम्) विद्या और विनय से सङ्गत पालन करने रूप कर्म को (प्र, तिरः) पार हो समाप्त करो अर्थात् उक्त कर्म से दुःख से पार पहुँचो ॥३॥

भावार्थः—प्रजाजनों को चाहिये कि राजा को इस प्रकार का उपदेश देवें कि आप हम लोगों के रक्षक हूजिये और ऐसी आज्ञा दीजिये कि आप के सब श्रेष्ठ मध्यम कनिष्ठ कर्मचारी लोग धर्मपूर्वक हम लोगों की निरन्तर रक्षा करें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तव प्र यन्ति सत्पते ।

क्षयं चन्द्रास इन्दवः ॥४॥

पदार्थः—हे (सत्पते) सत्पुरुषों के रक्षा करने और (इन्द्र) सम्पूर्ण ओषधियों की विद्या के जानने वाले राजन् ! जो (इमे) ये (चन्द्रासः) आनन्दकारक (इन्दवः) गीले (सुताः) उत्तम प्रकार से पाक आदि संस्कार से युक्त (सोमाः) ओषधी आदि

पदार्थ (तव) आप के (क्षयम्) रहने के स्थान को (प्र, यन्ति) प्राप्त होते हैं उनका आप सेवन करो ॥४॥

भावार्थ— हे राजन् ! जितना आप को राज्य का भाग लेना चाहिये उतना ही ग्रहण कर भोग करिये, न अधिक न न्यून, ऐसा करने से कभी नहीं आप की हानि होगी ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दधिष्वा जठरे सुतं सोममिन्द्र वरेण्यम् । तव द्युक्षास इन्दवः ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) पूर्ण अवस्था की कामना करने वाले ! जो (तव) आप के (द्युक्षासः) प्रकाश में रहने (इन्दवः) और स्नेह करने वाले होवें उन के समीप से (वरेण्यम्) भोग करने योग्य (सुतम्) उत्तम प्रकार बनाया (सोमम्) श्रेष्ठ ओषधियों से युक्त अन्न को (जठरे) उत्पन्न हो सुख जिसमें उस पेट में आप (दधिष्व) धरो ॥५॥

भावार्थः—राजा आदि मनुष्यों को सम्पूर्ण पदार्थों के मध्य से उन्हीं पदार्थों का खान और पान करना चाहिये कि जो वृद्धि अवस्था और बल को निरन्तर बढ़ावें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गिर्वणः पाहि नः सुतं मधोर्धाराभिरज्यसे ।
इन्द्र त्वादातमिद्यशः ॥६॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) वाणियों से याचना किये जाते (इन्द्र) तेजस्विन् ! जो (त्वादातम्, इत्) आप से ग्रहण किया हुआ ही (यशः) रोगनाशक जल अन्न वा धन है उस से और (मधोः) मधुर आदि गुणों से युक्त वस्तु के (धाराभिः) प्रवाहों के साथ (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) ओषधि आदि पदार्थों को पाये हुए हम लोगों से जाने जाते हो वह आप (नः) हमारी (पाहि) रक्षा कीजिये ॥६॥

भावार्थः—हे राजन् ! जितना पीने योग्य वस्तु अन्न और धन हम लोगों का आपने स्वीकार किया है उससे अपनी और हम लोगों की रक्षा कीजिये ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि द्युम्नानि वनिन इन्द्रं सचन्ते अक्षिता ।
पीत्वी सोमस्य वावृधे ॥७॥

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे (वनिनः) मांगने वाले जन (अक्षिता) नाश से रहित (द्युम्नानि) यशों के (अभि) सन्मुख (इन्द्र) ऐश्वर्य करने वाले का (सचन्ते) सम्बन्ध होते हैं और जैसे मैं (सोमस्य) ओषधिरूप ऐश्वर्य्य के योग से (पीत्वी) पान करके (वावृधे) वृद्धि करूं वैसे आप करो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। सब मनुष्यों को चाहिये कि धर्म्मयुक्त अत्यन्त पुरुषार्थ से नहीं नाश होने योग्य ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर नियमित भोजन और विहार से आरोग्य को उत्पन्न करके संसार में उत्तम कीर्ति का विस्तार करें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अर्वावतो न आ गहि परावतश्च वृत्रहन् । इमा जुषस्व नो गिरः ॥८॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) धन को प्राप्त होने वाले ! आप (अर्वावतः) प्रशंसा करने योग्य घोड़ों से युक्त (नः) हम लोगों को (परावतः) दूर देश से (च) और समीप से (आ) सब ओर से (गहि) प्राप्त हूजिये और (नः) हम लोगों की (इमाः) इन (गिरः) वाणियों का (जुषस्व) सेवन करो ॥८॥

भावार्थः—हे राजन् ! दूर वा समीप में स्थित सेना के अङ्ग शस्त्र आदि से युक्त वीर हम लोग जब आप को पुकारें उसी समय आप को आना चाहिये तथा हम लोगों के वचन सुनना और यथार्थ न्याय करना चाहिये ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यदन्तरा परावतमर्वावतं च हूयसे । इन्द्रेह तत आ गहि ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के दाता ! आप (इह) इस राज्य में (यत्) जो (अन्तरा) व्यवधान अर्थात् मध्य में (परावतम्) दूर देश और (अर्वावतम्) समीप में वर्त्तमान को (च) और पुकारते हैं उन लोगों से (हूयसे) पुकारे जाते हो (ततः) इस से हम लोगों को (आ, गहि) प्राप्त हूजिये ॥९॥

भावार्थः—राजा दूर देश में हो और प्रजा सेना और मन्त्री जन अन्यत्र भी वर्त्तमान हों तथापि दूतों के द्वारा सब लोगों के साथ में समीप वर्त्तमान हो सके ॥९॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ यवमध्या गायत्री । २ । ३ । ५ । ९ गायत्री । ४ । ७ । ८ निचृत् गायत्री । ६ विराट् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले इकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि के विषय को कहते हैं ॥

आ तू न इन्द्र मद्र्यग्घुवानः सोमपीतये । हरिभ्यां याह्यद्रिवः ॥१॥

पदार्थः—हे (अद्रिवः) मेघों से युक्त सूर्य्य के तुल्य वर्त्तमान (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के करने वाले ! आप (सोमपीतये) सोमलतारूप ओषध का रस पीया जाय जिस कर्म में उस के लिये (मद्र्यक्) मेरी पूजा अर्थात् उपासना करने वाला (हुवानः) पुकारा गया जन (हरिभ्याम्) घोड़ों से (नः) हम लोगों को (आ) सब प्रकार (याहि) प्राप्त हो और हम लोग (तु) शीघ्र आप को प्राप्त होवें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि शुभ कार्य्य आदि के उत्सवों में परस्पर एक दूसरे का आह्वान करके अन्न और जल आदिकों से सत्कार करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सत्तो होता न ऋत्वियस्तिस्तिरे बर्हिरानुषक् ।
अयुज्रन् प्रातरद्रयः ॥२॥

पदार्थः—जो (सत्तः) बैठा हुआ (होता) ग्रहण करने वाला और (ऋत्वियः) जो ऋतु को योग्य होता वा (आनुषक्) अनुकूलता के साथ मिलता ये (नः) हम लोगों के लिये (बर्हिः) उत्तम आसन वा वस्तु को (अद्रयः) मेघों के सदृश (प्रातः) प्रातःकाल में (अयुज्रन्) युक्त करते हैं और (तिस्तिरे) वस्त्रों से आच्छादन करते हैं वे क्रियारूप यज्ञ करने को योग्य हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रभातकाल के मेघ सूर्य्य के प्रकाश का आच्छादन करके छाया को उत्पन्न करते हैं वैसे ही क्रियाओं को जानने वाले लोग वस्त्र आदि पदार्थों से शरीरों को ढांप के अनुकूलता से सुख को उत्पन्न करते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमा ब्रह्म ब्रह्मवाहः क्रियन्त आ बर्हिः सीद ।
वीहि शूर पुरोळाशम् ॥३॥

पदार्थः—हे (शूर) दुष्टों के नाश करने वाले ! जो (इमाः) ये (ब्रह्मवाहः)

धनों को प्राप्त कराने वाली क्रियायें (क्रियन्ते) की जाती हैं उनसे (ब्रह्म) धन को (वीहि) प्राप्त (बर्हिः) अन्तरिक्ष में (आ, सीद) वर्त्तमान और (पुरोडाशम्) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न को प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि निष्फल क्रियायों को कभी न करें। जिस जिस क्रिया से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि हो उस उस को प्रयत्न से करो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

रारन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विन्द्र गिर्वणः ॥४॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) वाणियों से जिस से याचना करें वह (वृत्रहन्) धनों से युक्त (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले ! आप (स्तोमेषु) प्रशंसा करने और (उक्थेषु) कहने के योग्य (सवनेषु) ऐश्वर्यों में (नः) हम लोगों को (रारन्धि) रमाओ ॥४॥

भावार्थः—दरिद्र लोगों को चाहिये कि धनयुक्त पुरुषों से सदा याचना करें जिससे कि वे दरिद्र लोग सुख को प्राप्त होवें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मतयः सोमपामुरुं रिहन्ति शवसस्पतिम् ।
इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥५॥

पदार्थः—जो (मतयः) उत्तम बुद्धि से युक्त मनुष्य लोग (शवसः) बल के (पतिम्) पालन करने वाले (उरुम्) बहुत ऐश्वर्य से पूर्ण (सोमपाम्) ऐश्वर्य्य के रक्षक (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष (मातरः) गौवें (वत्सम्) बछड़े को (न) जैसे (रिहन्ति) चाटती वैसे मिलते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थः—जैसे गौवें प्रेमभाव का आश्रयण करके बछड़ों में प्रेम धारण करती हैं वैसे ही राजा आदि अध्यक्ष पुरुष सेनाओं की प्रजाओं के प्रेमभाव से रक्षा करें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! (हि) जिस से आप (स्तोतारम्) विद्वान् पुरुष को (निदे) निन्दा करने के लिये (न) नहीं (करः) करें इससे (सः) वह आप (तन्वा) शरीर से (अन्धसः) अन्न आदि की (महे) बड़ी (राधसे) सिद्धि करने वाले धन के लिये (मन्दस्व) आनन्द करो ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य स्तुति करने योग्य पुरुषों की निन्दा नहीं करते वे वड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होकर शरीर और आत्मा से सदा ही सुखी होते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वयमिन्द्र त्वायवो॑ हविष्म॑न्तो जरामहे । उत त्वम॑स्मयुर्व॑सो ॥७॥

पदार्थः—हे (वसो) निवास के कारण (इन्द्र) ऐश्वर्य से और (हविष्मन्तः) बहुत देने योग्य वस्तुओं से युक्त ! (त्वायवः) आप की कामना करते हुए (वयम्) हम लोग आप की (जरामहे) प्रशंसा करें (उत) और भी (त्वम्) आप (अस्मयुः) हम लोगों की कामना करते हुए हम लोगों की प्रशंसा करो ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब लोगों के गुणों की प्रशंसा और दोषों की निन्दा करें वे विवेकी अर्थात् विचारशील हो के गुणों के ग्रहण करने और दोषों के त्याग करने को समर्थ होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मारे अस्मद्वि मु॑मुचो हरि॑प्रियार्वाङ् या॑हि ।
इन्द्र॑ स्वधावो मत्स्वेह ॥८॥

पदार्थः—हे (हरिप्रिय) हरने वालों को प्रसन्न करने वाले ! (इन्द्र) ऐश्वर्य्य से युक्त (स्वधावः) बहुत अन्नादि वस्तुओं से पूर्ण आप (अस्मत्) हम लोगों से (आरे) समीप वा दूर देश में (मा) मत (वि, मुमुचः) त्याग करिये (अर्वाङ्) नीचे के स्थान को जाते हुए (याहि) जाइये और (इह) इस संसार में (मत्स्व) आनन्द करिये ॥८॥

भावार्थः—हे मित्र जनो ! आप लोग हम लोगों से दूर वा समीप स्थान में वर्त्तमान हुए हम लोगों का कल्याण करो और प्रीति का त्याग मत करो और हम लोग भी आप लोगों में ऐसा ही वर्त्ताव करें इस प्रकार परस्पर वर्त्ताव करके इस संसार में सुखी होवें ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अर्वाञ्चं॑ त्वा सुखे रथे वहंतामिन्द्र केशिना॑ ।
घृतस्नू॑ बर्हिरासदे॑ ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य से युक्त ! जो (घृतस्नू) घृत अर्थात् जल को पवित्र करने वाले (केशिना) बहुत केशों से युक्त (अर्वाञ्चम्) नीचे जाने वाले (त्वा)

आप को (सुखे) सुख कराने वाले (रथे) सुन्दर वाहन और (बर्हिः) अन्तरिक्ष में (आसदे) वर्त्तमान होने के लिये (वहताम्) पहुँचावें उन को आप जानिये ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! दो अग्नियों से चलाये हुए वाहनों पर स्थित होकर नीचे ऊपर और तिरछे देश में जाकर आइये ॥९॥

इस सूक्त में विद्वान् मनुष्यों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह इकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ४—७ गायत्री । २ । ३ । ८ । ९ निचृद्गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले बयालीसवें सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् के गुणों को कहते हैं ॥

उप॑ नः सु॒तमा ग॑हि॒ सोम॑मिन्द्र॒ गवा॑शिरम् ।

हरि॑भ्यां॒ यस्ते॑ अस्म॒युः ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त ! आप (हरिभ्याम्) घोड़ों से युक्त रथ से (यः) जो (ते) आप का वाहन (अस्मयुः) अपने को हम लोगों की इच्छा करता हुआ सा वर्त्तमान है घोड़ों से युक्त उस रथ से (नः) हम लोगों के (सुतम्) उत्तम प्रकार सिद्ध [(गवाशिरम्) सेवन करने योग्य] (सोमम्) ओषधिगणों के सदृश ऐश्वर्य्य को (उप, आ, गहि) समीप में सब प्रकार प्राप्त हूजिये ॥१॥

भावार्थः—वे लोग ही सब लोगों के मित्र हैं कि जो लोग अपने ऐश्वर्य्य से सब लोगों को बुला कर सत्कार करते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तमि॑न्द्र॒ मद॒मा ग॑हि बर्हि॒ष्ठां ग्राव॑भिः सु॒तम् ।

कु॒विन्न्व॑स्य तृ॒ष्णवः॑ ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य की इच्छा करने वाले ! जो (अस्य) इस सोम-लता की (तृष्णवः) तृप्ति करने वाले हैं उन से (कुवित्) श्रेष्ठ होकर (तम्) उस पूर्वोक्त को (ग्रावभिः) मेघों से (सुतम्) उत्पन्न (मदम्) आनन्दकारक (बर्हिष्ठाम्) अन्तरिक्ष में वर्त्तमान होने वाले ओषधिगणों के सदृश वर्त्तमान ऐश्वर्य को (नु) शीघ्र (आ, गहि) सब प्रकार प्राप्त हूजिये ॥२॥

भावार्थः--जो सोमलता आदि ओषधियां वृष्टियों से उत्पन्न होतीं रोगविनाशक होने से तृप्तिकारक होतीं और सूक्ष्म अवयवों के द्वारा अन्तरिक्ष को प्राप्त हो के सब स्थानों में फैलती हैं उन का युक्ति से सेवन करके सदा आनन्द का भोग करना चाहिये ॥२॥

अब विद्वानों के सत्कार विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रमित्था गिरो ममाच्छागुरिषिता इतः । आवृते सोमपीतये ॥३॥

पदार्थः-हे मनुष्यो ! जैसे (आवृते) सब ओर से ढांपे हुए स्थान विशेष में (सोमपीतये) सोमलता के रस के पान करने के लिये (मम) मेरी (इषिताः) प्रेरणा की गई (गिरः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियां (इतः) इस से (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य वाले को (अच्छ, अगुः) अच्छे प्रकार प्राप्त हों (इत्था) इस प्रकार से आप लोगों की भी वाणियां इस को प्राप्त हों ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। विद्वान् लोग अन्य जनों के प्रति इस प्रकार से उपदेश देवें कि हम लोग जिन को बुला कर सत्कार करें आप लोग भी उन्हीं का सत्कार करें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे । उक्थेभिः कुविदागमत् ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वज्जन ! हम लोग (स्तोमैः) प्रशंसा के वचन जो (उक्थेभिः) कहने के योग्य उन से (सोमस्य) उत्तम प्रकार निकाले हुए बड़ी ओषधि के रस के (पीतये) पान करने के लिये जिस (इन्द्रम्) अत्यन्त विद्या और ऐश्वर्य्य वाले को (इह) इस संसार में (हवामहे) पुकारें वह हम लोगों के समीप (कुवित्) बहुत वार (आगमत्) आवे ॥४॥

भावार्थः—जो अविद्वान् लोग प्रीति से विद्वान् लोगों को बुलावें तो वे उन के समीप बहुत वार जावें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र सोमाः सुता इमे तान्दधिष्व शतक्रतो ।
जठरे वाजिनीवसो ॥५॥

पदार्थः--हे (वाजिनीवसो) रात्रि को बसाने वाले (शतक्रतो) बहुत कर्मों में कुशल (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के भोक्ता ! जो (इमे) ये (जठरे) प्रसिद्ध हुए इस संसार में (सोमाः) पदार्थ (सुताः) उत्पन्न हुए हैं उन को (दधिष्व) धारण करो ॥५॥

भावार्थः—तभी मनुष्य पूर्ण विद्या और ऐश्वर्य्य वाले होवें कि जब सृष्टि में वर्त्तमान पदार्थों की विद्या को जानें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विद्मा हि त्वा धनञ्जयं वाजेषु दधृषं कवे । अधा ते सुम्नमीमहे ॥६॥

पदार्थः—हे (कवे) विद्वान् पुरुष ! हम लोग (वाजेषु) संग्रामों में (दधृषम्) प्रचण्ड (धनञ्जयम्) धनों के जीतने वाले (त्वा) आप को (विद्म) जानें (अध) इस के अनन्तर (हि) जिससे (ते) आप के समीप से (सुम्नम्) सुख की (ईमहे) याचना करते हैं ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य जिस को सुखों के प्रदानों में योग्य शूरवीर न्यायाधीश जानें उसी से सुखों की पूर्त्ति करनी चाहिये ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इममिन्द्र गवाशिरं यवाशिरञ्च नः पिब ।

आगत्या वृषभिः सुतम् ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के देने वाले ! आप (आगत्य) आय के (नः) हम लोगों के (वृषभिः) वृष्टिकर्त्ता मेघों से (सुतम्) उत्पन्न किये गए (गवाशिरम्) किरणें जिस को पीती हैं उस और (यवाशिरम्) यव अन्न का भोजन किया जाय जिसमें उस (च) और (इमम्) इस पदार्थ को (पिब) पान करो ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस को सूर्य की किरणें और पवनें पीती हैं उसी रस का आप लोग पान करके बलिष्ठ होइये ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये३ सोमं चोदामि पीतये ।

एष रारन्तु ते हृदि ॥८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्ययुक्त जन ! जो (एषः) यह (ते) आप के (हृदि) हृदय में (रारन्तु) अत्यन्त रमै उस (सोमम्) रस को (स्वे) अपने (ओक्ये) गृह में (पीतये) पीने को (तुभ्य) आप के लिये (इत्) ही (चोदामि) प्रेरणा करता हूं ॥८॥

भावार्थः—प्राणी लोग जो खाते और पीते हैं वह सब पदार्थ रुधिर आदि हो और हृदय में फैल कर मस्तक के द्वारा सर्वत्र फैलता है ॥८॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वां सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे । कुशिकासो अवस्यवः ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख के दाता ! (कुशिकासः) विद्या और विनय आदिकों से श्रेष्ठ हुए (अवस्यवः) आप लोगों के आत्माओं की रक्षा की इच्छा करने वाले हम लोग (सुतस्य) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त रस के (पीतये) पान करने के लिये जिस (प्रत्नम्) प्राचीन काल से सिद्ध (त्वाम्) आप को (हवामहे) देवें वह आप हम लोगों को बुलाइये ॥९॥

भावार्थः—नवीन विद्वानों से प्राचीन विद्वान् श्रेष्ठ हैं, ऐसा निश्चय करना चाहिये ॥९॥

इस सूक्त में इन्द्र विद्वान् और सोम के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ४ । ६ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ । ८ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले तेतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय को कहते हैं ॥

आ याह्यर्वाङुप वन्धुरेष्ठास्तवेदनु प्रदिवः सोमपेयम् ।
प्रिया सखाया वि मुचोप बर्हिस्त्वामिमे हव्यवाहो हवन्ते ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वज्जन ! आप (अर्वाङ्) नीचे के स्थल में वर्त्तमान होकर जो (तव) आप के (वन्धुरेष्ठाः) बन्धन में वर्त्तमान रथ है उस से (प्रदिवः) उत्तम प्रकाश वाले (सोमपेयम्) पीने योग्य सोमलता के रस के (उप, आ, याहि) समीप आइये और जो (प्रिया) प्रसन्नता के करने वाले (सखाया) मित्र अध्यापक और उपदेशक हैं उन के समीप प्राप्त हूजिये । जो (बर्हिः) अन्तरिक्ष में (त्वाम्) आप के (अनु) पीछे (इमे) ये हैं उन का (वि, मुच) त्याग कीजिए जिन को (हव्यवाहः) हवन सामग्री धारण करने वाले (उप, हवन्ते) ग्रहण करते हैं उन के साथ (इत्) ही दुःख का त्याग कीजिए ॥१॥

भावार्थः—जो लोग विद्या के प्रकाश को प्राप्त हो विमानादि वाहनों

को निर्माण और उस में अग्नि आदि का प्रयोग कर के अन्तरिक्ष में जाते हैं वे प्रिय आचरण करने वाले मित्रों को प्राप्त होकर दारिद्रय का नाश करते हैं ॥१॥

अब मित्रता के गुण के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ याहि पूर्वीरति चर्षणीराँ अर्य आशिष उप नो हरिभ्याम् ।
इमा हि त्वा मतयः स्तोमतष्टा इन्द्र हवन्ते सख्यं जुषाणाः ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) बहुत ऐश्वर्य्यों के देने वाले ! जो (इमाः) इन वर्त्तमान (स्तोमतष्टाः) विस्तारयुक्त स्तुतियों से विशिष्ट और (सख्यम्) मित्रता का (जुषाणाः) सेवन करती हुई (मतयः) बुद्धियां (त्वा) आप को (आ, हवन्ते) ग्रहण करती हैं उन के साथ (नः) हम लोगों को (आ) सब प्रकार (याहि) प्राप्त हूजिये जिस प्रकार (अर्य्यः) स्वामी (चर्षणीः) मनुष्य आदि प्रजाओं को प्राप्त होकर (आशिषः) आशीर्वादों को प्राप्त होता है वैसे उन (पूर्वीः) प्राचीन काल में उत्पन्न हुई आशिषों को (हि) ही (हरिभ्याम्) वायु और अग्नि से (अति, आ) सब ओर से अत्यन्त प्राप्त हूजिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस बुद्धि से सब लोगों के साथ मित्रता हो उससे युक्त हुए सब के आशीर्वादों को प्राप्त होकर सुख को निरन्तर प्राप्त होइये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ नो यज्ञं नमोवृधं सजोषा इन्द्र देव हरिभिर्याहि तूयम् ।
अहं हि त्वा मतिभिर्जोहवीमि घृतप्रयाः सधमादे मधूनाम् ॥३॥

पदार्थः - हे (देव) विद्वन् ! (इन्द्र) ऐश्वर्य से युक्त करने वाले (घृतप्रयाः) घृत से प्रसन्न होने वाला (अहम्) मैं (मतिभिः) बुद्धियों से (मधूनाम्) और मधुर आदि गुणों से युक्त पदार्थों के (सधमादे) तुल्य स्थान में (हि) जिस से कि (त्वा) आप की (जोहवीमि) प्रशंसा करता वा बुलाता हूं इस से (सजोषाः) तुल्य प्रीति के सेवने वाले आप (हरिभिः) घोड़ों के सदृश अग्नि आदिकों से (नः) हम लोगों के (नमोवृधम्) अन्न आदि ऐश्वर्य्य के बढ़ाने वाले (यज्ञम्) प्रयत्न से सिद्ध होने योग्य संगत व्यवहार के प्रति (तूयम्) शीघ्र (आ) सब प्रकार (याहि) प्राप्त हूजिये ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को उन लोगों की ही प्रशंसा करनी चाहिये कि जो सब के सुखों की वृद्धि करें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ च त्वामेता वृषणा वहातो हरी सखाया सुधुरा स्वङ्गा ।
धानावदिन्द्रः सवनं जुषाणः सखा सख्युः शृणवद्वन्दनानि ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष ! जैसे (धानावत्) पकाये हुए यवों से युक्त (सवनम्) ऐश्वर्य्य का (जुषाणः) सेवन करता हुआ (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य का देने वाला (सखा) मित्र पुरुष (सख्युः) मित्र के अभिवादन आदि वा स्तुतियों को (शृणवत्) सुने और (स्वङ्गा) सुन्दर अङ्गों से विशिष्ट (सखाया) मित्रों के तुल्य वर्त्तमान तथा (सुधुरा) उत्तम धुरों से युक्त (वृषणा) वृष्टि करने वाले वायु और बिजुली (त्वाम्) आप को (एता) प्राप्त हुए (हरी) ले चलने वाले घोड़ों के सदृश सब को (आ, वहातः) प्राप्त होते हैं वैसे आप सब लोगों के वचनों को सुनिये और प्रिय कार्य्यों को सिद्ध कीजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे लोग ही मित्र होने योग्य हैं कि जो बड़े दुःख को प्राप्त होकर भी मित्रों का त्याग नहीं करते और जैसे दो वा बहुत घोड़े इकट्ठे होकर यथेष्ट स्थानों में पहुंचाते हैं वैसे अपने आत्मा के सदृश प्रिय जन इच्छा की सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कुविन्मा गोपां करसे जनस्य कुविद्राजानं मघवन्नृजीपिन् ।
कुविन्म ऋषिं पपिवांसं सुतस्य कुविन्मे वस्वो अमृतस्य शिक्षाः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वज्जन ! जो आप (जनस्य) सब लोगों के (कुवित्) श्रेष्ठ (गोपाम्) धार्मिक पुरुषों के रक्षा करने वाले (मा) मुझ को (करसे) करें । हे (मघवन्) परम प्रशंसनीय धनयुक्त (ऋजीपिन्) कोमलपन को चाहने वाले ! जो आप जनसमूह का (राजानम्) राजा करें वह (सुतस्य) उत्पन्न किये हुए सोम के रस को (पपिवांसम्) पीते हुए (कुवित्) श्रेष्ठ (ऋषिम्) सम्पूर्ण वेदों के अर्थ के जानने वाले होने को (मा) मुझ को (शिक्षाः) शिक्षा दीजिये और आप (कुवित्) श्रेष्ठ (अमृतस्य) नाश से रहित (मे) मेरे (वस्वः) धन को करें उन आप की हम लोग सेवा करें ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो लोग आप लोगों को विद्या विनय और उत्तम शिक्षादान से बड़े राजा करते और वेद के अर्थों को समझा के मोक्ष सिद्ध करते हैं उन को आप अपने आत्मा के सदृश प्रसन्न करें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ त्वा बृहन्तो हरयो युजाना अर्वागिन्द्र सधमादो वहन्तु ।
प्र ये द्विता दिव ऋञ्जन्त्याताः सुसंमृष्टासो वृषभस्य मूराः ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त सेवा करने योग्य विद्वान् ! (ये) जो (बृहन्तः) बड़े (युजानाः) समाधान देते हुए (सधमादः) समान स्थान वाले (हरयः) उत्तम प्रकार शिक्षित घोड़ों के सदृश अग्नि आदि पदार्थ (त्वा) आप को (आ) सब प्रकार (वहन्तु) एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचावें और वे तथा (द्विता) दो दो पदार्थों का होना जैसे वैसे विद्वान् (दिवः) विद्याओं से प्रकाशमानों को (ऋञ्जन्ति) सिद्ध करते हैं (सुसंमृष्टासः) वा श्रेष्ठ रीति से उत्तम प्रकार शुद्ध किये हुए (आताः) व्याप्त हुई दिशाओं के सदृश (वृषभस्य) बलवान् पदार्थ के वेग को (प्र, वहन्तु) प्राप्त हों उन से जो (मूराः) मूढ़ होवें उन पुरुषों को (अर्वाक्) नीचे के स्थल में आप पहुंचाइये ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्वान् लोग घोड़ों के सदृश अभीष्ट स्थान में मूढ़ों को पहुँचाते हैं वे सम्पूर्ण समृद्धि सिद्ध कर सकते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र पिब वृषधूतस्य वृष्ण आ यं ते श्येन उशते जभार ।
यस्य मदे च्यावयसि प्र कृष्टीर्यस्य मदे अप गोत्रा ववर्थ ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विशेष ऐश्वर्य्य के देने वाले ! आप (वृषधूतस्य) बलिष्ठ पदार्थों के कंपाने वाले (वृष्णः) बलिष्ठ पदार्थों के रस का (पिब) पान करो (श्येनः) बाज पक्षी के सदृश (यम्) जिस को (उशते) कामना करने वाले (ते) आप के लिये जिस को (आ, जभार) धारण करता है (यस्य) जिस के (मदे) आनन्द में आप (कृष्टीः) मनुष्यों को (प्र, च्यावयसि) प्राप्त कराते हैं और (यस्य) जिस के (मदे) आनन्द के निमित्त (गोत्रा) पृथिवी (अप, ववर्थ) वर्त्तमान है उस की अपने तुल्य सेवा करो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो श्येन पक्षी के सदृश शीघ्र चलने और सब के सुख की कामना करने वाले पुरुष मनुष्यों को सुख देते हैं उन लोगों के समीप वर्त्तमान होकर विद्यासम्बन्धी व्यवहार के आनन्द को प्राप्त होओ ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) ज्ञान और अज्ञान के विभाग और (भरे) विद्वान् और अविद्वान् के संग्राम में (ऊतये) विद्या आदि उत्तम गुणों में प्रवेश होने के लिये (समत्सु) धार्मिक और अधार्मिकों के विरोधनामक युद्धों में (घ्नन्तम्) विरोध को नाश करते हुए (धनानाम्) ऐश्वर्य्यों के (सञ्जितम्) जीतने का स्वभाव रखने वाले (वृत्राणि) धनों की (शृण्वन्तम्) उत्तम प्रकार परीक्षा करते हुए (उग्रम्) उत्तम स्वभावयुक्त (मघवानम्) सम्पूर्ण विद्याओं के उत्पन्न करने (नृतमम्) अतिशय कर के विद्या के प्राप्त कराने और (इन्द्रम्) अविद्या आदि क्लेशों के नाश करने वाले को प्राप्त होकर (शुनम्) महौषधियों के सेवन से उत्पन्न हुए सुख को (हुवेम) ग्रहण करें वैसे इस को प्राप्त होकर आनन्द को प्राप्त हूजिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के शरण को पहुँच कर अविद्या और दारिद्र्य का नाश तथा विद्या और लक्ष्मी को उत्पन्न कर निरन्तर आनन्द बढ़ावें ॥८॥

इस सूक्त में विद्वान् सखि और सोमपानादिकों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ निचृद्बृहती । ३ । ५ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ४ स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले चवालीसवें सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र में सूर्य्य के विषय को कहते हैं ॥

अयं ते अस्तु हर्य्यतः सोम आ हरिभिः सुतः ।
जुषाण इन्द्र हरिभिर्न आ गह्या तिष्ठ हरितं रथम् ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले ! (हर्यतः) कामना करते हुए (ते) आप के (हरिभिः) घोड़ों के सदृश साधनों से जो (अयम्) यह (सोमः) ऐश्वर्यों का समूह (सुतः) प्राप्त हुआ (अस्तु) हो उस का (जुषाणः) सेवन करता हुआ

(हरिभिः) ले चलने वाले घोड़ों से (हरितम्) अग्नि आदिकों से चलाये गये (रथम्) मनोहर यान पर (आ, तिष्ठ) स्थिर हूजिये इस से (नः) हम लोगों को (आ, गहि) प्राप्त हूजिये ॥१॥

भावार्थः---इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वे ही लोग दयालु हैं कि जो अन्य जनों के ऐश्वर्य्य की वृद्धि की इच्छा करें और ऐश्वर्य वालों को आते हुए देख के प्रसन्न होवें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

हर्य्यन्नुषसमर्चयः सूर्य्यं हर्य्यन्नरोचयः।
विद्वाँश्चिकित्वान्हर्यश्व वर्द्धसइन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥२॥

पदार्थः—हे (हर्यन्) कामना करने वाले! (उषसम्) प्रातःकाल को सूर्य के सदृश सत्पुरुषों का आप (अर्चयः) सत्कार करिये और हे (हर्य्यन्) अनेक पदार्थों को प्राप्त होने वा प्राप्त कराने वाले! (सूर्यम्) सूर्य को विजुली जैसे वैसे न्याय का (अरोचयः) प्रकाश करो और हे (हर्यश्व) कामना करते हुए! शीघ्र चलने वाले अश्व वा अग्नि आदि पदार्थों से युक्त (इन्द्र) धन की इच्छा करने वाले जिस से (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (विद्वान्) विद्वान् होते हुए (विश्वाः) सम्पूर्ण (अभि) सन्मुख वर्त्तमान (श्रियः) सुन्दर सम्पत्तियों को प्राप्त होने की इच्छा करते हो इस से (वर्धसे) वृद्धि को प्राप्त होते हो ॥२॥

भावार्थः -- इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य प्रातःकाल के सदृश विद्याओं के प्रकाश में तत्पर और सूर्य्य के सदृश धर्माचरण की कामना करते हुए प्रयत्न से ऐश्वर्य्य की इच्छा करें वे सब प्रकार लक्ष्मीयुक्त होकर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

द्यामिन्द्रो हरिधायसं पृथिवीं हरिवर्पसम्।
अधारयद्धरितोर्भूरि भोजनं ययोरन्तर्हरिश्चरत् ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष! जैसे (इन्द्रः) विजुली वा सूर्य (हरिधायसम्) किरणों को धारण करने वा (द्याम्) प्रकाश लोक और (हरिवर्पसम्) जिस के रूप का प्रकाश करने वाली किरणें विद्यमान उस (पृथिवीम्) पृथिवी को (अधारयत्) धारण करता है और जैसे (हरिः) हरने वाला वायु (ययोः) जिन (हरितोः) हरने वाले गुणों के (अन्तः) मध्य में वर्त्तमान हुआ (भूरि) बहुत (भोजनम्) पालन वा भक्षण का (चरत्) आचरण करता है वैसे आप हूजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग सूर्य के सदृश नियमपूर्वक धर्मयुक्त कर्मों को सिद्ध करते और वायु के सदृश निरन्तर प्रयत्न करते हैं वे बहुत ऐश्वर्य को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं ॥३॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

जज्ञानो हरितो वृषा विश्वमा भाति रोचनम् ।
हर्यश्वो हरितं धत्त आयुधमा वज्रं बाह्वोर्हरिम् ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जो (जज्ञानः) उत्पन्न होता हुआ (हरितः) हरित आदि वर्णों से युक्त (हर्यश्वः) कामना करते हुए शीघ्र चलने वाले गुण हैं जिस बिजुली रूप के वह (वृषा) वृष्टिकारक (हरितम्) कामना करने योग्य (रोचनम्) और सब ओर से जिस में प्रीति करते हैं ऐसे (विश्वम्) सम्पूर्ण लोक को (बाह्वोः) भुजाओं के (हरिम्) हरने वाले (वज्रम्) शस्त्रों के सदृश किरणों के समूह को (प्र, आ, धत्ते) धारण करता और (आ, भाति) प्रकाशित होता है उस को जान कर उपयोग करो ॥४॥

भावार्थः—विद्वान् लोग जैसे प्रसिद्ध सूर्य्य सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित कर के आप प्रकाशित होता है वैसे ही सद्विद्या के उपदेश से धर्म का प्रकाश करावें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रो हर्यन्तमर्जुनं वज्रं शुक्रैरभीवृतम् ।
अपावृणोद्धरिभिरद्रिभिः सुतमुद्गा हरिभिराजत ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य (शुक्रैः) शीघ्रता करने वाले गुणों से (अभीवृतम्) सब ओर से युक्त (अर्जुनम्) रूप और (वज्रम्) किरणों के समूह की (हर्यन्तम्) कामना करते हुए (हरिभिः) हरने वाली किरणों और (अद्रिभिः) मेघों से (सुतम्) सिद्ध हुए पदार्थ को (अप, अवृणोत्) दूर करता है वैसे (हरिभिः) मनुष्यों के साथ राजा (गाः) पृथिवियों के तुल्य और पदार्थों को (उत्, आजत) फेंकता है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग सूर्य्य के सदृश विद्या नम्रता सेना और धन आदि का प्रकाश और अविद्या आदि की निवृत्ति कर जिसका उत्तम सहाय उस राजा के साथ सलाह करके राज्य का पालन करते हैं वे पूर्ण मनोरथ वाले होते हैं ॥५॥

इस सूक्त में सूर्य्य विजुली वायु और विद्वान् के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। १। २ निचृद्बृहती। ३। ५ बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। ४ स्वराडनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब पांच ऋचा वाले पैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं॥

आ मन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः।
मा त्वा केचिन्नि यमन्विं न पाशिनोऽति धन्वेव ताँ इहि॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त! आप (मयूररोमभिः) मयूरों के रोमों के सदृश रोम हैं जिन के उन (मन्द्रैः) आनन्द को देने वाले (हरिभिः) प्रयत्नवान् मनुष्यों के सदृश घोड़ों वा किरणों से (आ, याहि) आओ जिस से (के, चित्) कोई लोग (त्वा) आप को (पाशिनः) बन्धन के लिये प्रवृत्त हुए (विम्) पक्षी को (न) तुल्य (मा) नहीं (नि) अत्यन्त (यमन्) निग्रह क्लेश देवें किन्तु (धन्वेव) शस्त्र विशेष धनुष् के तुल्य (तान्) उन को (अति, इहि) अतिक्रमण कर प्राप्त हूजिये॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। राज पुरुषों को चाहिये कि ऐसी सेना ऐसे रथ आदि कि जिन से युद्धादि व्यवहारसिद्धि के लिये जाने को अति चतुराई के साथ संग्राम करके विजय पावें और जिस से और जन उन को ग्रहण न करें ऐसा उपाय करें॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

वृत्रखादो वलंरुजः पुरां दर्मो अपामजः।
स्थाता रथस्य हर्य्योरभिस्वर इन्द्रो दृढा चिदारुजः॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (वृत्रखादः) मेघों को भक्षण करने वाला किरण वा वायु (वलंरुजः) मेघ को नाश करने और (अपाम्) जलों को (अजः) प्रेरणा करने तथा (आरुजः) चारों ओर से तोड़ने वाला (इन्द्रः) सूर्य्य (दृढा) दृढ़ भंग करता है वैसे हम लोग (चित्) भी (पुराम्) शत्रुओं के नगरों के मध्य में वर्त्तमान

वीरों को (दर्मः) नाश करें और जैसे (हर्योः) दो घोड़ों के (अभिस्वरे) चारों ओर शब्द करने वाले में वर्त्तमान (रथस्थ) रथ के मध्य में (स्थाता) वर्त्तमान होने वाला पुरुष वीर पुरुषों को जीतता है वैसे ही हम लोग भी जीतें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे विजुली सूर्य और पवन मेघों के अवयवों को काटते हैं वैसे ही धार्मिक राजा आदि लोग शत्रुओं को काटें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गम्भीराँ उदधीँरिव क्रतुं पुष्यसि गा इव ।
प्र सुगोपा यवसं धेनवो यथा ह्रदं कुल्या इवाशत ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुष ! जिस से आप (गम्भीरान्) अथाह (उदधीनिव) जल जिन में रहें उन समुद्रों के सदृश और (गाइव) पृथिवियों के सदृश (क्रतुम्) वृद्धि को (पुष्यसि) पूर्ण करते हो (सुगोपाः) उत्तम प्रकार रक्षा करने वाले होकर (यथा) जैसे (धेनवः) गौयें (यवसम्) धान्य तृण आदि (ह्रदम्) और जल के स्थान को (कुल्या इव) वाटिका आदि में जल चलाने के मार्गों के तुल्य जो (प्र, आशत) प्राप्त हों इससे और वैसे आप और ये लोग सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिन लोगों की समुद्र के सदृश अचल गम्भीर वुद्धि पृथिवी के सदृश क्षमा और पालने का सामर्थ्य, गौ के सदृश दान और नदी के सदृश वृद्धि है वे ही सम्पूर्ण सुखों से युक्त होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ नस्तुजं रयिं भरांशं न प्रतिजानते ।
वृक्षं पक्वं फलमङ्कीव धूनुहीन्द्र संपारणं वसु ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) धन के दाता ! आप (अंशम्) भाग के (न) तुल्य (नः) हम लोगों के लिये (प्रतिजानते) प्रतिज्ञा से व्यवहार के सिद्ध करने वाले के लिये और (तुजम्) ग्रहण करने के योग्य (रयिम्) धन को (आ) सब ओर से (भर) दीजिये (वृक्षम्) वृक्ष को और (पक्वम्) पाकयुक्त (फलम्) फल को (अङ्कीव) अंकुश धारण किये हुए के सदृश (सम्पारणम्) उत्तम प्रकार दुःख के पार जाता है जिससे ऐसे (वसु) धन को (धूनुहि) कंपाइये अर्थात् भेजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। वे ही धार्मिक पुरुष हैं जो अन्य लोगों के सुख के लिये लक्ष्मी धारण करके औरों के दुःख नाश करने वाले होवें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्वयुरिन्द्र स्वराळसि स्मद्दिष्टिः स्वयशस्तरः।
स वावृधान ओजसा पुरुष्टुत भवा नः सुश्रवस्तमः ॥५॥

पदार्थः—हे (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसित (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य वाले ! जो आप (स्वयुः) धन को प्राप्त (स्वराट्) स्वतन्त्र राज्यकर्त्ता (स्मद्दिष्टिः) कल्याण कर्म का उपदेश देने वाले और (स्वयशस्तरः) अपने यश धन और प्रशंसा से गम्भीर (असि) हैं (सः) वह (ओजसा) पराक्रम से (वावृधानः) वृद्धि को प्राप्त (सुश्रवस्तमः) श्रेष्ठ धन से युक्त बातचीत के अत्यन्त सुनने वाले (नः) हम लोगों के लिये (भव) होइये ॥५॥

भावार्थः—वही चक्रवर्त्ती राजा होने के योग्य होता है कि जो अत्यन्त प्रशंसायुक्त गुण कर्म और स्वभाव वाला है और वही राजा सबका वृद्धिकारक होता है ॥५॥

इस सूक्त में सूर्य विद्वान् और राजा के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ विराट् त्रिष्टुप्। २। ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३। ४ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले छियालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में राजा कैसा हो इस विषय को कहते हैं ॥

युध्मस्य ते वृषभस्य स्वराज उग्रस्य यूनः स्थविरस्य घृष्वेः।
अजूर्यतो वज्रिणो वीर्याणीन्द्र श्रुतस्य महतो महानि ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के दाता ! जिस (युध्मस्य) युद्ध करने और (स्वराजः) अपने से प्रकाशित (वृषभस्य) बल वाले (उग्रस्य) तेजस्वी स्वभाव और (यूनः) यौवन अवस्था को प्राप्त पुरुष तथा (स्थविरस्य) वृद्धावस्थायुक्त पुरुष के और (घृष्वेः) शत्रुओं को घसीटने वाले (अजूर्य्यतः) शरीर की शिथिलता से रहित

और (वज्रिणः) बहुत प्रकार के शस्त्रों से युक्त (महतः) सेवा करने योग्य (श्रुतस्य) प्रसिद्ध (ते) आप के जो (महानि) श्रेष्ठ (वीर्य्याणि) वीर पुरुषों के कर्म हैं उन से युक्त आप हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हैं ॥१॥

भावार्थः—जो सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त युवा वा वृद्ध भी राजा हो, वैसे ही अपने प्रयत्न से अपने सामर्थ्य का बढ़ाने वाला होवे ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥२॥

पदार्थः—हे (महिष) अत्यन्त आदर करने योग्य ! (उग्र) बल आदिकों से युक्त और (राजन्) प्रकाशित जिससे आप (वृष्ण्येभिः) बलवान् पुरुषों में उत्पन्न गुणों के साथ (महान्) श्रेष्ठ गुणों से युक्त और (धनस्पृत्) धन के सेवक (एकः) सहाय रहित (अन्यान्) शत्रुओं को (सहमानः) सहते हुए (विश्वस्य) सम्पूर्ण (भुवनस्य) प्राणियों के निवास के स्थान के श्रेष्ठ गुणों से युक्त (राजा) (असि) हैं (सः) वह आप (जनान्) प्रसिद्ध वीरों को (योधय) लड़ाइये शत्रुओं को (क्षयय) पराजय को पहुँचाइये (च) और सज्जनों को अपने देश में बसाइये ॥२॥

भावार्थः—जो लोग शरीर और आत्मा का पूर्ण बल करके शत्रुओं को निवारण करते और सज्जनों का सत्कार करके आनन्द देते हैं वे श्रेष्ठ होते हैं ॥२॥

अब बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र मात्राभी रिरिचे रोचमानः प्र देवेभिर्विश्वतो अप्रतीतः ।
प्र मज्मना दिव इन्द्रः पृथिव्याः प्रोरोर्महो अन्तरिक्षादृजीषी ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (रोचमानः) प्रीति करता हुआ (विश्वतः) सर्वत्र (अप्रतीतः) प्रसिद्धि को नहीं प्राप्त (ऋजीषी) सीधे स्वभाव वाला (इन्द्रः) और पराक्रम से युक्त सूर्य्य के सदृश तेजस्वी बिजुलीरूप अग्नि (मात्राभिः) शब्द आदि वा सूक्ष्म व्यवहारों के अवयवों से (प्र, रिरिचे) अधिक होता है और (देवेभिः) विद्वानों के साथ (प्र) वृद्धि को प्राप्त होता है (मज्मना) बल से (दिवः) प्रकाश से (पृथिव्याः) भूमि (उरोः) अनेक प्रकार गुणों के समूह से युक्त (महः) बड़े (अन्तरिक्षात्) आकाश से (प्र) अधिक होता है वैसा आचरण करते हुए आप लोग प्रतिष्ठा को (प्र) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे

विकार को नहीं प्राप्त हुई विजुली गन्धक आदिकों में वर्त्तमान हुई भी कुछ हानि नहीं करती वैसे ही सब लोगों के साथ मित्रता करके विरोध का त्याग करो ॥३॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उरुं गभीरं जनुषाभ्यु१ग्रं विश्वव्यचसमवतं मतीनाम् ।
इन्द्रं सोमासः प्रदिवि सुतासः समुद्रं न स्रवत आ विशन्ति ॥४॥

पदार्थः—जो लोग (प्रदिवि) उत्तम प्रकाश में (सुतासः) विद्या और विनय से प्रसिद्ध (सोमासः) ऐश्वर्य्य वाले विद्वान् लोग (जनुषा) जन्म से (उरुम्) अनेक प्रकार के गुणों से युक्त (गभीरम्) गूढ़ अभिप्राय वाले (उग्रम्) सब के साथ मिले हुए (विश्वव्यचसम्) सर्वत्र व्यापक (मतीनाम्) मनुष्यों के (अवतम्) रक्षा करने वाले (इन्द्रम्) विजुली रूप अग्नि को (स्रवतः) बहती हुई नदियां (समुद्रम्) समुद्र को (न) जैसे (अभि, आ, विशन्ति) सब ओर से प्रविष्ट होती हैं वैसे जो सब ओर से प्रवेश करते अर्थात् उस में चित्त देते हैं वे उस ऐश्वर्य वाले होते हैं जो ऐश्वर्य कभी नष्ट नहीं होता है ॥४॥

भावार्थः—जो लोग विजुली सम्बन्धी विद्या को जान कर उसके द्वारा उपकार ग्रहण कर सकते हैं वे अनेक प्रकार की लक्ष्मियों को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यं सोममिन्द्र पृथिवीद्यावा गर्भं न माता विभृतस्त्वाया ।
तं ते हिन्वन्ति तमु ते मृजन्त्यध्वर्यवो वृषभ पातवा उ ॥५॥

पदार्थः—हे (वृषभ) बलिष्ठ (इन्द्र) ऐश्वर्य से युक्त करने वाले ! जो (त्वाया) आप को प्राप्त हुई (पृथिवीद्यावा) भूमि और विजुली (माता) माता (गर्भम्) गर्भ को (न) जैसे वैसे (यम्) जिस (सोमम्) ऐश्वर्य को (बिभृतः) धारण करते हैं (तम्) उसको (ते) तुम्हारे लिये जो (हिन्वन्ति) वृद्धि करते हैं (तम्, उ) उसी को (ते) आप के लिये जो (अध्वर्यवः) अपनी हिंसा नहीं चाहते हुए बढ़ाते हैं वा तुम्हारे लिये उसी को जो लोग (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं उन की (उ) ही (पातवै) रक्षा के लिये आप उद्युक्त होइये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो विद्वान् लोग पृथिवी और सूर्य के सदृश सब को विद्या और बल से बढ़ाते और उत्तम शिक्षा से

पवित्र करते वे माता के सदृश पालन करने वाले हैं ऐसा जान कर वे सब लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥५॥

इस सूक्त में राजा बिजुली और पृथिवी आदिकों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छियालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १—३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले सैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, इस के प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं ॥

मरुत्वाँ इन्द्र वृषभो रणाय पिबा सोममनुष्वधं मदाय ।
आ सिञ्चस्व जठरे मध्व ऊर्मिं त्वं राजासि प्रदिवः सुतानाम् ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त (मरुत्वान्) श्रेष्ठ मनुष्यों से युक्त (वृषभः) बलवान् ! आप (रणाय) संग्राम के और (मदाय) आनन्द के लिये (अनुष्वधम्) अनुकूल स्वधा अन्न वर्त्तमान जिस में ऐसे (सोमम्) श्रेष्ठ ओषधी के रस का (पिब) पान करो और (जठरे) पेट में (मध्वः) मधुर की ((ऊर्मिम्) लहर को (आ, सिञ्चस्व) सेचन करो जिससे (त्वम्) आप (प्रदिवः) अत्यन्त विद्या और विनय से प्रकाशित के (सुतानाम्) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य आदिकों के (राजा) प्रकाशकर्त्ता (असि) हैं इससे ऐसा आचरण करो ॥१॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप जो विजय आरोग्य बल और अधिक अवस्था की इच्छा करें तो ब्रह्मचर्य धनुर्वेदविद्या जितेन्द्रियत्व और नियमित आहार विहार को करिये ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सजोषा इन्द्र सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ।
जहि शत्रूँरप मृधो नुदस्वाथाभयं कृणुहि विश्वतो नः ॥२॥

पदार्थः—हे (शूर) शत्रुओं के नाशकर्त्ता (इन्द्र) ऐश्वर्य से युक्त करने वाले! (मरुद्भिः) पवनों के सदृश वीर पुरुषों के और (सगणः) गणों के सहित वर्त्तमान (वृत्रहा) मेघ का नाशकर्त्ता सूर्य्य जैसे वैसे (सजोषाः) तुल्य प्रीति का सेवन करने वाला गणों के सहित वर्त्तमान होकर और पवनों के सदृश वीर पुरुषों के सहित

(विद्वान्) सकल विद्याओं का जानने वाला पुरुष (सोमम्) सोमलता के रस को (पिब) पीजिये और (शत्रून्) शत्रुओं को (अप, जहि) देश से बाहर करके नष्ट करिये (मृधः) संग्रामों की (नुदस्व) प्रेरणा अर्थात् प्रवृत्ति का उत्साह दीजिये (अथ) उस के अनन्तर (विश्वतः) सब ओर से (नः) हम लोगों को (अभयम्) भयरहित (कृणुहि) कीजिये ॥२॥

भावार्थः—जो राजा आदि मनुष्य परस्पर मित्र होकर नियमित भोजन विहार ब्रह्मचर्य्य जितेन्द्रिय होने आदि से पूर्ण शरीर आत्मा के बल वाले हो शत्रुओं को नाश कर और संग्रामों को जीत कर प्रजाओं में सब प्रकार भयरहित करते हैं वे ही सर्वत्र भयरहित सुख को प्राप्त होते हैं ॥२॥

अब सूर्य्य के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत ऋतुभिर्ऋतुपाः पाहि सोममिन्द्र देवेभिः सखिभिः सुतं नः ।
याँ आभजो मरुतो ये त्वान्वहन्वृत्रमदधुस्तुभ्यमोजः ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुःख के नाशकर्त्ता पुरुष ! आप (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं के साथ (ऋतुपाः) ऋतुओं की रक्षा करने वाले सूर्य के सदृश (देवेभिः) विद्वान् (सखिभिः) मित्रों के साथ (सुतम्) उत्पन्न (सोमम्) संसार की (पाहि) रक्षा करो और (यान्) जिन (मरुतः) मरणधर्म वाले मनुष्य (नः) हम लोगों का आप (आ) सब प्रकार (अभजः) सेवन करें (ये) जो लोग (तुभ्यम्) आप के लिये (ओजः) पराक्रम और (वृत्रम्) सब सुखों के कर्त्ता धन को (त्वा) और आप को (अनु, अदधुः) अनुकूलता से धारण करें उनकी आप रक्षा कीजिये (उत) और भी जैसे सूर्य मेघ का (अहन्) नाश करता है वैसे शत्रुओं का नाश करिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य वसन्त आदि ऋतुओं से सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करता, जलादि रसों का आकर्षण और पुनः वृष्टि करके पालन करता है वैसे ही विद्वान् मित्रों के साथ विचार करके विजय और पुरुषार्थ से सब की रक्षा कीजिये ॥३॥

फिर राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये त्वाहिहत्ये मघवन्नवर्धन्ये शाम्बरे हरिवो ये गविष्टौ ।
ये त्वा नूनमनुमदन्ति विप्राः पिबेन्द्र सोमं सगणो मरुद्भिः ॥४॥

पदार्थः—हे (हरिवः) उत्तम घोड़ों से युक्त (मघवन्) श्रेष्ठ बहुत धनों वाले

(इन्द्र) ऐश्वर्य के कर्त्ता ! (ये) जो (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (त्वा) आप को (मरुद्भिः) पवनों के सदृश अपने मित्रों के साथ सूर्य (अहिहत्ये) मेघ का नाश हो जिस में ऐसे (शाम्बरे) मेघसम्बन्धी संग्राम में जैसे वैसे (अवर्धन्) वृद्धि करें और(ये) जो (गविष्टौ) किरणों के समूह में आप की वृद्धि करें (ये) जो युद्ध में (नूनम्) निश्चित (अनु, मदन्ति) अनुकूलता से आनन्द देते और (ये) जो सब लोगों की रक्षा करते और आनन्द देते हैं उन पवनों के सदृश मित्रों के और (सगणः) वीर पुरुषों के सहित (सोमम्) ओषधियों से उत्पन्न हुए घृत दुग्ध आदि रसों का (पिब) पान कीजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे नहीं बढ़े हुए मेघ को सूर्य बढ़ाय के और बढ़े हुए का नाश करता है वैसे ही धार्मिक राजा आदि पुरुष धार्मिक शान्त पुरुषों की रक्षा और दुष्ट पुरुषों का नाश कर स्वयं प्रसन्न होकर प्रजाओं को प्रसन्न करें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (इह) इस राज्यव्यवहार में (नूतनाय) नवीन (अवसे) रक्षण आदि के लिये जिस (मरुत्वन्तम्) प्रशंसा करने योग्य मनुष्य हों जिस के उस और (वृषभम्) बल वाले और (वावृधानम्) बढ़ने वा बढ़ाने वाले (अकवारिम्) शत्रुओं से रहित (दिव्यम्) शुद्ध गुण कर्म और स्वभाव से युक्त (विश्वासाहम्) सब को सहने और (उग्रम्) दुष्टों के नाश करने (सहोदाम्) बल के देने और (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले (शासम्) शासन करने वाले की प्रशंसा करो (तम्) उस की हम लोग (हुवेम) प्रशंसा करें ॥५॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि उसी को अपना राजा करें कि जिसमें सम्पूर्ण राजा के धर्म अङ्ग और उपाङ्ग सहित वर्त्तमान हैं ॥५॥

इस सूक्त में राजा और सूर्य्य के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह संतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ । ४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले अड़तालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं ॥

सद्यो ह जातो वृषभः कनीनः प्रभर्तुमावदन्धसः सुतस्य ।
साधोः पिब प्रतिकामं यथा ते रसाशिरः प्रथमं सोम्यस्य ॥१॥

पदार्थः—हे राजन् ! (यथा) जैसे (सद्यः) शीघ्र (जातः) उत्पन्न हुआ (वृषभः) वृष्टि करने वाला (कनीनः) प्रकाशवान् (रसाशिरः) रसों का भोजन करने वाला सूर्य्य (अन्धसः) अन्न के (सुतस्य) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त (सोम्यस्य) ऐश्वर्य में उत्पन्न का (प्रथमम्) प्रथम (आवत्) रक्षा करे उस प्रकार के आप (प्रतिकामम्) कामना कामना के प्रति ओषधियों के रस का (पिब) पान करो और इस प्रकार के (साधोः) उत्तम मार्गों में वर्त्तमान (ते) आप का (ह) निश्चय से प्रजाओं को (प्रभर्त्तुम्) प्रकर्षता से धारण करने को सामर्थ्य होवे ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य आदि पदार्थ अपने प्रतापों और ईश्वर के नियोग से सब पदार्थों की रक्षा करके दोषों का नाश करते हैं वैसे ही साधु पुरुषों की रक्षा करके दुष्ट पुरुषों का नाश करें ॥१॥

अब सन्तान की उत्पत्ति के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यज्जायथास्तदहरस्य कामेंऽशोः पीयूषमपिबो गिरिष्ठाम् ।
तं ते माता परि योषा जनित्री महः पितुर्दम आसिञ्चदग्रे ॥२॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप (यत्) जिस (अहः) दिन (जायथाः) उत्पन्न हुए (तत्) उस दिन की (कामे) कामना में (अस्य) इस (अंशोः) प्राप्त हुए भाग के (गिरिष्ठाम्) मेघ में विद्यमान (पीयूषम्) अमृतरूप रस को (ते) आप के पिता (अपिबः) पान करें (तम्) उस को आप के (पितुः) पालक और उत्पादक पिता की (योषा) स्त्री आप की (जनित्री) उत्पन्न करने वाली (माता) माता (अग्रे) पहिले (दमे) घर में (महः) बड़े को (परि, आ, असिञ्चत्) चारों ओर से सींचता है ॥२॥

भावार्थः—जब स्त्री और पुरुष गर्भ को धारण करें तब दुष्ट अन्न पान आदि का सेवन त्याग श्रेष्ठ अन्न पान गर्भधारण और सन्तान उत्पन्न करके फिर उस का भी इसी प्रकार पालन और वृद्धि करे जो कि राजा होने को योग्य हो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उपस्थाय मातरमन्नमैट्ट तिग्ममपश्यदभि सोममूधः ।
प्रयावयन्नचरद्गृत्सो अन्यान्महानि चक्रे पुरुधप्रतीकः ॥३॥

पदार्थः—जो (गृत्सः) बुद्धिमान् (पुरुधप्रतीकः) बहुतों को धारण करने वालों के प्रति प्राप्त होने वाला सूर्य (ऊधः) प्रातःकाल की रात्रि को जैसे वैसे (मातरम्) पुत्र की माता को (उपस्थाय) समीप प्राप्त होकर (अन्नम्) खाने योग्य पदार्थ की (ऐट्ट) प्रशंसा करे और (प्रयावयन्) संयोग वा विभाग करता हुआ (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (अभि) चारों ओर से (अपश्यत्) देखे और (अन्यान्) औरों को (अचरत्) आचरण करे (महानि) बड़े सन्तानों को (चक्रे) उत्पन्न करे वही राजा होने योग्य है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य प्रातः-काल की रात्रि को प्राप्त होकर दिन को उत्पन्न करता है वैसे ही सन्तान की माता को सन्तान का पिता प्राप्त होकर गर्भस्थिति करे और वैसे ही संस्कारों को माता और पिता करें कि जैसे सन्तान उत्तम गुण कर्म लक्षण स्वभावों से युक्त राजकर्मों को करने योग्य होवें ॥३॥

अब प्रजा के पालन का विषय अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उग्रस्तुराषाळभिभूत्योजा यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
त्वष्टारमिन्द्रो जनुषाभिभूयामुष्या सोममपिबच्चमूषु ॥४॥

पदार्थः—जो (एषः) यह (चमूषु) भक्षण करने वाली सेनाओं में (सोमम्) ओषधियों के रस को (आमुष्य) चोरी करके (अपिबत्) पीवे उस (त्वष्टारम्) तेजस्वी और शत्रुओं का (अभिभूय) तिरस्कार करके (जनुषा) जन्म से (उग्रः) तेजस्वी (तुराषाट्) शीघ्रकारियों को सहने वाला (अभिभूत्योजाः) शत्रुओं के तिरस्कार करने वाले पराक्रम से युक्त (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य वाला पुरुष (यथावशम्) यथासामर्थ्य (तन्वम्) शरीर को (चक्रे) करता है वह राज्य करने के योग्य होवे ॥४॥

भावार्थः—जो विद्वान् धार्मिक राजा जन हैं वे चोर आदि दुष्ट जनों का तिरस्कार और मादक द्रव्य अर्थात् उन्मत्तता करने वाले द्रव्यों के सेवनकर्त्ताओं का दण्ड करके और अपने आप अव्यसनी होकर प्रजाओं के पालन करने को समर्थ होवें, वे ही राज्य की वृद्धि करने के योग्य होवें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम लोग (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) सत्य और असत्य व्यवहार के विभाग करने वाले (भरे) पोषण करने योग्य राज्य में (ऊतये) रक्षण आदि के लिये (मघवानम्) न्याय से इकट्ठे किये गये बहुत धन से सत्कृत (नृतमम्) मनुष्यों में उत्तम मनुष्य (शृण्वन्तम्) सत्य और असत्य का निश्चय करके आज्ञा देते हुए (उग्रम्) दुष्ट जनों में कठिन और श्रेष्ठ पुरुषों में सरल स्वभाव वाले (समत्सु) धर्मयुक्त संग्रामों में (घ्नन्तम्) दुष्ट पुरुषों के नाशकर्त्ता (धनानाम्) धनों के (सञ्जितम्) पालन करने वा देने वाले (वृत्राणि) धनों को प्राप्त (इन्द्रम्) राजा को प्राप्त हो कर (शुनम्) राजाओं के धर्म से उत्पन्न हुए सुख को (हुवेम) ग्रहण करें वैसे ही ऐसे राजा को प्राप्त होकर आप लोग भी इस का ग्रहण करो ॥५॥

भावार्थः—सम्पूर्ण श्रेष्ठ सभासद् विद्वज्जनों को चाहिये कि अवश्य सम्पूर्ण शास्त्रों में निपुण उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले राजधर्म में चतुर व उत्तम कुलयुक्त अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् पुरुष को सब का अधीश करके और राज्य की निरन्तर रक्षा करके चौरादिकों का नाश करें ॥५॥

इस सूक्त में राजधर्म सन्तानोत्पत्ति और राज्यपालन आदि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये

यह अड़तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिः छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले उनचासवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में प्रजा के विषय को कहते हैं ॥

शंसा महामिन्द्रं यस्मिन् विश्वा आ कृष्टयः सोमपाः काममव्यन् ।
यं सुक्रतुं धिषणे विभ्वतष्टं घनं वृत्राणां जनयन्त देवाः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (यस्मिन्) जिस में (विश्वाः) सम्पूर्ण (सोमपाः) ऐश्वर्य्य के पालन करने वाले (कृष्टयः) मनुष्य (कामम्) अभिलाषा की (आ) सब

प्रकार (अव्यन्) इच्छा करें (वृत्राणाम्) मेघों के (घनम्) समूह को (विभ्वतष्टम्) व्यापक परमेश्वर ने रचा (महाम्) श्रेष्ठ और सेवा करने योग्य (इन्द्रम्) राजा को (धिषणे) अन्तरिक्ष और पृथिवी को प्रकाशित करते हुए सूर्य्य के सदृश विद्या और नीति को प्रकाशित करते हुए (यम्) जिस (सुक्रतुम्) उत्तम कर्म करने वाली बुद्धि से युक्त पुरुष को (देवाः) विद्वान् लोग (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं उस राजा की आप (शंस) स्तुति करिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वान् लोगो ! जैसे बड़ा एक सूर्य्य प्रत्येक भूगोल में वर्त्तमान मेघों को नाश करता और प्राणियों के सुख को उत्पन्न करता है वैसे ही राजा जन दुष्ट पुरुषों का नाश और श्रेष्ठ पुरुषों की इच्छा पूर्ण करके आनन्द देता है ॥१॥

अब राजा के उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यं नु नकिः पृतनासु स्वराजं द्विता तरति नृतमं हरिष्ठाम् ।
इनतमः सत्वभिर्यो ह शूषैः पृथुज्रया अमिनादायुर्दस्योः ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! (यम्) जिस (हरिष्ठाम्) मनुष्य वर्त्तमान हों जिसमें उस (नृतमम्) अतिशय करके नायक (स्वराजम्) अपने से सूर्य्य के सदृश प्रकाशमान (पृतनासु) वीरों की सेनाओं में (द्विता) दोपन का (नकिः) नहीं (तरति) उल्लङ्घन करता है और (यः) जो (पृथुज्रयाः) तीव्र वेग से युक्त (इनतमः) अत्यन्त समर्थ (ह) निश्चय से (शूषैः) बलयुक्त (सत्वभिः) शत्रुओं को दुःख देने वाले वीरों के साथ (दस्योः) दुष्ट पुरुष के (आयुः) अवस्था का (नु) शीघ्र (अमिनात्) नाश करे उसको सब का स्वामी करो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस पुरुष को शत्रु का द्विगुना भी बल जीत नहीं सकता और जो अधिक सामर्थ्ययुक्त पुरुष दुष्ट पुरुषों का निरन्तर नाश करता है, उसी को सब सेना का अध्यक्ष करके सदैव विजय करना चाहिये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सहावा पृत्सु तरणिर्नार्वा व्यानशी रोदसी मेहनावान् ।
भगो न कारे हव्यो मतीनां पितेव चारुः सुहवो वयोधाः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (पृत्सु) स्पर्द्धा करते हुए संग्रामों में (तरणिः) शीघ्र चलने वाले (अर्वा) घोड़े के (न) तुल्य (सहावा) सहने वाला (रोदसी) अन्तरिक्ष और भूमि के सदृश (मेहनावान्) सेचन बहुत विद्यमान हैं जिसके वह (कारे)

करने योग्य व्यवहार में (व्यानशिः) व्याप्त (हव्यः) ग्रहण करने के योग्य (भगः) ऐश्वर्य्य के योग के (न) तुल्य (मतीनाम्) मनन करने वाले मनुष्यों के (वयोधाः) जीवन को धारण करने वाला (सुहवः) उत्तम पुकारने की स्तुतियुक्त (चारुः) सुन्दर (पितेव) पिता के सदृश वर्त्तमान है उसी को आप लोग राजा करिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो घोड़े के सदृश वेग और बलयुक्त योद्धा सूर्य्य और भूमि के सदृश सबका सुख देने और ऐश्वर्य के सदृश कार्य्य की सिद्धि करने वाला पिता के सदृश सबका पालनकर्त्ता होवे वही राज्याऽभिषेक करने के योग्य होवे ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

धर्त्ता दिवो रजसस्पृष्ट ऊर्ध्वो रथो न वायुर्वसुभिर्नियुत्वान्।
क्षपां वस्ता जनिता सूर्यस्य विभक्ता भागं धिषणेव वाजम् ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो! जो (दिवः) प्रकाशस्वरूप (सूर्यस्य) सूर्य (रजसः) लोकों के समूह का (जनिता) उत्पन्न करने (धर्त्ता) धारण करने वाला (पृष्टः) पूछने योग्य (ऊर्ध्वः) उत्तम (रथः) सुन्दर वाहन के (न) तुल्य (वसुभिः) सम्पूर्ण लोकों से (वायुः) पवन के सदृश बलवान् (क्षपाम्) रात्रि को (वस्ता) आच्छादन करने वाला और (धिषणेव) अन्तरिक्ष और भूमि के सदृश (वाजम्) घोड़े आदि (भागम्) अंश का (विभक्ता) विभाग करने और (नियुत्वान्) नियम करने वाला है उसको परमात्मा के सदृश राजा मानो ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो राजा परमेश्वर के सदृश प्रजाओं में वर्त्तमान है उसी की निरन्तर सेवा करो ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! हम लोग जिस (इन्द्रम्) परमेश्वर के सदृश वर्त्तमान राजा को (धनानाम्) ऐश्वर्य्यों के (ऊतये) रक्षण आदि के लिये (अस्मिन्) इस (भरे) पालन करने योग्य संसार और (वाजसातौ) अपने अपने अंश के दानस्वरूप व्यवहार में (नृतमम्) अत्यन्त न्यायकारी (मघवानम्) बहुत ऐश्वर्य्य वाले (समत्सु) संग्रामों में शत्रुओं के (घ्नन्तम्) नाशकर्त्ता (वृत्राणि) धनों को (शृण्वन्तम्) यथावत् सुनते हुए (उग्रम्) दुष्टों के दुःख देने और (सञ्जितम्) जीतने वाले राजा को प्राप्त

हो कर (शुनम्) सुख का (हुवेम) स्वीकार करे उस का आप लोग भी स्वीकार करो ॥५॥

भावार्थः—राजाओं को चाहिये कि प्रजाओं में पिता के और ईश्वर के तुल्य वर्त्तमान होकर सम्पूर्ण प्रजाओं का पालन करें ऐसा उपदेश दीजिये ॥५॥

इस सूक्त में प्रजा और राजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह उनचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ । ५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अथ पांच ऋचा वाले पचासवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रः स्वाहा पिबतु यस्य सोमं आगत्या तुम्रो वृषभो मरुत्वान् ।
ओरुव्यचाः पृणतामेभिरन्नैरास्य हविस्तन्वः काममृध्याः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! जो (सोमः) ऐश्वर्यों का समूह (तुम्रः) विघ्नकारियों का हिंसक (वृषभः) बलिष्ठ (मरुत्वान्) उत्तम पुरुषों से युक्त (उरुव्यचाः) बहुत श्रेष्ठ गुणों से व्याप्त (इन्द्रः) ऐश्वर्यों का कर्त्ता (स्वाहा) सत्य क्रिया से (यस्य) जिस का (सोमः) ऐश्वर्यों का समूह उस (अस्य) इस के (एभिः) इन वर्त्तमान (अन्नैः) यव आदि अन्नों से (आगत्य) प्राप्त होकर (हविः) ग्रहण करने योग्य वस्तु का (पिबतु) पान कीजिये और (तन्वः) शरीर के (कामम्) मनोरथ को (आ) (पृणताम्) सब प्रकार पूर्ण करके सुख दीजिये और उस को आप (आ, ऋध्याः) सिद्ध कीजिये ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सत्य न्याय से अपने अंश का भोग करके प्रजा के सुख बढ़ाने के लिये अन्याय और दुष्ट पुरुषों का नाश करता है वह पुरुष समृद्धियुक्त होता है ॥१॥

अब प्रीति के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ ते सपर्य्यू जवसे युनज्मि ययोरनु प्रदिवः श्रुष्टिमावः ।
इह त्वा धेयुर्हरयः सुशिप्र पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोः ॥२॥

पदार्थः—हे (सुशिप्र) सुन्दर मुख वाले ! आप (ययोः) जिन के (अनु, प्रदिवः) उत्तम प्रकाशों को (श्रुष्टिम्) शीघ्र (आवः) रक्षा करें वे (इह) इस संसार में (सपर्य्यू) सेवा करने वाले (ते) आप के (जवसे) वेग के लिये (आ, युनज्मि) संयुक्त करता हूं । और जो (हरयः) पुरुषार्थी मनुष्य (त्वा) आप को (धेयुः) धारण करें उन के साथ (तु) शीघ्र (अस्य) इस (सुषुतस्य) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त (चारोः) अति श्रेष्ठ इस सोमलतारूप ओषधियों के अंश का (पिब) पान कीजिये ॥२॥

भावार्थः—इस संसार में जो लोग जिनके सेवक उन स्वामियों को चाहिये कि उन सेवकों का पोषण करें और सब लोग परस्पर प्रीति से सुख की उन्नति करें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः ।
मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य ॥३॥

पदार्थः हे (ऋजीषिन्) नम्रस्वभाव और (गृणानाः) स्तुति करते हुए ! (गोभिः) किरणों से (धायसे) धारण करने को (ज्यैष्ठ्याय) वृद्ध होने के लिये (मिमिक्षुम्) सेचन करने की इच्छा करने वाले को (सुपारम्) सुख से पार जाने के योग्य (इन्द्रम्) विद्या और ऐश्वर्यवान् आप को (दधिरे) धारण करो और जिसने (सोमम्) सोमलता के रस को (पपिवान्) पीया (मन्दानः) आनन्द करते हुए (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (इषण्य) प्रेरणा करिये (सोमम्) सोम ओषधि के रस को और (पुरुधा) अनेक प्रकारों से (गाः) पृथिवी आदि को धारण करता है उन का आप और वे आप का सत्कार करें ॥३॥

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने किरणों से वृष्टि करके सब की पुष्टि करता है वैसे ही विद्वान् लोग पढ़ाने और उपदेश से विद्या और सत्य की वृष्टि करके सब मनुष्यों की पुष्टि करें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमं कामं मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च ।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्यं विप्रा इन्द्राय वाहः कुशिकासो अक्रन् ॥४॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो (स्वर्यवः) सुख को प्राप्त कराने (कुशिकासः) सम्पूर्ण शास्त्रों के सिद्धान्त जानने और (वाहः) प्राप्त कराने वाले (विप्राः) पूर्ण विद्या से युक्त बुद्धिमान् लोग (मतिभिः) मनुष्यों से (इन्द्राय) अत्यन्त धन से युक्त

(तुभ्यम्) आप के लिये (इमम्) इस प्रत्यक्ष (कामम्) मनोरथ को (अक्रन्) करें उन लोगों के इस मनोरथ को (गोभिः) गौ आदि और (अश्वैः) घोड़े आदि और (चन्द्रवता) प्रसिद्ध वहुत सुवर्ण विद्यमान है जिस में उस (राधसा) धन से आप (पप्रथः) प्रसिद्ध होइये (च) और इन को (मन्दय) पहुंचाइये ॥४॥

भावार्थः—जो श्रेष्ठ पुरुषों के साथ अनुकूलता से वर्त्तमान होकर परस्पर ऐश्वर्य्य से और पशु आदि धन आदिकों से इच्छा को पूर्ण करें वे सदा सुखी होवें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम लोग (अस्मिन्) इस (वाजसातौ) विज्ञान के सेवन करने और (भरे) प्रेम से पालन करने योग्य व्यवहार में (ऊतये) ऐक्यभाव में प्रवेश होने के लिये (मघवानम्) श्रेष्ठ धन वाले और (नृतमम्) अत्यन्त प्रीति के प्राप्त कराने वाले और (वृत्राणि) प्रेम के स्थानभूत वस्तुओं को (शृण्वन्तम्) सुनने वाले (समत्सु) विरोध के व्यवहारों में वर्त्तमान कारणों को (घ्नन्तम्) नाश करते हुए (उग्रम्) द्वेष के विनाशकर्त्ता (धनानाम्) द्रव्यों को (सञ्जितम्) उत्तम प्रकार जीतने और (इन्द्रम्) विरोध के नाश करने वाले को (शुनम्) परस्पर मेल से उत्पन्न सुख को जैसे वैसे (हुवेम) ग्रहण करें उस का आप लोग भी सेवन करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वे ही धन्य मनुष्य कि जो विरोध का त्याग करके एक साथ ऐश्वर्य उत्पन्न करते हैं ॥५॥

इस सूक्त में परस्पर की प्रीति वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । ४ । ७—९ त्रिष्टुप् । ५ । ६ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १—३ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । १० । ११ यवमध्या गायत्री । १२ विराट् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब बारह ऋचा वाले इकावनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं ॥

चर्षणीधृतं मघवानमुक्थ्य१मिन्द्रं गिरो बृहतीरभ्यनूषत ।
वावृधानं पुरुहूतं सुवृक्तिभिरमर्त्यं जरमाणं दिवेदिवे ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (बृहतीः) बड़े विषय अर्थात् तात्पर्य वाली (गिरः) विद्वानों की वाणियों को (दिवेदिवे) प्रतिदिन (सुवृक्तिभिः) उत्तम संविभागों से जिस (चर्षणीधृतम्) मनुष्यों के धारण करने वाले (मघवानम्) बढ़े हुए धन से युक्त (उक्थ्यम्) प्रशंसा करने योग्य (वावृधानम्) बढ़े हुए (पुरुहूतम्) बहुतों से सत्कार किये गये (अमर्त्यम्) मरणधर्म से रहित (जरमाणम्) स्तुति करते हुए (इन्द्रम्) राजा की (अभ्यनूषत) प्रशंसा करें उस का आप लोग भी आश्रयण करो ॥१॥

भावार्थः—हे राजपुरुषो ! बहुत जनों से सत्कृत प्रजाओं के धारण करने में समर्थ जिस राजा की विद्वान् लोग प्रशंसा करें उसी के आप लोग शरण जाओ ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शतक्रतुमर्णवं शाकिनं नरं गिरो म इन्द्रमुप यन्ति विश्वतः ।
वाजसनिं पूर्भिदं तूर्णिमप्तुरं धामसाचमभिषाचं स्वर्विदम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (मे) मेरी (गिरः) वाणियों को (अर्णवम्) समुद्र के सदृश गम्भीर (शतक्रतुम्) नापरहित बुद्धि और (शाकिनम्) शक्तियुक्त (नरम्) नायक (वाजसनिम्) अन्न और विज्ञान के विभागकर्त्ता (पूर्भिदम्) शत्रुओं के नगर के भेदन करने और (तूर्णिम्) शीघ्रता करने वाले (अप्तुरम्) प्राणों के प्रेरणकर्त्ता (धामसाचम्) रक्षा करते हुए (अभिषाचम्) सन्मुख भाव और (स्वर्विदम्) सुख को प्राप्त (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले को (विश्वतः) सब प्रकार (उप, यन्ति) प्राप्त होते हैं उस ही के शरण जाओ ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य लोग सम्पूर्ण विद्याओं में कुशल सामर्थ्ययुक्त सत्यधारणकर्त्ता दुष्ट पुरुषों के ताड़न करने वाले राजा के समीप जावें तो उन का किसी से भी भय नहीं होता है ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आकरे वसोर्जरिता पनस्यतेऽनेहसः स्तुभ इन्द्रो दुवस्यति ।
विवस्वतः सदन आ हि पिप्रिये सत्रासाहमभिमातिहनं स्तुहि ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (स्तुभः) फलों को प्राप्त होने (जरिता) स्तुति करने वाला (अनेहसः) नहीं नाश करने योग्य (वसोः) धन के (आकरे) समूह में (विवस्वतः) सूर्य के (सदने) स्थान में (इन्द्रः) बिजुली के सदृश सब का स्वामी राजा (पनस्यते) व्यवहार करता है और विद्वान् के धर्म का (दुवस्यति) सेवन करता और (सत्रासाहम्) सत्य के सहने वाले (अभिमातिहनम्) अभिमानयुक्त शत्रु के नाश करने वाले को (आ, प्रीणाति) प्रसन्न करता है उस की (हि) निश्चय (स्तुहि) स्तुति करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे ईश्वर से बिजुली द्वारा उत्पन्न किया गया सूर्य एकत्र वर्त्तमान हुआ सर्वत्र विद्यमान सब वस्तुओं को प्रकाशित करता है वैसे ही एक स्थान में वर्त्तमान राजा मन्त्री दूत पियादे और सेनादि के प्रबन्ध से सम्पूर्ण राज्य को विद्या और विनय से प्रकाशित करके ऐश्वर्य के समूह से धर्म की उन्नति के लिये व्यवहार करे ॥३॥

अब प्रजा के प्रशंसा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नृणामु त्वा नृतमं गीर्भिरुक्थैरभि प्र वीरमर्चता सबाधः ।
सं सहसे पुरुमायो जिहीते नमो अस्य प्रदिव एक ईशे ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो ! आप लोग जो (सबाधः) बाध के सहित वर्त्तमान (पुरुमायः) बहुत कार्यों का कर्त्ता (एकः) सहाय रहित सेनाधिपति पुरुष (अस्य) इस (प्रदिवः) उत्तम प्रकाश का (ईशे) स्वामी है (सहसे) बल के लिये (नमः) अन्न वा सत्कार को (सम्, जिहीते) प्राप्त होता है उस (वीरम्) राजविद्या और बल से व्याप्त पुरुष का (प्र, अर्चत) सत्कार करिये । और हे राजन् ! जो (गीर्भिः) वाणियों और (उक्थैः) प्रशंसा के वचनों से (नृणाम्) अग्रणी मनुष्यों के (नृतमम्) अत्यन्त नायक (त्वा) आप का सत्कार करें उनका (उ) ही आप सत्कार करिये ॥४॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि उस ही की प्रशंसा करें कि जो प्रशंसा योग्य कर्मों को करे ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पूर्वीरस्य निष्षिधो मर्त्येषु पुरू वसूनि पृथिवी बिभर्त्ति ।
इन्द्राय द्याव ओषधीरुतापो रयिं रक्षन्ति जीरयो वनानि ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (जीरयः) वृद्ध होने वाले मनुष्य (अस्य) इस राजा के (मर्त्येषु) मनुष्यों में (पूर्वीः) अनादि काल से सिद्ध (निष्षिधः) अत्यन्त सिद्ध

अन्नपान का भोग कर तथा रोगरहित होकर निरन्तर उद्यम को करो जिससे आप को सम्पूर्ण सुख प्राप्त होवें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः। वधूयुरिव योषणाम् ॥३॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप (नः) हम लोगों के (पुरोळाशम्) प्रथम देने के योग्य का (घसः) भक्षण करो और हम लोगों के लिये भक्षण कराओ (च) और (योषणाम्) अपनी स्त्री को (वधूयुरिव) अपनी स्त्री को विषयिणी इच्छा करने वाले के सदृश (नः) हम लोगों की (जोषयासे) सेवा करो (च) और हम लोग आप की (गिरः) वाणियों का (जोषयेम) सेवन करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजा और प्रजा जन आपस के ऐश्वर्य्य को अपना ही समझें और जैसे स्त्री की कामना करने वाला पुरुष प्रिया स्त्री को प्राप्त होकर आनन्दित होता है वैसे ही राजा धर्म करने वाली प्रजाओं को प्राप्त कर निरन्तर प्रसन्न होवे ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पुरोळाशं सनश्रुत प्रातःसावे जुषस्व नः। इन्द्र क्रतुर्हि ते बृहन् ॥४॥

पदार्थः—हे (सनश्रुत) सत्य और असत्य के विचारकर्त्ताओं से उत्तम कृत्य सुना जिसने ऐसे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त (हि) जिस से (ते) आपकी (क्रतुः) बुद्धि वा कर्म्म (बृहन्) बड़ा है तिससे आप (प्रातःसावे) जो प्रातःकाल में किया जाय उसमें (नः) हम लोगों के (पुरोळाशम्) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न-विशेष का (जुषस्व) सेवन करो ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जिन पुरुषों में जैसी विद्या और शीलता होवे वैसी ही उन पर उत्तम कृपा करें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

माध्यन्दिनस्य सवनस्य धानाः पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारुम्।
प्र यत् स्तोता जरिता तूर्ण्यर्थो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रतापयुक्त ! आप (माध्यन्दिनस्य) मध्य दिन में होने वाले (सवनस्य) कर्म विशेष के मध्य में जो (धानाः) भूंजे हुए अन्न और (चारुम्) भक्षण करने योग्य सुन्दर (पुरोळाशम्) अन्नविशेष का आप (इह) इस उत्तम कर्म में (कृष्व) संग्रह कीजिये और (यत्) जो (वृषायमाणः) जल को करने वाला (तूर्ण्यर्थः)

शीघ्र है प्रयोजन जिसका वह (जरिता) आपका सेवाकारी और (स्तोता) प्रशंसा करने वाला (उप) समीप में (गीर्भिः) वाणियों से (प्र, उप) समीप में (ईट्टे) ऐश्वर्य्यवान् हो वह आपके सत्कार करने योग्य होवे ॥५॥

भावार्थः—जो राजा के जन ऋत्विजों के सदृश राज्य की वृद्धि करें उन को राजा सत्कार से प्रसन्न करे ॥५॥

अब अध्यापक के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तृतीयें धानाः सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुतं मामहस्व नः ।
ऋभुमन्तं वाजवन्तं त्वा कवे प्रयस्वन्त उप शिक्षेम धीतिभिः ॥६॥

पदार्थः—हे (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसित (कवे) विद्वान् पुरुष ! (प्रयस्वन्तः) प्रयत्न करते हुए हम लोग (धीतिभिः) अंगुलियों से दिखाये गये वचनार्थों से (तृतीये) तीन की पूर्त्ति करने वाले (सवने) सायंकाल में करने योग्य कर्म में (पुरोळाशम्) उत्तम संस्कारयुक्त अन्न विशेष और (धानाः) अग्नि से भूंजे गये अन्न विशेषों के तुल्य (ऋभुमन्तम्) श्रेष्ठ बुद्धिमानों से युक्त (वाजवन्तम्) शुष्क अन्न विशेष विद्यमान जिस के उस (आहुतम्) पुकारे गये (त्वा) आप को (उप, शिक्षेम) शिक्षा देवें वह आप (नः) हम लोगों का (मामहस्व) अत्यन्त सत्कार करिये ॥६॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् यज्ञ करने वाले यजमानों के लिये यज्ञ कृत्य की शिक्षा देते हैं वैसे ही सम्पूर्ण विद्याओं का हस्त आदि क्रियाओं से प्रत्यक्ष अर्थात् अभ्यास करके अन्य जनों के लिये अध्यापक लोग प्रत्यक्ष करावें ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पूषण्वते ते चकृमा करम्भं हरिवते हर्य्यश्वाय धानाः ।
अपूपमद्धि सगणो मरुद्भिः सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥७॥

पदार्थः—हे (शूर) दुष्ट पुरुष के नाश कर्त्ता ! जैसे (वृत्रहा) धन से युक्त विद्वान् पुरुष (पूषण्वते) पुष्टि करने वाले विद्यमान हैं जिस के उस (हरिवते) उत्तम घोड़े आदि से युक्त के तथा (हर्य्यश्वाय) हरणशील और शीघ्र चाल वाले घोड़े वा अग्नि आदि विद्यमान हैं जिसके उस (ते) आप के लिये (करम्भम्) दधि आदि से युक्त भोजन करने के पदार्थ विशेष और (धानाः) भूंजे हुए अन्न तथा (अपूपम्) पुआ को देवे उसको (सगणः) समूह के सहित वर्त्तमान आप (मरुद्भिः) उत्तम मनुष्यों के साथ (अद्धि) भक्षण कीजिये और (सोमम्) उत्तम ओषधि के रस को (पिब) पान कीजिये और वैसे ही हम लोग आप के लिये (चकृम) करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो विद्या

और नम्रता से युक्त हैं वे श्रेष्ठ राजा के लिये उत्तम पदार्थों को देकर इस का निरन्तर सत्कार करें और वे राजा से भी सर्वदा सत्कार के योग्य हैं ॥७॥

अब यज्ञ के अन्न के इकट्ठे करने के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रति॑ धा॒ना भ॑रत॒ तूय॑मस्मै पु॒रो॒ळाशं॑ वी॒रत॑माय नृ॒णाम् ।
दि॒वेदि॑वे स॒दृशी॑रिन्द्र॒ तुभ्यं॒ वर्द्ध॑न्तु त्वा सोम॒पेया॑य धृष्णो ॥८॥

पदार्थः—हे(धृष्णो)वाणी में चतुर(इन्द्र)दुष्टों के समूह के नाश करने वाले ! जो(सदृशीः) तुल्यस्वरूप वाली सेना (दिवेदिवे) प्रतिदिन (नृणाम्) अग्रणी पुरुषों के मध्य में (वीरतमाय) अत्यन्त श्रेष्ठ वीर पुरुष (सोमपेयाय) पान किया सोम के रस का जिस ने उन आप के लिये (वर्द्धन्तु) वृद्धि को प्राप्त हों और जो विद्वान् लोग (त्वा) आप के लिये वृद्धि करें उन की आप वृद्धि करो और हे विद्वानो ! आप लोग (अस्मै) इसके लिये(धानाः) भूंजे हुए अन्न और (पुरोळाशम्) उत्तम प्रकार संस्कार-युक्त अन्न विशेष और जो कि (तूयम्) शीघ्र सुखकारक उस को (प्रतिभरत) पूर्ण कीजिये ॥८॥

भावार्थः—सम्पूर्ण राजजन और प्रजा के जन राज्य की वृद्धि के लिये सम्पूर्ण पदार्थों को इकट्ठे करें उनसे उत्तम प्रकार परीक्षित वीर सेनाओं को करके और दुष्ट पुरुषों का पराजय और श्रेष्ठ पुरुषों का विजय करके प्रतिदिन आनन्द करना चाहिये ॥८॥

इस सूक्त में राजा प्रजा और यज्ञान्नसंस्कारादि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह बावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । १ इन्द्रापर्वतौ । २—१४ । २१—२४ इन्द्रः । १५ । १६ वाक् । १७—२० रथाङ्गानि देवताः । १ । ५ । ९ । २१ निचृत् त्रिष्टुप् । २ । ६ । ७ । १४ । १७ । १९ । २३ । २४ त्रिष्टुप् । ३ । ४ । ८ । १५ स्वराट् त्रिष्टुप् । ११ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १२ । २२ अनुष्टुप् । २० भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । १० । १६ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । १३ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । १८ निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब चौबीस ऋचा वाले तिरेपनवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में राजा की सेना के विषय को कहते हैं ।।

इन्द्रापर्वता बृहता रथेन वामीरिष आ वहतं सुवीराः ।
वीतं हव्यान्यध्वरेषु देवा वर्द्धेथां गीर्भिरिळया मदन्ता ।।१।।

पदार्थः—हे सभा और सेना के ईश ! आप दोनों (इन्द्रापर्वता) बिजुली और मेघ के सदृश राज्य सेना के अधीश (बृहता) बड़े (रथेन) वाहन से (सुवीराः) सुन्दर वीर जिन से उन (वामीः) श्रेष्ठ (इषः) अन्न आदि को (आ, वहतम्) प्राप्त होइये और (अध्वरेषु) नहीं हिंसा करने योग्य यज्ञों में (हव्यानि) देने और ग्रहण करने योग्यों को (वीतम्) प्राप्त होइये और (इळया) सम्पूर्ण शास्त्रों को प्रकाश करने वाली वाणी से (मदन्ता) कामना करते हुए विद्वान् लोग (देवा) उत्तम सुख देने वाले होकर (गीर्भिः) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त वाणियों से (वर्धेथाम्) बढ़ें ।।१।।

भावार्थः—हे राजसेनाओं के जन ! जैसे मेघ सम्पूर्ण जलाशय और ओषधियों की रक्षा करता है वैसे ही सेना के पालन करने वाले पुरुष बहुत सी सामग्रियों से सम्पूर्ण सेनाओं को भोग से परिपूर्ण करिये और सेना बिजुलियों के सदृश शत्रुओं का नाश करें और सब में सब युद्ध और राजविद्या में परिपूर्ण होकर सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त हों ।।१।।

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

तिष्ठा सु कं मघवन्मा परा गाः सोमस्य नु त्वा सुषुतस्य यक्षि ।
पितुर्न पुत्रः सिचमा रभे त इन्द्र स्वादिष्ठया गिरा शचीवः ।।२।।

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुत धनयुक्त (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के करने वाले ! आप (सुषुतस्य) उत्तम प्रकार सिद्ध (सोमस्य) बड़ी ओषधियों के समूहरूप ऐश्वर्य्य के समीप के (कम्) सुख को (सु, तिष्ठ) करिये । और हे (शचीवः) उत्तम प्रजाओं से युक्त ! जैसे (ते) आपकी (स्वादिष्ठया) अत्यन्त मधुर आदि रस से युक्त (गिरा) वाणी से (सिञ्चनम्) सिंचन का (आ, रभे) प्रारम्भ करें (त्वा) आप को (नु) शीघ्र (पुत्रः) पुत्र (पितुः) पिता से (न) नहीं (आ, रभे) प्रारम्भ करते हैं वह आप हम लोगों को (यक्षि) प्राप्त होइये और हम लोगों से (मा) नहीं (परा, गाः) दूर जाइये ।।२।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जैसे पुत्र पिता की सेवा करता है वैसे ही वृद्ध विद्वानों की सेवा करो । और कभी धर्म से पृथक् न होओ, अन्य जनों को सुखी करके सुखी होओ ।।२।।

करने वालियों की (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं और (पुरु) बहुत (वसूनि) द्रव्यों को (पृथिवी) भूमि के सदृश जो पुरुष (बिभर्ति) धारण करता है (द्यावः) सूर्य्य आदि के प्रकाश (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (रयिम्) लक्ष्मी और (वनानि) सन्मुख हों सुख जिन से उन को (उत) भी (आपः) प्राण वा जल जैसे (ओषधीः) सोमलता और ओषधियों की रक्षा करते हैं वैसे राज्य का (बिभर्त्ति) पोषण करता है वही राजा होने के योग्य हो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्यों में धन विज्ञान और ओषधि धारण करते वे ही राजाओं के कर्मचारी होने के योग्य हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तुभ्यं ब्रह्माणि गिर इन्द्र तुभ्यं सत्रा दधिरे हरिवो जुषस्व ।
बोध्या३पिरवसो नूतनस्य सखे वसो जरितृभ्यो वयो धाः ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के धारणकर्त्ता ! जो (गिरः) वाणियां (तुभ्यम्) आप के लिये (ब्रह्माणि) धनों को और हे (हरिवः) उत्तम घोड़े आदि से युक्त ! जो वाणियां (तुभ्यम्) आप के लिये (सत्रा) सत्य को (दधिरे) धारण करें उनका आप (जुषस्व) सेवन करो। हे (सखे) मित्र ! (नूतनस्य) नवीन (अवसः) रक्षणादि के (आपिः) व्याप्त हुए आप उन को (बोधि) जानिये हे (वसो) धन को प्राप्त ! आप (जरितृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों के लिये (वयः) जीवन को (धाः) धारण कीजिये ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि ऐसी वाणी ग्रहण करें और सुनें कि जिस से धनसंग्रह होता है सत्य की रक्षा की जाती और जीवन बढ़ता है ॥६॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र मरुत्व इह पाहि सोमं यथा शार्य्याते अपिबः सुतस्य ।
तव प्रणीती तव शूर शर्मन्ना विवासन्ति कवयः सुयज्ञाः ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के धारण करने वाले ! आप (इह) इस संसार में (सोमम्) ऐश्वर्य्य करने वाले की (पाहि) रक्षा कीजिये। और हे (मरुत्वः) उत्तम धनों से युक्त ! (यथा) जिस प्रकार (शार्य्याते) हिंसा करने वालों को प्राप्त होने वाले के इस व्यवहार में (सुतस्य) उत्पन्न को आप (अपिबः) पान कीजिये। हे (शूर) दुष्टों के नाशकर्त्ता ! जो (सुयज्ञाः) श्रेष्ठ संयुक्त क्रियायें जिन की वे (कवयः)

विद्वान् लोग (तव) आप की (प्रणीती) उत्तम नीति से और (तव) आप के (शर्मन्) सुखकारक गृह में ऐश्वर्य्यकर्त्ता को (आ, विवासन्ति) प्राप्त होते हैं उन की आप रक्षा कीजिये ॥७॥

भावार्थः—हे राजन् ! जैसे आप अपने राज्य ऐश्वर्य्य न्याय और धर्म की रक्षा करते हैं उसी प्रकार के आप के मन्त्री और नौकर आदि होवें उन का सत्कार आप को सदा ही करना चाहिये ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स वावशान इह पाहि सोमं मरुद्भिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः ।
जातं यत्त्वा परि देवा अभूषन्महे भराय पुरुहूत विश्वे ॥८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त ! (इह) इस राज्य के व्यवहार में (सः) वह (वावशानः) कामना करते हुए आप (मरुद्भिः) पवनों से सूर्य के सदृश (सखिभिः) मित्रों के साथ (नः) हम लोगों के (जातम्) प्रकट और (सुतम्) उत्पन्न (सोमम्) ऐश्वर्य की (पाहि) रक्षा कीजिये और हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) विद्वान् लोग (यत्) जिस से (महे) बड़े (भराय) पोषण करने योग्य संग्राम के लिये (त्वा) आप को (परि) सब प्रकार (अभूषन्) शोभित करें तिस से आप हम लोगों को सब प्रकार शोभित करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य्य वायुरूप सहाय से सब की रक्षा करता है वैसे ही यथार्थवक्ता मित्रों के साथ राजा सम्पूर्ण राज्य की रक्षा करे और जो मन्त्री और नौकर राज्य के हितकारी होवें उन का सब काल में सत्कार करें ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अप्तूर्य्ये मरुत आपिरेषोऽमन्दन्निन्द्रमनु दातिवाराः ।
तेभिः साकं पिबतु वृत्रखादः सुतं सोमं दाशुषः स्वे सधस्थे ॥९॥

पदार्थः—जो (दातिवाराः) छेदन करने वाले (मरुतः) मनुष्य (अप्तूर्य्ये) कर्मों से प्रेरणा करने योग्य (इन्द्रम्) राजा को (अमन्दन्) आनन्द देवें (तेभिः) उन के (साकम्) साथ (एषः) यह (आपिः) सब प्रकार पीने वाला वा शुभ गुणों से व्याप्त (वृत्रखादः) मेघ को स्थिर करने वाला (दाशुषः) दान करने वाले के (स्वे) अपने (सधस्थे) तुल्य स्थान में (सुतम्) सिद्ध (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (अनु, पिबतु) पीछे पान करे उस को आप राजा निरन्तर प्रसन्न करें ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्य आचरण की प्रेरणा और दुष्ट आचरणों का निषेध और सबको धार्मिक करके आनन्द देवें उनके साथ राजा आनन्द करे ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इदं ह्यन्वोजसा सुतं राधानां पते । पिबा त्व१स्य गिर्वणः ॥१०॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) प्रार्थित हुए (राधानाम्) धनों के (पते) पालन करने वाले ! आप (ओजसा) बल से (अस्य) इसके (इदम्) इस (सुतम्) सिद्ध किये गये सोमलतारूप रस का (पिब) पान कीजिये (हि) निश्चय से और पान करने की इच्छा से इस सोमलता का पान करो ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप निश्चय सब काल में धन और ऐश्वर्य की रक्षा करके,और जो प्राप्त राज्य उसकी देख भाल से वृद्धि करके सुखी होइये ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यस्ते अनु स्वधामसत्सुते नि यच्छ तन्वम् ।

स त्वा ममत्तु सोम्यम् ॥११॥

पदार्थः—हे राजन् ! (यः) जो (ते) आपके (सुते) उत्पन्न सोमलता के रस में (स्वधाम्) अन्न (अनु, असत्) पीछे होवे (सः) वह (त्वा) आप को (ममत्तु) आनन्द देवे और आप (तन्वम्) शरीर को (नियच्छ) ग्रहण कीजिये (सोम्यम्) सोमलता में उत्पन्न का पान आदि आचरण कीजिये ॥११॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आप के अनुकूल और धर्मात्मा हो कर प्रजाओं को आनन्दित करे वह लक्ष्मीवान् से ऐश्वर्य को प्राप्त होवे और आप इन्द्रियजित् होकर प्रजाओं को सिद्ध कीजिये ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र ते अश्नोतु कुक्ष्योः प्रेन्द्र ब्रह्मणा शिरः ।

प्र बाहू शूर राधसे ॥१२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजाओं में श्रेष्ठ ! जो (ते) आप के (कुक्ष्योः) पेट के आस पास के भागों में (ब्रह्मणा) धन के साथ रस को (प्र) (अश्नोतु) प्राप्त होवे और हे (शूर) वीर पुरुष ! (ते) आपके (शिरः) श्रेष्ठ अङ्ग मस्तक को (बाहू) भुजाओं को (राधसे) धन के लिये प्राप्त होवे उसका आप पालन करिये ॥१२॥

भावार्थः—हे राजन् ! वही वस्तु आपको खाना तथा पीना चाहिये कि जो पेट में प्राप्त हो तथा विकृत हो रोगों को उत्पन्न करके बुद्धि का न नाश करे और जिससे निरन्तर आप में बुद्धि बढ़ कर राज्य और ऐश्वर्य बढ़े ॥१२॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के धर्म वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । इन्द्रो देवता १ । ३ । ४ गायत्री । २ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ६ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ५ । ७ । निचृत् त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले बावनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं ॥

**धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम् । इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः ॥१॥**

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के धारण करने वाले ! आप जैसे (प्रातः) प्रातःकाल में (धानावन्तम्) बहुत भूंजे हुए यव विद्यमान जिसके उस (करम्भिणम्) बहुत पुरुषार्थ अर्थात् परिश्रम से शुद्ध किये गये दधि आदि पदार्थों से युक्त (अपूपवन्तम्) उत्तम पूवा विद्यमान जिसके उस (उक्थिनम्) बहुत कहने योग्य वेद के स्तोत्र विद्यमान जिसके उस का (प्रातः) प्रातःकाल सेवन करते हो वैसे (नः) हम लोगों का (जुषस्व) सेवन करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे अर्थी जन ऐश्वर्य वाले से याचना करता है वैसे ही राजा जन राजधर्म जानने के लिये श्रेष्ठ यथार्थवक्ता विद्वानों से याचना करे ॥१॥

फिर राजधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**पुरोळाशं पचत्यं जुषस्वेन्द्रा गुरस्व च । तुभ्यं हव्यानि सिस्रते ॥२॥**

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्यों के भोगने वाले ! आप (पचत्यम्) उत्तम प्रकार पाकयुक्त (पुरोळाशम्) उत्तम संस्कारों से उत्पन्न किये गये अन्न विशेष का (जुषस्व) सेवन करिये तब (गुरस्व) उद्यम करो और जिससे (तुभ्यम्) आप के लिये (हव्यानि) हवन करने योग्य पदार्थों को (सिस्रते) प्राप्त हों ॥२॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप रोगनाशक और बुद्धि के बढ़ाने वाले

वीर लोग शत्रुओं का नाश करें उन के लिये बहुत धन और प्रतिष्ठा को देवें। जिस से सम्पूर्ण दिशाओं में विजय प्रकाशित होवे ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवम्।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ॥१२॥

पदार्थः– हे मनुष्यो ! (यः) जो (इमे) ये (उभे) दोनों (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी (ब्रह्म) धन वा ब्रह्माण्ड (इदम्) इस वर्त्तमान (भारतम्) वाणी के जानने वा धारण करने वाले उस (जनम्) प्रसिद्ध मनुष्य आदि प्राणिस्वरूप की (रक्षति) रक्षा करता है जिस (इन्द्रम्) परमात्मा की हम (अतुष्टवम्) प्रशंसा करें उस (विश्वामित्रस्य) सब के मित्र की ही उपासना आप लोग करें ॥१२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर से सम्पूर्ण संसार रच कर रक्षित है उस की ही स्तुति प्रार्थना और उपासना निरन्तर करो ॥१२॥

अब प्रजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

विश्वामित्रा अरासत ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे। करदिन्नः सुराधसः ॥१३॥

पदार्थः—हे (विश्वामित्राः) सब के मित्रो ! आप लोग जो (नः) हम लोगों को (सुराधसः) उत्तम धन से युक्त (करत्) करे उस (इत्) ही (वज्रिणे) धनुर्वेद के जानने वाले (इन्द्राय) राजा के लिये (ब्रह्म) धन की (अरासत) वृद्धि करें ॥१३॥

भावार्थः—जो राजा सम्पूर्ण प्रजाओं को सुखयुक्त करे उस ही को प्रजा अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त करे ॥१३॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन् रन्धया नः ॥१४॥

पदार्थः—हे विद्वान् ! (ते) आप के (कीकटेषु) अनार्य देशों में बसने वालों में (गावः) गावों से (न) नहीं (आशिरम्) दुग्ध आदि को (दुह्रे) दुहते हैं (घर्मम्) दिन को (न) नहीं (तपन्ति) तपाते हैं वे (किम्) क्या (कृण्वन्ति) करते वा करेंगे और आप (नः) हम लोगों के लिये (प्रमगन्दस्य) जो कुलीन मुझको प्राप्त होता है उस के (वेदः) धन को (आ) सब प्रकार से (भर) धारण करिये और हे (मघवन्)

Page 32 - 37
40 - 37
36 - 45
46 - 47
49 - 49 - 49

श्रेष्ठ धन से युक्त ! आप (नः) हम लोगों के (नैचाशाखम्) नीची शक्ति जिस में उस की (रन्धय) निवृत्ति करो ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे म्लेच्छ जनों में गौओं की, नास्तिक पुरुषों में धर्म आदि गुणों की वृद्धि नहीं होती और वैसे ही विद्वानों में ईश्वर को नहीं मानने वाले प्रवल न होवें इससे चाहिये कि मनुष्यों में नास्तिकत्व को सर्वथा वारण करे ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ससर्परीरमतिं बाधमाना बृहन्मिमाय जमदग्निदत्ता ।
आ सूर्यस्य दुहिता ततान श्रवो देवेष्वमृतमजुर्यम् ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (जमदग्निदत्ता) नेत्र से प्रत्यक्ष दी गई (ससर्परीः) अत्यन्त चलने वाली वाणी (अजुर्य्यम्) हानि से रहित (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (दुहिता) कन्या के सदृश वर्त्तमान अन्धकार को नाश करते हुए प्रातःकाल के सदृश (बृहत्) बड़े (अमतिम्) रूप को (मिमाय) नापती है और (देवेषु) विद्वानों में हानि रहित (अमृतम्) अमृतस्वरूप (श्रवः) सुनने का (आ, ततान) विस्तार करती है उस वाणी की सब प्रकार वृद्धि करो ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो ब्रह्मचर्य धर्म का अनुष्ठान और पुरुषार्थों से श्रेष्ठ पुरुषों के समीप से विद्या और उत्तम शिक्षा को मनुष्य ग्रहण करें तो उनको कुछ भी सुख अप्राप्त न होवे ॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ससर्परीरभरत्तूयमेभ्योऽधि श्रवः पाञ्चजन्यासु कृष्टिषु ।
सा पक्ष्या३ नव्यमायुर्दधाना यां मे पलस्तिजमदग्नयो ददुः ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (पलस्तिजमदग्नयः) जाना है प्राजापत्य आदि अग्नियों को जिन्होंने वे और अवस्था और ज्ञान में वृद्ध पुरुष (याम्) जिस को (ददुः) देवें (सा) वह (पक्ष्या) पक्षों में साध्वी (पाञ्चजन्यासु) पांच दिनों तथा प्राणों में उत्पन्न (कृष्टिषु) मनुष्य आदि प्रजाओं में (नव्यम्) नवीन ही (आयुः) अन्न वा जीवन को (दधाना) धारण करती हुई (एभ्यः) इन जानने की इच्छा करने वालों के लिये (श्रवः) अन्न को (अधि) उपरि भाग में (तूयम्) शीघ्र (ददुः) देवें (ससर्परीः) सुख की बढ़ाने वाली (अभरत्) प्राप्त कराइये ॥१६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो कार्य की सिद्धि और ऐश्वर्य की उत्पन्न करने और अवस्था की बढ़ाने वाली सत्य लक्षणों से स्पष्ट वाणी नवीन

नवीन विज्ञान और जीवन धारण करती है उस को नित्य धारण करो ॥१६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**स्थिरौ गावौ भवतां वीळुरक्षो मेषा वि वर्हि मा युगं वि शारि ।**
**इन्द्रः पातल्ये ददतां शरीतोररिष्टनेमे अभि नः सचस्व ॥१७॥**

पदार्थः—हे (अरिष्टनेमे) नहीं नाश होने वाले कर्मों को प्राप्त कराने वाले ! आप (इन्द्रः) ऐश्वर्य वाले (शरीतोः) दुष्ट स्वभाव से युक्त के नाश करने में समर्थ हुए (पातल्ये) गिरने वाले में (ददताम्) दीजिये और (वीळुः) प्रशंसायुक्त (अक्षः) इन्द्रिय के छिद्र को (ईषा) नाश करने वाला हुआ (स्थिरौ) निश्चल (गावौ) बैलों का (मा) नहीं (वि, शारि) नाश करे (युगम्) वर्ष को (मा) नहीं (वि, वर्हि) वन्ध्या हो जिससे कि निश्चल बैल (भवताम्) होवें तिस से आप (नः) हम लोगों से (अभि, सचस्व) सब प्रकार मिलो ॥१७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि बड़े उपकार करने वाले गौ आदि पशुओं का कभी नाश नहीं करें। और व्यर्थ समय न बितावें, श्रेष्ठ पुरुषों के साथ सदा ही मेल की रक्षा करें ॥१७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः ।**
**बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥१८॥**

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले ! (हि) जिस से आप (बलदाः) बल के देने वाले (असि) हैं इस से (नः) हम लोगों के (तनूषु) शरीरों में (बलम्) बल को (धेहि) धारण करो और (नः) हम लोगों को (अनळुत्सु) गौ आदिकों में (बलम्) बल को धारण करो हम लोगों के (जीवसे) जीवन और (तोकाय) छोटे बालक तथा (तनयाय) कौमार अवस्था को प्राप्त पुरुष के लिये (बलम्) पराक्रम को धारण करो ॥१८॥

भावार्थः—हे आचार्य्य ! आप जिससे कि शरीर और आत्मा के बल से युक्त हो इससे हम लोगों में पूर्ण शरीर और आत्मा के बल को धारण करो ॥१८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**अभि व्ययस्व खदिरस्य सारमोजो धेहि स्पन्दने शिंशपायाम् ।**
**अक्ष वीळो वीळित वीळयस्व मा यामादस्मादव जीहिपो नः ॥१९॥**

पदार्थः—हे (अक्ष) विद्याओं से व्याप्त ! आप हम लोगों में (खदिरस्य) इस काष्ठ के (सारम्) दृढ़ भाग के सदृश (ओजः) बल को (धेहि) धारण कीजिये (शिंशपायाम्) इस काष्ठ को वृक्षविशेष (स्पन्दने) कुछ चलने में (अभि) सब प्रकार (व्ययस्व) खर्च करो । और हे (वीळो) बलयुक्त और (वीळित) बहुतों में प्रशंसित पुरुष ! (नः) हम लोगों की (वीळयस्व) प्रेरणा करो (अस्मात्) इस (यामात्) प्रहर से (मा) नहीं (अव, जीहिपः) त्यागिये ।।१९।।

भावार्थः—हे आचार्य्य ! हम लोगों में दृढ़ बल को धारण करो श्रेष्ठ कर्मों में हम लोगों की प्रेरणा करो और कभी मत त्याग करो ।।१९।।

अब राजा के पुरुष के विषय को कहते हैं ।।

अयमस्मान्वनस्पतिर्मा च हा मा च रीरिषत् ।

स्वस्त्या गृहेभ्य आवसा आ विमोचनात् ।।२०।।

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे (अयम्) यह (वनस्पतिः) वन का पालन करने वाला (अस्मान्) हम लोगों का त्याग नहीं करता है वैसे हम लोगों का (मा) मत (हाः) त्याग करिये (च) और जैसे सूर्य्य हम लोगों की हिंसा नहीं करता है वैसे ही आप (मा, च) नहीं (रीरिषत्) नाश कीजिये । और (आ अवसै) अच्छे निश्चय के लिये (आ, गृहेभ्यः) सब प्रकार गृहों से (स्वस्ति) सुख हो (आ, विमोचनात्) त्याग तक सुख प्राप्त होवे ।।२०।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अन्न आदि वस्तु सब के रक्षक होवें वैसे राजा के पुरुष सब के पालनकर्त्ता हों और न्याय का त्याग करके अन्याय कभी न करें ।।२०।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

इन्द्रोतिभिर्बहुलाभिर्नो अद्य याच्छ्रेष्ठाभिर्मघवञ्छूर जिन्व ।

यो नो द्वेष्ट्यधरः सस्पदीष्ट यमु द्विष्मस्तमु प्राणो जहातु ।।२१।।

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त ! (यः) जो (अधरः) नीच (नः) हम लोगों से (द्वेष्टि) वैर करता है (सः) वह दुःख को (पदीष्ट) प्राप्त होवे (यम्) जिस को (उ) और हम लोग (द्विष्मः) द्वेष करें (तम्) उस का (उ) भी (प्राणः) हृदयस्थ वायु (जहातु) त्याग करे । और हे (मघवन्) बहुत श्रेष्ठ धन से युक्त (शूर) दुष्टों के नाशकर्त्ता ! आप (बहुलाभिः) बहुत (श्रेष्ठाभिः) उत्तम (ऊतिभिः) रक्षा आदिकों से (नः) हम लोगों को (यात्) प्राप्त होवे (अप, जिन्व) प्रसन्न कीजिये ।।२१।।

अब प्रजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शंसावाध्वर्यो प्रति मे गृणीहीन्द्राय वाहः कृणवाव जुष्टम् ।

एदं बर्हिर्यजमानस्य सीदाथा च भूदुक्थमिन्द्राय शस्तम् ॥३॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यो) नहीं हिंसा करने वाले ! आप (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष के लिये जो (उक्थम्) कहने योग्य (शस्तम्) प्रशंसा किये गए और (जुष्टम्) सेवित (इदम्) इस (बर्हिः) उत्तम स्थान को (यजमानस्य) प्राप्त हुए आपको (भूत्) प्रशंसित होवे उसके ऊपर (आ, सीद) विराजो । (अथ) अनन्तर (च) और अन्यों को प्राप्त होइये और मैं भी प्राप्त होऊं ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष के लिये जो (वाहः) प्राप्त हुओं की (शंसाव) प्रशंसा करें और सिद्धि (कृणवाव) करें उनकी आप (मे) मेरे लिये (प्रति, गृणीहि) स्तुति करिये ॥३॥

भावार्थः—सब राजा और प्रजा के जनों को चाहिये कि जिन कर्मों से ऐश्वर्य की वृद्धि हो उन कर्मों का सेवन करें । और राजा की आज्ञा में वर्त्तमान होकर प्रशंसा को प्राप्त होवें ॥३॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।

यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥४॥

पदार्थः—हे (मघवन्) ऐश्वर्य से युक्त ! जो (ते) आप की (जाया) स्त्री (अस्तम्) गृह को प्राप्त होवे (सा) वह (इत्) ही (उ) भी सन्तान का (योनिः) कारण होवे (तत्) उसको और (त्वा) आप को (च, इत्) ही (युक्ताः) संयुक्त (हरयः) घोड़े (सोमम्) सोमलता के रस को (वहन्तु) धारण करें । और (यदा) जब (कदा) कब हम लोग सोमलता के रस को (सुनवाम) सञ्चित करें । उस को आप (दूतः) शत्रुओं के सन्ताप देने वाले (अग्निः) बिजुली के समान (धन्वाति) प्राप्त होवें (त्वा) आप को ही (अच्छ) उत्तम प्रकार प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थः – जैसे श्रेष्ठ दो घोड़े ले चलने वाले वाहन से सुखपूर्वक रथ के स्वामी को एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राप्त कराते हैं वैसे ही परस्पर प्रसन्न और योग्य दो विद्वान् गृहाश्रम को शोभित करने को समर्थ हों ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

परा याहि मघवन्ना च याहीन्द्र भ्रातरुभयत्रा ते अर्थम् ।

यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो रासभस्य ॥५॥

पदार्थः—हे (मघवन्) धनयुक्त और (इन्द्र) सज्जनों के प्रति कोमल और दुष्टों के प्रति उग्रस्वभाव वाले ! आप यहां से (परा) (याहि) दूर जाइये । हे (भ्रातः) वन्धु जन ! आप उस से प्राप्त होइये (यत्र) जहां (बृहतः) बड़े (रथस्य) सुन्दर वाहन के (रासभस्य) विजुली आदि के सम्बन्धी के सदृश (वाजिनः) वेगयुक्त के (निधानम्) स्थापन (च) और (विमोचनम्) पृथक् करना होवे (यत्र) जहां (उभयत्र) गमन और आगमन में (ते) आप के (अर्थम्) प्रयोजन को हम लोग प्राप्त होवें ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सर्वत्र भ्रमण, कार्य्यसिद्धि के लिये करें। और नहीं सदा भ्रमण ही करना किन्तु गृह में स्थित हो सम्पूर्ण वन्धुओं के साथ मेल करके फिर भी ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये एक देश से दूसरे देश को जावें और आवें ॥५॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते ।
यत्रा रथस्य बृहतो निधानं विमोचनं वाजिनो दक्षिणावत् ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य से युक्त स्वामिन् ! (यत्र) जिस में (बृहतः) बड़े (रथस्य) विमान आदि वाहन के (वाजिनः) अग्नि आदि पदार्थ के (निधानम्) स्थापन और (विमोचनम्) अलग करने को (दक्षिणावत्) दक्षिणाओं के तुल्य करें और वहां स्थित होकर जो आप के (गृहे) गृह में (जाया) स्त्री वर्त्तमान है उस के साथ उस वाहन के ऊपर विराज कर (अस्तम्) गृह को (प्र, याहि) आइये (सोमम्) सम्पूर्ण रोगों के नाश करने वाले महौषधि के रस का (अपाः) पान करिये और पीकर (सुरणम्) श्रेष्ठ संग्राम जिस से उस को प्राप्त होइये ॥६॥

भावार्थः—राजा आदि विमान आदि वाहनों का निर्माण कर और उस में कलायन्त्रों को रच के तथा अग्नि आदि पदार्थों को स्थित तथा अलग कर के अपनी स्त्रियों के सहित गृह में आवें और देशान्तर को जावें, जो स्त्री शूरवीरा हो तो उस के साथ संग्राम के विजय के लिये जावें ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमे भोजा अङ्गिरसो विरूपा दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विश्वामित्राय ददतो मघानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥७॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो (इमे) ये (अङ्गिरसः) प्राणों के सदृश बलयुक्त (भोजाः) भोजन करने तथा प्रजा के पालन करने वाले (विरूपाः) अनेक प्रकार के

रूप वा विकारयुक्त रूप वाले और (दिवः) प्रकाशस्वरूप (असुरस्य) शत्रुओं के फेंकने वाले के (पुत्रासः) वायु के समान बलिष्ठ (वीराः) युद्धविद्या में परिपूर्ण (सहस्रसावे) संख्यारहित धन की उत्पत्ति जिस में उस संग्राम में (विश्वामित्राय) सम्पूर्ण संसार मित्र है जिस का उस के लिये (मघानि) अतिश्रेष्ठ धनों को (ददतः) देते हुए जन (आयुः) जीवन का (प्र, तिरन्ते) उल्लङ्घन करते हैं वे ही लोग आप से सत्कार पूर्वक रक्षा करने योग्य हैं ॥७॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप ऐसे वीरों के सहित प्रसन्न पुष्ट और युद्धविद्या में कुशल सेना की वृद्धि करके सर्वदा विजय को प्राप्त होइये ॥७॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

रूपंरूपं मघवा बोभवीति मायाः कृण्वानस्तन्वं१ परि स्वाम् ।
त्रिर्यद्दिवः परि मुहूर्त्तमागात्स्वैर्मन्त्रैरनृतुपा ऋतावा ॥८॥

पदार्थः—(यत्) जो (ऋतावा) सत्य से युक्त (मघवा) बहुत धन से युक्त (सूर्य्यः) सूर्य्य (दिवः) प्रकाशों को (मुहूर्त्तम्) दो घड़ी (स्वैः) अपने (मन्त्रैः) विचारों से (अनृतुपाः) नहीं ऋतुओं का पालन करने वाला होकर (स्वाम्) अपने (तन्वम्) शरीर को (त्रिः) तीन वार (परि, आ) सब प्रकार (अगात्) प्राप्त होवें और (रूपंरूपम्) रूप रूप के प्रति (मायाः) बुद्धियों को (कृण्वानः) करते हुए (परि, बोभवीति) अत्यन्त होता है उस को अध्यापक और उपदेश देने वाला करें ॥८॥

भावार्थः—जो परमेश्वर को ले के पृथिवी पर्यन्त पदार्थों के स्वरूप जानने और शीघ्र अन्य जनों के लिये विज्ञान देने और सूर्य्य के सदृश उत्तम शिक्षा सभ्यता और विनय के प्रकाश करने वाले होवें वे विद्याधर्म और राजधर्म के मन्त्र बढ़ाने में नियत करने के योग्य हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

महाँ ऋषिर्देवजा देवजूतोऽस्तभ्नात्सिन्धुमर्णवं नृचक्षाः ।
विश्वामित्रो यदवहत्सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्रः ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (महान्) बड़प्पन रूप परिमाण से सब पदार्थों से बड़ा (ऋषिः) मन्त्रों के अर्थों का जानने वाला (देवजाः) विद्वानों में उत्पन्न (देवजूतः) विद्वानों से प्रेरित (नृचक्षाः) मनुष्यों का देखने वाला (विश्वामित्रः) सब का मित्र (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य का करने वाला (कुशिकेभिः) कार्यों के सिद्धान्तों को जानने वालों से जैसे सूर्य, पृथिवी (सिन्धुम्) नदी और (अर्णवम्) समुद्र को (अस्तभ्नात्) धारण करता है वैसे राज्य को धारण करे तो लक्ष्मी को (अवहत्)

प्राप्त होता है (सुदासम्) उत्तम दान को (अप्रियायत) प्रिय के सदृश करता है उस का सब लोग सत्कार करें ॥९॥

भावार्थः—जैसे सूर्य सब लोकों से बड़ा और सब का धारणकर्त्ता तथा प्रकाश करने वाला है वैसे ही सब के जानने वाले यथार्थवक्ता पुरुष हैं ऐसा जानना चाहिये ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

हंसाईव कृणुथ श्लोकमद्रिभिर्मदन्तो गीर्भिरध्वरे सुते सचा।
देवेभिर्विप्रा ऋषयो नृचक्षसो वि पिबध्वं कुशिकाः सोम्यं मधु ॥१०॥

पदार्थः—हे (कुशिकाः) विद्याओं के सिद्धान्तों से जानने (नृचक्षसः) मनुष्यों की विद्यादृष्टि से परीक्षा करने और (ऋषयः) मन्त्रों के अर्थों को जानने वाले (विप्राः) बुद्धिमान्! आप लोग (सुते) उत्पन्न (अध्वरे) नहीं हिंसा करने योग्य पढ़ने और पढ़ाने रूप व्यवहार में (अद्रिभिः) मेघों से (मदन्तः) आनन्द को प्राप्त होते हुए (देवेभिः) विद्वानों के साथ (श्लोकम्) उत्तम स्वरूप वाणी को (कृणुथ) करो और सत्य के (सचा) समूह में वर्त्तमान (सोम्यम्) ऐश्वर्य में श्रेष्ठ (मधु) मधुर आदि गुणयुक्त द्रव्य का (वि, पिबध्वम्) पान कीजिये ॥१०॥

भावार्थः—अत्यन्त विद्वान् जन विद्वानों के प्रति जितेन्द्रियता धर्मात्मता सुशीलता और सभ्यता को ग्रहण करावें कि जिससे वे भी श्रेष्ठ होकर संसार के कल्याण को करें ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्वं राये प्र मुञ्चता सुदासः।
राजा वृत्रं जङ्घनत्प्रागपागुदगथा यजाते वर आ पृथिव्याः ॥११॥

पदार्थः—हे (कुशिकाः) जो करते और उपदेश देते वे कुश वे श्रेष्ठ विद्यमान हैं जिन में वे कुशिक और जो (सुदासः) उत्तम दान देने वाला (राजा) प्रकाशमान (प्राक्) प्रथम (अपाक्) पश्चिम और (उदक्) उत्तर से (वृत्रम्) मेघ के सदृश शत्रु का (जङ्घनत्) अत्यन्त नाश करै (अथ) इस के अनन्तर (पृथिव्याः) पृथिवी के (वरे) उत्तम स्थान में (आ, यजाते) यज्ञ करे उस का (राये) लक्ष्मी के लिये (प्र) (मुञ्चत) त्याग करो और उस (अश्वम्) घोड़े के सदृश शीघ्र चलने वाली बिजुली को (चेतयध्वम्) जनाओ और (उप, प्र, इत) प्राप्त होओ ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वानो! जो

भावार्थः—विद्वान् लोगों को दुष्ट कर्म करने वाला पुरुष द्वेष करने योग्य और धर्मात्मा सत्कार करने योग्य है। जितने प्रजा की रक्षा करने और दुष्ट पुरुषों के निवारण करने में साधन अपेक्षित होवें उनको ग्रहण करके श्रेष्ठ पुरुषों का पालन और दुष्टों का निवारण राजा आदि निरन्तर करें ॥२१॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

परशुं चिद्वि तपति शिम्बलं चिद्वि वृश्चति ।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त ! जो आप की सेना लोहार (परशुम्) परशारूप शस्त्र को (चित्) जैसे वैसे शत्रुओं को (वि, तपति) विशेष करके सन्ताप देती है (शिम्बलम्) शेमर वृक्ष के पुष्प वा पत्र को (चित्) जैसे (वि, वृश्चति) विशेष करके काटता है (प्रयस्ता) प्रेरित हुई (येषन्ती) बहता तथा प्राप्त हुआ (उखा) पाक करने का पात्र (चित्) जैसे (फेनम्) फेने को वैसे शत्रुओं को (अस्यति) फेंकती है उसका आप से सदा सत्कार करने योग्य है ।।२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा लोग श्रेष्ठ वीरों की सेना की रक्षा करते हैं वे ही विजय को प्राप्त होकर शोभित होते हैं ॥२२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न सायकस्य चिकिते जनासो लोधं नयन्ति पशु मन्यमानाः ।
नावाजिनं वाजिना हासयन्ति न गर्दभं पुरो अश्वान्नयन्ति ॥२३॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो वे (जनासः) वीरपुरुष (लोधम्) प्राप्त होने वाले को (न) नहीं (नयन्ति) प्राप्त होते हैं (पशु) पशु के सदृश (मन्यमानाः) जानते हुए (वाजिना) घोड़े से (अवाजिनम्) घोड़े जिसमें नहीं ऐसे संग्राम को (न) नहीं (हासयन्ति) हराते हैं और (अश्वात्) घोड़े से (पुरः) प्रथम (गर्दभम्) लम्बे कान वाले गदहे को (न) नहीं (नयन्ति) प्राप्त कराते हैं उनको (सायकस्य) शस्त्र समूह के दान से युक्त करने को आप (चिकिते) जानिये ॥२३॥

भावार्थः—वे ही राजा के वीर श्रेष्ठ होवें कि जो युद्धविद्या को जान के सेनाओं के अङ्गों की यथावत् रक्षा स्थिर करने और युद्ध कराने को जानते हैं ॥२३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्वं चिकितुर्न प्रपित्वम् ।
हिन्वन्त्यश्वमरणं न नित्यं ज्यावाजं परि णयन्त्याजौ ॥२४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त करने वाले ! आप की सेना के (भरतस्य) रक्षा करने और (चिकितुः) जानने वाले के (न) तुल्य (इमे) ये मेरे (पुत्राः) उत्तम प्रकार शिक्षा को प्राप्त सन्तानों के सदृश सेवक लोग (अपपित्वम्) नाश और (प्रपित्वम्) उत्तम प्रकार प्राप्त कराने को (अश्वम्) घोड़े को (अरणम्) प्रेरणा किये हुए के (न) तुल्य (हिन्वन्ति) बढ़ाते हैं और (आजौ) संग्राम में (ज्यावाजम्) धनुष की तांत के शब्द को (नित्यम्) नित्य (परि) सब प्रकार (नयन्ति) प्राप्त करते हैं उसकी और उन की आप अपने आत्मा के सदृश रक्षा करो ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजा आदि अपने नाश और वृद्धि को जानते हैं, सेना में वर्त्तमान साध्यक्ष सेवकों को युद्ध कर्म में चतुर और अनुरक्तों का पुत्र के सदृश पालन करते हैं, उन की सदा ही वृद्धि होती है, पराजय कहां से होवे ॥२४॥

इस सूक्त में बिजुली, मेघ, विद्वान्, राजा, प्रजा और सेना के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तिरेपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ निचृत्पङ्क्तिः । ९ भुरिक् पङ्क्तिः । १२ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ३ । ६ । ८ । १० । ११ । १३ । १४ त्रिष्टुप् । ४ । ७ । १५ । १६ । १८ । २० । २१ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ स्वराट् त्रिष्टुप् । १७ भुरिक् त्रिष्टुप् । १९ । २२ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब बाईस ऋचा वाले चौवनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं ॥

इमं महे विदथ्याय शूषं शश्वत्कृत्व ईड्याय प्र जभ्रुः ।
शृणोतु नो दम्येभिरनीकैः शृणोत्वग्निर्दिव्यैरजस्रः ॥१॥

पदार्थः—हे (कृत्वः) बहुत कार्य करने वाले ! जिसके वह आप (महे) बड़े (ईड्याय) स्तुति करने के योग्य (विदथ्याय) संग्राम में उत्पन्न हुए के लिये (इमम्) इस(शश्वत्) निरन्तर (शूषम्) बल को (प्र, जभ्रुः) अच्छे प्रकार धारण करते हैं उन (नः) हम लोगों को आप (दम्येभिः) देने के योग्य (अनीकैः) सेना में वर्त्तमान जनों के साथ (शृणोतु) सुनिये (अजस्रः) निरन्तर वर्त्तमान (अग्निः) विद्वान् आप (दिव्यैः) श्रेष्ठ कर्मों के साथ हम लोगों का (शृणोतु) श्रवण करो ॥१॥

भावार्थः—जो लोग युद्ध के लिये पूर्ण विद्या और बड़े बल को धारण करें उनको राजजन सुनके निरन्तर सत्कार करें और उनके कृत्य की निरन्तर उन्नति करें जिससे कि प्रसन्न हुए वे विजय से राजा को सदा शोभित करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

महिं महे दिवे अर्चा पृथिव्यै कामों म इच्छञ्चरति प्रजानन् ।
ययोर्ह स्तोमें विदथेषु देवाः सपर्यवों मादयन्ते सचायोः ॥२॥

पदार्थः—जो युद्ध विद्या को (प्रजानन्) जानता और विजय करता और राज्य की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ (महे) बड़े (दिवे) प्रकाशमान के और (पृथिव्यै) भूमि के राज्य की प्राप्ति के लिये (चरति) चलता है उसको जो (मे) मेरी (महि) बड़ी (कामः) अभिलाषा है उसको शोभित करने की इच्छा करता हुआ विजय को प्राप्त होता है उसका (अर्च) सत्कार करो । और (ययोः) जिन विद्या और राज्य के (स्तोमे) प्रशंसा करने योग्य विजय और (विदथेषु) संग्रामों में (सपर्य्यवः) सेवक (देवाः) विद्वान् लोग (ह) निश्चय (आयोः) जीव के (सचा) सम्बन्ध से (मादयन्ते) प्रसन्न करते हैं वे दोनों आप उन लोगों को आनन्द दीजिये ॥२॥

भावार्थ—जो विद्या और राज्य की वृद्धि की कामना करने और अधिक अवस्था वाले युद्धविद्या में निपुण जन, राजा और मन्त्रियों का लक्ष्मी और विजय से सत्कार करें, उन जनों को राजा और मन्त्री भी सदा ही सुखित करें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

युवोर्ऋतं रोदसी सत्यमस्तु महे षु णः सुविताय प्र भूतम् ।
इदं दिवे नमो अग्ने पृथिव्यै सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष राजन् ! (युवोः) आप दोनों स्वामी सेवक के (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश (महे) बड़े (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये

(इदम्) यह (प्र, भूतम्) अत्यन्त (ऋतम्) प्राप्त होने योग्य कारण (सत्यम्) व्यभिचार रहित अर्थात् नहीं विपरीत होने वाला (रत्नम्) सुवर्ण और हीरा आदि (नः) हम लोगों का (सु, अस्तु) श्रेष्ठ हो और जैसे मैं (पृथिव्यै) भूमि और (दिवे) प्रकाशमान के लिये (नमः) अन्न आदि का (सपर्यामि) सेवन करता और (प्रयसा) प्रयत्न से विजय को (यामि) प्राप्त होता हूं वैसे आप दोनों वर्त्ताव कीजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे भूमि और सूर्य सम्पूर्ण संसार का व्यवहार चलाय के लक्ष्मी और अन्न से युक्त करता है वैसे ही राजा आदि पुरुषों को चाहिये कि प्रयत्न से उत्तम कर्मों का सेवन करके अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतावरी रोदसी सत्यवाचः ।
नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः ॥४॥

पदार्थः—हे (पृथिवि) भूमि के सदृश क्षमायुक्त राज्ञि ! जो (सत्यवाचः) यथार्थ वाणी वाले (वेविदानाः) अत्यन्त जानते हुए आप को (ववन्दिरे) प्रणाम करें और आप आप के स्वामी को (वाम्) आप दोनों (शूरसातौ) शूरवीर पुरुषों के विभाग और (समिथे) संग्राम में (नरः) अग्रणी पुरुषों के (चित्) सदृश प्रणाम करो और (उतो) भी (ऋतावरी) सत्य को प्राप्त कराने वाली स्त्री (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश (पूर्व्याः) प्राचीन जनों में चतुर पुरुष आप दोनों को (हि) और (आ, विविद्रे) सब प्रकार प्राप्त होते हैं वह स्त्री और आप उन का और उसका सत्कार करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वे ही लोग राज्य करने के योग्य हैं कि जो सत्य मानने सत्य आचरण करने सत्य वाणी बोलने और इन्द्रियों के जीतने वाले विद्वान् जन होवें और वे ही रानी योग्य स्त्रियां हैं कि जो उक्त प्रकार के पति के सदृश होवें ॥४॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

को अद्धा वेद क इह प्र वोचद्देवाँ अच्छा पथ्या३ का समेति ।
ददृश्र एषामवमा सदांसि परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (इह) इस विज्ञान में परमात्मा और धर्म को (अद्धा) साक्षात् (कः) कौन (वेद) जाने और (कः) कौन पुरुष (देवान्) विद्वानों को (अच्छ) उत्तम प्रकार (प्र, वोचत्) उपदेश देवे (का) कौन (पथ्या) उत्तम मार्ग से युक्त

(देवान्) विद्वानों को (सम्, एति) प्राप्त होती है और (एषाम्) इन विद्वानों के (परेषु) सूक्ष्मों को (अवमा) नीचे भाग में वर्त्तमान (सदांसि) वस्तुएं (गुह्येषु) गुप्त अर्थात् रक्षा करने योग्य (व्रतेषु) सत्य भाषण आदि नियमों में (या) जो ज्ञान और सत्य भाषण आदिकों को (ददृश्रे) देखें वे पूर्वोक्त सम्पूर्ण को जानें ॥५॥

भावार्थः—इस संसार में विरला ही ऐसा मनुष्य होता है कि जो परमात्मा को जान और उसकी आज्ञा के अनुकूल आचरण स्वीकार करके सत्य का उपदेश देता है ऐसा कोई विद्वान् जो इस संसार में इस लोक और परलोक का ज्ञाता होवे ॥५॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कविर्नृचक्षा अभिषीमचष्ट ऋतस्य योना विघृते मदन्ती ।
नाना चक्राते सदनं यथा वेः समानेन क्रतुना संविदाने ॥६॥

पदार्थः—हे स्त्री और पुरुष ! (यथा) जैसे (कविः) सम्पूर्ण विषयों के जानने (नृचक्षाः) मनुष्यों के देखने वाले परमेश्वर (ऋतस्य) सत्य कारण के (योना) गृह में (विघृते) विशेष करके प्रकाशित में (नाना) अनेक प्रकार के (सदनम्) स्थान को (चक्राते) करते हैं (मदन्ती) आनन्द करती हुई (वेः) पक्षी के (समानेन) तुल्य (क्रतुना) कर्म से (संविदाने) की है प्रतिज्ञा जिन्हों ने उन स्त्रियों के सदृश वर्त्तमान अन्तरिक्ष और पृथिवी को (सीम्) सब ओर (अभि, अचष्ट) प्रकाशित किया, उस की सब लोग उपासना करें ॥६॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने अनेक प्रकार के प्रकाश और अप्रकाश से युक्त लोक रचे वही सब को जानने और सब को देखने वाला परमात्मा निरन्तर उपासना करने योग्य है ॥६॥

अब शिष्य के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

समान्या वियुते दूरे अन्ते ध्रुवे पदे तस्थतुर्जागरूके ।
उत स्वसारा युवती भवन्ती आदु ब्रुवाते मिथुनानि नाम ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (युवती) यौवन अवस्था को प्राप्त हुई (स्वसारा) भगिनी (भवन्ती) वर्त्तमान (मिथुनानि) जोड़ों को (नाम) सञ्ज्ञा को (ब्रुवाते) कहती हैं (समान्या) तुल्य स्वभाव वाली (वियुते) मिली और नहीं मिली हुई (दूरेअन्ते) दूर और समीप में (ध्रुवे) दृढ़ (पदे) प्राप्त होने योग्य (उत) भी (जागरूके) प्रसिद्ध अन्तरिक्ष और पृथिवी (तस्थतुः) स्थित हैं उनको (उ) और जानने के (आत्) अनन्तर ऐश्वर्य को प्राप्त होना चाहिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रेम से युक्त भगिनीजन मनोवाञ्छित वचनों को कहती हैं और जोड़े वर्त्तमान हैं वैसे ही दूर और समीप में वर्त्तमान प्रकाश और अप्रकाश से युक्त लोक इस संसार में वर्त्तमान हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विश्वेदेते जनिमा सं विविक्तो महो देवान्बिभ्रती न व्यथेते।
एजद्ध्रुवं पत्यते विश्वमेकं चरत्पतत्रि विषुणं वि जातम् ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वानो! जो (एते) ये अन्तरिक्ष और पृथिवी (महः) बड़े अर्थात् श्रेष्ठ (देवान्) उत्तम पदार्थों को (बिभ्रती) धारण करती हुई (विश्वा) सब (जनिमा) जन्मों को (सम्, विविक्तः) पृथक् करती हैं और (न) नहीं (व्यथेते) अपने परिधि अर्थात् मण्डल में इधर उधर नहीं हिलते हैं और (यत्र) जिस में (इत्) ही (ध्रुवम्) अन्तरिक्ष (एजत्) चलता हुआ (एकम्) सहाय रहित अकेला (विषुणम्) नीचे को प्राप्त है (जातम्) उत्पन्न (पतत्रि) गिरने वाला (चरत्) प्राप्त होता हुआ (विश्वम्) सम्पूर्ण संसार के (वि, पत्यते) स्वामी के सदृश वर्त्तमान उसको आप लोग जानें ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! इन पृथिवी सूर्य्यरूप अधिकरण और अन्तरिक्ष में सम्पूर्ण पदार्थ वसते और उत्पन्न होते मरते और नाश को प्राप्त होते हैं ऐसा जानो ॥८॥

अब ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सना पुराणमध्येम्यारान्महः पितुर्जनितुर्जामि तन्नः।
देवासो यत्र पनितार एवैरुरौ पथि व्युते तस्थुरन्तः ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (यत्र) जिस में (पनितारः) व्यवहार करने अर्थात् स्तुति करने वाले (देवासः) विद्वान् लोग (एवैः) प्राप्त करने वालों से (उरौ) बड़े (व्युते) आवरण अर्थात् दूसरे करके ढांपने से रहित इस प्रकार प्रसिद्ध (पथि) मार्ग में (अन्तः) मध्य में (तस्थुः) वर्त्तमान हैं (तत्) वह (पितुः) पालन करने और (जनितुः) उत्पन्न करने वाले (महः) श्रेष्ठ पूजा करने योग्य से (जामि) उत्पन्न हुआ (आरात्) दूर वा समीप से जाना जाय और वह (नः) हम लोगों के दूर वा समीप से (सना) प्राचीन काल से सिद्ध और (पुराणम्) प्रथम नवीन को (अधि, एमि) स्मरण करता हूं उस के मध्य में आप लोग भी हैं ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस में सम्पूर्ण संसार स्थित है और जिस की कही हुई मर्य्यादा से चलते हैं वह सब का पालक उत्पन्न करने वाला सब पदार्थों से बड़ा अनादि से सिद्ध ब्रह्म उपासना करने योग्य है, जो उस को जाने तो समीप में वर्त्तमान और न जाने तो अत्यन्त दूर वर्त्तमान होता है ॥९॥

फिर भी उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमं स्तोमं रोदसी प्र ब्रवीम्यृदूदराः शृणवन्नग्निजिह्वाः ।
मित्रः सम्राजो वरुणो युवान आदित्यासः कवयः पप्रथानाः ॥१०॥

पदार्थः—जिस (इमम्) इस परमेश्वर (स्तोमम्) प्रशंसा करने योग्य और (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश सम्पूर्ण विद्याओं से जानने योग्य प्रकाश और धारण करने वाले का (मित्रः) सब का मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ हम (प्र, ब्रवीमि) उपदेश देते हैं उस को (ऋदूदराः) सत्य है हृदय में जिन के वे (सम्राजः) अच्छे प्रकार प्रकाशमान (अग्निजिह्वाः) अग्नि के सदृश प्रकाशमान सत्य के उपदेश देने वाली जिह्वा है जिनकी वे (युवानः) युवा अवस्था को प्राप्त (आदित्यासः) सूर्य्य के सदृश पूर्ण विद्या से प्रकाशित (कवयः) तीव्र बुद्धि से युक्त (पप्रथानाः) प्रख्यात बुद्धिमान् लोग (शृणवन्) सुनो ॥१०॥

भावार्थः—जैसे चक्रवर्ती राजा अपनी आज्ञा से सम्पूर्ण न्याय को प्रकाशित करता है वैसे ही यथार्थवक्ता विद्वान् लोग अध्यापन और उपदेश से परमेश्वर और उसकी आज्ञा को प्रसिद्ध करते हैं, और जो लोग अड़तातीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य करके पूर्णविद्या युक्त हैं, वे ही इसके कहने सुनने निश्चय और अभ्यास करने और प्रत्यक्ष करने को समर्थ होते हैं ॥१०॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वस्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानः ।
देवेषु च सवितः श्लोकमश्रेरादस्मभ्यमा सुव सर्वतातिम् ॥११॥

पदार्थः—हे (सवितः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के दाता (सुजिह्वः) सुन्दर जिह्वायुक्त (पत्यमानः) पति के सदृश आचरण करते हुए ! आप (दिवः) बिजुली आदि के (विदथे) विज्ञान और (देवेषु) पृथिवी आदिकों में (हिरण्यपाणिः) हस्त के सदृश तेज से युक्त (सविता) सूर्य्य के सदृश (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये जिस (सर्वतातिम्) सम्पूर्ण ही (श्लोकम्) वाणी का (अश्रेः) आश्रम करिये उस को (च) और (आत्) अनन्तर (आ) सब ओर से (त्रिः) तीन वार (आ, सुव) उत्पन्न करो ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य लोकों का अधिष्ठाता है वैसे ही विद्वान् सब का अध्यक्ष होवे ॥११॥

अब शिष्य के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सुकृत्सुपाणिः स्ववाँ ऋतावा देवस्त्वष्टावसे तानि नो धात् ।
पूषण्वन्त ऋभवो मादयध्वमूर्ध्वग्रावाणो अध्वरमतष्ट ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (पूषण्वन्तः) बहुत पुष्टिकर्त्ता विद्यमान हैं जिन के वे (ऋभवः) बुद्धिमान् ! आप लोग जैसे (सुकृत्) सुन्दर धर्मयुक्त कर्मकर्त्ता (सुपाणिः) सुन्दर हस्तयुक्त (स्ववान्) बहुत आत्मजन हैं जिस के वह (ऋतावा) सत्य का प्रकाश करने वाला (त्वष्टा) प्रकाशकर्त्ता (देवः) विद्वान् (नः) हम लोगों को (अवसे) रक्षण आदि के लिये (तानि) उन अपेक्षित पदार्थों को (धात्) धारण करे और (ग्रावाणः) मेघों के सदृश (अध्वरम्) पालन करने वाले व्यवहार को (अतष्ट) सूक्ष्म करता है वैसे ही हम लोगों के लिये (मादयध्वम्) आनन्द दीजिये ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे धार्मिक विद्वान् लोग मेघों के सदृश सब को आनन्द देते हैं वैसे ही सब लोग विद्वानों को आनन्द देवें ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवो मर्या ऋतजाता अयासः ।
सरस्वती शृणवन्यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः ॥१३॥

पदार्थः—(सरस्वती) विद्यायुक्त स्त्री जिस (सहवीरम्) और पुरुषों के सहित वर्त्तमान (रयिम्) धन को (विद्युद्रथाः) बिजुली से युक्त हैं वाहन जिन के वे (मरुतः) मरण धर्म वाले (ऋष्टिमन्तः) बहुत गतियों से युक्त (दिवः) कामना करते हुए के सम्बन्धी (मर्य्याः) मनुष्य (ऋतजाताः) सत्य से प्रसिद्ध (अयासः) विद्याओं को प्राप्त (यज्ञियासः) शिल्प-व्यवहार के करने वाले (तुरासः) शीघ्रकर्त्ता विद्वान् लोग (शृणवत्) सुनो और (धात) धारण करो वैसे इस को सुने और धारण करे ॥१३॥

भावार्थः—जैसे पुरुष लोग विद्या का अभ्यास करें वैसे ही स्त्रियां भी करके लक्ष्मीयुक्त हों। दोनों स्त्री और पुरुष आलस्य का त्याग करके शिल्पविषयक सम्पूर्ण कर्मों को सिद्ध करो ॥१३॥

अब वक्ता के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विष्णुं स्तोमासः पुरुदस्ममर्का भगस्येव कारिणो यामनि ग्मन् ।
उरुक्रमः ककुहो यस्य पूर्वीर्न मर्द्धन्ति युवतयो जनित्रीः ॥१४॥

पदार्थः – हे विद्वन् (उरुक्रमः) बहुत पुरुषार्थ वाले ! आप जैसे (स्तोमासः) स्तुति करने वाले (अर्काः) पूजा करने योग्य (भगस्येव) ऐश्वर्य्य के तुल्य (कारिणः) करने वाले विद्वान् लोग (यामनि) प्राप्त होने योग्य मार्ग में (पुरुदस्मम्) बहुत दुःख नाश हुए जिससे उस (विष्णुम्) व्यापक को (ग्मन्) प्राप्त होते हैं और (यस्य) जिस की (युवतयः) युवावस्था को प्राप्त (ककुहः) बड़ी (पूर्वीः) प्राचीन काल में वर्त्तमान (जनित्रीः) माताओं का (न) नहीं (मर्धन्ति) नाश करते हैं वैसे आप वर्त्ताव करो ॥१४॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । जो लोग भगवान् की उपासना करने वाले ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्त्तमान ऐश्वर्ययुक्त हो कर नहीं नाश होने वाली बड़ी लक्ष्मियों को प्राप्त हो दुःख के पार जाकर बड़े सुख को प्राप्त होते हैं ॥१४॥

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रो विश्वैर्वीर्यैः३पत्यमानः उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
पुरन्दरो वृत्रहा धृष्णुषेणः सङ्गृभ्या न आ भरा भूरि पश्वः ॥१५॥

पदार्थ—हे राजन् ! जो (वृत्रहा) मेघ को नाश करने वाले सूर्य के सदृश (पुरन्दरः) शत्रुओं के नगरों का नाश करने वाला (पत्यमानः) स्वामी के सदृश आचरण करता हुआ (धृष्णुसेनः) दृढ़ सेना और (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त राजा आप (विश्वैः) सम्पूर्ण (वीर्यैः) पराक्रमों से (महित्वा) महिमा से (उभे) दोनों (रोदसी) न्याय और भूमि के राज्य को (आ, पप्रौ) व्याप्त करते हैं वह आप (भूरि) बहुत (नः) हम लोगों और (पश्वः) पशुओं को (संगृभ्य) उत्तम प्रकार ग्रहण करके (आ, भरे) सब प्रकार पोषण कीजिये ॥१५॥

भावार्थः—जैसे भूमि और सूर्य सब पदार्थों को धारण और उत्तम प्रकार पोषण करके बढ़ाते हैं वैसे ही राजा आदि अध्यक्ष सब उत्तम गुणों को धारण प्रजा का पोषण, सेना की वृद्धि और शत्रुओं का नाश करके प्रजा की वृद्धि करें ॥१५॥

अत्र विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नासत्या मे पितरा बन्धुपृच्छा सजात्यमश्विनोश्चारु नाम ।
युवं हि स्थो रयिदौ नो रयीणां दात्रं रक्षेथे अकवैरदब्धा ॥१६॥

पदार्थः—हे सभा और सेना के स्वामी ! (युवम्) आप दोनों (हि) जिससे कि (नः) हम लोगों के लिये (रयिदौ) लक्ष्मी देने वाले (रयीणाम्) धनों के (दात्रम्) दान की (रक्षेथे) रक्षा करते हैं (अकवैः) कुत्सित भिन्न अर्थात् उत्तम कर्मों से (अदब्धा) नहीं हिंसित हुए (स्थः) होते हैं और जिन की (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य (चारु) सुन्दर (नाम) सञ्ज्ञा है उन (बन्धुपृच्छा) बन्धुओं का कुशल आदि पूछने वाले (नासत्या) असत्य के त्यागी (मे) मेरे (पितरा) पालन करने वालों के सदृश (सजात्यम्) समान जाति वाले सुन्दर नाम की रक्षा करो ॥१६॥

भावार्थः - जो विद्वान् लोग माता और पिता के सदृश सब के लिये विद्या और धन देने वाले धर्मपूर्वक आचरण करते हुए अपने समान जाति वाले तथा अन्य जनों की रक्षा करते हैं वे सब के पूजा करने योग्य होते हैं ॥१६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

महत्तद्वः कवयश्चारु नाम यद्ध देवा भवथ विश्व इन्द्रे ।
सखा ऋभुभिः पुरुहूत प्रियेभिरिमां धियं सातये तक्षता नः ॥१७॥

पदार्थः—हे (कवयः) विद्वानो ! (वः) आप लोगों का (यत्) जो (महत्) बड़ा (चारु) सुन्दर (नाम) नाम है (तत्) वह और उस से युक्त (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) विद्वान् और (ह) निश्चय आप लोग (भवथ) होओ (प्रियेभिः) अपने सदृश प्रिय (ऋभुभिः) बुद्धिमानों के साथ (इन्द्रे) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वा राजा में (सातये) सत्य और असत्य के विचार के लिये (नः) हम लोगों की (इमाम्) इस (धियम्) बुद्धि की (तक्षत) रक्षा करो। और हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित हुए राजेन्द्र ! आप इन के साथ (सखा) मित्र हुए इस बुद्धि को प्राप्त होओ ॥१७॥

भावार्थः—उन लोगों के ही नाम प्रशंसा करने योग्य और प्रसिद्ध होवें कि जो विद्वान् और अविद्वानों में मित्रता को प्राप्त होकर धर्म और अधर्म के विचार के लिये उत्तम बुद्धि सब के लिये देते हैं ॥१७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अर्य्यमा णो अदितिर्यज्ञियासोऽदब्धानि वरुणस्य व्रतानि ।
युयोत नो अनपत्यानि गन्तोः प्रजावान्नः पशुमाँ अस्तु गातुः ॥१८॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (अदितिः) माता के सदृश (अर्य्यमा) न्यायाधीश (यजियासः) जिस में हिंसा न हो ऐसे यज्ञ के करने वाले आप लोगो ! (नः) हम लोगों के (वरुणस्य) श्रेष्ठ के (अदब्धानि) हिंसा भिन्न (व्रतानि) सत्य बोलने आदि व्रतों को (युयोत) प्राप्त कराइये (नः) हम लोगों के (गन्तोः) प्राप्त होने योग्य व्यवहार से (अनपत्यानि) नहीं विद्यमान हैं सन्तान जिनमें उन को प्राप्त कराइये जिस से (नः) हम लोगों की (गातुः) पृथिवी (प्रजावान्) सन्तानयुक्त और (पशुमान्) बहुत पशुयुक्त (अस्तु) हो ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे विद्वानो ! आप लोग हम लोगों को न्यायाधीश और माता के सदृश अन्यायाचरण से अलग करके और सत्य धर्मयुक्त कर्मों को प्राप्त कराके सम्पूर्ण पृथिवी को बहुत प्रजा और असंख्य धनयुक्त करो ॥१८॥

देवानां दूतः पुरुध प्रसूतोऽनागान्नो वोचतु सर्वताता ।
शृणोतु नः पृथिवी द्यौरुतापः सूर्य्यो नक्षत्रैरुर्वन्तरिक्षम् ॥१९॥

पदार्थः—हे (पुरुध) बहुतों को धारण करने वाले ! (देवानाम्) विद्वानों के (दूतः) सत्य और असत्य समाचार के देने वाले (प्रसूतः) उत्पन्न आप (सर्वताता) सब को ही (अनागान्) अपराध से रहित (नः) हम लोगों को भूमि आदि की विद्याओं का (वोचतु) उपदेश दीजिये । और (नक्षत्रैः) कारण रूप से नहीं नाश होने वालों के साथ (उरु) व्यापक (अन्तरिक्षम्) आकाश के सदृश नहीं हिलना (सूर्य्यः) सूर्य्य के समान विद्या का प्रकाश (पृथिवी) भूमि के सदृश क्षमा और (द्यौः) बिजुली के सदृश विद्या (उत) और (आपः) जलों के सदृश शान्ति (नः) हम लोगों को प्राप्त हो और हम लोगों के वचनों को (शृणोतु) सुनो ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो धर्म्मसभा के अधिकृत लोगों के आधीन में वर्त्तमान उपदेश देने वाले सब को सत्य और असत्य का उपदेश देकर धर्मात्मा करें और उनके प्रश्नों को सुन के समाधान करें और पृथिवी आदिकों के समीप से क्षमा आदि गुणों का ग्रहण कर के अन्यों को ग्रहण करा पाखण्ड का नाश और धर्म को प्राप्त करा के सब को श्रेष्ठ करें ॥१९॥

शृण्वन्तु नो वृषणः पर्वतासो ध्रुवक्षेमास इळया मदन्तः ।
आदित्यैर्नो अदितिः शृणोतु यच्छन्तु नो मरुतः शर्म भद्रम् ॥२०॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग (इळया) प्रशंसित वाणी के सहित वर्त्तमान

(नः) हम लोगों कीर्त्तिमानों को (शृण्वन्तु) सुनो (वृषणः) वृष्टि करने वाले (ध्रुवक्षेमासः) निश्चित रक्षा है जिन से वे (पर्वतासः) मेघ जैसे वैसे हम लोगों की (मदन्तः) प्रसन्न हुए वृद्धि करो । और (आदित्यैः) पूर्ण विद्वानों के साथ (अदितिः) माता (नः) हम लोगों की (शृणोतु) सुनें (मरुतः) मनुष्य लोग (नः) हम लोगों के लिये (भद्रम्) कल्याण करने वाले (शर्म) श्रेष्ठ गृह के सदृश सुख को (यच्छन्तु) देवें ।।२०।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सब प्राप्तियों से प्रथम उत्तम शिक्षा तदनन्तर विद्या पुनः सत्सङ्ग से कल्याणकारक आचरण उत्तम बातों का श्रवण और उपदेश करके सब के योग्य [योग] अर्थात् भोजन आच्छादन के निर्वाह और कल्याण को सिद्ध करें ।।२०।।

सदा सुगः पितुमाँ अस्तु पन्था मध्वा देवा ओषधीः सं पिपृक्त ।
भगो मे अग्ने सख्ये न मृध्या उद्रायो अश्यां सदनं पुरुक्षोः ।।२१।।

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वानो ! आप लोग (मध्वा) मधुर आदि गुणों से युक्त (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियों को (सम्) (पिपृक्त) उत्तम प्रकार प्राप्त हों जिससे हम लोगों का (सुगः) सुखपूर्वक चलते हैं जिसमें और (पितुमान्) बहुत अन्न आदि विद्यमान हैं जिसमें ऐसा (पन्थाः) मार्ग सदा सब काल में (अस्तु) हो और हे (अग्ने) विद्वन् ! (मे) मेरे (सख्ये) मित्र के भाव अर्थात् मित्रपन वा कर्म में आप (न) नहीं (मृध्याः) नाश करो मेरा (भगः) ऐश्वर्य्य आप का हो और जैसे मैं (पुरुक्षो): बहुत अन्न वाले के (सदनम्) गृह और (रायः) धनों को (उत्, अश्याम्) प्राप्त होऊं वैसे आप भी इन गृह धनादि वस्तुओं को प्राप्त होइये ।।२१।।

भावार्थः—जो विद्वान् लोग वैद्य होकर सर्वदा ओषधियों से रोगों का निवारण करके सब को रोग रहित करें और सदैव मित्रता करके राजा को चाहिये कि दुष्ट डाकू रूप कण्टकों से तथा भय से रहित सरल मार्ग बनावें कि जिन मार्गों में जाकर तथा आकर प्रजायें बहुत धनवाली होवें ।।२१।।

स्वदस्व हव्या समिषो दिदीह्यस्मद्र्य१क् सं मिमीहि श्रवांसि ।
विश्वाँ अग्ने पृत्सु ताञ्जेषि शत्रूनहा विश्वा सुमना दीदिही नः ।।२२।।

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान ! आप (अस्मद्र्यक्) जो हम लोगों को ज्ञान, गमन, प्राप्ति और सत्कार देता है वह (हव्या) भोजन करने योग्य (श्रवांसि) अन्न वा श्रवणों का (स्वदस्व) भोग करें (इषः) विज्ञानों का (सम, दिदीहि) प्रकाश करो । और अन्न वा श्रवणों को (सम, मिमीहि) तोलो और सुनो जिस से कि आप

(पृत्सु) संग्रामों में (तान्) उनको (विश्वान्) सम्पूर्ण (शत्रून्) शत्रुओं को (जेषि) जीतते हो तिससे (विश्वा) सब (अहा) दिनों को (सुमनाः) प्रसन्नचित्त होते हुए (दीदिहि) प्रकाशित होइये और (नः) हम लोगों को प्रकाशित कीजिये ।।२२।।

भावार्थः--राजा आदि पुरुषों को चाहिये कि बुद्धि के नाश करने वाले अन्न आदि का त्याग करना कहके विज्ञान बढ़ाय के लोक से वार्त्ताओं को सुन के सेनाओं की वृद्धि करके और शत्रुओं को जीत कर सब काल में आनन्द और शोक का त्याग करें और धर्म से प्रजाओं का पालन करके विषयों में आसक्ति का त्याग करके आनन्द करना चाहिये ॥२२॥

इस सूक्त में राजा विद्वान् प्रजा अध्यापक शिष्य ईश्वर श्रोता वक्ता और शूरवीर के कर्म्म और गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौवनवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

---

प्रजापतिर्विश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषयः । विश्वेदेवाः । १ उषाः । २—१० अग्निः । ११ अहोरात्रौ । १२—१४ रोदसी । १५ रोदसी द्युनिशौ वा । १६ दिशः। १७—२२ इन्द्रः पर्जन्यात्मा त्वष्टा वाग्निश्च देवताः । १ । २ । ६ । ७ । ९—१२ । १९ । २२ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । ८ । १३ । १६ । २१ त्रिष्टुप् । १४ । १५ । १८ विराट् त्रिष्टुप् । १७ भुरिक् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ । २० स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

उषसः पूर्वा अध यद्व्यूषुर्महद्वि जज्ञे अक्षरं पदे गोः ।
व्रता देवानामुप नु प्रभूषन्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१॥

पदार्थः--(यत्) जो (उषसः) प्रातःकाल से (पूर्वाः) प्रथम हुए (व्यूषुः) विशेष कर के बसते हैं वह (महत्) बड़ा (अक्षरम्) नहीं नाश होने वाला (महत्) बड़ा तत्वनामक (गोः) पृथिवी के (पदे) स्थान में (वि, जज्ञे) उत्पन्न हुआ जो (एकम्) द्वितीय और सहाय रहित (देवानाम्) पृथिवी आदिकों में बड़े (असुरत्वम्) प्राणों में रमने वाले को (प्र, भूषन्) शोभित करता हुआ (अध) उसके अनन्तर (देवानाम्) विद्वानों के (व्रता) नियम (उप) समीप में (नु) शीघ्र उत्पन्न हुए उसको आप लोग जानिये ।।१।।

भावार्थः--जो बिजुली नामक वस्तु को प्रातःकाल से सेवन करते हैं उनके सदृश वर्त्तमान एक द्वितीय रहित ब्रह्म प्रकृति आदि पदार्थों में

व्याप्त हुआ वह सब को धारण करता है वही सब करके उपासना करने योग्य है ॥१॥

मो षू णो अत्र जुहुरन्त देवा मा पूर्वे अग्ने पितरः पदज्ञाः ।
पुराण्योः सद्मनोः केतुरन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! जो (पुराण्योः) अनादि काल से सिद्ध बिजुली और आकाश रूप प्रकृतियों (सद्मनोः) सब के रहने के स्थानों और (देवानाम्) पृथिवी आदि वा जीवों के (अन्तः) मध्य में (केतुः) ज्ञानस्वरूप (महत्) बड़ा (एकम्) अपने सदृश द्वितीय पदार्थ रहित ब्रह्म (असुरत्वम्) प्राणों में क्रीड़ा करता हुआ है (अत्र) इस ब्रह्म वा विज्ञान के व्यवहार में (नः) हम लोगों को (पदज्ञाः) प्राप्त होने योग्य के जानने वाले (पूर्वे) प्रथम उत्पन्न हुए (पितरः) विज्ञान वाले (मो) नहीं (जुहुरन्त) प्रसहन करें और (देवाः) विद्वान् लोग इस विज्ञानरूप व्यवहार में हम लोगों को (मा) नहीं (सु) उत्तम प्रकार सहें इस प्रकार आप भी यह जान के आप को ये लोग न सहें ॥२॥

भावार्थः—वे ही इस संसार में विद्वान् जन पिता के सदृश होवें कि जो प्रकृति आदि पदार्थों में व्याप्त सर्वान्तर्य्यामी ब्रह्म को उत्तम प्रकार जान के अन्यों को जनावें ॥२॥

वि मे पुरुत्रा पतयन्ति कामाः शम्यच्छा दीद्ये पूर्व्याणि ।
समिद्धे अग्नावृतमिद्वदेम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥३॥

पदार्थः—जिन से (मे) मेरी (पुरुत्रा) बहुत (कामाः) अभिलाषायें (पतयन्ति) स्वामी को स्पष्ट कहने की इच्छा करती हैं उन (पूर्व्याणि) पूर्व जनों से सिद्ध किये गये (शमि) कर्मों को मैं (अच्छ) उत्तम प्रकार (वि) विशेष करके (दीद्ये) प्रकाश करूं (समिद्धे) प्रदीप्त (अग्नौ) अग्नि में जैसे (देवानाम्) उत्तम पदार्थों के मध्य में (महत्) बड़े (एकम्) सहाय रहित (असुरत्वम्) प्राणों के आधार (ऋतम्) सत्य को (वदेम) कहें उस को (इत्) ही सब लोग कहें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य लोग आलस्य को त्याग के पूर्व पुरुषों करके किये हुए कर्मों का सेवन करके देवों के देव सब के आधार सत्यस्वरूप और दीपक से घट आदि के सदृश भीतर व्याप्त परमात्मा को साक्षात् देख के अन्य जनों के प्रति उपदेश देवें ॥३॥

समानो राजा विभृतः पुरुत्रा शये शयासु प्रयुतो वनानु ।
अन्या वत्सं भरति क्षेति माता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिन (पुरुत्रा) प्राचीन काल से प्रसिद्ध (शयासु) शयन करें जिनमें विजुली आदि पदार्थ उन में (प्रयुतः) विभक्त हुआ फिर मिल गया (विभृतः) विशेष कर के धारण किया गया (समानः) एक (राजा) प्रकाशमान सूर्य्य (शये) शयन करता है (वना) किरणों को सेवन करता है (अन्या) भिन्न त्रिगुण स्वरूप प्रकृति (माता) माता (वत्सम्) पुत्र को धारण करती है और सब को (क्षेति) बसाती है वह (देवानाम्) सूर्य्यादिक वा विद्वानों के मध्य में (महत्) सत्कार करने योग्य (एकम्) द्वितीय रहित (असुरत्वम्) दूर करता है दुःखों को जो उस का होना उसको आप लोग (अनु) शीघ्र जानिये ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस करके प्रकाशित हुए सूर्य्य आदि प्रकाशित होते हैं जो अव्यक्त अर्थात् प्रकृति में सब को उत्पन्न करके तथा धारण कर के माता के सदृश रक्षा करता है और जो यथार्थवक्ता विद्वानों करके सत्कार करने योग्य है उस ब्रह्म की आप लोग उपासना करो ॥४॥

आक्षित्पूर्वास्वपरा अनूरुत्सद्यो जातासु तरुणीष्वन्तः ।
अन्तर्वतीः सुवते अप्रवीता महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (पूर्वासु) प्राचीन काल में विद्यमान और (सद्यः) समान दिन में (जातासु) उत्पन्न और (तरुणीषु) युवावस्था वालियों के सदृश वर्त्तमान प्रजाओं के (अन्तः) मध्य में (आक्षित्) जो चारों ओर सर्वत्र बसता है वह (अनूरुत्) उपदेश देने वाला वर्त्तमान है और जिसके उत्पन्न करने से (अपराः) उत्पन्न की जातीं (अन्तर्वतीः) मध्य में कारण विद्यमान है जिन में उन (अप्रवीताः) नहीं व्याप्त अर्थात् गणना से नाप सकने योग्य प्रजा (सुवते) उत्पन्न होती हैं वही (देवानाम्) उत्तम गुण वाले सूर्य्य आदिकों के मध्य में (महत्) सब से बड़े (असुरत्वम्) सब से फेंकने वाले और (एकम्) चेतनमात्र स्वरूप परमात्मा की आप लोग सेवा करो ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो उत्पन्न, उत्पन्न हो गई और उत्पन्न होने वाली प्रजाओं में व्याप्त धारण करने वाला अन्तर्यामी वर्त्तमान है उस परमात्मा की सेवा करो ॥५॥

शयुः परस्तादध नु द्विमाताबन्धनश्चरति वत्स एकः।
मित्रस्य ता वरुणस्य व्रतानि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (परस्तात्) दूसरे देश में (शयुः) व्याप्त होकर शयन करने वाला (द्विमाता) दो वायु और आकाश माता हैं जिस अग्नि के वह (अबन्धनः) जो बन्धनरहित वह (वत्सः) पुत्र के सदृश वर्त्तमान (एकः) सहाय रहित (नु, चरति) शीघ्र चलता है (अध) इस के अनन्तर जो (देवानाम्) विद्वानों का (महत्) बड़ा (एकम्) सहाय रहित तेज (असुरत्वम्) फेंकनापन (ता) वे (व्रतानि) सत्यभाषण आदि कर्म (मित्रस्य) मित्र और (वरुणस्य) सब में उत्तम और संसार के प्रबन्ध करने वाले परमात्मा के हैं ऐसा जानना चाहिये ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो कुछ इस संसार में सूर्य्य आदि वस्तु और जो इस संसार में अनेक प्रकार की रचना हैं और जो विचित्ररूप स्वाद आदि वर्त्तमान हैं और सब अपने अपने मण्डल में घूमते हैं प्रलय से प्रथम नहीं नष्ट होते हैं वे ये परमात्मा के कर्म हैं यह जानना चाहिये ॥६॥

द्विमाता होता विदथेषु सम्राळन्वग्रं चरति क्षेति बुध्नः।
प्र रण्यानि रण्यवाचो भरन्ते महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस करके निर्माण किया गया (द्विमाता) दो वायु और आकाश हैं माता जिस सूर्य्य के वह (होता) लेने और देने वाला (बुध्नः) अन्तरिक्ष निवास का स्थान विद्यमान है जिस का वह (विदथेषु) जानने योग्य पृथिवी आदिकों में (सम्राट्) जो उत्तम प्रकार प्रकाशमान है (अग्रम्) सब के मध्य केन्द्र स्थान जो कि ऊपर वर्त्तमान उस को (अनु, चरति) प्राप्त होता है वसता वा वसाता (रण्यानि) सुन्दर और लोकों में उत्पन्न हुओं को (प्र, क्षेति) वसता वा वसाता और जो (देवानाम्) विद्वानों में (महत्) बड़े (एकम्) सहाय रहित (असुरत्वम्) प्राणों में रमने वाले को (रण्यवाचः) रमणीय भाषाएं (भरन्ते) धारण वा पोषण करती हैं उस ही ब्रह्म की आप लोग सेवा करो ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सूर्य्य आदि जगत् को निर्माण धारण और प्रकाश करके पालन करता है और जो सर्वत्र वसता हुआ सब को अपने में वसाता है जिस एक ही को यथार्थ बोलने वाले विद्वान् लोग सेवते हैं उस ही की सब लोग उपासना करो ॥७॥

शूर॑स्येव॒ युध्य॑तो अन्त॒मस्य॑ प्रती॒चीनं॑ ददृशे॒ विश्व॑मा॒यत् ।
अ॒न्तर्म॒तिश्च॑रति नि॒ष्षिधं॒ गोर्म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (अन्तमस्य) समीप में वर्त्तमान (युध्यतः) प्रहार करते हुए (शूरस्येव) शत्रुओं के मारने वाले के सदृश जहां (प्रतीचीनम्) पीछे से हुए (आयत्) प्राप्त होते हुए (विश्वम्) सम्पूर्ण संसार (अन्तः) मध्य में (ददृशे) देख पड़ता है और (गोः) वाणी का (महत्) बड़ा (निष्षिधम्) अत्यन्त शासन करने वाला (देवानाम्) विद्वानों में (एकम्) सहाय रहित (असुरत्वम्) प्राणों में रमने वाला (मतिः) बुद्धिमान् (चरति) प्राप्त होता है उस ही को ब्रह्म आप लोग जानें ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे युद्ध करते हुए समीप में वर्त्तमान और शत्रु के नाशक वीर पुरुष के समीप में कायर मनुष्य तिरस्कृत हुए पुरुष के सदृश देखा जाता है वैसे ही सम्पूर्ण शक्ति वाले अनन्त परमात्मा के समीप में सूर्य्य आदिक जगत् क्षुद्र और तिरस्कृत है और जो जगदीश्वर विद्या के खजाने रूप चारों वेदों वाणी के आभूषण हुओं का शासन करता है उस ही को इष्ट आप लोग मानो ॥८॥

नि वे॑वेति पलि॒तो दू॒त आ॑स्व॒न्तर्म॒हांश्च॑रति रोच॒नेन॑ ।
वपूं॑षि॒ बिभ्र॑द॒भि नो॒ वि च॑ष्टे म॒हद्दे॒वाना॑मसु॒र॒त्वमेक॑म् ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (आसु) इन प्रजाओं में (अन्तः) भीतर (नि, वेवेति) अत्यन्त व्याप्त है (पलितः) श्वेत केशों से युक्त (दूतः) समाचार देने वाले के सदृश (महान्) व्याप्त हुआ (रोचनेन) अपने प्रकाश से (चरति) प्राप्त है (वपूंषि) रूपों को (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (नः) हम लोगों को (अभि) सन्मुख (वि, चष्टे) विशेष कर के उपदेश देता है वही (देवानाम्) विद्वान् हम लोगों का (एकम्) द्वितीय से रहित (असुरत्वम्) दोषों का फेंकना (महत्) बड़ा पूज्य है आप लोग भी इसकी पूजा करो ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर योगियों को वायु के द्वारा वृद्ध दूत के सदृश दूर देश में वर्त्तमान समाचार वा पदार्थ को जनाता है। और अन्तर्यामी हुआ अपने प्रकाश से सब को प्रकाशित और जीवों के कर्मों को जान कर फलों को देता है अन्तःकरण में वर्त्तमान हुआ न्याय्य और अन्याय्य करने और न करने को चिताता है, वही हम लोगों को अतिशय पूजा करने योग्य ब्रह्म वस्तु है, आप लोग भी ऐसा जानो ॥९॥

विष्णुर्गोपाः प॒र॒मं पा॑ति पाथः प्रि॒या धामा॑न्य॒मृता॒ दधा॑नः ।
अ॒ग्निष्टा विश्वा॒ भुव॑नानि वेद म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अग्निः) अग्नि रूप विजुली के सदृश स्वयं प्रकाशित (विष्णुः) चर और अचर संसार में व्यापक परमात्मा (गोपाः) सब की रक्षा करने वाला परमेश्वर जिन (परमम्) उत्तम (पाथः) पृथिवी आदि अन्न और (प्रिया) कामना करने और सेवा करने योग्य (अमृता) नाश से रहित प्रकृति आदि और (धामानि) जन्म, स्थान और नाम को (दधानः) धारण और पुष्ट करता हुआ (पाति) रक्षा करता है (ता) उन (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवना) निवासस्थानों को (वेद) जानता है उस (देवानाम्) पृथिवी आदिकों के मध्य में (महत्) व्यापक हुए (एकम्) द्वितीय रहित ब्रह्म (असुरत्वम्) सब के फेंकने वाले को आप लोग जानो ॥१०॥

भावार्थः - इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो इस संसार का उत्पन्न, धारण, पालन और नाश करने वाला है और सब जीवों के हित के लिये अनेक प्रकार के पदार्थों का निर्माण करता है उस ही की आप लोग सेवा करो ॥१०॥

नाना॑ चक्राते य॒म्या॒३ वपूं॑षि॒ तयो॑र॒न्यद्रोच॑ते कृ॒ष्णम॒न्यत् ।
श्यावी॑ च॒ यदरु॑षी च॒ स्वसा॑रौ म॒हद्दे॒वाना॑मसुर॒त्वमेक॑म् ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (देवानाम्) पृथिवी आदिकों के समीप से (महत्) बड़ा (एकम्) द्वितीय रहित (असुरत्वम्) दोषों को फेंकने वाला है उस से व्यवस्थापित (यत्) जो (श्यावी) अन्धकाररूप (यम्या) जो सम्पूर्ण प्राणियों को निद्रा से युक्त करती है वह रात्रि (च) और (अरुषी) प्रकाशरूप प्रातःकाल (स्वसारौ) भगिनी के सदृश वर्त्तमान हुए (नाना) अनेक प्रकार के (वपूंषि) रूपों को (चक्राते) करते हैं (तयोः) उनका (अन्यत्) अन्य प्रातःकाल रूप (रोचते) प्रकाशित होता है (च) और (कृष्णम्) काला व काम (अन्यत्) दूसरा वर्ण रात्रिरूप जो आवरण करता है वह जिस से प्रसिद्ध उस को ब्रह्म जानो ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो परमेश्वर पृथिवी और सूर्य्य के घूमने की व्यवस्था को न करे तो रात्रि और दिन कैसे होवें और जिस जगदीश्वर ने पुरुषार्थ के लिये दिन और शयन करने के लिये रात्रि रची उस ईश्वर का हृदय में सब ध्यान करो ॥११॥

माता च यत्र दुहिता च धेनू सबर्दुघे धापयेते समीची ।
ऋतस्य ते सदसीळे अन्तर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१२॥

पदार्थः—हे राजन् ! मैं (ते) आप की (सदसि) सभा में जैसे (यत्र) जिस समय (माता) मान को देने वाली माता के सदृश रात्रि (च) और (दुहिता) कन्या के सदृश प्रातःकाल (च) और (समीची) उत्तम प्रकार प्राप्त होती हुई (सबर्दुघे) पालन करने वाले दुग्ध आदि के सदृश रस की पूर्ति करने और (धेनू) धेनू के सदृश रस को देने वाली (ऋतस्य) जल के सदृश सत्य के सम्बन्ध से (धापयेते) पिलाती हैं वैसे ही सभा के (अन्तः) मध्य में वर्त्तमान हुआ (ऋतस्य) जल के सदृश सत्य का (देवानाम्) श्रेष्ठ विद्वानों में (महत्) बड़े (एकम्) द्वितीय रहित (असुरत्वम्) दोषों को दूर करने वाले की (ईळे) स्तुति करता हूँ ॥१२॥

भावार्थः—जो सभ्य जन परमेश्वर से डर के उस की आज्ञा के अनुसार जैसे रात्रि और दिन सम्पूर्ण संसार के नियम पूर्वक पालनकर्त्ता होते हैं वैसे ही सभा में धर्म के विजय और अधर्म के पराजय से प्रजाओं को आनन्दित करें ॥१२॥

अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ।
ऋतस्य सा पयसापिन्वतेळा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (देवानाम्) उत्तम पृथिवी आदिकों के मध्य में जो (महत्) बड़ा (एकम्) द्वितीय रहित (असुरत्वम्) दोषों को दूर करने वाला वर्त्तमान है उस से युक्त (धेनुः) गौ के सदृश वर्त्तमान रात्रि और (ऊधः) प्रातःकाल (अन्यस्याः) दोनों के मध्य में एक किसी के (वत्सम्) बछड़े के सदृश पालन करने योग्य को (रिहती) नाश करती हुई (कया) किस (भुवा) पृथिवी के साथ (मिमाय) नापती है जो (नि, दधे) धारण करती है (सा) वह (ऋतस्य) सत्य के (पयसा) दुग्ध के सदृश जल के साथ (इळा) पृथिवी (अपिन्वत) सींचती वा सेवन करती है ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा रात्रि और दिन से पृथिवी में वर्त्तमान पदार्थों को शयन और जागरण प्रयोजन जिन का उन प्रकाश और अन्धकार और वृष्टि से गौ के सदृश रक्षा करता है उस ही की पूजा करो ॥१३॥

पद्या वस्ते पुरुरूपा वपूंष्यूर्ध्वा तस्थौ त्र्यविं रेरिहाणा ।
ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (विद्वान्) विद्यायुक्त मैं जो (ऋतस्य) सत्य और (देवानाम्) विद्वानों में (महत्) बड़े (एकम्) द्वितीय रहित (सद्म) स्थान और (असुरत्वम्) दोषों के दूर करने वाले को (वि, चरामि) प्राप्त होता हूं उस से नियमित (पद्या) अंशों में होने वाली रात्रि सब को (वस्ते) आच्छादित करती घेरती है [अन्या] (त्र्यविम्) कार्य्य कारण और जीव नामक तीन वस्तुओं की रक्षा करने वाले और (वपूंषि) रूपों को (रेरिहाणा) अत्यन्त चाटती हुई (ऊर्ध्वा) उत्तम (पुरुरूपा) बहुत रूपयुक्त प्रातःकाल (तस्थौ) स्थित है उस को वे और आप लोग जानें ॥१४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे दिन अनेक रूपों को दिखाता है वैसे ही रात्रि सब को घेरती है, ये ही सत्य के कारण से उत्पन्न हुए और उत्पन्न होने वाले को जान कर सब के बनाने वाले परमेश्वर को सुखपूर्वक जानो ॥१४॥

पदे इव निहिते दस्मे अन्तस्तयोरन्यद्गुह्यमाविरन्यत् ।
सध्रीचीना पथ्या३ सा विषूची महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (देवानाम्) विद्वानों का जो (महत्) बड़ा (एकम्) द्वितीय रहित (असुरत्वम्) दोषों का दूर करने वाला है और जिस से (दस्मे) नाश होने वाले (पदे इव) पैरों के सदृश (निहिते) धारण किये गये रात्रि और दिन वर्त्तमान हैं जो अन्य (सध्रीचीना) एक साथ सेवन करती हुई (पथ्या) अपनी कक्षा को त्याग के अन्यत्र नहीं जाने वाली (सा) वह (विषूची) व्याप्त पदार्थों का सेवन करती है (तयोः) उन के (अन्तः) मध्य में (अन्यत्) दूसरा (गुह्यम्) गुप्त (अन्यत्) अन्य (आविः) रक्षा करने वाला है उस सब को जानो ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे मनुष्य लोगदो पैरों से चलते हैं वैसे ही रात्रि और दिन चलते हैं और जैसे दिन पथ्य है वैसे रात्रि पथ्य नहीं होती है। इसी प्रकार सर्वान्तर्यामी ब्रह्म को त्याग करके अन्य उपासित हुआ पथ्य नहीं होता है ॥१५॥

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ १६ ॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोगों के (सबर्दुघाः) सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली (शशयाः) शयन करती सी हुई (अप्रदुग्धाः) नहीं किसी करके भी बहुत

दुही गई (धेनवः) वाणियां (अशिश्वीः) बालाओं से भिन्न (नव्यानव्याः) नवीन नवीन (भवन्तीः) होती हुई (युवतयः) यौवनावस्था को प्राप्त ब्रह्मचारिणी स्त्रियां जैसे वैसे (देवानाम्) विद्वानों में (महत्) बड़े (एकम्) द्वितीय रहित (असुरत्वम्) दोषों के दूर करने वाले को (आ, धुनयन्ताम्) अच्छे प्रकार कंपाइये ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे प्रथम अवस्था में वर्त्तमान विद्या पढ़ी हुई बालाभिन्न ब्रह्मचारिणी स्त्रियां अपने सदृश पतियों को प्राप्त होकर आनन्दित होती हैं वैसे ही सर्व विद्याओं से युक्त वाणियों को प्राप्त होकर विद्वान् लोग सुखी होते हैं ॥१६॥

**यदन्यासु वृषभो रोरवीति सो अन्यस्मिन्यूथे नि दधाति रेतः ।**
**स हि क्षपावान्त्स भगः स राजा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१७॥**

पदार्थः—(यत्) जो (वृषभः) बलयुक्त सूर्य्य (अन्यासु) रात्रि और प्रातःकालों में (रोरवीति) अत्यन्त शब्द करता है (सः) वह (अन्यस्मिन्) अन्य (यूथे) समूह में चन्द्र आदिकों में (रेतः) पराक्रम का (निदधाति) स्थापन करता है। (हि) जिससे कि (सः) वह (क्षपावान्) रात्रिवान् अर्थात् रात्रि जिस की सम्बन्धिनी होती और (सः) वह (भगः) ऐश्वर्यों का दाता सूर्य्य तथा (सः) वह (राजा) प्रकाशमान होता (देवानाम्) विद्वानों में (महत्) बड़ा (एकम्) एक यह (असुरत्वम्) दोषों को दूर करने वाला प्राप्त होने योग्य गुण होता है ॥१७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो! जो सूर्य्य रात्रि के अन्त और दिन के आदि में सब प्राणियों को निरन्तर जगाय के शब्द कराय और व्यवहार कराय के लक्ष्मियों को प्राप्त कराता है और रात्रि में चन्द्र आदिकों में किरणों को रख के प्रकाश कराता सो यह प्रकाशमान जगदीश्वर से उत्पन्न किया गया ऐसा जानना चाहिये ॥१७॥

अब ईश्वर के गुणों का वर्णन अगले मन्त्र में करते हैं ॥

**वीरस्य नु स्वश्व्यं जनासः प्र नु वोचाम विदुरस्य देवाः ।**
**षोळहा युक्ताः पञ्चपञ्चा वहन्ति महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१८॥**

पदार्थः—हे (जनासः) विद्याओं में प्रकट हुए मनुष्यो! हम (अस्य) इस (वीरस्य) शौर्य्य आदि गुणों को प्राप्त हुए शूर को (स्वश्व्यम्) अति उत्तम अश्वविषयक अच्छे वचन का (नु) शीघ्र (प्र, वोचाम) उपदेश देवें जो (युक्ताः) संयुक्त हुए (देवाः) विद्वान् जन (देवानाम्) विद्वानों में (महत्) बड़े (एकम्) एक (असुरत्वम्) दोषों के दूर करने को (विदुः) जानते और जो (षोळहा) छः प्रकार की

संयुक्त इन्द्रियां और (पञ्चपञ्च) पांच पांच प्राण जिस विषय को (आ, वहन्ति) प्राप्त होते हैं उसको जानते हैं उनके प्रति हम लोग इस ब्रह्म का (नु) शीघ्र उपदेश देवें ॥१८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस की प्राप्ति में पांच प्राण निमित्त और जिसको सब योगी लोग समाधि से जानते हैं उसी की उपासना भृत्यों के वीरपन को उत्पन्न करने वाली है ऐसा हम लोग उपदेश देवें ॥१८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः पुपोष प्रजाः पुरुधा जजान ।
इमा च विश्वा भुवनान्यस्य महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (त्वष्टा) प्रकाश करने वाला परमेश्वर (देवः) प्रकाशमान (विश्वरूपः) जिससे सम्पूर्ण रूप हैं ऐसे (सविता) प्रेरणा करने वाले सूर्यमण्डल के सदृश (प्रजाः) उत्पन्न हुए प्राणी अप्राणी को (पुपोष) पुष्ट करता है और (इमा) इन (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकों को (च) भी (पुरुधा) बहुत प्रकार से (जजान) उत्पन्न करता है (अस्य) इस परमेश्वर का यही (देवानाम्) विद्वानों के बीच (महत्) बड़ा (एकम्) एक (असुरत्वम्) दोषों का दूर करने वाला गुण है ऐसा जानना चाहिये ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे सूर्य्य जगत् का पालन करता है वैसे ही जगदीश्वर सूर्य्य आदि अनेक प्रकार संसार को बनाय करके रक्षा करता है। यही परमात्मा का बड़ा आश्चर्य्य कर्म है ऐसा जानना चाहिये ॥१९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मही समैरच्चम्वा समीची उभे ते अस्य वसुना न्यृष्टे ।
शृण्वे वीरो विन्दमानो वसूनि महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर (ते) उन (उभे) दोनों (मही) बड़ी (समीची) उत्तम प्रकार प्राप्त अन्तरिक्ष और पृथिवी को (चम्वा) सेना से जैसे वैसे (सम्, ऐरत्) प्रेरणा करता है वह दोनों (अस्य) इसके (वसुना) द्रव्यों के साथ (न्यृष्टे) निश्चित स्वरूप को प्राप्त हुई हैं (देवानाम्) विद्वानों के उस (महत्) बड़े (एकम्) एक (असुरत्वम्) दोषों के दूर करने वाले को और (वसूनि) धनों को (विन्दमानः) प्राप्त होता हुआ (वीरः) बल से युक्त मैं ब्रह्म का नित्य (शृण्वे) श्रवण करूं उसको आप लोग भी निरन्तर सुन के उन सबों को प्राप्त हूजिये ॥२०॥

भावार्थः—कोई भी पुरुष परमेश्वर की आज्ञापालन के विना बड़े ऐश्वर्य्य को नहीं प्राप्त होता है और यथार्थवक्ता पुरुषों से सुनने विना परमात्मा का बोध किसी को भी नहीं प्राप्त होता है, तिससे सब लोगों को चाहिये कि परमेश्वर की आज्ञा का पालन करके ऐश्वर्य्यवान् होवें ॥२०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमां च नः पृथिवीं विश्वधाया उप क्षेति हितमित्रो न राजा ।
पुरःसदः शर्मसदो न वीरा महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२१॥

पदार्थः - हे मनुष्यो ! जो (नः) हम लोगों के (इमाम्) इस अन्तरिक्ष (च) और (पृथिवीम्) भूमि को समीप (विश्वधायाः) सम्पूर्ण को धारण करने वाली पृथिवी उसके (हितमित्रः) मित्रों को धारण करने वाले (राजा) विद्या और विनय से प्रकाशमान अधिपति के (न) सदृश (उप, क्षेति) वसता है और (पुरःसदः) आगे चलने और (शर्मसदः) गृह में ठहरने वाले (वीराः) क्षात्रधर्म से युक्त शूरों के (न) तुल्य विजय देता है वही (देवानाम्) प्रकाशमान राजा लोगों में (महत्) बड़ा (एकम्) सहायरहित (असुरत्वम्) शत्रुओं को दूर करने वाला हम लोगों से उपासना करने योग्य है ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो धर्मात्मा राजा के सदृश संसार में निवास कराता और धनुर्वेद के जानने वाले वीर के सदृश विजय दिलाता है वही ब्रह्म हम लोगों को उपासना करने योग्य है ॥२१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

निष्षिध्वरीस्त ओषधीरुतापो रयिं त इन्द्र पृथिवी बिभर्त्ति ।
सखायस्ते वामभाजः स्याम महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥२२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले ईश्वर ! जैसे (ते) आप की सृष्टि में (पृथिवी) भूमि (निष्षिध्वरीः) अत्यन्त मङ्गल करने वाली (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियों को (बिभर्त्ति) धारण वा पोषण करती है (उत) और (ते) आप के (आपः) जल (रयिम्) लक्ष्मी को धारण करते हैं उसी (देवानाम्) सूर्य्य आदिकों में (महत्) सब से बड़े (एकम्) द्वितीय रहित (असुरत्वम्) शत्रुओं के नाश करने वाले को प्राप्त होकर (ते) आप के (वामभाजः) उत्तम कर्मों के सेवन करने वा श्रेष्ठ भोग भोगने वाले (सखायः) मित्र हम लोग (स्याम) होवें ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे जगदीश्वर! जिन आपने हम लोगों के सुख के लिये सृष्टि में अनेक प्रकार की ओषधियां और जल रचे उन आप के हम लोग उपासना करने वाले होवें और आप को छोड़ के दूसरे की उपासना कभी न करें॥२२॥

इस सूक्त में दिन, रात्रि, विद्वान्, अन्तरिक्ष, पृथिवी, राजधर्म और ईश्वर के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ॥

---

प्रजापतिर्वैश्वामित्रो वाच्यो वा ऋषयः। विश्वे देवा देवताः। १। ६। ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ३। ४ विराट् त्रिष्टुप्। ५। ७ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः। स्वरः। २ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब छप्पनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर के गुणों को कहते हैं॥

न ता मिनन्ति मायिनो न धीरा व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि।
न रोदसी अद्रुहा वेद्याभिर्न पर्वता निनमे तस्थिवांसः॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! ईश्वर ने (देवानाम्) यथार्थवादी विद्वानों के जो (प्रथमा) आदि में वर्त्तमान (ध्रुवाणि) अखण्डित (व्रता) उत्तम कर्म उपदेश किये गये वा रचे गये (ता) उन का (मायिनः) निन्दित बुद्धि वाले (न) नहीं (मिनन्ति) नाश करते हैं (धीराः) ध्यान करने वाले श्रेष्ठ पुरुष नहीं नाश करते हैं (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी (न) नहीं नाश करते हैं (अद्रुहा) द्रोह से रहित अध्यापक और उपदेशक (न) नहीं नाश करते हैं (वेद्याभिः) जानने के योग्य प्रजाओं के साथ (निनमे) नवने के योग्य स्थान में (तस्थिवांसः) स्थित होते हुए (पर्वताः) पर्वत (न) नहीं नाश करते हैं उन को आप जान के आचरण करो॥१॥

भावार्थः—किसी का भी सामर्थ्य नहीं है कि जो ईश्वर के किये हुए नियमों का उल्लंघन करै और जिस परमेश्वर के भ्रमरहित सुखरूप कर्म हैं उसी दयानिधि परमेश्वर की सब लोग उपासना करो॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

पड् भाराँ एको अचरन्बिभर्त्यृतं वर्षिष्ठमुप गाव आगुः।
तिस्रो महीरुपरास्तस्थुरत्या गुहा द्वे निहिते दर्श्येका॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने इस संसार में (द्वे) दो कार्य और कारण (निहिते) धारण किये उन दोनों के मध्य में (एका) एक कार्य नामक (दर्शि) देख पड़ता है (अत्याः) सर्वत्र व्यापक होने वाले आकाशादि वा (गुहा) महत्तत्त्वनामक सम्पूर्ण बुद्धि में (उपराः) मेघ (तस्थुः) स्थित होते और मेघ (तिस्रः) स्थूल मध्य और सूक्ष्म (महीः) भूमियों को और (गावः) किरणें (उप, आ, अगुः) प्राप्त होते हैं उन (षट्) छः (भारान्) पञ्चतत्त्व और महत्तत्त्व अर्थात् बुद्धि को (अचरन्) न कंपाता हुआ (एकः) सहायरहित ईश्वर (वर्षिष्ठम्) अतीव बढ़े हुए (ऋतम्) सत्य कारण का (बिभर्ति) धारण वा पोषण करता है उसी का निरन्तर ध्यान करो ॥२॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर से प्रकृति आदि भूमि पर्य्यन्त संसार रच धारण कर और उत्तम प्रकार पालन करके व्यवस्थापित अर्थात् ढङ्ग पर चलाया जाता है वही पूज्य है ऐसा मानो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्रिपाजस्यो वृषभो विश्वरूप उत त्र्युधा पुरुध प्रजावान् ।
त्र्यनीकः पत्यते माहिनावान्त्स रेतोधा वृषभः शश्वतीनाम् ॥३॥

पदार्थः—हे (पुरुध) बहुतों को धारण करने वाले विद्वान् पुरुष ! जो (त्रिपाजस्यः) तीन— शरीर आत्मा और सम्बन्धियों के बलों में निपुण (वृषभः) वृष्टिकर्त्ता (त्र्युधा) जिस में तीन अर्थात् कारण सूक्ष्म और स्थूल बढ़े हुए जीव शरीर और (विश्वरूपः) अन्य सम्पूर्ण रूप जिसमें विद्यमान जो बिजुली के सदृश (उत) और (प्रजावान्) बहुत प्रजाजन (त्र्यनीकः) तथा त्रिगुणित सेनायुक्त के समान (माहिनावान्) बहुत सत्कारवान् है वा (पत्यते) जो स्वामी के सदृश आचरण करता (सः) वह (वृषभः) अत्यन्त बलयुक्त (शश्वतीनाम्) अनादि काल से हुई प्रकृति और जीव नामक प्रजाओं का (रेतोधाः) जल के सदृश वीर्य को धारण करने वाले सूर्य के सदृश वीर्य का देने वाला जगदीश्वर है ऐसा जानो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो जगदीश्वर बिजुली के सदृश सब जगह व्यापक होके प्रकाशकर्त्ता धारणकर्त्ता फिर भी न्यायाधीश स्वामी अनन्त महिमा से युक्त और अनादि जीवों का न्यायाधीश वर्त्तमान है उस से डर के और पापों का त्याग कर के प्रीति से धर्म का आचरण कर अपने अन्तःकरण में सब लोग उसी का ध्यान करें ॥३॥

फिर भी ईश्वर के गुणों का उपदेश अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**अभीकं आसां पदवीरबोध्यादित्यानामह्वे चारु नामं ।**

**आपंश्चिदस्मा अरमन्त देवीः पृथग् व्रजन्तीः परिं षीमवृञ्जन् ॥४॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने (आसाम्) इन अनादि काल से सिद्ध प्रजाओं और (आदित्यानाम्) सूर्य्यादिकों वा मास आदि समयविभागों के (पदवीः) पदों को जो व्याप्त होता वह (अबोधि) जाना हुआ है और जिसका (चारु) अत्यन्त श्रेष्ठ (नाम) नाम जिसमें (चित्) निश्चित (व्रजन्तीः) जाते हुए (देवीः) प्रकाशमान (आपः) प्राण (सीम्) परिग्रह करने में (पृथक्) अलग (परि, अरमन्त) सब ओर से रमते और (अवृञ्जन्) त्याग करते हैं (अस्मै) इसके लिये (अभीके) कामना करने वाले में वर्त्तमान मैं इस ईश्वर को (अह्वे) बुलाता हूँ उसी को आप लोग भी बुलाओ ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सबके सुख की कामना करता है जिसमें सब जीव और लोकादि पदार्थ पृथक् पृथक् क्रीड़ा करते ग्रहण करते और त्याग करते हैं उसको छोड़ के अन्य किसी की भी मत उपासना करो ॥४॥

अब सबके निवास के लिये ईश्वर ने जगत् बनाया इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**त्री षधस्था सिन्धवस्त्रिः कवीनामुत त्रिमाता विदथेषु सम्राट् ।**

**ऋतावरीर्योषणास्तिस्रो अप्यास्त्रिरा दिवो विदथे पत्यमानाः ॥५॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर (त्री) तीन (सधस्था) साथ के स्थान (सिन्धवः) नदियां (उत) और (कवीनाम्) विद्वानों के (त्रि) तीन वार (त्रिमाता) जन्म स्थान और नाम इन तीनों को उत्पन्न करने वाला (विदथेषु) वा जो संग्रामों और जानने योग्य व्यवहारों में (सम्राट्) उत्तम प्रकार भूमि में प्रकाशित हैं ऐसे पुरुष के सदृश (ऋतावरीः) जिनमें सत्य विद्यमान (योषणाः) जो स्त्रियों के सदृश वर्त्तमान (तिस्रः) स्थूल सूक्ष्म और कारण नामक (अप्याः) अन्तरिक्ष में होने वाली सृष्टियां (विदथे) संग्राम में (पत्यमानाः) पति के सदृश आचरण करती हुई हैं उनको (त्रिः) तीन वार और (दिवः) तारागणों को रचता है वही सबका स्वामी है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा ने सब प्राणी और प्राणीभिन्नों के निवास के लिये जल स्थल और अन्तरिक्ष रचे उस स्वामी की पतिव्रता स्त्री के सदृश निरन्तर सेवा करो ॥५॥

अथ ईश्वर की प्रार्थना के साथ जगद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्रिरा दिवः सवितर्वार्याणि दिवेदिव आ सुव त्रिर्नो अह्नः ।
त्रिधातु राय आ सुवा वसूनि भग त्रातर्धिषणे सातये धाः ॥६॥

पदार्थः—हे (सवितः) ऐश्वर्य के देने वाले ! आप (दिवेदिवे) प्रतिदिन (नः) हम लोगों के लिये (दिवः) कामना करने योग्य क्रियाओं को (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्यों को (त्रिः) तीन वार (आसुव) उत्पन्न करो हे (भग) अत्यन्त भजने योग्य ! (अह्नः) दिन के मध्य में (रायः) धनों को (त्रिः) तीन वार (आसुव) उत्पन्न करो और (त्रातः) हे रक्षा करने वाले ! (सातये) उतम प्रकार विभाग के लिये (त्रिधातु) सुवर्ण चांदी और [लोहा] आदि धातु जिनमें ऐसे (वसूनि) धनों और (धिषणे) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ, धाः) सब प्रकार धारण करो ॥६॥

भावार्थः—हे जगदीश्वर ! आप कृपा से हम लोगों को धर्म से पुरुषार्थयुक्त करके प्रतिदिन ऐश्वर्य प्राप्त कराओ और निरन्तर रक्षा करके सब के सुख के लिये विभागों को कराओ ॥६॥

अब राजप्रस्ताव से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्रिरा दिवः सविता सोषवीति राजाना मित्रावरुणा सुपाणी ।
आपश्चिदस्य रोदसी चिदुर्वी रत्नं भिक्षन्त सवितुः सवाय ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सविता) प्रेरणा करने वाला अन्तर्य्यामी (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश सब के मित्र (सुपाणी) और सुन्दर जिन के हाथ ऐसे (राजाना) विद्या और विनय से प्रकाशमान नरों के समान (दिवः) प्रकाश से (त्रिः, आ, सोषवीति) तीन वार सब ओर से निरन्तर प्रेरणा देता है (अस्य) इस (सवितुः) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्ययुक्त जगदीश्वर के समीप से (सवाय) ऐश्वर्य्य के लिये (आपः) प्राणों के (चित्) सदृश (उर्वी) बहुत (रोदसी) प्रकाशित और अप्रकाशित जगत् और (रत्नम्) सुन्दर धन को (चित्) भी सब लोग (भिक्षन्त) याचना करते हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा लोग परमेश्वर के सदृश गुण कर्म और स्वभावयुक्त हुए प्रजाओं में वर्त्तमान हैं वे ही चक्रवर्ति राज्य और असंख्य धन को प्राप्त होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्रिरुत्तमा दूणशा रोचनानि त्रयो राजन्त्यसुरस्य वीराः ।
ऋतावान इषिरा दूळभासस्त्रिरा दिवो विदथे सन्तु देवाः ॥८॥

पदार्थः—जो ब्रह्म के भक्त (त्रयः) बिजुली प्रसिद्ध अग्नि और सूर्य्याग्नि के सदृश (असुरस्य) दुष्ट और दोषों के दूर करने वाले के सम्बन्ध में (इषिराः) जाने वाले (ऋतावानः) प्रशंसित सत्य जिन में विद्यमान तथा (वीराः) विद्या शूरता और बल से परिपूरित वे (दूळभासः) हिंसा से रहित (आ) सब प्रकार (दिवः) कामना करते हुए (देवाः) विद्वान् लोग (विदथे) संग्राम आदि व्यवहार में (त्रिः) तीन वार (सन्तु) प्रसिद्ध हों और (दूणशा) दुःख से जिन का नाश होता है वे (उत्तमा) श्रेष्ठ (रोचनानि) प्रकाशमान (त्रिः) तीन वार (राजन्ति) शोभित होते हैं ॥८॥

भावार्थः—जो लोग जगदीश्वर को प्राणों के सदृश प्रिय, राजा के सदृश उपदेशदाता, न्यायाधीश के सदृश नायक, सूर्य के सदृश अपने से प्रकाशमान और सब का प्रकाशकर्त्ता मान निरन्तर भजते हैं वे ही शत्रुओं के दुःख से जीतने योग्य सत्य के आचरण करने और अन्यों के सुख चाहने वाले हैं वे चक्रवर्ती राज्य को प्राप्त होकर सूर्य्य के सदृश शोभित होते हैं और वे ही इस संसार में रक्षा के अधिकारी हों ॥८॥

इस सूक्त में ईश्वर जगत् और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति समझनी चाहिये ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। १। ३। ४ त्रिष्टुप्। २। ५। ६ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब छः ऋचा वाले सत्तावनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में वाणी के विषय को कहते हैं॥

प्र मे॑ विवि॒क्वाँ अ॑विदन्मनी॒षां धे॒नुं चर॑न्तीं॒ प्रयु॑ता॒मगो॑पाम्।
स॒द्यश्चि॒द्या दु॑दु॒हे भूरि॑ धा॒सेरिन्द्र॒स्तद॒ग्निः प॑निता॒रो अ॑स्याः ॥१॥

पदार्थः—जो (विविक्वान्) प्रकट मनुष्य (मे) मेरी (मनीषाम्) बुद्धि को (चरन्तीम्) प्राप्त होती हुई (प्रयुताम्) संख्यारहित बोधों से युक्त (धेनुम्) बछड़े को पालन करने वाली गौ के सदृश वाणी को (प्र, अविदत्) प्राप्त हो और (या) जो (धासेः) प्राणों को धारण करने वाले अन्न की (इन्द्रः) बिजुली के सदृश (अगोपाम्) अरक्षित को (भूरि) बहुत (सद्यः) शीघ्र (चित्) ही (दुदुहे) पूर्ण करता है (तत्) उस अन्न को (अग्निः) अग्नि के सदृश वर्त्तमान पुरुष प्राप्त होवे (अस्याः) इस वाणी का (पनितारः) स्तुति वा व्यवहार करने वाले उपदेश देवें उस वाणी को सब लोग प्राप्त हों ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग अधर्म के आचरण से रहित विद्या को ग्रहण करने की इच्छा पूरी करने वाले उत्तम वाणी का प्रयोग करते और सत्य धर्म का आचरण करते हुए सब की इच्छा को पूरी करते हैं वे अत्यन्त सत्कार करने योग्य होवें ॥१॥

अब बुद्धि विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रः सु पूषा वृषणा सुहस्ता दिवो न प्रीता शशयं दुदुह्रे ।
विश्वे यदस्यां रणयन्त देवाः प्र वोऽत्र वसवः सुम्नमश्याम् ॥२॥

पदार्थः—हे (वसवः) विद्या की जिज्ञासा करने वाले ! (यत्) जो (अत्र) इस व्यवहार में (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) विद्वान् लोग (अस्याम्) बुद्धि से युक्त वाणी में (शशयम्) मेघ के सदृश (सुम्नम्) सुख को (प्र, दुदुह्रे) दुहते हैं और (रणयन्त) संग्राम के सदृश आचरण करते हैं वे (दिवः) कामना करने योग्य प्रकाशकिरणों के (न) सदृश (प्रीताः) प्रसन्न होते हैं और जो (सुहस्ता) सुन्दर हाथों वाले दो पुरुषों के समान जो (इन्द्रः) बिजुली और (पूषा) पुष्टिकर्त्ता प्राण (वृषणा) बल करने वाले हैं उन को पूरा करते हैं वे (सु, प्रीताः) उत्तम प्रकार प्रसन्न होते हैं और जैसे सत्सङ्ग से (वः) तुम लोगों के समीप से (सुम्नम्) सुख को मैं (अश्याम्) प्राप्त होऊं वैसे आप लोग प्रयत्न करिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो शरीर और आत्मा के बल की कामना करते हैं वे ही विद्वान् हो शास्त्र और ईश्वर के बोध से युक्त वाणी में रमते हुए बिजुली आदि की विद्या को प्रसिद्ध कर और विजयमान हो अतुल आनन्द को पाय अन्य जनों को पूर्ण आनन्द उत्पन्न करते वे ही जगत् के पूज्य सब के गुरु होते हैं ॥२॥

अब गृहाश्रम के कृत्य को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥३॥

पदार्थः—(याः) जो (नमस्यन्तीः) सत्कार करती हुई (जामयः) चौबीस वर्ष की अवस्था को प्राप्त युवती ब्रह्मचारिणी (वृष्णे) वीर्यसेचन में समर्थ चालीस वर्ष की आयु को प्राप्त ब्रह्मचारी के लिये (शक्तिम्) सामर्थ्य की (इच्छन्ति) इच्छा करती और (अस्मिन्) इस संसार में (गर्भम्) गर्भ के धारण करने को (जानते) जानती हैं वे पतियों की (वावशानाः) कामना करती हुई (धेनवः) विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वाणियों के सदृश वर्त्तमान गौवें जैसे वृषभों को वैसे (महः) बड़े पूज्य

(वपूंषि) रूप वाले शरीरों को (बिभ्रतम्) धारण और पोषण करने वाले (अच्छ) श्रेष्ठ (पुत्रम्) पुत्र को (चरन्ति) ग्रहण करती हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वे ही कन्यायें सुख को प्राप्त होती हैं कि जो अपने से दुगने विद्या और शरीर बल वाले अपने सदृश प्रेमी पतियों की उत्तम प्रकार परीक्षा कर के स्वीकार करती हैं वैसे ही पुरुष लोग भी प्रेमपात्र स्त्रियों को ग्रहण करते हैं वे ही परस्पर प्रीतिपूर्वक अनुकूल व्यवहार से वीर्यस्थापन और आकर्षण विद्या को जान गर्भ को धारण उसका उत्तम प्रकार पालन सब संस्कारों को कर के बड़े भाग्य वाले पुत्रों को उत्पन्न कर अतुल आनन्द और विजय को प्राप्त होते हैं, इस से विपरीत व्यवहार से नहीं ॥३॥

अब स्त्रीपुरुषों के कृत्य का अगले मन्त्र में उपदेश करते हैं ॥

अच्छा विवक्मि रोदसी सुमेके ग्राव्णो युजानो अध्वरे मनीषा ।
इमा उ ते मनवे भूरिवारा ऊर्ध्वा भवन्ति दर्शता यजत्राः ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! इस (अध्वरे) मेल करने योग्य व्यवहार में जो (इमाः) ये प्रजायें (मनीषा) बुद्धि के सहित वर्त्तमान (भूरिवाराः) अनेक प्रकार के सुख को प्राप्त होने वाली (दर्शताः) देखने तथा (यजत्राः) मेल और सत्कार करने के योग्य (ऊर्ध्वाः) उत्तम (भवन्ति) होती हैं उन को (युजानः) प्राप्त होते हुए आप लोग (ग्राव्णः) मेघ के सदृश संयोग से सुखी होते हैं। और जो स्त्री पुरुष (सुमेके) उत्तम प्रकार एक हुए (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी के तुल्य (ते) आप (मनवे) मनुष्य के लिये वर्त्तमान हैं उन दोनों और उन आप लोगों के प्रति (उ) आश्चर्य के साथ मैं (अच्छ) उत्तम प्रकार (विवक्मि) विशेष कर के उपदेश देता हूं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो स्त्री और पुरुष पृथिवी और सूर्य के सदृश संयुक्त हुए वर्त्तमान हैं वे भाग्यशाली होते हैं। जो स्त्री और पुरुष उत्तम प्रकार परीक्षा करके स्वयंवर विवाह को करें वे मेघ के सदृश उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करके सब काल में सुखी होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

या ते जिह्वा मधुमती सुमेधा अग्ने देवेषूच्यत उरूची ।
तयेह विश्वाँ अवसे यजत्रानासादय पायया चा मधूनि ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष वा विदुषी स्त्री ! (ते) तुम्हारी (या) जो

(देवेषु) विद्वानों में (मधुमती) बहुत सत्य भाषणों वाली (सुमेधाः) जिस में उत्तम बुद्धि विद्यमान वह (उरूची) बहुत विद्याओं को प्राप्त होती हुई (जिह्वा) वाणी (उच्यते) कही जाती है (तया) उस से (इह) इस गृहाश्रम में (विश्वान्) सम्पूर्ण (यजत्रान्) मिले हुए श्रेष्ठ पुत्रों को (आ, सादय) प्राप्त कराओ (च) और इन की (अवसे) रक्षा आदि के लिये (मधूनि) मधुरता से युक्त पीने के योग्य विशेष रसों का (पायय) पान कराओ ॥५॥

भावार्थः—जो स्त्री और पुरुष प्रसन्नता से विवाह किये हुए विद्या बुद्धि और उत्तम वाणी से युक्त इस संसार में गृहाश्रम में वर्त्तमान होकर प्रेम से उत्पन्न होने वाले पुत्रों को उत्पन्न पालन और उत्तम शिक्षायुक्त करके तथा स्वयंवर विवाह कराके निवास कराते हैं वे ही गृहाश्रम में मोक्ष के सदृश सुख का अनुभव करते हैं ॥५॥

फिर स्त्री पुरुष के कृत्य को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**या ते॑ अग्ने॒ पर्व॑तस्येव॒ धारास॑श्चन्ती पी॒पय॑द्देव चि॒त्रा ।**
**ताम॒स्मभ्यं॒ प्रम॑तिं जातवेदो॒ वसो॒ रास्व॑ सुम॒तिं वि॒श्वज॑न्याम् ॥६॥**

पदार्थः—हे (अग्ने) स्त्रि या पुरुष ! (ते) आप की (या) जो (असश्चन्ती) असम्बन्ध रखती हुई (चित्रा) अद्भुत (पर्वतस्येव) मेघ के (धारा) प्रवाह के सदृश वाणी बुद्धि को (पीपयत्) पीती है (ताम्) उस (प्रमतिम्) उत्तम बुद्धि को और (विश्वजन्याम्) जिससे सम्पूर्ण सन्तान उत्पन्न होता है उस (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि वाली स्त्री वा उत्तम बुद्धि वाले पुरुष को आप (रास्व) दीजिये । हे (देव) उत्तम गुणों से युक्त (वसो) सर्वत्र वसते हुए (जातवेदः) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान भगवन् ईश्वर ! आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये ऐसी विद्या बुद्धि वाणी और ऐसी स्त्री तथा ऐसे पति को कृपा से दीजिये । जिससे कि हम लोग सदा सुखी होवें ॥६॥

भावार्थः—स्त्री और पुरुषों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य से विद्या और उत्तम शिक्षाओं को प्राप्त होकर युवावस्था में तुल्य गुण कर्म और स्वभावों की परीक्षा करके द्विगुण बल और अवस्था वाले पति और प्रेमपात्र स्त्री को प्राप्त होकर गृहाश्रम में सुख से रहैं ॥६॥

इस सूक्त में वाणी बुद्धि गृहाश्रम और स्त्री पुरुषों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ । ८ । ६ त्रिष्टुप् । २—५ । ७ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले अट्ठावनवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में शिल्पिजन के काम को कहते हैं ॥

**धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानान्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।**
**आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥१॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (शुभ्रयामा) शुद्ध दिन जिस से होते वा जो (प्रत्नस्य) प्राचीन के (काम्यम्) कामना योग्य बोध को (दुहाना) पूर्ण करती हुई (धेनुः) गौ के सदृश वाणी है उस (दक्षिणायाः) ज्ञान को प्राप्त कराने वाली वाणी का (पुत्रः) पुत्र अर्थात् उस से उत्पन्न बोध (अन्तः) मध्य में (चरति) विलसता अर्थात् रहता है (द्योतनिम्) और प्रकाशरूप विद्या को (अश्विनौ) तथा यथार्थवक्ता अध्यापक और उपदेशक को (उषसः) प्रातःकालों के सदृश (आ, वहति) प्राप्त होता वा प्राप्त कराता है और जिससे (स्तोमः) प्रशंसा करने योग्य यथार्थवक्ता अध्यापक और उपदेशक (अजीगः) प्राप्त होता है उस को आप लोग भी प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे सूर्य प्रातःकालों को उत्पन्न करता है वैसे ही आत्मा में उत्पन्न हुआ बोधपूर्ण मनोरथ को उत्पन्न कर सत्य और असत्य का प्रकाश करता है । जो विद्या धर्म से युक्त वा श्रेष्ठ वाणी जिस को प्राप्त होती है उसको सनातन ब्रह्म का बोध भी प्राप्त होता है ॥१॥

अब ऊर्ध्व और अधःस्थान विषयक शिल्पिजनों के कृत्य को कहते हैं ॥

**सुयुग्वहन्ति प्रति वामृतेनोर्ध्वा भवन्ति पितरेव मेधाः ।**
**जरेथामस्मद्विपणेर्मनीषां युवोरवश्चकृमा यातमर्वाक् ॥२॥**

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक ! (सुयुक्) उत्तम कृत्य के योगकर्त्ताजन जिन (ऊर्ध्वाः) ऊपर को पहुंचाने वाली (मेधाः) बुद्धियों और (ऋतेन) सत्य से (वाम्) आप दोनों को (वहन्ति) प्राप्त होते हैं उन को हम लोगों के (प्रति) प्रति पहुंचाओ जो (पितरेव) माता और पिता के सदृश पालन करने वाली (भवन्ति) होती हैं आप दोनों (जरेथाम्) उनकी स्तुति करो । (अस्मत्) हमारे लिये (वि, पणेः) व्यवहार की (मनीषाम्) बुद्धि को (आ) सब प्रकार (यातम्) प्राप्त होओ (अर्वाक्) नीचे स्थानों में (युवोः) आप दोनों की (अवः) रक्षा हम लोग (चकृम) करें ॥२॥

भावार्थः—जैसे वायु और किरणें सूर्य्य आदि को पहुंचाती हैं वैसे ही उत्तम बुद्धि के सदृश वर्त्तमान स्त्रियां सुख को पहुंचाती हैं। और जो विद्वान् लोग मनुष्यों में पिता के सदृश वर्त्तमान हैं उन के प्रति सब को चाहिये कि पुत्र के सदृश वर्त्ताव कर और सब व्यवहार को जान के यथावत् करें॥२॥

अब अग्नि आदि पदार्थचालित यानविषयक शिल्पिकृत्य को कहते हैं॥

सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्त्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः॥३॥

पदार्थः—हे (दस्रौ) दुःखों को नाश करने वाले (अश्विना) सूर्य्य और चन्द्रमा के सदृश वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक! आप दोनों (सुयुग्भिः) उत्तम प्रकार जोड़े गये (अश्वैः) अग्नि आदि पदार्थों से युक्त (सुवृता) उत्तम (रथेन) विमान आदि वाहन से (अद्रेः) मेघ के सदृश हम लोगों की (इमम्) इस (श्लोकम्) वाणी को (शृणुतम्) सुनो और (अङ्ग) हे पूर्वोक्त अध्यापक उपदेशको! जो (वाम्) तुम दोनों को (गमिष्ठा) अत्यन्त चलने वाले (पुराजाः) प्रथम उत्पन्न हुए (विप्रासः) बुद्धिमान् विद्वान् लोग (आहुः) कहते हैं वे आप दोनों (प्रति, अवर्त्तिम्) अवर्त्तमान अर्थात् अलभ्य पदार्थ को (किम्) क्यों नहीं प्राप्त हों किन्तु प्राप्त ही होवें॥३॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग अग्नि आदि विद्या से चलाये वाहनों से व्यवहार करें वे किस किस ऐश्वर्य्य को न प्राप्त होवें॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे॥४॥

पदार्थः—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जन! आप दोनों को (विश्वे) सम्पूर्ण (जनासः) प्रसिद्ध मनुष्य (हवन्ते) ग्रहण करते हैं (अग्रे) और प्रथम (हि) कि जिस से (इमा) इन (गोऋजीका) गौवों के दुग्ध आदि से मिले हुए (मधूनि) सोमलतारूप ओषधियों के रसों को (मित्रासः) मित्र लोगों के (न) सदृश (प्र, ददुः) देवें। उन को तथा (उस्रः) गौओं को (वाम्) आप दोनों (एवैः) शीघ्र पहुँचाने वाले बिजुली आदि से चलाये गये वाहनों से (कत्) कब (आ, गतम्) प्राप्त हुए (चित्) भी (आ) सब प्रकार (मन्येथाम्) जानिये॥४॥

भावार्थः—विद्वानों की योग्यता है कि जो प्रीति से धार्मिक उत्तम सेवक विद्यार्थी वा श्रोताजन समीप आवें उनको उत्तम विज्ञान आदि देवें। जिस से सब मनुष्य सब के साथ मित्रों के सदृश वर्त्ताव करें॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु ।**
**एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥५॥**

पदार्थः—हे (दस्रौ) क्लेश के नाशकर्त्ता (मघवाना) अत्यन्त उत्तम धनयुक्त (अश्विना) शिल्पविद्या के जानने वाले अध्यापक और उपदेशको ! जो (वाम्) आप दोनों (देवयानैः) विद्वान् लोग जिनसे चलते उन (पथिभिः) मार्गों से (पुरू) बहुत (रजांसि) लोकों को (तिरः) तिर्छे मार्ग से (आ, यातम्) प्राप्त होवें तो (इह) यहां (वाम्) तुम दोनों को (जनेषु) मनुष्यों में (इमे) ये (मधूनाम्) माधुर्य गुणों से युक्त पदार्थसम्बन्धी (निधयः) धनों के समूह प्राप्त होवें । और (आङ्गूषः) विद्वान् (चित्) भी प्राप्त होवे ॥५॥

भावार्थः—जो लोग विद्वानों के मार्गों से पदार्थविद्याओं का खोज करें वे सम्पूर्ण विद्याओं को प्राप्त हों तथा जल स्थल और अन्तरिक्षों में जा आ और लक्ष्मीवान् हो दारिद्र्य का तिरस्कार करके धनवान् होते हुए अन्य जनों को भी ऐसे ही करें ॥५॥

जो शिल्पी विद्वानों के साथ और लोग परस्पर मित्रता करें, तो क्या पावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्नाव्याम् ।**
**पुनः कृण्वानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह नू समानाः ॥६॥**

पदार्थः—हे (नरा) नायक सभा और सेना के ईशो ! (वाम्) आप दोनों (पुराणम्) प्राचीन काल से सिद्ध (ओकः) सब ऋतुओं में सुख देने वाले स्थान के तुल्य (शिवम्) कल्याण करने वाले (सख्यम्) मित्र के कर्म को प्राप्त हूजिये और (जह्नाव्याम्) त्याग करने वाले की नीति में (युवोः) तुम दोनों को (द्रविणम्) धन प्राप्त हो (पुनः) फिर (शिवानि) सुख करने वाले (सख्या) मित्र के कर्मों को (कृण्वानाः) करते हुए (समानाः) तुल्य और उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले हम लोग (मध्वा) मधुरभाव के (सह) साथ (नु) शीघ्र (मदेम) आनन्द करें ॥६॥

भावार्थः—जो विद्वान् और अविद्वान् लोग परस्पर मैत्री करें वे अनादिसिद्ध कल्याणकारक ब्रह्म ऐश्वर्य और विज्ञान को प्राप्त होकर धार्मिक होते हुए दुष्ट व्यसनों का त्याग करके सदा ही सुखी होवें ॥६॥

अब शिल्पविद्या उपदेशार्थं आज्ञा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना ।

नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥७॥

पदार्थः—हे (युवाना) यौवनावस्था को प्राप्त (नासत्या) असत्य आचार से रहित (सुदक्षा) उत्तम प्रकार चतुर (सजोषसा) तुल्य प्रीति के सेवने वाले (तिरोअह्न्यम्) तिरछे दिनों में उत्तम की (जुषाणा) सेवा करते हुए (अस्रिधा) अहिंसक (सुदानू) उत्तम पदार्थ के देने (अश्विना) शिल्पविद्या के पढ़ाने और पढ़ने वाले वा स्वामी और सेवको ! (युवम्) आप दोनों (वायुना) पवन से (नियुद्भिः च) नियत किये हुए भी वाहनों में स्थित हो और आकर (सोमम्) बड़ी ओषधि के रस का (पिबतम्) पान कीजिये ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप हिंसा आदि अधर्म व्यवहार को त्याग के वायु बिजुली आदि पदार्थविद्याओं को जान अन्य जनों के लिये विद्या आदि दे और पूर्ण ब्रह्मचर्य्य का सेवन करके अतिकाल जीओ ॥७॥

अब शिल्पविद्यासिद्ध यान से जाने आने के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः ।

रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥८॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सम्पूर्ण विद्याओं में व्याप्त रमते हुए यदि (वाम्) आप दोनों को (ऋतजाः) सत्य से उत्पन्न (अद्रिजूतः) मेघ में शीघ्र जाने वाला (रथः) वाहन (द्यावापृथिवी) भूमि और प्रकाश को (सद्यः) शीघ्र (परि, याति) सब ओर पहुँचाता है तो उससे (वाम्) आप दोनों को (ह) निश्चय कर (गीर्भिः) वाणियों से जैसे (अमृध्राः) अध्यापक और उपदेशक (यतमानाः) प्रयत्न करते प्राप्त हों वैसे (पुरूचीः) सुखों को पहुंचाने वाली (इषः) इच्छासिद्धियों को (परि, ईयुः) सब ओर से प्राप्त होवें ॥८॥

भावार्थः—जो लोग विमान आदि यानों को अग्नि आदि से रचते हैं वे अभीष्ट सुखों को प्राप्त होकर जहां इच्छा हो शीघ्र जा सकते हैं ॥८॥

अब शिल्पविद्याफल को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोमस्तं पातमा गतं दुरोणे ।

रथो ह वां भूरि वर्पः करिक्रत्सुतावतो निष्कृतमागमिष्ठः ॥९॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सब के अधीश और सेना के अधीश ! जो (ह) निश्चय (वाम्) आप दोनों का (रथः) (भूरि) बड़े (वर्पः) रूप से युक्त (सुतावतः) उत्पन्न ऐश्वर्य कोश के (निष्कृतम्) सिद्ध हुए विषय को (आगमिष्ठः) अतिशय करके प्राप्त होने वाला (करिक्रत्) निरन्तरकारी है उससे जो (मधुयुत्तमः) मीठे रसों को निचोड़ने वाला (युवाकुः) मिला और अनमिला (सोमः) ऐश्वर्य का लाभ है (तम्) इस की (दुरोणे) गृह में (पातम्) रक्षा कीजिये और अन्य देश से अपने देश में (आ, गतम्) आइए ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य शिल्पविद्या से अनेक कलायन्त्रों का निर्माण कर के वाहन आदि को रचते हैं वे अपने गृह कुल और देश में पूर्ण ऐश्वर्य कर सकते हैं ॥९॥

इस सूक्त में अश्वि शब्द से शिल्पीजनों का कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अट्ठावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । मित्रो देवता । १ । २ । ५ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ६ । ९ निचृद्गायत्री । ७ । ८ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले उनसठवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मित्रगुणों का उपदेश करते हैं ॥

मित्रो जनान्यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्रः कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोत ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (ब्रुवाणः) उपदेश से प्रेरणा करता हुआ (मित्रः) सब का मित्रजन (जनान्) मनुष्यों को (अनिमिषा) दिन और रात्रि में होने वाली क्रिया से (यातयति) पुरुषार्थ कराता जो (मित्रः) सूर्य के समान परमात्मा मित्र (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्यलोक को दिन और रात्रि में होने वाली क्रिया से (दाधार) धारण करता और जो (मित्रः) सब का मित्र (कृष्टीः) खींचने वा जोतने वाली मनुष्य रूप प्रजाओं को दिन और रात्रि में होने वाली क्रिया से (अभि, चष्टे) सब प्रकार उपदेश देता है उस (मित्राय) उक्त सर्व व्यवहार को चलाने वाले मित्र के लिये (घृतवत्) बहुत घृत आदि से युक्त (हव्यम्) हविष्यान्न (जुहोत) दीजिये ॥१॥

भावार्थः– जो मनुष्य लोग सत्य का उपदेश करने सत्य विद्या देने मित्रता रखने सब को धारण करने वाले परमात्मा और सब के व्यवस्थापक राजा का सत्कार करते हैं वे ही सब के मित्र हैं ॥१॥

अब ईश्वर और आप्त विद्वान् के मित्रपन को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमंहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥२॥

पदार्थः– हे (मित्र) मित्र यथार्थवक्ता विद्वान् वा जगदीश्वर ! (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (प्रयस्वान्) प्रयत्न वाला (अस्तु) हो । और हे (आदित्य) अविनाशिस्वरूप ! जो मनुष्य (ते) आप के (व्रतेन) कर्म से जैसे वैसे अन्य जनों को (प्र, शिक्षति) विद्या ग्रहण कराता वा आप ग्रहण करता है (सः) वह (त्वोतः) आप से रक्षित अन्य जनों से (न) न (हन्यते) मारा जाता (न) और न (जीयते) जीता जाता है (एनम्) इसको (अन्तितः) समीप से (अंहः) पाप (न) नहीं (अश्नोति) प्राप्त होता और (न) न इसको (दूरात्) दूर से पाप प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः– जो मनुष्य यथार्थवक्ता और स्वामी के गुण कर्म और स्वभाव के सदृश अपने गुण कर्म और स्वभावों को कर के सत्य न्याय से सब को शिक्षा करते हैं वे पापरहित धर्मात्मा होकर यथार्थवक्ता और स्वामी से रक्षित हुए दुष्टों से नाश तथा पराजय को प्राप्त नहीं हो सकते और न वे दूर वा समीप से पक्षपात से पाप का सेवन करते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अनमीवास इळया मदन्तो मितज्ञवो वरिमन्ना पृथिव्याः ।
आदित्यस्य व्रतमुपक्षियन्तो वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम ॥३॥

पदार्थः– हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्मचर्य से (अनमीवासः) शरीर और आत्मा के रोग से रहित (इळया) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी वा पृथिवी के राज्य से (मदन्तः) आनन्दित होते हुए (मितज्ञवः) और नपी जङ्घाओं वाले (पृथिव्याः) भूमि और (आदित्यस्य) सूर्य्य के (वरिमन्) बहुत शील और सत्य से युक्त (व्रतम्) क्षमा वा न्यायप्रकाश करने वाले कर्म को (आ, उपक्षियन्तः) प्राप्त होते हुए (वयम्) हम लोग (मित्रस्य) सब के मित्र ईश्वर वा यथार्थवक्ता पुरुष की (सुमतौ) श्रेष्ठ आज्ञा वा बुद्धि में (स्याम) होवें वैसे आप लोग भी होओ ॥३॥

भावार्थः– जो लोग परमेश्वर और यथार्थवक्ता पुरुषों के साथ मित्रता कर और क्षमा आदि विद्या न्याय के प्रकाश आदि गुणों का स्वीकार

करके धर्मयुक्त मार्ग में वर्त्तमान हैं वे ही परमेश्वर और यथार्थवक्ता पुरुषों के प्रिय होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अयं मित्रो नमस्यः सुशेवो राजा सुक्षत्रो अजनिष्ट वेधाः ।
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ॥४॥

पदार्थः— सब को जो (अयम्) यह परमात्मा वा यथार्थवक्ता राजा (मित्रः) मित्र (सुशेवः) उत्तम सुख का दाता (सुक्षत्रः) वा जिसका राज्य देश उत्तम प्रकार सुखी (राजा) जो पृथिवी का पालनकर्त्ता (वेधाः) बुद्धिमान् (नमस्यः) और सत्कार करने योग्य है तथा जिसका राज्य देश सुखी (अजनिष्ट) होता है (तस्य) उस (यज्ञियस्य) सत्य व्यवहार के उत्पन्न करने वाले की (सुमतौ) आज्ञा वा बुद्धि में तथा (सौमनसे) श्रेष्ठ मानस व्यवहार और (भद्रे) कल्याण करने वाले व्यवहार में (अपि) भी (वयम्) हम लोग (स्याम) प्रसिद्ध होवें वैसे ही सब लोग हों ॥४॥

भावार्थः—जैसे ईश्वर और यथार्थवक्ता पुरुष धर्म में वर्त्तमान हुए नमस्कार करने के योग्य होते हैं वैसे ही न्याय और विनय से राज्य के पालनकर्त्ता राजा लोग सत्कार करने योग्य होवें और जैसे सज्जन लोग परमेश्वर और यथार्थवक्ताओं के कर्मों में वर्त्तमान हैं वैसे ही हम लोगों को चाहिये कि वर्त्ताव करें ॥४॥

अब मित्र के लिये प्रिय पदार्थ देने को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

महाँ आदित्यो नमसोपसद्यो यातयज्जनो गृणते सुशेवः ।
तस्मा एतत्पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविरा जुहोत ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (आदित्यः) सूर्य्य के सदृश अच्छे गुणों का प्रकाश करने वाला (महान्) बड़े बड़े गुणों से युक्त (सुशेवः) जिसका उत्तम सुख (यातयज्जनः) जो प्रेरणा करता हुआ जन (नमसा) सत्कार से (उपसद्यः) प्राप्त होने योग्य हो और जिस की सब लोग (गृणते) स्तुति करते हैं (तस्मै) उस (पन्यतमाय) अत्यन्त प्रशंसायुक्त (मित्राय) प्राणों के सदृश वर्त्तमान पुरुष के लिये (अग्नौ) अग्नि में (हविः) हवन करने तथा खाने योग्य पदार्थ के सदृश (एतत्) इस (जुष्टम्) प्रिय पदार्थ को (आ, जुहोत) देओ ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । वे ही पूज्य सूर्य्य के सदृश विद्या और धर्म के प्रकाश करने वाले यथार्थवक्ता विद्वान् लोग हैं कि जो उत्तम गुण और कर्मों में सब को प्रेरणा करें जैसे ऋत्विक् अर्थात्

ऋतु ऋतु में हवन करने वाले लोग अग्नि में अच्छे बनाए हुए हवि अर्थात् होम करने योग्य पदार्थ को होम के संसार को प्रसन्न करते हैं वैसे ही उत्तम गुणों से युक्त विद्यार्थिजनों में विद्या और धर्म को अच्छे प्रकार स्थापन करके सब मनुष्य आदि प्राणियों को सुखी करते हैं ॥५॥

अब प्रजा मित्र राजा के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवो देवस्य सानसि । द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (चर्षणीधृतः) मनुष्यों के धारण करने वाले (मित्रस्य) सब के मित्र (देवस्य) विद्वान् राजा का (सानसि) प्राचीन (अवः) रक्षा आदि (चित्रश्रवस्तमम्) जिस के अत्यन्त होने से अद्भुत श्रवण वा अन्न सिद्ध होते (द्युम्नम्) और जो यश करने वाला धन वा विज्ञान है वही प्रजाओं की रक्षा कर सकता है ॥६॥

भावार्थः - जो लोग अनादि काल से सिद्ध विद्याधन का ग्रहण करके सम्पूर्ण प्रजाओं की रक्षा करते हैं वे इस लोक और परलोक में सुख को प्राप्त होते हैं ॥६॥

अब मित्रपन से ईश्वर के पदार्थरचन और ईश्वरसेवन को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि यो महिना दिवं मित्रो बभूव सप्रथाः ।
अभि श्रवोभिः पृथिवीम् ॥७॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! (यः) जो (सप्रथाः) विस्तारयुक्त जगत् के साथ वर्त्तमान वा (मित्रः) मित्र के सदृश वर्त्तमान जगदीश्वर अपनी (महिना) महिमा से (दिवम्) प्रकाशमय सूर्य को रच के (अभि) सन्मुख (बभूव) होता वा (श्रवोभिः) अन्न आदि पदार्थों के साथ (पृथिवीम्) भूमि को रच के (अभि) सन्मुख होता है उस की नित्य सेवा करो ॥७॥

भावार्थः - हे मनुष्यो ! जो बड़े सामर्थ्य से सूर्य और पृथिवी आदि विस्तार सहित संसार को रच और अन्तर्यामिरूप से सब को जान और धारण करके नियम में लाता है वही उपासना करने के योग्य है ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मित्राय पञ्च येमिरे जना अभिष्टिशवसे । स देवान्विश्वान्बिभर्ति ॥८॥

पदार्थः - हे मनुष्यो ! ये (पञ्च) पांच प्राण आदि के सदृश (जनाः)

विद्वान् लोग जिस (अभिष्टिशवसे) अपेक्षित बलयुक्त (मित्राय) मित्र के सदृश सब को सुख देने वाले परमात्मा के लिये (येमिरे) यमादि साधन साधते हैं। (सः) वह (विद्वान्) समस्त (देवान्) सूर्य्य आदिकों को (बिभर्त्ति) धारण तथा पोषण करता है ऐसा जानो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे रोके गये प्राण-वायु इन्द्रियों को रोकते हैं वैसे ही योगीजन समाधि से परमात्मा को प्राप्त होते हैं ॥८॥

अब मित्रत्व से ईश्वरोपासना विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मित्रो देवेष्वायुषु जनाय वृक्तबर्हिषे । इषं इष्टव्रता अकः ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (मित्रः) ईश्वर (वृक्तबर्हिषे) छोड़ा है जल जिस ने उस (जनाय) मनुष्य आदि के लिये (देवेषु) उत्तम (आयुषु) जीवनों में (इष्टव्रताः) चाहे हुये काम जिनसे होते उनकी (इषः) इच्छाओं को (अकः) पूर्ण करता है उसकी सब लोग सेवा करो ॥९॥

भावार्थः—जो परमात्मा अन्याय से रहित भक्त मनुष्यों को सिद्ध इच्छा वाले करता है वही सब लोगों को ध्यान करने योग्य है ॥९॥

यह उनसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । ऋभवो देवताः । १—३ जगती । ४ । ५ निचृज्जगती । ६ विराड्जगती । ७ भुरिग्जगती छन्दः । निषाद : स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले साठवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजविषय का उपदेश करते हैं ॥

इहेह वो मनसा बन्धुता नर उशिजो जग्मुरभि तानि वेदसा ।
याभिर्मायाभिः प्रतिजूतिवर्पसः सौधन्वना यज्ञियं भागमानश ॥१॥

पदार्थः हे (नरः) नायक लोगो ! जो (उशिजः) कामना करते हुए (मनसा) चित्त से (इहेह) इस इस व्यवहार में (वः) आप लोगों का जो (बन्धुता) बन्धुपन उससे (तानि) उन मित्रपने से युक्त कामों को (अभि, जग्मुः) प्राप्त होते हैं और (याभिः) जिन (मायाभिः) बुद्धियों से (प्रतिजूतिवर्प्पसः) प्रतीत हुआ वेगयुक्त रूप जिनका वे (वेदसा) धन से (सौधन्वनाः) उत्तम अन्तरिक्ष जिसका उसके पुत्र होते हुए (यज्ञियम्) यज्ञ के योग्य (भागम्) अंश को (आनश) व्याप्त होते और भाग्य-शाली होते हैं ॥१॥

भावार्थः--जो मनुष्य इस संसार में सब के साथ भाईपन करके वृद्धि और धन से सुख बढ़ाते वे पूर्ण मनोरथ वाले होते हैं ॥१॥

फिर उसी राजशिक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

याभिः शचींभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥२॥

पदार्थः--हे मनुष्यो ! (ऋभवः) बुद्धिमान् लोग (याभिः) जिन (शचीभिः) बुद्धियों वा कर्मों से (चमसान्) मेघों को (अपिंशत) अवयवों वाले करते हैं (यया) जिस (धिया) बुद्धि के साथ (चर्मणः) चर्म की प्राप्ति से (गाम्) धेनु को (अरिणीत) प्राप्त होते हैं (येन) जिस (मनसा) विज्ञान से (हरी) धारण और आकर्षण का (निरतक्षत) निरन्तर विस्तार करते हैं (तेन) उससे आप लोग (देवत्वम्) विद्वान्-पने को (सम्, आनश) उत्तम प्रकार व्याप्त होओ ॥२॥

भावार्थः--हे मनुष्यो ! जैसे बुद्धिमान् लोग यहां वर्त्ताव करें वैसे ही वर्त्ताव करके विद्वान् होओ ॥२॥

अब सर्वाधीश परमात्मा की मित्रता का फल अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रस्य सख्यमृभवः समानशुर्मनोर्नपातो अपसो दधन्विरे ।
सौधन्वनासो अमृतत्वमेरिरे विष्ट्वी शमीभिः सुकृतः सुकृत्यया ॥३॥

पदार्थः--जो (ऋभवः) बुद्धिमान् लोग (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त परमात्मा की (सख्यम्) मित्रता को (सम्, आनशुः) उत्तम प्रकार प्राप्त होवें तथा जिस (मनोः) मनन करने वाले का (नपातः) नहीं गिरना होता उसके लिए (अपसः) कर्मों को (दधन्विरे) धारण करते हैं वे (सौधन्वनासः) उत्तम ज्ञान के युक्त करने वाले (शमीभिः) कर्मों के साथ (विष्ट्वी) कर्म को करके (सुकृत्यया) धर्म की क्रिया से (सुकृतः) उत्तम कर्म करने वाले होते हुए (अमृतत्वम्) मोक्षपदवी को (आ, ईरिरे) प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थः--जो लोग परमेश्वर में प्रीति और उस की आज्ञा के भङ्ग होने से भय तथा धर्म का आचरण करते हैं वे ही मोक्षपदवी को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर राज्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा सह श्रिया ।
न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥४॥

पदार्थः—हे (सौधन्वनाः) यथार्थवक्ता पुरुष के पुत्रो ! (वाघतः) विद्वान् (ऋभवः) बुद्धिमान् आप लोग (सुते) उत्पन्न हुए राज्य में (सचा) विज्ञान और (इन्द्रेण) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से (सरथम्) रथ के साथ वर्त्तमान सेना को (याथ) प्राप्त हूजिये (अथो) इसके अनन्तर (वशानाम्) कामना करने योग्यों की (श्रिया) लक्ष्मी के (सह) साथ (भवथ) हूजिये जिससे (वः) आप लोगों के (सुकृतानि) धर्मयुक्त कर्म्म (वीर्याणि, च) और पराक्रम (प्रतिमै) समान (न) नहीं होवैं ॥४॥

भावार्थः—जो विद्वान् होकर धर्मयुक्त आचरण से प्रयत्न करते हैं वे लक्ष्मीवान् और अतुल धनों को प्राप्त होकर पराक्रमों को बढ़ाते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र॑ ऋ॒भुभि॑र्वा॒जव॑द्भिः॒ समु॑क्षितं सु॒तं सोम॒मा वृ॑षस्वा॒ गभ॑स्त्योः ।
धि॒येषि॒तो म॑घवन्दा॒शुषो॑ गृ॒हे सौ॑धन्व॒नेभि॑ः स॒ह म॑त्स्वा॒ नृभि॑ः ॥५॥

पदार्थः—हे (मघवन्) प्रशंसितधनयुक्त (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य वाले ! (धिया) बुद्धि से (इषितः) प्रेरित आप (वाजवद्भिः) प्रशंसनीय अन्न आदि ऐश्वर्यों से युक्त (ऋभुभिः) बुद्धिमानों के साथ (समुक्षितम्) उत्तम प्रकार सींचे (सुतम्) उत्पन्न किये गये (सोमम्) ऐश्वर्य को (गभस्त्योः) हाथों के बल से (आ, वृषस्व) सब प्रकार पुष्टिये (सौधन्वनेभिः) बुद्धिमानों के पुत्रों और (नृभिः) विद्या आदि व्यवहारों में अग्रगन्ता जनों के (सह) साथ (दाशुषः) देने वाले के (गृहे) घर में (मत्स्व) आनन्दित हूजिये ॥५॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि बुद्धिमान् जनों के सहित प्रजाओं की रक्षा और न्याय से ऐश्वर्य की वृद्धि करके तथा राज्य के कर देने वालों को आनन्दित करके नायकों के साथ प्रजाओं को सदैव आनन्दित करैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र॑ ऋ॒भुमा॑न्वा॒जवा॑न्मत्स्वे॒ह नो॒ऽस्मिन्त्सव॑ने॒ शच्या॑ पुरुष्टुत ।
इ॒मानि॒ तुभ्यं॒ स्वस॑राणि येमिरे व्र॒ता दे॒वानां॒ मनु॑षश्च॒ धर्म॑भिः ॥६॥

पदार्थः—हे (शच्या) बुद्धि वा वाणी से (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसा किये गये (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् राजन् ! आप (इह) इस राज्य में (ऋभुमान्) बहुत बुद्धिमान् और (वाजवान्) बहुत अन्न आदि ऐश्वर्ययुक्त होते हुए (नः) हम लोगों के (अस्मिन्) इस (सवने) ऐश्वर्ययुक्त राज्य में (मत्स्व) आनन्दित होओ जिन (तुभ्यम्) आप के लिये (इमानि) यह वर्त्तमान (स्वसराणि) दिन (येमिरे) नियत होते हैं वह

आप (देवानाम्) विद्वानों के (धर्मभिः) धर्मों के सहित (व्रता) सुशील कर्मों को ग्रहण करके (मनुषः) मनुष्यों को (च) भी आनन्दित करो ॥६॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप सदा धर्मात्मा और बुद्धिमानों के सङ्गी और मूर्खों के सङ्ग के त्यागी होकर एक क्षण भी व्यर्थ न व्यतीत करो और जैसे यथार्थवक्ता पुरुष पक्षपात का त्याग करके सबके साथ कपटरहित वर्त्ताव करते हैं वैसा ही वर्त्ताव करो ॥६॥

अब राजप्रसङ्ग से अमात्य और प्रजाकृत्य को
अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रं ऋभुभिर्वाजिभिर्वाजयन्निह स्तोमं जरितुरुपं याहि यज्ञियम् ।
शतं केतेभिरिषिरेभिरायवे सहस्रणीथो अध्वरस्य होमनि ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले मनुष्यों के स्वामिन् ! आप (इह) इस संसार में (वाजिभिः) वेग आदि गुणों से युक्त (ऋभुभिः) बुद्धिमानों के साथ (वाजयन्) प्राप्त कराते हुए (जरितुः) स्तुति करने वाले विद्वान् की (स्तोमम्) स्तुति को (उप, याहि) प्राप्त हूजिये । और (आयवे) मनुष्य के लिये (इषिरेभिः) इष्ट (केतेभिः) बुद्धियों से (सहस्रणीथः) असंख्य धार्मिकों से प्राप्त होते हुए (अध्वरस्य) न्यायव्यवहार के (होमनि) ग्रहण करने योग्य व्यवहार में (शतम्) असंख्य (यज्ञियम्) राज्यव्यवहार के उत्पन्न करने वाले के समीप प्राप्त हूजिये ॥७॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप इस राज्य में मनुष्यों के हित के लिये असंख्य उत्तम कर्मों को करके धार्मिक मन्त्रिजन और उपदेशकों के साथ यथार्थवक्ता पुरुषों से किई हुई प्रशंसा को प्राप्त होकर अगले जन्म में भी मोक्ष को प्राप्त हूजिये ॥७॥

इस सूक्त में राजा मन्त्री और प्रजा के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः । उषा देवता । १ । ५ । ७ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ४ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अथ सात ऋचा वाले इकसठवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में प्रातःकाल की वेला की उपमा से स्त्री के गुणों को कहते हैं ॥

उषो वाजेन वाजिनि प्रचेताः स्तोमं जुषस्व गृणतो मघोनि ।
पुराणी देवि युवतिः पुरंधिरनु व्रतं चरसि विश्ववारे ॥१॥

पदार्थः—हे (वाजिनि) विज्ञानवाली (मघोनि) अत्यन्त धन से युक्त (देवि) सुन्दर (विश्ववारे) सब प्रकार वरनेयोग्य स्त्री ! तुम (उषः) प्रातर्वेला के सदृश वर्त्तमान (वाजेन) विज्ञान के साथ (प्रचेताः) उत्तमता से सत्य अर्थ की जनाने वाली होती हुई (गृणतः) मुझ स्तुति करने वाले की (स्तोमम्) प्रशंसा का (जुषस्व) सेवन करो। जिस से कि (पुराणी) प्रथम नवीन (पुरन्धिः) बहुत उत्तम गुणों को धारण करने वाली (युवतिः) पूर्ण चौबीस वर्ष वाली हुई (व्रतम्) कर्म को (अनु) अनुकूलता में (चरसि) करती हो इससे हृदयप्रिय हो ॥१॥

भावार्थः—हे स्त्रियो ! जैसे प्रातर्वेला सम्पूर्ण प्राणियों को जगाय के कार्य्यों में प्रवृत्त करती है वैसे ही पतिव्रता होकर पतियों के साथ अनुकूलता से वर्त्ति प्रशंसित होओ ॥१॥

फिर उसी विषय को प्रकारान्तर से अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उषो देव्यमर्त्या वि भाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती ।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२॥

पदार्थः—हे (देवि) उत्तम प्रकार शोभित (उषः) प्रातःवेला के सदृश वर्त्तमान (सूनृताः) उत्तम प्रकार सत्य क्रियाओं की (ईरयन्ती) प्रेरणा करती हुई (चन्द्ररथा) चन्द्रमा के सदृश रथ जिसका ऐसी (अमर्त्या) मरण धर्म से रहित हुई (वि भाहि) शोभित होओ। और (ये) जो (पृथुपाजसः) बहुत बलयुक्त (सुयमासः) उत्तम प्रकार नियम करने वाले (हिरण्यवर्णाम्) तेजोमयी कान्ति को (अश्वाः) व्याप्त किरणों के सदृश (त्वा) आप को (आ, वहन्तु) प्राप्त हों उनको सुखपूर्वक आप शोभित करिये ॥२॥

भावार्थः—जैसे चन्द्रमारूप रथ वाली प्रातःकाल की वेला तेजस्वरूप होकर सब को जगाती है वैसे ही उत्तम पण्डिता स्त्रियां अपने अपने पति को सेवा और विनय से सुशील करती हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उषः प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतुः ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्या ववृत्स्व ॥३॥

पदार्थः—हे स्त्रि ! जैसे (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) उत्पन्न हुए लोकों को (प्रतीची) प्राप्त होने और (अमृतस्य) अमृतस्वरूप रस की (केतुः) जनाने वाली (ऊर्ध्वा) ऊपर को वर्त्तमान (चक्रमिव) पहिये के सदृश चलने वाले (समानम्) तुल्य (अर्थम्) वस्तु को (चरणीयमाना) प्राप्त होती हुई (नव्यसि) अत्यन्त नवीन (उषः) प्रातःकाल की वेला वर्त्तमान और (तिष्ठसि) स्थिर होती है वैसे ही आप (आ, ववृत्स्व) वर्त्ताव करिये ॥३॥

भावार्थः—हे उत्तम स्त्रियो ! जैसे प्रातःकाल सम्पूर्ण भुवनों के खण्डों को प्रकाशित करते हैं वैसे ही उत्तम व्यवहारों को प्रकाशित करो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अव स्यूमेव चिन्वती मघोन्युषा याति स्वसरस्य पत्नी ।
स्व१र्जनन्ती सुभगा सुदंसा आन्ताद्दिवः पप्रथ आ पृथिव्याः ॥४॥

पदार्थः—हे स्त्रियो ! जो (स्यूमेव) डोरों के सदृश व्याप्त (चिन्वती) बटोरती हुई (मघोनी) अत्यन्त धन से युक्त (स्वसरस्य) दिन की (पत्नी) स्त्री के सदृश वर्त्तमान (स्वः, जनन्ती) सूर्य्य वा सुख को उत्पन्न करती हुई (सुभगा) सौभाग्य की करने वाली (सुदंसाः) उत्तम कर्म जिस में विद्यमान ऐसी (उषाः) प्रातःकाल की वेला (आ, अन्तात्) सब प्रकार समीप से (दिवः) प्रकाशमान सूर्य्य और (आ) सब प्रकार समीप (पृथिव्याः) पृथिवी के योग से (पप्रथे) प्रख्यात होती है (अव, याति) और प्राप्त होती है वैसे ही आप लोग भी वर्त्ताव करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे स्त्रियो ! जैसे दिन का सम्बन्धी प्रातःकाल है वैसे ही छाया के सदृश अपने अपने पति के साथ अनुकूल होकर वर्त्ताव करो और जैसे यह प्रकाश पृथिवी के योग से होता है वैसे पति और पत्नी के सम्बन्ध से सन्तान होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अच्छा वो देवीमुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम् ।
ऊर्ध्वं मधुधा दिवि पाजो अश्रेत्प्र रोचना रुरुचे रण्वसंदृक् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (रण्वसन्दृक्) सुन्दर पदार्थों के दिखाने (रोचना) रुचि करने और (मधुधा) मधुर पदार्थों को धारण करने वाली (दिवि) प्रकाश में (वः) आप लोगों को (प्र, रुरुचे) अच्छी लगती है। और जिससे (वः) आप लोगों के (ऊर्ध्वम्) उत्तम (पाजः) बल का (अश्रेत्) श्रयण करती है उस (देवीम्) प्रकाशमान और आप लोगों और (विभातीम्) अनेक पदार्थों को प्रकाशित करती हुई

(सुवृक्तिम्) उत्तम प्रकार वर्त्तमान (उपसम्) प्रभात वेला को (नमसा) वज्र अर्थात् विजुली के साथ आप लोग (अच्छ) उत्तम प्रकार (प्र, भरध्वम्) पुष्ट कीजिये ॥५॥

भावार्थः—जैसे प्रातःकाल को सेवन करते हुए लोग उत्तम बल को प्राप्त होते हैं वैसे ही स्नेहपात्र पतिव्रता स्त्री को प्राप्त होकर पुरुष शरीर आत्मवल और आरोग्यपन को प्राप्त होते हैं जिससे दोनों के सदृश होने पर प्रेम बढ़े ॥५॥

अब प्रातर्वेला ही के गुणों को कहते हैं ॥

ऋतावरी दिवो अर्कैरबोध्या रेवती रोदसी चित्रमस्थात् ।
आयतीमग्न उषसं विभातीं वाममेषि द्रविणं भिक्षमाणः ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जन ! जो (रेवती) उत्तम धन करने वाली (ऋतावरी) जिसमें सत्य विद्यमान ऐसी (दिवः) प्रकाश से उत्पन्न हुई वेला (अर्कैः) सूर्य्यों से (अबोधि) जानी जाती है (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ, अस्थात्) अच्छे प्रकार स्थित करती है उस (आयतीम्) आती और (विभातीम्) प्रकाशित करती हुई (उपसम्) प्रभात वेला को प्राप्त होकर समाधि से जगदीश्वर की (भिक्षमाणः) याचना करते हुए आप (चित्रम्) अद्भुत (वामम्) उत्तम प्रशंसा योग्य (द्रविणम्) धन को (एषि) प्राप्त होते हो ॥६॥

भावार्थः—जो लोग रात्रि के चौथे पहर में जाग के ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करके उत्तम गुणों और ऐश्वर्य्य को मांगते हैं वे पुरुषार्थ से अवश्य इस को प्राप्त होते हैं ॥६॥

[अब विजुली और शिल्पियों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋतस्य बुध्न उषसामिषण्यन्वृषा मही रोदसी आ विवेश ।
मही मित्रस्य वरुणस्य माया चन्द्रेव भानुं वि दधे पुरुत्रा ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो विजुलीरूप अग्नि (बुध्ने) अन्तरिक्ष में (उषसाम्) प्रातःकालों और (ऋतस्य) सत्य के सम्बन्ध में (इषण्यन्) अपनी प्रेरणा की इच्छा करता हुआ सा (वृषा) वृष्टि का हेतु (मही) बड़ी (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ, विवेश) प्रविष्ट होता है और (मित्रस्य) मित्र (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष की (मही) बड़ी पूज्य (माया) बुद्धि (चन्द्रेव) सुवर्णों के सदृश (पुरुत्रा) बहुत रूपयुक्त (भानुम्) सूर्य्य को (विदधे) धारण करता है इससे उस को जान के कार्यों को सिद्ध करो ॥७॥

भावार्थः—जैसे विद्वानों की वाणी और बुद्धि ऐश्वर्य्य को देने वाली हो

और विद्याओं में प्रवेश करके सुखों को देती हैं वैसे ही सर्वत्र प्रविष्ट हुई बिजुली जानी हुई कार्यों में प्रयुक्त होकर ऐश्वर्य्य को उत्पन्न करती है ॥७॥

इस सूक्त में प्रातःकाल स्त्री बिजुली और शिल्पी जनों के गुण वर्णन करने से इस के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इकसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

विश्वामित्र ऋषिः। १६—१८ विश्वामित्रो जमदग्निर्वा। १—३ इन्द्रावरुणौ ४—६ बृहस्पतिः। ७—९ पूषा। १०—१२ सविता। १३—१५ सोमः। १६—१८ मित्रावरुणौ देवताः। १ विराट् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ४। ५। १०। ११। १६ निचृद्गायत्री। ६ त्रिपाद्गायत्री। ७। ८। ९। १२- १५। १७। १८ गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब अठारह ऋचा वाले बासठवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में मित्र अध्यापक और उपदेशकों के विषय को कहते हैं॥

इमा उं वां भृमयो मन्यमाना युवावते न तुज्या अभूवन्।
क्व१ त्यदिन्द्रावरुणा यशो वां येन स्मा सिनं भरथः सखिभ्यः ॥१॥

पदार्थः– हे अध्यापक और उपदेशक ! जो (वाम्) आप दोनों के (इमाः) ये वर्त्तमान (मन्यमानाः) आदर किये गये (भृमयः) घूमने आदि (युवावते) आप को रक्षा करने वाले के लिये (तुज्याः) हिंसा करने के योग्य (न) नहीं (अभूवन्) होवें वैसे करिये और हे (इन्द्रावरुणा) बिजुली और वायु के सदृश वर्त्तमान ! (येन) जिस यश से (वाम्) आप दोनों के (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (सिनम्) अन्न आदि को (स्म) ही (भरथः) धारण करते हो (त्यत्) वह (यशः) यश (उ) ही (क्व) कहां है ॥१॥

भावार्थः– जो अध्यापक और उपदेशक लोग वायु और बिजुली के सदृश उपकार करने वाले कीर्त्ति से युक्त और प्रिय आचरण करने वाले होवें उनके लिये स्नेह से अन्न आदि देना और उन के साथ सदा ही मित्रता की रक्षा करनी चाहिये ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अयमु वां पुरुतमो रयीयञ्छश्वत्तममवसे जोहवीति।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुतं हवं मे ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्रावरुणा) बिजुली और जल के सदृश वर्त्तमान ! (मरुद्भिः) पवनों के सदृश सुनने वाले जनों से (दिवा) सूर्य और (पृथिव्या) भूमि के साथ वर्त्तमान होकर आप सुख देते हैं और जैसे (अयम्) यह राजा (उ) क्या (पुरुतमः) अतिशय करके बहुत (रयीयन्) अपने धन की इच्छा करता हुआ (वाम्) आप दोनों की (अवसे) रक्षा आदि के लिये (शश्वत्तमम्) अनादि काल से सिद्ध पदार्थ को (जोहवीति) वारंवार देता है वैसे (सजोषौ) तुल्य प्रीति के सेवन करने वाले आप दोनों (मे) मेरी (हवम्) स्तुति को (भृणुतम्) सुनिये ॥२॥

भावार्थः—जैसे राजा अध्यापक और उपदेशक लोग सब के रक्षा वृद्धि और विद्या में प्रवेश होने के लिये शिक्षा करते हैं वैसे ही परस्पर की प्रशंसा से पृथिवी आदिकों में ऐश्वर्यों को प्रयत्न से प्राप्त करके परस्पर में प्रीति वाले सब मनुष्य होओ ॥२॥

अब अगले मन्त्र में अध्यापक के विषय को कहते हैं ॥

अस्मे तदि॑न्द्रावरुणा॒ वसु॑ ष्याद॒स्मे र॒यिर्म॑रुत॒: सर्व॑वीरः ।
अ॒स्मान्वरू॑त्रीः श॒रणै॑रवन्त्व॒स्मान्होत्रा॒ भार॑ती॒ दक्षि॑णाभिः ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्रावरुणा) पवन और बिजुली के सदृश वर्त्तमान ! जैसे (अस्मे) हम लोगों में (तत्) वह (वसु) धन (स्यात्) होवै और (अस्मे) हम लोगों में (सर्ववीरः) सब वीर जिस से ऐसी (रयिः) लक्ष्मी होवै और हे (मरुतः) मनुष्यो ! जैसे (अस्मान्) हम लोगों को (वरूत्रीः) अत्यन्त श्रेष्ठ विद्या (होत्रा) ग्रहण करने योग्य क्रिया और (भारती) सम्पूर्ण विद्याओं को पूर्ण करती हुई वाणी (शरणैः) दुःख आदिकों के नाश करने वाले (दक्षिणाभिः) दानों से (अस्मान्) हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा करें वैसा ही प्रयत्न करो ॥३॥

भावार्थः—हे अध्यापक उपदेशक और राजा लोगो ! जैसे हम लोग धनी लक्ष्मीवान् और विद्वान् होवें वैसे ही हम लोगों को प्रेरणा करो ॥३॥

फिर उस ही विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

बृह॑स्पते जु॒षस्व॑ नो ह॒व्यानि॑ विश्वदेव्य । रास्व॒ रत्ना॑नि दा॒शुषे॑ ॥४॥

पदार्थः—हे (विश्वदेव्य) सम्पूर्ण विद्वानों में उत्तम (बृहस्पते) बड़ी वाणी के पालनकर्त्ता विद्वान् पुरुष ! आप (नः) हम लोगों के लिये (हव्यानि) देने के योग्य पदार्थों का (जुषस्व) सेवन करो और (दाशुषे) देने वाले के लिये (रत्नानि) सुन्दर धनों को (रास्व) दीजिये ॥४॥

भावार्थः—हे अध्यापक ! आप हम लोगों के लिये विद्याओं का सेवन

करो। और हे राजन् ! आप विद्या देने वाले के लिये उत्तम धन दीजिये ॥४॥

अब इस अगले मन्त्र में मित्र के विषय को कहते हैं ॥

शुचिमर्कैर्बृहस्पतिमध्वरेषु नमस्यत । अनाम्योज आ चके ॥५॥

पदार्थः—हे विद्या के प्रेमी जनो ! आप लोग (अध्वरेषु) जिनमें हिंसा नहीं होती ऐसे विद्या की प्राप्ति के कर्मों में (अर्कैः) सत्कार करने योग्य विचारों से वर्त्तमान (शुचिम्) पवित्र (बृहस्पतिम्) वाणीरूप विद्या की रक्षा करने वाले का (नमस्यत) सत्कार करो। और जो (ओजः) पराक्रम (अनामि) नहीं नम्र होने वाला और जिसकी मैं (आ, चके) कामना करता हूँ उस की आप लोग कामना करो ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य वेदार्थ के जानने वाले अध्यापक और उपदेशकों का नमस्कार और सत्कार करते हैं वे पवित्र विद्वान् हुए बल को प्राप्त होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वृषभं चर्षणीनां विश्वरूपमदाभ्यम् । बृहस्पतिं वरेण्यम् ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (चर्षणीनाम्) विद्याप्रकाश से युक्त मनुष्यों के मध्य में (वृषभम्) अत्यन्त उत्तम (विश्वरूपम्) कर्मों वा वस्तुओं को रूपित करते हुए अर्थात् उनको यथार्थभाव से प्रकट करते हुए (अदाभ्यम्) हिंसा न करने और सत्कार करने योग्य (वरेण्यम्) अत्यन्त श्रेष्ठ (बृहस्पतिम्) बड़ों के पालन करने वाले राजा का आप लोग आदर करो इससे पराक्रम की कामना करो ॥६॥

भावार्थः—जैसे राजा का सत्कार करके प्रजाजन ऐश्वर्यवान् होते हैं वैसे ही राजा लोग प्रजाओं का सत्कार करके कीर्तियुक्त होते हैं ॥६॥

अब अगले मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

इयं ते पूषन्नाघृणे सुष्टुतिर्देव नव्यसी । अस्माभिस्तुभ्यं शस्यते ॥७॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्टि करने वाले (आघृणे) सब प्रकार प्रकाशित (देव) उत्तम गुणों से युक्त विद्वान् पुरुष वा राजन् ! (ते) आप की जो (इयम्) यह (नव्यसी) अत्यन्त नवीन (सुष्टुतिः) उत्तम प्रशंसा वर्त्तमान है वह (तुभ्यम्) आप के लिये (अस्माभिः) हम लोगों से (शस्यते) उच्चारण की जाती है ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्मसम्बन्धी कर्मों के करने से यशस्वी हैं उनको सुन और देख के सब लोग प्रसन्न होओ ॥७॥

अब अगले मन्त्र में पठन विषय को कहते हैं ॥

तां जुषस्व गिरं मम वाजयन्तीमवा धियम् ।

वधूयुरिव योषणाम् ॥८॥

पदार्थः—हे देव विद्वन् वा राजन् ! आप (ताम्) उस (वाजयन्तीम्) सत्य और असत्य के जनाने वाली (मम) मेरी (गिरम्) सत्य भाषण और शास्त्र के विज्ञान से युक्त वाणी का जैसे (योषणाम्) निज स्त्री को (वधूयुरिव) अपनी स्त्री की इच्छा करने वाला वैसे (जुषस्व) सेवन और (धियम्) बुद्धि की (अव) रक्षा करो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य लोग, जैसे स्त्री की कामना करने वाले अपनी अपनी प्रेमपात्र पत्नी की रक्षा और सेवा करते हैं वैसे ही शास्त्र से युक्त वाणी का सेवन करके बुद्धि की निरन्तर सेवा करें ॥८॥

अब इस अगले मन्त्र में परमात्मा के विषय को कहते हैं ॥

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।

स नः पूषाविता भुवत् ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो जगदीश्वर (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवना) जीव, लोक वा वस्तुओं को (अभि) सन्मुख (विपश्यति) अनेक प्रकार से देखता है (सम्, पश्यति) मिले हुए देखता है (सः) वह (नः) हम लोगों का (पूषा) पुष्टिकर्त्ता (अविता) रक्षक (भुवत्) होवे (च) और जिससे हम लोग निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होवें ॥९॥

भावार्थः– जो सब का रचने देखने और कर्मों के फल देने वाला न्यायाधीश ईश्वर है वही हम लोगों की रक्षा करने और वृद्धि करने वाला होवे ऐसी हम सब लोग अभिलाषा करें ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।

धियो यो नः प्रचोदयात् ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! सब हम लोग (यः) जो (नः) हम लोगों की (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) उत्तम गुण कर्म और स्वभावों में प्रेरित करे उस (सवितुः) सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करने वाले और सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त स्वामी और

(देवस्य) सम्पूर्ण ऐश्वर्य के दाता प्रकाशमान सब के प्रकाश करने वाले सर्वत्र व्यापक अन्तर्यामी के (तत्) उस (वरेण्यम्) सब से उत्तम प्राप्त होने योग्य (भर्गः) पापरूप दु:खों के मूल को नष्ट करने वाले प्रभाव को (धीमहि) धारण करें ॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब के साक्षी पिता के सदृश वर्त्तमान न्यायेश दयालु शुद्ध सनातन सब के आत्माओं के साक्षी परमात्मा की ही स्तुति और प्रार्थना करके उपासना करते हैं उन को कृपा का समुद्र सब से श्रेष्ठ परमेश्वर, दुष्ट आचरण से पृथक् करके श्रेष्ठ आचरण में प्रवृत्त करा और पवित्र तथा पुरुषार्थयुक्त करके धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त कराता है ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

देवस्य सवितुर्वयं वाजयन्तः पुरंन्ध्या। भगस्य रातिमीमहे ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (पुरन्ध्या) जिस बुद्धि से बहुत बोधों को धारण करता उससे (वाजयन्तः) जनाते हुए (वयम्) हम लोग (सवितुः) प्रेरणा करने वाले अन्तर्य्यामी (देवस्य) कामना करने के योग्य (भगस्य) ऐश्वर्य देने वाले के (रातिम्) दान की (ईमहे) याचना करते हैं वैसे आप लोग भी उस बुद्धि की याचना करो ॥११।

भावार्थः—मनुष्य लोग जो बुद्धि को बढ़ाय पुरुषार्थ से धर्म का अनुष्ठान कर और परमेश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्त्ताव करके आत्मशुद्धि के लिये प्रार्थना करें तो ईश्वर उनको शीघ्र पवित्र और शुद्ध आचरणयुक्त करता है ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

देवं नरः सवितारं विप्रा यज्ञैः सुवृक्तिभिः।
नमस्यन्ति धियेषिताः ॥१२॥

पदार्थः—जो (धिया) बुद्धि वा कर्म से (इषिताः) प्रेरणा किये गये (नरः) योग से इन्द्रिय और अन्तःकरण के प्राप्त कराने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् लोग (सुवृक्तिभिः) उत्तम प्रकार दोषों का काटना जिन में उन (यज्ञैः) शास्त्र का अभ्यास सत्सङ्ग और योगाभ्यासों से (सवितारम्) सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करने और (देवम्) सुख देने वाले को (नमस्यन्ति) नमस्कार करते हैं वे अभीष्ट सुखों से सम्पन्न होते हैं ॥१२॥

भावार्थः—जो इन्द्रियों को वश में करने वाले विद्वान् लोग प्रेम और

सत्यभाषणादिस्वरूप धर्म से परमेश्वर की उपासना करते हैं वे सुख से युक्त होते हैं ।१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सोमो जिगाति गातुविद्देवानामेति निष्कृतम् ।
ऋतस्य योनिमासदम् ॥१३॥

पदार्थः– जो (गातुवित्) प्रशंसा जानने वाला (सोमः) ऐश्वर्य्य से युक्त (देवानाम्) विद्वानों और (ऋतस्य) सत्य के (निष्कृतम्) निरन्तर जाने गये (आसदम्) और जिस में सब वर्त्तमान होते हैं उस (योनिम्) कारण की (जिगाति) स्तुति करता है वह अपेक्षित सुख को (एति) प्राप्त होता है ॥१३॥

भावार्थः– जो विद्वान् इस अनेक प्रकार के स्वरूप वाले संसार के कारण अव्यक्त को जानता है। और इस संसार के रचने वाले परमात्मा की प्रशंसा करता है वही ऐश्वर्य से युक्त होता है ॥१३॥

अब इस अगले मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

सोमो अस्मभ्यं द्विपदे चतुष्पदे च पशवे । अनमीवा इषस्करत् ॥१४॥

पदार्थः– हे मनुष्यो जो (सोमः) चन्द्रमा (द्विपदे) मनुष्य आदि (अस्मभ्यम्) हम लोगों के (चतुष्पदे) गौ आदि के (च) और (पशवे) अन्य पशु के लिये (अनमीवाः) रोग निवर्त्तक (इषः) अन्न आदि ओषधिसमूहों को (करत्) करे उसका सब काल में सत्कार करो १४॥

भावार्थः– जो वैद्य लोग सब दो पैर वाले अर्थात् मनुष्य आदि और चौपाये गौ आदिकों को रोगरहित करें वे सब लोगों को मान करने योग्य होवें ॥१४॥

अब इस अगले मन्त्र में मित्रता के विषय को कहते हैं ॥

अस्माकमायुर्वर्धयन्नभिमातीः सहमानः ।
सोमः सधस्थमासदत् ॥१५॥

पदार्थः– हे मनुष्यो ! जो (सोमः) सुन्दर पथ्य और योग्य व्यवहार में प्रेरणा करता हुआ (अभिमातीः) शत्रुओं के सदृश रोगों को (सहमानः) सहन करता हुआ सा (अस्माकम्) हम लोगों के (आयुः) जीवन को (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ (सधस्थम्) साथ के स्थान को (आ, असदत्) स्थित हो, वह हम लोगों का मित्र और हम लोग उसके मित्र होवें ॥१५॥

भावार्थः—जो धार्मिक शूरवीर पुरुष शत्रुओं का नाश और मित्रों की रक्षा करके सब सज्जनों की जीवन और विजय से वृद्धि करते हैं उन के साथ सदैव मैत्री सब लोगों को रक्षा करनी चाहिये ॥१५॥

अब अगले मन्त्र में अध्यापक और उपदेशक के विषय को कहते हैं ॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् । मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१६॥

पदार्थः—जो (सुक्रतू) उत्तम बुद्धि वा श्रेष्ठ कर्म वाले (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश अध्यापक और उपदेशक (घृतैः) जल आदिकों से (गव्यूतिम्) दो कोस (रजांसि) लोकों को सीञ्चने वाले के सदृश (मध्वा) मधुरता से (नः) हम लोगों के लिये (आ, उक्षतम्) सींचने वाले हैं उन दोनों को हम लोग प्राणों के सदृश प्रिय मानते हैं ॥१६॥

भावार्थः—जो पढ़ाने और उपदेश देने वाले से उपदेश की गई प्राण अर्थात् पवनसम्बन्धी विद्या को जानकर लोकलोकान्तर अर्थात् एक देश से दूसरे देश के व्यवहार से सम्पूर्ण देशों में जाना आना सिद्ध करते हैं वे जल के सदृश शुद्ध अन्तःकरण वाले जानने योग्य हैं ॥१६॥

फिर उस ही विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उरुशंसा नमोवृधा मह्ना दक्षस्य राजथः ।

द्राघिष्ठाभिः शुचिव्रता ॥१७॥

पदार्थः—हे (शुचिव्रता) उत्तम कर्म करने वाले (उरुशंसा) बहुत स्तुतियों से युक्त (नमोवृधा) अन्न आदि के बढ़ाने वाले अध्यापक और उपदेशक लोगो ! जिससे कि आप दोनों प्राण और उदान वायु के सदृश (दक्षस्य) बल के (मह्ना) महत्त्व से (द्राघिष्ठाभिः) बहुत बड़ी और पुरुषार्थ से युक्त क्रियाओं से (राजथः) प्रकाशित होते हैं इस कारण सत्कार करने योग्य हैं ॥१७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो पवित्रता से युक्त यशस्वी जन बल ऐश्वर्य्य और अन्न आदि की वृद्धि और बड़े श्रेष्ठ कर्म्मों से लोकों में प्रकाशित होते हैं उनकी ही सेवा और सत्कार करो ॥१७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गृणाना जमदग्निना योनावृतस्य सीदतम् ।

पातं सोममृतावृधा ॥१८॥

पदार्थः—(ऋतावृधा) सत्य के बढ़ाने वाले (गृणाना) स्तुति करते हुए

अध्यापक और उपदेशक आप दोनों (जमदग्निना) नेत्र अर्थात् प्रत्यक्ष से (ऋतस्य) सत्य आचरण के (योनौ) स्थान में निरन्तर (सीदतम्) वसो और (सोमम्) ऐश्वर्य्य की (पातम्) रक्षा करो ॥१८॥

भावार्थः—वे ही अध्यापक और उपदेशक होने के योग्य हैं कि जो प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से पृथिवी को लेकर परमेश्वरपर्य्यन्त पदार्थों का साक्षात्कार करके सत्यविद्या के आचरण की वृद्धि जिनको प्रिय, जो धर्मयुक्त मार्ग से जावें वे सत्कार करने के योग्य होवें ॥१८॥

इस सूक्त में मित्र अध्यापक पढ़नेवाले श्रोता उपदेशक परमात्मा विद्वान् प्राण और उदान आदि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है ऐसा जानना चाहिये ॥

यह तीसरे मण्डल में बासठवां सूक्त और तृतीय मण्डल समाप्त हुआ ॥

---



* ओ३म् *

# अथ चतुर्थमण्डलम्

—❀:०❀:०❀:०❀—

ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।

यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

वामदेव ऋषिः । १ । ५—२० अग्निः । २—४ अग्निर्वा वरुणश्च देवता । १ स्वराडतिशक्वरी छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः । ३ अष्टिश्छन्दः । मध्यमः स्वरः । ४, ६ भुरिक्पङ्क्तिः । पञ्चमः स्वरः । ५, १८, २० स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ७, ९, १५, १७, १९ विराट् त्रिष्टुप् । ८, १०, ११, १२, १६ निचृत्त्रिष्टुप् । १३, १४ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब चतुर्थ मण्डल में बीस ऋचा वाले प्रथम सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में वाणी विषय को कहते हैं ॥

त्वां ह्यग्ने सदमित्समन्यवो देवासो देवमरतिं

न्येरिर इति क्रत्वा न्येरिरे ।

अमर्त्यं यजत मर्त्येष्वा देवमादेवं जनत

प्रचेतसं विश्वमादेवं जनत प्रचेतसम् ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! जो (समन्यवः) क्रोध के सहित वर्त्तमान (देवासः) विद्वान् लोग (हि) जिससे कि (अरतिम्) पहुंचाने योग्य (देवम्) उत्तम गुणों के और (सदम्) गृह के तुल्य स्थिति के देने वाले (त्वाम्) आपकी (इत्) ही (न्येरिरे) प्रेरणा करते हैं इससे (इति) इस प्रकार (क्रत्वा) करके (न्येरिरे) मुझे भी निश्चयकर प्राप्त होवैं और उस (मर्त्येषु) मरणधर्मवालों में (अमर्त्यम्) मरणधर्म से रहित परमात्मा की (यजत) पूजा करो और (आदेवम्) सब प्रकार विद्या आदि के प्रकाश से युक्त (आदेवम्) सब प्रकार देदीप्यमान (प्रचेतसम्) उत्तम ज्ञान से युक्त

(जनत) उत्पन्न करो, ऐसा करके (विश्वम्) सब के (आ, देवम्) सब प्रकार प्रकाश और (प्रचेतसम्) उत्तमज्ञानयुक्त (जनत) उत्पन्न करो॥१॥

भावार्थः—यदि अध्यापक और राजा भौहें टेढ़ी कर के विद्यार्थी मन्त्री और प्रजाजनों को प्रेरणा करें तो वे उत्तम श्रेष्ठ विद्वान् और धार्मिक होते हैं। जो मरणधर्मवालों में मरणधर्मरहित अपने प्रकाशस्वरूप परमात्मा की उपासना कर के सब मनुष्यों को बुद्धिमान् विद्वान् करते हैं वे ही सब काल में सत्कार करने योग्य और सुखी होते हैं॥१॥

अब इस अगले मन्त्र में वाणी के विषय को कहते हैं॥

स भ्रातरं वरुणमग्न आ ववृत्स्व देवाँ
अच्छा सुमती यज्ञवनसं ज्येष्ठं यज्ञवनसम्।
ऋतावानमादित्यं चर्षणीधृतं राजानं चर्षणीधृतम्॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (सः) वह आप (भ्रातरम्) प्रियबन्धु के सदृश (वरुणम्) श्रेष्ठजन को (सुमती) श्रेष्ठ बुद्धि से (यज्ञवनसम्) विद्याव्यवहार के विभाग करने वाले (ज्येष्ठम्) विद्या से वृद्ध अध्यापक को, (यज्ञवनसम्) राज्यव्यवहार के विभाग करने वाले (राजानम्) प्रकाशमान नरेश को, विद्याव्यवहार के विभाग करने वाले (चर्षणीधृतम्) मनुष्यों के धारणकर्त्ता वा विद्वानों से धारण किये गए (आदित्यम्) सूर्य के सदृश वर्त्तमान (ऋतावानम्) सत्य के विभागकर्त्ता प्रकाशमान (चर्षणीधृतम्) सत्यासत्य की विवेचना करने वालों के धारण करने वाले अध्यापक वा उपदेशक को (देवान्) और धार्मिक विद्वानों को (अच्छ) अच्छे प्रकार (आ, ववृत्स्व) सब ओर से वर्त्तिये अर्थात् उनके अनुकूल वर्त्तमान कीजिये॥२॥

भावार्थः—हे अध्यापक वा राजन् आप श्रेष्ठ श्रोतृजन वा मन्त्रियों को उत्तम मति और सत्य आचरण से संयुक्त करके संगत कर्मों का सेवन कराओ और सूर्य्य के सदृश विद्या न्याय का प्रकाश निरन्तर करो॥२॥

फिर उस ही विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

सखे सखायमभ्या ववृत्स्वाशुं न चक्रं रथ्येव
रंह्यास्मभ्यं दस्म रंह्या।
अग्ने मृळीकं वरुणे सचा विदो मरुत्सु विश्वभानुषु।
तोकाय तुजे शुशुचान शं कृध्यस्मभ्यं दस्म शं कृधि॥३॥

पदार्थः—हे (सखे) मित्र (चक्रम्) पहिये के और (आशुम्) शीघ्र चलने वाले घोड़े के (न) सदृश (सखायम्) स्नेहीजन को (अभि, आ, ववृत्स्व) समीप वर्त्ताइये और हे (दस्म) दुःख के नाशकर्त्ता (रंह्या) प्राप्त होने योग्य (रथ्येव) वाहनों के निमित्त उत्तम स्थानों को जैसे वैसे (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (रंह्या) प्राप्त होने योग्यों के सब प्रकार समीप प्राप्त होइये । और हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशमान आप (सचा) सत्य के संयोग से (वरुणे) उपदेश देनेवाले के विषय में (मृळीकम्) सुखकर्त्ता को (विदः) प्राप्त होवें और हे (शुशुचान) पवित्र करने वाले (विश्वभानुषु) सब में सूर्य के सदृश प्रकाश करने वाले (मरुत्सु) मनुष्यों में (तुजे) विद्या और बल की इच्छा करने वाले (तोकाय) पुत्रादि के लिये (शम्) सुख को (कृधि) करो और हे (दस्म) अविद्या के नाश करने वाले आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (शम्) सुख (कृधि) करिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो आप लोग सब लोगों के साथ मित्र होकर जैसे घोड़े रथ को ले चलते हैं वैसे मित्रों को उत्तम कर्म्मों में प्रवृत्त करो। और श्रेष्ठमार्ग के सदृश हम लोगों को सरल मर्य्यादा में पहुंचाइये। जो लोग इस संसार में सूर्य्य के सदृश उत्तम गुणों से युक्त हुए सब के आत्माओं को प्रकाशित करके सुख को उत्पन्न करें वे हम लोगों से सत्कार करने योग्य होवें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं नो॑ अग्ने॒ वरु॑णस्य वि॒द्वान् दे॒वस्य॒ हेळोऽव॑ यासिसीष्ठाः ।
यजि॑ष्ठो॒ वह्नि॑तमः॒ शोशु॑चानो॒ विश्वा॒ द्वेषां॑सि॒ प्र मु॑मुग्ध्य॒स्मत् ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्वान् पुरुष (विद्वान्) विद्यायुक्त (त्वम्) आप (वरुणस्य) श्रेष्ठ (देवस्य) विद्या के प्रकाश करने वाले के (हेळः) आदररहित होते हैं जिसमें उस के (अव) निवारण में (यासिसीष्ठाः) प्रेरणा करो और (यजिष्ठः) अत्यन्त यज्ञ करने और (वह्नितमः) अत्यन्त पहुँचाने वाले (नः) हम लोगों के प्रति (शोशुचानः) अत्यन्त प्रकाशमान हुए आप (विश्वा) सब (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कर्म्मों को (अस्मत्) हम लोगों के समीप से (प्र, मुमुग्धि) अलग कीजिये ॥४॥

भावार्थः—वे ही विद्वान् जन हैं कि जो श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष का अनादर नहीं करते हैं और वे ही अध्यापक और उपदेशक कल्याणकारी होते हैं जो हम लोगों के दोषों को दूर कर के पवित्र करते हैं वे ही हम लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स त्वं नों अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ ।
अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवों न एधि ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वन् पुरुष (सः) वह (त्वम्) आप (अस्या) इस (उषसः) प्रातःकाल के (व्युष्टौ) विशेष दाह में (नेदिष्ठः) अत्यन्त समीप स्थित (ऊती) रक्षण आदि कर्म से (नः) हम लोगों के (अवमः) रक्षा करने वाले (भव) हूजिये (वरुणम्) श्रेष्ठ अध्यापक वा उपदेशक को (रराणः) देते हुए (नः) हम लोगों को (अव, यक्ष्व) प्राप्त हूजिये और (सुहवः) उत्तम प्रकार बुलाने वाले हुए (नः) हम लोगों के लिये (मृळीकम्) सुख करने वाले कार्य्य को (वीहि) व्याप्त हूजिये और हम लोगों को (एधि) प्राप्त हूजिये ॥५॥

भावार्थः—वह ही अध्यापक वा राजा श्रेष्ठ है कि जो उत्तम शिक्षा से हम लोगों की प्रातःकाल के सदृश रक्षा करे। दुष्ट आचरण से अलग करके श्रेष्ठ आचरण करावे ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य संदृग्देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।
शुचि घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वान् (मर्त्येषु) मनुष्यों में (अस्य) इस सब के पालन करने वाले (सुभगस्य) प्रशंसित ऐश्वर्य्य और (देवस्य) दिव्य गुण कर्म और स्वभावयुक्त राजा के (चित्रतमा) अत्यन्त अद्भुत और (श्रेष्ठा) उत्तम कर्म, (तप्तम्) तपाये गये (शुचि) पवित्र (घृतम्) घी के (न) समान वर्त्तमान हैं तथा (अघ्न्यायाः) न नष्ट करने योग्य (धेनोः) वाणी के वा गौ के तपाये गए पवित्र घी के सदृश (देवस्य) परमात्मा के (स्पार्हा) चाहने योग्य (मंहनेव) अतीव पूजनीय सदृश कर्म वर्त्तमान हैं उन के (संदृक्) उत्तम प्रकार देखने वाले होते हुए राज्य की वृद्धि करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है - जिन राजादिकों के अग्नि से तपाये गये स्वच्छ घृत के समान विद्वान् की उत्तम शिक्षित वाणी के मधुर वचनों के समान वचन और परमेश्वर के गुण कर्म स्वभावों के समान गुण कर्म स्वभाव हैं वे अति आश्चर्य्यरूप ऐश्वर्य्य राज्य और अद्भुत कीर्ति को प्राप्त होते हैं ॥६॥

अब अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः ।
अनन्ते अन्तः परिवीत आगाच्छुचिः शुक्रो अर्य्यो रोरुचानः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (अग्ने) अग्नि के सदृश जिस (अस्य, देवस्य) उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले इस राजा के जो (सत्या) उत्तम व्यवहारों में श्रेष्ठ (स्पार्हा) अभिकांक्षा करने के योग्य (परमा) उत्तम (जनिमानि) जन्म (सन्ति) हैं और जो (रोरुचानः) अत्यन्त प्रकाशमान (अर्य्यः) सब का स्वामी (शुक्रः) शीघ्रता करने वाला (शुचिः) पवित्र (परिवीतः) जिस के सब ओर उत्तम गुण कर्म और स्वभाव व्याप्त वह (अनन्ते) परमात्मा वा आकाशविषयक (अन्तः) मध्य में (ता) उन को (त्रिः) तीन वार (आ, अगात्) प्राप्त होता है वही सब का अधीश होने योग्य है ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। वही उत्तम कुल में उत्पन्न होता है कि जिस के उत्तम कर्म हों। और जैसे विजुली आदि अग्नि सीमारहित अन्तरिक्ष में शोभित होता है वैसे ही जो अनन्त जगदीश्वर का ध्यान कर के सब ज्ञान वाला शुद्धियुक्त होकर सम्पूर्ण उत्तम प्रशंसा करने योग्य कर्मों के करने को समर्थ होता है ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स दूतो विश्वेदभि वष्टि सद्मा होता हिरण्यरथो रंसुजिह्वः ।
रोहिदश्वो वपुष्यो विभावा सदा रण्वः पितुमतीव संसत् ॥८॥

पदार्थः (हिरण्यरथः) तेजोमय सुन्दर स्वरूपयुक्त सूर्य्य के सदृश जिस का व्यवहार (रंसुजिह्वः) सुन्दर जिस की वाणी (रोहिदश्वः) जिसके रक्त आदि गुणों से विशिष्ट अग्नि आदिक घोड़े शीघ्र चलने वाले वह (वपुष्यः) रूपों में प्रसिद्ध (विभावा) ऐश्वर्य्यवान् (रण्वः) सुन्दर स्वरूपयुक्त (होता) देने वा लेने वाला होता हुआ राजा (दूतः) दुष्टों को सन्ताप देते हुए के सदृश (विश्वा) सब (सद्म) उत्तम कर्म वा स्थानों की (अभि, वष्टि) कामना करता है (सः) वह (इव) ही (संसत्) चक्रवर्तियों की सभा (पितुमतीव) जोकि प्रशंसित बहुत अन्न आदि ऐश्वर्य्य से युक्त उसके सदृश (सदा) सब काल में उन्नतिशील होता है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं। जैसे दूतजन राजाओं के हित करने की इच्छा करते हैं वैसे ही जो राजाजन प्रजा का हित निरन्तर करते हैं वे राजा और सभासद् पुण्य के भजने वाले होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स चेतयन्मनुषो यज्ञबन्धुः प्र तं मह्या रशनया नयन्ति ।
स क्षेत्यस्य दुर्यासु साधन्देवो मर्त्तस्य सधनित्वमाप ॥९॥

पदार्थः—जो (सः) वह (यज्ञबन्धुः) न्याय व्यवहार के भ्राता के सदृश वर्त्तमान राजा (मनुषः) मन्त्री और प्रजाजनों को (चेतयत्) जनावे (तम्) उसको जो सभासद् लोग (मह्या) बड़ी (रशनया) रस्सी से घोड़े के सदृश नीति से (प्र)(नयन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं (सः) वह (अस्य) इस राज्य के (दुर्यासु) न्याय के स्थानों में राज्यव्यवहार को (साधन्) साधता हुआ (क्षेति) निवास करता है वह (देवः) देनेवाला (मर्त्तस्य) मनुष्य सम्बन्धी (सधनित्वम्) धनीपन के साथ वर्त्तमान राज्य को (आप) प्राप्त होता है ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे यथार्थवादी अध्यापक और उपदेशक लोग उत्तम शिक्षा से विद्यार्थियों के लिये धर्मयुक्त मर्य्यादा को प्राप्त कराते हैं वैसे ही राजनीति की शिक्षा से राजा के लिये राजधर्म के मार्ग को प्राप्त करो। और जो मन्त्री और प्रजा के सहित राजा व्यसनरहित होकर प्रीति से राजधर्म को करता है वह ऐश्वर्य्ययुक्त जन और राज्य को प्राप्त होकर सुख से निवास करता है ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स तू नो अग्निर्नयतु प्रजानन्नच्छा रत्नं देवभक्तं यदस्य ।
धिया यद्विश्वे अमृता अकृण्वन्द्यौष्पिता जनिता सत्यमुक्षन् ॥१०॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे (सः) वह (अस्य) इस संसार का (पिता) पालन करने और (जनिता) उत्पन्न करने वाला (द्यौः) प्रकाशमान (अग्निः) अपने से प्रकाश रूप परमात्मा के सदृश राजा (धिया) बुद्धि से सब को (प्रजानन्) जानता हुआ (नः) हम लोगों को (यत्) जो (देवभक्तम्) देवों से सेवित (रत्नम्) सुन्दर धन को (अच्छ) उत्तम प्रकार प्राप्त कराता है वैसे आप (नयतु) प्राप्त कराइये। (यत्) जिस में (तु) फिर (विश्वे) सब (अमृताः) जन्म और मृत्यु से रहित जीव (सत्यम्) सत्य का (उक्षन्) सेवन करते हुए मोक्ष को (अकृण्वन्) करते हैं वहां ही स्थित हो और सत्य का सेवन और धर्म से राज्य का पालन कर के मोक्ष को प्राप्त होइये ॥१०॥

भावार्थः—हे राजा आदि मनुष्यो जैसे सब जगत् का पालन और उत्पन्न करने वाला परमात्मा दया से सब जीवों के सुख के लिये अनेक प्रकार के पदार्थों को रच और दे के अभिमान नहीं करता है वैसे ही

आप लोग होइये । और ईश्वर के उत्तम गुण कर्म्म और स्वभावों के तुल्य अपने गुण कर्म्म और स्वभावों को करके राज्य आदि का पालन करके अन्त में मोक्ष को प्राप्त होओ ॥१०॥

अब इस अगले मन्त्र में अग्निपद से परमात्मा के विषय को कहते हैं ॥

स जा॑यत प्रथ॒मः प॒स्त्या॑सु म॒हो बु॒ध्ने रज॑सो अ॒स्य योनौ॑ ।
अ॒पाद॑शी॒र्षा गु॒हमा॑नो अ॒न्तायो॒युवा॑नो वृष॒भस्य॑ नी॒ळे ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (सः) बिजुलीरूप अग्नि (प्रथमः) प्रथम सूर्य्य (महः) बड़े (बुध्ने) अन्तरिक्ष में (अस्य) इस (रजसः) लोकों के समूह के (योनौ) कारण में (जायत) उत्पन्न होता है और जैसे (गुहमानः) ढंपा हुआ (अपात्) पैरों और (अशीर्षा) शिर आदि (आयोयुवानः) सब प्रकार अत्यन्त मिलाने वा अलग करने वाला (वृषभस्य) वृष्टि करने वाले सूर्य्य के (नीळे) स्थान में (अन्ता) समीप में उत्पन्न होता है वैसे ही आप लोग भी (पस्त्यासु) घरों में उत्पन्न अर्थात् प्रकट हूजिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे अन्तरहित आकाश में प्रकृति से महत्तत्त्व अर्थात् बुद्धि आदि के क्रम से यह संसार उत्पन्न हुआ, इस संसार में अवयवों से रहित मिलते हुए जीव परमात्मा के समीप में वर्त्तमान हो गृहों में उत्पन्न होते शरीर को धारण करते और त्यागते हैं उस सब के स्वामी का हृदय में ध्यान कर सुखी हूजिये ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र शर्ध॑ आर्त प्रथ॒मं वि॑प॒न्याँ ऋ॒तस्य॒ योना॑ वृष॒भस्य॑ नी॒ळे ।
स्पा॒र्हो युवा॑ वपु॒ष्यो॑ वि॒भावा॑ स॒प्त प्रि॒यासो॑ऽजनयन्त॒ वृष्णे॑ ॥१२॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष जैसे (वृष्णे) वृष्टि करने वाले जीव के लिये (सप्त) पांच प्राण मन और बुद्धि ये सात (प्रियासः) सुन्दर और सेवन करने योग्य (अजनयन्त) उत्पन्न करते हैं वैसे (ऋतस्य) सत्यकारण के (योना) स्थान में (वृषभस्य) वृष्टि करने वाले अग्नि के (नीळे) स्थान में (स्पार्हः) अभिलाषा करने योग्य (युवा) युवावस्था को प्राप्त (वपुष्यः) रूपों में श्रेष्ठ और (विभावा) अनेक प्रकार की विद्याओं के प्रकाश युक्त हुए आप (विपन्या) अनेक प्रकार के व्यवहार में श्रेष्ठ प्रशंसा से (प्रथमम्) पहिले (शर्धः) बल को (प्र, आर्त्त) प्राप्त हूजिये ॥१२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे प्राण और अन्तःकरण कार्य्य के साधक

और प्रिय होते हैं वैसे ही पुरुषार्थ से कार्य्य और कारण जानकर और परमेश्वर का ज्ञान करके प्रथम अवस्था में शरीर और आत्मा के बल को प्राप्त होकर सुखों को उत्पन्न करो ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्माकमत्र पितरो मनुष्या अभि प्र सेदुर्ऋतमाशुषाणाः ।
अश्मव्रजाः सुदुघा वव्रे अन्तरुदुस्रा आजन्नुषसो हुवानाः ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अत्र) इस संसार वा व्यवहार में (अस्माकम्) हम लोगों के (मनुष्याः) मनन करने और (पितरः) पालन करने वाले (ऋतम्) सत्य को (आशुषाणाः) सब प्रकार प्राप्त हुए वा ब्रह्मचर्य से शुष्क शरीर वाले (अश्मव्रजाः) मेघों में चलने वाले (सुदुघाः) उत्तम प्रकार कामनाओं के पूर्ण करने वाले (उषसः) प्रातःकालों को (उस्राः) किरणों के सदृश (हुवानाः) पुकारने वाले हुए (उत्, आजन्) प्राप्त होते हैं (अन्तः) मध्य में (अभि) सन्मुख (प्र, सेदुः) जाते हैं उन को जो (वव्रे) ढांपता है वह भाग्यशाली होता है ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो लोग आप लोगों के पालन करने वाले ब्रह्मचर्य को धारण करके जैसे सूर्य की किरणें मेघों को वर्षाती हैं वैसे ही बुलाये हुए सत्य का प्रकाश करते हैं उनका जो सत्कार करता है वह भाग्यशाली होता है ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ते मर्मृजत ददृवांसो अद्रिं तदेषामन्ये अभितो वि वोचन् ।
पश्वयन्त्रासो अभि कारमर्चन्विदन्त ज्योतिश्चकृपन्त धीभिः ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो हम लोगों के मनन करने और पालन करनेवाले (अद्रिम्) मेघ के (ददृवांसः) तोड़ने वाले किरणों के सदृश हम लोगों को (मर्मृजत) शुद्ध होकर शुद्ध करते हैं (एषाम्) इसके मध्य में (अन्ये) दूसरे लोग (तत्) इस कारण (अभितः) चारों ओर से सन्मुख (वि, वोचन्) उपदेश देते (पश्वयन्त्रासः) देखे हैं यन्त्र जिन्होंने ऐसे होते हुए (कारम्) शिल्पकृत्य का (अभि, अर्चन्) सत्कार करते (धीभिः) बुद्धियों वा कर्मों से (ज्योतिः) प्रकाश को (विदन्त) जानने और सबों में (चकृपन्त) कृपालु होते हैं (ते) वे सब लोगों से सत्कार पाने योग्य होवें ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो वेद उपवेद अंग और उपांगों के पार जाने और शिल्पविद्या के जानने वाले

विद्वान् लोग कृपा से सब को उत्तम प्रकार शिक्षा का उपदेश करके विद्या-युक्त करैं वे सब लोगों से सत्कार करने योग्य होवैं ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ते गव्यता मनसा दृध्रमुब्धं गा येमानं परि षन्तमद्रिम् ।
दृळ्हं नरो वचसा दैव्येन व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥१५॥

पदार्थः—जो (नरः) वीरपुरुष (मनसा) मन से (गव्यता) गौओं के समूह के सदृश आचरण करने वाले (दैव्येन) सुन्दर (वचसा) वचन से (गाः) किरणों को (दृध्रम्) बढ़ाने वाले (उब्धम्) सब ओर से मिले हुए (येमानम्) नियन्ता अर्थात् नायक (सन्तम्) वर्त्तमान (दृळ्हम्) सुख के बढ़ाने वाले को सूर्य (व्रजम्) चलने वाले (गोमन्तम्) किरणें विद्यमान जिस में ऐसे को (अद्रिम्) मेघ के सदृश (उशिजः) कामना करते हुए (परि, वि, वव्रुः) प्रकट करते हैं (ते) वे कामना को प्राप्त होते हैं ॥१५॥

भावार्थः—जैसे किरणें मेघ को ऊपर को प्राप्त करतीं और वर्षाती हैं वैसे ही विद्वान् जन विचार से दृढ़ ज्ञान को उत्पन्न करते हैं ॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

ते मन्वत प्रथमं नाम धेनोस्त्रिः सप्त मातुः परमाणि विन्दन् ।
तज्जानतीरभ्यनूषत व्रा आविर्भुवदरुणीर्यशसा गोः ॥१६॥

पदार्थः—जो (मातुः) माता के सदृश (धेनोः) वाणी के (सप्त) सात अर्थात् सात गायत्र्यादि छन्दों में विभक्त (परमाणि) उत्तम व्यवहारों को (विन्दन्) जानते हैं (ते) वे इस के (प्रथमम्) प्रसिद्ध (नाम) स्तुतिसाधक शब्दमात्र को (त्रिः) तीन वार (मन्वत) मानते हैं और जो (यशसा) कीर्ति के साथ वर्त्तमान (आविः) प्रकट (भुवत्) होवे वह (तत्) उस (गोः) वाणी के विज्ञान को जाने और जो कीर्ति से प्रकट होवें वे (अरुणीः) रक्तगुण से विशिष्ट (जानती) विज्ञानवाली (व्राः) प्रकट होने वालियों की (अभि) सब प्रकार (अनूषत) स्तुति करते हैं ॥१६॥

भावार्थः—जैसे कामधेनु दुग्ध आदि से इच्छा को पूर्ण करती है वैसे ही विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी विद्वानों को प्रसन्न करती है । जो लोग धर्म का आचरण करते हैं वे यशस्वी होकर सर्वत्र प्रसिद्ध होते हैं ॥१६॥

अब सूर्य्य के दृष्टान्त से आत्मा के बल की रक्षा को कहते हैं ॥

नेशत्तमो दुधितं रोचत द्यौरुद्देव्या उषसो भानुरर्त्त ।
आ सूर्यो बृहतस्तिष्ठदज्राँ ऋजु मर्त्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥१७॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष जैसे (द्यौः) आकाशस्थ (भानुः) प्रकाशमान (सूर्य्यः) सूर्य्य (देव्याः) उत्तम सुख को प्राप्त कराने वाली (उषसः) प्रभातवेला से (दुधितम्) पूर्ण (तमः) अन्धकार को (उत्, नेशत्) नाश करता और (रोचत) प्रकाशित होता (तिष्ठत्) और स्थित रहता है वैसे (बृहतः) बड़े (अज्रान्) संसार में जिन का प्रक्षेप हुआ उन पदार्थों को (पश्यन्) देखते हुए आप (मर्त्तेषु) मनुष्यों में (वृजिना) बलों को (च) और (ऋजु) सरल भाव को (आ) (अर्त्त) प्राप्त कराओ ॥१७॥

भावार्थः—जैसे सूर्य्य प्रातर्वेला से रात्रि का निवारण करके प्रकाश को उत्पन्न करता है वैसे ही अध्यापक और उपदेशक व्याप्त भी पदार्थों को देख के नम्रता से मनुष्यों में शरीर आत्मा के बल को बढ़ावें ॥१७॥

अब वाणी के विषय को इस अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आदित्पश्चा बुबुधाना व्यख्यन्नादिद्रत्नं धारयन्त द्युभक्तम् ।
विश्वे विश्वासु दुर्यासु देवा मित्र धिये वरुण सत्यमस्तु ॥१८॥

पदार्थः—हे (वरुण) दुष्ट पुरुषों के बांधने वाले (मित्र) मित्र जैसे (बुबुधानाः) विशेष कर के जानते हुए (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) विद्वान् जन (विश्वासु) सब (दुर्य्यासु) स्थानों में (द्युभक्तम्) बिजुली आदि पदार्थों से सेवित (रत्नम्) धन को (धारयन्त) धारण करते हैं। और (आत्) अनन्तर (इत्) ही (पश्चा) पीछे से इस का (वि, अख्यन्) विशेष करके उपदेश करें (आत्) अनन्तर (इत्) ही वह (सत्यम्) सत्य (धिये) बुद्धि वा उत्तम कर्म के लिये (अस्तु) हो ॥१८॥

भावार्थः—जो लोग ब्रह्मचर्य्य से विद्या, उत्तम शिक्षा, सत्य और धर्माचरणों को धारण करके अन्य जनों के प्रति उपदेश देते हैं वे बुद्धि को बढ़ा के सर्वत्र प्रसिद्ध हो के आनन्द से घरों में रहते हैं ॥१८॥

अब बिजुली के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अच्छा वोचेय शुशुचानमग्निं होतारं विश्वभरसं यजिष्ठम् ।
शुच्यूधो अतृणन्न गवामन्धो न पूतं परिषिक्तमंशोः ॥१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अंशोः) प्राप्त सूर्य्य के (परिषिक्तम्) सब ओर

से गीले किये हुए (पूतम्) पवित्र वस्तु (शुचि) और पवित्र कर्म को (अन्धः) अन्न के (न) तुल्य वा (गवाम्) गौओं के (ऊधः) प्रभात समय के सदृश (न) नहीं (अतृणत्) हिंसा करता है उस (यजिष्ठम्) अत्यन्त मिलाने (विश्वभरसम्) संसार के धारण करने और (होतारम्) देने और (शुशुचानम्) शुद्ध गुण कर्म और स्वभाव कराने वाले (अग्निम्) विजुलीरूप अग्नि का आप लोगों के प्रति मैं (अच्छ) उत्तम प्रकार (वोचेय) उपदेश दूं ॥१६॥

भावार्थः– इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि जैसे विजुली समानरूप हुई सब की रक्षा करती है और विरूप होने पर नाश करती, वह किरणों का नाश नहीं करती। और अन्न के सदृश पालन करने वाली होकर सब को चलाती है ऐसा जानें ॥१६॥

फिर उक्त विषय को सूर्य्य के सम्बन्ध से भी कहते हैं ॥

विश्वेषामदितिर्यज्ञियानां विश्वेषामतिथिर्मानुषाणाम् ।
अग्निर्देवानामव आवृणानः सुमृळीको भवतु जातवेदाः ॥२०॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप (विश्वेषाम्) सम्पूर्ण (यज्ञियानाम्) यज्ञों के अनुष्ठान करनेवालों के (अदितिः) अखण्डित अन्तरिक्ष के तुल्य (विश्वेषाम्) संपूर्ण (मानुषाणाम्) मनुष्यों में (अतिथिः) अभ्यागत के सदृश वर्त्तमान (देवानाम्) विद्वानों के (अग्निम्) अग्नि के सदृश (अवः) रक्षण को (आवृणानः) सब प्रकार स्वीकार करते हुए (जातवेदाः) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान हुए (सुमृळीकः) उत्तम प्रकार सुख करने वाले (भवतु) हूजिये ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे यज्ञ के सुगन्धित धूम से शुद्ध हुआ अन्तरिक्ष पूर्णविद्यायुक्त यथार्थवक्ता उपदेश देने वाला पुरुष और सूर्य्य सुख देने वाले होते हैं वैसे ही आप लोग सबों के लिये सुख देनेवाले हूजिये ॥२०॥

इस सूक्त में विद्वानों से जानने योग्य अग्नि वाणी सूर्य्य विजुली आदिकों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह प्रथम सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। १, १९ पङ्क्तिः। १२ निचृत् पङ्क्तिः। १४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २। ४—७। ९। १२। १३। १५। १७। १८। २० निचृत्त्रिष्टुप्। ३। १६ त्रिष्टुप्। ८। १०। ११ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब बीस ऋचा वाले दूसरे सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में यथार्थ मानने वाले पुरुषों के कृत्य को कहते हैं॥

**यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा देवो देवेष्वरतिर्निधायि।**
**होता यजिष्ठो मह्ना शुचध्यै हव्यैरग्निर्मनुष ईरयध्यै॥१॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (अग्निः) ईश्वर पावक अग्नि वा, बिजुली के सदृश (मर्त्येषु) मरणधर्म वालों में (अमृतः) मृत्युधर्म से रहित (ऋतावा) सत्य-स्वरूप (देवेषु) उत्तम पदार्थों वा विद्वानों में (देवः) उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाला सुन्दर (अरतिः) सर्वस्थान में प्राप्त (होता) देनेवाला (मह्ना) महत्व से (यजिष्ठः) पूजा करने योग्य (हव्यैः) देने के योग्यों के सहित (मनुषः) मनुष्यों को (ईरयध्यै) प्रेरणा करने को (शुचध्यै) पवित्र करने को विद्यमान वह हृदय में (निधायि) धारण किया जाता है॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो जगदीश्वर उत्पत्ति और नाश आदि गुण-रहित होने से दिव्यस्वरूप शुद्ध और पवित्र है उस का प्रेरण और पवित्रता से भजन करो॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं॥

**इह त्वं सूनो सहसो नो अद्य जातो जाताँ उभयाँ अन्तरग्ने।**
**दूत ईयसे युयुजान ऋष्व ऋजुमुष्कान्वृषणः शुक्रांश्च॥२॥**

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (ऋष्व) विज्ञान को प्राप्त (नः) हम लोगों के (सूनो) पवित्रपुत्र (त्वम्) आप (इह) इस संसार में (अद्य) आज (सहसः) बल से (जातः) विद्या के जन्म में प्रकट हुए (ऋजुमुष्कान्) सरलता से चुराने वाले (वृषणः) बलयुक्त जनों और (शुक्रान्) शुद्धि करनेवालों का (च) भी (युयुजानः) समाधान करते हुए (दूतः) दुष्टों के सन्ताप देनेवाले के तुल्य (जातान्) विद्वान् और (उभयान्) पढ़ाने और पढ़ने वालों को (अन्तः) मध्य में (ईयसे) प्राप्त होते हो इस से कल्याण करने वाले हो॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जैसे मध्य में अग्नि सब का पालन और नाश करने वाला है वैसे ही इस संसार में विद्वान् पुत्र तो पालन करने वाला और

मूर्ख विनाश करने वाला होता है । तिससे दीर्घ ब्रह्मचर्य से अपने सन्तानों को उत्तम करके कृतकृत्यता अर्थात् जन्मसाफल्य जानो ।।२।।

अब इस अगले मन्त्र में प्रजा के कृत्य का वर्णन करते हैं ।।

अत्यां वृधस्नू रोहिंता घृतस्नूं ऋतस्यं मन्ये मनंसा जविंष्ठा ।

अन्तरींयसे अरुषा युंजानो युष्मांश्च देवान्विश आ च मर्त्तान् ।।३।।

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष जो आप (ऋतस्य) जल की (वृधस्नू) समृद्धि का विस्तार करते हुए (रोहिता) और अग्नि गुण के सहित (घृतस्नू) जल को बहाते हुए (अरुषा) रक्तगुण विशिष्ट (मनसा) मन से भी (जविष्ठा) अत्यन्त वेग वाले (अत्या) मार्ग को व्याप्त होते हुए वायु और अग्नि को (युजानः) संयुक्त करते हुए (देवान्) विद्वान् (युष्मान्) आप लोगों (च) और (मर्त्तान्) साधारण मनुष्यों को (च) और (विशः) प्रजाओं को (अन्तः) मध्य में (आ) सब प्रकार (ईयसे) प्राप्त होते हो उनको मैं (मन्ये) मानता हूँ ।।३।।

भावार्थः—जो मनुष्य लोग वायु और अग्नि को जलों के साथ वाहन के यन्त्रों में संयुक्त करके चलाते हैं तो वेग और प्रहरण नामक जल और भाफ के गुण, मन के सदृश वाहन आदिकों को चलाते हैं ।।३।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

अर्य्यमणं वरुणं मित्रमेषामिन्द्राविष्णू मरुतो अश्विनोत ।

स्वश्वो अग्ने सुरथः सुराधा एदुं वह सुहविषे जनाय ।।४।।

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष (सुराधाः) उत्तम धन से (स्वश्वः) उत्तम घोड़ों और (सुरथः) उत्तम वाहनों से युक्त आप (सुहविषे) उत्तम सामग्री वाले (जनाय) मनुष्य के लिये (अर्य्यमणम्) न्याय के अधीश (वरुणम्) श्रेष्ठ गुण वाले (एषाम्) इनके (मित्रम्) मित्र (इन्द्राविष्णू) तथा बिजुली और सूत्रात्मा (मरुतः) पवन (उत) और (अश्विना) सूर्य्य और चन्द्रमा की (आ, वह) प्राप्ति कराइये (उ, इत्) और सभी सुख दीजिये ।।४।।

भावार्थ—हे विद्वन् ! आप अग्नि और जलादि पदार्थों को उत्तम प्रकार जान के और कार्य्यों में संयुक्त कर प्रत्यक्ष करके अन्य जनों के लिये उपदेश दीजिये । जिससे कि सब लोग धन धान्य और सुखों से युक्त होवें ।।४।।

अब राजा के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

गोमाँ अग्नेऽविमाँ अश्वी यज्ञो नृवत्सखा सदमिदप्रमृष्यः ।

इळावाँ एषो असुर प्रजावान्दीर्घो रयिः पृथुबुध्नः सभावान् ।।५।।

**पदार्थः**—हे (असुर) दुष्ट पुरुषों के दूर करने वाले (अग्ने) विद्वन् पुरुष आप (गोमान्) बहुत गौओं और (अविमान्) बहुत भेड़ों से युक्त (अश्वी) बहुत घोड़ों वाला (यज्ञः) प्राप्त होने योग्य (नृवत्सखा) नायकों से युक्त मनुष्यों में मित्र (इळावान्) बहुत अन्नयुक्त (प्रजावान्) जिसमें बहुत प्रजा विद्यमान ऐसे (पृथुबुध्नः) विस्तारसहित प्रबन्ध वाला (सभावान्) उत्तम सभा विद्यमान जिनकी ऐसे (अप्रमृष्यः) दूसरों से नहीं दवाने योग्य हैं तथा (एषः) यह (रयिः) धन (दीर्घः) बढ़ा हुआ है वह आप (इत्) ही (सदम्) स्थान को प्राप्त हूजिये ॥५॥

**भावार्थः**-मनुष्यों को वही सभाध्यक्ष करना चाहिये कि जो गौओं भेड़ों और घोड़ों का पालक और दूसरों से नहीं भय करने और दुष्ट जनों के दूर करने वाला, अच्छे प्रबन्ध से युक्त तथा प्रजावाला हो ॥५॥

अब अगले मन्त्र में राजविषय को कहते हैं ॥

**यस्तं इध्मं जभरत्सिष्विदानो मूर्धानं वा ततपते त्वाया ।**
**भुवस्तस्य स्वतवाँ॥पायुरंग्ने विश्वंस्मात्सीमघायत उरुष्य ॥६॥**

**पदार्थः** हे (ततपते) लम्बे चौड़े विथरे हुए चराचर पदार्थों की पालना करने और (अग्ने) पवित्र करने वाले अग्नि (यः) जो (सिष्विदानः) स्नेहयुक्त (स्वतवान्) अपने से बढ़ा (पायुः) रक्षा करनेवाला (त्वाया) आपको प्राप्त होता (ते) आपकी (भुवः) पृथिवी के (इध्मम्) तपे हुए (मूर्द्धानम्) मस्तक को (जभरत्) पोषण करता है उसकी आप (उरुष्य) रक्षा करो (वा) अथवा (तस्य) उसके मस्तक की (सीम्) सब प्रकार रक्षा करो । (अघायतः) अपने को पाप की इच्छा करते हुए का (विश्वस्मात्) सब प्रकार से मस्तक काटो ॥६॥

**भावार्थः**—हे मनुष्यो ! जो लोग आप लोगों के प्रताप शरीर और राज्य की रक्षा करके दुष्टों का सब प्रकार नाश करते हैं उनकी निरन्तर रक्षा करो ॥६॥

श्रेष्ठजन के कर्त्तव्य के विषय को कहते हैं—

**यस्ते भराद्न्नियते चिदन्नं निशिषन्मन्द्रमतिंथिमुदीरंत् ।**
**आ देवयुरिनधंते दुरोणे तस्मिन्त्रयिर्ध्रुवो अंस्तु दास्वान् ॥७॥**

**पदार्थः**—हे विद्वान् पुरुष (यः) जो (दास्वान्) देनेवाला (ते) आप के लिये (अन्नियते) भोजन करने वालों के निश्चित समय में (अन्नम्) भोजन के पदार्थ को (निशिषत्) अत्यन्त विशेष करता हुआ (मन्द्रम्) आनन्द देने वाले (अतिथिम्) सत्योपदेशक को (उदीरत्) अच्छे प्रकार प्रेरणा देता और (देवयुः) विद्वानों की कामना

करता हुआ (इनधते) ईश्वर को धारण करता है जिसमें उस (दुरोणे) गृह में अन्न को (आ, भरात्) धारण करै (चित्) भी (तस्मिन्) उस में (ध्रुवः) निश्चल (रयिः) धन (अस्तु) हो उसको आप पोषण करो ॥७॥

भावार्थ—जो मनुष्य जिन मनुष्यों का जैसा उपकार करें उन मनुष्यों को चाहिये कि उनका वैसा उपकार करें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यस्त्वा दोषा य उषसि प्रशंसात्प्रियं वा त्वा कृणवते हविष्मान् ।
अश्वो न स्वे दम आ हेम्यावान्तमंहसः पीपरो दाश्वांसम् ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वन् पुरुष (यः) जो (त्वा) आपकी (दोषा) रात्रि में और (उषसि) दिन में (त्वा) आपकी (आ, प्रशंसात्) सब प्रकार प्रशंसा करै (वा) अथवा (यः) जो (हविष्मान्) उत्तम दान की सामग्री से युक्त (हेम्यावान्) जिसके जल में प्रकट हुई रात्रि विद्यमान (तम्) उस (दाश्वांसम्) देनेवाले आप को (स्वे) अपने (दमे) घर में (अंहसः) अपराध से (अश्वः) घोड़े के (न) सदृश (पीपरः) पालै उस (प्रियम्) प्रिय सुख (कृणवते) करते हुए के लिये आप सुख दीजिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो लोग दिन और रात्रि आप का उत्साह बढ़ावें उनको आप लोग घास आदि से घोड़ों को जैसे वैसे आनन्द देओ ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यस्तुभ्यमग्ने अमृताय दाशद्दुवस्त्वे कृणवते यतस्रुक् ।
न स राया शशमानो वि योषन्नैनमंहः परि वरदघायोः ॥९॥

पदार्थः हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष (यः) जो (तुभ्यम्) आप के लिये (अमृताय) मोक्ष के अर्थ (दाशत्) देवै (त्वे) वा आप में (दुवः) सेवा को (कृणवते) करता है उस के लिये आप भी विज्ञान दीजिये। जो पुरुष (राया) धन से (शशमानः) उछलता और (यतस्रुक्) उद्यत हैं क्रिया के साधन जिसके ऐसा होता हुआ (एनम्) इस को (अंहः) दुःख देने वाले को (न) नहीं (वि, योषत्) त्याग करै (सः) वह (अघायोः) पापी की हिंसा को (न) नहीं (परि, वरत्) सब ओर से स्वीकार करै ॥९॥

भावार्थः हे मनुष्यो ! आप लोगों में जैसे जो लोग प्रीति करते हैं वैसे ही उनमें आप लोग स्नेह करें ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

यस्य त्वमग्ने अध्वरं जुजोषो देवो मर्त्तस्य सुधितं रराणः।
प्रीतेदसद्धोत्रा सा यविष्ठासाम यस्य विधतो वृधासः॥१०॥

पदार्थः- हे (यविष्ठ) अति जवान (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान विद्वान् पुरुष (यस्य) जिस के (अध्वरम्) हिंसारहित व्यवहार का (त्वम्) आप (जुजोषः) अत्यन्त सेवन करते हैं (देवः) उत्तम सुख के देनेवाले हुए (यस्य) जिस (विधतः) विधान करने वाले (मर्त्तस्य) मनुष्य के (सुधितम्) उत्तम हित के (रराणः) अत्यन्त देनेवाले हों उसकी (सा) वह (होत्रा) ग्रहण करने योग्य क्रिया (प्रीता) प्रसन्न (इत्) ही अर्थात् सफल ही मेरे में (असत्) होवै। (वृधासः) वृद्धि करनेवाले होते हुए हम लोग (असाम) प्रसिद्ध होवैं और वह हम लोगों को वैसे ही सुख देवै॥१०॥

भावार्थः-जो जिस के सुख को साधै उस पुरुष को चाहिये कि उस उपकार करने वाले पुरुष को भी सुख देवै॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

चित्तिमचित्तिं चिनवद्वि विद्वान् पृष्ठेव वीता वृजिना च मर्त्तान्।
राये च नः स्वपत्याय देव दितिं च रास्वादितिमुरुष्य॥११॥

पदार्थः--हे (देव) विद्वान् पुरुष जो (वि) विशेष करके (विद्वान्) विद्यायुक्त पुरुष (पृष्ठेव) पीठों के सदृश (वीता) प्राप्त (वृजिना) पराक्रमों को (मर्त्तान्) मनुष्यों को (च) भी (नः) हम लोगों के (स्वपत्याय) उत्तम सन्तान जिस से उस (राये) धन के लिये (च) और (चित्तिम्) किया संग्रह जिसमें उस क्रिया का और (अचित्तिम्) जिसमें संग्रह नहीं किया उसका (चिनवत्) संग्रह करे; उसके लिये (दितिम्) खण्डित क्रिया को (रास्व) दीजिये (च) और (अदितिम्) अखण्डित क्रिया का (उरुष्य) सेवन कीजिये॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे ऊंट आदि पीठों से भार को ले चलते हैं वैसे ही बलवान् पुरुष सब व्यवहार के भार को धारण करते हैं। और व्यवहार में जिस का खण्डन और जिसका मण्डन करने योग्य होवै वह उसका वैसा ही करना चाहिये॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्य्यास्वायोः।
अतस्त्वं दृश्याँ अग्न एतान् पड्भिः पश्येरद्भुताँ अर्य एवैः॥१२॥

पदार्थः -- हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशमान विद्वन् पुरुष जैसे (अदब्धाः) अहिंसनीय (कवयः) बुद्धिमान् पण्डित लोग (कविम्) उत्तम बुद्धि वाले को (दुर्य्यासु) गृहों में (निधारयन्तः) धारण करते हुए (शशासुः) शासन करते हैं (आयोः) जीवन की वृद्धि का शासन करते हैं (अतः) इस कारण से (त्वम्) आप (एवैः) प्राप्त (पड्भिः) विज्ञान आदिकों से (एतान्) इन प्रत्यक्ष (अद्भुतान्) आश्चर्ययुक्त गुण कर्म और स्वभाव वाले (दृश्यान्) देखने योग्य श्रेष्ठ बुद्धि वाले जनों को (अर्य्यः) स्वामी के समान (पश्येः) देखिये ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०--हे राजन्! जो अध्यापक और उपदेशक लोग बुद्धिमान् पुरुषों को पढ़ाते और उपदेश देते हैं उनका सदा ही सत्कार करो जिस से कि मनुष्य लोग आश्चर्ययुक्त गुण कर्म और स्वभाव वाले होवें ॥१२॥

अब अगले मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं ॥

त्वमग्ने वाघते सुप्रणीतिः सुतसोमाय विधते यविष्ठ ।
रत्नं भर शशमानाय घृष्वे पृथुश्चन्द्रमवसे चर्षणिप्राः ॥१३॥

पदार्थः—हे (घृष्वे) पदार्थों के घिसने वाले (यविष्ठ) अत्यन्त युवन् (अग्ने) अग्नि के सदृश पूर्णविद्या से प्रकाशमान (सुप्रणीतिः) उत्तम प्रकार चली हुई नीति जिनके विद्यमान (पृथु) जिनका पुरुषार्थ विस्तृत हो रहा है (चर्षणिप्राः) जो मनुष्यों को व्याप्त होने वाले (त्वम्) आप (सुतसोमाय) उत्पन्न किया गया ऐश्वर्य वा ओषधियों का रस जिससे उस (शशमानाय) सब के दुःखों के उल्लङ्घन करने वाले (विधते) अनेक प्रकार के व्यवहार को यथावत् करते हुए (वाघते) बुद्धिमान् के लिये (अवसे) रक्षण आदि के अर्थ (चन्द्रम्) प्रसन्न करने वाले सुवर्ण और (रत्नम्) रमणीय मनोहर धन का (भर) धारण करो ॥१३॥

भावार्थः-- हे राजन् जो धार्मिक शूरवीर विद्वान् लोग शत्रु के बल के उल्लङ्घन करने, परस्पर पदार्थों के घिसने से बिजुली आदि की विद्या के प्रकाश करने और मनुष्यों की रक्षा करने वाले मन्त्री आदि नौकर होवें उनके लिये ऐश्वर्य निरन्तर धारण करो ॥१३॥

अब प्रजाजन के कृत्य को कहते हैं ॥

अधा ह यद्वयमग्ने त्वाया पड्भिर्हस्तेभिश्चकृमा तनूभिः ।
रथं न क्रन्तो अपसा भुरिजोर्ऋतं येमुः सुध्य आशुषाणाः ॥१४॥

पदार्थः– हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान राजन् (त्वाया) आप को प्राप्त

(सुध्यः) उत्तम बुद्धिवाले (आशुषाणाः) शीघ्र विभाग करने वाले (वयम्) हम लोग (हस्तेभिः) हाथों (पद्भिः) पैरों और (तनूभिः) शरीरों से (यत्) जिस (रथम्) विमान आदि वाहन के (न) सदृश (चक्रम) करें (अध) इसके अनन्तर (ह) निश्चय जो (अपसा) कर्म से (भुरिजोः) धारण और पोषण करने वालों के (ऋतम्) सत्य को (येमुः) प्राप्त होवें उस विमान आदि वाहन के सदृश (क्रन्तः) क्रम से चलने वाले हूजिये ॥१४॥

भावार्थ.- इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि आलस्य त्याग के शरीरादिकों से पुरुषार्थ को सदा ही करके प्रजा और राज्य का धर्म से नियम करें जिस से सब लोग धनयुक्त होवें ॥१४॥

अब इस अगले मन्त्र में राजा के विषय को कहते हैं ॥

अधा मातुरुषसः सप्त विप्रा जायेमहि प्रथमा वेधसो नॄन्।
दिवस्पुत्रा अङ्गिरसो भवेमाद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (उषसः) प्रभातवेला के दिन के समान सात प्रकार के किरणें होते हैं वैसे ही (मातुः) माता के सदृश वर्त्तमान विद्या से हम लोग (प्रथमाः) प्रथम प्रसिद्ध (विप्राः) बुद्धिमान् (सप्त) सात प्रकार के अर्थात् राजा, प्रधान, मन्त्री, सेना, सेना के अध्यक्ष, प्रजा और चारादि (जायेमहि) होवें और (वेधसः) बुद्धिमान् (नॄन्) नायक पुरुषों को प्राप्त हों और (दिवः) प्रकाश के (पुत्राः) विस्तारने वाले (अङ्गिरसः) जैसे प्राणवायु (अद्रिम्) मेघ को वैसे शत्रु को (रुजेम) छिन्न भिन्न करें (अध) इस के अनन्तर (धनिनम्) बहुत धनयुक्त प्रजा में विद्यमान को (शुचन्तः) विद्या और विनय से पवित्र करते हुए (भवेम) प्रसिद्ध होवें ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०---जो राजा लोग बुद्धिमान् मन्त्रियों का सत्कार करके रक्षा करते हैं वे सूर्य्य के सदृश प्रकाशित यशवाले होते हैं और सभी काल में उद्योगियों की रक्षा और दुष्टों का निरन्तर ताड़न करें जिस से कि सब शुद्ध आचरणवाले होवें ॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अधा यथा नः पितरः परासः प्रत्नासो अग्न ऋतमाशुषाणाः।
शुचीदयन्दीधितिमुक्थशासः क्षामा भिन्दन्तो अरुणीरप व्रन् ॥१६॥

पदार्थः - हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान राजन् (यथा) जिस प्रकार से (नः) हम लोगों के (परासः) होने वाले (प्रत्नासः) हुए (पितरः) उत्पन्न करने वाले पितृ लोग (शुचि) पवित्र, शुद्धि करने वाले (ऋतम्) सत्यन्याययुक्त व्यवहार को

(आशुपाणाः) सब प्रकार बांटते और (उक्थशासः) प्रशंसित शासनों वाले (क्षाम) पृथिवी को (भिन्दन्तः) विदारते हुए (वीधितिम्) नीति के प्रकाश को (अयन्) प्राप्त होते हैं (अध) इस के अनन्तर (अरुणीः) प्राप्त प्रजाओं को (अप) (व्रन्) स्वीकार करें वैसे (इत्) ही आप हम लोगों में वर्त्ताव करो ॥१६॥

भावार्थः--इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा और राजपुरुष प्रजाओं में पिता के सदृश वर्त्ताव कर के सत्यन्याय का प्रकाश कर और अविद्या को दूर कर के प्रजाओं को शिक्षा देते हैं वे पवित्र गिने जाते हैं ॥१६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तोऽयो न देवा जनिमा धमन्तः।
शुचन्तो अग्निं ववृधन्त इन्द्रमूर्वं गव्यं परिषदन्तो अग्मन् ॥१७॥

पदार्थः-हे राजा और प्रजाजन आप लोगो (अयः) सुवर्ण को (धमन्तः) कंपाते हुओं के (न) सदृश (देवाः) विद्वान् लोग (जनिम) जन्म की (देवयन्तः) कामना करते हुए (सुकर्माणः) जिन के उत्तम कर्म (सुरुचः) वा श्रेष्ठ प्रीति वह (शुचन्तः) पवित्र आचरण को करते और कराते हुए (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि को (ववृधन्तः) बढ़ाते हैं (परिषदन्तः) और सभा का आचरण करते हुए (ऊर्वम्) हिंसा करने वाली (इन्द्रम्) बिजुली को (गव्यम्) वाणीमय शास्त्र को (अग्मन्) प्राप्त होते हैं वैसा ही आप लोग आचरण करो ॥१७॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०-सब मनुष्यों को चाहिये कि धर्मयुक्त कर्मों को कर के विद्या और सभा में प्रीति उत्पन्न कर के पवित्रता की कामना करते हुए विद्या और जन्म से बढ़ने वाले बिजुली आदि की विद्या को बढ़ाते हुए चक्रवर्ती राज्य करके आनन्द का निरन्तर भोग करें ॥१८॥

अब राजा के विषय को कहते हैं ॥

आ यूथेव क्षुमति पश्वो अख्यद्देवानां यज्जनिमान्त्युग्र।
मर्त्तानां चिदुर्वशीरकृप्रन्वृधे चिदर्य उपरस्यायोः ॥१८॥

पदार्थः—हे (उग्र) तेजस्वी राजन् आप (देवानाम्) विद्वान् (मर्त्तानाम्) मनुष्यों के (अन्ति) समीप में (यत्) जिन (जनिम) जन्मों को (आ, अख्यत्) सब ओर से प्रसिद्ध करते वा (क्षुमति) बहुत अन्न जिसमें विद्यमान उसमें (यूथेव) सेनाजनों के सदृश प्रसिद्ध करते हैं। (अर्य्यः) और जैसे स्वामी (चित्) वैसे (उपरस्य) मेघ और

(आयोः) जीवन प्राप्त कराने वाले (पश्वः) पशु की (चित्) भी (वृधे) वृद्धि के लिये (उर्वशीः) बहुत व्याप्त होने वाली क्रियाओं की विद्वान् लोग (अकृप्रन्) कल्पना करते हैं ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्यों के मध्य में राजा का जन्म वह बड़े पुण्य से उत्पन्न हुआ ऐसा जानना चाहिये। जो राजा विद्यमान न हो तो कोई भी स्वस्थता को नहीं प्राप्त हो और जैसे मेघ के समीप से सब का जीवन और वृद्धि होती है वैसे ही राजा के समीप से सब प्रजा की वृद्धि और जीवन होता है ॥१८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अकर्म ते स्वपसो अभूम ऋतमवस्रन्नुषसो विभातीः ।
अनूनमग्निं पुरुधा सुश्चन्द्रं देवस्य मर्मृजतश्चारु चक्षुः ॥१९॥

पदार्थ—हे राजन् जैसे (विभातीः) प्रकाश करती हुई (उषसः) प्रभातवेलाओं को (अनूनम्) और बहुत (सुश्चन्द्रम्) सुन्दर सुवर्ण जिससे होता उसको (मर्मृजतः) अत्यन्त शोधते हुए (देवस्य) कामना करने वाले के (चारु) सुन्दर (चक्षुः) नेत्र (अग्निम्) और अग्नि को (पुरुधा) बहुत प्रकारों से (अवस्रन्) वसते हैं वैसे ही (ऋतम्) सत्य की सेवा करते और (स्वपसः) उत्तम धर्म-सम्बन्धी कर्म करते हुए हम लोग अत्यन्त शुद्धता तथा कामना करते हुए के हित को (अकर्म) करें और (ते) आप के मित्र (अभूम) होवें ॥१९॥

भावार्थः—हे राजन्! जैसे सूर्य्य से उत्पन्न प्रातःकाल सब को शोभित करता है वैसे ही ब्रह्मचर्य्य से हुए विद्वान् हम लोग आप की आज्ञानुकूल जैसे वर्त्तें वैसे ही आप हम लोगों का हित निरन्तर करो और सब हम लोग परस्पर मेल करके और अन्याय दूर करके धर्मसम्बन्धी कर्मों को प्रवृत्त करें ॥१९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एता ते अग्न उचथानि वेधोऽवोचाम कवये ता जुषस्व ।
उच्छोचस्व कृणुहि वस्यसो नो महो रायः पुरुवार प्र यन्धि ॥२०॥

पदार्थः—हे (वेधः) बुद्धिमान् (अग्ने) विद्वान् धार्मिक राजन् हम लोग (कवये) सब विद्या से युक्त (ते) आप के लिये जिन (एता) इन (उचथानि) उचित वचनों को (अवोचाम) कहें (ता) उन को आप (जुषस्व) सेवो और (उत्, शोचस्व) अत्यन्त विचारो (कृणुहि) करो। हे (पुरुवार) बहुत आप्त अर्थात् सत्यवादी पुरुषों का स्वीकार

करने वाले (नः) हम लोगों के लिये (महः) बड़े (वस्यसः) अतिशयित निवसे धरे हुए (रायः) धनों को (प्र, यन्धि) उत्तमता से देओ ॥२०॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि यथार्थवक्ता ही पुरुषों के वचनों को सुन और उत्तम प्रकार विचार कर सेवन करे। उन यथार्थवक्ता पुरुषों के लिये प्रिय वस्तुओं को देकर वे निरन्तर सन्तुष्ट करने योग्य हैं। इस प्रकार राजा और यथार्थवक्ता पुरुषों की सभा सब मिल कर सब कर्म्मों को सिद्ध करें ॥२०॥

इस सूक्त में राजा, प्रजा और यथार्थवक्ता पुरुष के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह द्वितीय सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ५ । ८ । १० । १२ । १५ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । १३ । १४ विराट् त्रिष्टुप् । ३ । ७ । ९ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ स्वराड् बृहतीच्छन्दः । मध्यमः स्वरः । ६ । ११ । १६ पङ्क्तिश्छन्दः पञ्चमः स्वरः ॥

अब सोलह ऋचा वाले तीसरे सूक्त का वर्णन है उसके प्रथम मन्त्र में सूर्य्यरूप अग्नि के दृष्टान्त से राजप्रजाजनों के कृत्य का वर्णन करते हैं ॥

आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः ।
अग्निं पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥१॥

पदार्थः—हे यथार्थवक्ता विद्वानो जैसे हम लोग (वः) आप के (अध्वरस्य) न नष्ट करने योग्य राज्य के (अवसे) धर्मात्माओं की रक्षा और दुष्टों के नाश करने के लिये (होतारम्) देने (सत्ययजम्) सत्य ही को प्राप्त होने और (रुद्रम्) दुष्टों के रुलाने वाले (अचित्तात्) जिसमें चित्त नहीं स्थिर होता ऐसी (तनयित्नोः) बिजुली के (हिरण्यरूपम्) तेज रूप के समान रूप वाले वा (रोदस्योः) अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य में (अग्निम्) सूर्य्य के सदृश (राजानम्) प्रकाशमान न्याय (पुरा) प्रथम करें वैसा राजा हम लोगों के बीच आप लोग (आ, कृणुध्वम्) सब प्रकार करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वान् लोगो ! राजा और प्रजाजनों के साथ एक सम्मति करके जैसे ईश्वर ने ब्रह्माण्ड के मध्य में सूर्य्य को स्थित करके सब का प्रियसुखसाधन किया वैसे ही हम लोगों के

मध्य में उत्तम गुण कर्म और स्वभावयुक्त को राजा करके हम लोगों के हित को आप लोग सिद्ध करो जिससे आप लोगों का भी प्रिय सिद्ध होवै ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अयं योनिश्चकृमा यं वयं ते जायेव पत्य उशती सुवासाः ।
अर्वाचीनः परिवीतो नि षीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीचीः ॥२॥

पदार्थः—हे राजन् (वयम्) हम लोग (ते) आपके (यम्) जिस गृह को (चकृम) बनावैं सो (अयम्) यह (योनिः) गृह (पत्ये) स्वामी के लिये (उशती) कामना करती हुई (सुवासाः) सुन्दर वस्त्रों से शोभित (जायेव) मनकी प्यारी स्त्री के सदृश (अर्वाचीनः) इस वर्त्तमानकाल में हुआ (परिवीतः) सब प्रकार व्याप्त उत्तम गुण जिसमें ऐसा हो उसमें आप (नि, सीद) निवास करो और हे (स्वपाक) उत्तम प्रकार परिपक्व ज्ञान वाले (प्रतीचीः) प्रतीति को प्राप्त होती हुई (इमाः) यह वर्त्तमान प्रजा (उ) और (ते) आप के भक्त हों ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजा को चाहिये कि ऐसे गृह बनावै कि जो पतिव्रता सुन्दरी मन की प्यारी स्त्री के सदृश सब ऋतुओं में सुख देवै। और वहां स्थित हुआ ऐसे कर्म करे कि जिन कर्मों से अपनी प्रजा अनुरक्त होवैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आशृण्वते अदृपिताय मन्म नृचक्षसे सुमृळीकाय वेधः ।
देवाय शस्तिममृताय शंस ग्रावेव सोता मधुषुद्यमीळे ॥३॥

पदार्थः—हे (वेधः) बुद्धिमान् राजन् (यम्) जिसकी मैं (ईळे) स्तुति करता हूं (आशृण्वते) सब प्रकार सुनते हुए (अदृपिताय) मोहरहित (नृचक्षसे) सत्य और असत्य व्यवहारों को करते हुए जनों के साक्षात् देखने और (सुमृळीकाय) उत्तम प्रकार सुख देने वाले, सुख और (अमृताय) जल के सदृश शान्तस्वरूप (देवाय) उत्तम गुणों से युक्त आप के लिये (मन्म) विज्ञान का मैं उपदेश देता हूं वैसे आप (ग्रावेव) मेघ के सदृश (मधुषुत्) मधुरताओं के उत्पन्न करने वाले (सोता) अभिषेक करने वाले हुए (शस्तिम्) प्रशंसा की (शंस) स्तुति कीजिये अर्थात् प्रबन्ध से कहिये ॥३॥

भावार्थः—वह ही राजा उत्तम होता है कि जो मोह आदि दोषों से रहित होकर सब वचनों का सुनने, सत्य और असत्य को देखने और मेघ

के सदृश प्रजा में अनेक प्रकार का भोग प्राप्त करानेवाला न्यायाधीश होवे ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं चिन्नः शम्या अग्ने अस्या ऋतस्य बोध्यृतचित्स्वाधीः ।
कदा त उक्था सधमाद्यानि कदा भवन्ति सख्या गृहे ते ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान राजन् (त्वम्) आप (नः) हम लोगों की (अस्याः) इस प्रजा के (ऋतस्य) सत्य के (शम्यै) कर्म्म के लिये (स्वाधीः) उत्तम प्रकार सब प्रकार विचार करने और (ऋतचित्) सत्य का संग्रह करने वाला (कदा) कब (बोधि) जानो और (चित्) भी (ते) आपके (गृहे) गृह में (सधमाद्यानि) मेल के स्थानों में श्रेष्ठ और (उक्था) उचित भी (ते) तुम्हारे (सख्या) मित्रों के कर्म्म वा अभिप्राय (कदा) कब (भवन्ति) होते हैं ॥४॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप जब प्रजा के सत्य न्याय को करेंगे तब ही आप की आज्ञा के अनुकूल वर्त्ताव करके प्रजा एकसम्मति से होंगी ॥४॥

अब उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कथा ह तद्वरुणाय त्वमग्ने कथा दिवे गर्हसे कन्न आगः ।
कथा मित्राय मीळ्हुषे पृथिव्यै ब्रवः कदर्यम्णे कद्भगाय ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (त्वम्) आप (ह) ही (कथा) किस प्रकार (वरुणाय) श्रेष्ठ की (गर्हसे) निन्दा करते हो (कथा) किस प्रकार (दिवे) प्रकाशमान के लिये निन्दा करते हो (नः) हम लोगों के (आगः) अपराध की (कत्) कब निन्दा करते हो, (मीळ्हुषे) सुख बढ़ाने वाले (मित्राय) मित्र के लिये (कथा) किस प्रकार निन्दा करते हो (पृथिव्यै) पृथिवी के सदृश वर्त्तमान स्त्री के लिये (तत्) उस वचन को (कत्) कब (ब्रवः) कहो (अर्य्यम्णे) न्यायाधीश के लिये और (भगाय) ऐश्वर्य्य के लिये (कत्) कब कहो ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जो राजा श्रेष्ठ वा विद्वानों की निन्दा करे वह आप लोगों से रोकने योग्य है और सब राजकर्मों की सिद्धि के लिये समयव्यवस्था करनी चाहिए और जब जब जो जो कर्म करना हो तब तब वह वह कर्म करना चाहिये इस प्रकार राजा को उपदेश करना चाहिये जब मित्रद्रोह का आचरण करे तभी उसको शिक्षा देनी चाहिये ऐसा करने पर राजा और प्रजा दोनों की निरन्तर उन्नति होवे ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कद्धिष्ण्यासु वृधसानो अग्ने कद्वाताय प्रतवसे शुभंये ।
परिज्मने नासत्याय क्षे ब्रवः कदग्ने रुद्राय नृघ्ने ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशमान आप (धिष्ण्यासु) बुद्धि में उत्पन्न क्रियाओं में (वृधसानः) बढ़ने वालों का विभाग करते हुए (प्रतवसे) श्रेष्ठ बल और (वाताय) विज्ञान के लिये (कत्) कब (ब्रवः) कहो हे (अग्ने) विद्वन् राजन् (परिज्मने) सब ओर भूमि जिसके उस (शुभंये) कल्याण को प्राप्त होने वाले (नासत्याय) असत्य आचरण से रहित के लिये (कत्) कब कहो (क्षे) पृथिवी राज्य के लिये विद्यमान जिसमें उसमें (नृघ्ने) शत्रुओं के नायकों के नाश करने और (रुद्राय) दुष्ट पुरुषों को रुलाने वाले के लिये (कत्) कब कहो ॥६॥

भावार्थः—राजा आदि अध्यक्षों के प्रति अध्यापक उपदेशक और मन्त्रीजन ऐसा उपदेश देवें कि आप लोग बुद्धि के कामों में वृद्ध बलिष्ठ उत्तम आचरण वाले सत्यवादी और दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाले कब होओगे और उत्तम आचरण करने और दुष्ट आचरण के त्याग में विलम्ब न करो ॥६॥

अब विद्यार्थियों की परीक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कथा महे पुष्टिम्भरायं पूष्णे कद्रुद्राय सुमखाय हविर्दे ।
कद्विष्णव उरुगायाय रेतो ब्रवः कदग्ने शरवे बृहत्यै ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् पुरुष आप (रेतः) जल के सदृश शान्ति अर्थात् कोमलचित्त होके (महे) बड़े (पुष्टिम्भराय) पुष्टि धारण कराने (पूष्णे) पोषण करने वाले के लिये (कथा) किस प्रकार (ब्रवः) कहो (सुमखाय) उत्तम प्रकार यज्ञ-सम्पादन करने और (हविर्दे) देने योग्य वस्तुओं को देने वाले के लिये तथा (रुद्राय) शत्रुओं में प्रबल के लिये (कत्) कब कहो (उरुगायाय) बहुत प्रशंसा करने योग्य (विष्णवे) व्यापक परमेश्वर के लिये (कत्) कब कहे (शरवे) दुष्टों के नाश करने वाली (बृहत्यै) बड़ी सेना के लिये (कत्) कब कहो ॥७॥

भावार्थः—अध्यापक लोगों को विद्यार्थियों को पढ़ा के प्रत्येक अठवाड़े प्रत्येक पक्ष प्रतिमास प्रतिछमाही और प्रतिवर्ष परीक्षा यथायोग्य करनी चाहिये जिससे कि राजकुमारादि सब भ्रमरहित ज्ञानविशिष्ट उत्तम-स्वभावयुक्त शरीर और आत्मा के बल सहित धर्मिष्ठ सौ वर्ष जीने और न्याय से राज्य के पालन करने वाले होवें ॥७॥

अब अगले मन्त्र में राजविषय को कहते हैं ॥

कथा शर्धाय मरुतामृताय कथा सूरे बृहते पृच्छ्यमानः ।
प्रति ब्रवोऽदितये तुराय साधा दिवो जातवेदश्चिकित्वान् ॥८॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) प्रसिद्ध उत्तम ज्ञानयुक्त (सूरे) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान सेना में (पृच्छ्यमानः) पूंछे गए आप (मरुताम्) पवनों का जैसे वैसे (ऋताय) सत्य के और (बृहते) बढ़ते हुए (शर्धाय) बल के लिये (कथा) किस प्रकार से (ब्रवः) कहो (तुराय) शीघ्रता करते हुए (अदितये) नहीं नाश होने वाले अन्तरिक्ष के लिये (कथा) किस प्रकार से (प्रति) निश्चित कहो (चिकित्वान्) ज्ञानवान् होकर (दिवः) प्रकाशों को (साध) सिद्ध करो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा लोग वायु के सदृश अपने बल को बढ़ाते, योधा लोगों के शिक्षकों और परीक्षकों का सत्कार करते और प्रश्नोत्तर से सब को जान उनके द्वारा कार्य्य सिद्ध करते हैं वे सूर्य्य के सदृश ऐश्वर्य के प्रकाशक होते हैं ॥८॥

अब मनुष्य को ब्रह्मचर्य्य आदि से पुरुषार्थ सेवना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋतेन ऋतं नियतमीळ आ गोरामा सचा मधुमत्पक्वमग्ने ।
कृष्णा सती रुशता धासिनैषा जामर्येण पयसा पीपाय ॥९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशमान विद्वान् पुरुष जिस प्रकार से मैं (गोः) पृथिवी वा वाणी के (ऋतेन) सत्य से (नियतम्) नियमयुक्त (ऋतम्) सत्य की (ईळे) स्तुति वा ढूंढ करता हूं वैसे आचरण करते हुए आप पृथिवी के मध्य में (सचा) प्रसङ्ग से (मधुमत्) श्रेष्ठ मधुर आदि गुणों से युक्त (आमा) कच्चे और (पक्वम्) पक्के पदार्थों की (आ, पीपाय) अच्छे प्रकार वृद्धि करो और जैसे (एषा) यह (कृष्णा) श्याम वर्ण (सती) सज्जन पण्डिता पतिव्रता स्त्री (रुशता) उत्तम स्वरूप से (जामर्य्येण) जीवन में निमित्त (पयसा) दुग्ध और (धासिना) अन्न से बढ़ती है वैसे आप वृद्धि को प्राप्त होओ ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य से विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त होके और धर्मयुक्त व्यवहार से धर्म का अन्वेषण और इन्द्रियजित् होने से नियम से भोजन करने वाले होकर पुरुषार्थ करते हैं वे स्नेही स्त्री और पुरुष के सदृश आनन्दित होकर सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥९॥

फिर भी पुरुषार्थकर्त्तव्यता को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋतेन हि ष्मा वृषभश्चिदक्तः पुमाँ अग्निः पयसा पृष्ठ्येन ।
अस्पन्दमानो अचरद्वयोधा वृषा शुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१०॥

पदार्थः—हे राजन् (हि) जिससे कि आप (ऋतेन) सत्य व्यवहार से (वृषभः) बलिष्ठ (अक्तः) उत्तम गुणों से युक्त (पयसा) रात्रि के साथ (अग्निः) अग्नि के समान (पृष्ठ्येन) पृष्ठ भाग में होने वाले दिन में (पुमान्) पुरुषार्थी (अस्पन्दमानः) किञ्चित् चले हुए (वयोधाः) सुन्दर अवस्था जीवन और धनादिकों के धारण करने (वृषा) सुखों की वृष्टि करने वाले होते हुए (अचरत्) विचरते हैं (पृश्निः) अन्तरिक्ष (ऊधः) और रात्रि के सदृश (चित्) सो भी (शुक्रम्) वीर्य्य को (स्म) ही (दुदुहे) पूरा करते हैं ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है- हे मनुष्यो ! जैसे पृथिवी के अर्द्ध भाग में विजुली सूर्य्य रूप से शोभित होती है और दूसरे भाग में रात्रि के समय छिपी हुई चलती है वैसे ही शयन और जागरण नियम से कर और पुरुषार्थ कर के वीर्य बढ़ाय के सौ वर्ष की अवस्थायुक्त हुए सब को आनन्द दीजिये ॥१०॥

अब राजा आदि क्षत्रियों के लिये उपदेश अगले मन्त्र में करते हैं ॥

ऋतेनाद्रिं व्यसन्भिदन्तः समङ्गिरसो नवन्त गोभिः ।
शुनं नरः परि षदन्नुषासमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ॥११॥

पदार्थः—हे (नरः) नायक होते हुए विद्वान् लोगो ! जैसे (गोभिः) किरणों के सदृश वाणियों से (अङ्गिरसः) पवन (ऋतेन) जल के सहित वर्त्तमान (अद्रिम्) मेघ के (सम्, भिदन्तः) अच्छे प्रकार टुकड़े करते हुए (वि, असन्) विविध प्रकार से फेंकते हैं (उषसम्) और प्रातःकाल को (परि, सदन्) प्राप्त होते हैं वा (जाते) उत्पन्न हुए (अग्नौ) अग्नि में (स्वः) सूर्य्य (आविः) प्रकट (अभवत्) होता है वैसे (शुनम्) सुख की (नवन्त) प्रशंसा करो ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो राजा आदि वीर क्षत्रिय जैसे पवन से युक्त विजुलियां मेघ को इधर उधर चलाय और तोड़ पृथिवी पर गिरा के सब को सुख देती हैं और दूसरी विजुली का विलोडन करके सूर्य्य को उत्पन्न करती हैं वैसे ही दुष्ट पुरुषों का नाश और न्याय का प्रकाश, बुद्धि का विलोडन और विद्या को उत्पन्न कर के सूर्य्य के सदृश प्रकाशमान हुए अतुल सुख को प्राप्त होओ ॥११॥

अब सङ्गदोष, अदोष और रक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋतेन॑ देवीर॒मृता॒ अमृ॑क्ता॒ अर्णो॑भि॒रापो॒ मधु॑मद्भिरग्ने ।
वा॒जी न सर्गे॑षु प्रस्तुभा॒नः प्र सद॒मित्स्रवि॑तवे द॒धन्युः ॥१२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष जैसे (ऋतेन) सत्य से (मधुमद्भिः) बहुत मधुर आदि गुणों से युक्त (अर्णोभिः) जलों के साथ (अमृक्ताः) नहीं शुद्ध किये गए (देवीः) उत्तम, श्रेष्ठ (अमृताः) कारणरूप से नाशरहित (आपः) प्राणरूप पवन (स्रवितवे) जाने को (सदम्) प्राप्त वस्तु (प्र, दधन्युः) धारण करते हैं वैसे (इत्) ही (सर्गेषु) किये हुए कार्य्यों में (वाजी) बहुत अन्न वाले के (न) सदृश (प्रस्तुभानः) अत्यन्त धारण करते हुए आप प्रकट हूजिये ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—हे मनुष्यो जैसे शुद्ध जल सुखकारी और अशुद्ध दुःख देने वाले होते हैं वैसे ही उत्तम गुणों का सङ्ग आनन्ददायक और दोषों का सङ्ग दुःख देने वाला होता है। और जैसे ऐश्वर्य्ययुक्त धार्मिकजन कृपा से बुभुक्षित आदि का पालन करता है वैसे ही सज्जन लोग सब की रक्षा करते हैं ॥१२॥

अब बुद्धिमानों के बुद्धिमत्ता विषय को कहते हैं ॥

मा कस्य॑ य॒क्षं सद॒मिद्धु॒रो गा॒ मा वे॒शस्य॑ प्रमिन॒तो मापेः ।
मा भ्रातु॑रग्ने॒ अनृ॑जोर्ऋ॒णं वे॒र्मा सख्यु॒र्दक्षं॑ रि॒पोर्भु॑जेम ॥१३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशमान आप (अनृजोः) कुटिल (कस्य) किसी (प्रमिनतः) अत्यन्त हिंसा करने वाले (वेशस्य) प्रवेश के (हुरः) कुटिल कार्य सम्बन्धी (सदम्) वस्तु को (मा) मत (गाः) प्राप्त होओ और कुटिल (आपेः) प्राप्त हुए के (यक्षम्) प्राप्त होने योग्य वस्तु को (मा) मत प्राप्त होओ कुटिल (भ्रातुः) बन्धु के प्राप्त होने योग्य वस्तु को (मा) मत प्राप्त होओ कुटिल (सख्युः) मित्र के (दक्षम्) बल को (मा) मत (वेः) प्राप्त होओ कुटिल (रिपोः) शत्रु के (ऋणम्) ऋण को (मा) मत प्राप्त होओ जिससे हम लोग सुख का (इत्) ही (भुजेम) व्यवहार करें ॥१३॥

भावार्थः—उन्हीं लोगों को बुद्धिमान् समझना चाहिये कि जो अन्याय से किसी का वस्तु दुष्टवेश हिंसा करने वाले का संग न्याय से प्राप्त हुए धन का व्यर्थ खर्च दुष्ट बन्धु का संग और शत्रु का विश्वास नहीं करके आनन्द का भोग करें ॥१३॥

अब राज्यपालन विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

रक्षा णो अग्ने तव रक्षणेभी रारक्षाणः सुमख प्रीणानः ।
प्रति स्फुर वि रुज वीड्वंहो जहि रक्षो महि चिद्वावृधानम् ॥१४॥

पदार्थः—हे (सुमख) उत्तम न्याय व्यवहार के पालन करने वाले (अग्ने) राजन् आप (नः) हम लोगों की (रक्ष) रक्षा करो और (महि) बड़े (वावृधानम्) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त हुए की (रारक्षाणः) रक्षा करते (प्रीणानः) प्रसन्न होते वा प्रसन्न करते हुए (प्रति, स्फुर) पुरुषार्थ करो और शत्रु को (वीळु) दृढ़ (वि, रुज) विशेषता से अच्छे प्रकार भग्न करो और (अंहः) पाप का (जहि) नाश करो (रक्षः) दुष्ट शत्रु का भंग करो और जिस से (तव) आप के (चित्) भी (रक्षणेभिः) अनेक प्रकार के उपायों से हम लोग सुखी होवें ॥१४॥

भावार्थः—वे ही राजा लोग यश के भागी हैं कि जो दुष्ट पुरुषों की दुष्टता को दूर कर और श्रेष्ठ पुरुषों की श्रेष्ठता बढ़ा के राज्य का निरन्तर पिता के समान अर्थात् जैसे पिता अपने पुत्र की पालना करता वैसे पालन करें ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एभिर्भव सुमना अग्ने अर्कैरिमान्त्स्पृश मन्मभिः शूर वाजान् ।
उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व सं ते शस्तिर्देववाता जरेत ॥१५॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरः) प्राण के सदृश वर्त्तमान (शूर) वीर (अग्ने) विद्वन् राजन् ! आप (एभिः) इन धार्मिक रक्षक और विद्यावान् (अर्कैः) सत्कार करने योग्य (मन्मभिः) विद्वानों के साथ (सुमनाः) उत्तम मन युक्त (भव) हूजिये और (इमान्) इन (वाजान्) प्राप्त होने योग्य उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वालों को (स्पृश) ग्रहण करिये (उत) और (ब्रह्माणि) बड़े बड़े धनों का (सम्, जुषस्व) अच्छे प्रकार सेवन करिये जिससे कि (ते) आप की (देववाता) विद्वानों से की गई (शस्तिः) प्रशंसा (जरेत) प्रशंसित हो अर्थात् अधिक विख्यात हो ॥१५॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप यथार्थवक्ता विद्वानों का संग निरन्तर करिये और उन के उपदेश से न्यायपूर्वक राज्य का पालन करके प्रशंसित हूजिये ॥१५॥

अब प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एता विश्वा विदुषे तुभ्यं वेधो नीथान्यग्ने निण्या वचांसि ।
निवचना कवये काव्यान्यशंसिषं मतिभिर्विप्र उक्थैः ॥१६॥

पदार्थः—हे (वेधः) बुद्धिमान् (अग्ने) राजन्! (विप्रः) मेधावी जन मैं (उक्थैः) प्रशंसा करने योग्य (मतिभिः) विद्वानों के साथ जो (काव्यानि) कवियों ने रचे शास्त्र उनकी (अशंसिषम्) प्रशंसा करता हूँ और उन (विश्वा) सम्पूर्ण (एता) इन (निण्या) निर्णय किये गये (निवचना) अत्यन्त अर्थों को कहने वाले (वचांसि) वचनों को (विदुषे) विद्वान् (कवये) उत्तम बुद्धि वाले (तुभ्यम्) आप के लिये (नीथानि) प्राप्त किये गये प्रशंसूं अर्थात् वह आप को प्राप्त हुए ऐसी प्रशंसा करूं ॥१६॥

भावार्थः—वही निश्चित प्रशंसा जानने योग्य है कि जो धार्मिक विद्वानों से की जाय। अध्यापक और उपदेशक जनों को चाहिये कि पढ़ने और उपदेश लेने वालों को सदा ही सत्यवादी और विद्वान् करें ॥१६॥

इस सूक्त में अग्नि, राज और प्रजादिकों के कृत्य और गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह तीसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः। अग्नीरक्षोहा देवता। १। २। ४। ५। ८ भुरिक् पङ्क्तिः। ९ स्वराट् पङ्क्तिः। १२ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ३। १०। ११। १५ निचृत्त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप्। ७। १३ त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। १४ स्वराड्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले चौथे सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजविषय में सेनापति के काम को कहते हैं ॥

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन।
तृष्वीमनु प्रसितिं द्रूणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥१॥

पदार्थः—हे सेना के ईश! आप (राजेव) राजा के सदृश (अमवान्) बलवान् (इभेन) हाथी से (याहि) जाइये प्राप्त हूजिये (प्रसितिम्) दृढ़ बंधी हुई (पृथ्वीम्) भूमि के (न) सदृश (पाजः) बल (कृणुष्व) करिये जिस से (प्रसितिम्) बन्धन और (तृष्वीम्) पियासी के प्रति (अनु, द्रूणानः) अनुकूल शीघ्रता करने वाले और (अस्ता) फेंकने वाले (असि) हो इससे (तपिष्ठैः) अतिशय सन्ताप देने वाले शस्त्र आदिकों से (रक्षसः) दुष्टों को (विध्य) पीड़ा देओ ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे राजसम्बन्धी जनो!

आप लोग पृथ्वी के सदृश दृढ़ बल कर के राजा के सदृश न्यायाधीश होकर पिपासित मृगी के पीछे दौड़ते हुए भेड़िये के सदृश दुष्ट डांकू जो कि अनुधावन करते अर्थात् जो कि पथिकादिकों के पीछे दौड़ते हुये उनका नाश करो ॥१॥

अब राज विषय में सामान्य से राजजनों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तव॑ भ्रमास॑ आशुया पतन्त्यनु॑ स्पृश धृष॒ता शोशु॑चानः ।
तपूं॑ष्यग्ने जु॒ह्वा॑ पत॒ङ्गानसं॑न्दितो॒ वि सृ॑ज॒ विष्व॑गु॒ल्काः ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान ! जो (तव) आप के (आशुया) शीघ्र (भ्रमासः) भ्रमण (पतन्ति) गिरते हैं उनको (धृषता) प्रगल्भ सेना के साथ (शोशुचानः) अत्यन्त पवित्र हुए (अनु, स्पृश) स्पर्श करो और (जुह्वा) होम के साधन से अग्नि (तपूंषि) तपाये गये पदार्थों को जैसे वैसे (पतङ्गान्) अग्निकणों के सदृश वर्त्तमान घोड़ों को अनुकूलता से स्पर्श करो (असन्दितः) खण्डरहित हुए (उल्काः) बिजुलियों को (विष्वक्) सर्व प्रकार (वि, सृज) छोड़िये ॥२॥

भावार्थः—जो राजजन फुरती वाले होते हुए शीघ्रकार्य्यकारी हों वे अखण्डितवीर्य्य अर्थात् पूर्णबल वाले हो कर बिजुली के प्रयोगों और ब्रह्मास्त्र आदि अस्त्रों को शत्रुओं के ऊपर करि विजय को प्राप्त हों ॥२॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रति॒ स्पशो॒ वि सृ॑ज॒ तूर्णि॑तमो॒ भवा॑ पा॒युर्वि॒शो अ॒स्या अद॑ब्धः ।
यो नो॑ दू॒रे अ॒घशं॑सो॒ यो अन्त्यग्ने॒ माकि॑ष्टे॒ व्यथि॒रा द॑धर्षीत् ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् राजन् ! आप (तूर्णितमः) अत्यन्त शीघ्रकारी होते हुए (स्पशः) अत्यन्त स्पर्श करने अर्थात् मुंह लगने वालों का (वि, सृज) त्याग करो, और (अस्याः) इस (विशः) प्रजा के (अदब्धः) नहीं मारने और (पायुः) पालन करने वाले (प्रति, भव) होओ (यः) जो (अघशंसः) पाप की प्रशंसा करने वाला चोर (नः) हम लोगों के (दूरे) दूर देश में वा (यः) जो (अन्ति) समीप में वर्त्तमान हो वह (ते) आप को (व्यथिः) पीड़ारूप (माकिः) मत (आ, दधर्षीत्) ढीठ हो ॥३॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप उत्तम गुणों को ग्रहण करके और प्रजा का पालन करके जो दूर और समीप में वर्त्तमान डाँकू आदि दुष्ट पुरुष उनका नाश करो जिससे सब को सुख हो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व न्य१मित्राँ ओषतात्तिग्महेते ।

यो नो अरातिं समिधान चक्रे नीचा तं धक्ष्यतसं न शुष्कम् ॥४॥

पदार्थः—हे (समिधान) उत्तम प्रकार प्रकाशमान और (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान! आप (उत्, तिष्ठ) उद्युक्त हूजिये (आ, तनुष्व) अच्छे प्रकार विस्तृत हूजिये (अमित्रान्) शत्रुओं के (प्रति) प्रति (नि, ओषतात्) निरन्तर दाह देओ। हे (तिग्महेते) अत्यन्त तीव्र वृद्धि वाले! (यः) जो (नः) हम लोगों के (अरातिम्) एक शत्रु और अनेक शत्रुओं को (नीचा) नीच (चक्रे) करि चुका अर्थात् सब से बढ़ि गया (तम्) उसको (शुष्कम्) गीलेपन से रहित (अतसम्) कूप के (न) सदृश जिस से आप (धक्षि) जलाते हो इस से वह आप राज्य के योग्य हो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि आलस्य त्याग के पुरुषार्थ का विस्तार करके शत्रुओं को जलावें और अन्धकूप के सदृश कारागृह में उनका बन्धन करें और नीचता को प्राप्त करावें। जो लोग ऐसा करते हैं उनकी राजा गुरु के सदृश सेवा करें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऊर्ध्वो भव प्रति विध्याध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने ।

अव स्थिरा तनुहि यातुजूनां जामिमजामिं प्र मृणीहि शत्रून् ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्विन्! आप (अस्मत्) हम लोगों से (ऊर्ध्वः) उन्नत (अधि) उपरिभाव में अर्थात् ऊपर में रहने वाले (भव) हूजिये (स्थिरा) स्थिर सेना और (दैव्यानि) विद्वानों के किये कर्म्मों का (तनुहि) विस्तार करिये (यातुजूनाम्) वेग को प्राप्त हुए प्राणियों के (जामिम्) भोग और (अजामिम्) अभोग को (आविः) प्रकट (कृणुष्व) करिये (शत्रून्) शत्रुओं का (प्र, अव, मृणीहि) अच्छे प्रकार नाश करिये और (प्रति, विध्य) बार बार पीड़ा दीजिये ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने से उत्कृष्ट अर्थात् श्रेष्ठों को देख के प्रसन्न होते अनुत्कृष्ट अर्थात् दुःखियों को देख के शोक करते भोगयुक्तों को देख के आनन्दित होते और भोगरहितों को देख के अप्रसन्न होते वे ही राजकर्म्मों में स्थिर होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स ते जानाति सुमतिं यविष्ठ य ईवते ब्रह्मणे गातुमैरत् ।

विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्यो वि दुरो अभि द्यौत् ॥६॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अत्यन्त युवावस्थायुक्त (यः) जो (अर्य्यः) स्वामी (ईवते) विद्या से व्याप्त (ब्रह्मणे) वेद जानने वाले के लिये (गातुम्) प्रशंसित वाणी को (ऐरत्) प्राप्त करावे (अस्मै) इस के लिये (विश्वानि) सम्पूर्ण (सुदिनानि) सुख करने वाले दिनों (रायः) धनों (द्युम्नानि) प्रकाशित यशों (दुरः) और यश के द्वारों को (अभि, वि, द्यौत्) प्रकाशित करे (सः) वह विद्वान् (ते) आप की (सुमतिम्) श्रेष्ठ बुद्धि को (जानाति) जानता है ॥६॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो लोग नित्य मङ्गल आचरण करने वाले यशयुक्त अनुरक्त अर्थात् स्नेही शूरवीर और राजव्यवहार के जानने वाले आपको चितावें उन को आप मित्र जानिये ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सेदग्ने अस्तु सुभगः सुदानुर्य्यस्त्वा नित्येन हविषा य उक्थैः ।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वेदस्मै सुदिना सासदिष्टिः ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या से प्रकाशित सभ्यजन ! (यः) जो (सुभगः) प्रशंसनीय ऐश्वर्य्ययुक्त (सुदानुः) उत्तम दान देने वाला हो (सः, इत्) वही आपका सभासद् (अस्तु) हो (यः) जो (उक्थैः) प्रशंसाओं और (नित्येन) नहीं नाश होने वाले (हविषा) हवन करने योग्य पदार्थ से (त्वा) आप को (पिप्रीषति) सुशोभित करने की इच्छा करता है (अस्मै) इसके लिये (स्वे) अपने (आयुषि) जीवन और (दुरोणे) गृह में (विश्वा) सम्पूर्ण (सुदिना) सुन्दर दिन हों (सा) वह (इष्टिः) यज्ञ करने की क्रिया दोनों लोकों में सुख देने वाली (इत्) ही (असत्) होवै ॥७॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो लोग नित्य प्रेम से न्याय और विनय के द्वारा राज्य की उन्नति करते और राजा और प्रजा के उपद्रव के विना मङ्गल समय सदा ही प्राप्त कराते हैं वे राजगृह में अध्यक्ष हों ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्सं ते वावाता जरतामियं गीः ।
स्वश्वास्त्वा सुरथा मर्जयेमास्मे क्षत्राणि धारयेरनु द्यून् ॥८॥

पदार्थः—हे राजन् ! मैं (ते) आप के (सुमतिम्) श्रेष्ठबुद्धिवाले सभासद् का (अर्चामि) सत्कार करता हूँ जिन (त्वा) आपकी (वावाता) दोषों को नाश करने और विद्या को उत्पन्न करने वाली (इयम्) यह (गीः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी (घोषि) शब्दयुक्त वचन जैसे हों वैसे (सम्, जरताम्) स्तुति करै उन आपको (स्वश्वाः) उत्तम घोड़े (सुरथाः) श्रेष्ठ रथ और हम लोग (मर्जयेम) शुद्ध करावें जैसे (ते) आप

के धनों को (अनु, द्यून्) अनुदिन प्रतिदिन हम लोग धारण करें वैसे आप (अर्वाक्) पीछे (अस्मे) हम लोगों के लिये (क्षत्राणि) राज्य में उत्पन्न हुए धनों को (धारयेः) धारण करिये ॥८॥

भावार्थः—जब राजा सभास्थ जनों को पूंछै कि इस अधिकार में कौन पुरुष रखने योग्य है तब संपूर्ण जन धार्मिक योग्य पुरुष के नियत करने में सम्मति देवैं और राजा को भी चाहिये कि योग्य ही पुरुषों को राजकर्म में नियत करै जिससे कि नित्य प्रशंसा बढ़ै ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इह त्वा भूर्या चरेदुप त्मन्दोषावस्तर्दीदिवांसमनु द्यून्।
क्रीळन्तस्त्वा सुमनसः सपेमाभि द्युम्ना तस्थिवांसो जनानाम् ॥९॥

पदार्थः—हे राजन्! (इह) इस राजकर्म में आप (त्मन्) आत्मा में (भूरि) बहुत शुभ कर्म (उप, आ, चरेत्) करें (सुमनसः) श्रेष्ठमनयुक्त जन (तस्थिवांसः) स्थिर और (अनु, द्यून्) प्रतिदिन (क्रीळन्तः) धनुर्वेदविद्या की शिक्षा के लिये और युद्ध के लिये शस्त्रों का अभ्यास करते हुए हम लोग (जनानाम्) राजा और प्रजा के पुरुषों के मध्य में (दीदिवांसम्) प्रकाशमान वा प्रकाश करते हुए और (द्युम्ना) यश वा धन के सहित वर्त्तमान राजमान (त्वा) आपकी (दोषावस्तः) दिन रात्रि प्रशंसा करैं जो अश्रेष्ठ कर्म्म करो तो (त्वा) आप की (अभि, सपेम) निन्दा करैं ॥९॥

भावार्थः—हे राजन्! जो आप दुर्व्यसनों का त्याग कर के धर्म्म-सम्बन्धी कर्म्मों को करैं तो हम लोग आपके भक्त निरन्तर होवैं जो अन्याय करो तो आप का शीघ्र त्याग करैं ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो अग्न उपयाति वसुमता रथेन।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखा यस्त आतिथ्यमानुषग्जुजोषत् ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) राजन्! (यः) जो (ते) आप की (आनुषक्) अनुकूलता से वर्त्तमान (आतिथ्यम्) अतिथि के सदृश सत्कार को (जुजोषत्) निरन्तर सेवा करैं। (यः) जो (सुहिरण्यः) उत्तम सुवर्ण आदि धनयुक्त और (स्वश्वः) सुन्दर घोड़ों से युक्त पुरुष (वसुमता) बहुत धन से युक्त (रथेन) रमणीय वाहन से (त्वा) आप के (उपयाति) समीप प्राप्त होता है (तस्य) उस के आप (त्राता) रक्षा करने वाले (भवसि) हूजिये और (तस्य) उस के (सखा) मित्र हूजिये ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन्! जो आप के राज्य के उपकार करने और

सत्कार करने वाले हों उन के ही मित्र और रक्षा करने वाले हुए चक्रवर्त्ती हूजिये ॥१०॥

अब कुमार और कुमारियों के शिक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

महो रुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय ।
त्वं नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूनाः ॥११॥

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे मैं (गोतमात्) अत्यन्त सम्पूर्ण विद्याओं के स्तुति करने वाले (पितुः) पिता से विद्या को प्राप्त होकर अविद्यादि दोषों और शत्रुओं को (रुजामि) प्रभग्न करता हूं (तत्) वह (महः) बड़ा कार्य और (वचोभिः) वचनों से (बन्धुता) बन्धुपन (मा) मुझे (अनु, इयाय) प्राप्त हो वैसे यह बन्धुपन आप को प्राप्त हो और हे (होतः) देनेवाले ! (यविष्ठ) अत्यन्त युवा (सुक्रतो) उत्तम बुद्धियुक्त पुरुष (दमूनाः) दमनशील जितेन्द्रिय (त्वम्) आप (अस्य) इस (वचसः) वचन की उत्तेजना से (नः) हम लोगों को (चिकिद्धि) जनाइये ॥११॥

भावार्थः—हे कुमार और कुमारियो ! जैसे हम लोग माता पिता और आचार्य्य से उत्तम शिक्षा और विद्या प्राप्त होकर आनन्दित होवें वैसे आप लोग भी हूजिये ॥११॥

अब प्रजाजनों के रक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासोऽवृका अश्रमिष्ठाः ।
ते पायवः सध्र्यञ्चो निषद्याग्ने तव नः पान्त्वमूर ॥१२॥

पदार्थः—हे (अमूर) मूर्खतादि दोषों से रहित (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्विन् राजन् ! जो जन (तव) आप के (अस्वप्नजः) जागने वाले (तरणयः) युवावस्था को प्राप्त (अतन्द्रासः) आलस्य (अवृकाः) चोरीपन (अश्रमिष्ठाः) और अत्यन्त थकावट से रहित (सुशेवाः) उत्तम सुखयुक्त (सध्र्यञ्चः) साथ जाने वा सत्कार करने और (पायवः) पालन करने वाले नौकर हैं (ते) वे (निषद्य) निरन्तर स्थित होकर (नः) हम लोगों की (पान्तु) रक्षा करें ॥१२॥

भावार्थः—प्रजाजनों को चाहिये कि सदा ही राजा को उपदेश देवें कि हे राजन् ! आप की ओर से हम लोगों की रक्षा में धार्मिक आलस्यरहित पुरुषार्थी और बलवान् जन नियत हों ॥१२॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये पायवो मामतेयं ते अग्ने पश्यन्तो अन्धं दुरितादरक्षन् ।
ररक्ष तान्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभुः ॥१३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश राजन् ! (ये) जो (पायवः) रक्षा करने वाले (ते) आप के (मामतेयम्) ममतासम्बन्धी कार्य को (पश्यन्तः) देखते हुए (दुरितात्) दुष्ट आचरण वा दुःख से (अन्धम्) नेत्ररहित को जैसे वैसे हम लोगों की (अरक्षन्) रक्षा करते हैं (तान्) उन (सुकृतः) उत्तम कर्म करने वालों का (विश्ववेदाः) सम्पूर्ण विषय जानने वाले आप (ररक्ष) पालन करो जिससे (इत्) ही (दिप्सन्तः) पाखण्ड की इच्छा करते हुए (रिपवः) शत्रु लोग हम लोगों के (न, अह) निग्रह करने में न (देभुः) दम्भ करें ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! जो लोग अपने के सदृश अन्य जनों और आप के पदार्थ को जानते हैं और अपने आत्मा के सदृश अन्यों की रक्षा करते हैं वे ही यथार्थवक्ता आप के सेवक हों जिस से कि शत्रुओं का बल नष्ट होवै ॥१३॥

फिर प्रकारान्तर से राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वया वयं सधन्य१स्त्वोतास्तव प्रणीत्यश्याम वाजान् ।
उभा शंसा सूदय सत्यतातेऽनुष्ठुया कृणुह्यह्रयाण ॥१४॥

पदार्थः हे (अह्रयाण) लज्जारहित (सत्यताते) सत्य आचरण करने वाले राजन् ! आप (अनुष्ठुया) अनुकूलता से (उभा) दोनों (शंसा) प्रशंसाओं को (कृणुहि) करिये और दोषों का (सूदय) नाश करिये जिस से (त्वया) आप के साथ (त्वोताः) आपने पालन किये और (सधन्यः) तुल्य धनवाले हुए (वयम्) हम लोग (तव) आप की (प्रणीती) उत्तम नीति से (वाजान्) विज्ञान और धन आदि पदार्थों को (अश्याम) प्राप्त होवें ॥१४॥

भावार्थः—सब नौकरों को चाहिये कि राजा के साथ मित्रता और राजा को चाहिये कि सब लोगों के साथ पिता के सदृश वर्त्ताव रखे और परस्पर एक दूसरे की प्रशंसा कर दोषों का नाश और सत्य नीति का प्रचार करके जिस जिस कर्म्म में लज्जा हो उस उसका त्यागकर चक्रवर्ती राज्य का भोग करें ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अया ते अग्ने समिधा विधेम प्रति स्तोमं शस्यमानं गृभाय ।
दहाशसो रक्षसः पाह्य१स्मान्द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् ॥१५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) राजन् ! हम लोग (ते) आप की (अया) इस प्राप्त हुई (समिधा) उत्तम प्रकार प्रदीप्त नीति के साथ जिस (शस्यमानम्) प्रशंसा करने

योग्य प्रशंसित होते हुए को (स्तोमम्) प्रशंसनीय (विधेम) करें उस को आप (प्रति, गृभाय) ग्रहण कीजिये (अशसः) निन्दक (रक्षसः) दुष्टाचरणों को (दह) भस्म कीजिये और (द्रुहः) द्रोह से युक्त (निदः) निन्दा करने वाले वा (अवद्यात्) अधर्माचरण से (मित्रमहः) मित्रों का सत्कार करने वाले (अस्मान्) हम लोगों का (पाहि) पालन कीजिये ॥१५॥

भावार्थः— जो राजा और मन्त्री जन परस्पर सम्मत हुए नम्रता से राज्य की शिक्षा करते हैं तो द्वेष निन्दा और अधर्माचरण से अलग होकर उत्तम शिष्टाचार करते हुए दशों दिशाओं में यश को फैलाते हैं ॥१५॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चतुर्थ सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः। वैश्वानरो देवता। १ विराट् त्रिष्टुप्। २। ५–८। ११ निचृत्त्रिष्टुप्। ३। ४। ९। १२। १३। १५ त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। १०। १४ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब चतुर्थ मण्डल में पञ्चम सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि के दृष्टान्त से राजविषय को कहते हैं॥

**वैश्वानराय मीळ्हुषे सजोषाः कथा दाशेमाग्नये बृहद्भाः।**
**अनूनेन बृहता वक्षथेनोप स्तभायदुपमिन्न रोधः ॥१॥**

पदार्थः—हे राजन्! जो आप (बृहत्) बड़े (भाः) शोभित (उपमित्) नापने वाले और (रोधः) रोकने को अलग करता है उस के (न) समान (अनूनेन) न्यूनता से रहित (बृहता) बड़े (वक्षथेन) क्रोध से राज्य को (उप, स्तभायत्) रोकें उस (वैश्वानराय) सब में नायक (मीळ्हुषे) सेचन करने वाले (अग्नये) अग्नि के सदृश वर्त्तमान विद्वान् राजा के लिये (सजोषाः) तुल्य प्रीति के सेवन करने वाले हम लोग सुख को (कथा) किस प्रकार से (दाशेम) देवें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग सूर्य और बिजुली के सदृश उत्तम गुणों के प्रकाश करने और जल के रोकने वाले पदार्थ के सदृश दुष्टों के रोकने वाले और अपने सदृश सुख दुःख हानि और लाभ को जानते हुए राज्य करते हैं वे दण्ड और न्याय को चला सकते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा निन्दत य इमां मह्यं रातिं देवो ददौ मर्त्याय स्वधावान् ।
पाकाय गृत्सो अमृतो विचेता वैश्वानरो नृतमो यह्वो अग्निः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (स्वधावान्) बहुत अन्न आदि ऐश्वर्य्य से युक्त (अमृतः) मृत्यु से रहित (विचेताः) अनेक प्रकार के अच्छे प्रकार ज्ञान होना या ज्ञान कराने के प्रकार जिसके ऐसे (वैश्वानरः) सम्पूर्ण मनुष्यों में प्रकाशमान (नृतमः) अत्यन्त नायक वा मनुष्यों में श्रेष्ठ (यह्वः) बड़ा (गृत्सः) उपदेशदाता बुद्धिमान् (अग्निः) सूर्य्य के समान (देवः) देने वाला पुरुष (पाकाय) परिपक्व व्यवहार वाले (मर्त्याय, मह्यम्) मुझ मनुष्य के लिये (इमाम्) इस (रातिम्) दान को (ददौ) देता है उसकी (मा) मत (निन्दत) निन्दा करो ॥२॥

भावार्थः—हे राजा और प्रजाजनो ! जो अग्नि आदि के गुणों से युक्त और सब के लिये सुख देनेवाला राजा उत्तम गुण वाला होवै उसकी निन्दा और दुष्ट की प्रशंसा कभी मत करो ॥२॥

अब मेधाविपुरुष को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान् ।
पदं न गोरपगूळ्हं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम् ॥३॥

पदार्थः—जो (द्विबर्हाः) दो अर्थात् विद्या और विनय से वृद्ध (तिग्मभृष्टिः) तीव्र परिपाक जिसका ऐसा (सहस्ररेताः) परिमाण रहित पराक्रमयुक्त (वृषभः) बैलके सदृश श्रेष्ठ (तुविष्मान्) बहुत बलयुक्त (अग्निः) अग्नि के सदृश तेजस्वी और (विविद्वान्) विशेष करके पण्डित (गोः) गौ के (अपगूळ्हम्) गुप्त (पदम्) पैरों के चिह्न के (न) सदृश (मह्यम्) मुझ जानने की इच्छा करने वाले के लिये (मनीषाम्) बुद्धि और (महि) बड़े (साम) सिद्धान्तित कर्म को (प्र, वोचत्) कहे (इत्, उ) फिर वही हम लोगों से सत्कार करने योग्य है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा वाचकलु०—वही श्रेष्ठ विद्वान् है कि जो सब के लिये यथार्थज्ञान करावे । जैसे गौ के पैरों के चिह्न को खोज के गौ को प्राप्त होता है वैसे ही पदार्थविद्या प्राप्त करने योग्य है ॥३॥

अब सब को सुख करने वाले राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र ताँ अग्निर्बभसत्तिग्मजम्भस्तपिष्ठेन शोचिषा यः सुराधाः ।
प्र ये मिनन्ति वरुणस्य धाम प्रिया मित्रस्य चेततो ध्रुवाणि ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो (अग्निः) अग्नि के सदृश (तिग्मजम्भः) तीक्ष्ण शरीर शिथिल करने वाली जम्भवाई वाला (तपिष्ठेन) अत्यन्त ताप अर्थात् दीप्तियुक्त (शोचिषा) तेज से (सुराधाः) उत्तम धन वाले होते हुए (ये) जो लोग (चेततः) चैतन्य कराने वाले (वरुणस्य) श्रेष्ठ (मित्रस्य) मित्र के (प्रिया) सुन्दर और (ध्रुवाणि) निश्चल अर्थात् दृढ़ (धाम) जन्मस्थान नामों का (प्र, मिनन्ति) नाश करते हैं (तान्) उन को (प्र, बभसत्) तिरस्कार करै वही सब को सुख करने वाला होता है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे प्रदीप्त अग्नि प्राप्त हुए शुष्क और गीले पदार्थ को जलाता है वैसे ही जो पुरुष अपने प्रयोजन-साधक स्वार्थी और अन्य पुरुष के सुख नाश करने वालों को नाश करता है वह प्रशंसित होता है ॥४॥

अब राजविषय में दण्ड विचार को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः ।
पापासः सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥५॥

पदार्थः—जो (अनृताः) मिथ्या बोलने और (असत्याः) मिथ्या आचरण करने वाले (दुरेवाः) दुष्टव्यसनों से युक्त (पापासः) अधर्माचरण करते (सन्तः) हुए दुष्ट (अभ्रातरः) जैसे बन्धुभिन्न जन (न) वैसे और जैसे (योषणः) स्त्रियां (पतिरिपः) पति की भूमि को (न) वैसे (व्यन्तः) प्राप्त हुईं (जनयः) स्त्रियां (इदम्) इस (गभीरम्) गम्भीर (पदम्) स्थान को (अजनत) उत्पन्न करती हैं वे सदा ही ताड़न करने योग्य हैं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो स्त्री भाई के सदृश अनुकूल नहीं और जो अनुकूल हो तो शत्रु के सदृश विरोध करने वाली हो और जो घोर पापी जन सब के पीड़ा देने वाले हों उन का दूर से त्याग करो ॥५॥

अब अध्यापक विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इदं मे अग्ने कियते पावकामिनते गुरुं भारं न मन्म ।
बृहद्दधाथ धृषता गभीरं यह्वं पृष्ठं प्रयसा सप्तधातु ॥६॥

पदार्थः—हे (पावक) पवित्र करने वाले (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान आप (कियते) थोड़े सामर्थ्य से युक्त (अमिनते) नहीं हिंसा करने वाले (मे) मेरे लिये (गुरुम्) बड़े (भारम्) भार के (न) सदृश (मन्म) विज्ञान को तथा (धृषता) ढीठ

और (प्रयसा) प्रसन्न के साथ (इदम्) इस (बृहत्) बढ़ाने वाले (गभीरम्) गम्भीर (पृष्ठम्) पूछने योग्य (यह्वम्) बड़े (सप्तधातु) सुवर्ण आदि सातों धातु जिस में ऐसे धन को (दधाथ) धारण कीजिये ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो अल्पज्ञ और विद्यार्थी जन ज्ञानी विद्वान् के समीप से विज्ञान और धन के साधन की याचना करते हैं वे विद्वान् होते हैं ॥६॥

अब विवाहपरता से उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

तमिन्न्वे३व स॑म॒ना स॑मा॒नम॒भि क्रत्वा॑ पुन॒ती धी॒तिर॑श्याः।
स॒सस्य॒ चर्म॒न्नधि॒ चारु॒ पृश्ने॒रग्रे॑ रु॒प आरु॑पितं॒ जबा॑रु ॥७॥

पदार्थः—हे कन्ये! जिस (ससस्य) शयन करते हुए के (चर्मन्) चमड़े में (चारु) सुन्दर (जबारु) वेग करता हुआ वा आरूढ़ (आरुपितम्) आरोपण किया गया वा जो (पृश्नेः) अन्तरिक्ष के (अभि) सब ओर है उस के (अग्रे) आगे (अधि, रुपः) अधिरोपण करनेवाले की (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि से (पुनती) पिता के सम्बन्ध से पवित्र करती हुई (धीतिः) उत्तम गुणों के धारण करने वाली (समना) तुल्य हुई (तम्) (इत्) उसी (समानम्) समान पति को (नु, एव) शीघ्र ही (अश्याः) प्राप्त हो ॥७॥

भावार्थः—जो कन्या अपने समान वर और ब्रह्मचारी अपने तुल्य कन्या के साथ विवाह करें तो अन्तरिक्ष के मध्य में ईश्वर से स्थापित सूर्य्य चन्द्रमा और नक्षत्रों के तुल्य शोभित होते हैं ॥७॥

अब प्रच्छक विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

प्र॒वाच्यं॒ वच॑सः॒ किं मे॑ अ॒स्य गुहा॑ हि॒तमुप॑ नि॒णिग्व॑दन्ति।
यदु॒स्रिया॑णा॒मप॒ वारि॑व॒ व्रन्पाति॑ प्रि॒यं रु॒पो अग्रं॑ प॒दं वेः ॥८॥

पदार्थः—जो (मे) मेरे और (अस्य) इस जन के (वचसः) वचन के सम्बन्ध में (गुहा) बुद्धि में (हितम्) स्थित (प्रवाच्यम्) प्रकर्षता से कहने योग्य (निणिक्) अत्यन्त शुद्ध करने वाले को (किम्) क्या (उप, वदन्ति) समीप में कहते हैं (यत्) जो (उस्रियाणाम्) गौओं के (वारिव) जल के सदृश वा (वेः) पक्षी के (अग्रम्) ऊंचे (पदम्) स्थान के सदृश (रुपः) पृथिवी के (प्रियम्) सुन्दर भाग को (अप, व्रन्) घेरता है कौन इन दोनों को (पाति) पालन करता है ॥८॥

भावार्थः—हे विद्वानो! मेरी और इस जन की बुद्धि में वर्त्तमान चेतन क्या और कैसा है जो पशुओं के पालन करने वाला जल के सदृश

रक्षा करता और सब से प्रिय देख पड़ता है। और जो आकाश में पक्षी के पर के सदृश गुप्त है उस के विज्ञान के लिये हम लोगों के प्रति आप लोग क्या कहते हो ।।८।।

अब समाधाता के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

इदमु त्यन्महि महामनीकं यदुस्रिया सचत पूर्व्यं गौः ।
ऋतस्य पदे अधि दीद्यानं गुहा रघुष्यद्रघुयद्विवेद ।।९।।

पदार्थः— हे जिज्ञासुजनो ! (यत्) जो (महाम्) बड़ों की (अनीकम्) सेना के सदृश (महि) बड़ा वा (ऋतस्य) सत्य के (पदे) स्थान में जो (दीद्यानम्) प्रकाशित होता हुआ विद्यमान है उस को (गुहा) बुद्धि में (रघुष्यत्) शीघ्र हिलते हुए के समान (पूर्व्यम्) पूर्वजनों से उत्पन्न किये गये के समान (रघुयत्) शीघ्र जाने वाली (विवेद) जानती है (त्यत, इदम्, उ) उस ही (उस्रिया) दुग्ध आदि की देने वाली (गौः) गौ के सदृश (अधि) अधिक आप लोग (सचत) प्राप्त हूजिये ।।९।।

भावार्थः—हे श्रोताजनो ! जो बुद्धि की प्रेरणा करने मन्द और शीघ्र चलने वाला सत्य परमेश्वर के मध्य में प्रकाशमान वलिष्ठ बाज पक्षी के सदृश पराक्रम वाले बछड़े को सुख देती हुई गौ के सदृश सुख देने वाला वस्तु है वही आप लोगों का स्वरूप है ।।९।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

अध द्युतानः पित्रोः सचासामनुत गुह्यं चारु पृश्नेः ।
मातुष्पदे परमे अन्ति षद्गोर्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ।।१०।।

पदार्थः—हे जिज्ञासुजनो ! (अध) इस के अनन्तर जो (पित्रोः) माता और पिता की उत्तेजना से (द्युतानः) प्रकाशमान (सचा) सत्य (आसा) मुख से (परमे) उत्तम (मातुः) माता के सदृश वर्त्तमान के (पदे) प्राप्त होने योग्य स्थान में (अन्ति) समीप (सत्) वर्त्तमान (गोः) गौ और (वृष्णः) वृष्टि करने वाले के सदृश (शोचिषः) प्रकाशमान (प्रयतस्य) प्रयत्न करते हुए को (जिह्वा) वाणी के सदृश जो (पृश्नेः) अन्तरिक्ष के मध्य में (चारु) सुन्दर (गुह्यम्) गुप्त है उस जीवनस्वरूप को (अमनुत) जानिये ।।१०।।

भावार्थः—जैसे अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य में वर्त्तमान सूर्य्य उत्तम प्रकार शोभित है और जैसे विद्वान् की वाणी विद्या का प्रकाश करने वाली है और जैसे अन्तरिक्ष किसी से भी दूर नहीं है वैसे ही उत्तम अपना

आत्मारूप वस्तु और परमात्मा समीप में वर्त्तमान है ऐसा जानना चाहिये ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋतं वोचे नमसा पृच्छ्यमानस्तवाशसा जातवेदो यदीदम्।
त्वमस्य क्षयसि यद्ध विश्वं दिवि यदु द्रविणं यत्पृथिव्याम् ॥११॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) ज्ञान से विशिष्ट (यदि) यदि आप (यत्) जो (ह) निश्चयकर (दिवि) प्रकाशमान परमात्मा वा सूर्य्य में (विश्वम्) सम्पूर्ण (द्रविणम्) द्रव्य और (यत्) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी में (यत्) जो (उ) और वायु आदि में वर्त्तमान है और जिसमें (त्वम्) आप (क्षयसि) रहते हो उस (अस्य) इन (तव) आपके (आशसा) सब प्रकार प्रशंसित (नमसा) सत्कार से (पृच्छ्यमानः) पूछा गया मैं तो (इदम्) इस (ऋतम्) सत्य को आपके प्रति (वोचे) कहूं वा उपदेश करूं ॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो ब्रह्म सब स्थान में व्याप्त है और जिसमें सम्पूर्ण पदार्थ बसते हैं उस सत्यस्वरूप का आप लोगों के प्रति मैं उपदेश करता हूं उसी की उपासना करो ॥११॥

फिर प्रच्छक विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नं वि नो वोचो जातवेदश्चिकित्वान्।
गुहाध्वनः परमं यन्नो अस्य रेकु पदं न निदाना अगन्म ॥१२॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) विद्यायुक्त (चिकित्वान्) विचारशील आप (अस्य) इस संसार में (नः) हम लोगों का (किम्) क्या (द्रविणम्) यश और (किम्) क्या (रत्नम्) धन है ऐसा (नः) हम लोगों को (कत्, ह) कभी (वि, वोचः) उपदेश कीजिये (यत्) जो (गुहा) बुद्धि के (अध्वनः) मार्ग के (परमम्) उत्तम प्राप्त होने योग्य को प्राप्त हुए (नः) हम लोगों को (रेकु) शङ्कायुक्त (पदम्) प्राप्त होने योग्य स्थान के (न) तुल्य (नः) हम लोगों की (निदानाः) निन्दा करते हुए (अस्य) इस संसार के मध्य में हों उन को त्याग के (अगन्म) प्राप्त हुए वह क्या है ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे विद्वानो! हम लोगों में क्या यश क्या सुन्दर वस्तु और कौन लोग हम लोगों की निन्दा करने वाले और क्या शङ्का करने योग्य वस्तु और क्या प्राप्त होने योग्य स्थान है इन के उत्तर कहो ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

का मर्य्यादा वयुना कद्ध वाममच्छा गमेम रघवो न वाजम् ।
कदा नो देवीरमृतस्य पत्नीः सूरो वर्णेन ततनन्नुपासः ॥१३॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (नः) हम लोगों की (का) कौन (मर्य्यादा) प्रतिष्ठा और कौन (वयुना) कर्म्म हम लोग (रघवः) शीघ्र करने वालों के (वाजम्) विज्ञान और (वामम्) उत्तम वस्तु को (कद् ह) कभी (अच्छ) उत्तम प्रकार (गमेम) प्राप्त होवें और (कदा) कब (सूरः) सूर्य्य (अमृतस्य) नाशरहित काल की (देवीः) प्रकाशमान (पत्नीः) स्त्रियों के सदृश वर्त्तमान (उषासः) प्रातर्वेलाओं के (न) सदृश आप (वर्णेन) तेज से (ततनन्) विस्तृत करेंगे ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्य लोग यथार्थवादी विद्वान् से मनुष्य के करने योग्य कर्म्मों और प्राप्त होने योग्य स्थान को पूछें कि आप सूर्य्य में प्रातःकाल के सदृश हम लोगों को कब विद्वान् करोगे ऐसा पूछें ॥१३॥

अब समाधाता के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अनिरेण वचसा फल्ग्वेन प्रतीत्येन कृधुनातृपासः ।
अधा ते अग्ने किमिहा वदन्त्यनायुधास आसता सचन्ताम् ॥१४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् पुरुष ! जो (अनिरेण) नहीं रमने योग्य (प्रतीत्येन) प्रतीति में प्रसिद्ध हुए (फल्ग्वेन) बड़े (कृधुना) छोटे (वचसा) वचन से (अतृपासः) अतृप्त होते हुए (आसता) नहीं वर्त्तमान बल आदि से (अनायुधासः) विना शस्त्र अस्त्र वालों के सदृश (इह) इस संसार वा इस जन्म में (किम्) क्या (वदन्ति) कहते हैं (अध) इसके अनन्तर (ते) आपके लिए किसे (सचन्ताम्) प्राप्त होवें इसका उत्तर कहिये ॥१४॥

भावार्थः—जो श्रोता लोग उपदेश से उत्तर को प्राप्त हुए सन्तुष्ट न होवें वे तब तक पूछें जब तक कि समाधान को प्राप्त होवें तब उस कर्म का आरम्भ करें ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्य श्रिये समिधानस्य वृष्णो वसोरनीकं दम आ रुरोच ।
रुशद्वसानः सुदृशीकरूपः क्षितिर्न राया पुरुवारो अद्यौत् ॥१५॥

पदार्थः—जो (रुशत्) सुन्दर रूप को (वसानः) प्राप्त (सुदृशीकरूपः) उत्तम प्रकार देखने योग्य स्वरूप से युक्त (पुरुवारः) सब से स्वीकार करने योग्य स्वरूप से शोभित तथा (राया) धन से (क्षितिः) पृथिवी के (न) समान (अद्यौत्) प्रकाशित होता है जिस (समिधानस्य) प्रकाशमान (वृष्णः) बलिष्ठ (वसोः) बसाने वाले राजा के (दमे) गृह में (श्रिये) शोभा वा लक्ष्मी के लिये (अनीकम्) सेना (आ) सब प्रकार (रुरोच) सुन्दर है उस सेना के और (अस्य) इस वर्त्तमान राजा के सम्पूर्ण समाधान और सुख होते हैं ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो अच्छे रूपवान् पृथिवी के सदृश क्षमा आदि गुण वाले और प्रतिष्ठित चक्रवर्ती राजाओं की लक्ष्मी से शोभित हुए उत्तम प्रकार शिक्षित बड़ी बलवती बड़ी सेना को बढ़ाते हैं उनका ही चक्रवर्ती राज्य संभावित होता है औरों का नहीं ॥१५॥

इस सूक्त में बुद्धिमान् राजा अध्यापक उपदेशक प्रश्नकर्त्ता और समाधानकर्त्ता के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जानना चाहिये।

यह पांचवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। १, ३, ५, ८, ११ विराट् त्रिष्टुप्। ७ निचृत्त्रिष्टुप्। १० त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २। ४। ९ भुरिक् पङ्क्तिः। ६ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले छठे सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के विषय को कहते हैं ॥

ऊर्ध्व ऊ षु णो अध्वरस्य होतरग्ने तिष्ठ देवताता यजीयान्।
त्वं हि विश्वमभ्यसि मन्म प्र वेधसश्चित्तिरसि मनीषाम् ॥१॥

पदार्थः—हे (होतः) दानकर्त्ता (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्वान् (हि) जिससे (त्वम्) आप (देवताता) विद्वानों की पङ्क्ति में (यजीयान्) अत्यन्त यजन करने वाले (नः) हम लोगों के (अध्वरस्य) नहीं हिंसा करने योग्य धर्मयुक्त व्यवहार के (ऊर्ध्वः) ऊपर अधिष्ठाताजन (वेधसः) बुद्धिमान् विद्वान् के सम्बन्ध में (विश्वम्) सम्पूर्ण जगत् और (मन्म) विज्ञान के (अभि) सन्मुख (असि) होने और (मनीषाम्, चित्) उत्तम बुद्धि ही के (तिरसि) पार होते हो (उ, सु, प्र तिष्ठ) सो ही स्थित हूजिये ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो लोग विद्वानों के समीप से विद्याओं को प्राप्त होकर सब के रक्षा करने और बुद्धि देने वाले होवैं उन्हीं लोगों की प्रतिष्ठा करो ॥१॥

अब विद्वानों के कर्त्तव्य को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अमूरो होता न्यसादि विक्ष्व१ग्निर्मन्द्रो विदथेषु प्रचेताः।
ऊर्ध्वं भानुं सवितेवाश्रेन्मेतेव धूमं स्तभायदुप द्याम् ॥२॥

पदार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो (अमूरः) मूर्खपन से रहित विद्वान् जन होता हुआ (होता) ग्रहण करने वाला (विक्षु) प्रजाओं और (विदथेषु) संग्रामों में (अग्निः) अग्नि के सदृश (मन्द्रः) आनन्द देने वाला (प्रचेताः) बुद्धिमान् वा बुद्धिदाता (द्याम्) प्रकाश और (ऊर्ध्वम्) ऊपर वर्त्तमान (भानुम्) किरण को (सवितेव) सूर्य्य के सदृश (धूमम्) धुएं को (मेतेव) यथार्थ ज्ञान वाले के सदृश (स्तभायत्) रोकता है न्याय का (अश्रेत्) आश्रय करै वही राज्य कर्म्म में (उप, नि, असादि) स्थित होवैं तो बहुत सुख को प्राप्त होवैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य्य के सदृश प्रतापी अग्नि के सदृश दुष्टों के दाहक और न्याय और नम्रता से प्रजाओं में चन्द्रमा के सदृश संग्राम में जीतने वाले राजा को संस्थापित करें तो कभी दुःख को न प्राप्त होवैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यता सुजूर्णी रातिनी घृताची प्रदक्षिणिद्देवतातिमुराणः।
उदु स्वरुर्नवजा नाक्रः पश्वो अनक्ति सुध्रितः सुमेकः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (सुजूर्णिः) उत्तम प्रकार शीघ्रता करने वाली (यता) प्राप्त (रातिनी) बहुत देने वाले जिसके ऐसी (प्रदक्षिणित्) दहिनी ओर प्राप्त होने वाली (घृताची) रात्रि (देवतातिम्) श्रेष्ठगुणों से युक्त वेला को (उत्, अनक्ति) शोभा करती है और जैसे उसको (उराणः) बहुतों को जिलाने वाला (सुधितः) उत्तम प्रकार धारण किये हुए (सुमेकः) सुन्दर प्रकाशमान (अक्रः) नहीं किञ्चित् चलने वाला किन्तु वेग से जाने वाला (नवजाः) नवीनों में उत्पन्न सूर्य्य (स्वरुः) उपदेश देने वाले के (न) समान शोभा करता है वैसे विद्वान् वर्त्ताव करैं (उ) और वह (पश्वः) पशुओं की न हिंसा करैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। उपदेशक लोग रात्रि और

दिन में सभों के करने योग्य सेवा का उपदेश देवें जिससे कि शयन जागरण आदि से युक्त आहार और विहारों को करके अपने हितों को सिद्ध करने वाले होवें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्ना ऊर्ध्वो अध्वर्युर्जुजुषाणो अस्थात् ।
पर्य्यग्निः पशुपा न होता त्रिविष्ट्येति प्रदिव उराणः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (समिधाने) प्रदीप्त (बर्हिषि) अन्तरिक्ष में वा (स्तीर्णे) आच्छादित (अग्नौ) सूर्य्यरूप अग्नि में (उराणः) बहुत कार्य्य करता हुआ (ऊर्ध्वः) उत्तम (अग्निः) सूर्य्याग्नि (परि, अस्थात्) सब ओर से स्थित हो वा (त्रिविष्टि) आकाश में (प्र, दिवः) उत्तम प्रकाशों को (एति) प्राप्त होता है (पशुपाः) पशुओं की रक्षा करने वाले के (न) सदृश (होता) यज्ञ कराने वाला है वैसे ही (जुजुषाणः) सेवा करते हुए (अध्वर्युः) अपने को अहिंसनीय व्यवहार की इच्छा करने वाले वर्त्ताव करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा वाचकलु०—जोलोग अहिंसा आदि कर्म्मों को कर और विद्वान् होकर परोपकारी हों वे अन्तरिक्ष में सूर्य्य के सदृश उत्तम प्रकार प्रकाशित होवें ॥४॥

अब ईश्वरविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

परि त्मना मितद्रुरेति होताग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ।
द्रवन्त्यस्य वाजिनो न शोका भयन्ते विश्वा भुवना यदभ्राट् ॥५॥

पदार्थः—जैसे (अस्य) इस सूर्य के (वाजिनः) घोड़े के (न) तुल्य (शोकाः) प्रकाश (द्रवन्ति) दौड़ते हैं जो (अभ्राट्) दीप्त होता है (यत्) जिससे (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवना) जीवों के ठहरने के अधिकरण लोकलोकान्तर (भयन्ते) कंपते हैं उस प्रकार वर्त्तमान जो पुरुष (ऋतावा) सत्य का विभाग करने वाला (मधुवचा) मधुर वाणीयुक्त (अग्निः) अग्नि के सदृश (होता) यज्ञ करने वाला (मन्द्रः) आनन्द-दाता वा आनन्दित (मितद्रुः) परिमाणपूर्वक चलने वाला (त्मना) अपने से (परि, एति) प्राप्त होता है वह सब सुख को प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जिस परमात्मा का सब जगह प्रकाश और जिससे सब डरते हैं उसके विज्ञान के लिये सत्य का आचरण और योगाभ्यास सब को करना चाहिये ॥५॥

अथ ईश्वरता लेकर राजगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भद्रा तें अग्ने स्वनीक संदृग्घोरस्यं सतो विषुणस्य चारुः ।
न यत्तें शोचिस्तमसा वरन्त न ध्वस्मानस्तन्वी३ रेप आ धुः ॥६॥

पदार्थः - हे (स्वनीक) उत्तम सेनायुक्त ! (अग्ने) बिजुली के समान वर्त्तमान जो (ते) आप की (घोरस्य) दुष्ट (सतः) श्रेष्ठ पुरुष की तथा (विषुणस्य) विषम की (चारुः) सुन्दर (भद्रा) कल्याण करने वाली (संदृक्) समान दृष्टि है (यत्) जो (ते) आप का (शोचिः) प्रकाश (तमसा) रात्रि से (ध्वस्मानः) नाश करने वाले शत्रु (न) नहीं (वरन्त) निवारण करते हैं जो आप की (तन्वि) विस्तीर्ण नीति उस से (रेपः) अपराध (न) नहीं (आ, धुः) सब प्रकार धारण करें वह आप हम लोगों के राजा हूजिये ॥६॥

भावार्थः - जिस राजा की पक्षपातरहित प्रवृत्ति और जिस की विस्तीर्ण नीति अविच्छिन्न वर्त्तमान है उसके राज्य में कोई भी अपराध करने की इच्छा न करे ॥६॥

अब ईश्वरभाव में माता पिता के सेवाधर्म को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ।
अधा मित्रो न सुधितः पावको३ग्निर्दीदाय मानुषीषु विक्षु ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस (सातुः) सत्य और असत्य के विभाग करने वाले के (जनितोः) माता और पिता का प्रिय (न) नहीं (अवारि) स्वीकार किया जाता है और (चित्) जिस के (मातरापितरा) माता और पिता (इष्टौ) पूजा करने योग्य (न) नहीं स्वीकार किये जाते हैं वह दुःखी होता (अधा) इस के अनन्तर जिस के माता और पिता सत्कृत होवें (सुधितः) वह उत्तम प्रकार हितकारी (मित्रः) मित्र के (न) और (अग्निः) अग्नि के सदृश (पावकः) पवित्र (मानुषीषु) मनुष्यसम्बन्धिनी (विक्षु) प्रजाओं में (नु, दीदाय) शीघ्र प्रकाशित होता है ॥७॥

भावार्थः - इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जिस पुत्र के विद्यमान रहने पर माता और पिता को दुःख होता और सत्कार नहीं होता है वह भाग्यहीन निरन्तर पीड़ित होता है और जिस पुत्र की उत्तम सेवा से माता पिता प्रसन्न होते हैं उसकी प्रजाओं में प्रशंसा और उसको सुख होता है ॥७॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

द्विर्यं पञ्च जीजंनन्त्संवसा॑नाः स्वसा॑रो अ॒ग्निं मानु॑षीषु वि॒क्षु ।
उ॒प॒र्बुधं॑मथ॒र्यो॒३॒॑ न दन्तं॑ शु॒क्रं स्वासं॑ पर॒शुं न ति॒ग्मम् ॥८॥

पदार्थः—जो विद्वान् लोग (मानुषीषु) मनुष्यसम्बन्धिनी (विक्षु) प्रजाओं में (अग्निम्) अग्नि को (संवसानाः) उत्तम प्रकार आच्छादन करने वाले जैसे (पञ्च) पांच (स्वसारः) अंगुलियां वा (अथर्यः) नहीं हिंसित स्त्रियां (शुक्रम्) शुद्ध (दन्तम्) दांत और (स्वासम्) सुन्दर मुख को (न) वैसे और जैसे (तिग्मम्) तीव्र (परशुम्) कुठार को (न) वैसे (यम्) जिस (उपर्बुधम्) प्रातःकाल में जानने वाले को (द्विः) दो बार (जीजनन्) उत्पन्न करते हैं वे सम्पूर्ण कार्य को सिद्ध कर सकें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे अंगुलियों से सम्पूर्ण कार्य्य सिद्ध होते हैं वैसे ही रात्रि के पिछले प्रहर में उठ के प्रजाओं के हित को सिद्ध करो। तीक्ष्ण कुठार के सदृश दुःखों को काट के युवावस्थाविशिष्ट स्त्रियां शुद्ध मुख और दांत को करतीं उनके सदृश प्रजाओं को शुद्ध कर और सुख देकर द्विजों को विद्या के जन्म से युक्त करो ॥८॥

अब प्रजा के ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तव॒ त्ये अ॑ग्ने ह॒रितो॑ घृत॒स्ना रोहि॑तास ऋ॒ज्वञ्चः॒ स्वञ्चः॑ ।
अ॒रु॒षासो॒ वृष॑ण ऋजुमु॒ष्का आ दे॒वता॑तिमह्वन्त द॒स्माः ॥९॥

पदार्थः-हे (अग्ने) राजन् ! जो (तव) आप की (रोहितासः) बढ़ाने वाली (घृतस्नाः) जिन से घृत वा जल शुद्ध और (ऋज्वञ्चः) सीधा सत्कार करते तथा (स्वञ्चः) उत्तम प्रकार चलते वा प्राप्त होते हैं वह (हरितः) अंगुली (वृषणः) बलिष्ठ (ऋजुमुष्काः) सरल मार्ग को चलने वाले (दस्माः) दुःख के नाशकर्त्ता (अरुषासः) उत्तम प्रकार शिक्षित घोड़ों के सदृश (देवतातिम्) विद्वानों को (आ, अह्वन्त) बुलाते और जो इन से कर्म्मों को करना जानते हैं वह अंगुली और (त्ये) वे मनुष्य आप को संप्रयुक्त करने योग्य हैं ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग घोड़ों के सदृश अपनी अंगुलियों से कर्म्मों को करके ऐश्वर्य की वृद्धि करते हैं वे दुःखों से रहित होते हैं ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये ह त्ये ते सहमाना अयासस्त्वेषासो अग्ने अर्चयश्चरन्ति ।
श्येनासो न दुवसनासो अर्थं तुविष्वणसो मारुतं न शर्धः ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान ! (ये) जो लोग (ते) आपके (सहमानाः) सुख दुःख आदि व्यवहारों के सहने वाले (अयासः) विज्ञान को प्राप्त (त्वेषासः) प्रकाशमान (श्येनासः) और बाजपक्षी के सदृश शीघ्र चलने वाले घोड़ों के (न) सदृश (दुवसनासः) लेचलने और (तुविष्वणसः) बलों के मांगने वाले (मारुतम्) पवनसम्बन्धी (शर्धः) बल को (न) जैसे (अर्चयः) उत्तम क्रिया वैसे (अर्थम्) द्रव्य को (चरन्ति) प्राप्त होते हैं (त्ये) वे (ह) ही अन्य जन आपको सत्कार करने योग्य होते हैं ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो लोग क्षमा से युक्त धर्म सम्बन्धी कर्म्म के आचरण से प्रकाशमान उत्तम यशवाले घोड़े के सदृश कार्य्यकर्त्ता और बलवान् हों वे सत्कार करने योग्य होवें ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अकारि ब्रह्म समिधान तुभ्यं शंसात्युक्थं यजते व्यू धाः ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्नमस्यन्त उशिजः शंसमायोः ॥११॥

पदार्थः—हे (समिधान) प्रकाशमान विद्वन् ! जो (नमस्यन्तः) नम्रता और (उशिजः) कामना करते हुए (मनुषः) मनुष्य (आयोः) जीवन की (शंसम्) प्रशंसा को और (होतारम्) देने वाले को (अग्निम्) अग्नि के सदृश (नि, सेदुः) प्राप्त होते हैं और जो (तुभ्यम्) आप के लिये (उक्थम्) स्तुति करने योग्य (ब्रह्म) बड़े धन की (शंसाति) प्रशंसा करें (यजते) तथा विशेषता ही से मिलते हुए के लिये जिन से आप ने ऐश्वर्य (अकारि) किया उन को (वि, उ, धाः) धारण कीजिये ॥११॥

भावार्थः हे विद्वन् वा राजन् ! जो आप के लिये ऐश्वर्य की कामना करते हुए परमेश्वर और विद्वानों को नमस्कार करते हैं वे निरन्तर प्रशंसित होते हैं ॥११॥

इस सूक्त में विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इसके अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। १ भुरिक् त्रिष्टुप्। ७। १०। ११ त्रिष्टुप्। ८। ९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २ स्वराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। ३ निचृदनुष्टुप्। ४ अनुष्टुप् छन्दः। ५ विराडनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब एकादश ऋचा वाले सप्तम सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में सर्वगत अग्निशब्दार्थवाच्य व्यापक परमेश्वर के विषय को कहते हैं॥

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यः।
यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (इह) इस संसार में (धातृभिः) धारण करने वालों से जो (अयम्) यह (प्रथमः) पहिला (होता) देने और (यजिष्ठः) अत्यन्त मेल करने वाला (अध्वरेषु) नहीं हिंसा करने योग्य यज्ञों में (ईड्यः) स्तुति करने योग्य (धायि) धारण किया गया जिसको (विशेविशे) प्रजा प्रजा के लिये (यम्) जिस (चित्रम्) अद्भुत (विभ्वम्) व्यापक परमात्मा को (अप्नवानः) पुत्र और पौत्रादिकों से युक्त (भृगवः) परिपक्व विज्ञान वाले लोग (वनेषु) याचना करने योग्य जंगलों में (विरुरुचुः) विशेष करके प्रकाशित करते अर्थात् अपने चित्त में रमाते हैं उस परमात्मा का आप लोग ध्यान करो॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! इस संसार में परमेश्वर ही का आप लोगों को ध्यान करना योग्य है और जिसकी उपासना करके सांसारिक और पारमार्थिक सुख को प्राप्त होओगे वही ईश्वर इस संसार में पूजा करने योग्य जानना चाहिये॥१॥

फिर अग्निपदवाच्य ईश्वर विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम्।
अधा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम्॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) परमात्मन् ! (देवस्य) सुख देनेवाले और सर्वत्र प्रकाशमान (ते) आप के मनुष्य (कदा) किस काल में (आनुषक्) अनुकूल (भुवत्) हो (अधा) इस के अनन्तर (मर्तासः) मनुष्य लोग (हि) निश्चय से (विक्षु) मनुष्यरूप प्रजाओं में (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (चेतनम्) अनन्त विज्ञान आदि से युक्त (त्वा) आपको कब (जगृभ्रिरे) ग्रहण करें ऐसी हम लोग इच्छा करें॥२॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! हम लोग आप की निरन्तर प्रार्थना करें और आप की कृपा से ये सब मनुष्य आप के भक्त, आप की आज्ञा के

अनुकूल और आप के उपासक कब होंगे ? हे कृपालो अन्तर्यामिन् ! दया करके सबको अपने में प्रीतिमान् शीघ्र करो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋतावानं विचेतसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः ।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्त्तारं दमेदमे ॥३॥

पदार्थः—जो मनुष्य लोग (विश्वेषाम्) सम्पूर्ण (अध्वराणाम्) नहीं हिंसा करने योग्य यज्ञों के (स्तृभिः) नक्षत्रों से (द्यामिव) सूर्य्य के सदृश (दमेदमे) घर घर में (हस्कर्त्तारम्) प्रकाश करने वाले (विचेतसम्) जिस से विगतचित्त होता (ऋतावानम्) जिसमें सत्य विद्यमान उस को (पश्यन्तः) देखते हुए ग्रहण करे हुए हैं वे उत्तम प्रकार शोभित होते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो लोग चेतनारहित कारण से युक्त प्रत्येक गृह के प्रकाश करने वाले को जानते हैं वे सूर्य के प्रकाश में चन्द्र आदिकों के सदृश संसार में प्रकाशित होते हैं ॥३॥

अब अग्निविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आशुं दूतं विवस्वतो विश्वा यश्चर्षणीरभि ।
आ जभ्रुः केतुमायवो भृगवाणं विशेविशे ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो विद्वान् (विवस्वतः) सूर्य से (दूतम्) दूत के सदृश (आशुम्) शीघ्र चलने और (विशेविशे) प्रजा के निमित्त (भृगवाणम्) परिपाक के करने वाले को जैसे (आयवः) ज्ञानवान् मनुष्य (विश्वाः) सम्पूर्ण (चर्षणीः) प्रकाशों और (केतुम्) प्रज्ञान को (अभि, आ, जभ्रुः) धारण करते हैं वैसे धारण करता है वह सम्पूर्ण आनन्दों से युक्त होता है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य्य आदि से बिजुली आदि पदार्थ को ग्रहण करते हैं वे प्रजा के लिये सुख देने वाले होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तमीं होतारमानुषक् चिकित्वांसं नि षेदिरे ।
रण्वं पावकशोचिषं यजिष्ठं सप्त धामभिः ॥५॥

पदार्थः—जो लोग (तम्) उसको अग्नि के सदृश (आनुषक्) अनुकूलता से

(होतारम्) ग्रहण करने वाले (चिकित्वांसम्) विद्वान् (रण्वम्) सुन्दर (सप्त) सात प्राण आदि (धामभिः) स्थानों से (पावकशोचिषम्) अग्नि के तेज के सदृश तेज से युक्त (यजिष्ठम्) अत्यन्त मेल करने वाले को (ईम्) सब प्रकार से (नि, सेदिरे) प्राप्त होते हैं वे राज्य और ऐश्वर्य से युक्त होते हैं ॥५॥

भावार्थः—जो लोग बिजुलीरूप अग्नि को सब पदार्थों से निकालना जानते हैं वे अत्यन्त सुखी होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तं शश्वंतीषु मातृषु वन आ वीतमश्रितम् ।
चित्रं सन्तं गुहा हितं सुवेदं कूचिदर्थिनम् ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग (शश्वतीषु) अनादिकाल से वर्त्तमान (मातृषु) आकाश आदि पदार्थों में और (वने) किरण में (सन्तम्) विद्यमान (गुहा) बुद्धि में (हितम्) स्थित (सुवेदम्) उत्तम विज्ञान जिस का (कूचिदर्थिनम्) जो कहीं बहुत अर्थों से युक्त (अश्रितम्) और नहीं सेवन किया गया (आ, वीतम्) व्याप्त (तम्) उस (चित्रम्) अद्भुत गुण कर्म स्वभाव वाले बिजुली नामक अग्नि को जान के कार्यों को सिद्ध करो ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य सर्व पदार्थों में अलग ही अलग वर्त्तमान अग्नि को तत्त्व से जानते हैं, वे सब काम साध सकते हैं ॥६॥

फिर अग्निविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ससस्य यद्वियुता सस्मिन्नूधन्नृतस्य धामन्रणयन्त देवाः ।
महाँ अग्निर्नमसा रातहव्यो वेरध्वराय सदमिदृतावा ॥७॥

पदार्थः—जो (देवाः) विद्वान् लोग (नमसा) पृथिवी आदि अन्न के साथ वर्त्तमान (रातहव्यः) जिसने ग्रहण करने योग्य पदार्थ दिया (ऋतावा) जो जल का विभाग करने वाला (महान्) महान् (अग्निः) बिजुली रूप अग्नि (वेः) पक्षी के सदृश (सदम्) प्राप्त होने योग्य स्थान को प्राप्त कराता है (यत्) जिस अग्नि में (सस्मिन्) सब (ऊधन्) अवयव में और (ऋतस्य) सत्य के (धामन्) स्थान में (ससस्य) स्वप्नसम्बन्ध से (वियुता) वियुक्त अर्थात् बिना स्वप्न वस्तुएं (रणयन्त) शब्द करती हैं उस को (अध्वराय) अहिंसनीय व्यवहार के लिये (इत्) जानते ही हैं वे सत्य के जानने वाले होते हैं ॥७॥

भावार्थः—हे बुद्धिमान् पुरुषो ! जो अग्नि शरीर आदि में और निद्रा में प्रसिद्ध होता है वह बड़ा होने से सर्वत्र व्यापक है ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वेरध्वरस्य दूत्यानि विद्वानुभे अन्ता रोदसी सञ्चिकित्वान् ।
दूत ईयसे प्रदिव उराणो विदुष्टरो दिव आरोधनानि ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वन् (सञ्चिकित्वान्) उत्तम प्रकार कार्य करने की इच्छा करने वाले (विद्वान्) विद्यावान् पुरुष ! (विदुष्टरः) अत्यन्त ज्ञाता हुए आप जो (वेः) व्याप्त (अध्वरस्य) न नष्ट करने योग्य व्यवहार के (दूत्यानि) संदेश पहुंचाने वाले के सदृश कर्म्मों को और (अन्तः) मध्य में (उभे) दोनों (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (दूतः) संदेश पहुँचाने वाला (प्रदिवः) प्राचीन (उराणः) बहुत कार्य करता हुआ जाता है उसको जानके (दिवः) प्रकाश के (आरोधनानि) सब प्रकार के ग्रहण करने को (ईयसे) प्राप्त होते हो इससे सुख को प्राप्त होते हो ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो बिजुली रूप अग्नि सम्पूर्ण शिल्पिजन का दूत के सदृश प्रेरणा करने वाला, अनादि काल से सिद्ध और सम्पूर्ण पदार्थों में व्याप्त है, उसकी उत्पत्ति और निरोध से बहुत कार्य्यों को सिद्ध करके ऐश्वर्य्य को प्राप्त होओ ॥८॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कृष्णं त एम रुशतः पुरो भाश्चरिष्ण्व१र्चिर्वपुषामिदेकम् ।
यदप्रवीता दधते ह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदु दूतः ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जिस (रुशतः) उत्तम रूप युक्त प्रीतिकारक (ते) आप का (यत्) जो (कृष्णम्) खींचने वाला (पुरः) प्रथम (भाः) प्रकाशमान (चरिष्णु) चलनेवाला (वपुषाम्) रूपवाले शरीरों के (एकम्) सहायरहित (अर्चिः) तेज (इत्) ही है उसको हम लोग (एम) प्राप्त होवें और हे विद्वन् ! जैसे (अप्रवीता) नहीं जाती हुई स्त्री (गर्भम्) अन्तःस्वरूप को (दधते) धारण करती है वैसे (ह) निश्चय से (सद्यः) शीघ्र (चित्) भी (जातः) प्रकट (दूतः) दूत के (इत्) सदृश वर्त्तमान (उ) ही (भवसि) होते हो उससे सत्कार करने योग्य हो ॥९॥

भावार्थः—हे अध्यापक कृपालो ! आप बिजुली के तेज की विद्या का हम लोगों के लिये बोध कराइये कि जिस तेज से दूत के सदृश कार्य्यों को हम लोग करावें ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सद्यो जातस्य ददृशानमोजो यदस्य वातो अनुवाति शोचिः ।
वृणक्ति तिग्मामतसेषु जिह्वां स्थिरा चिदन्ना दयते वि जम्भैः ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो ! (अस्य) इस (सद्यः) शीघ्र (जातस्य) उत्पन्न हुए विद्युत् रूप अग्निप्रताप के (यत्) जिस (ददृशानम्) देखने योग्य (ओजः) वेगयुक्त बल के (वातः) वायु (अनुवाति)पीछे चलता है जो इस साधारण अग्नि को(शोचिः) प्रज्वलित लपट को (अतसेषु) वृक्ष आदिकों में (तिग्माम्) तीव्र गति को और (जिह्वाम्) वाणी को (वृणक्ति) सेवन करता है और जो (वि, जम्भैः) गमनों के आक्षेपों से (चित्) भी (स्थिरा) दृढ़ (अन्ना) भोजन करने योग्य पदार्थों को (दयते) देता है उस बिजुली रूप अग्नि को जान के कार्य्यों में प्रयुक्त करो ॥१०॥

भावार्थः– जो शिल्पीजन पदार्थों से बिजुली को उत्पन्न करें तो वह बिजुली देखने योग्य पराक्रम और वेग को दिखा के अनेक प्रकार के ऐश्वर्य्यों को देती है ॥१०॥

फिर शिल्पि विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तृषु यदन्ना तृषुणा ववक्ष तृषुं दूतं कृणुते यह्वो अग्निः ।
वातस्य मेळिं सचते निजूर्वन्नाशुं न वाजयते हिन्वे अर्वा ॥११॥

पदार्थः – हे मनुष्यो ! (यत्) जो (यह्वः) बड़े (अर्वा) घोड़े के सदृश (निजूर्वन्) निरन्तर शीघ्र चलती हुई (अग्निः) बिजुली (तृषुणा) शीघ्रता से युक्त (अन्ना) अन्न आदिक पदार्थों को (तृषु)शीघ्र (ववक्ष) प्राप्त कराती है (तृषुम्) शीघ्र कार्य्यकारी (दूतम्) समाचार पहुंचाने वाले जन के सदृश अपने प्रताप को (कृणुते) करती है और (वातस्य) पवन के (मेळिम्) सङ्गम का (सचते) सम्बन्ध करती है जिसको विद्वान् जन (आशुम्) शीघ्र चलने वाले घोड़े के (न) सदृश (वाजयते) चलाता है मैं (हिन्वे) चलाऊं उसको आप लोग जानिये ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य बिजुली और वायु आदि के योग की विद्या को जानें तो वे दूत और घोड़े के सदृश दूर वाहन और समाचार को पहुंचा सकें ॥११॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सातवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ४, ५, ६ निचृद्गायत्री । २, ३, ७ गायत्री । ८ भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले आठवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में अग्निविषय को कहते हैं ॥

दूतं वो विश्ववेदसं हव्यवाहममर्त्यम् । यजिष्ठमृञ्जसे गिरा ॥१॥

पदार्थः - हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारे बीच जिस (दूतम्) उत्तम दूत के सदृश वर्त्तमान (अमर्त्यम्) नाश से रहित (विश्ववेदसम्) सब में विद्यमान (यजिष्ठम्) अत्यन्त मिलाने वाले (हव्यवाहम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को पहुंचाने वा प्राप्त कराने वाले को (गिरा) वाणी से हम लोग जानते हैं। हे विद्वन् ! जिस से आप कार्य्यों को (ऋञ्जसे) सिद्ध करते हो उस को आप लोग जान के कार्य्य में लगाइये ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! यही बिजुलीरूप अग्नि दूत के सदृश कार्यों का सिद्ध करने वाला है, ऐसा आप लोग जानो ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स हि वेदा वसुधितिं महाँ आरोधनं दिवः ।
स देवाँ एह वक्षति ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिसको (दिवः) प्रकाश के (आरोधनम्) रोकने और (वसुधितिम्) द्रव्यों के धारण करने वाले को विद्वान् (वेद) जानता है (सः) वह (हि) जिससे (महान्) बड़ा है और (सः) वह (इह) इस संसार में (देवान्) श्रेष्ठ गुण और भोगों को (आ, वक्षति) प्राप्त कराता है ऐसा जानो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो बिजुलीरूप अग्नि श्रेष्ठ भोग और गुणों का दाता सूर्य्य का भी सूर्य्य और सब का धारण करने वाला व्याप्त है उसको जानके कार्य्यों को सिद्ध करो ॥२॥

फिर अग्नि के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स वेद देव आनमं देवाँ ऋतायते दमे ।
दाति प्रियाणि चिद्वसु ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिसको यथार्थवक्ता (देवः) कामना करता हुआ विद्वान् जन (वेद) जानता है (सः) वह (देवान्) पृथिवी आदि पदार्थ वा विद्वानों के (आनमम्) सब प्रकार सत्कार करने को (ऋतायते) सत्य के सदृश आचरण और

(दमे) गृह में (चित्) भी (प्रियाणि) सुन्दर (वसु) द्रव्यों को (दाति) देता है ऐसा जानो ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! सम्पूर्ण पृथिवी आदि श्रेष्ठ पदार्थों के बीच जो अग्निदेव है उस से इस सब ऐश्वर्य का देने वाला बड़ा देव जानो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स होता सेदु दूत्यं चिकित्वाँ अन्तरीयते ॥
विद्वाँ आरोधनं दिवः ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! (सः) वह अग्नि (होता) पदार्थों का भक्षण करने वाला (सः, उ) वही (अन्तः) मध्य में वर्त्तमान (दूत्यम्) दूतपने वा दूत के कर्म को (ईयते) प्राप्त होता है वही (दिवः) प्रकाश का (आरोधनम्) सब प्रकार रोकने वाला है ऐसा मानते हैं जिस का (चिकित्वान्) विशेष ज्ञानवान् (विद्वान्) विद्वान् उत्तम प्रकार प्रयोग करता है (इत्) उसी को जान के तुम भी प्रयोग करो ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण पदार्थों के मध्य में वर्त्तमान और दूत के सदृश कार्य्यों को सिद्ध करता है और सूर्य्य आदि को प्रकाशित करता है वह अवश्य आप लोगों को जानने योग्य है ॥४॥

अब अग्नि विद्या के जानने वाले विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ते स्याम ये अग्नये ददाशुर्हव्यदातिभिः ।
य ईं पुष्यन्त इन्धते ॥५॥

पदार्थः—(ये) जो (हव्यदातिभिः) देने योग्य वस्तुओं के दानों से (अग्नये) अग्निविद्या की प्राप्ति के लिये (ददाशुः) द्रव्य आदि पदार्थ देते हैं और (ये) जो लोग (ईम्) जल को (पुष्यन्तः) पुष्ट करते हुए (इन्धते) प्रकाशित होते हैं (ते) वे सुखी हैं उन के साथ हम लोग सुखी (स्याम) होवें ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों की विद्या की प्राप्ति के लिये बहुत खर्चते हैं वे सब से सब प्रकार सब सुखों से पुष्ट हुए आनन्दित होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ते राया ते सुवीर्यैः ससवांसो वि शृण्विरे ।
ये अग्ना दधिरे दुवः ॥६॥

पदार्थः—(ये) जो विद्वान् लोग (अग्ना) बिजुलीरूप अग्नि में (दुवः) अभ्यास सेवन को (दधिरे) धारण करते और गुणों को (वि, शृण्विरे) सुनते हैं (ते) वे (राया) धन के साथ (ते) वे (सुवीर्यैः) उत्तम पराक्रम और बल वालों के साथ (ससवांसः) शयन करते से हुए आनन्दित होते हैं ॥६॥

भावार्थः—मनुष्य जब तक अग्नि आदि पदार्थों की विद्या का श्रवण और सेवन नहीं करते हैं तब तक धनाढच और पूर्ण बलवाले हो नहीं सकते हैं और जैसे सुख से सोते हुए आनन्द को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार अग्नि आदि विद्या को प्राप्त हुए दारिद्रच का नाश कर के धन और बल से सदा ही सुखी होते हैं ॥६॥

अब विद्वानों के पुरुषार्थ का फल कहते हैं ॥

अस्मे रायो दिवेदिवे सं चरन्तु पुरुस्पृहः ।
अस्मे वाजास ईरताम् ॥७॥

पदार्थः—मनुष्य लोग (दिवेदिवे) प्रतिदिन (अस्मे) हम लोगों में (पुरुस्पृहः) बहुतों से चाहने योग्य (रायः) श्रेष्ठ लक्ष्मियां (सम्, चरन्तु) विलसें और (वाजासः) अन्न आदि ऐश्वर्य्यों के योग (अस्मे) हम लोगों को (ईरताम्) प्राप्त हों ऐसी अभिलाषा करो ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदा ही पुरुषार्थ से धन, अन्न, राज्य, प्रतिष्ठा और विद्या आदि उत्तम गुणों की उन्नति होती है इस प्रकार निरन्तर इच्छा करनी चाहिये ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स विप्रश्चर्षणीनां शवसा मानुषाणाम् ।
अति क्षिप्रेव विध्यति ॥८॥

पदार्थः—जो (विप्रः) बुद्धिमान् पुरुष (शवसा) बल से (चर्षणीनाम्) ऐश्वर्य्य से प्रकाशमान (मानुषाणाम्) मनुष्यों के मध्य में (क्षिप्रेव) प्रेरणा किये गयों के सदृश दुःखों को (अति) अत्यन्त (विध्यति) ताड़ता है (सः) वही प्रशंसित होता है ॥८॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग अग्नि आदि विद्या के प्रयोगों से मनुष्यों के दारिद्रच का नाश करके ऐश्वर्य्य के योग को उत्पन्न करते हैं वे ही सब लोगों को सत्कार करने योग्य और सभों में भाग्यशाली होते हैं ॥८॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अष्टम सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ३। ४ गायत्री। २, ६ विराड्गायत्री। ५ त्रिपाद् गायत्री। ७। ८ निचृद्गायत्रीछन्दः। षड्जः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले नवमें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि के सदृश होने से विद्वान् का सत्कार कहते हैं ॥

अग्ने मृळ महाँ असि य ईमा देवयुं जनम्।
इयेथ बर्हिरासदम् ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशमान ! (यः) जो आप (बर्हि) उत्तम आसन को (आसदम्) बैठने वाला (देवयुम्) अपने को विद्वानों की कामना करते हैं उस (जनम्) प्रसिद्ध विद्वान् को (ईम्) सब प्रकार (आ इयेथ) प्राप्त होते हो इस से (महान्) महत्त्व से युक्त (असि) हो इस से (मृळ) सुखी कीजिये ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष विद्वानों के संग से विद्या की कामना करता और विद्या को प्राप्त होकर मनुष्य आदिकों को सुख देता है वही आसन आदि से प्रतिष्ठा देने योग्य होता है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स मानुषीषु दूळभो विक्षु प्रावीरमर्त्यः।
दूतो विश्वेषां भुवत् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (मानुषीषु) मनुष्यसंबन्धी (विक्षु) प्रजाओं में (विश्वेषाम्) सब की (प्रावीः) उत्तम विद्या में व्याप्त (अमर्त्यः) मरणधर्म स्वभाव से रहित (दूतः) सम्पूर्ण विद्याओं का प्राप्त कराने वाला (भुवत्) होता है (सः) वह इस संसार में (दूळभः) दुर्लभ है ऐसा जानना चाहिये ॥२॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग सब लोगों के सुखसाधक विद्या के देने वाले और मनुष्यों को धर्म के आचरण में प्रवेश कराने वाले स्वयं धार्मिक होवें वे संसार में दुर्लभ हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स सद्म परिं णीयते होता मन्द्रो दिविंष्टिषु ।
उत पोता नि षींदति ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (मन्द्रः) आनन्द का दाता (होता) दानकर्त्ता और (उत) भी (पोता) पवित्र करने वाला (दिविष्टिषु) पक्षेष्टि आदि उत्तम व्यवहारों के निमित्त (सद्म) बैठते हैं जिस में उस गृह में (नि, सीदति) बैठता है (सः) वह विद्वान् विद्वानों को (परि) सब प्रकार (नीयते) प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—जहां पवित्र आनन्दयुक्त और विद्या आदि के देने वाले लोग हैं वहीं सम्पूर्ण विनय होता है ॥३॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत ग्ना अग्निरंध्वर उतो गृहपतिर्दमें । उत ब्रह्मा नि षींदति ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (गृहपतिः) गृह का स्वामी (अग्निः) अग्नि के सदृश (ग्नाः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों को (नि, सीदति) प्राप्त होता (उत) और (ब्रह्मा) चार वेद का पढ़ने वाला होता हुआ (अध्वरे) नहीं हिंसा करने योग्य दमनयुक्त (दमे) गृह में स्थित होता है (उतो) और कर्म्म करता और (उत) भी सब को बोध कराता है वही सत्कार करने योग्य होता है ऐसा जानो ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि के सदृश पवित्रविद्या वाले और चारों वेदों के ज्ञाता और भी उत्तम कर्म्मों के करने वाले गृह के स्वामी होवें वेही श्रेष्ठ अधिकारों में वर्त्तमान होवें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

वेषि ह्यध्वरीयतामुंपवक्ता जनांनाम् । हव्या च मानुंषाणाम् ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जिससे आप (अध्वरीयताम्) अपने को अहिंसारूप यज्ञ करने वाले (मानुषाणाम्) मनुष्यों में उत्पन्न (जनानाम्) प्रसिद्ध पुरुषों को (उपवक्ता) उपदेश देने वालों के भी उपदेशक हुए (हि) ही (हव्या) देने योग्य वस्तुओं को (च) भी (वेषि) प्राप्त होते हो इससे उपदेश करने के योग्य हो ॥५॥

भावार्थः—जो उपदेश देने वाले लोग धर्म्म के उपदेश देने वालों को उत्पन्न करते और उत्तम प्रकार शिक्षित और उपदेश देने के लिये प्रवृत्त करके मनुष्यों को बोध कराते हैं वे ही संसार के कल्याण करने वाले होते हैं ॥५॥

अब राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वेपीद्वस्य दूत्यं१ यस्य जुजोषो अध्वरम् ।
हव्यं मर्तस्य वोळ्हवे ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वान् जो आप (यस्य) जिस (मर्तस्य) मनुष्य के (दूत्यम्) दूत-सम्बन्धी कर्म्म को (वेषि) प्राप्त होते हो और जिस के (वोळ्हवे) प्राप्त होने के लिये (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य (अध्वरम्) हिंसारहित व्यवहार का (उ) ही (जुजोषः) सेवन करो (इत्) वही आप (अस्य) इसके दूत होने के योग्य हैं ॥६॥

भावार्थः—हे राजा लोगो ! जो पूर्ण विद्यायुक्त बहुत बोलने वाले स्नेही और धार्मिक जन हैं और जो लोग राज्य के व्यवहार को धारण कर सकते हैं उन शूरवीर मित्रों को समाचारप्रापक बना और राज्य के समाचारों को जान के विशेष प्रबन्ध करो ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्माकं जोष्यध्वरमस्माकं यज्ञमंङ्गिरः ।
अस्माकं शृणुधी हवम् ॥७॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरः) प्राण के सदृश प्रिय राजन् ! जिस से आप (अस्माकम्) हम लोगों के (अध्वरम्) न्यायव्यवहार और (अस्माकम्) हम लोगों के (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार आदि क्रियामय व्यवहार को (जोषि) सेवन करते हो इस से (अस्माकम्) हम लोगों के (हवम्) शब्द अर्थ सम्बन्धरूप विषय को (शृणुधि) सुनिये ॥७॥

भावार्थः—हे राजन् ! जिससे कि आप हम लोगों की रक्षा करनेवाले प्रिय हैं इस से अर्थी अर्थात् मुद्दई और प्रत्यर्थी अर्थात् मुद्दायले के वचनों को सुन के निरन्तर न्याय विधान करो ॥७॥

अब प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

परि ते दूळभो रथोऽस्माँ अश्नोतु विश्वतः ।
येन रक्षसि दाशुषः ॥८॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप (येन) जिस से (दाशुषः) विद्या आदि के दान करने वालों की (परि) सब प्रकार (रक्षसि) रक्षा करते हो वह (ते) आप का (दूळभः) दुःख से नाश करने योग्य (रथः) सुन्दर वाहन (अस्मान्) हम लोगों को (विश्वतः) सब प्रकार (अश्नोतु) प्राप्त हो ॥८॥

भावार्थः—हे राजन् ! जिन साधनों और दृढ़ राजसेना के अङ्गों से प्रजा का सब प्रकार रक्षण होवै वे ही हम लोगों से भी प्राप्त करने योग्य हैं ॥८॥

इस सूक्त में अग्नि, राजा, प्रजा और विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह नवम सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । १ गायत्री । २, ३, ४, ७ भुरिग्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ५, ८ स्वराडुष्णिक् छन्दः । ६ विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले दशवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि-शब्दार्थविषयक विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अग्ने तमद्याश्वं न स्तोमैः क्रतुं न भद्रं हृदिस्पृशम् ।
ऋध्यामा त ओहैः ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! हम लोग (ओहैः) नम्रतायुक्त कर्मों और (स्तोमैः) प्रशंसाओं से (ते) आप के (अद्य) आज (अश्वम्) घोड़े के (न) सदृश और (क्रतुम्) बुद्धि के (न) सदृश जिस (हृदिस्पृशम्) हृदय को प्रिय और (भद्रम्) कल्याण करने वाले की (ऋध्याम) समृद्धि करें (तम्) उस की आप हम लोगों के लिये समृद्धि करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । मनुष्य जैसे घोड़े से मार्ग को शीघ्र जा सकते हैं वैसे श्रेष्ठ बुद्धि को प्राप्त होकर मोक्षमार्ग को शीघ्र पाने के योग्य हैं ॥१॥

अब राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अधा ह्यग्ने क्रतोर्भद्रस्य दक्षस्य साधोः ।
रथीर्ऋतस्य बृहतो बभूथ ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने, हि) राजन् ! जिस कारण अग्नि के सदृश प्रकाशमान आप हैं इससे (रथीः) बहुत वाहनों से युक्त होते हुए (भद्रस्य) कल्याणकर्त्ता तथा (दक्षस्य) बल (क्रतोः) बुद्धि और (साधोः) उत्तम मार्ग में वर्त्तमान (ऋतस्य) सत्य-

न्याय और (बृहतः) बड़े व्यवहार के रक्षक (वरूथ) हूजिये (अध) इस के अनन्तर हम लोगों के राजा हूजिये ॥२॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि सम्पूर्ण बल और विज्ञान से सज्जनों का रक्षण और दुष्ट पुरुषों का ताड़न कर के सत्य न्याय की उन्नति निरन्तर करें ॥२॥

अब प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एभिर्नो अर्कैर्भवा नो अर्वाङ् स्व१र्ण ज्योतिः ।
अग्ने विश्वेभिः सुमना अनीकैः ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्विन् ! आप (अर्कैः) सत्कार और (एभिः) बुद्धि, बल और साधुओं के सहित (नः) हम लोगों के लिये रक्षक (भव) हूजिये और (अर्वाङ्) अन्य व्यवहार में वर्त्तमान (स्वः) जैसे सूर्य्य के सदृश सुखकारी (न) वैसे (नः) हम लोगों के ऊपर (ज्योतिः) प्रकाशक हूजिये और (सुमनाः) कल्याणकारक मनयुक्त होते हुए (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (अनीकैः) शत्रु और दुष्ट डाकुओं से ग्रहण करने को अशक्य सेनाओं से पालनकर्त्ता हूजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा लोग बल बुद्धि और सज्जनों से संग कर उत्तम रक्षा कर और वृद्धि कराके प्रजा का पालन करते हैं वे सूर्य के सदृश प्रकाशित यशयुक्त सदा आनन्दित होते हैं ॥३॥

अब अमात्यविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आभिष्टे अद्य गीर्भिर्गृणन्तोऽग्ने दाशेम ।
प्र ते दिवो न स्तनयन्ति शुष्माः ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) बिजुली के सदृश वर्त्तमान राजन् ! हम लोग (अद्य) आज शीघ्र (आभिः) इन (गीर्भिः) बुद्धि आदि की बढ़ाने वाली वाणियों से (ते) आप के लिये (गृणन्तः) स्तुति करते हुए करधन (दाशेम) देवें जिन (ते) आप के लिये (दिवः) बिजुली के (न) सदृश (शुष्माः) बलपराक्रमयुक्त जन (प्र, स्तनयन्ति) शब्द करते हैं उन आप के लिये राज्य देवें ॥४॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आप बिजुली के तुल्य मन्त्रियों की रक्षा करके हम लोगों की पालना करें तो हम लोग आप की प्रजा हुए आज से लेकर आप की निरन्तर प्रशंसा करें और बहुत धनादिसम्पत्ति देवें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तव स्वादिष्ठाग्ने संदृष्टिरिदा चिदह्न इदा चिदक्तोः ।

श्रिये रुक्मो न रोचत उपाके ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सूर्य के सदृश प्रकाशमान राजन् ! जो (स्वादिष्ठा) अत्यन्त स्वादुयुक्त मधुर (संदृष्टिः) अच्छी दृष्टि (तव) आप के (उपाके) समीप में (अह्नः) दिन (चित्) और (अक्तोः) रात्रि के मध्य में (रुक्मः) प्रकाशमान सूर्य के (न) सदृश (श्रिये) लक्ष्मी की प्राप्ति के लिये (रोचते) प्रकाशित होती है (इदा) वही आप को रक्षा करने योग्य है (चित्) और जो सम्पूर्ण गुणों से युक्त पुरुष राज्य की रक्षा कर सके और शत्रु को रोक सके (इदा) वही आप को गुरु के सदृश सेवा करने योग्य है ॥५॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो दिन रात्रि के प्रबन्ध देखने अन्याय का विरोध करने और न्याय की प्रवृत्ति करने वाला दूत वा मन्त्री होवै वही पहिले सत्कार करके रक्षा करने योग्य है ॥५॥

फिर प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

घृतं न पूतं तनूररेपाः शुचि हिरण्यम् ।

तत्ते रुक्मो न रोचत स्वधावः ॥६॥

पदार्थः—हे (स्वधावः) बहुत अन्न से युक्त राजन् ! जो (अरेपाः) पाप के आचरण से रहित (ते) आपके राज्य में (रुक्मः) अत्यन्त दिपते हुए के (न) सदृश (रोचत) शोभित होते हैं और जो (शुचि) पवित्र (हिरण्यम्) ज्योति के सदृश सुवर्ण को प्राप्त कराते हैं (तत्) उसको प्राप्त होकर उनके साथ आप का (तनूः) देह (पूतम्) पवित्र (घृतम्) घृत वा जल के (न) सदृश और चिरञ्जीव हो ॥६॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो सूर्य्य के सदृश तेजस्वी, धनयुक्त, कुलीन, पवित्र, प्रशंसित, अपराधरहित, श्रेष्ठशरीरयुक्त, विद्या और अवस्था में वृद्ध होवें वे आप के और आप के राज्य के रक्षक हों और आप इन लोगों की सम्मति से वर्त्तमान होकर अधिक अवस्था युक्त हूजिये ॥६॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कृतं चिद्धि ष्मा सनेमि द्वेषोऽग्न इनोषि मर्त्तात् ।

इत्था यजमानादृतावः ॥७॥

पदार्थः— हे (ऋतावः) सत्य से युक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान ! जो आप (हि) ही (चित्) निश्चित (द्वेषः) द्वेष करनेवाले (मर्त्तात्) मनुष्य से वा (इत्था) इस प्रकार (यजमानात्) धर्म से संग किये हुए जन से (सनेमि) अनादि सिद्ध और (कृतम्) उत्पन्न किये गये को (इनोषि) विशेषता से प्राप्त होते हैं (स्म) वही राज्य करने योग्य हैं ॥७॥

भावार्थः— हे राजा आदि मनुष्यो ! आप लोग शत्रु और मित्रों से उत्तम गुणों को ग्रहण करके सुखों को प्राप्त होइये ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शिवा नः सख्या सन्तु भ्रात्राग्ने देवेषु युष्मे ।
सा नो नाभिः सदने सस्मिन्नूधन् ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश पवित्र आचरण युक्त जो आप के (नाभिः) मध्य अङ्ग के सदृश (शिवा) मङ्गलकारिणी नीति (सस्मिन्) समस्त (ऊधन्) श्रेष्ठ धनाढ्य में और (सदने) विराजें जिसमें उस राज्य में वर्त्तमान है (सा) वह (नः) हम लोगों के (देवेषु) विद्वानों वा उत्तम गुणों में (युष्मे) आप लोगों को प्रवृत्त करें। जो लोग (सख्या) मित्र और (भ्रात्रा) बन्धु के सदृश वर्त्तमान पुरुष के साथ वर्त्तमानों के तुल्य (नः) हम लोगों की रक्षा करनेवाले (सन्तु) हों उनमें आप विश्वास करो ॥८॥

भावार्थः—जो राजपुरुष परस्पर मित्रता करके प्रजाओं में पिता के सदृश वर्त्तमान हैं उन लोगों के साथ जो राजनीति का प्रचार करता है, वही सर्वदा राज्य भोगने के योग्य है ॥८॥

इस सूक्त में अग्नि, राजा, मन्त्री और प्रजा के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह दशवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । १, २, ५, ६, निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ स्वराड्बृहती छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अग्नि की सदृशता से राजगुणों को कहते हैं ॥

भद्रं ते अग्ने सहसिन्ननीकमुपाक आ रोचते सूर्यस्य ।
रुशद्दृशे ददृशे नक्तया चिदरूक्षितं दृश आ रूपे अन्नम् ॥१॥

पदार्थः—हे (सहसिन्) बहुत बल से युक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान जिन (ते) आपके (उपाके) समीप में (भद्रम्) कल्याणकारक (रुशत्) उत्तम स्वरूप युक्त (अनीकम्) सेना (सूर्य्यस्य) सूर्य के किरणों के सदृश (आ, रोचते) प्रकाशित होती है और (नक्तया) रात्रि के सहित चन्द्रमा के सदृश (ददृशे) दीखती (चित्) और सुख (दृशे) देखने के (अरूक्षितम्) रूखेपन से रहित (अन्नम्) भोजन करने योग्य पदार्थ (दृशे) देखने के योग्य (रूपे) रूप में (आ) प्रकाशित होता है उन आप का सर्वत्र विजय हो यह निश्चय है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा उत्तम प्रकार शिक्षित सेना उत्तम गुणों और ऐश्वर्य के सहित प्रजाओं का पालन करता और दुष्टों को पीड़ा देता है वह चन्द्र और सूर्य के सदृश सर्वत्र प्रकाशित होता है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वि षा॑ह्यग्ने गृण॒ते म॑नी॒षां खं वेप॑सा तुविजात॒ स्तवा॑नः ।
विश्वे॑भि॒र्यद्वा॒वनः॑ शुक्र दे॒वैस्तन्नो॑ रास्व सुमहो॒ भूरि॒ मन्म॑ ॥२॥

पदार्थः—हे (तुविजात) बहुतों में प्रसिद्ध (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्या से प्रकाशित (स्तवानः) स्तुति करनेवाले हुए आप (वेपसा) राज्य के पालन आदि कर्म से (मनीषाम्) मन की नियामक बुद्धि और (खम्) आकाश की (गृणते) स्तुति करने वाले के लिये (वि) विशेष करके (साहि) कर्मों की समाप्ति करो। हे (शुक्र) शीघ्रता करने वाले (विश्वेभिः) संपूर्ण (देवैः) विद्वानों के साथ आप (यत्) जिसे (वावनः) उत्तम प्रकार भजो सेवो (तत्) उस (सुमहः) बहुत बड़े और (भूरि) बहुत (मन्म) विज्ञान को (नः) हम लोगों के लिये (रास्व) दीजिये ॥२॥

भावार्थः—हे राजन्! आप जितेन्द्रिय हो और बुद्धि को प्राप्त हो कर कर्म से प्रारम्भ किये हुए कार्य्य को समाप्त करो और सम्पूर्ण विद्वानों के सहित पूर्ण विज्ञान और प्रजाओं के लिये सुख दीजिये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वद॑ग्ने॒ काव्या॒ त्वन्म॑नी॒षास्त्वदु॒क्था जा॑यन्ते॒ राध्या॑नि ।
त्वदे॑ति॒ द्रवि॑णं वी॒रपे॑शा इ॒त्थाधि॑ये दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन्! आप (वीरपेशाः) वीर पुरुषों के रूप के सदृश रूपवाले हम लोग (इत्थाधिये) इस प्रकार (त्वत्) आप के समीप से बुद्धि युक्त

(दाशुषे) देनेवाले (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (काव्या) कवि विद्वानों के निमित्त किये काव्य (त्वत्) आप के समीप से (मनीषाः) यथार्थज्ञान (त्वत्) आप के समीप से (उक्था) प्रशंसा करने (राध्यानि) और सिद्ध करने योग्य द्रव्य (जायन्ते) प्रसिद्ध होते हैं (त्वत्) आप के समीप से (द्रविणम्) धन (एति) प्राप्त होता है। इस से हम लोग आप की सेवा करें ॥३॥

भावार्थः— हे राजन् ! जो आप विद्वान् जितेन्द्रिय और न्यायकारी होवें तो आप के अनुकरण से सम्पूर्ण मनुष्य सत्य आचरण में प्रवृत्त हो और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर सम्पूर्ण प्रजा का हित साध सकें ॥३॥

अब अग्निसम्बन्ध से विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

त्वद्वाजी वाजम्भरो विहाया अभिष्टिकृज्जायते सत्यशुष्मः ।

त्वद्रयिर्देवजूतो मयोभुस्त्वदाशुर्जूजुवाँ अग्ने अर्वा ॥४॥

पदार्थः— हे (अग्ने) विद्वन् ! जो (त्वत्) आप के समीप से प्रेरणा किया गया (विहायाः) जिससे वह बड़ा और शीघ्र जाता है इससे (वाजम्भरः) प्राप्त हुए बहुत भार को धारण करने वाला (सत्यशुष्मः) सत्यबलयुक्त (अभिष्टिकृत्) अपेक्षितकर्म का कर्त्ता और (वाजी) वेगवान् (जायते) होता है वा जो (त्वत्) आपके समीप से (रयिः) धन (देवजूतः) विद्वानों ने जाना और चलाया हुआ (मयोभुः) सुख की भावना कराने वाला वा जो (त्वत्) आपके समीप से (जूजुवान्) शीघ्र प्राप्त कराने और (अर्वा) शीघ्र जानेवाला (आशुः) शीघ्रगामी (जायते) होता है वह हम लोगों को भी उत्पन्न करने योग्य है ॥४॥

भावार्थः— हे मनुष्यो ! जो आप लोगों के पुरुषार्थ से बिजुली आदि स्वरूप अग्निविद्या से प्रसिद्ध होवें तो बहुत भारवाले वाहन का पहुँचाने वाला सुख का हेतु और धन उत्पन्न कराने वा शीघ्र ले चलने वाला होवें ॥४॥

फिर अग्नि के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वामग्ने प्रथमं देवयन्तो देवं मर्त्ता अमृत मन्द्रजिह्वम् ।

द्वेषोयुतमा विवासन्ति धीभिर्दमूनसं गृहपतिममूरम् ॥५॥

पदार्थः— हे (अमृत) अपने आत्मस्वरूप से नाशरहित (अग्ने) अत्यन्त विद्वान् जो लोग (धीभिः) कर्मों वा बुद्धियों से (मन्द्रजिह्वम्) आनन्द उत्पन्न करने वाली वाणीयुक्त (द्वेषोयुतम्) द्वेष आदि कर्मवियुक्त (दमूनसम्) इन्द्रियों को रोकने वाले (अमूरम्) मूर्खता आदि दोषरहित विद्वान् (प्रथमम्) आदिम (देवम्) सुन्दर

(गृहपतिम्) गृह के स्वामी (त्वाम्) आपकी (देवयन्तः) कामना करते हुए (मर्त्ताः) मनुष्य (आ, विवासन्ति) सेवा करते हैं उन की आप भी सेवा करो ॥५॥

भावार्थः—जो लोग विद्वान् होकर गृहस्थों को वोध, सब के सन्तानों को ब्रह्मचर्य्य से उत्तम शिक्षा और विद्या ग्रहण करा के तथा अविद्या आदि दोषों को दूर कर के शम दम आदि उत्तम गुणों से युक्त करते हैं वे ही इस संसार में सुन्दर होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आरे अस्मदमतिमारे अंह आरे विश्वां दुर्मतिं यन्निपासि ।
दोषा शिवः सहसः सूनो अग्ने यं देव आ चित्सचसे स्वस्ति ॥६॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) सन्तान और (अग्ने) अत्यन्त विद्वान् (यत्) जिससे आप (देवः) ईश्वर के सदृश (अस्मत्) हम लोगों से (आरे) दूर (अमतिम्) मूर्खजन को (आरे) दूर (अंहः) पापकर्म को और (आरे) दूर (विश्वाम्) समग्र (दुर्मतिम्) दुष्टबुद्धि को निरन्तर अलग करा (यम्) जिसकी (निपासि) अत्यन्त रक्षा करते हो उसको (शिवः) मङ्गलकारी हुए (दोषा) रात्रि और दिन में (चित्) भी (स्वस्ति) सुख को (आ, सचसे) सम्बन्ध कराते हो इससे हम लोगों से पूजा करने योग्य हो ॥६॥

भावार्थः—यह हम लोग निश्चय करते हैं कि जो लोग हम लोगों को अधर्मी और दुष्ट बुद्धि वाले पुरुष से दूर करते हैं वे ही दिन रात्रि हम लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि राजा विद्वान् पुरुष के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह ग्यारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । १, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३, ४ भुरिक् पङ्क्तिः । ६ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले बारहवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मंत्र में फिर अग्निसादृश्य होने से विद्वानों के विषय को कहते हैं ॥

यस्त्वामग्न इनधते यतस्रुक्त्रिस्ते अन्नं कृणवत्सस्मिन्नहन् ।
स सु द्युम्नैरभ्यस्तु प्रसक्षत्तव क्रत्वा जातवेदश्चिकित्वान् ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! (यतःस्रुक्) उद्यत किये हैं हवन करने के पात्र विशेषरूप स्रुवा जिसने ऐसा पुरुष (सस्मिन्) सब (अहन्) दिन में (त्वाम्) आप को (इनधते) ईश्वर से मिलावै और (ते) आप के लिये (अन्नम्) भोजन के पदार्थ को (कृणवत्) सिद्ध करै और हे (जातवेदः) श्रेष्ठज्ञानयुक्त (यः) जो (तव) आप की (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म से (चिकित्वान्) सत्य अर्थ का जानने वाला होता हुआ (अभि, प्रसक्षत्) प्रसङ्ग को करै (सः) वह (सु, द्युम्नैः) उत्तम यशों वा धनों से (त्रः) तीन वार युक्त (अस्तु) हो ॥१॥

भावार्थः–हे विद्वानो ! जो लोग आप के लिये ईश्वरज्ञान, बड़े विहार की विद्या और उत्तमबुद्धि को सब काल में देते हैं वे यश और धन से युक्त करने चाहिये ॥१॥

फिर अग्नि के सादृश्य से राजगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इ॒ध्मं यस्ते॑ ज॒भर॑च्छश्रमा॒णो म॒हो अ॑ग्ने॒ अनी॑क॒मा स॑प॒र्यन् ।
स इ॑धा॒नः प्रति॑ दो॒षामु॒षासं॒ पुष्य॑न्र॒यिं स॑चते॒ घ्नन्न॒मित्रा॑न् ॥२॥

पदार्थः–हे (अग्ने) राजन् ! (यः) जो (शश्रमाणः) अत्यन्त परिश्रम करता हुआ सेना का स्वामी (ते) आप की (महः) बड़ी (इध्मम्) प्रकाशयुक्त (अनीकम्) विजय को प्राप्त होती हुई सेना की (आ) सब प्रकार (सपर्य्यन्) सेवा करता हुआ (जभरत्) यथावत् हरै पोषै पुष्ट हो अर्थात् शत्रु बल हरै और आप पुष्ट हो (स.)वह (इधानः) प्रकाशमान होता (प्रति, दोषाम्) प्रत्येक रात्रि और (उषासम्) प्रत्येक दिन (पुष्यन्) पुष्टि पाता (अमित्रान्) और धर्म से द्वेष करने वाले शत्रुओं का (घ्नन्) नाश करता हुआ (रयिम्) राज्यलक्ष्मी को (सचते) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः–हे राजन् ! जो आप के सेनाध्यक्ष और न्यायाधीश विद्या विनय और धर्म आदि से प्रकाशमान हुए अपनी प्रजाओं का पालन करते और दुष्ट शत्रुओं का नाश करते हुए विजय को प्राप्त होते हैं, उनके लिये आप को चाहिये कि बहुत प्रतिष्ठा और बहुत धन देकर दिन रात्रि धर्म अर्थ काम मोक्ष की उन्नति करें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अ॒ग्निरी॑शे बृह॒तः क्ष॒त्रिय॑स्या॒ग्निर्वाज॑स्य पर॒मस्य॑ रा॒यः ।
द॒धाति॒ रत्नं॑ विध॒ते यवि॑ष्ठो॒ व्या॑नु॒षङ्मर्त्या॑य स्व॒धावा॑न् ॥३॥

पदार्थः–हे राजा और प्रजाजनो ! जो (अग्निः) अग्नि के सदृश जन (क्षत्रियस्य) क्षात्रधर्मयुक्त (बृहतः) बड़े (वाजस्य) वेग विज्ञान और (परमस्य)

अत्यन्त श्रेष्ठ (रायः) धन आदि के मध्य में (ईशे) ऐश्वर्य्य करता है तथा (यविष्ठः) अत्यन्त युवा अर्थात् शरीर और आत्मा के वल से और (स्वधावान्) वहुत अन्न आदि से युक्त (आनुषक्) अनुकूल हुआ (विधते) विधान करते हुए (मर्त्याय) मरण धर्म-वाले मनुष्य के लिये (अग्निः) विजुली के समान वर्त्तमान (रत्नम्) रमण करने योग्य धन को (वि, दधाति) विधान करता है वह सब लोगों से सत्कार करने योग्य है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सूर्य्य और विजुली के सदृश राज्य और ऐश्वर्य्य की उन्नति करते हुए यश को विस्तारते हैं वे सब से सब प्रकार सत्कार को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यच्चि॒द्धि ते॑ पुरुष॒त्रा य॑विष्ठा॒चित्ति॑भिश्चकृ॒मा कच्चि॒दागः॑।
कृ॒धीष्व१॒॑स्माँ अदि॑ते॒रना॑गा॒न् व्येनां॑सि शिश्रथो॒ विष्व॑गग्ने ॥४॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अत्यन्त यौवनावस्था को प्राप्त (अग्ने) विद्या और विनय से प्रकाशित राजन्! (यत्) जो हम लोग (अचित्तिभिः) चेतनाभिन्नों से (ते) आप के (पुरुषत्रा) पुरुषों में (चित्) कुछ (आगः) अपराध को (चकृम) करैं उन (अस्मान्) हम लोगों को (कत्, चित्) कभी (अनागान्) अपराध से रहित(कृधि) कीजिये जो जो हम लोगों से (एनांसि) पाप होवैं उन उन को भी (हि) निश्चय से (विष्वक्) सब प्रकार(वि, शिश्रथः) शिथिल वा उन का वियोग करो और (अदितेः) पृथिवी के (सु) उत्तम राज्य को करो ॥४॥

भावार्थः—हे राजन्! जो कदाचित् अज्ञान वा प्रमाद से हम लोग अपराध करैं उन को भी दण्ड के विना क्षमा न कीजिये और हम लोगों को उत्तम शिक्षा से धार्मिक कर के पृथिवी के राज्य के अधिकारी करिये ॥४॥

फिर विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

म॒हश्चि॑दग्न॒ एन॑सो अ॒भीक॑ ऊ॒र्वाद्दे॒वाना॑मु॒त मर्त्या॑नाम्।
मा ते॒ सखा॑यः॒ सद॒मिद्रि॑षाम॒ यच्छा॑ तो॒काय॒ तन॑याय॒ शं योः ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन्! (देवानाम्) विद्वानों के (उत) और (मर्त्यानाम्) अविद्वानों के (अभीके) समीप में (महः) बड़े (चित्) भी (एनसः) अपराध के (ऊर्वात्) विस्तीर्णभाव से हम लोग विनाश करैं अर्थात् उन कर्मों का नाश करैं जो अपराध के मूल हैं और (ते) आपके (सखायः) मित्र हुए आप के (सदम्) स्थान को

(मा) मत (रिषाम) नष्ट करें और आप (तोकाय) शीघ्र उत्पन्न हुए पांच वर्ष की अवस्थावाले (तनयाय) पुत्र के लिये (शम्) सुख (योः) उत्तम कर्म से उत्पन्न हुआ (इत्) ही (यच्छ) दीजिये ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग विद्वानों के समीप स्थित हों और शिक्षा को प्राप्त होकर पापस्वरूप कर्म्म का त्याग कर अन्यों का भी त्याग करावें, सब के मित्र होकर कुमार और कुमारियों को उत्तम शिक्षा देकर और सम्पूर्ण विद्या प्राप्त करा के सुखयुक्त करें, वैसा आप लोग भी आचरण करो ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।
एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! (यथा) जैसे आप से (नः) हम लोगों के (प्रतरम्) जिससे संसार में पार होते वह (आयुः) जीवन (प्र, तारि) पार किया जाता है (अंहः) पाप पार किया जाता वैसा हम लोग आप के पार कराने वाले जीवन और अपराध को पार करें हे (यजत्राः) विद्वानों के सत्कार करने वाले (वसवः) निवास करते हुए जनो ! जैसे आप लोग (त्यत्) उस पाप का (ह) निश्चय करि (अमुञ्चत) त्याग करें (पदि) प्राप्त होने योग्य विज्ञान में (चित्) भी (सिताम्) शब्दार्थविज्ञान-सम्बन्धिनी (गौर्यम्) स्वच्छ वाणी को प्राप्त हूजिये वैसे (एवो) ही (अस्मत्) हम से पाप को (सु, वि, मुञ्चत) अच्छे प्रकार विशेषता से दूर कीजिये उसी प्रकार हम लोग भी पाप का त्याग कर के उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी को प्राप्त होवें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे धार्मिक यथार्थवक्ता विद्वान् लोग पाप के आचरण का त्याग कर के सत्य आचरण में अन्यों को अपने सदृश करने की इच्छा करते हैं वैसा ही आप लोग भी आचरण करो ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि राजा और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । अग्निर्देवता । १, २, ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्-त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले तेरहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में सूर्य के सादृश्य से राजगुणों को कहते हैं ॥

प्रत्यग्निरुषसामग्रमख्यद्विभातीनां सुमना रत्नधेयम् ।
यातमश्विना सुकृतो दुरोणमुत्सूर्यो ज्योतिषा देव एति ॥१॥

पदार्थः--जो (विभातीनाम्) प्रकाश करते हुए (उषसाम्) प्रातःकालों के (अग्रम्) ऊपर होना जैसे हो वैसे (अग्निः) अग्नि के सदृश यश को (प्रति, अख्यत्) प्रकट करता और (सुमनाः) प्रसन्नचित्त होता हुआ (अश्विना) वायु और बिजुली जैसे (यातम्) प्राप्त हों वैसे (ज्योतिषा) प्रकाश के साथ (देवः) सुख का देनेवाला (सूर्यः) सूर्य जैसे (उत्) (एति) उदय होता वैसे (सुकृतः) उत्तम कृत्य करने वाले धर्मात्मा के (रत्नधेयम्) रत्न जिस में धरे जायं उस (दुरोणम्) गृह को प्राप्त होता वह सुख को प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थः--इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो वायु बिजुली और सूर्य के गुणयुक्त पुरुष प्रजाओं का पालन करते हैं वे उस सत्य न्याय से बहुत रत्नों के कोष को प्राप्त हैं ॥१॥

अब सूर्यलोकादिकों के निमित्तकारण को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद्द्रप्सं दविध्वद्गविषो न सत्वा ।
अनु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत्सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥२॥

पदार्थः--हे मनुष्यो ! जो (सविता) सूर्य्यमण्डल (देवः) प्रकाशमान (सत्वा) चलने वाला (गविषः) गौओं को प्राप्त होने की इच्छा करते हुए के (न) सदृश (अनु, व्रतम्) अनुकूल कर्म को और (वरुणः) जल और (मित्रः) वायु अनुकूल कर्म को (यन्ति) प्राप्त होते वा (यत्) जिस (सूर्य्यम्) सूर्य्यलोक को (दिवि) अन्तरिक्ष में (आरोहयन्ति) चढ़ाते हैं वा सूर्य्यमण्डल (द्रप्सम्) पृथिवी सम्बन्धी भूलोक को (दविध्वत्) अत्यन्त कंपाता हुआ (ऊर्ध्वम्) ऊपर वर्त्तमान (भानुम्) किरण का (अश्रेत्) आश्रय करता है यह सब जानो ॥२॥

भावार्थः--इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । इस सृष्टि में परमात्मा ने जैसे सूर्य्य की उत्पत्ति से जल अग्नि और पवन रचे वैसे ही पृथिवी आदिकों के भी निमित्तकारण रचे, यह जानना चाहिये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यं सीमकृण्वन्तमसे विपृचे ध्रुवक्षेमा अनवस्यन्तो अर्थम् ।
तं सूर्यं हरितः सप्त यह्वीः स्पशं विश्वस्य जगतो वहन्ति ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यम्) जिस (अर्थम्) पदार्थरूप सूर्य को (अनवस्यन्तः) न सेवते और क्रिया करते हुए (ध्रुवक्षेमाः) निश्चित रक्षण करने वाले जन (तमसे) अन्धकार के अर्थ (विपृचे) वियोग करने के लिये (सीम्) सब ओर से (अकृण्वन्) निश्चित करते हैं (तम्) उस (विश्वस्य) सम्पूर्ण (जगतः) संसार के (स्पशम्) बांधने वाले (सूर्य्यम्) सूर्य्य को (सप्त) सात (यह्वीः) बड़ी (हरितः) दिशाओं को (वहन्ति) प्राप्त कराते हैं वैसे ही उत्तम गुणों को प्राप्त कराओ ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे किरणें सूर्य्य को अन्धकार के दूर करने के लिये धारण करते हैं वैसे ही सम्पूर्ण जगत् की अविद्या दूर करने के लिये और विद्या की रक्षा के लिये सब प्रकार सत्य के उपदेश करो ॥३॥

अब सूर्य्यदृष्टान्त से विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वहिष्ठेभिर्विहरन्यासि तन्तुमवव्ययन्नसितं देव वस्म ।
दविध्वतो रश्मयः सूर्य्यस्य चर्मेवावाधुस्तमो अप्स्व१न्तः ॥४॥

पदार्थः—हे (देव) प्रकाशमान विद्वन् ! जिस से आप (वहिष्ठेभिः) अत्यन्त प्राप्त कराने वालों से सूर्य (तन्तुम्) कारण को (विहरन्) प्राप्त होता हुआ और (असितम्) कृष्णवर्ण अन्धकार को (अवव्ययन्) दूर करता हुआ चलता है वैसे (वस्म) निवासस्थान को (अव, यासि) प्राप्त होते हो और जैसे (दविध्वतः) कंपाते हुए (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मयः) किरणें (अप्सु) अन्तरिक्ष के (अन्तः) मध्य में (तमः) अन्धकार को (चर्मेव) जैसे चर्म शरीर को ढांपता है वैसे (अवाधुः) ढांपते हैं वैसे आप हूजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे उपदेशक ! जैसे सूर्य प्राप्त कराने वाले किरणों के आकर्षणादिकों से अपने प्रकाश का विस्तार करता हुआ चर्म से देह के सदृश ढांपता हुआ अन्तरिक्ष के मध्य में विहार करता है वैसे ही अविद्या का नाश और विद्या का प्रकाश करके इस संसार में विचरिये ॥४॥

अब सूर्य्यमण्डल प्रश्नोत्तर पूर्वक विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।
कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (अयम्) यह (अनायतः) इधर उधर (न) जाता और समीप वर्त्तमान (अनिबद्धः) किसी के आकर्षण से नहीं बंधा (न्यङ्) जो नीचे को होता हुआ (उत्तानः) ऊपर स्थित (कथा) किस प्रकार से (न) नहीं (अव, पद्यते)

नीचे आता और (कथा) किस (स्वधया) अन्न आदि पदार्थों से युक्त पृथिवी के साथ (याति) चलता है जो (दिवः) प्रकाश का (स्कम्भः) खम्भे के सदृश धारण करने वाला (समृतः) उत्तम प्रकार सत्यस्वरूप (नाकम्) दुःखरहित व्यवहार की (पाति) रक्षा करता है उस को (कः) कौन (ददर्श) देखता है ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वन्! यह सूर्य्य अन्तरिक्ष के मध्य में स्थित हुआ क्यों नीचे नहीं गिरता है किससे चलता है और कैसे प्रकाश का धारण करने वाला और सुखकारक होता है? इस प्रश्न का उत्तर—परमेश्वर ने स्थापित और धारण किया इस से नीचे नहीं गिरता है और अपने समीप वर्त्तमान भूगोलों के साथ अपनी कक्षा में चलता हुआ वर्त्तमान है और सम्पूर्ण समीप में वर्त्तमान पदार्थों के आकर्षण से धारणकर्त्ता और परमेश्वर की व्यवस्था से सुखकारक वर्त्तमान है यह जानना चाहिये ॥५॥

इस सूक्त में सूर्य्य और विद्वानों के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह तेरहवां सूक्त समाप्त हुआ॥

---

वामदेव ऋषिः। अग्निर्लिङ्गोक्ता देवता वा। १ भुरिक्पङ्क्तिः। ३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २, ४ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब पांच ऋचावाले चौदहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में अग्निसादृश्य से विद्वानों के गुणों का उपदेश करते हैं॥

प्रत्यग्निरुषसो जातवेदा अख्यद्देवो रोचमाना महोभिः।
आ नासत्योरुगाया रथेनेमं यज्ञमुप नो यातमच्छ ॥१॥

पदार्थः—हे (नासत्या) असत्य आचरण से रहित (उरुगाया) बहुत प्रशंसा वाले अध्यापक और उपदेशक जनो! आप दोनों (महोभिः) बड़ों के साथ (रथेन) वाहन से (नः) हम लोगों के प्रकाश्य और प्रकाशकस्वरूप व्यवहार और (इमम्) इस वर्त्तमान (यज्ञम्) यज्ञ को (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (देवः) प्रकाशमान (अग्निः) बिजुली के सदृश अग्नि (रोचमानाः) प्रकाशमान (उषसः) दिन के मुख अर्थात् प्रारम्भ के (प्रति) प्रति (अख्यत्) प्रकाशित होता है वैसे (अच्छ) उत्तम प्रकार (उप) समीप (आ, यातम्) आओ प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो! जो जैसे सूर्य्य प्रातःकाल से शोभित होता है वैसे ही सत्य के उपदेश से रथ से

मार्ग के सदृश विद्या के सुख को प्राप्त कराते हैं वे इस संसार में कल्याण-कारक होते हैं ॥१॥

अब विद्वान् के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऊर्ध्वं केतुं सविता देवो अश्रेज्ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वन् ।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं वि सूर्यो रश्मिभिश्चेकितानः ॥२॥

पदार्थः—जो (देवः) विद्वान् जैसे (सविता) सूर्य्य (रश्मिभिः) किरणों से (चेकितानः) जनाता हुआ (सूर्य्यः) प्रकाशमान (विश्वस्मै) सब (भुवनाय) संसार के लिये (ज्योतिः) प्रकाश को (कृण्वन्) करता हुआ (द्यावापृथिवी) प्रकाश भूमि (अन्तरिक्षम्) आकाश को (वि, आ, अप्राः) व्याप्त होता है वैसे (ऊर्ध्वम्) उत्तम (केतुम्) बुद्धि का (अश्रेत्) आश्रय करे वही पूर्ण सुखवाला होवे ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो विद्वान् लोग सम्पूर्ण विद्याओं को पढ़कर ब्रह्मचर्य और योगाभ्यास से ज्ञान को प्राप्त होकर किरणों से सूर्य के सदृश जनों के अन्तःकरणों को उपदेश से उज्ज्वल करते हैं वे ही सब को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥२॥

अब विदुषी के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आवहन्त्यरुणीर्ज्योतिषागान्मही चित्रा रश्मिभिश्चेकिताना ।
प्रबोधयन्ती सुवितायं देव्युषा ईयते सुयुजा रथेन ॥३॥

पदार्थः—हे विद्यायुक्त और उत्तम गुण वाली स्त्रि ! तू जैसे (सुयुजा) उत्तम प्रकार जोड़ते हैं घोड़ों को जिस में उस (रथेन) वाहन के सदृश (रश्मिभिः) अपने किरणों से (चेकिताना) प्राणियों को जनाती हुई और (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये (प्रबोधयन्ती) जगाती हुई (ज्योतिषा) प्रकाश से (चित्रा) अद्भुतस्वरूप वाली (अरुणीः) किञ्चित् लाल आभायुक्त कान्तियों को (आवहन्ती) सब प्रकार प्राप्त कराती हुई (मही) बड़ी (देवी) अत्यन्त प्रकाशमान (उषाः) प्रातःकाल की वेला (ईयते) जाती और (आ, अगात्) आती है वैसे आप हूजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो सुन्दर प्रिया उत्तम लक्षणों से युक्त अद्भुत रूपवाली पतिव्रता स्त्री पुरुष को प्राप्त होवे तो वह प्रातःकाल के सदृश कुल का प्रकाश करती हुई और सन्तानों को उत्तम शिक्षा देती हुई सब को आनन्द देती है ॥३॥

अब स्त्री पुरुष के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**आ वां वहिंष्ठा इह ते वहन्तु रथा अश्वास उषसो व्युष्टौ ।**
**इमे हि वां मधुपेयाय सोमा अस्मिन् यज्ञे वृषणा मादयेथाम् ॥४॥**

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों जो लोग (वहिष्ठाः) अत्यन्त धारण करने वाले (रथाः) वाहन (अश्वासः) शीघ्र चलने वाले (उषसः) प्रातःकाल के (व्युष्टौ) विशिष्ट प्रताप में हैं (ते) वे आप दोनों को (इह) इस संसार में (आ, वहन्तु) अभीष्ट स्थान को पहुंचावें और जो (इमे) ये (हि) जिस कारण (वाम्) आप दोनों के (सोमाः) ऐश्वर्य्य के सहित पदार्थ (अस्मिन्) इस (यज्ञे) मेल करने योग्य गृहाश्रम में (मधुपेयाय) मधुर गुणों से पीने योग्य के लिये होते हैं इस कारण उनका इस संसार में सेवन करके (वृषणा) पराक्रम वाले होते हुए आप दोनों (मादयेथाम्) आनन्दित होवें ॥४॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! आप लोग यदि रात्रि के चौथे प्रहर में उठ और आवश्यक कृत्य करके वाहन वा पैरों से सूर्योदय से पहिले शुद्ध वायु देश में भ्रमण करें तो आप लोगों को रोग कभी न प्राप्त होवें जिससे कि बलिष्ठ और अधिक अवस्था वाले हुए इस गृहाश्रम में बड़े आनन्द को भोगो ॥४॥

फिर विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**अनायतो अनिबद्धः कथायं न्यङ्ङुत्तानोऽव पद्यते न ।**
**कया याति स्वधया को ददर्श दिवः स्कम्भः समृतः पाति नाकम् ॥५॥**

पदार्थः—जो विद्वान् (अनायतः) दूर नहीं अर्थात् समीप वर्त्तमान (अनिबद्धः) शत्रुवान् पुरुष के समान एकत्र न ठहरने वाला (अयम्) यह (न्यङ्) नित्य आदर करता या प्राप्त होता (उत्तानः) ऊपर को विस्तरितसा स्थित (कथा) किस प्रकार (न) नहीं (अव, पद्यते) नीची दशा को प्राप्त होता है और (कया) किस (स्वधया) अपनी गति से (याति) चलता है (समृतः) उत्तम प्रकार सत्यस्वरूप (दिवः) मनोहर सुख के (स्कम्भः) घर का आधार खम्भा जैसे बीच में ठहरे वैसे (नाकम्) सुख की (पाति) रक्षा करता है इस को (कः) कौन (ददर्श) देखता है ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! जीव यह नीचे की दशा को किस रीति से न प्राप्त होवै जो अविद्या आदि वन्धन का त्याग करै तो; किस कर्म से सुख को प्राप्त होता है जो धर्म का अनुष्ठान करै; कौन कामनाओं से पूर्ण होता है जो परमात्मा को देखै ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि विद्वान् स्त्री और पुरुष के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौदहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । १-६ अग्निः । ७, ८ सोमकः साहदेव्यः । ९, १० अश्विनौ देवते । १, ४ गायत्री । २, ५, ६ विराड् गायत्री । ३, ७—१० निचृद् गायत्रीच्छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले पंद्रहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मंत्र में अग्निविषय को कहते हैं ॥

अग्निर्होता नो अध्वरे वाजी सन्परि णीयते ।
देवो देवेषु यज्ञियः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (नः) हम लोगों के (अध्वरे) व्यवहार में (अग्निः) अग्नि के सदृश उत्तम गुणों से प्रकाशित (होता) धारण करने वाला (देवेषु) प्रकाशमानों में (देवः) प्रकाशमान (यज्ञियः) यज्ञ के योग्य (वाजी) बलवान् अश्व के समान (सन्) होता हुआ अग्नि (परि, नीयते) प्राप्त किया जाता है वह आप लोगों से भी प्राप्त होने योग्य है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जैसे अग्नि सूर्य्य रूप से सब व्यवहारों को प्राप्त कराता है वैसे ही विद्वान् सम्पूर्ण मनोरथों को प्राप्त कराता है ॥१॥

फिर अग्निविद्याविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

परि त्रिविष्ट्यध्वरं यात्यग्नी रथीरिव ।
आ देवेषु प्रयो दधत् ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जो (अग्निः) अग्नि (रथीरिव) श्रेष्ठ रथ आदि से युक्त सेना के स्वामी के सदृश (देवेषु) प्रकाशमान विद्वानों में (प्रयः) कामना करने योग्य धन को (दधत्) धारण करता हुआ (त्रिविष्टि) तीन प्रकार के सुख के प्रवेश में (अध्वरम्) सत्कार करने योग्य व्यवहार को (परि, आ, याति) सब ओर से प्राप्त होता है वह आप लोगों से कार्य्यों में युक्त करने योग्य है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है । हे मनुष्यो ! जैसे उत्तम

सेना से युक्त सेनाध्यक्ष पुरुष तीन प्रकार के सुख को प्राप्त होता है वैसे ही अग्निविद्या का जानने वाला शरीर आत्मा और इन्द्रियों के आनन्द को प्राप्त होता है ॥२॥

फिर अग्निविषय का वर्णन अगले मन्त्र में करते हैं ॥

परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥३॥

पदार्थः—जो (वाजपतिः) अन्न आदिकों का स्वामी (कविः) सम्पूर्ण विद्याओं का जानने वाला (अग्निः) बिजुली के सदृश वर्त्तमान (दाशुषे) देनेवाले के लिये (रत्नानि) रमण करने योग्य धनों को (दधत्) धारण करता हुआ (हव्यानि) देने योग्य पदार्थों का (परि, अक्रमीत्) परिक्रमण करता अर्थात् समीप होता वही निरन्तर सुखी होता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जैसे देनेवाले अन्यों के लिये उत्तम वस्तुओं को देते हैं वैसे ही अग्नि; क्योंकि दूसरे को सुख देने के लिये अग्नि के गुण होते हैं ॥३॥

अब राजविषय को पगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अयं यः सृञ्जये पुरो दैववाते समिध्यते ।
द्युमाँ अमित्रदम्भनः ॥४॥

पदार्थः—हे राजन् ! (यः) जो (अयम्) यह (द्युमान्) बहुत विद्या के प्रकाश से युक्त (अमित्रदम्भनः) शत्रुओं का नाशकर्त्ता (पुरः) प्रथम (दैववाते) विद्वान् जनों के प्राप्तसुख में (सृञ्जये) पाये हुए शत्रुओं को जिस में जीतता है उस संग्राम में (समिध्यते) प्रकाशित होता है वही आप के सत्कार करने योग्य है ॥४॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो लोग बड़े संग्राम में तेजस्वी भयरहित आगे चलने वाले और शत्रुओं के नाशकर्त्ता नौकर हों उनका ही आप पुत्रों के सदृश पालन करो ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्य घा वीर ईवतोऽग्नेरीशीत मर्त्यः ।
तिग्मजम्भस्य मीळ्हुषः ॥५॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो (वीरः) वीर (मर्त्यः) मनुष्य (अग्नेः) अग्नि के

सदृश (अस्य) इस (ईवतः) श्रेष्ठ गमन करनेवाले (तिग्मजम्भस्य) तीक्ष्ण तेजस्वी मुख जिसका उस (मीळ्हुषः) पराक्रमी सेनापति के शत्रुओं के मध्य में (ईशीत) समर्थ हो (घ) वही विजय करने को योग्य होवै ॥५॥

भावार्थः—सेनापति को चाहिये कि उन्हीं पुरुषों को सेना में भर्ती करे कि जो लोग शत्रुओं को जीत सकें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तमर्वन्तं न सानसिमरुषं न दिवः शिशुम् ।
मर्मृज्यन्ते दिवेदिवे ॥६॥

पदार्थः—हे अग्ने राजन् ! जिस (दिवः) प्रकाश से (शिशुम्) पुत्र को (अर्वन्तम्) शीघ्र चलनेवाले घोड़े के (न) सदृश वा (अरुषम्) रक्तगुणों से विशिष्ट के (न) सदृश (सानसिम्) और विभाग करने योग्य पदार्थ को (दिवे दिवे) प्रति दिन विद्वान् लोग (मर्मृज्यन्ते) शुद्ध करते हैं (तम्) उस को आप पवित्र करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो मनुष्य घोड़ों के सदृश सन्तानों को शिक्षा देते हैं वे नित्य सुख को बढ़ाते हैं ॥६॥

अब अध्यापकविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः ।
अच्छा न हूत उदरम् ॥७॥

पदार्थः—हे अध्यापक ! (यत्) जो (साहदेव्यः) जो विद्वानों के साथ वर्त्तमान उन में श्रेष्ठ (कुमारः) ब्रह्मचारी मैं (हूतः) प्रशंसित होता हुआ (अरम्) पूर्ण (न) न जानूं उस (मा) मुझको (हरिभ्याम्) घोड़ों के सदृश (अच्छ, उत, बोधत्) अच्छे प्रकार उत्तम बोध दीजिये ॥७॥

भावार्थः—जब कुमार और कुमारियां माता और पिता से शिक्षा को प्राप्त हुए आचार्य के कुल को जावें तब आचार्य के प्रिय आचरण और विनय से उसकी प्रार्थना करके विद्या की याचना करें जो ऐसा करै वह श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त रथ से जैसे वैसे विद्या के पार को जावै ॥७॥

अब अध्येतृविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत त्या यजता हरी कुमारात्साहदेव्यात् ।
प्रयता सद्य आ ददे ॥८॥

पदार्थः—(त्या) वे दोनों (यजता) देने और (हरी) अविद्या के हरनेवाले (प्रयता) प्रयत्न करते हुए अध्यापकोपदेशक (साहदेव्यात्) विद्वानों के साथ रहने वालों में उत्तम (कुमारात्) ब्रह्मचारी से प्रतिज्ञा को ग्रहण करें (उत्) और उन दोनों से ब्रह्मचारी विद्या (सद्यः) शीघ्र (आ, ददे) ग्रहण करें ॥८॥

भावार्थः— जब विद्यार्थी और विद्यार्थिनी पढ़ने के लिये जावें तब उनको चाहिये कि प्रतिज्ञा करें कि हम लोग धर्म्मयुक्त ब्रह्मचर्य्य से आप के अनुकूल वर्त्ताव करके विद्या का अभ्यास करेंगे और मध्य में ब्रह्मचर्य्य व्रत का न लोप करेंगे और अध्यापक लोग यह प्रतिज्ञा करें कि हम निष्कपटता से विद्यादान करेंगे ॥८॥

अब अध्यापक और उपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः ।
दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥९॥

पदार्थः—हे (देवौ) विद्वानो ! (अश्विना) सम्पूर्ण विद्याओं में व्याप्त आप दोनों जैसे (एषः) यह ब्रह्मचारी (वाम्) आप दोनों अध्यापक और उपदेशक के (साहदेव्यः) विद्वानों के साथ रहनेवालों में श्रेष्ठ (सोमकः) चन्द्रमा के सदृश शीतल-स्वभाव वाला (कुमारः) ब्रह्मचारी (दीर्घायुः) बहुत काल पर्य्यन्त जीवने वाला (अस्तु) हो वैसा प्रयत्न करो ॥९॥

भावार्थः—अध्यापक और उपदेशक ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे धार्मिक अधिक अवस्था वाले और विद्वान् पढ़ने वाले होवें ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् ।
दीर्घायुषं कृणोतन ॥१०॥

पदार्थः—हे (देवौ) विद्या के देने वाले (अश्विना) श्रेष्ठ गुणों में व्यापक (युवम्) आप दोनों (तम्) उस पढ़नेवाले (साहदेव्यम्) विद्वानों के उत्तम साथी (कुमारम्) ब्रह्मचारी को (दीर्घायुषम्) अधिक अवस्था वाला (कृणोतन) करो ॥१०॥

भावार्थः—हे विद्वानो और विदुषियो ! आप लोग पढ़ाने के लिये प्रवृत्त हो और उत्तम शिक्षा करके और विद्या के योग को सम्पादन करके सब श्रेष्ठ पुरुषों को बहुत कालपर्य्यन्त जीवनेवाले करो ॥१०॥

इस सूक्त में अग्नि राजा अध्यापक और पढ़ने वाले के कर्म्मों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पन्द्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ४ । ६ । ८ । ६ । १२ । १६ । निचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ७ । १६ । १७ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । २१ । निचृत्पङ्क्तिः । ५ । १३—१५ स्वराट्पङ्क्तिः । १० । ११ । १८ । २० भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब इक्कीस ऋचावाले सोलहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजविषय को कहते हैं ॥

आ सत्यो यातु मघवाँ ऋजीषी द्रवन्त्वस्य हरय उप नः ।
तस्मा इदन्धः सुषुमा सुदक्षमिहाभिपित्वं करते गृणानः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (इह) इस राज्य में (गृणानः) प्रशंसा करता हुआ (अभिपित्वम्) प्राप्त (सुदक्षम्) श्रेष्ठ बल को (करते) करै (तस्मै) उसके लिये (इत्) ही हम लोग (अन्धः) अन्न आदि को (सुषुम) उत्पन्न करैं जिस (अस्य) इस राजा के (हरयः) मनुष्य नहीं (द्रवन्तु) जावैं वह (ऋजीषी) सरलनीति वाला (सत्यः) श्रेष्ठों में साधु और (मघवान्) बहुत श्रेष्ठ धन से युक्त जन (नः) हम लोगों के (उप) समीप (आ) सब प्रकार (यातु) प्राप्त होवै ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो राजा हम लोगों के बल को बढ़ावै और नीति से प्रजाओं का पालन करै और जिस राजा के पुरुष भी धार्मिक और प्रजा के पालन में प्रिय हों और हम लोगों को प्रेम से संयुक्त करैं उस के लिये हम लोग ऐश्वर्य्य की वृद्धि करैं ॥१॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अव स्य शूराध्वनो नान्तेऽस्मिन्नो अद्य सवने मन्दध्यै ।
शंसात्युक्थमुशनेव वेधाश्चिकितुषे असुर्याय मन्म ॥२॥

पदार्थः—हे (शूर) शत्रुओं के नाशक ! जो (अस्मिन्) इस (सवने) क्रिया-विशेषरूप यज्ञ में (अद्य) आज (मन्दध्यै) आनन्द करने को (नः) हम लोगों के (उशनेव) सदृश कामना करता हुआ (वेधाः) बुद्धिमान् जन (उक्थम्) कहने योग्य

शास्त्र और (मन्म) विज्ञान को (शंसाति) प्रशंसित करै (असुर्याय) अविद्वानों में उत्पन्न अविद्वान् पुरुष के लिये (चिकितुषे) जनाने को हम लोगों के क्रियाविक्षेप यज्ञ में (अन्ते) समीप में प्रशंसित करैं उस (अध्वनः) मार्ग के जाने वाले को आप (न) न (अध) विरोध में (स्य) अन्त को प्राप्त कराओ ॥२॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो बुद्धिमान् सबसे विद्याओं की कामना करते हुए उपदेशक हों, उनकी निरन्तर रक्षा करो ॥२॥

अब विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कविर्न निण्यं विदथानि साधन्वृषा यत्सेकं विपिपानो अर्चात् ।
दिव इत्था जीजनत्सप्त कारूनह्ना चिच्चक्रुर्वयुना गृणन्तः ॥३॥

पदार्थः—(गृणन्तः) स्तुति और उपदेश करते हुए विद्वान् जन (अह्ना) दिन से (वयुना) प्रज्ञानों को (चक्रुः) करते हैं और (सप्त) सात (कारून्) कारीगर जनों को (चित्) भी करते हैं (इत्था) इस प्रकार से (यत्) जो (वृषा) बलिष्ठ (सेकम्) सिंचन की (विपिपानः) विशेष करके रक्षा और (विदथानि) जानने के योग्यों को (साधन्) सिद्ध करता हुआ (दिवः) प्रकाशों का (अर्चात्) सत्कार करै वह (निण्यम्) निश्चित प्रकाशों को (कविः) विद्वान् के (न) सदृश (जीजनत्) उत्पन्न करता है ॥३॥

भावार्थः- इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो जन विद्या और पुरुषार्थ को बढ़ाते हैं वे सात प्रकार के कारीगरों को करके सब कार्य्यों को सिद्ध करा कामसिद्धि कर सकैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्व१र्यद्वेदि सुदृशीकमर्कैर्महि ज्योती रुरुचुर्यद्ध वस्तोः ।
अन्धा तमांसि दुधिता विचक्षे नृभ्यश्चकार नृतमो अभिष्टौ ॥४॥

पदार्थः- हे मनुष्यो ! (यत्) जो (सुदृशीकम्) उत्तम प्रकार देखने योग्य (महि) बड़ा (ज्योतिः) प्रकाशमय (स्वः) सुख (वेदि) जाना जाता है (यत्) जो (ह) निश्चय (वस्तोः) दिन को किरणें (रुरुचुः) प्रकाशित करते हैं और जिनसे सूर्य्य (अन्धा) अन्धकाररूप (तमांसि) रात्रियों को (दुधिता) दूर किई हुई (विचक्षे) प्रकाशित करता है तिससे जो (नृतमः) अत्यन्त नायक (अभिष्टौ) चारों ओर से सङ्गत कर्म्म में (अर्कैः) विचारों से (नृभ्यः) नायक मनुष्यों के लिये सुख को (चकार) करता है वही सब लोगों के सत्कार करने योग्य होता है ॥४॥

भावार्थः—नित्य नीति और वीरता से अच्छे प्रकार बढ़े हुए राज्य-कर्म्म में राजा और प्रजाओं में सब ओर से सुख प्रतिदिन सूर्य्यप्रकाश के समान बढ़ता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ववक्ष इन्द्रो अमितमृजीष्युभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ।
अतश्चिदस्य महिमा वि रेच्यभि यो विश्वा भुवना बभूव ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो जगदीश्वर (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश राजा (अभि, बभूव) हुआ जिससे (चित्) भी (अस्य) इसका (महिमा) बड़प्पन (वि, रेचि) विशेष करके शोभित होता है और जो (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवना) भुवनों को धारण करता है (अतः) इससे (उभे) दोनों (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (महित्वा) महत्त्व से (आ, पप्रौ) व्याप्त करता है और (ऋजीषी) सरल हुआ (अमितम्) परिमाणरहित पदार्थ (ववक्ष) प्राप्त करता है वही सब से बड़ा समझना चाहिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो मनुष्य सब से जगदीश्वर का बड़प्पन अधिक जानते हैं वे इस जगत् में प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं ॥५॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वानपो रिरेच सखिभिर्निकामैः ।
अश्मानं चिद्ये बिभिदुर्वचोभिर्व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ये) जो पवन (अश्मानम्) जैसे मेघ को (चित्) वैसे (बिभिदुः) विदीर्ण करते हैं (गोमन्तम्) बहुत गौओं से युक्त (व्रजम्) गौओं के स्थान की (उशिजः) कामना करते हुओं के समान न्याय को (वि, वव्रुः) अस्वीकार करते हैं उन (निकामैः) नित्य कामना वाले (सखिभिः) मित्रों के साथ जो (शक्रः) सामर्थ्य, वाला (विद्वान्) विद्वान् (विश्वानि) संपूर्ण (नर्याणि) मनुष्यों में उत्तम (अपः) कर्मों को (वचोभिः) वचनों से (रिरेच) पृथक् करता है वही पृथिवी के भोगने के योग्य है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—सूर्य्य जैसे मेघ का वैसे दुष्टों के निवारण करनेवाले वा गोपाल लोग जैसे व्रज अर्थात् गौओं के वाड़े से गौओं को वैसे अन्याय से पृथक् करने वाले जिस पुरुष के मित्र होवें वह मनुष्य राजा होने के योग्य है ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अपो वृत्रं वंव्रिवांसं पराहन्प्रावंत्ते वज्रं पृथिवी सचेताः ।
प्रार्णांसि समुद्रियाण्यैनोः पतिर्भवञ्छवसा शूर धृष्णो ॥७॥

पदार्थः—हे (धृष्णो) दृढ़ आत्मा वाले (शूर) वीरपुरुष! (सचेताः) चित्त के सहित वर्त्तमान (शवसा) बल से (पतिः) स्वामी (भवन्) होते हुए आप जैसे सूर्य्य (वज्रम्) किरणरूपी वज्र को फटकार (अपः) जलों को प्रकट करते (वृत्रम्) मेघ को (वव्रिवांसम्) फैल प्रकट (परा, अहन्) मारता और (समुद्रियाणि) समुद्र के योग्य (अर्णांसि) जलों की (पृथिवी) पृथिवी के सदृश (प्र, आवत्) रक्षा करता है वैसे (ते) आपकी जो प्रजा की रक्षा करके शत्रुओं का नाश करे उसको आप (प्र, ऐनोः) प्रेरणा करो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग सूर्य के सदृश प्रजाओं को सुख देते हैं वे ही राजकर्म्मों में प्रेरणा करने योग्य होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अपो यदद्रिं पुरुहूत दर्दराविर्भुवत्सरमा पूर्व्यं ते ।
स नो नेता वाजमा दर्षि भूरिं गोत्रा रुजन्नङ्गिरोभिर्गृणानः ॥८॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! जो (ते) आपकी (सरमा) सरलनीति (आविः) प्रकट (भुवत्) होवे उससे आप शत्रुओं का (दर्दः) नाश करो (यत्) जो (नः) हम लोगों का (नेता) नायक प्रकट होवे उसके साथ (पूर्व्यम्) पूर्व (वाजम्) वेग का (आ, दर्षि) नाश करते हो और जो आप (अङ्गिरोभिः) पवनों से सूर्य जैसे (अपः) जलों को वैसे (गृणानः) स्तुति करते हुए (गोत्रा) मेघों के अवयवों को और (भूरिम्) बहुत (अद्रिम्) मेघ को (रुजन्) छिन्न भिन्न करते हुए वर्त्तमान हो (सः) वह आपका सेनापति होवे ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन् ! जो शुद्धनीति वाले मनुष्य प्रसिद्ध होवें उनकी रक्षा करके न्याय से प्रजाओं का पालन करो ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अच्छा कविं नृमणो गा अभिष्टौ स्वर्षाता मघवन्नाधमानम् ।
ऊतिभिस्तमिषणो द्युम्नहूतौ नि मायावानब्रह्मा दस्युरर्त्त ॥९॥

पदार्थः—हे (नृमणः) मनुष्यों में मन रखनेवाले (मघवन्) बहुत धन से युक्त ! (स्वर्षाताः) सुख के अन्त को प्राप्त आप (ऊतिभिः) रक्षण आदि से (अभिष्टौ) अभीष्ट की सिद्धि होने पर (द्युम्नहूतौ) धन और यश की प्राप्ति जिसमें उसमें (गाः) वाणियों को (नाधमानम्) ईश्वरीय भाव को पहुंचाते हुए (कविम्) विद्वान् को (अच्छ) उत्तम प्रकार प्रेरणा करें और जो (मायावान्) निकृष्ट बुद्धियुक्त (अब्रह्मा) वेद को नहीं जानने वाला (दस्युः) दुष्ट स्वभावयुक्त पुरुष (अर्त्त) नाश हो (तम्) उसको आप (नि, इवणः) निकालें ॥९॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप कपटी मूर्ख और दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यों का नाश करके और धार्मिक विद्वानों का सत्कार करके प्रशंसित हुए हम लोगों के राजा हूजिये ॥९॥

अब राजविषयसम्बन्धिप्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकामः ।
स्वे योनौ नि षदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्ध नारी ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्य जो ! (मनसा) अन्तःकरण से (दस्युघ्ना) दुष्टस्वभाव वालों को मारती (सरूपा) गुणादिकों से तुल्य रूपवती (ऋतचित्) सत्य को इकट्ठा करने वाली (नारी) मनुष्य की स्त्री (भुवत्) हो उसको आप (आ) सब प्रकार (याहि) प्राप्त हूजिये और जो (ते) आपके (सख्ये) मित्र के लिये (कुत्सः) निन्दित (निकामः) निकृष्ट कामनायुक्त होवे उसको आप (अस्तम्) प्रक्षिप्त अर्थात् दूर करो और जो आपके (स्वे) अपने (योनौ) गृह में (वि, चिकित्सत्) विशेष चिकित्सा करता है वह दोनों (ह) निश्चय से (वाम्) आप दोनों के गृह में (नि, सदतम्) रहें ॥१०॥

भावार्थः—हे पुरुष ! आप निन्दित स्त्री का त्याग कर के समानरूपवाली और दोषों के नाश करने वाली को प्राप्त होओ और दोनों मिलकर प्रीति से अपने गृह में रहो ॥१०॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यासि कुत्सेन सरथमवस्युस्तोदो वातस्य हर्योरीशानः ।
ऋज्रा वाजं न गध्यं युयूषन्कविर्यदहन्पार्याय भूषात् ॥११॥

पदार्थः—हे राजन् ! जिस से आप (अवस्युः) अपनी रक्षा की इच्छा करते हुए (तोदः) शत्रुओं के नाशकर्त्ता (वातस्य) पवन और (हर्य्योः) घोड़ों के (ईशानः) स्वामी होते हुए (सरथम्) रथ आदिकों के सहित सेना को (यासि) प्राप्त होते हो और (ऋज्रा) सरल गमनों को (गध्यम्) ग्रहण करने योग्य (वाजम्) वेग के (न)

सदृश (युयूषन्) मिलाने की इच्छा करते हुए (कविः) श्रेष्ठ बुद्धियुक्त (कुत्सेन) निकृष्ट कर्म के सहित वर्त्तमान का (अहन्) नाश करता है (यत्) जो (पार्याय) पार होने के लिये (भूपात्) शोभित करै उस को प्राप्त होते हो इस से राज्य करने को समर्थ हो सकते हो ॥११॥

भावार्थः—जो लोग निन्दित कर्म्म और निन्दित जन के सङ्ग का त्याग करके सत्य न्याय से प्रजाओं का पालन करते हुए पुरुषार्थ करें वे सब प्रकार से शोभित होवें ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कुत्साय शुष्णमशुषं नि बर्हीः प्रपित्वे अह्नः कुयवं सहस्रा ।
सद्यो दस्यून्प्र मृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्रं वृहतादभीके ॥१२॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप (अह्नः) दिन के (प्रपित्वे) उत्तम प्रकार प्राप्त होने पर (कुत्साय) निन्दित व्यवहार के लिये (कुयवम्) निकृष्ट यव जिसके उस (शुष्णम्) रसरहित (अशुषम्) दुःख को (नि, बर्हीः) दूर करो और जैसे (सूरः) सूर्य्य (चक्रम्) चक्र के सदृश वर्त्तमान ब्रह्माण्ड को (कुत्सेन) वैसे वज्र में हुए वेग से (सहस्रा) सहस्रों (दस्यून्) दुष्ट चोरों को (सद्यः) शीघ्र (प्र) (मृण) नाश कीजिये (अभीके) समीप में (प्र, वृहतात्) छेदन कीजिये ॥१२॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप वज्र आदि शस्त्रों से दुष्ट चोरों का नाश करके सूर्य्य के सदृश प्रतापी हूजिये ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं पिप्रुं मृगयं शूशुवांसमृजिश्वने वैदथिनाय रन्धीः ।
पञ्चाशत्कृष्णा नि वपः सहस्रात्कं न पुरो जरिमा वि दर्दः ॥१३॥

पदार्थः—हे राजन् ! (त्वम्) आप (वैदथिनाय) विज्ञानवाले के पुत्र के लिये (ऋजिश्वने) सरलता आदि गुणों से बढ़े हुए पुरुष के लिये (पिप्रुम्) व्यापक (शूशुवांसम्) बल से वृद्ध (मृगयम्) मृग को ढूंढनेवाले का (रन्धीः) नाश करो और (अत्कम्) व्याप्त होने वाले वायु को (जरिमा) अतिवृद्ध अवस्था के (न) सदृश (पुरः) आगे (पञ्चाशत्) पचास और (सहस्रा) सहस्रों (कृष्णा) कृष्णवर्ण वाले सैन्यजनों का (नि, वपः) विस्तार करो और दुष्ट पुरुषों का (वि, दर्दः) नाश करो ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। राजा आदि राजपुरुषों को चाहिये कि सेना में हजारों वीरों को रखके और नम्रता से वृद्धावस्था जैसे

रूप और वलों को हरती है वैसे ही शत्रुओं के वल को धीरे धीरे नष्ट कर शुद्ध नीति का प्रचार करो ॥१३॥

अब राजविषय में सेनायोग्य पुरुषों के रखने और उसके फल को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सूर॑ उपाके॑ त॒न्वं१॒ दधा॑नो॒ वि यत्ते॒ चेत्य॒मृत॑स्य॒ वर्पः॑ ।
मृ॒गो न ह॒स्ती तवि॑षीमुषा॒णः सिं॒हो न भी॒म आयु॑धानि॒ बिभ्र॑त् ॥१४॥

पदार्थः—हे राजन्! (यत्) जो (उपाके) समीप में (सूरः) सूर्य्य के सदृश (तन्वम्) तेजस्वि शरीर को (दधानः) धारण करता हुआ (ते) तुम्हारा (अमृतस्य) नित्य वस्तु के (वर्पः) रूप और (मृगः) हरिण के (न) तुल्य वेगवान् वा (हस्ती) हाथी के तुल्य बलवान् वा (सिंहः) सिंह के (न) तुल्य (भीमः) भयङ्कर (आयुधानि) तलवार भुशुण्डी शतघ्न्यादि नामों से प्रसिद्ध आयुधों को (बिभ्रत्) धारण और शत्रुओं की (तविषीम्) बलयुक्त सेना का (उषाणः) दाह करता हुआ (वि, चेति) जनाया जाता है उसका आप सदा सत्कार करके रक्खो ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे राजन्! जो लोग दीर्घ ब्रह्मचर्य से सूर्य्य के समान तेजस्वी रूपवान् और वेगवान् बलिष्ठ सिंह के सदृश पराक्रमी धनुर्वेद के जानने वाले जन हों उनकी सेना से शत्रुओं को जीतकर सब स्थानों में उत्तम कीर्ति से विदित हूजिये ॥१४॥

अब राजविषय में सेना और अमात्य आदिकों की योग्यता के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रं॒ कामा॑ वसू॒यन्तो॑ अग्म॒न्त्स्व॑र्मीळ्हे॒ न सव॑ने चका॒नाः ।
श्र॒व॒स्यवः॑ शशमा॒नास॑ उ॒क्थैरोको॒ न र॒ण्वा सु॒दृशी॑व पु॒ष्टिः ॥१५॥

पदार्थः—हे राजन् जो (वसूयन्तः) अपने को धनों की इच्छा करते हुए (कामाः) कामना करनेवाले (सवने) प्रेरणा करने में (चकानाः) प्रकाशमान (श्रवस्यवः) अपने को अन्न की इच्छा करते हुए (शशमानासः) शत्रुओं के बल का उल्लङ्घन करनेवाले (उक्थैः) प्रशंसित गुणों से (ओकः) गृह के (न) सदृश (स्वर्मीह्ळे) जैसे सुख से युक्त संग्राम में (न) वैसे जो (सुदृशीव) उत्तम प्रकार देखने के योग्य सी (रण्वा) सुन्दर (पुष्टिः) पुष्टि उसको (अग्मन्) प्राप्त होते हैं उसको प्राप्त होकर (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले को और उन पूर्वोक्त जनों को आप सेना और राज्य के कर्मचारी करिये ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो धन की कामना वाले होवें वे शरीर और आत्मा के बल को बढ़ा के युद्ध की विद्या और सामग्री पूर्ण करें ।।१५।।

अब राजा और प्रजाजनों की एक सम्मति होने के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

तमिद्व इन्द्रं सुहवं हुवेम यस्ता चकार नर्य्या पुरूणि ।
यो मावते जरित्रे गध्यं चिन्मक्षू वाजं भरति स्पार्हराधाः ।।१६।।

पदार्थः—हे प्रजाजनो ! (यः) जो (स्पार्हराधाः) इच्छा करने योग्य धनयुक्त पुरुष (मावते) मेरे सदृश (जरित्रे) विद्या की स्तुति करने वाले के लिये (गध्यम्) ग्रहण करने योग्य (वाजम्) अन्न आदि ऐश्वर्य को (मक्षू) शीघ्र (भरति) धारण करता है (यः) (चित्) और जो (ता) उन (पुरूणि) बहुत (नर्य्या) मनुष्यों के लिये हितकारक सैन्य कामों को (चकार) करै (तम्) उस (सुहवम्) उत्तम प्रकार प्रशंसित (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य वाले को (इत्) ही (वः) आप लोगों के लिये (हुवेम) हवन करैं ।।१६।।

भावार्थः—जो राजा और प्रजाजन एक सम्मति कर के उत्तम गुण कर्म्म और स्वभाव से युक्त राजा का स्वीकार करें तो पूर्ण सुख प्राप्त हो ।।१६।।

अब युद्ध की प्रवृत्ति में विजयता विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

तिग्मा यदन्तरशनिः पताति कस्मिञ्चिच्छूर मुहुके जनानाम् ।
घोरा यदर्य्य समृतिर्भवात्यध स्मा नस्तन्वो बोधि गोपाः ।।१७।।

पदार्थः—हे (शूर) वीर ! (अर्य्य) प्रशंसित (यत्) जो (घोरा) भयंकर (समृतिः) युद्ध (भवाति) होवै (अध) इसके अनन्तर (यत्) जो (तिग्मा) तीव्र (अशनिः) बिजुली (जनानाम्) मनुष्यों के (कस्मिश्चित्) किसी (मुहुके) मोह के प्राप्त करानेवाले बारंबार करने योग्य संग्राम के (अन्तः) बीच (पताति) गिरै उसमें (स्मा) ही (गोपाः) रक्षा करनेवाले हुए आप (नः) हम लोगों के (तन्वः) शरीरों को (बोधि) जानिये ।।१७।।

भावार्थः—हे शूरवीरो ! जब बहुत शस्त्रों के संपातयुक्त युद्ध प्रवृत्त होवै तब अपने और अपने सम्बन्धियों के शरीरों की रक्षा करने और शत्रुओं के नाश करने से विजयी हूजिये ।।१७।।

अब कैसे को राजा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

भुवोऽविता वामदेवस्य धीनां भुवः सखावृको वाजसातौ।
त्वामनु प्रमतिमा जगन्मोरुशंसो जरित्रे विश्वध स्याः॥१८॥

पदार्थः—हे (विश्वध) संसार के धारण करने वाले राजन्! आप (वाजसातौ) संग्राम में (वामदेवस्य) उत्तमरूप से युक्त विद्वान् और (धीनाम्) बुद्धियों के (अविता) रक्षा करने वाले (भुवः) हूजिये (अवृकः) चोरीरहित (सखा) मित्र (भुवः) हूजिये और (उरुशंसः) बहुत प्रशंसायुक्त होते हुए (जरित्रे) स्तुति करने योग्य के लिये सुखदायक (स्याः) हूजिये जिससे (त्वाम्) आप के (अनु) पश्चात् (प्रमतिम्) उत्तम बुद्धि को (आ, जगन्म) प्राप्त होवें॥१८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो सब का स्वामी और वीरपुरुष युद्ध में चतुर उपदेश देनेवाले और बुद्धिमानों का रक्षक होवै, उसी को राजा करो॥१८॥

अब राजजन के लिये करने योग्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

एभिर्नृभिरिन्द्र त्वायुभिष्ट्वा मघवद्भिर्मघवन्विश्व आजौ।
द्यावो न द्युम्नैरभि सन्तो अर्यः क्षपो मदेम शरदश्च पूर्वीः॥१९॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुत ऐश्वर्य्य से युक्त (इन्द्र) शत्रुओं के नाशकारक राजन्! हम लोग (एभिः) इन पूर्वोक्त (त्वायुभिः) आप की कामना करते हुए (मघवद्भिः) बहुत श्रेष्ठ धनों से युक्त (नृभिः) नायक मनुष्यों के साथ (विश्वे) सम्पूर्ण (आजौ) संग्राम में (द्यावः) किरणों के (न) तुल्य और (द्युम्नैः) यशरूप धन से युक्त सत्पुरुषों के साथ (त्वा) आप के आश्रय का (सन्तः) वर्त्ताव करते हुए (अर्यः) स्वामी के तुल्य (पूर्वीः) पुरानी (क्षपः) रात्रियों और (शरदः) शरद् ऋतुओं भर (च) भी (अभि, मदेम) सब ओर से आनन्द करें॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो लोग धार्मिक शरीर और आत्मा के बल से युक्त सत्य की कामना करते हुए अपने राज्य में हुए धनयुक्त पुरुषों के साथ दृढ़ मेल कर और शत्रुओं को जीत के राज्य की प्रशंसा करते हैं वे सूर्य्य के प्रकाश के सदृश कीर्तियुक्त और धनी होकर सब काल में आनन्दित होते हैं॥१९॥

फिर मन्त्री आदि कर्मचारियों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

एवेदिन्द्राय वृषभाय वृष्णे ब्रह्माकर्म भृगवो न रथम्।
नू चिद्यथा नः सख्या वियोषदसन्न उग्रोऽविता तनूपाः॥२०॥

पदार्थः—(यथा) जैसे राजा (नः) हमारे (सख्या) मित्र के साथ(वियोषत्) धारण करे (उग्रः) तेजस्वी (तनूपाः) शरीर का पालन करने वाला हुआ (नः) हम लोगों का (नु) शीघ्र (अविता) रक्षक (असत्) होवै (इत्, एव) उसी (वृषभाय) बैल के सदृश बलिष्ठ (वृष्णे) वीर्यवान् (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले के लिये (भृगवः) प्रकाशमान (रथम्) वाहन के (न) सदृश (ब्रह्म, चित्) बड़े भी धन को हम लोग (अकर्म) सिद्ध करें ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे शिल्पीजन विद्या के साथ पदार्थों के संयोग से विमान आदि की रचना करके धनवान् होकर मित्रों का सत्कार करते हैं वैसे ही राजा से सत्कार किये गये हम लोग राजा से ऐश्वर्य की वृद्धि करके सब राजा आदिकों का सत्कार करें ॥२०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१॥

पदार्थः—हे (हरिवः) उत्तम घोड़ों से युक्त (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् राजन् ! आप (गृणानः) प्रशंसा करते हुए (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये (नद्यः) नदियों के (न) सदृश (इषम्) अन्न आदि ऐश्वर्य की (नु) शीघ्र (पीपेः) वृद्धि करावें और जिन सब लोगों से (नु) शीघ्र (स्तुतः) आप प्रशंसित (अकारि) किये गये उन जनों से (ते) आप के लिये (नव्यम्) नवीन (ब्रह्म) सङ्ख्यारहित धन को (सदासाः) सेवकों के सहित वर्त्तमान हम लोग (धिया) बुद्धि वा कर्म से (रथ्यः) वाहनों के निमित्त मार्ग के सदृश सिद्ध कर चुकने वाले (स्याम) हों ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य परीक्षा करने वाला सब जगह प्रशंसित और नदी के सदृश प्रजाओं को तृप्तिकर्त्ता अश्व-समान सुखपूर्वक दूसरे स्थान को पहुंचानेवाला होवै उसको सर्वाधीश कर के नौकरों के सहित हम उसकी आज्ञा के अनुकूल वर्त्ताव करके सब लोग निरन्तर सुखी होवें ॥२१॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा मन्त्री और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्वसूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सोलहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ पङ्क्तिः । ७, ६ भुरिक् पङ्क्तिः । १४, १६ स्वराट्पङ्क्तिः । १५ याजुषी पङ्क्तिः । २१ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २, १२, १३, १७—१६ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ५, ६, ८, १०, ११ त्रिष्टुप् । ४, २० विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब इक्कीस ऋचावाले सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजगुणों का वर्णन करते हैं ॥

त्वं म॒हाँ इ॑न्द्र॒ तुभ्यं॑ ह॒ क्षा अनु॑ क्ष॒त्रं मं॒हना॑ मन्यत॒ द्यौः ।
त्वं वृ॒त्रं शव॑सा जघ॒न्वान्त्सृ॒जः सिन्धूँ॒रहि॑ना जग्रसा॒नान् ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् ! जो (त्वम्) आप (महान्) बड़े (क्षाः) भूमियों और (क्षत्रम्) राज्य को जैसे (मंहना) बड़ा (द्यौः) सूर्य्य वैसे (अनु, मन्यत) मानते हो (ह) उन्हीं (तुभ्यम्) आपके लिये हम लोग भी मानते और जैसे (वृत्रम्) मेघ के सदृश वर्त्तमान शत्रु को (जघन्वान्) नाश करने वाला (अहिना) मेघ के सदृश बढ़े हुए धन से (सिन्धून्) नदियों को (सृजः) उत्पन्न करावें (त्वम्) आप (शवसा) बल से (जग्रसानान्) शत्रुसेना के अग्रणियों के समान उत्तम जनों को उत्पन्न कराओ ॥१॥

भावार्थः—हे राजसम्बन्धी जनो ! जैसे बड़ा सूर्य्य वृष्टि से नदियों को पूर्ण करता है वैसे ही धन और ऐश्वर्य्य से राज्य को शोभित करो । राजा की आज्ञा के अनुकूल वर्त्ताव करके बड़े राज्य को सम्पादन करो ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तव॑ त्वि॒षो जनि॑मन्रेजत॒ द्यौ रेज॒द्भूमि॑र्भि॒यसा॒ स्वस्य॑ म॒न्योः ।
ऋ॒घा॒यन्त॑ सु॒भ्व१॒ः पर्व॑तास॒ आर्द॒न्धन्वा॑नि स॒रय॑न्त॒ आपः॑ ॥२॥

पदार्थः—हे (जनिमन्) जन्मवाले राजन् ! जिस जगदीश्वर के (त्विषः) प्रताप से (भियसा) भय से (द्यौः) अन्तरिक्ष (रेजत) कम्पित होता और (भूमिः) पृथ्वी (रेजत) कम्पित होती वैसे (तव) आपके (स्वस्य) निज (मन्योः) क्रोध से शत्रु लोग कांपें और जैसे (सुभ्वः) उत्तम प्रकार वृष्टि जिन से हो ऐसे (पर्वतासः) पर्वतों के सदृश ऊंचे मेघ (ऋघायन्त) बाधित होते (आर्दन्) और नाश करते हैं (आपः) जल और (धन्वानि) स्थल अर्थात् शुष्क भूमियां (सरयन्ते) गमन कराती हैं वैसे ही आप की सेना और मन्त्रीजन होवें ॥२॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप परमेश्वर के सदृश पक्षपात का त्याग करके मनुष्यों में पिता के सदृश वर्त्ताव करो और जैसे जगदीश्वर के भय

से सम्पूर्ण जगत् व्यवस्थित रहता है वैसे ही आप के दण्ड के भय से सब जगत् भोग के लिये कल्पित हो और सूर्य जैसे मेघ की बाधा करता और जलवृष्टि से जगत् को आनन्दित करता है वैसे ही शत्रुओं को बाधित करके सज्जनों को आनन्द दीजिये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भिनद्गिरिं शवसा वज्रमिष्णन्नाविष्कृण्वानः सहसान ओजः ।
वधीद्वृत्रं वज्रेण मन्दसानः सरन्नापो जवसा हतवृष्णीः ॥३॥

पदार्थः— हे राजन् ! जैसे सूर्य (गिरिम्) पर्वत के समान मेघ को (भिनत्) विदीर्ण कर और (वज्रेण) किरण से (वृत्रम्) मेघ का (वधीत्) नाश करता है उस नाश हुए मेघ से (हतवृष्णीः) नष्ट किया गया मेघ जिनका वह (आपः) जल (जवसा) वेग से (सरन्) जाते हैं वैसे ही (मन्दसानः) आनन्द वा (सहसानः) सहन करते (ओजः) और पराक्रम को (आविष्कृण्वानः) प्रकट करते वा (वज्रम्) किरण के समान शस्त्र को (इष्णन्) प्राप्त होते हुए (शवसा) बल से शत्रुओं की सेना का नाश करो और सेना से शत्रुओं का नाश करके रुधिरों को बहाओ ॥३॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग सूर्य्य के सदृश न्याय से प्रकाशवल से प्रसिद्ध दुष्टों के नाशकारक और श्रेष्ठ पुरुषों के लिये आनन्ददायक होते हैं वे ही प्रकट यश वाले होकर इस संसार में और परलोक अर्थात् दूसरे जन्म में अखण्ड आनन्द वाले होते हैं ॥३॥

अब राजसन्तानविचार को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सुवीरस्ते जनिता मन्यत द्यौरिन्द्रस्य कर्त्ता स्वपस्तमो भूत् ।
य ईं जजान स्वर्य्यं सुवज्रमनपच्युतं सदसो न भूम ॥४॥

पदार्थः—हे राजन् ! (ते, इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् आपका (द्यौः) बिजुली के सदृश (सुवीरः) श्रेष्ठवीर (जनिता) उत्पन्न करने वाला (मन्यत) माना जाय और वह (स्वपस्तमः) अतीव उत्तम कर्मों से पूरित (कर्त्ता) करने वाला (भूत्) हो वा (यः) जो (ईम्) महान् (स्वर्य्यम्) अत्यन्त सुख के लिये हित और (अनपच्युतम्) नाश से रहित (सुवज्रम्) उत्तम आयुधों वाले पुरुष को (जजान) उत्पन्न करचुका उसको (सदसः) सभासदों के (न) सदृश हम लोग प्राप्त (भूम) होवैं । ४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—हे राजन् ! जैसे श्रेष्ठ लोग अति उत्तम राजा को प्राप्त होकर और न्याय का प्रचार करके

यशवाले होते हैं, इसी प्रकार यदि आप धर्मयुक्त ब्रह्मचर्य्य से पुत्रेष्टिकर्म्म की रीति से अपनी प्रिया में पुत्र उत्पन्न करें तो वह भी प्रसिद्ध यश वाला होवे ॥४॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

य एक इच्च्यावर्यति प्र भूमा राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः।
सत्यमेनमनु विश्वे मदन्ति रातिं देवस्य गृणतो मघोनः ॥५॥

पदार्थः—(यः) जो (पुरुहूतः) बहुतों से बुलाया और प्रशंसा किया गया (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् (कृष्टीनाम्) क्षेत्र बोनेवाले आदि प्रजास्थ मनुष्यों का (राजा) उत्तम गुणों से प्रकाशमान राजा (एकः) एक (इत्) ही शत्रुओं को (प्र,-च्यावयति) कम्पाता है उसको (मघोनः) बहुत धन से युक्त श्रेष्ठ पुरुषों के समूह के मध्य में (गृणतः) सम्पूर्ण विद्या की स्तुति करते हुए (देवस्य) दिव्यगुणी विद्वानों के समूह में वर्त्तमान (सत्यम्) श्रेष्ठों में साधु (रातिम्) दाता जन को (विश्वे) सम्पूर्ण विद्वान् सभासद् (अनु, मदन्ति) अनुमति देते हैं उस (एनम्) इसको राजा करके हम लोग सुखी (भूम) होवें ॥५॥

भावार्थः—वही राजा हो सकता है जो एक भी बहुत शत्रुओं को जीत सकता है और वही विजयी होता है जो श्रेष्ठ पुरुषों के संग और उपदेश को प्राप्त होकर धर्मयुक्त न्याय निरन्तर करता है ॥५॥

फिर भूपतिविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सत्रा सोमा अभवन्नस्य विश्वे सत्रा मदासो बृहतो मदिष्ठाः।
सत्राभवो वसुपतिर्वसूनां दत्रे विश्वा अधिथा इन्द्र कृष्टीः ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले! जो आप (वसूनाम्) धनाढ्य पुरुषों के बीच (वसुपतिः) धन के स्वामी (सत्रा) सत्य (अभवः) होवें (दत्रे) देने योग्य सुवर्ण आदि धन के होने पर (विश्वाः) सम्पूर्ण (कृष्टीः) मनुष्यादि प्रजाओं को (अधिथाः) धारण करो तो (अस्य) इस राज्य के मध्य में (सत्रा) सत्य (विश्वे) सब (सोमाः) शान्तिगुणसम्पन्न सभ्यजन (सत्रा) सत्य सब (मदासः) आनन्द और (बृहतः) बड़े (मदिष्ठाः) अतीव आनन्द देनेवाले (अभवन्) होवें ॥६॥

भावार्थः—जो राजा जैसे अपने निमित्त प्रिय की इच्छा करे वैसे ही प्रजाओं के लिये सुख देवे उसी के उत्तम सभासद और अत्यन्त ऐश्वर्य बढ़े ॥६॥

अब राजा के प्रति प्रजापालन-प्रकार को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वमध॑ प्रथ॒मं जाय॑मा॒नोऽमे॒ विश्वा॑ अधिथा इन्द्र कृ॒ष्टीः ।
त्वं प्रति॑ प्र॒वत॑ आ॒शया॑न॒महिं॒ वज्रे॑ण मघव॒न्वि वृ॑श्चः ॥७॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुत धन से युक्त (इन्द्र) दुष्ट पुरुषों के नाश करनेहारे राजन् (अमे) गृह में (जायमानः) उत्पन्न होने वाले (त्वम्) आप (विश्वाः) सम्पूर्ण (कृष्टीः) मनुष्य आदि प्रजाओं को (प्रथमम्) पहिले (अधिथाः) धारण करो (अध) इस के अनन्तर (त्वम्) आप जैसे (प्रवतः) नीचले स्थलों के (प्रति) प्रति (आशयानम्) सब प्रकार सोते हुए के सदृश वर्त्तमान (अहिम्) मेघ को (वज्रेण) किरणों से सूर्य्य नाश करता है वैसे ही दुष्ट पुरुषों का आप (वि, वृश्चः) नाश करो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो पुरुष प्रथम से ब्रह्मचर्य्य, विद्या, विनय और सुशीलता से सब में उत्तम होता है और जो राज्यपालन और युद्ध करने को जानता है उसी को राजा करके सुखी होओ ॥७॥

अब प्रजाजनों से राजा के स्वीकार करने को
अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स॒त्रा॒हणं॒ दाधृ॑षिं॒ तुम्र॒मिन्द्रं॑ म॒हाम॑पा॒रं वृ॑ष॒भं सु॒वज्र॑म् ।
हन्ता॒ यो वृ॒त्रं सनि॑तो॒त वाजं॒ दाता॑ म॒घानि॑ म॒घवा॑ सु॒राधाः॑ ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (वृत्रम्) मेघ को जैसे सूर्य वैसे शत्रुओं का (हन्ता) नाश करने वाला पुरुष (वाजम्) अन्न आदि ऐश्वर्य्य का (सनिता) विभाग करने वाला (उत) भी (मघवा) बहुत धन से युक्त (सुराधाः) धर्म युक्त व्यवहार से धनसंचयकर्त्ता (मघानि) और धनों का (दाता) दाता हो उस (सत्राहणम्) सत्य से असत्य के नाश करने वाले (दाधृषिम्) निरन्तर प्रगल्भ (महाम्) महान् (अपारम्) अपारविद्यावान् गम्भीर आशययुक्त (तुम्रम्) प्रेरणा देने वाले (वृषभम्) बलिष्ठ (सुवज्रम्) सुन्दर शस्त्र और अस्त्रों के प्रयोगकर्त्ता (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त राजा का स्वीकार करो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पूर्णविद्यायुक्त सत्यवादी प्रगल्भ बलिष्ठ शस्त्र और अस्त्रों का चलाने वाला और अभयदाता पुरुष हो उसी को राज्य के लिये नियत करो ॥८॥

अब राजा को अमात्य आदि भृत्य कैसे रखने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अयं वृतश्चातयते समीचीर्य आजिषु मघवा शृण्व एकः ।
अयं वाजं भरति यं सनोत्यस्य प्रियासः सख्ये स्याम ॥९॥

पदार्थः—हे राजन् ! (यः) जो (अयम्) यह राजा (वृतः) स्वीकार किया हुआ बोधरहितों को (चातयते) विज्ञान कराता है और जो (मघवा) बहुत धनरूप ऐश्वर्य से युक्त (एकः) अकेला अर्थात् सहायरहित (आजिषु) संग्रामों में (समीचीः) शिक्षाओं को प्राप्त होने वाली सेनाओं का (भरति) पोषण करता है और (अयम्) यह (वाजम्) विज्ञान को पुष्ट करता है (यम्) जिस को यथार्थवक्ता पुरुष (सनोति) सम्पन्न करता है जिसको मैं (शृण्वे) सुनता हूं (अस्य) इस के (सख्ये) मित्रकर्म्म में हम लोग (प्रियासः) प्रिय (स्याम) होवैं ॥९॥

भावार्थः–हे राजन् ! जो सेनाओं को शिक्षा दिलाता है विशेष कर के युद्ध के समय में उचित बात कहने से योद्धाजनों का उत्साह बढ़ाता है और जो जन सन्मुख आप के दोषों को कहते हैं उनकी शिक्षा में स्थित होकर उन्हीं जनों में मित्रता करके सम्पूर्ण कार्यों को सिद्ध करो ॥९॥

अब राजा को राज्य करने का प्रकार अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अयं शृण्वे अध जयन्नुत घ्नन्नयमुत प्र कृणुते युधा गाः ।
यदा सत्यं कृणुते मन्युमिन्द्रो विश्वं दृळ्हं भयत एजदस्मात् ॥१०॥

पदार्थः—हे राजन् ! उत्तम प्रकार परीक्षा करके स्वीकार किया गया (अयम्) यह जन शत्रुओं का (घ्नन्) नाश करता और (उत) भी (युधा) युद्ध से (जयन्) शत्रुओं को पराजित करता हुआ (गाः) पृथिवी के राज्यों को (प्र, कृणुते) उत्तम प्रकार करता है (उत) और (शृण्वे) जिसको मैं राज्य करने को सुनता हूँ (यदा) जब (अयम्) यह (सत्यम्) सत्य को (कृणुते) करता है तब (विश्वम्) सब राज्य (दृळ्हम्) उत्तम प्रकार स्थिर होता है जब यह (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्यवाला राजा (मन्युम्) क्रोध को करता है (अध) इस के अनन्तर तब (अस्मात्) इस राजा से सम्पूर्ण उत्तम प्रकार स्थिर भी राज्य (एजत्) कंपता हुआ (भयते) डरता है ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन् ! जिस उत्तम कीर्ति को आप सुनें और जो लोग राज्यपालन और युद्ध में चतुर हों उनका स्वीकार करके सत्याचार से वर्ताव कर शान्ति से सज्जनों का अच्छे प्रकार पालन करके दुष्टजनों को निरन्तर

दण्ड देवैं तभी सब जन धर्म के मार्ग का त्याग करके इधर उधर न चलित होवैं ॥१०॥

अब राजा कैसे विजय और आनन्द को प्राप्त होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

समिन्द्रो गा अंजयत्सं हिरण्या समश्विया मघवा यो ह पूर्वीः।
एभिर्नृभिर्नृतमो अस्य शाकै रायो विभक्ता सम्भरश्च वस्वः ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (मघवा) श्रेष्ठधनयुक्त (इन्द्रः) शत्रुओं का नाशकर्त्ता (एभिः) इन (नृभिः) नायकों के साथ (नृतमः) अतिशय नायक हुआ (गाः) भूमियों को (सम्) उत्तम प्रकार (अजयत्) जीतै (अश्विया) घोड़े आदि से युक्त (हिरण्या) सुवर्ण आदि धनों को (सम्) उत्तम प्रकार जीतै जो (ह) निश्चय से (पूर्वीः) प्राचीन प्रजाओं को (सम्) उत्तम प्रकार जीतै और जो (अस्य) इस सेना की (शाकैः) शक्तियों से (रायः) धन का (विभक्ता) विभाग करने वाला (वस्वः) धनों को (च) और (सम्भरः) इकट्ठा करने वाला होवै वही राज्य करने को योग्य होवै ॥११॥

भावार्थः—जो उत्तम सहाय और उत्तम धन सामग्रीयुक्त तथा शत्रुओं का जीतने और यथायोग्यों के लिये विभाग करके देनेवाला विद्वान् राजा होवै वही विजय को प्राप्त होकर आनन्द करै ॥११॥

अब प्रजाजनों में किस को राज्य की योग्यता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कियंत्स्विदिन्द्रो अध्यैति मातुः कियंत्पितुर्जनितुर्यो जजान।
यो अस्य शुष्मं मुहुकैरियर्ति वातो न जूतः स्तनयंद्भिरभ्रैः ॥१२॥

पदार्थः—(यः) जो (मुहुकैः) बारंबार कार्य्य करने वालों से (अस्य) इसके (शुष्मम्) बल को (स्तनयद्भिः) शब्द करते हुए (अभ्रैः) मेघों के साथ (जूतः) वेग को प्राप्त (वातः) वायु के (न) तुल्य विजय को (इयर्त्ति) प्राप्त होता है और (यः, स्वित्) जो कोई (इन्द्रः) तेजस्वी (मातुः) माता का (कियत्) कितना और (जनितुः) उत्पन्न करने वाले (पितुः) पिता का (कियत्) कितना उपकार (अधि, एति) स्मरण करता है वही राजा (जजान) होता है ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो मनुष्य माता और पिता का कितना उपकार है ऐसा जानकर प्रत्युपकार करते हैं वे मेघ और वायु

से प्रेरित बिजुली के सदृश बल को प्राप्त होकर वारंवार शत्रुओं को जीत कर प्रकट यश वाले होते हैं ॥१२॥

अब राजा को उत्तम और अनुत्तम का दण्ड और सत्कार करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोतीयर्त्ति रेणुं मघवा समोहम् ।
विभञ्जनुरशनिमाँ इव द्यौरुत स्तोतारं मघवा वसौ धात् ॥१३॥

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे (मघवा) अत्यन्त धनयुक्त पुरुष (स्तोतारम्) यज्ञ करने वाले को (वसौ) धन में (धात्) धारण करता है वैसे जो (द्यौः) प्रकाश के सदृश (उत) और भी (अशनिमानिव) बहुत शस्त्र और अस्त्र वाले के सदृश (विभञ्जनुः) शत्रुओं का नाश करता हुआ (मघवा) श्रेष्ठधन से युक्त पुरुष (क्षियन्तम्) निवास करते और (अक्षियन्तम्) नहीं निवास करते हुए को (कृणोति) स्वीकार करता है (समोहम्) उत्तम प्रकार से छिपे हुए (रेणुम्) अपराध को (इयर्त्ति) प्राप्त होता है उस को (त्वम्) आप शिक्षा दीजिये ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! आप जो अपराध करैं उनको दण्ड के विना मत छोड़ो। और जैसे यजमान विद्वान् जन को यज्ञ में स्वीकार करके धन देके सुख देता है वैसे ही श्रेष्ठ सभासदों का स्वीकार करके ऐश्वर्य दे सबको आनन्द दीजिये ॥१३॥

अब राजा को वेगवान् यन्त्रों को बनाय दुष्ट संशोधन करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अयं चक्रमिषणत्सूर्यस्य न्येतशं रीरमत्ससृमाणम् ।
आ कृष्ण ईं जुहुराणो जिघर्त्ति त्वचो बुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥१४॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप जैसे (अयम्) यह (सूर्यस्य) सूर्य के मण्डल के सदृश (चक्रम्) चक्र को (इषणत्) प्राप्त होता है (ससृमाणम्) निरन्तर प्राप्त होते हुए (एतशम्) घोड़े को (नि, रीरमत्) रमाता है (कृष्णः) खींचने वाला (जुहुराणः) कुटिल गमन वाले के सदृश (ईम्) जल को (आ, जिघर्त्ति) नष्ट करता है (त्वचः) वाणी के सम्बन्ध में (रजसः) लोकसमूह और (अस्य) इस के (बुध्ने) अन्तरिक्ष और (योनौ) गृह में रमता है ऐसा जानकर इस का सत्कार करके दुष्ट पुरुष को ताड़न दीजिये ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य कलाकौशल से चक्रयन्त्रों का निर्माण कर के वेगयुक्त वाहनों को प्राप्त होकर रमण करते हैं

वे ऐश्वर्य को प्राप्त होकर और कुटिलता को त्याग कर के सुख को प्राप्त होते हैं ॥१४॥

अब राजदण्ड की प्रकर्षता को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

असिंक्न्यां यजमानो न होता ॥१५॥

पदार्थः—जो राजा (यजमानः) मेल करने वाले के (न) सदृश (असिक्न्याम्) रात्रि में भयरहित (होता) सुख का देनेवाला होवै वही निरन्तर आनन्द करै ॥१५॥

भावार्थः—जिस राजा के प्रजाजनों में प्राणियों वा शयन किये हुओं में दण्ड जागता है वह अभय का देने वाला पुरुष किसी से भी भय को नहीं प्राप्त होता है ॥१५॥

अब प्रजाजनों को कैसे सुख और ऐश्वर्य हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ।
जनीयन्तो जनिदामक्षितोतिमा च्यावयामोऽवते न कोशम् ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (गव्यन्तः) अपनी गौओं की इच्छा (अश्वायन्तः) अपने घोड़ों की इच्छा (वाजयन्तः) विज्ञान वा अन्न की इच्छा (जनीयन्तः) तथा स्त्री की इच्छा करते हुए (विप्राः) बुद्धिमान् हम लोग (सख्याय) मित्र होने के वा मित्रकर्म के लिये (वृषणम्) सुख के वर्षाने वाले पिता (जनिदाम्) जन्म देने वाली माता (अक्षितोतिम्) वा जिसकी रक्षा क्षीण नहीं होती उस नित्यरक्षक पुरुष को और (अवते) कूप में (कोशम्) मेघ के (न) सदृश (इन्द्रम्) वा सूर्य्य के सदृश प्रकाशमान राजा को (आ, च्यावयामः) प्राप्त करावैं वैसे इस सब को आप लोग भी औरों को प्राप्त कराओ ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा वाचकलु०—जिन को सुख और ऐश्वर्य्य की इच्छा होवै वे मेघ के सदृश धन वर्षाने और नित्य रक्षा करने वाले राजा को मित्रभाव के लिये ग्रहण करैं ॥१६॥

अब ईश्वरोपासना विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्राता नो बोधि ददृशान आपिरभिख्याता मर्डिता सोम्यानाम् ।
सखा पिता पितृतमः पितृणां कर्तेमु लोकमुशते वयोधाः ॥१७॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो (नः) हम लोगों का वा हम लोगों को (त्राता) रक्षा करने (ददृशानः) उत्तम प्रकार देखने (आपिः) व्याप्त रहने (अभिख्याता)

सन्मुख अन्तर्यामीपने से उपदेश देने (मर्डिता) सुख देने और (सखा) मित्र (पिता) संसार का उत्पन्न करने वाला (सोम्यानाम्) चन्द्रमा के तुल्य शान्ति आदि गुणों से युक्त (पितृणाम्) उत्पन्न वा पालन करने वालों का (पितृतमः) अत्यन्त पालन करने वाला (कर्त्ता) कर्त्तापुरुष (लोकम्) लोक की (उशते) कामना करते हुए के लिये (ईम्) सब को (उ) ही (वयोधाः) जीवन वा सुन्दर वस्तु का धारण करने वाला जगदीश्वर है, ऐसा उसको (बोधि) जानो ॥१७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर मित्र के तुल्य सब का सुखकर्त्ता, सत्य का उपदेश देने वाला, उत्पन्न करने वालों का उत्पन्नकर्त्ता, पालन करने वालों का पालनकर्त्ता, सब कर्म्मों का देखने वाला, न्यायाधीश, अन्तर्यामी अभिव्याप्त है उसी को जानकर उपासना करो ॥१७॥

अब राज्यवर्द्धन प्रकार को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सखीयतामविता बोधि सखा गृणान इन्द्र स्तुवते वयो धाः ।
वयं ह्या ते चकृमा सबाधं आभिः शमीभिर्महयन्त इन्द्र ॥१८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले (सखीयताम्) मित्र के सदृश आचरण करते हुए पुरुषों के (सखा) मित्र (अविता) रक्षा करने वाले (गृणानः) स्तुति करते हुए (स्तुवते) प्रशंसा करने वाले के लिये (वयः) सुन्दर धन को (धाः) धारण कीजिये । और हे (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश विद्या और विनय से प्रकाशित जो (वयम्) हम लोग (हि) ही (ते) आप के लिये (आभिः) इन (शमीभिः) क्रियाओं से (महयन्तः) बड़े के सदृश आचरण करते हुए (वयः) सुन्दर धन को (चकृमा) करें उनको आप (सबाधः) विलोडन के सहित वर्त्तमान होते हुए (आ, बोधि) अच्छे प्रकार जानिये ॥१८॥

भावार्थः—हे राजन् ! यदि राज्य बढ़वाने की आप इच्छा करें तो पक्षपात का त्याग करके सब के साथ मित्र के सदृश वर्त्ताव करिये और श्रेष्ठ पुरुषों की रक्षा करते और दुष्ट पुरुषों को दण्ड देते हुए अपने तेज की प्रसिद्धि करिये ॥१८॥

फिर कैसे जनों को राजा राज्यकर्म्मों में रक्खे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्तुत इन्द्रो मघवा यद्ध वृत्रा भूरीण्येको अप्रतीनि हन्ति ।
अस्य प्रियो जरिता यस्य शर्मन्नकिर्देवा वारयन्ते न मर्त्ताः ॥१९॥

पदार्थः—हे राजन् ! (यस्य) जिस के (शर्मन्) गृह में (प्रियः) मनोहर

(जरिता) स्तुति करने वाला (स्तुतः) प्रशंसित (मघवा) बहुत ऐश्वर्य्य से युक्त (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश प्रतापी राजा जैसे सूर्य्य (अप्रतीनि) नहीं प्रतीत (भूरीणि) बहुत (वृत्रा) मेघों के अवयवों को (एकः) सहायरहित अर्थात् अकेला भी (हन्ति) नाश करता है वैसे ही (यत्) जो असहाय (अस्य) इस की सेना में (ह) निश्चय से विद्वान् बहुतों का नाश करने वाला वर्त्ताव करै उस को (देवाः) विद्वान् लोग (नकिः) नहीं (वारयन्ते) रोकते हैं और (न) न (मर्त्ताः) अविद्वान् लोग ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०–जो राजा सत्य के उपदेशक अपने प्रियकारक विद्वानों की राजकृत्य में रक्षा करै, उसका पराजय करने को कोई भी नहीं समर्थ होवै ॥१९॥

अब अमात्य आदि जनों से राजा की न्याय के बीच प्रवृत्ति कराने को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवा न इन्द्रो मघवा विरप्शी करत्सत्या चर्षणीधृदनर्वा ।
त्वं राजा जनुषां धेह्यस्मे अधि श्रवो माहिनं यज्जरित्रे ॥२०॥

पदार्थः—हे राजन् ! (यत्) जो (नः) हम लोगों के लिये (राजा) प्रकाशमान (मघवा) धनदाता (विरप्शी) बड़े (चर्षणीधृत्) मनुष्यों को धारण करने वाले (अनर्वा) घोड़ों से रहित (इन्द्रः) राजा (त्वम्) आप (सत्या) नहीं नाश होने वाले कार्यों को (करत्) सिद्ध करैं (एवा) वही आप (जनुषाम्) जन्म वाले (अस्मे) हम लोगों के (माहिनम्) बड़े (श्रवः) श्रवण वा अन्न को (अधि, धेहि) अधिक धारण करें इसी प्रकार (जरित्रे) स्तुति करनेवाले के लिये भी ॥२०॥

भावार्थः—जो मनुष्य अन्याय में प्रवर्त्तमान राजा को रोकते हैं वे सत्य के प्रचार करनेवाले होते हुए बड़े सुख को प्राप्त होते हैं ॥२०॥

अब अमात्यादिकों की भी कार्यप्रवृत्ति को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥२१॥

पदार्थः—हे (हरिवः) श्रेष्ठ मनुष्यों से युक्त (इन्द्र) राजन् ! जो (गृणानः) सत्य की स्तुति करते हुए आप हम लोगों से (नू) शीघ्र (स्तुतः) प्रशंसित (अकारि) किये गये वह आप (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये (नद्यः) नदियों के (न) सदृश (इषम्) अन्न वा विज्ञान को (पीपेः) बढ़ाओ और हे राजन् ! आप से (नव्यम्) नवीन (ब्रह्म) बड़ा धन (नू) निश्चय से किया गया उन (ते) आप के हम लोग

(सदासाः) सेवकों के साथ वर्त्तमान (रथ्यः) बहुत वाहनों से युक्त (धिया) बुद्धि वा कर्म से अनुकूल (स्याम) होवें ॥२१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अति उत्तम गुण कर्म स्वभाव और विद्या से युक्त और प्रजा के हित के लिये धन और अन्नों को बढ़ाता है उस के अनुकूलपन से वर्त्ताव करके सेना के अङ्गों को दृढ़ सम्पादन करना चाहिये ॥२१॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, प्रजा और भृत्यों के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । इन्द्रादिती देवते । १ । ८ । १२ त्रिष्टुप् । ५-७ । ९-११ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ पङ्क्तिः । ३, ४ भुरिक् पङ्क्तिः । १३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचावाले अठारहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में उत्तम ऐश्वर्यवान् मनुष्य के लिये अच्छे मार्ग का उपदेश करते हैं ॥

अयं पन्था अनुवित्तः पुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे ।
अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (यतः) जिस से (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उदजायन्त) उत्तम होते हैं वह (अयम्) यह (अनुवित्तः) अनुकूल प्राप्त (पुराणः) अनादि काल से सिद्ध (पन्थाः) मार्ग है जिससे यह संसार (प्रवृद्धः) बढ़ा (जनिषीष्ट) उत्पन्न होवें (अतः) इस कारण से (चित्) भी आप (अमुया) उस उत्पत्ति से (मातरम्) माता को (पत्तवे) प्राप्त होने को (मा) मत (आ, कः) करें ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस मार्ग से यथार्थवक्ता पुरुष जावें उसी मार्ग से आप लोग भी चलो जो बड़ी वृद्धि भी होवे तो भी माता का अपमान किसी को न करना चाहिये ॥१॥

फिर दृष्टान्त से पूर्वोक्त विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नाहमतो निरया दुर्गहैतत्तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (अहम्) मैं (दुर्गहा) दुःख से प्राप्त होने योग्यों का नाश करने वाला (न) न होऊं (पार्श्वात्) पाश से (निः, गमानि) जाऊं (मे) मेरे (बहूनि) बहुत (अकृता) न किये गये (कर्त्वानि) कर्त्तव्य कर्म हैं (तिरश्चता) तिरछे बांके से (त्वेन) किससे (युध्यै) युद्ध करूं (त्वेन) अन्य से (सम्, पृच्छै) पूंछूं वैसे आप (अतः) इस कारण से (एतत्) इस पूर्वोक्त को (निः) अत्यन्त (अय) प्राप्त होओ ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०--हे मनुष्यो! जैसे मैं कर्म नहीं करता हूं और करके न किये गये न रखता हूँ मेरे साथ जो युद्ध की इच्छा करें उस के साथ युद्ध में पूंछने योग्य को पूंछता हूं वैसे इस सब का आचरण करो ॥२॥

अब उत्तम ऐश्वर्य्यवान् राजा के लिये सेना के संरक्षण विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

परायतीं मातरमन्वचष्ट न नानु गान्यनु नू गमानि ।
त्वष्टुर्गृहे अपिबत्सोममिन्द्रः शतधन्यं चम्वोः सुतस्य ॥३॥

पदार्थः—जैसे (इन्द्रः) शत्रुओं का नाश करने वाला सेना का ईश (त्वष्टुः) प्रकाश के (गृहे) स्थान में (सुतस्य) ऐश्वर्य्य से युक्त के (शतधन्यम्) असंख्य धन में साधु (सोमम्) ओषधियों के रस को (चम्वोः) सेनाओं के मध्य में (अपिबत्) पीता है (परायतीम्) और मरने वाली (मातरम्) माता को (न) नहीं (अनु, अचष्ट) प्रसिद्ध करे वैसे मैं (नु) शीघ्र (अनु, गानि) पीछे जाऊं और वैसे मैं (न) न (अनु, गमानि) पीछे जाऊं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सेना के अधीश राजगृह में सत्कार को प्राप्त होकर नियमित आहार और विहार से पूर्ण बल को उत्पन्न करके दोनों अपनी और शत्रुओं की सेना के मध्य में विवाद का नाश करें वा युद्ध करावें उनका सदा ही विजय और जैसे रोगग्रस्त माता की सन्तान सेवा करते हैं वैसे ही सेना का सेवन करते हैं वे न्याय के अनुगामी होते हैं ॥३॥

अब उत्तम ऐश्वर्य्यवान् पुरुष के लिये काल के दृष्टान्त से अच्छे मार्ग का उपदेश अगले मन्त्र में करते हैं ॥

किं स ऋधक्कृणवद्यं सहस्रं मासो जभार शरदश्च पूर्वीः ।
नही न्वस्य प्रतिमानमस्त्यन्तर्जातेषूत ये जनित्वाः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ये) जो (जनित्वाः) उत्पन्न होने वाले (अन्तः) बीच (जातेषु) उत्पन्न हुए पदार्थों में (पूर्वीः) अनादि काल से सिद्ध (शरदः) शरद् ऋतुओं को जानते हैं (उत) और जो (अस्य) इसका (प्रतिमानम्) परिमाण साधन (नहीं) नहीं (अस्ति) है वा (मासः) चैत्र आदि मास (जभार) पोषण करें और (यम्) जिसे (सहस्रम्) संख्यारहित (ऋधक्) सत्य (कृणवत्) प्रसिद्ध करै (सः) वह (च) और (किम्) किस को (नु) निश्चय से प्राप्त होवे ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे काल मास आदि अवयवों को धारण करता है और आप अनन्त हुआ संसार में उत्पन्न हुओं में नापने वाला है वैसे ही आप लोग भी करो ॥४॥

अब मान करने वाली माता से उत्तम ऐश्वर्यवान् पुरुष के पालनादि विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम् ।
अथोदस्थात्स्वयमत्कं वसान आरोदसी अपृणाज्जायमानः ॥५॥

पदार्थः—जैसे (मन्यमाना) आदर की गई (माता) माता (गुहा) बुद्धि में (वीर्येणा) पराक्रम से (न्यृष्टम्) अत्यन्त प्राप्त (इन्द्रम्) राजा को (अवद्यमिव) निन्दनीय के सदृश (अकः) करती है वैसे ही (जायमानः) उत्पन्न होनेवाला सूर्य (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथ्वी का (आ, अपृणात्) पालन करता है और जैसे (अत्कम्) कूप का (वसानः) आच्छादन करता हुआ जन (स्वयम्) आप ही ऊपर को प्राप्त होवै वैसे जो (उत्, अस्थात्) उठता है वह (अथ) अनन्तर सब जगत् की रक्षा करता है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो माता सूर्य के सदृश जिन अपने सन्तानों को बोध कराती और दुष्ट आचरणों को दूर करके शिक्षा करती है तो वे सन्तान उत्तम होते हैं ॥५॥

अब मेघ के कृत्य को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एता अर्षन्त्यललाभवन्तीर्ऋतावरीरिव संक्रोशमानाः ।
एता वि पृच्छ किमिदं भनन्ति कमापो अद्रिं परिधिं रुजन्ति ॥६॥

पदार्थः—हे जिज्ञासुजन ! जो (एताः) ये नदियां (ऋतावरीरिव) प्रातःकालों के सदृश (संक्रोशमानाः) उच्चस्वर को करती हुईं (अललाभवन्तीः) अलल करती हुईं (अर्षन्ति) जाती हैं सो (एताः) ये (किम्) क्या (इदम्) यह (भनन्ति)

शब्द करती हैं ऐसा (वि, पृच्छ) विशेष करके पूंछिये और ये (आपः) जल (कम्) किस (परिधिम्) घेर और (अद्रिम्) मेघ को (रुजन्ति) भञ्जते हैं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! यह नदियां मेघों की पुत्रियां अर्थात् उन से उत्पन्न हुई तटों को तोड़तीं और अव्यक्त शब्दों को करती हुईं प्रातःकालों के सदृश जाती हैं वैसे ही सेना शत्रुओं के सन्मुख प्राप्त होवें ॥६॥

फिर मेघविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**किमुं ष्विदस्मै निविदों भनन्तेन्द्रस्यावद्यं दिंधिषन्त आपः ।**
**ममैतान्पुत्रो महता वधेन वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ॥७॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (मम) मुझ पुत्र के (इन्द्रस्य) सूर्यसम्बन्ध की (निविदः) अत्यन्त ज्ञान जिन से वे वाणी (अस्मै) इस मेघ के लिये (किम्) क्या (उ) और (स्वित्) क्यों (भनन्त) शब्द करती हैं (आपः) जल (अवद्यम्) निन्द्य (दिधिषन्ते) शब्द करते हैं मेरा (पुत्रः) सन्तान (महता) बड़े (वधेन) वध से (एतान्) इन को और (वृत्रम्) मेघ का (जघन्वान्) नाश किये हुए सूर्य्य (सिन्धून्) नदियों को (वि, असृजत्) उत्पन्न करता है ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में अदिति सूर्य्य और मेघ के अलङ्कार से सेना, सभाध्यक्ष और राजा के कृत्य का वर्णन है। जैसे अन्तरिक्ष के पुत्र के समान वर्त्तमान सूर्य्य मेघ का नाश करके नदियों को वहाता है वैसे ही विद्वान् का उत्तम प्रकार शिक्षित पुत्र सेना का अध्यक्ष शत्रुओं का नाश करके सेनाओं को ऐश्वर्य्य प्राप्त कराता है ॥७॥

अब राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार ।**
**ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत् ॥८॥**

पदार्थः—हे राजन् ! जो (युवतिः) पूर्ण चौबीस वर्ष वाली (त्वा) आप को (ममत्) मदयुक्त करती हुई (चन) भी (परास) पराङ्मुख करती है, जो (ममत्) प्रमादयुक्त करती हुई (कुषवा) निकृष्ट प्रेरणा वाली (त्वा) आप को (चन) भी (जगार) निगलती है उस के सङ्ग का त्याग करो और जो (ममत्) मदयुक्त करती हुई (आपः) जलों के सदृश वर्त्तमान माता से (चित्) वैसे (शिशवे) पुत्र के लिये वैसे (ममृड्युः) सुख देती हैं और जो (ममत्) सुख देता हुआ (चित्) सा (इन्द्रः) सूर्य के सदृश (सहसा) बल से (उत्, अतिष्ठत्) उठता है उस की सेवा करो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो लोग प्रमत्त स्त्रियों में प्रमाद को नहीं प्राप्त होते वे बली होते हैं और जो पुत्र के सदृश प्रजाओं का पालन करते वे उत्तम होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ममंच्चन तें मघवन्व्यंसो निविविध्वां अप हनूं जघानं।
अधा निविंद्ध उत्तंरो बभूवाञ्छिरों दासस्य सं पिंणग्वधेनं ॥९॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुत धन से युक्त पुरुष ! जो (ते) आप के (दासस्य) देने योग्य के (वधेन) ताड़न से (शिरः) शिर को (सम्, पिणक्) अच्छे पीसता है (व्यंसः) खींच लिये गये हैं बल आदि जिसके ऐसा (निविविध्वान्) अत्यन्त शत्रुओं का नाश करने वाला (हनू) मुख के आसपास के भागों को (अप) दूर करने में (जघान) नाश करता है (अधा) इस के अनन्तर(ममत्) प्रसन्न होता हुआ (चन) भी (उत्तरः) आगे के समय में होने वाला (निविद्धः) अत्यन्त बाणों से छेदा गया (बभूवान्) होता है उस को आप दण्ड दीजिये ॥९॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो विरुद्ध कर्म से प्रजाओं में चेष्टा करता है उसे सदा दृढ़ बंधे को शस्त्रों से व्यथित कर सब प्रकार से बांधो ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गृष्टिः संसूव स्थविंरं तवागामंनाधृष्यं वृषभं तुम्रमिन्द्रम्।
अरीळ्हं वत्सं चरथांय माता स्वयं गातुं तन्वं इच्छमानम् ॥१०॥

पदार्थः—हे बहुधनयुक्त राजन् ! जैसे (गृष्टिः) एक बार प्रसूता हुई गौ (माता) माता (चरथाय) चरने के लिये (वत्सम्) बछड़े के सदृश (स्थविरम्) स्थूल वा वृद्ध (तवागाम्) बल को प्राप्त (अनाधृष्यम्) प्रगल्भ (तुम्रम्) उत्तम कर्मों में प्रेरणा करने और (वृषभम्) बैल के सदृश बलिष्ठ (अरीळ्हम्) शत्रुओं के नाश करने वाले(स्वयम्) आप (गातुम्) वाणी (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यवान् सुत की (इच्छमानम्) इच्छा करते हुए को (ससूव) उत्पन्न करती है वैसे मैं आप के लिये पृथ्वी के राज्य का (तन्वे) विस्तार करूं ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! जैसे उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त किये हुए अन्न आदि का समय पर नियमित भोजन किया गया शरीर को पुष्ट कर बल को बढ़ाय शत्रुओं का विजयनिमित्तक हो राज्य को बढ़ाता है वैसे ही आप न्याय से हम लोगों के सुख की वृद्धि करो ॥१०॥

अब सन्तानशिक्षा से विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।**
**अथाब्रवीद्वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥११॥**

पदार्थः—हे (सखे) मित्र (विष्णो) सम्पूर्ण विद्याओं में व्यापक (पुत्र) दुःख से रक्षा करने वाले ! आप (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् सूर्य्य के सदृश पालनकर्त्ता (वृत्रम्) मेघ के समान अविद्या का (हनिष्यन्) नाश करने वाले हुए (वितरम्) विविध प्रकार तरने योग्य को (वि, क्रमस्व) पुरुषार्थी हूजिये (अथ) इसके अनन्तर (माता) माता (त्वा) आपको (महिषम्) बड़ा (अवेनत्) मांगती है जो इस प्रकार (उत) भी जैसे पिता (अब्रवीत्) कहता है वैसे नहीं करै तो (अमी) यह (देवाः) विद्वान् लोग आप का (अनु, जहति) त्याग करते हैं ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—सन्तानों की योग्यता है कि जैसे विद्वान् माता पिता ब्रह्मचर्य आदि से विद्या का ग्रहण और शरीर के सुख के वर्धन का उपदेश करैं वैसा ही करना चाहिये और जो उत्तम शीलयुक्त पुत्र होते हैं उन्हीं पर यथार्थवक्ता अध्यापक लोग कृपा करते और दुर्व्यसनियों का त्याग करते हैं ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**कस्ते मातरं विधवामचक्रच्छयुं कस्त्वामजिघांसच्चरन्तम् ।**
**कस्ते देवो अधि मार्डीक आसीद्यत्प्राक्षिणाः पितरं पादगृह्य ॥१२॥**

पदार्थः—हे पुत्र ! (ते) आपकी (मातरम्) माता को (विधवाम्) पतिहीन (कः) कौन (अचक्रत्) करता है (कः) कौन (चरन्तम्) विहार वा (शयुम्) शयन करते हुए (त्वाम्) आपको (अजिघांसत्) मारने की इच्छा करता है (कः) कौन (ते) आपके (देवः) श्रेष्ठ गुण वाला (मार्डीके) सुख करने में (अधि) सर्वोपरि (आसीत्) विराजमान हुआ है (पादगृह्य) हे पैरों को ग्रहण करने योग्य (यत्) जो आपके (पितरम्) उत्पन्न करने वाले को (प्र, अक्षिणाः) नाश करता है ॥१२॥

भावार्थः—हे सन्तानो ! जो पुरुष वा स्त्रियां आप लोगों के पितरों का नाश करके माताओं को विधवा करैं और आप लोगों का भी नाश करैं उनका विश्वास आप लोग न करिये ॥१२॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**अवर्त्या शुन आन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम् ।**
**अपश्यं जायाममहीयमानामधा मे श्येनो मध्वा जभार ॥१३॥**

पदार्थः—हे राजन् ! जो (मे) मेरी (अमहीयमानाम्) नहीं सत्कार की गई (जायाम्) स्त्री को (श्येनः) वाज पक्षी के सदृश शीघ्र चलने वाला सब ओर से (आ, जभार) हरता है (अधा) इसके अनन्तर (शुनः) कुत्ते की (अवर्त्या) नहीं वर्त्तने योग्य (आन्त्राणि) और उठे हैं हाड़ जिनसे उन स्थूल नाड़ियों के सदृश शरीर को (पेचे) पचाता है इससे (मर्डितारम्) सुख करने वाले आपका मैं (अपश्यम्) दर्शन करूं । वह जैसे (देवेषु) विद्वानों में (मधु) मधुर विज्ञान को (न) नहीं (विविदे) प्राप्त होता है वैसे उसको निरन्तर दण्ड दीजिये ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! जो पुरुष और स्त्रियां व्यभिचार करें उनको तीव्र दण्ड देकर नाश करो ॥१३॥

इस सूक्त में इन्द्र मेघ राजा और विद्वान् के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अठारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । २, ६ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ । ५ । ८ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ । ६ भुरिक् पङ्क्तिः । ७ । १० पङ्क्तिः । ११ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब उन्नीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजगुणों का उपदेश करते हैं ॥

एवा त्वामिन्द्र वज्रिन्नत्र विश्वे देवासः सुहवास ऊमाः ।
महामुभे रोदसी वृद्धमृष्वं निरेकमिद्वृणते वृत्रहत्ये ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (वज्रिन्) प्रशंसित शस्त्र और अस्त्र से युक्त (इन्द्र) शत्रुओं के विदीर्ण करनेहारे ! (अत्र) इस संसार में जो (ऊमाः) रक्षा आदि के करने वाले (सुहवासः) उत्तम प्रकार पुकारने वाले (विश्वे) सब (देवासः) विद्वान् लोग (महाम्) बड़े (वृद्धम्) सबसे विस्तीर्ण (ऋष्वम्) श्रेष्ठ (एकम्) अद्वितीय (त्वाम्) आपको (एवा) ही (वृत्रहत्ये) मेघों के नाश के सदृश शत्रु का नाश जिस संग्राम में उसमें (उभे) दोनों (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी सूर्य्य के सदृश (इत्) ही (निः,-वृणते) स्वीकार करते हैं उन्हीं की आप सेवा करिये ॥१॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग अतिश्रेष्ठ गुण वाले राजा का स्वीकार करें वे ही पूर्णसुख वाले होते हैं ॥१॥

अब मेघदृष्टान्त से राजगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**अवास्रृजन्त जिव्रयो न देवा भुवः सम्राळिन्द्र सत्ययोनिः ।**
**अहन्नहिं परिशयानमर्णः प्र वर्त्तनीररदो विश्वधेनाः ॥२॥**

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त ! आप (भुवः) पृथिवी के मध्य में (सम्राट्) उत्तम प्रकार प्रकाशमान चक्रवर्ती (सत्ययोनिः) नहीं नाश होने वाला कारण वा स्थान जिसका ऐसा सूर्य्य जैसे (परिशयानम्) अन्तरिक्ष में सब ओर से शयन करने वाले (अहिम्) मेघ का (अहन्) नाश करता है (अर्णः) जल (वर्त्तनीः) मार्गों को (प्र, अरदः) लिखता अर्थात् करोदता है वैसे ही शत्रुओं का नाश करके विराजमान हूजिये जो (विश्वधेनाः) समस्त वाणियों वाले (जिव्रयः) दृढजीवनों के (न) समान (देवाः) चन्द्र आदि दिव्य पदार्थों के सदृश विद्वान् जन आप को (अव, असृजन्त) उत्पन्न करते हैं उनका तुम संग करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—हे राजन् ! आप सत्य आचरण करने वाले हुए यथार्थ वक्ताओं के सहाय से चक्रवर्ती सार्वभौम हूजिये और जैसे सूर्य्य मेघ का नाश करके संसार को सुख देता है वैसे चोर डाकुओं का नाश करके प्रजाओं को आनन्द दीजिये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**अतृप्णुवन्तं वियतमबुध्यमबुध्यमानं सुषुपाणमिन्द्र ।**
**सप्त प्रति प्रवत आशयानमहिं वज्रेण वि रिणा अपर्वन् ॥३॥**

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त ! आप जैसे सूर्य्य (वज्रेण) वज्र से (आशयानम्) सब ओर से सोते हुए (अहिम्) मेघ का नाश करके (सप्त) सात (प्रवतः) नीचे के मार्गों को प्राप्त कराता है वैसे ही (अपर्वन्) पर्व से रहित समय में (अतृप्णुवन्तम्) भोगों में नहीं तृप्त (सुषुपाणम्) उत्तम पानयुक्त (वियतम्) नहीं जितेन्द्रिय (अबुध्यम्) बुद्धि से रहित (अबुध्यमानम्) उपदेश से भी नहीं जानते हुए अधार्मिक जन को दण्ड से (प्रति, वि, रिणाः) विशेष हिंसा करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य किरणों से मेघ को काट के और पृथिवी पर गिरा के नाना प्रकार के मार्गों में बहाता है वैसे ही विद्या से अविद्या का नाश करके दण्ड से अधार्म्मिक पुरुषों को कारगृह अर्थात् जेल खाने में छोड़ के बहुत शाखायुक्त नीति का सर्वत्र प्रचार करें ॥३॥

अब मेघदृष्टान्त से राजसेनाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अक्षोदयच्छवसा क्षाम बुध्नं वार्ण वातस्तविषीभिरिन्द्रः ।
दृळ्हान्यौभ्नादुशमान ओजोऽवाभिनत् ककुभः पर्वतानाम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (तविषीभिः) बल से युक्त सेनाओं के साथ (इन्द्रः) दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाला (शवसा) दल से (वातः) वायु (क्षाम) सहनयुक्त (बुध्नम्) अन्तरिक्ष और (वाः) उदक को जैसे (न) वैसे (दृळ्हानि) पुष्ट शत्रुसैन्य-दलों को (अक्षोदयत्) सञ्चूर्णित करता है तथा (ओजः) पराक्रम की (उशमानः) कामना करता हुआ (औभ्नात्) मृदुता करता है (पर्वतानाम्) मेघों के शिखरों के सदृश (ककुभः) दिशाओं और शत्रुओं को (अव, अभिनत्) तोड़ता है उसी को अपना राजा करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जैसे वायु अग्नि से सूक्ष्म किये हुए जल को अन्तरिक्ष में पहुंचा और वर्षा कर संसार को आनन्द देता है वैसे ही सामग्री विद्या और सेना के सहित राजा दुष्टों को न्यून करके दण्ड और उपदेश से दुष्टों का नाश कर और सज्जनों को सिद्ध करके प्रजाओं को निरन्तर सुख दीजिये ॥४॥

अब सेनापति के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि प्र दद्रुर्जनयो न गर्भं रथा इव प्र ययुः साकमद्रयः ।
अतर्पयो विसृत उब्ज ऊर्मीन्त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाश करने वाले सेनापति ! जो (अद्रयः) मेघ (जनयः) स्त्रियों के (न) तुल्य (गर्भम्) गर्भ को (प्र, अभि, दद्रुः) सब ओर से प्राप्त होते हैं (रथा इव) वाहनों के सदृश (साकम्) साथ (प्र, ययुः) शीघ्र जाते हैं और जैसे उन (विसृतः) जो विशेष करके फैलती (ऊर्म्मीन्) उन तरङ्गों के सहित (सिन्धून्) नदियों का सूर्य्य (उब्जः) नाश करै वा (अरिणाः) नाश करता है वैसे (त्वम्) आप (वृतान्) स्वीकार किये हुओं को (अतर्पयः) तृप्त करो और आपके भृत्य जावैं और स्त्री गर्भ को धारण करैं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जिस राजा की मेघ के सदृश ऊंची और वाहनों के सदृश साथ चलने वाली सेनायें चलती हैं उसका सूर्य्य के सदृश विजय होता है ॥५॥

फिर राजगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वम्महीमवनिं विश्वधेनान्तुर्वीतये वय्याय क्षरन्तीम् ।
अरमयो नमसैजदर्णः सुतरणाँ अकृणोरिन्द्र सिन्धून् ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् ! (त्वम्) आप (तुर्वीतये) शत्रुओं के नाश करने वाले के और (वय्याय) प्राप्त होने योग्य सुख के लिये (विश्वधेनाम्) सम्पूर्ण वाणी जिसके लिये उस (क्षरन्तीम्)प्राप्त कराती हुई (अवनिम्) रक्षा करने वाली (महीम्) पृथिवी को प्राप्त होकर हम लोगों को (नमसा) अन्न आदि से (अरमयः) रमाओ और जिनमें (अर्णः) जल (एजत्) कम्पता है उन (सिन्धून्) नदों को (सुतरणान्) सुखपूर्वक तरना जिनका ऐसे (अकृणोः) करो ॥६॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप जो राज्य को प्राप्त हो आप ही आनन्दित हो हम लोगों को आनन्द नहीं देवें तो आपका आनन्द शीघ्र नष्ट हो और आप सब लोगों के सुख के लिये नदी नद तड़ाग और समुद्र आदिकों के पार उतरने के लिये नौका आदि बना के धनाढ्य निरन्तर करिये ॥६॥

अब प्रजाओं के निमित्त राज-उपदेश को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्राग्रुवो नभन्वो३ न वक्वा ध्वस्रा अपिन्वद्युवतीर्ऋतज्ञाः ।
धन्वान्यज्राँ अपृणक्तृषाणाँ अधोगिन्द्रः स्तर्यो३ दंसुपत्नीः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) राजा (वक्वाः) टेढ़ी(ध्वस्राः) विध्वंस करने वाली सेनाओं को और (नभन्वः) शत्रुओं के नाश करनेवाले वीर पुरुष जैसे (अग्रुवः) आगे चलनेवाली नदियों को (न) वैसे (ऋतज्ञाः) सत्य को जानने वाली (युवतीः) युवती स्त्रियों को (प्र, अपिन्वत्) अच्छे प्रकार सेवे वा सींचे (धन्वानि) और स्थल-प्रदेशों को अर्थात् जहां तहां मार्गस्थानों को (अज्रान्) तथा नित्य चलनेवाले (तृषाणान्) पियासे मनुष्यादि प्राणियों को (अपृणक्) तृप्त करैं वा जो (स्तर्यः) आच्छादन करनेवाली (दंसुपत्नीः) कर्म्म करने वालों की स्त्रियां हों उनके समान (अधोक्) पूर्ण करै अर्थात् उनके समान परिपूर्ण सेना रक्खे वही आप लोगों का राजा होवै ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जिस राजा की नदी के सदृश और शत्रुओं के नाश करनेवाली अन्न और पान आदि से तृप्त और अपने विवर के ढांपने वाली पतिव्रता स्त्रियों के सदृश राजभक्त सेना होवें वही विजय प्राप्त होने योग्य है ॥७॥

फिर राज्यविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून् ।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥८॥

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य (पूर्वीः) पुरातन (गूर्त्ताः) चलती हुई हिंसा करने वाली (उषसः) प्रभातवेला (वृत्रम्) मेघ को (शरदः) शरद् ऋतुओं (च) और हेमन्तादि ऋतुओं को (जघन्वान्) नष्ट किये हुए (सिन्धून्) नद्यादिकों को (वि) अनेक प्रकार (असृजत्) उत्पन्न करता है (परिष्ठिताः) तथा सब ओर से स्थित (बद्बधानाः) बदबदातीं तटों का नाश करती हुई (सीराः) जो बहने वाली नदियां उनको (स्रवितवे) चलने को (पृथिव्या) पृथिवी के साथ (अतृणत्) नाश करता है वैसे ही नीति और सेना को उत्पन्न करके विजय सिद्ध करो और युद्ध के लिये चलती हुई उत्तम प्रकार शिक्षित सेना से शत्रुओं का नाश करो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो राजा प्रातः-काल के सदृश उत्तम नीति और नदी के समूह के सदृश सेना को निर्मित करता है वही पृथिवी के राज्य के योग्य है ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वम्रीभिः पुत्रमग्रुवो अदानन्निवेशनाद्धरिव आ जभर्थ ।
व्यन्धो अख्यदहिमाददानो निर्भूदुखच्छित्समरन्त पर्व ॥९॥

पदार्थः—हे (हरिवः) प्रशंसित घोड़ों से युक्त राजन् ! जैसे (निवेशनात्) अपने स्थान से (वम्रीभिः) उगली हुई पहाड़ियों से (अग्रुवः) नदियां तट आदि का हरण करती हैं वैसे ही (अदानम्) दान नहीं करने वाले (पुत्रम्) पुत्र को (आ, जभर्थ) हरते हो और जैसे (अन्धः) अन्धकार करने वाला (अहिम्) मेघ को (आददानः) ग्रहण करता हुआ (वि, अख्यत्) विख्यात करता है और (उखच्छित्) गमन का काटने अर्थात् मार्ग छिन्नभिन्न करने वाला (निः, भूत्) निरन्तर होता (पर्व) और पालने वाले को (सम्, अरन्त) अच्छे प्रकार रमाता है वैसे ही नहीं दान करने वाला गति पाता है ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे राजन् ! अपना पुत्र भी बुरे लक्षणों वाला हो तो नहीं अधिकार देने योग्य और वर्षाकालों में नदियां बढ़ती हैं वैसे ही प्रजाओं की वृद्धि करनी चाहिये ॥९॥

अब विद्वान् के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

प्र ते पूर्वाणि करणानि विप्राविद्वाँ आह विदुषे करांसि।
यथायथा वृष्ण्यानि स्वगूर्त्तापांसि राजन्नर्याविवेपीः॥१०॥

पदार्थः—हे (विप्र) बुद्धिमान् (राजन्) राजन् (विदुषे) विद्वन्! (ते) आपके लिये (यथायथा) जैसे जैसे (पूर्वाणि) अनादि काल से सिद्ध (करणानि) जिन से करें वह कार्य्यसाधन (करांसि) और करने योग्य कर्म्म (वृष्ण्यानि) बलकारक (स्वगूर्त्ता) अपने से प्राप्त (नर्य्या) मनुष्यों में हित करने वाले (अपांसि) कर्म्मों को (आविद्वान्) सब प्रकार से समस्त जानता हुआ (प्र, आह) अच्छे कहता है उनको आप (अविवेपीः) विशेष करके प्राप्त हूजिये॥१०॥

भावार्थः—हे विद्वन् राजन्! आप सदा श्रेष्ठ पुरुषों की शिक्षा में प्रवृत्त हूजिये और जो जो आपके लिये वे उपदेश देवें वैसे ही करिये॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः॥११॥

पदार्थः—हे (हरिवः) उत्तम पुरुषों से युक्त! (इन्द्र) प्रशंसा करने योग्य कर्म्म करनेवाले जिस विद्वान् से (ते) आपका (नव्यम्) नवीन (ब्रह्म) बड़ा धन (अकारि) किया जाता है उस (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त हुए आप (नद्यः) नदियों के (न) सदृश (नु) शीघ्र (पीपेः) वृद्धि दिलाइये और (गृणानः) सत्य की प्रशंसा करते हुए (इषम्) अन्न वा विज्ञान को (नु) शीघ्र दीजिये इस प्रकार के हुए सम्बन्ध में (रथ्यः) रमण करने योग्य बहुत रथादिकों से युक्त (सदासाः) सेवकों के सहित हम लोग (धिया) बुद्धि वा कर्म्म से अनुकूल (स्याम) होवें॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे राजन्! जो प्रशंसित कर्म्म करें उनका आप निरन्तर सत्कार करिये और वे आप के अनुकूल हुए और तुम लोग सब धर्म्म, अर्थ और काम के साधक हूजिये॥११॥

इस सूक्त में इन्द्र, मेघ, सेना, सेनापति, राजा, प्रजा और विद्वान् के गुणवर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥

---

वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। १, ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ४, ५ विराट्त्रिष्टुप्। ८,१० त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २ पङ्क्तिः। ७, ९ स्वराट् पङ्क्तिः। ११ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब ग्यारह ऋचावाले बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजगुणों को कहते हैं॥

आ न इन्द्रो दूरादा न आसादभिष्टिकृदवसे यासदुग्रः।
ओजिष्ठेभिर्नृपतिर्वज्रबाहुः सङ्गे समत्सु तुर्वणिः पृतन्यून् ॥१॥

पदार्थः—हे राजा और प्रजाजनो ! जो (अभिष्टिकृत्) अपेक्षित सुख करने वाला (वज्रबाहुः) शस्त्र विशेष जिस की बाहु में विद्यमान (उग्रः) जो तेजस्वी (नृपतिः) मनुष्यों का पालन करने वाला (तुर्वणिः) शीघ्रकारी (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् राजा (ओजिष्ठेभिः) अत्यन्त बल आदि गुणों से युक्त मनुष्यों में उत्तम सेनाजनों के साथ (नः) हम लोगों की वा हम लोगों के अर्थ (अवसे) रक्षा आदि के लिये (दूरात्) दूर और (आसात्) समीप से वा (आ) सब प्रकार सेना (यासत्) प्राप्त होवै और (समत्सु) सङ्ग्रामों में (पृतन्यून्) अपनी सेना की इच्छा करने वाले (नः) हम लोगों को (सङ्गे) साथ (आ) प्राप्त होवै वह हम लोगों से सदा ही रक्षा करने और सत्कार करने योग्य है ॥१॥

भावार्थः हे मनुष्यो ! सब प्रकार से रक्षा करने वाले बड़े बलिष्ठ विद्या और बलयुक्त श्रेष्ठ सेनाजनों के सहित वर्त्तमान और सङ्ग्राम में जीतने वाले राजा का स्वीकार करके सब काल में आनन्द करो ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

आ न इन्द्रो हरिभिर्यात्वच्छार्वाचीनोऽवसे राधसे च।
तिष्ठाति वज्री मघवा विरप्शीमं यज्ञमनु नो वाजसातौ ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अर्वाचीनः) इस काल में उत्पन्न (मघवा) न्याय से इकट्ठे किये हुए धन के होने से आदर करने योग्य (वज्री) शस्त्रों और अस्त्रों का जानने वाला (विरप्शी) बड़ा (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाला राजा (हरिभिः) श्रेष्ठ मनुष्यों के साथ (नः) हम लोगों को वा हम लोगों के (अवसे) अन्न आदि के (राधसे, च) और धन के लिये (अच्छ) उत्तम प्रकार (आ, यातु) प्राप्त हो (इमम्) इस (यज्ञम्) प्रजापालनरूप यज्ञ का (नः) हम लोगों के (वाजसातौ) सङ्ग्राम में (अनु, तिष्ठाति) अनुष्ठान करै उसी को राजा मानो ॥२॥

भावार्थः-जो राजा उत्तम सभा के जनों से प्रजा के सुख के लिए

अन्न और धन वहुत करके सङ्ग्राम में जीतने वाला न्यायकारी होवै वही राजा होने को योग्य होवै ॥२॥

अब अमात्य के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमं यज्ञं त्वमस्माकमिन्द्र पुरो दधत्सनिष्यसि क्रतुं नः ।
श्वघ्नीव वज्रिन्त्सनये धनानां त्वया वयमर्य आजिं जयेम ॥३॥

पदार्थः—हे (वज्रिन्) शस्त्र और अस्त्र के प्रयोग जानने और (इन्द्र) बहुत धन के देने वाले सेनापति जिससे कि (अर्य्यः) स्वामी (त्वम्) आप (अस्माकम्) हम लोगों के (इमम्) इस वर्त्तमान (यज्ञम्) राजधर्म्म के निर्वाहरूप यज्ञ को और (पुरः) नगरों को (दधत्) धारण करते हुए (नः) हम लोगों की (क्रतुम्) बुद्धि का (सनिष्यसि) सेवन करोगे इससे (त्वया) आप के साथ (वयम्) हम लोग (धनानाम्) धनों के (सनये) सम्यक् विभाग करने के लिये (श्वघ्नीव) भेड़िनी के सदृश (आजिम्) संग्राम को (जयेम) जीतें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जहां राजा मन्त्रियों और मन्त्री राजा को प्रसन्न कर के और विभाग कर दे और ग्रहण करके प्रीति से वलिष्ठ हुए ही ऐश्वर्य्य के लिये जैसे भेड़िनी वकरी को मारै वैसे शत्रुओं का नाश कर के विजय से भूषित होते हैं वहीं सम्पूर्ण सुख होते हैं ॥३॥

फिर राजगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उशन्नु षु णः सुमना उपाके सोमस्य नु सुषुतस्य स्वधावः ।
पा इन्द्र प्रतिभृतस्य मध्वः समन्धसा ममदः पृष्ठ्येन ॥४॥

पदार्थः—हे (उशन्) कामना करते हुए (स्वधावः) अन्न आदि ऐश्वर्य से युक्त (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् राजन् ! आप (सुमनाः) प्रसन्न चित्तवाले हुए (नः) हम लोगों के (उपाके) समीप में (सुषुतस्य) उत्तम प्रकार विद्या और विनय से निष्पन्न अर्थात् प्रसिद्ध (सोमस्य) ऐश्वर्य्ययुक्त (प्रतिभृतस्य) धारण धारण किये गये के प्रति वर्त्तमान जन की (नु) निश्चय से (सु, पाः) अच्छे प्रकार रक्षा कीजिये और (मध्वः) माधुर्य्य आदि गुणों से युक्त पदार्थसम्बन्धी (अन्धसा) अन्न आदि से (पृष्ठ्येन, उ) और पीछे हुए सुख से (सम्, ममदः) अच्छे प्रकार आनन्द कीजिये ॥४॥

भावार्थः—जो राजा प्रेम से भृत्यजनों के समूह की ऐश्वर्य्य और अन्न आदि से रक्षा करता है वह कामना की सिद्धि को प्राप्त होकर फिर निरन्तर आनन्द को प्राप्त होता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**वि यो ररप्श ऋषिभिर्नवेभिर्वृक्षो न पक्वः सृण्यो न जेता ।**
**मर्यो न योषामभि मन्यमानोऽच्छा विवक्मि पुरुहूतमिन्द्रम् ॥५॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (नवेभिः) नवीन अध्ययनकर्त्ता (ऋषिभिः) वेदार्थ के जानने वालों से (वि, ररप्शे) स्तुति किये जाता हो (वृक्षः) वृक्ष के (न) सदृश (पक्वः) पके हुए फल आदि युक्त (सृण्यः) बल को प्राप्त उत्तम प्रकार शिक्षित सेना के (न) सदृश (जेता) जीतने वाला (मर्य्यः) मनुष्य (योषाम्) स्त्री के (न) तुल्य प्रजा को (अभि, मन्यमानः) प्रत्यक्ष जानता हुआ वर्त्तमान है उस (पुरुहूतम्) बहुतों से स्तुति किये गये (इन्द्रम्) प्रशंसित गुणों के धारण करने वाले को जैसे मैं (अच्छा) उत्तम प्रकार (विवक्मि) विशेष करके उपदेश करता हूं वैसे इसको आप लोग भी उपदेश दीजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो यथार्थवक्ता जनों में प्रशंसा को प्राप्त वृक्ष के सदृश दृढ़ उत्साहरूप फलवान् अकेला सेना के सदृश जीतने वाला पतिव्रता स्त्री के सदृश प्रजा में प्रसन्न होवै उस प्रशंसित को राजा आप लोग मानो ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**गिरिर्न यः स्वतवाँ ऋष्व इन्द्रः सनादेव सहसे जात उग्रः ।**
**आदर्त्ता वज्रं स्थविरं न भीम उद्नेव कोशं वसुना न्यृष्टम् ॥६॥**

पदार्थः–हे मनुष्यो ! (यः) जो (गिरिः) मेघ के (न) सदृश (स्वतवान्) अपने गुणों से वृद्ध (ऋष्वः) बड़ा (सनात्) सब काल में (एव) ही (सहसे) बल के लिये (जातः) प्रसिद्ध (उग्रः) तीव्र स्वभावयुक्त (इन्द्रः) सूर्य्य के समान प्रतापी (स्थविरम्) स्थूल (वज्रम्) बिजुलीरूप के (न) समान (आदर्त्ता) सब प्रकार से शत्रुओं का नाश करने वाला (भीमः) भयङ्कर और (कोशम्) मेघ को (उद्नेव) जलों के सदृश (वसुना) धन से (न्यृष्टम्) अत्यन्त प्राप्त करता है वही विजयी होने के योग्य होता है ॥६॥

भावार्थः–इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो मेघ के सदृश बड़ा प्रजाओं का सुख करने और सनातनधर्म्म का सेवन करनेवाला बिजुली के सदृश भयङ्कर, नहीं नाश होने वाले खजाने से युक्त शत्रुओं का नाश करने वाला और बलवान् होवै वह सब का राजा होने को योग्य है ऐसा जानिये ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न यस्य॑ व॒र्ता ज॒नुषा॒ न्वस्ति॒ न राध॑स आमरी॒ता म॒घस्य॑ ।
उ॒द्वा॒वृ॒षा॒णस्त॑विषीव उग्रा॒स्मभ्यं॑ दद्धि पुरुहूत रा॒यः ॥७॥

पदार्थः— हे (पुरुहूत) बहुतों के पुकारने वाले (उग्र) प्रतापी राजन् (यस्य) जिसका (जनुषा) जन्म से (वर्त्ता) निवारण करने वाला कोई भी (न) नहीं (अस्ति) है जिस के (मघस्य) धन और (राधसः) धनरूप अन्न का (आमरीता) सब प्रकार नाश करनेवाला (न) नहीं विद्यमान है हे (उद्वावृषाणः) उत्तमता से अत्यन्त बल करने वाले की (तविषीवः) बलयुक्त सेनावान् जीतने वाला वह आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (रायः) धनों को (नु) निश्चय से (दद्धि) दीजिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जिस का उत्तम कुल में जन्म और जिसका कुल प्रशंसित कर्म्म किये गये के समान और जिस का संग्राम में वा विचार में रोकने वाला नहीं है वही सुख देने वाला राजा हम लोगों का होवै ऐसी हम लोग इच्छा करें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ईक्षे॑ रा॒यः क्षय॑स्य चर्ष॒णीना॑मु॒त व्र॒जम॑पव॒र्त्तासि॒ गोना॑म् ।
शि॒क्षा॒न॒रः स॑मिथेषु॒ प्र॒हावा॒न्वस्वो॑ रा॒शिम॑भिने॒तासि॒ भूरि॑म् ॥८॥

पदार्थः—हे राजन् ! जिस कारण (शिक्षानरः) विद्या के देने से नायक आप (प्रहावान्) विजय को प्राप्त तथा (समिथेषु) संग्रामों में (वस्वः) धन के (भूरिम्) बहुत प्रकार के (राशिम्) समूह को (अभिनेता) सन्मुख पहुँचाने वाले (असि) हो और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (रायः) धन (क्षयस्य) निवास (उत) और (गोनाम्) स्तुति करने वालों के सम्बन्धी (व्रजम्) शस्त्र अस्त्रों को (अपवर्त्ता) दूर करने वाले (असि) हो उनको मैं राजा होने को (ईक्षे) देखता हूँ ॥८॥

भावार्थः—वही राजा दिशाओं में यशस्वी होवै कि जो मनुष्यों को विद्या धन और उत्तम वास देकर संग्रामादिकों में निरन्तर सब की रक्षा करें ॥८॥

अब विद्वानों के उपदेशगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कया॒ तच्छृ॑ण्वे॒ शच्या॒ शचि॑ष्ठो॒ यया॑ कृ॒णोति॒ मुहु॒ का चि॑दृ॒ष्वः ।
पु॒रु दा॒शुषे॒ विच॑यिष्ठो॒ अंहो॒ऽथा॑ दधाति॒ द्रवि॑णं जरि॒त्रे ॥९॥

पदार्थः—हे राजन् ! जैसे (शचिष्ठः) अत्यन्त बुद्धिमान् (विचयिष्ठः) अत्यन्त वियोग करने वाला (ऋष्वः) बड़ा विद्वान् (अंहः) अपराध को पृथक् करके (अथा) अनन्तर (जरित्रे) स्तुति करने और (दाशुषे) देने वाले के लिये (पुरु) बहुत (द्रविणम्) धन को (दधाति) धारण करता है और जिन (का) किन्हीं (चित्) भी उत्तम कर्म्मों को (यथा) जिस (कया) किसी (शच्या) बुद्धि वा क्रिया से (मुहु) वारवार (कृणोति) सिद्ध करता है (तत्) उन्हें उस से (शृण्वे) सुनूं ॥९॥

भावार्थः - इस मन्त्र में वाचकलु० मनुष्यों की योग्यता है कि जैसे यथार्थवक्ता जन पापों का त्याग, धर्म्म का आचरण और यथार्थ ज्ञानस्वरूप ज्ञान का धारण करके जगत् के कल्याण के लिये बहुत ज्ञान को फैलाते हैं वैसे ही आप लोग आचरण करो ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा नो॑ मर्धीरा भ॑रा द॒द्धि तन्नः॒ प्र दा॒शुषे॒ दात॑वे॒ भूरि॒ यत्ते॑ ।
नव्ये॑ दे॒ष्णे श॒स्ते अ॒स्मिन्त॑ उ॒क्थे प्र ब्र॑वाम व॒यमि॑न्द्र स्तु॒वन्तः॑ ॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् ! आप (नः) हम लोगों को (मा) मत (मर्धीः) गीला कीजिये हम लोगों के लिये (तत्) उस धन को (आ, भर) धारण कीजिये (यत्) जो (ते) आप के (अस्मिन्) इस (नव्ये) नवीन (देष्णे) देने और (ते) आप के (शस्ते) प्रशंसित (उक्थे) कहने योग्य व्यवहार में (भूरि) बहुत द्रव्य है वह (दाशुषे) दानशील के लिये (दातवे) देने को (प्र) अत्यन्त धारण कीजिये और (नः) हम सब लोगों के लिये (दद्धि) दीजिये और (स्तुवन्तः) स्तुति करते हुए (वयम्) हम लोग यह आप को (प्र, ब्रवाम) उपदेश करें ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप के लिये करने योग्य कर्म्म जो जो कहें उस उस का आचरण करो और प्रजा मन्त्री और राज्य की उन्नति के लिये बहुत धन, विद्या और न्याय को फैलाओ ॥१०॥

फिर उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू ष्टु॒त इ॑न्द्र॒ नू गृ॑णा॒न इषं॑ जरि॒त्रे न॒द्यो॒३॒॑ न पी॑पेः ।
अका॑रि ते हरिवो॒ ब्रह्म॒ नव्यं॑ धि॒या स्या॑म र॒थ्यः॑ सदा॒साः ॥११॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख के देनेवाले ! (स्तुतः) प्रशंसित हुए आप (जरित्रे) सत्य कहनेवाले के लिये (नव्यम्) नवीन (ब्रह्म) बड़े धन वा अन्न की (नु) शीघ्र (नद्यः) नदियों के (न) सदृश (पीपेः) वृद्धि करो और (गृणानः) स्तुति करता हुआ नवीन (इषम्) विज्ञान की वृद्धि करो हे (हरिवः) बहुत सेना के अङ्गों से युक्त जिस

के लिये (ते) आप के हम लोगों ने (धिया) कर्म से नवीन बड़ा धन वा अन्न (अकारि) किया उसके सहाय से (सदासाः) समान दान देने वाले सेवक हम लोग (रथ्यः) बहुत सुन्दर रथ आदिकों से युक्त (नु) निश्चय (स्याम) होवें ॥११॥

भावार्थः--मन्त्री सेना और प्रजाजनों को श्रेष्ठ कर्म्म करते हुए राजा की स्तुति जैसी कर्त्तव्य है वैसी ही राजा को भी इन उत्तम कर्म्मों में प्रवर्त्तमान लोगों की प्रशंसा करनी चाहिये ॥११॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा अमात्य और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता । १, २, ७, १० भुरिक्पङ्क्तिः। ३ स्वराट् पङ्क्तिः। ११ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ४। ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ६। ८ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। ९ त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले इक्कीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजगुणों को कहते हैं ॥

आ यात्विन्द्रोऽवस उप न इह स्तुतः सधमादस्तु शूरः ।
वावृधानस्तविषीर्यस्य पूर्वीर्द्यौर्न क्षत्रमभिभूति पुष्यात् ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो! (यस्य) जिस राजा की (द्यौः) सूर्य्य के (न) सदृश (पूर्वीः) प्राचीन (तविषीः) बलयुक्त सेना हो और सूर्य्य के सदृश (अभिभूति) शत्रुओं के तिरस्कार में निमित्त (क्षत्रम्) राज्य (पुष्यात्) पुष्ट होवे वह (वावृधानः) बढ़ने और (शूरः) शत्रुओं का नाश करने वाला (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त (इन्द्रः) प्रजारक्षक (नः) हम लोगों के (अवसे) रक्षण आदि के लिये (इह) यहां राजा और प्रजा के व्यवहार में (उप, आ, यातु) समीप प्राप्त हो और हम लोगों के (सधमाद) समीप स्थान से आनन्द करने वाला (अस्तु) हो ॥१॥

भावार्थः—जो राजा बिजुली के सदृश बलिष्ठ सूर्य्य के सदृश उत्तम प्रकार प्रकाशित सेना कर निष्कंटक अर्थात् दुष्टजनादिरहित राज्य को पुष्ट करै वही इस संसार में सम्पूर्ण प्रतिष्ठा और सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होके शरीर के त्याग के समय मोक्ष को प्राप्त होवै ॥१॥

अब राजगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तस्येदिह स्तवथ वृष्ण्यानि तुविद्युम्नस्य तुविराधसो नॄन् ।

यस्य क्रतुर्विदथ्यो३ न सम्राट् साह्वान्तरुत्रो अभ्यस्ति कृष्टीः ॥२॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस (तुविद्युम्नस्य) बहुत यशयुक्त (तुविराधसः) बहुत ऐश्वर्य्य वाले राजा के (इह) इस राज्य में (विदथ्यः) जानने योग्य (सम्राट्) सम्पूर्ण भूमि में प्रसिद्ध और प्रकाशमान के (न) सदृश (साह्वान्) सहने वा (तरुत्रः) दुःखों से पार उतारने वाला (क्रतुः) बुद्धि और राज्य का पालनरूप यज्ञ (अभि, अस्ति) सब ओर से है और (वृष्ण्यानि) बलों में साधु कार्य हैं (तस्य, इत्) उसी के (नॄन्) नायक अर्थात् मुख्य (कृष्टीः) मनुष्यों की (स्तवथ) तुम लोग प्रशंसा करो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस की पूर्णबलवाली सेना और बड़ा यश असंख्य धन पूर्णविद्या उत्तम गुण कर्म्म स्वभाव और सहाय होवें वही चक्रवर्त्ती राजा होने के योग्य होता है ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ यात्विन्द्रो दिव आ पृथिव्या मक्षू समुद्रादुत वा पुरीषात् ।

स्वर्णरादवसे नो मरुत्वान् परावतो वा सदनादृतस्य ॥३॥

पदार्थः— जैसे सूर्य (आ, दिवः) प्रकाश से (पृथिव्याः) भूमि से (उत) और (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (वा) वा (पुरीषात्) जल से (परावतः) दूर देश से (ऋतस्य) सत्य कारण के (सदनात्) स्थान से (वा) वा हम संसारी जनों की रक्षा आदि के लिये (मक्षू) शीघ्र प्राप्त होता है वैसे ही (स्वर्णरात्) सूर्य्य के सदृश नायक से (नः) हम लोगों के (अवसे) रक्षण आदि के लिये (मरुत्वान्) वायुवान् पदार्थ के सदृश प्रशंसित पुरुषों से युक्त होता हुआ (इन्द्रः) सूर्य के समान राजा (आ, यातु) प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थः- इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! जैसे सूर्य्य अन्तरिक्ष प्रकाश भूमि जल और कार्य्य जगत् को व्याप्त होकर सब की रक्षा करता है वैसे ही प्रतापी और उत्तमसहाययुक्त होकर और हम लोगों की उत्तम प्रकार रक्षा कर के प्रकाशित हूजिये ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्थूरस्य रायो बृहतो य ईशे तमु ष्टवाम विदथेष्विन्द्रम् ।

यो वायुना जयति गोमतीषु प्र धृष्णुया नयति वस्यो अच्छ ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (बृहतः) बड़े (स्थूरस्य) स्थूल (रायः) धन का (ईशे) स्वामी होता है (विदथेषु) संग्रामों में (इन्द्रम्) शत्रु के नाश करने वाले को (अच्छ) उत्तम प्रकार (नयति) प्राप्त करता है (यः) जो (गोमतीषु) प्रशंसित वाणियों से युक्त सेनाओं में (धृष्णुया) प्रगल्भता और (वायुना) पवन के साथ उत्तम प्रकार (जयति) विजयी होता है (वस्यः) अत्यन्त श्रेष्ठ धन को (प्र) प्रीति के साथ चाहता है (तम्, उ) उसी की हम लोग (स्तवाम) प्रशंसा करें ।।४।।

भावार्थः—जो राजा बड़ी सेनाओं से संग्रामों में विजय को प्राप्त हो तथा बहुत धनों और प्रतिष्ठा को प्राप्त होकर प्रशंसित होता है उसी की स्तुति करनी चाहिये ।।४।।

फिर उसी राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

उप यो नमो नमसि स्तभायन्नियर्ति वाचं जनयन्यजध्यै ।
ऋञ्जसानः पुरुवार उक्थैरेन्द्रं कृण्वीत सदनेषु होता ।।५।।

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (यजध्यै) मेल करने को (वाचम्) उत्तम शिक्षा युक्त वाणी (जनयन्) प्रकट करता हुआ (उक्थैः) प्रशंसित कर्म्मों से (ऋञ्जसानः) अत्यन्त सिद्ध करता हुआ (पुरुवारः) बहुतों से स्वीकार किया गया (होता) न्याय का देनेवाला (सदनेषु) न्याय के स्थानों में (नमसि) अन्न वा सत्कार के निमित्त (नमः) अन्न को (उप, स्तभायन्) स्तम्भित अर्थात् रोकता हुआ (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य को (आ, कृण्वीत) सिद्ध करै वह अन्न और सत्कार को (इयर्त्ति) प्राप्त होता है ।।५।।

भावार्थः—जो राजा विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त नीति को प्रकट करता सत्कार करने के योग्यों का सत्कार करता दुष्टों को दण्ड देता और प्रयत्न करता हुआ राज्य के पालन से ऐश्वर्य की उन्नति करता है वही सर्वत्र सत्कृत होता है ।।५।।

अब राजा के साथ प्रजाजनों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

धिषा यदि धिषण्यन्तः सरण्यान्त्सदन्तो अद्रिमौशिजस्य गोहे ।
आ दुरोषाः पास्त्यस्य होता यो नो महान्त्संवरणेषु वह्निः ।।६।।

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (नः) हम लोगों के (पास्त्यस्य) गृह में उत्पन्न हुए के (संवरणेषु) आच्छादक अर्थात् ढांपने वाले व्यवहारों में (वह्निः) पदार्थ पहुंचाने वाले अग्नि के सदृश (महान्) बड़ा (दुरोषाः) क्रोध से रहित (होता) देने वाला हो (यदि) जो उस के (अद्रिम्) मेघ के सदृश (औशिजस्य) कामना करने

वाले के सन्तान के (गोहे) ढांपने योग्य गृह में (धिषण्यन्तः) स्तुति करते और (सरण्यान्) सरण्यान् अर्थात् सन्मार्ग को प्राप्त जनों को (आ, सदन्तः) निवास देते हुए (धिया) स्तुति अर्थात् प्रशंसा के साथ आप लोग ग्रहण करो तो आप लोगों को सब सुख प्राप्त होवें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा आदि मनुष्य प्रशंसित पुरुषों की प्रशंसा करें और प्राप्त हुए पुरुषों की रक्षा करें तो वे श्रेष्ठ होवें ॥६॥

अब राजविषयान्तर्गत राजभृत्यों के कर्म को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सत्रा यदीं भार्वरस्य वृष्णः सिषक्ति शुष्मः स्तुवते भराय ।
गुहा यदीमौशिजस्य गोहे प्र यद्धिये प्रायसे मदाय ॥७॥

पदार्थः—(यत्) जो (शुष्मः) बलवान् (सत्रा) सत्य से (ईम्) सब प्रकार (भार्वरस्य) प्रजा के पालन करने वाले राजा के (वृष्णः) बलिष्ठ की (स्तुवते) प्रशंसा करते हुए (भराय) धारण करने वाले के लिये (सिषक्ति) सींचता है और (यत्) जो (गुहा) बुद्धि में (औशिजस्य) कामना करने वालों में चतुर के (गोहे) स्वीकार करने योग्य घर में सत्य का (प्र) सिञ्चन करता है (यत्) जो (प्रयसे) गमन (मदाय) आनन्द और (धिये) बुद्धि के लिये बुद्धि में प्रज्ञान को (ईम्) सब प्रकार से (प्र) अत्यन्त सींचता है वही सम्पूर्ण लाभ को प्राप्त होता है ॥७॥

भावार्थः—जो कर्मचारी लोग धर्म से राज्य का शासन करते हुए राजा के राज्य में सत्य न्याय से प्रजाओं का पालन करते हैं वे अतुल आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥७॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वि यद्वरांसि पर्वतस्य वृण्वे पयोभिर्जिन्वे अपां जवांसि ।
विदद्गौरस्य गवयस्य गोहे यदी वाजाय सुध्यो३ वहन्ति ॥८॥

पदार्थः—हे राजन् ! (यदी) जो (सुध्यः) उत्तम बुद्धि वाले जन (वाजाय) वेग के लिये (गौरस्य) गौर (गवयस्य) गोसदृश के (गोहे) गृह में (वि, वहन्ति) स्वीकार करते हैं तो सुख को प्राप्त होते हैं और (यत्) जो मैं (पर्वतस्य) मेघ के (पयोभिः) जलों के सदृश पदार्थों और (वरांसि) स्वीकार करने योग्य धर्मयुक्त कर्मों का (वृण्वे) स्वीकार करूं और (अपाम्) जलों के (जवांसि) वेगों के सदृश कर्मों को (विदत्) प्राप्त होता हुआ राज्य को (जिन्वे) शोभित करता हूं उनका और मेरा आप सत्कार करो ॥८॥

भावार्थः--इस मन्त्र में वाचकलु०--जैसे गवय के साधर्म्य को गौ धारण करती है वैसे ही धार्मिक पुरुषों के साधर्म्य को राजा लोग धारण करें और जैसे मेघ जलदान से सब को तृप्त करता है वैसे ही राजा अभयदान से सब को सुख देवै ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भद्रा ते हस्ता सुकृतोत पाणी प्रयन्तारा स्तुवते राध इन्द्र ।
का ते निषत्तिः किमु नो ममत्सि किं नोदुदु हर्षसे दातवा उ ॥९॥

पदार्थः--हे (इन्द्र) सब के लिये सुख देनेवाले ! जिन (ते) आपके (सुकृता) श्रेष्ठ धर्म्मयुक्त कर्म्म किया जाता जिनसे वे (हस्ता) हाथ (उत) और (प्रयन्तारा) देते हैं जिनसे वे (भद्रा) कल्याण कर्म करने वाले (पाणी) हाथ (स्तुवते) सत्य बोलते हुए के लिये (राधः) धन देवैं उन (ते) आपको (का) कौन (निषत्तिः) स्थित होते हैं जिससे ऐसी मर्य्यादा वा नीति है (उ) और आप (किम्) क्या (नः) हम लोगों को (ममत्सि) प्रसन्न करते हो और (दातवै) देने को (उ) भी (किम्) क्यों (न, उ) नहीं (उदुत्) उत्तम प्रकार (हर्षसे) आनन्दित होते हो ॥९॥

भावार्थः--हे राजन् ! जिससे आप हम लोगों को आनन्द देते हो इस से आनन्दित निरन्तर होते हो और जिससे आप सुवर्ण हस्त में धारण किये हुए दानसहित हस्तयुक्त हुए योग्यों का सत्कार करते हो इस से आप की कल्याण करनेवाली नीति है ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवा वस्व इन्द्रः सत्यः सम्राड्ढन्ता वृत्रं वरिवः पूरवे कः ।
पुरुष्टुत क्रत्वा नः शग्धि रायो भक्षीय तेऽवसो दैव्यस्य ॥१०॥

पदार्थः--हे (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसित ! जो (सत्यः) श्रेष्ठ पुरुषों में श्रेष्ठ (इन्द्रः) ऐश्वर्य के देने वाले आप सूर्य्य (वृत्रम्) मेघ को जैसे वैसे शत्रुओं को (हन्ता, एवा) नाश करने वाले ही (सम्राट्) सम्पूर्ण भूमि के राजा (पूरवे) धार्मिक मनुष्य के लिये (वस्वः) धन का (वरिवः) सेवन (कः) करैं और जो आप (क्रत्वा) श्रेष्ठ बुद्धि वा उत्तम कर्म्म से (नः) हम लोगों के लिये (रायः) धनों को (शग्धि) देवैं उन्हीं (ते) आप के (दैव्यस्य) श्रेष्ठ सुख प्राप्त कराने वाले (अवसः) रक्षण की उत्तेजना से रक्षित मैं धनों का (भक्षीय) सेवन वा भोग करूं ॥१०॥

भावार्थः--इस मन्त्र में वाचकलु०--जो सूर्य्य के सदृश प्रकाशित

न्याययुक्त अभय का देने वाला और सब प्रकार से सब का रक्षक नायक होवै वही चक्रवर्त्ती होने के योग्य होता है ॥१०॥

फिर उसी राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥

पदार्थः—हे (हरिवः) विद्वानों के सङ्ग में प्रीति करने वाले (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त जिस (धिया) बुद्धि से (ते) आप के लिये (नव्यम्) नवीन (ब्रह्म) विद्यारूप धन (अकारि) किया गया और जिसके (रथ्यः) बहुत रथ आदि ऐश्वर्य्य से युक्त (सदासाः) सेवा करनेवालों के सहित वर्त्तमान हम लोग (स्याम) होवैं इसके लिये (इषम्) अन्न को (नु) निश्चय (गृणानः) विद्या की स्तुति करता हुआ (नु) शीघ्र (ष्टुतः) प्रशंसा को प्राप्त इस (जरित्रे) सम्पूर्णविद्याओं के अध्यापक के लिये (नद्य) नदियों के (नः) सदृश (पीपेः) वृद्धि करो ॥११॥

भावार्थः—जो जिसके लिये विद्या को देवै उसकी सेवा उसको चाहिये कि यथायोग्य करै ॥११॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इसके अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इक्कीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ५ । १० निचृत्त्रिष्टुप् । ३ । ४ विराट्त्रिष्टुप् । ६ । ७ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ८ भुरिक् पङ्क्तिः । ९ स्वराट् पङ्क्तिः । ११ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले बाईसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजगुणों को कहते हैं ॥

यन्न इन्द्रो जुजुषे यच्च वष्टि तन्नो महान्करति शुष्म्या चित् ।
ब्रह्म स्तोमं मघवा सोममुक्था यो अश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (इन्द्रः) अत्यन्त सुख का देनेवाला राजा (नः) हम लोगों की (जुजुषे) सेवा करता है (यत्, च) और जो (महान्) बड़ा ऐश्वर्यवाला (आ, वष्टि) कामना करता है (यः) जो (शुष्मी) अत्यन्त बलवान् (मघवा) अति उत्तम धनयुक्त राजा सूर्य्य (अश्मानम्) मेघ को जैसे वैसे (शवसा)

बल से (ब्रह्म) बहुत धन वा अन्न (स्तोमम्) प्रशंसा करने योग्य (सोमम्) ओषधि आदि पदार्थसमूह से ऐश्वर्य्य और (उक्था) प्रशंसा करने योग्य वस्तुओं को (चित्) भी (बिभ्रत्) धारण करता हुआ राज्य को (एति) प्राप्त होता है (तत्) वह (नः) हम लोगों को सुख (करति) करता है ऐसा जानो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य मेघ को धारण करता और नाश करता है वैसे ही जो राजा श्रेष्ठों को धारण करता और दुष्टों को दण्ड देता है वही हम लोगों के पालन करने योग्य है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वृषा वृषन्धिं चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्यां नृतमः शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्याः पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वृषा) अत्यन्त बलवान् (वृषन्धिम्) बलिष्ठों के धारण करने वाले (चतुरश्रिम्) चतुरंग सेना को प्राप्त जन को (बाहुभ्याम्) भुजाओं से (अस्यन्) फेंकता हुआ (उग्रः) तेजस्वी (नृतमः) अतिशय नायक (शचीवान्) बहुत प्रजावाला (यस्याः) जिस के (पर्वाणि) पूर्ण पालन (श्रिये) लक्ष्मी के लिये समर्थ होते हैं उस (परुष्णीम्) विभागवती (ऊर्णाम्) ढांपने वाली दुर्बुद्धि को (उषमाणः) जलाता हुआ (सख्याय) मित्र होने के वा मित्र के कर्म्म के लिये (विव्ये) कामना करता है वही हम लोगों का राजा होने को योग्य होवे ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो बाहुबल से दुष्टों का तिरस्कार करता हुआ मनुष्यों के उत्तम गुणों से उत्तम और मित्र के सदृश प्रजाओं को पालता है वही लक्ष्मीवान् प्रजावान् न्यायाधीश राजा होने को योग्य होता है ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
दधानो वज्रं बाह्वोरुशन्तं द्याममेन रेजयत्प्र भूम ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (महद्भिः) बड़े गुणों से विशिष्ट (वाजेभिः) वेगयुक्त सेनाजनों और (शुष्मैः) बलों के साथ (महः) बड़ा (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ (देवः) विद्वान् (देवतमः) अत्यन्त विद्वान् राजा (बाह्वोः) भुजाओं के बीच (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्र को (दधानः) धारण करता हुआ (अमेन) बल से सूर्य्य (द्याम्, भूम, च) प्रकाश और पृथिवी को जैसे (प्र, रेजयत्) कम्पाता

है वैसे (उशन्तम्) कामना करते हुए शत्रु को कम्पाता है उस हम लोगों के सुख की कामना करते हुए राजा का हम लोग स्वीकार करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जो योग्य दण्ड से सूर्य्य प्रकाश और भूगोलों को कम्पाते हुए के सदृश प्रजाओं को अधर्म्माचरण से कम्पाता है वही पूर्ण विद्वान् राजा होता है ॥३॥

अब पृथिवी के धारण भ्रमणविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विश्वा रोधांसि प्रवतश्च पूर्वीर्द्यौर्ऋष्वाज्जनिमन्रेजत क्षाः ।
आ मातरा भरति शुष्म्या गोर्नृवत् परिज्मन्नोनुवन्त वाताः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (ऋष्वात्) बड़े प्रकृतिरूप कारण से (जनिमन्) उत्पत्ति में प्रकट हुई (पूर्वीः) प्राचीनकाल से सिद्ध क्रियाओं को (द्यौः) बिजुली और (क्षाः) पृथिवी (आ भरति) अच्छे प्रकार धारण करती है (प्रवतः, च) और नीचे के स्थल में वर्त्तमान (विश्वा) सम्पूर्ण प्रजाओं तथा (रोधांसि) रुकावटों को (नृवत्) मनुष्यों के सदृश (आ) अच्छे प्रकार धारण करती है और जो (शुष्मी) बलवान् अग्नि (गोः) पृथिवी के सम्बन्ध में (मातरा) माता और पितारूप राजा और प्रजाजन तथा अन्तरिक्ष और पृथिवी को मनुष्य के सदृश (रेजत) कम्पाता है जहां (परिज्मन्) सब ओर से व्याप्त अन्तरिक्ष वा विस्तृत भूमि में (वाताः) पवन (नोनुवन्त) अत्यन्त शब्द करते हैं उनको आप लोग जानो ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो प्रकृतिरूप कारण से उत्पन्न हुआ बड़ा अग्नि सम्पूर्ण भूगोलों का आकर्षण करता है माता और पिता के सदृश सबका पालन करता और अन्तरिक्ष में घुमाता है उसको जान के कार्य्य सिद्ध करो ॥४॥

अब भूगोल के भ्रमणदृष्टान्त से राजगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ता तू त इन्द्र महतो महानि विश्वेष्वित्सवनेषु प्रवाच्या ।
यच्छूर धृष्णो धृषता दधृष्वानहिं वज्रेण शवसाविवेषीः ॥५॥

पदार्थः—हे (धृष्णो) अत्यन्त ढीठ (शूर) भयरहित (इन्द्र) परम ऐश्वर्य्य का प्रयोग करने वाले राजन् ! (यत्) जो (विश्वेषु) सम्पूर्ण (सवनेषु) ऐश्वर्य्य से युक्त लोकों में (महतः) आदर करने योग्य (ते) आपके (महानि) बड़े बड़े (प्रवाच्या) उत्तमता से कहने योग्य कार्य्य हैं (ता, इत्) उन्हीं को (तू) तो (दधृष्वान्) धारण कराते हुए (धृषता) अत्यन्त ढिठाई और (शवसा) बल से (वज्रेण) किरण से (अहिम्) मेघ को सूर्य्य जैसे वैसे शस्त्र और अस्त्र से (अविवेषीः) प्राप्त हूजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य किरणों से आकर्षण कर के सम्पूर्ण भूगोलों को धारण करता है वैसे ही बड़ी सत्पुरुष आदि सामग्री को कर के राजा द्वीप और द्वीपान्तरों में स्थित राज्यों को शासन देवै ॥५॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ता तू तें सत्या तुंविनृम्ण विश्वा प्र धेनवंः सिस्रते वृष्ण ऊध्नः ।
अधां ह त्वद्वृंषमणो भियानाः प्र सिन्धवो जवंसा चक्रमन्त ॥६॥

पदार्थः—हे (तुविनृम्ण) बहुत धनवाले और (वृषमणः) बलयुक्त पुरुष के मन के सदृश मन से युक्त राजन् ! जैसे (सिन्धवः) नदियां (जवसा) वेग से (चक्रमन्त) चलती हैं वैसे (त्वत्) आप के समीप से (भियानाः) भय को प्राप्त शत्रु लोग दूर भागते हैं (अधा) इस के अनन्तर जो (ते) आप के (विश्वा) सम्पूर्ण (सत्या) श्रेष्ठ पुरुषों में साधु कर्म्म अर्थात् उत्तम आचरण और (धेनवः) वाणियां (वृष्णः) ब्रह्मचर्य्य आदि से बलिष्ठ (ऊध्नः) विस्तीर्ण बलवालों को (प्र, सिस्रते) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं (ता) उन को (तू) फिर (ह) निश्चय से आप वेग से (प्र) अत्यन्त सिद्ध करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है। जिस राजा की सफल वाणी और धर्मयुक्त कर्म्म वर्त्तमान है उस से गौओं से बछड़ों के सदृश प्रजा तृप्त होती हैं और उस से दुष्ट डरते हैं और यश विस्तृत होता है ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अत्राह॑ ते हरिवस्ता उं देवीरवोंभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसांरः ।
यत्सीमनु प्र मुचो बंद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै ॥७॥

पदार्थः—हे (हरिवः) श्रेष्ठ पुरुषों से और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त ! (अत्र) इस राज्य में (अह) ग्रहण करने में (यत्) जो (ते) आप की (बद्बधानाः) प्रबन्ध करने वाली (स्वसारः) अङ्गुलियों के समान वर्त्तमान बहिनपने का आचरण करती और पढ़ी हुई स्त्रियां (स्यन्दयध्यै) बहाने को (दीर्घाम्) लम्बीभूत (प्रसितिम्) बन्धावट की (अनु, स्तवन्त) अनुकूल स्तुति करती हैं (ताः, उ) उन्हीं (देवीः) प्रकाशित पढ़ी हुई स्त्रियों को (अवोभिः) रक्षण आदि व्यवहारों से (सीम्) सब प्रकार दुःखरूप बन्धन से आप (अनु, प्र, मुच) अच्छे प्रकार छुड़ाइये ॥७॥

भावार्थः—हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे आप लोग ब्रह्मचर्य से

विद्याओं को पढ़कर राजनीति से राज्य का पालन करते हैं वैसे ही आप लोगों की स्त्रियां स्त्रियों का न्याय करें। ऐसा करने पर दृढ़ राजधर्म्म का प्रवन्ध होता है ऐसा जानना चाहिये ॥७॥

अब राजनीति के अध्ययन से अध्यापकविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पिपीळे अंशुर्मद्यो न सिन्धुरा त्वा शमीं शशमानस्य शक्तिः ।
अस्मद्र्यक्छुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः ॥८॥

पदार्थः—हे राजन् (मद्यः) आनन्दित कराने वाली (सिन्धुः) नदी जैसे (न) वैसे जिन आप को (अंशुः) पदार्थ पहुंचाने वाला (आ, पिपीळे) पीड़ा देता है उन (शशमानस्य) अधर्म्म का उल्लङ्घन करने (शुशुचानस्य) अत्यन्त शोधने और (गोः) स्तुति करनेवाले आप के (आशुः) शीघ्र चलनेवाले घोड़े के (न) सदृश (यम्याः) रात्रियां (रश्मिम्) सूर्य्य के प्रकाश को जैसे वैसे जो (अस्मद्र्यक्) हम को प्राप्त होने-वाली (शक्तिः) सामर्थ्य हम लोगों का पालन करे वह और (शमी) उत्तम कर्म्म (तुव्योजसम्) बहुत बल और पराक्रमयुक्त (त्वा) आप को प्राप्त होवे ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे प्रजाजनो ! जो लोग अपने राजा को पीड़ा देवें वे आप लोगों से नाश करने योग्य हैं। और जैसे रात्रि किरणों को नष्ट करती हैं वैसे ही धार्म्मिक राजा के बल को प्राप्त होकर शत्रु दूर होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्मे वर्षिष्ठा कृणुहि ज्येष्ठा नृम्णानि सत्रा सहुरे सहांसि ।
अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य ॥९॥

पदार्थः—हे (सहुरे) सहनशील राजन् ! जो आप के (सत्रा) सत्य (वर्षिष्ठा) अत्यन्त वृद्ध (ज्येष्ठा) प्रशंसा करने योग्य (नृम्णानि) धन (सहांसि) और सहन वर्त्तमान हैं उनको (अस्मे) हम लोगों में (कृणुहि) करो (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये दुःख देने वाले (वनुषः) सेवा करते हुए (मर्त्यस्य) मनुष्य के (वधः) मारने के साधन को (जहि) दूर फेंको और (सुहनानि) उत्तम प्रकार नाश करने योग्य (वृत्रा) मेघ वद्दलों के समान शत्रुओं की सेनाओं का (रन्धि) नाश कीजिये ॥९॥

भावार्थः—हे राजा आदि जनो ! आप लोग मिल के प्रजा को पीड़ा देने वाले के बल का नाश करो और जो आप लोगों के उत्तम वस्तु उनको हम लोगों में धारण कीजिये और जो हम लोगों के उत्तम रत्न उनको आप लोग धरें ॥९॥

अब उपदेशकविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**अस्माकमित्सु शृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान् ।**
**अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरंधीरस्माकं सु मघवन्बोधि गोदाः ॥१०॥**

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुत धन से युक्त (इन्द्र) राजन् (त्वम्) आप (अस्माकम्) हम लोगों के वचनों को (सु, शृणुहि) उत्तम प्रकार सुनो और (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (चित्रान्) अद्भुत (वाजान्) अन्न आदिक पदार्थों को (उप माहि) उपमित कीजिये अर्थात् उत्तमता से मानिये और (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (विश्वाः) सम्पूर्ण (पुरन्धीः) विज्ञानों को धारण करने वाली बुद्धियों को (इत्) ही (इषणः) प्रेरित करो और (अस्माकम्) हम लोगों के (गोदाः) गौ को देनेवाले होते हुए आप हम लोगों को (सु, बोधि) उत्तम प्रकार जानिये ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो लोग हम लोगों के नीति के अनुकूल वचनों को सुनते और हम लोगों को विद्वान् करते हैं उन लोगों की सेवा हम लोगों को चाहिये कि निरन्तर करें ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।**
**अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥**

पदार्थः—हे (हरिवः) श्रेष्ठ विद्यार्थियों और (इन्द्र) यज्ञ के ऐश्वर्य से युक्त ! जिससे आप (स्तुतः) प्रशंसित हुए (जरित्रे) विद्वान् पुरुष के लिये (इषम्) अन्न को देकर (नद्यः) नदियों के (न) सदृश (नु) शीघ्र (पीपेः) वृद्धि कराओ जिससे आप हम लोगों से (गृणानः) प्रशंसा करते हुए (नु) निश्चय (अकारि) किये गये और (ते) आप के लिये (नव्यम्) नवीन नवीन (ब्रह्म) धन दिया जाय इससे (रथ्यः) रथयुक्त (सदासाः) दासों के सहित वर्त्तमान हम लोग (धिया) बुद्धि से आप के मित्र (स्याम) होवें ॥११॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! जिस से आप सब के लिये विद्या देते हो इससे आप के साथ मित्रता करके आप के लिये बहुत धन और अन्न देकर निरन्तर सत्कार करें ॥११॥

इस सूक्त में इन्द्र पृथिवी धारण भ्रमण विद्वान् अध्यापक और उपदेशक के गुण वर्णन करने से इस के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

वामदेव ऋषिः। १—७। ११ इन्द्रः। ८—१० इन्द्र ऋतदेवा देवताः। १—३। ७—९ त्रिष्टुप्। ४। १० निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ५, ६ भुरिक् पङ्क्तिः। ११ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब ग्यारह ऋचा वाले तेईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मंत्र में प्रश्नोत्तरविषय को कहते हैं॥

कथा महामवृधत् कस्य होतुर्यज्ञं जुषाणो अभि सोममूधः।
पिबन्नुशानो जुषमाणो अन्धो ववक्ष ऋष्वः शुचते धनाय॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् (कस्य) किस (होतुः) न्याय आदि कर्म्म करने वाले के (महाम्) बड़े (यज्ञम्) मेल करने योग्य व्यवहार का (जुषाणः) सेवन करता हुआ (कथा) किस प्रकार से (अभि, अवृधत्) बढ़ता और जो (ऊधः) उत्तम (सोमम्) दुग्ध आदि रस को (पिबन्) पीता ऐश्वर्य्य की (उशानः) कामना करता और (अन्धः) अन्न की (जुषमाणः) सेवा करता हुआ (ववक्षे) पदार्थ पहुंचाता है (ऋष्वः) तथा बड़ा हुआ (धनाय) धन के लिये (शुचते) पवित्र कराता वा विचार कराता है॥१॥

भावार्थः—हे विद्वन्! किस से पढ़ कर विद्यार्थी कैसे बढ़ैं कैसे विद्या का सेवन करैं और कौन विद्वान् होवैं इस प्रश्न का ब्रह्मचर्य्य से वीर्य्य का निग्रह करके विद्या की कामना करता हुआ आचार्य्य के समीप जा और सेवा करके नियत आहार विहार युक्त हुआ रोगरहित होकर विद्या की प्राप्ति के लिये अत्यन्त प्रयत्न करता है यह उत्तर है॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

को अस्य वीरः सधमादमाप समानंश सुमतिभिः को अस्य।
कदस्य चित्रं चिकिते कदूती वृधे भुवच्छशमानस्य यज्योः॥२॥

पदार्थः—हे विद्वन् (कः) कौन (वीरः) विद्या से प्राप्त शरीर और आत्मबल-युक्त (अस्य) इस अध्यापक वा राजा के (सधमादम्) साथ आनन्द को (आप) प्राप्त होवै (कः) कौन वीर (अस्य) इसके (सुमतिभिः) श्रेष्ठ विद्वानों के साथ (चित्रम्) अद्भुत विज्ञान को (चिकिते) जानता है (कत्) कब (अस्य) इस की विद्या को (सम्, आनंश) प्राप्त होता है और कौन वीर (ऊती) रक्षण आदि से (शशमानस्य) प्रशंसित (यज्योः) संगम करने योग्य सत्य व्यवहार की (वृधे) वृद्धि के लिये (कत्) कब (भुवत्) होवै॥२॥

भावार्थः— हे विद्वन् वा राजन् ! कौन किसके साथ पढ़ै, कौन किसके साथ न्याय करै वा युद्ध करै, कौन इन में श्रेष्ठ, इस प्रश्न का जो प्रशंसित कर्म्मों के अनुष्ठान और वृद्धि करने वाले होवैं, यह उत्तर है ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कथा शृणोति हूयमानमिन्द्रः कथा शृण्वन्नवसामस्य वेद ।
का अस्य पूर्वीरुपमातयो ह कथैनमाहुः पपुरिं जरित्रे ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (इन्द्रः) अध्यापक वा राजा (हूयमानम्) स्पर्द्धा करते हुए को (कथा) किस प्रकार (शृणोति) सुनता है और (शृण्वन्) सुनता हुआ (अस्य) इसके (अवसाम्) रक्षण आदिकों की स्पर्द्धा करते हुए को (कथा) किस प्रकार से (वेद) जानै (अस्य) इसकी (पूर्वीः) प्राचीन (उपमातयः) उपमा (ह) ही (काः) कौन हैं अनन्तर (एनम्) इसको (जरित्रे) विद्वान् के लिये (पपुरिम्) पालन करने वाला (कथा) किस प्रकार (आहुः) कहते हैं ऐसा पूंछना चाहिये ॥३॥

भावार्थः— जो विद्यार्थी और राजा के जन यथार्थवक्ता पुरुषों के वचनों वा शास्त्रों को उत्तम प्रकार सुन मान और निश्चय करके पुनः कर्म्मों का आरम्भ करते हैं वे ही सम्पूर्ण जानने योग्य को जानते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कथा सबाधः शशमानो अस्य नशदभि द्रविणं दीध्यानः ।
देवो भुवन्नवेदा म ऋतानां नमो जगृभ्वाँ अभि यज्जुजोषत् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (अस्य) इसका (सबाधः) बाधसहित अर्थात् दुःख के सहित वर्त्तमान (कथा) किस प्रकार से (नशत्) नष्ट होता है (द्रविणम्) धन का (अभि, दीध्यानः) सब ओर से प्रकाश और (शशमानः) प्रशंसा करता हुआ (देवः) विद्वान् किस प्रकार (भुवत्) होवै (नवेदाः) नहीं जाननेवाला जन (मे) मेरे (ऋतानाम्) सत्य व्यवहारों के सम्बन्ध में (नमः) अन्न को (जगृभ्वान्) ग्रहण किये हुए (यत्) जो जन वह किस प्रकार से (अभि जुजोषत्) सेवन करता है ॥४॥

भावार्थः—हे अध्यापक वा राजन् ! किस प्रकार से इस विद्या वा अभय को प्राप्त होवै और किस प्रकार से ये विद्वान् होवैं इस प्रश्न का, जो सत्कार से श्रेष्ठ पुरुषों से शिक्षा को ग्रहण करके धर्म्म का सेवन करैं, यह उत्तर है ॥४॥

अब प्रश्नोत्तर से मैत्रीकरणविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

कथा कदस्या उषसो व्युष्टौ देवो मर्त्तस्य सख्यं जुजोष।
कथा कदस्य सख्यं सखिभ्यो ये अस्मिन्कामं सुयुजं ततस्रे॥५॥

पदार्थः—हे विद्वज्जनो (देवः) सूर्य्य के सदृश विद्वान् (अस्याः) इस वर्त्तमान (उषसः) प्रातःकाल के (व्युष्टौ) विशेष प्रकाश में (मर्त्तस्य) मनुष्य के (सख्यम्) मित्रपने वा मित्र के कर्म्म का (कत्) कब (कथा) किस प्रकार (जुजोष) सेवन करता है उन (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (अस्य) इस का (सख्यम्) मित्रपन वा मित्रकर्म्म (कत्) कब (कथा) किस प्रकार से होने के योग्य है (ये) जो (अस्मिन्) इस मित्रपने रूप कर्म्म में (सुयुजम्) उत्तम प्रकार मिलाने के योग्य (कामम्) इच्छा का (ततस्रे) विस्तार करते हैं॥५॥

भावार्थः—हे विद्वानो! मनुष्यों को किसके साथ कब मित्रता और किस प्रकार मित्रता का निर्वाह करना चाहिये और मित्रों के साथ कैसे वर्त्तना चाहिये इस प्रश्न का यह उत्तर है कि जब उत्तम प्रकार परीक्षा करें तब उसके साथ मित्रता की, और जो इस जगत् में सब के साथ मित्राचार करने की कामना करते हैं उन के साथ सदा ही मित्रता की रक्षा करनी चाहिये॥५॥

फिर भी मैत्रीकरणविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

किमादमंत्रं सख्यं सखिभ्यः कदा नु ते भ्रात्रं प्र ब्रवाम।
श्रिये सुदृशो वपुरस्य सर्गाः स्वर्ण चित्रतममिष आ गोः॥६॥

पदार्थः—हे विद्वन् वा राजन्! (ते) आप के (सखिभ्यः) मित्रों के लिये (भ्रात्रम्) भ्रातृसम्बन्धी कर्म्म के सदृश वर्त्तमान (सख्यम्) मित्रपने वा मित्र के कर्म्म का (कदा) कब (नु) शीघ्र (प्र, ब्रवाम) उपदेश देवें (आत्) इसके अनन्तर (किम्) किस (अमत्रम्) सुपात्र का आप के मित्रों के लिये उपदेश देवें और जो (सुदृशः) उत्तम प्रकार देखने योग्य (अस्य) इसकी (श्रिये) सेवा वा धन के लिये (आ, गोः) पृथिवी से लेकर (सर्गाः) सृष्टियां (वपुः) उत्तम रूपयुक्त शरीर की (इषे) इच्छा के लिये हैं उनका विज्ञान (चित्रतमम्) अत्यन्त आश्चर्य्यरूप (स्वः) सुख के (न) सदृश वर्त्तमान है ऐसा उपदेश देवें॥६॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि यथार्थवक्ता विद्वानों से मित्रता सदा ही करें जिससे वे उत्तम उपदेश से सब को सृष्टिविद्या के जाननेवाले धर्म्मात्मा करके बहुत ही उत्तम विज्ञान को देकर सुखी करें॥६॥

अथ शत्रुनिवारण के अनुकूल सेना की उन्नति करने के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

द्रुहं जिघांसन् ध्वरसमनिन्द्रां तेतिक्ते तिग्मा तुजसे अनीका ।
ऋणा चिद्यत्र ऋणया न उग्रो दूरे अज्ञाता उषसो बबाधे ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्र) जहां (नः) हम लोगों का जो (उग्रः) तीव्र प्रताप (दूरे) दूर स्थान में (अज्ञाताः) नहीं जानी गई शत्रुओं की सेनाओं को (उषसः) प्रातःकाल से अन्धकार को जैसे सूर्य्य वैसे (बबाधे) विलोता है (ऋणयाः) प्राप्त सेना से (चित्) भी (तुजसे) बल के लिये अथवा शत्रुओं के नाश के लिये (तिग्मा) तीव्र (ऋणा) प्राप्त (अनीका) शत्रुओं से प्राप्त नहीं होने योग्य सैन्यसमूहों को (तेतिक्ते) अत्यन्त तीक्ष्ण करता है (द्रुहम्) द्रोह करने और (ध्वरसम्) हिंसा करने वाले को (जिघांसन्) नष्ट करने की इच्छा करता हुआ (अनिन्द्राम्) ईश्वरसम्बन्धरहित मार्ग को (बबाधे) विलोता है ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे राजन् ! जो लोग उत्तम प्रकार शिक्षित, श्रेष्ठ, शत्रुओं को शीघ्र पराजय करने वाली सेनाओं को सिद्ध करें जिन से दूर स्थान में भी वर्त्तमान शत्रु लोग डरें, दारिद्र्य और भय को दूर कर अपनी प्रजा को आनन्द देकर दुष्टों का निरन्तर नाश करें उन का आप सदा ही सत्कार करो ॥७॥

अथ सत्याचरणोत्तमताविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति ।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः ॥८॥

पदार्थः—हे राजन् ! जिस (ऋतस्य) सत्य आचार की (पूर्वीः) प्राचीन (शुरुधः) शीघ्र रोकने वाली अपनी सेना (सन्ति) हैं जिस (ऋतस्य) सत्य की (धीतिः) धारण करने वाली बुद्धि (वृजिनानि) बलों को प्राप्त होकर शत्रुओं का (हन्ति) नाश करती है और जिस (ऋतस्य) सत्य की (श्लोकः) वाणी (बधिरा) बधिर (कर्णा) कर्णों का (ततर्द) नाश करती है और जो अन्य जनों को (बुधानः) जनाता और (शुचमानः) पवित्र होकर पवित्र करता हुआ (आयोः) जीवन के उपायों का उपदेश देता है उसका (हि) निश्चय से गुरु के सदृश सत्कार करो ॥८॥

भावार्थः—हे अध्यापक वा राजन् ! जो जितेन्द्रिय दुष्ट आचार के रोकने और सत्य के प्रचार करने वाले सत्यवाणीयुक्त और बधिर के सदृश वर्त्तमान अज्ञ पुरुषों को बोध देते हुए ब्रह्मचर्य्य आदि उपदेश से अधिक

अवस्था वाले करते हुए क्लेश और शत्रुओं के नाश करने वाले होवें वे ही अपने आत्मा के सदृश आदर करने योग्य होवें ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि ।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ऋतस्य) सत्य धर्म्म के आचरण से ही (दृळ्हा) दृढ़ (धरुणानि) जलों के सदृश शान्त आचार (पुरूणि) बहुत (चन्द्रा) आनन्द देने वाले सुवर्ण आदि (वपुषे) सुन्दर रूपयुक्त शरीर के लिये (वपूंषि) रूपों को प्राप्त (सन्ति) हैं और (ऋतेन) सत्य आचरण से (पृक्षः) उत्तम प्रकार स्पर्श होने योग्य अन्न आदिक (दीर्घम्) चिरकाल रहने वाले आयु को (इषणन्त) प्राप्त होते हैं (ऋतेन) सत्य आचरण से (गावः) गौवें जैसे बछड़ों के स्थानों को वैसे उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियां (ऋतम्) सत्य ब्रह्म को (आ, विवेशुः)प्राप्त होती हैं ऐसा जानो ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे जल से प्राणधारण अन्न आदि की उत्पत्ति और सुन्दर और दीर्घ अवस्था होती है वैसे ही सत्य आचरण से सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य विद्या और बहुत काल पर्य्यन्त जीवन होता है जिस से निरन्तर सत्य ही का आचरण करो ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋतं येमान ऋतमिद्वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः ।
ऋताय पृथ्वी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (ऋताय) सत्य के लिये (बहुले) बहुत पदार्थों से युक्त (गभीरे) गम्भीर आश्रय में (पृथ्वी) भूमि और अन्तरिक्ष तथा जैसे (ऋताय) सत्य और जल के लिये (परमे) अति उत्तम (धेनू) गौओं के सदृश वर्त्तमान (दुहाते) प्रातःकाल वैसे (ऋतम्) सत्य को जो (येमानः) नियम करते हुए और वैसे (ऋतम्) सत्य की जो (वनोति) याचना करता है तथा (ऋतस्य) सत्य के जो (शुष्मः) बल को (तुरयाः) शीघ्रता को प्राप्त (उ) और (गव्युः) निजसम्बन्धिनी पृथिवी वा वाणी को चाहने वाला है वे (इत्) ही सर्वदा पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो लोग मनुष्य के शरीर को प्राप्त होकर नियम से सत्य आचार सत्य याञ्चा कर के शीघ्र धार्मिक होते हैं वे भूमि और सूर्य्य के सदृश सब की कामना की पूर्ति कर सकते हैं ॥१०॥

फिर प्रशंसापरत्व से पूर्व विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥

पदार्थः—हे (हरिवः) बहुत धनयुक्त (इन्द्र) सत्य ऐश्वर्य्य के देने वाले जिस (ते) आप का (नव्यम्) नवीन (ब्रह्म) बड़ा विद्यारूप धन जिसने (अकारि) किया उस (जरित्रे) विद्या की इच्छा करने वाले के लिये (स्तुतः) सत्य आचरण से प्रशंसित (नद्यः) नदियों के (न) सदृश (इषम्) विज्ञान को देकर (नु) शीघ्र (पीपेः) पालन करें और सत्य का (गृणानः) प्रचार करता हुआ धर्म्म को प्राप्त कराय के (नु) निश्चय पालन करो और जैसे हम लोग (धिया) बुद्धि से और पुरुषार्थ से (रथ्यः) रथयुक्त और (सदासाः) दासों के सहित वर्त्तमान (स्याम) होवें वैसे आप हूजिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो जैसे आप लोगों में धर्म्मयुक्त नीति का स्थापना करें उनकी सेवा करके मित्र हो के सम्पूर्ण विद्याओं को जानिये ॥११॥

इस सूक्त में प्रश्न उत्तर मैत्री शत्रुओं का निवारण सेना की उन्नति और सत्य आचरण की उत्तमता का वर्णन करने से इस के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ५ । ७ त्रिष्टुप् । ३ । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ८ भुरिक्पङ्क्तिः । ६ स्वराट् पङ्क्तिः । ११ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १० निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले चौबीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मंत्र में ब्रह्मचर्य्यवान् के पुत्र की प्रशंसा कहते हैं ॥

का सुष्टुतिः शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्त्तत् ।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः ॥१॥

पदार्थः—हे (जनासः) विद्वान् वीर पुरुषो ! जो (वीरः) विद्या और शौर्य्य आदि गुणों से व्याप्त जन (गृणते) प्रशंसित कर्म्मवान् के लिये (वसूनि) द्रव्यों को (ददिः) देने वाला वर्त्तमान है (सः) वह (हि) जिससे (निष्षिधाम्) अत्यन्त शासन

करने वालों के मङ्गलाचारों से युक्त (नः) हम लोगों का (गोपतिः) पृथिवीपति अर्थात् राजा हो (का) कौन (सुष्टुतिः) उत्तम प्रशंसा और (शवसः) बहुत बलवान् के (सूनुम्) पुत्र को (अर्वाचीनम्) इस समय वाले युवावस्थायुक्त (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले का (आ, ववर्त्तत्) वर्त्ताव करावै और कौन (राधसे) धन और ऐश्वर्य्यवान् के लिये धन के योग का वर्त्ताव करावै ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो पूर्ण ब्रह्मचर्य्य को किये हुए का पुत्र और वह स्वयं भी पूर्ण ब्रह्मचर्य्य और विद्या से युक्त और प्रशंसित आचरण करने और सुख देने वाला होवै वह ही आप का और हम लोगों का राजा हो ॥१॥

अब पूर्वोक्त विषय के अन्तर्गत धनुर्वेदाध्ययन के फल को
अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स वृत्रहत्ये हव्यः स ईड्यः स सुष्टुत इन्द्रः सत्यराधाः ।
स यामन्ना मघवा मर्त्याय ब्रह्मण्यते सुष्वये वरिवो धात् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (मघवा) सत्कृत राज्ययुक्त (सुष्वये) ऐश्वर्य्य की प्राप्ति का अनुष्ठान करने वाले और (ब्रह्मण्यते) अपने धर्म से धन की इच्छा करने वाले (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (वरिवः) सेवन को (आ, धात्) धारण करै (सः) वह (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवाला (यामन्) मार्ग में (सः) वह (सत्यराधाः) न्याय से इकट्ठे किये हुए सत्यधन से युक्त (सः) वह (वृत्रहत्ये) बड़े सङ्ग्राम में (सुष्टुतः) सर्वत्र प्राप्त उत्तम कीर्त्तियुक्त (सः) वह (ईड्यः) प्रशंसा करने योग्य और वह (हव्यः) पुकारने योग्य होवै ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य बाल्यावस्था से लेकर उत्तम चेष्टायुक्त विद्वानों की सेवा करने वाला उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त न्यायमार्ग का अनुगामी धनुर्वेद का जानने वाला चतुर और युद्ध में भयरहित होवै उसी को राजा करो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके रिरिक्वांसस्तन्वः कृण्वत त्राम् ।
मिथो यत्त्यागमुभयासो अग्मन्नरस्तोकस्य तनयस्य सातौ ॥३॥

पदार्थः—हे (रिरिक्वांसः) रेचन कराते हुए (नरः) नायक लोगो (समीके) उत्तम प्रकार प्राप्त सङ्ग्राम में (यत्) जिसकी विद्वान् लोग (वि) विशेष करके (ह्वयन्ते) स्पर्द्धा करते हैं (तम्) उस को (इत्) ही (तन्वः) शरीर का (त्राम्) रक्षक

(कृण्वत) करिये और हे (नरः) राज्य के नायको ! (तोकस्य) शीघ्र उत्पन्न हुए और (तनयस्य) कुमारावस्था को प्राप्त बालक के (सातौ) उत्तम प्रकार विभाग में (उभयासः) दोनों ओर वर्त्तमान और दुःख का (त्यागम्)त्याग तथा (मिथः) परस्पर शत्रुओं को नष्ट करते हुए जन (अग्मन्) प्राप्त हों उनका सेवन करो ॥३॥

भावार्थः—हे सेना के जनो ! जो भृत्यों का रक्षक उत्साहयुक्त और शूरवीर होवै उसका सत्कार करके और जो सङ्ग्राम को छोड़के भागते हैं उनका नहीं सत्कार करके और अत्यन्त दण्ड देकर विजय को प्राप्त होओ ॥३॥

अब अधर्म्मत्याग से तथा अच्छे कर्म्म से प्रज्ञा और ऐश्वर्यवृद्धि विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

क्रतूयन्ति क्षितयो योग उग्राशुषाणासो मिथो अर्णसातौ ।
सं यद्विशोऽववृत्रन्त युध्मा आदिन्नेम इन्द्रयन्ते अभीके ॥४॥

पदार्थः—हे(उग्र) तीक्ष्णस्वभावयुक्त राजन् (यत्)जो(क्षितयः) मनुष्य (योगे) मिलने वा यम नियमादिकों के अनुष्ठान में (आशुषाणासः) शीघ्र करने वाले (मिथः) परस्पर प्रीतियुक्त हुए (अर्णसातौ) प्राप्त विभाग में (क्रतूयन्ति) बुद्धि और कर्म्मों की इच्छा करते हैं और (विशः) प्रजा (इन्द्रयन्ते) स्वामी करती हैं (युध्माः) युद्ध करने वाले (नेमे) नायक अर्थात् अग्रणी लोग (अभीके) समीप में (सम्, अववृत्रन्त) विरोध से धन को प्राप्त हों और (आत्, इत्) उसी समय आपके भृत्य हों ॥४॥

भावार्थः—योगाभ्यास के विना बुद्धि नहीं बढ़ती है और बुद्धि के विना धन और आत्मा की सिद्धि नहीं होती है और विद्या पुरुषार्थ और न्याय के विना प्रजा का पालन नहीं कर सकते हैं ॥४॥

अब योग्य आहार विहार विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आदिद्ध नेम इन्द्रियं यजन्त आदित्पक्तिः पुरोळाशं रिरिच्यात् ।
आदित्सोमो वि पपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभं यजध्यै ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिन के (पुरोळाशम्) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न को (पक्तिः) पाक (रिरिच्यात्) बढ़ावें वे (नेमे) अन्य जन (आत्) अनन्तर (इत्) ही (इन्द्रियम्) धन को (यजन्ते) प्राप्त होते हैं और जिस का (आत्) अनन्तर (इत्) ही (सोमः) ऐश्वर्य्य (असुष्वीन्) जो प्राणों को प्राप्त होते हैं उन को (वि, पपृच्यात्) संयुक्त हो वह (आत्) अनन्तर (इत्) ही (यजध्यै) मिलने के लिये (वृषभम्) बलिष्ठ

का (जुजोष) सेवन करता है (आत्) अनन्तर (इत्, ह) ही वे सब राज्य और बल को प्राप्त होने के योग्य होवें ॥५॥

भावार्थः—जो जन उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्नों का पाक कर के रुचिपूर्वक भोजन करते हैं वे बल को प्राप्त हो के रोग से रहित होने के योग्य होवें और ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो के धर्म्म और यथार्थवक्ता पुरुषों की सेवा करें ॥५॥

अब शत्रुजनों को जीतने के लिये राज्यप्रबन्ध को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कृणोत्यस्मै वरिवो य इत्थेन्द्राय सोममुशते सुनोति।
सध्रीचीनेन मनसाविवेनन्तमित्सखायं कृणुते समत्सु ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (अस्मै) इस (सोमम्) ऐश्वर्य्य की (उशते) कामना करने वाले (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले राजा के लिये (इत्था) इस प्रकार से (वरिवः) सेवन को (कृणोति) करता है (सध्रीचीनेन) ज्ञापक वा अनुष्ठापक अर्थात् समझाने वा आरम्भ करने वाले के सहित (मनसा) अन्तःकरण से (अविवेनन्) कामनारहित होता हुआ ऐश्वर्य्य को (सुनोति) उत्पन्न करता और (समत्सु) संग्राम में (सखायम्) मित्र को (कृणुते) करता है (तम्) उस को (इत्) ही राजा और प्रधान करो ॥६॥

भावार्थः—हे राजन्! जो मनुष्य अपने राज्य के भक्त धर्म्म का सेवन और ऐश्वर्य्य की कामना करने तथा अधर्म्म को छोड़ने वाले संग्राम में परस्पर अपने जनों में मैत्री करते हुए विद्वान् जन होवें वे ही आप को राजशासन में संस्थापन करने योग्य हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

य इन्द्राय सुनवत्सोममद्य पचात्पक्तीरुत भृज्जाति धानाः।
प्रति मनायोरुचथानि हर्य्यन् तस्मिन्दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्रः ॥७॥

पदार्थः—(यः) जो (इन्द्रः) राजा (अद्य) आज (इन्द्राय) सुख देने वाले द्रव्य और ऐश्वर्य्य के लिये (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (सुनवत्) उत्पन्न करे (पक्तीः) पाकों को (पचात्) पकावे (उत) और (धानाः) यवों को (भृज्जाति) भूंजे (मनायोः) प्रशंसा की कामना करने वाले की (उचथानि) रुचि करने वालों की (हर्य्यन्) कामना करता हुआ (तस्मिन्) उस में (वृषणम्) बल करने वाले (शुष्मम्) बलयुक्त पुरुष को (प्रति, दधत्) धारण करे वह बहुत जीतने वाली सेना को प्राप्त होवे ॥७॥

भावार्थः—जो राजपुरुष राज्य के लिये ऐश्वर्य को बल और सेना के

लिये भोजन आदि सामग्रियों को धारण करें वे प्रीतिकारक सुखों को प्राप्त होवें ॥७॥

अब शत्रुओं के विजय से राज्यादि पदार्थों के रक्षण विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यदा समर्यं व्यचेदृघावा दीर्घं यदाजिमभ्यख्यदर्यः ।
अचिक्रदद्वृषणं पत्न्यच्छा दुरोण आ निशितं सोमसुद्भिः ॥८॥

पदार्थः—(यदा) जिस काल में (अर्य्यः) स्वामी ईश्वर अर्थात् राजा (समर्य्यम्) संग्राम को (वि, अचेत) चेतन कराता है (यत्) जो (ऋघावा) शत्रुओं का नाश करने वाला (दीर्घम्) लम्बे बहुत (आजिम्) फेंकते हैं शस्त्र जिस में उस संग्राम की (अभि, अख्यत्) प्रसिद्धि करावे और (वृषणम्) बलिष्ठ के प्रति (अचिक्रदत्) अत्यन्त चिल्लाता है तब (दुरोणे) गृह में (पत्नी) स्त्री के सदृश (सोमसुद्भिः) ऐश्वर्य्य वा ओषधियों के समूह को उत्पन्न करने वालों के साथ (आ, निशितम्) अच्छे प्रकार निरन्तर तीक्ष्ण (अच्छा) अच्छा अत्यन्त शब्द करता है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे पतिव्रता स्त्री सम्पूर्ण ऐश्वर्यों की उत्तम प्रकार रक्षा और उन्नति करके पति आदि को आनन्द देती है वैसे ही विद्या और विनययुक्त राजा अपने प्रजाजनों की अच्छे प्रकार रक्षा और ऐश्वर्य्य की वृद्धि करके सब सज्जनों की रक्षा करता है ॥८॥

अब ज्येष्ठ कनिष्ठ के व्यवहार विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भूयसा वस्नमचरत् कनीयोऽविक्रीतो अकानिषं पुनर्यन् ।
स भूयसा कनीयो नारिरेचीद्दीना दक्षा वि दुहन्ति प्र वाणम् ॥९॥

पदार्थः—जो (अविक्रीतः) नहीं बेचा गया (भूयसा) बहुत प्रकार से (कनीयः) अत्यन्त अल्प (वस्नम्) हट्टस्रस्तर अर्थात् हटिया में बिछाने का (अचरत्) आचरण करे (सः) वह (पुनः) फिर (यन्) जाता हुआ (भूयसा) बहुत भाव से (कनीयः) अत्यन्त न्यून कर्म्म को (न) नहीं (अरिरेचीत्) रीता करै और जो (दीनाः) क्षीण (दक्षाः) चतुर जन (वाणम्) वाणी को (वि, प्र, दुहन्ति) अच्छे प्रकार पूरित करते हैं उन को मैं (अकानिषम्) प्रदीप्त करूं और कामना करूं ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य अनेक प्रकार के व्यापार करने वाले अभिमान-रहित बुद्धिमान् हुए विद्या और शिक्षा से पूर्ण वाणी को करते हैं वे छोटों को पाल सकते हैं ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः ।
यदा वृत्राणि जङ्घनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (कः) कौन (दशभिः) दश अंगुलियों और (धेनुभिः) दोहने वाली गौओं के सदृश वाणियों से (मम) मेरे (इमम्) इस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्य को (क्रीणाति) खरीदता है (यदा) जब जो (वृत्राणि) धनों को (जङ्घनत्) अत्यन्त प्राप्त होता है (अथ) अनन्तर (एनम्) इस को (मे) मेरे लिये (पुनः) फिर (ददत्) देता है तभी ऐश्वर्य्य बढ़े ॥१०॥

भावार्थः—कौन ऐश्वर्य्य को बढ़ा सकै इस प्रश्न का, जो सब प्रकार पुरुषार्थयुक्त उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी से युक्त है यह उत्तर है, क्योंकि जो आदि में ऐश्वर्य्य को प्राप्त होवै वही औरों को देने को योग्य होवै ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू ष्टुत इन्द्र नू गृणान इषं जरित्रे नद्यो३ न पीपेः ।
अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥११॥

पदार्थः—हे (हरिवः) प्रशंसा करने योग्य भृत्यों से युक्त (इन्द्र) ऐश्वर्य्य की इच्छा करने वाले (स्तुतः) शुद्ध व्यवहार से प्रशंसित (गृणानः) पुरुषार्थ की स्तुति करते हुए आप (जरित्रे) याचना करने वाले वा जिस की याचना नहीं की गई उस के लिये (नद्यः) नदियों के (न) सदृश (इषम्) अन्न को (नु) निश्चय (पीपेः) बढ़ाओ तिससे (ते) आप का हम लोगों से (धिया) व्यवहार को जानने वाली बुद्धि वा उत्तम किये हुए कर्म्म से (नव्यम्) देश देशान्तर वा द्वीप द्वीपान्तर से नवीन (ब्रह्म) बहुत धन (अकारि) किया जाता है और आप के साथ (रथ्यः) बहुत रथ आदि से युक्त (सदासाः) भृत्यों के सहित हम लोग ऐश्वर्य्य वाले (नु) शीघ्र (स्याम) होवैं ॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! यदि आप लोग धन की इच्छा करो तो धर्म्मयुक्त पुरुषार्थ से योग्य क्रिया को निरन्तर करो ॥११॥

इस सूक्त में ब्रह्मचर्य्य वाले के पुत्र की प्रशंसा, अधर्म्म के त्याग से और उत्तम कर्म्म से बुद्धि और ऐश्वर्य्य की वृद्धि, नियमित आहार विहार, शत्रु का विजय और ज्येष्ठ कनिष्ठ का व्यवहार कहा गया, इस से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौबीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ निचृत् पङ्क्तिः। २। ८ स्वराट् पङ्क्तिः। ४। ६ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ३। ५। ७ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब आठ ऋचा वाले पच्चीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में प्रश्नोत्तरविषय का आरम्भ किया जाता है॥

को अद्य नर्य्यो देवकाम उशन्निन्द्रस्य सख्यं जुजोष।
को वा महेऽवसे पार्य्याय समिद्धे अग्नौ सुतसोम ईट्टे॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् (अद्य) इस समय (कः) कौन (देवकामः) विद्वानों की कामना करने वाला (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त के (सख्यम्) मित्रत्व की (उशन्) कामना करता हुआ (नर्य्यः) मनुष्यों में श्रेष्ठ धर्म्म का (जुजोष) सेवन करता है (कः, वा) अथवा कौन (महे) बड़े (पार्य्याय) दुःख के पार उतारने वाले (अवसे) रक्षण आदि के लिये (समिद्धे) प्रसिद्ध (अग्नौ) अग्नि में (सुतसोमः) सोम-रस को उत्पन्न करने वाला हुआ ऐश्वर्य्य को (ईट्टे) प्राप्त होता है यह हम लोग पूछते हैं॥१॥

भावार्थः—जो विद्या और मित्रता की कामना करनेवाला सम्पूर्ण जगत् का प्रिय आचरण करता और सब का रक्षण करता हुआ अग्नि में होम आदि से प्रजा का हित करै वही जगत् का हित चाहने वाला है यह उत्तर है॥१॥

अब राजकर्त्तव्यविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः।
क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती॥२॥

पदार्थः—हे विद्वानो (कः) कौन (वचसा) वचन से (सोम्याय) सोमरूप ऐश्वर्य्य की सिद्धि करने वाले के लिये (नानाम) नम्र होता है (कः, वा) अथवा कौन वचन से सोमरूप ऐश्वर्य्य की सिद्धि करने वाले के लिये (मनायुः) विज्ञान की कामना करता हुआ (भवति) होता है (कः) कौन (उस्राः) किरणों के सदृश सब को गुणों से (वस्ते) चाहता है (कः) कौन (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य्ययुक्त के (युज्यम्) जोड़ने योग्य (सखित्वम्) मित्रपने को (कः) अथवा कौन (कवये) बुद्धिमान् के लिये (ऊती) रक्षण आदि कर्म्म से (भ्रात्रम्) भ्रातृपने की (वष्टि) कामना करता है इस का उत्तर कहो॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मन, कर्म्म और वचन से नम्र होता है, जो किरणों के तुल्य प्रकाशस्वरूप व्यवहारयुक्त जो जगदीश्वर के साथ मित्रता करता तथा सब के साथ भ्रातृपने की रक्षा करता और जो विद्वानों के लिये हित करता है वही सम्पूर्ण इष्टफल को प्राप्त होता है ॥२॥

अब उत्तम मध्यम और निकृष्टों को कर्त्तव्यकर्मविषय का उपदेश अगले मन्त्र में दिया है ॥

को देवानामवो अद्या वृणीते क आदित्याँ अदितिं ज्योतिरीट्टे ।
कस्याश्विनाविन्द्रो अग्निः सुतस्यांशोः पिबन्ति मनसाविवेनम् ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वानो (कः) कौन (अद्य) आज (देवानाम्) विद्वानों के (अवः) रक्षण आदि का (वृणीते) स्वीकार करता है (कः) कौन (आदित्यान्) मासों के सदृश वर्त्तमान पूर्ण विद्वानों तथा (अदितिम्) पृथिवी और (ज्योतिः) प्रकाश की (ईट्टे) अधिक इच्छा करता है (कस्य) किस (सुतस्य) उत्पन्न (अंशोः) प्राप्त होने योग्य बड़ी ओषध के रस के (मनसा) विज्ञान से (अविवेनम्) दुष्ट कामनाओं से रहित जैसे हो वैसे (अश्विनौ) अन्तरिक्ष पृथिवी (इन्द्रः) सूर्य्य और (अग्निः) बिजुली वा प्रसिद्धरूप अग्नि रस को (पिबन्ति) पीते हैं ॥३॥

भावार्थः—जो विद्वानों के सङ्ग को करते हैं वे सूर्य्य आदि के सदृश सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करा सकते हैं और जो नहीं कामना करने योग्य वस्तु की नहीं कामना करते हैं वे कामनाओं की सिद्धि से युक्त होते हैं यह उत्तर है ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तस्मा अग्निर्भारतः शर्म्म यंसज्ज्योक्पश्यात्सूर्य्यमुच्चरन्तम् ।
य इन्द्राय सुनवामेत्याह नरे नर्य्याय नृतमाय नृणाम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (अग्निः) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (भारतः) धारण करने वाले का यह धारण करने वाला (शर्म्म) गृह के सदृश सुख को (यंसत्) प्राप्त होवे वह (उच्चरन्तम्) ऊपर को घूमते हुए (सूर्य्यम्) सूर्य्य मण्डलको (ज्योक्) निरन्तर (पश्यात्) देखै (तस्मै) उस (नृणाम्) विद्या और उत्तमशीलयुक्त मनुष्यों के (नृतमाय) अत्यन्त मुखिया (नरे) नायक (नर्य्याय) मनुष्यों में कुशल (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य्यवान् के लिये (इति) ऐसा (आह) कहता है उसको हम लोग (सुनवाम) उत्पन्न करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो गृह में निवास के सदृश विद्या में निवास करै और ब्रह्मचर्य से खगोल आदि विद्या को प्राप्त होवै और मनुष्यों के लिये हित का उपदेश देवै वही उत्तम होता सौ वर्ष पर्यन्त जीवता और सूर्य्य आदि को देखता हुआ सब सुख को देवै ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न तं जिनन्ति बहवो न द्भ्रा उर्वस्मा अदितिः शर्म यंसत् ।
प्रियः सुकृत्प्रिय इन्द्रे मनायुः प्रियः सुप्रावीः प्रियो अस्य सोमी ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इन्द्रे) अत्यन्त ऐश्वर्य्य होने पर (प्रियः) अन्यों को प्रसन्न करने (सुकृत्) सत्य कर्म्म करने, जनों में (प्रियः) प्रीति करने और प्रियों में (मनायुः) मन के सदृश आचरण करने वाला धर्म्मयुक्त कर्म्म से (प्रियः) आनन्द और शोक से रहित विद्याओं में (सुप्रावीः) अच्छे प्रकार उत्तम गुणों को प्राप्त विद्वानों में (प्रियः) सुन्दर और (अस्य) इस जगत् के मध्य में (सोमी) अनेक प्रकार के ऐश्वर्य्य से युक्त है (तम्) उसको शत्रु लोग (न) नहीं (जिनन्ति) जीतते हैं (बहवः) अनेक (दभ्राः) नाश करने वाले (न) नहीं नाश करते हैं (अस्मै) इस के लिये (अदितिः) माता (उरु) बहुत (शर्म्म) सुख को (यंसत्) देती है ॥५॥

भावार्थः—जो शत्रुरहित परमेश्वर की उपासना करने और सब के प्रिय साधने वाले जन होते हैं उनको कोई भी शत्रु जीत नहीं सकता है और जैसे माता वा श्रेष्ठ गृह को प्राप्त होकर मनुष्य सुख का आचरण करता है वैसे ही सब सुखों को प्राप्त होकर निरन्तर आनन्दित होता है ॥५॥

अथ राजा अमात्यादिकों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सुप्राव्यः प्राशुषाळेष वीरः सुष्वेः पक्तिं कृणुते केवलेन्द्रः ।
नासुष्वेरापिर्न सखा न जामिर्दुष्प्राव्योऽवहन्तेदवाचः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (सुप्राव्यः) उत्तमप्रकार रक्षा करने योग्य (प्राशुषाट्) वेगयुक्त शत्रुओं को सहने वाला (एषः) यह (वीरः) बलिष्ठ (इन्द्रः) ऐश्वर्य्ययुक्त जन (सुष्वेः) उत्तम प्रकार उत्पन्न अन्न के (केवला) केवल (पक्तिम्) पाक को (कृणुते) करता है और जो (असुष्वेः) आलस्य भरे हुए अर्थात् नहीं उत्पन्न करने वाले के सम्बन्ध में (आपिः) सबको प्राप्त होने वाले के (न) सदृश वा (सखा) मित्र के (न) सदृश (जामिः) बन्धु (दुष्प्राव्यः) दुःख से रक्षा करने योग्य और (अवाचः)

दुष्ट वचन वाले के (अवहन्ता) विरुद्ध काम का हनन करने वाला (इत्) ही विरोध को (न) नहीं करता है वही सब का सुखदाता होता है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजपुरुष उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न का भोग तथा मित्र और बन्धुओं के सदृश वर्त्ताव करके दुष्टस्वभाववालों का नाश करते वे दारिद्रय और पराजय को नहीं प्राप्त होते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

न रेवता पणिना सख्यमिन्द्रोऽसुन्वता सुतपाः सं गृणीते।
आस्य वेदः खिदति हन्ति नग्नं वि सुष्वये पक्तये केवलो भूत् ॥७॥

पदार्थः—जो (सुतपाः) उत्तम प्रकार धर्म्मात्मा और राग अर्थात् विषयों में प्रीति और प्राणियों में द्वेष से रहित (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवाला राजा (रेवता) श्रेष्ठ धन वाले (पणिना) व्यवहारी वैश्य जन आदि और (असुन्वता) नहीं पुरुषार्थ करने वाले जन के साथ (सख्यम्) मित्रपने को (न) नहीं करता और सब को सत्य न्याय का (सम्, गृणीते) अच्छे प्रकार उपदेश देता है और जो (केवलः) सहायरहित हुआ (सुष्वये) उत्तम प्रकार उत्पन्न करने वाले (पक्तये) पाककर्त्ता के लिये (भूत्) होता है और जो (नग्नम्) निर्लज्ज का (वि, हन्ति) उत्तम प्रकार नाश करता है (अस्य) इस राजा का (वेदः) द्रव्य कभी नहीं (आ, खिदति) दीनता अर्थात् नाश को प्राप्त होता है ॥७॥

भावार्थः—जो राजा धन आदि के लोभ से धनियों के ऊपर प्रसन्न और दरिद्रों के प्रति अप्रसन्न नहीं होता है और जो दुष्टों को उत्तम प्रकार दण्ड दे कर श्रेष्ठों की निरन्तर रक्षा करता है, नहीं इस का राज्य कभी खेद को प्राप्त होता है ॥७॥

अब पक्षपातरहित आचरणविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

इन्द्रं परेऽवरे मध्यमास इन्द्रं यान्तोऽवसितास इन्द्रम्।
इन्द्रं क्षियन्त उत युध्यमाना इन्द्रं नरो वाजयन्तो हवन्ते ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जो (परे) श्रेष्ठ (अवरे) निकृष्ट और (मध्यमासः) पक्षपात से रहित जन (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले को (यान्तः) प्राप्त होते हुए (इन्द्रम्) सब सुख धारण करने वाले का (अवसितासः) निश्चय किये हुए और (इन्द्रम्) दुष्टों के मारने वाले को (क्षियन्तः) निवास करते हुए (इन्द्रम्) सब सुख देने वाले को (वाजयन्तः) जनाते (उत) और (युध्यमानाः) युद्ध करते हुए (नरः)

नायक लोग (इन्द्रम्) दुष्टों के नाश करने वाले की (हवन्ते) स्तुति वा ईर्ष्या करते हैं वे ही राज्यकर्म्म करने को योग्य होवें ॥८॥

भावार्थः—जिस के राज्य में श्रेष्ठ मध्यस्थ और निकृष्ट अर्थात् नीची श्रेणी में वर्त्तमान, धर्म्मात्मा विद्वान् और अविद्वान् लोग अपने राज्य के प्रिय, शत्रुओं के नाश करने वाले, धन और अपने स्वामी के भक्त हैं वहां सदा राज्य बढ़ता है ऐसा जानना चाहिये ॥८॥

इस सूक्त में प्रश्न उत्तर राजा उत्तम मध्यम निकृष्ट मनुष्यों के गुणों का वर्णन और राजा के मन्त्री के पक्षपातराहित्यरूप आचरण का उपदेश किया इस से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ पङ्क्तिः । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ३, ७ स्वराड् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले छब्बीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मंत्र में ईश्वर के गुणों का उपदेश करते हैं ॥

अहं मनुरभवं सूर्य्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः ।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यता मा ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अहम्) मैं सृष्टि को करने वाला ईश्वर (मनुः) विचार करने और विद्वान् के सदृश सम्पूर्ण विद्याओं को जनाने वाला (सूर्य्यः, च) और सूर्य्य के सदृश सब का प्रकाशक (अभवम्) हूं और (अहम्) मैं (कक्षीवान्) सम्पूर्ण सृष्टि की कक्षा अर्थात् परम्पराओं से युक्त (ऋषिः) मन्त्रों के अर्थ जानने वाले के सदृश (विप्रः) बुद्धिमान् के सदृश सब पदार्थों को जानने वाला (अस्मि) हूं और (अहम्) मैं (आर्जुनेयम्) सरल विद्वान् ने उत्पन्न किये हुए (कुत्सम्) वज्र को (नि) अत्यन्त (ऋञ्जे) सिद्ध करता हूं और (अहम्) मैं (उशना) सब के हित की कामना करता हुआ (कविः) सम्पूर्ण शास्त्र को जानने वाला विद्वान् हूं उस (मा) मुझ को तुम (पश्यत) देखो ॥१॥

भावार्थः- इस मन्त्र में वाचकलु०-हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर मन्त्रियों अर्थात् विचार करने वालों में विचार करने और प्रकाश करने

वालों का प्रकाशक विद्वानों में विद्वान् अखण्डित न्याययुक्त सर्वज्ञ और सब का उपकारी है उस ही का विद्या धर्म्माचरण और योगाऽभ्यास से प्रत्यक्ष करो ॥१॥

फिर ईश्वर के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अहं भूमिमददामार्य्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥२॥

पदार्थः— हे मनुष्यो जो (अहम्) सब का धारण करने और सब का उत्पन्न करने वाला ईश्वर मैं (आर्य्याय) धर्म्मयुक्त गुण कर्म्म और स्वभाव वाले के लिये (भूमिम्) पृथिवी के राज्य को (अददाम्) देता हूं (अहम्) मैं (दाशुषे) देने वाले (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (वृष्टिम्) वर्षा को (अनयम्) प्राप्त कराऊं (अहम्) मैं (अपः) प्राणों वा पवनों को प्राप्त कराऊं जिस (मम) मेरे (वावशानाः) कामना करते हुए (देवासः) विद्वान् लोग (केतम्) बुद्धि वा जनाने के लिये (अनु, आयन्) अनुकूल प्राप्त होते हैं उस मुझ को तुम सेवो ॥२॥

भावार्थः— हे मनुष्यो! जो न्यायकारी स्वभाव वाले के लिये भूमि का राज्य देता सब के सुख के लिये वृष्टि करता और सब के जीवन के लिये वायु को प्रेरणा करता है और जिस के उपदेश के द्वारा विद्वान् होते हैं उसी की निरन्तर उपासना करो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (मन्दसानः) आनन्दस्वरूप और आनन्द देने वाला (अहम्) मैं जगदीश्वर (पुरः) प्रथम (शम्बरस्य) मेघ के (शततमम्) अत्यन्त असंख्यात (वेश्यम्) उत्तम वेशों अर्थात् प्रवेशों में उत्पन्न (नव, नवतीः) निन्नानवे पदार्थों को (साकम्) साथ (वि, ऐरम्) प्रेरणा करूं (सर्वताता) सब में ही मिलने योग्य जगत् में (यत्) जिस (दिवोदासम्) विज्ञानस्वरूप प्रकाश के देने वाले (अतिथिग्वम्) अतिथियों को प्राप्त हो वा प्राप्त करावै उस की (आवम्) रक्षा करूं उस मेरी उपासना करो और वह आनन्द युक्त होता है ॥३॥

भावार्थः— हे मनुष्यो! जो जगदीश्वर जगत् की उत्पत्ति के प्रथम, चेतनस्वरूप से वर्त्तमान वह सब जगत् को उत्पन्न करके सब के साथ सब का सम्बन्ध करके सबका हित करता है ॥३॥

अब राजसेनाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र सु ष विभ्यो मरुतो विरस्तु प्र श्येनः श्येनेभ्य आशुपत्वा।
अचक्रया यत्स्वधया सुपर्णो हव्यं भरन्मनवे देवजुष्टम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (श्येनः) बाज (विः) पक्षी (श्येनेभ्यः) बाजनामक (विभ्यः) पक्षी विशेषों से (अचक्रया) अविद्यमान चक्राकारगति के साथ (आशुपत्वा) शीघ्र गिर के वेग को (भरत्) धारण करता है वैसे (मरुतः) मनुष्य जन मनुष्यों की सेना के वेगादिगुण को (प्र) विशेषकर के धारण करता है (यत्) जो (सुपर्णः) उत्तम पतनयुक्त (मनवे) मनुष्य के लिये (स्वधया) अन्न आदि से (देवजुष्टम्) विद्वानों से सेवित (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य वस्तु को (प्र) अत्यन्त (सु) उत्तम प्रकार धारण करता है (सः) वह सब स्थानों में सुखकारी (अस्तु) हो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! इस सृष्टि और अन्तरिक्ष में जैसे पक्षी आकाश में जाकर आते हैं वैसे ही सब लोक और लोकान्तर घूमते हैं। जो सृष्टिविद्या को जानता है वही मनुष्यादिकों का सुखकारी होता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भरद्यदि विरतो वेविजानः पथोरुणा मनोजवा असर्जि।
तूयं ययौ मधुना सोम्येनोत श्रवो विविदे श्येनो अत्र ॥५॥

पदार्थः—हे राजजनो! (यदि) जो (अत्र) इस संसार में आप लोगों से (मनोजवाः) मन के सदृश वेगयुक्त सेनाओं को (असर्जि) बनाता है तो (अतः) इस स्थान से जैसे (श्येनः) हिंसा करने वाला वेगयुक्त (विः) पक्षी (वेविजानः) कम्पता हुआ (उरुणा) बहुत (पथा) मार्ग से (तूयम्) शीघ्र (ययौ) जाता है वैसे जो राजा (मधुना) मधुर (सोम्येन) सोम अर्थात् ओषधियों में उत्पन्न हुए रस से (श्रवः) अन्न आदि को (उत) और सेना को (भरत्) पुष्ट करै वह विजय को (विविदे) प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजजनो! आप लोग जब-तक बाजपक्षी के सदृश वेग युक्त सेना को नहीं करते हैं तब तक विजय से धन का लाभ नहीं हो सकता है ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋजीपी श्येनो ददमानो अंशुं परावतः शकुनो मन्द्रं मदम्।
सोमं भरद्दादृहाणो देवावान्दिवो अमुष्मादुत्तरादादाय ॥६॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे (ऋजीपी) सीधी चाल वाला (श्येनः) बढ़े हुए वेग से युक्त (शकुनः) पक्षी (परावतः) दूर देश से गिरके अपने अपेक्षित पदार्थ को (भरत्) धारण करता है वैसे ही आप (अंशुम्) विज्ञान आदि पदार्थ (मदम्) आनन्द करने वाले (मन्द्रम्) प्रशंसा करने योग्य (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (ददमानः) देते हुए (देवावान्) बहुत विद्वानों से युक्त (अमुष्मात्) परोक्ष (उत्तरात्) आनेवाले (दिवः) बिजुली के प्रकाश से विद्या को (आदाय) ग्रहण करके (दादृहाणः) बढ़ते हुए होवें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे पक्षी पृथिवी से उड़ के अन्तरिक्ष के मार्ग से जाकर और आकर अपने प्रयोजन को सिद्ध करते हैं वैसे ही देश देशान्तर में विमान आदि से जाकर अपने प्रयोजन को सिद्ध करो ॥६॥

फिर प्रकारान्तर से पूर्वोक्त विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आदा॑य श्ये॒नो अ॑भर॒त्सोमं॑ स॒हस्रं॑ स॒वाँ अ॒युतं॑ च सा॒कम् ।
अत्रा॒ पुरं॑धिरजहा॒दरा॑ती॒र्मदे॒ सोम॑स्य मू॒रा अमू॑रः ॥७॥

पदार्थः—जो सेना का स्वामी (श्येनः) बाज नामक पक्षी के सदृश (सहस्रम्) सहस्रसंख्यायुक्त (सोमम्) ऐश्वर्य्य वा ओषधि आदि पदार्थ (अयुतं, च) और असंख्य (सवान्) उत्पन्न हुए पदार्थों को (आदाय) ग्रहण कर के सेना और राज्य को (अभरत्) धारण करैं वह (अमूरः) निर्मोह जन (अत्रा) इस में (पुरन्धिः) पुर को धारण करने वाला (सोमस्य) ऐश्वर्य्यसम्बन्धी (मदे) आनन्द के निमित्त (मूराः) मूढ़ (अरातीः) शत्रुओं का (अजहात्) त्याग करता है वह इस में (साकम्) साथ ही विजय को प्राप्त होवैं ॥७॥

भावार्थ—जो शत्रु के बल से अधिक बल शत्रु की सामग्री से सैकड़ों गुणी अधिक सामग्री उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त सेना और विद्वानों को अध्यक्ष करके युद्ध करैं वे निश्चय विजय को प्राप्त होवैं ॥७॥

इस सूक्त में ईश्वर और राजसेना के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् छन्दः । ५ निचृच्छक्वरीछन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले सत्ताईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में जीव के गुणों को कहते हैं ॥

गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा ।
शतं मा पुर आयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अहम्) मैं विद्वान् (गर्भे) गर्भ में (सन्) वर्त्तमान (एषाम्) इन (देवानाम्) श्रेष्ठ पृथिवी आदि पदार्थों वा विद्वानों के (विश्वा) संपूर्ण (जनिमानि) जन्मों को (अनु, अवेदम्) अनुकूल जानता हूँ जिस (मा) मुझको (आयसीः) सुवर्ण वाली वा लोह वाली (शतम्) सौ (पुरः) नगरी (अरक्षन्) रक्षा करती हैं (अध) इस के अनन्तर सो मैं (श्येनः) वाज पक्षी के सदृश इस शरीर से (जवसा) वेग के साथ (नु) शीघ्र (निः) अत्यन्त (अदीयम्) निकलूं ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदा सृष्टिविद्या वोध और जन्म मरण की शरीर सम्वन्धिनी विद्या जानें जिस से सदैव निर्भयता वर्त्तें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न घा स मामप जोषं जभाराभीमास त्वक्षसा वीर्येण ।
ईर्मा पुरन्धिरजहादरातीरुत वाताँ अतरच्छूशुवानः ॥२॥

पदार्थः—जो (शूशुवानः) बढ़ने (पुरन्धिः) बहुत पदार्थों को धारण करने और (ईर्मा) प्रेरणा करने वाला (त्वक्षसा) तीव्र (वीर्य्येण) बल से (वातान्) वायु के सदृश वेगयुक्त पदार्थों के समान (अरातीः) शत्रुओं का (अजहात्) त्याग करें (उत) और शत्रुओं के बल के (अतरत्) पार होवै (सः, घा) वही (माम्) मेरे (अप, जोषम्) विपरीत सेवन को (न) नहीं (जभार) धारण करै इस से मैं (ईम्) सब प्रकार सुखयुक्त (अभि, आस) सब ओर से होऊं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० - जो मनुष्य वायु के सदृश बलवान् होकर शत्रुओं को दवाते हैं वे दुःख को लांघ और बुरे कर्म्म को त्याग के सुखी होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अव यच्छ्येनो अस्वनीदध द्योर्वि यद्यदि वात ऊहुः पुरन्धिम् ।
सृजद्यदस्मा अव ह क्षिपज्ज्यां कृशानुरस्ता मनसा भुरण्यन् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (श्येनः) वाज पक्षी के सदृश वर्त्तमान (अव,

अस्वनीत्) शब्द करै उपदेश देवै (अध) इस के अनन्तर (यत्) जो (द्योः) प्रकाश के संबन्ध में (पुरन्धिम्) बहुत धारण करने वाले राजा को (सृजत्) उत्पन्न करै (यत्, वा) अथवा जो शत्रुबल को कंपावै (अस्मै, ह) इसी के लिये (ज्याम्) धनुष् की तांत की (अव, क्षिपत्) प्रेरणा देता है (अतः) इस कारण (कृशानुः) शत्रुओं को खींचने वाला जैसे वैसे (मनसा) अन्तः करण से (भुरण्यन्) पदार्थों का धारण वा पोषण करता हुआ (अस्ता) फेंकनेवाला (वि) विशेष कर के फेंकता है (यदि) जो उसको अन्य जन (ऊहुः) पहुंचाते हैं तो वह सब स्थान में विजयी होवै ॥३॥

भावार्थः— जो मनुष्य सत्य के उपदेश करने सत्य न्याय करने शत्रुओं के जीतने और प्रजा के पालन करने वाले राजा को प्राप्त होवें वे सब प्रकार सुखी होवें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋजिप्य ईमिन्द्रावतो न भुज्युं श्येनो जभार बृहतो अधिष्णोः ।
अन्तः पतत्पतत्र्यस्य पर्णमध यामनि प्रसितस्य तद्वेः ॥४॥

पदार्थः—जो (ऋजिप्यः) सरल मार्ग चलनेवालों में श्रेष्ठ मनुष्य (श्येनः) बाज पक्षी के सदृश (बृहतः) बड़े (स्नोः) प्रकाशमान पुरुषार्थ से (इन्द्रावतः) ऐश्वर्य्य से युक्तों को (न) जैसे वैसे (भुज्युम्) भोग करने वाले को (अधि, जभार) अधिक धारण करता है (अस्य) इसका (पर्णम्) पत्र (यामनि) मार्ग में और (प्रसितस्य) बंधे हुए (वेः) पक्षी का जो (पतत्रि) गिरनेवाला पत्र (अन्तः) मध्य में (पतत्) गिरता है (तत्) उस को (जभार) धारण करता है यह (अध) इस के अनन्तर (ईम्) सब प्रकार से आनन्द को प्राप्त होवै ॥४॥

भावार्थः- इस मन्त्र में वाचकलु०--हे मनुष्यो ! जैसे बाज पक्षी अपने पुरुषार्थ से बहुत भोग को प्राप्त होता और शीघ्र चलता है वैसे ही पुरुषार्थ करने वाले जन बहुत सुख को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अधं श्वेतं कलशं गोभिरक्तमापिप्यानं मघवा शुक्रमन्धः ।
अध्वर्युभिः प्रयतं मध्वो अग्रमिन्द्रो मदाय प्रति धत्पिबध्यै
शूरो मदाय प्रति धत्पिबध्यै ॥५॥

पदार्थः- हे मनुष्यो जो (मघवा) बहुत श्रेष्ठ धनयुक्त (गोभिः) गौओं से (अक्तम्) सम्बद्ध (आपिप्यानम्) बढ़े हुए (श्वेतम्) श्वेत वर्णवाले (कलशम्) घड़े

(शुक्रम्) जल और (अन्धः) अन्न को (पिबध्यै) पीने के लिये (मदाय) आनन्द के लिये (प्रति, धत्त) धारण करता है (अध) और जो (शूरः) भय से रहित (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाला (मदाय) आनन्द के लिये (अध्वर्युभिः) अपने नहीं नाश होने की इच्छा करने वालों के साथ (मध्वः) मधुर आदि गुणों के (अग्रम्) प्रथम (प्रयतम्) प्रयत्न से सिद्ध करने योग्य आनन्द के लिये (पिबध्यै) पीने को (प्रति, धत्त) धारण करता है वह नहीं नष्ट होने वाले बल को प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थः—जो नियमित आहार और विहार करने और नहीं हिंसा करने वाले शूरवीर होवें वे सदा विजय को प्राप्त होवें ॥५॥

इस सूक्त में जीव के गुणों के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सत्ताईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । इन्द्रासोमौ देवते । १ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतःस्वरः । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले अट्ठाईसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य सूर्य्य के दृष्टान्त से राजप्रजागुणों का उपदेश करते हैं ॥

त्वा युजा तव तत्सोम सख्य इन्द्रो अपो मनवे सस्रुतस्कः ।
अहन्नहिमरिणात्सप्त सिन्धूनपावृणोदपिहितेव खानि ॥१॥

पदार्थः—हे (सोम) ऐश्वर्य्य से युक्त (तव) आप की (सख्ये) मित्रता के लिये जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश राजा (मनवे) मनुष्य के लिए (सस्रुतः) चलने वालों को (कः) करता (अहिम्) मेघ का (अहन्) नाश करता (सप्त) सात (सिन्धून्) नदियों को (अरिणात्) प्रेरित करता और (खानि) इन्द्रियां (अपिहितेव) आप घिरी हुई सी (अपः) जलों को (अप, अवृणोत्) घेरती हैं वैसे (तत्) वह (त्वा) आप को (युजा) युक्त पुरुष के साथ कर्म करने योग्य हो सकता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा वाचकलुप्तोपमालङ्कार हैं । हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य सब के सुख के लिए वर्षा करके सब को आनन्द देता है वैसे ही विद्वानों की मित्रता सब को आनन्द देने वाली है यह जानना चाहिये ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वा युजा नि खिदत्सूर्य्यस्येन्द्रश्चक्रं सहसा सद्य इन्दो ।
अधि ष्णुना बृहता वर्त्तमानं महो द्रुहो अप विश्वायु धायि ॥२॥

**पदार्थः** –हे (इन्दो) ऐश्वर्य्यवान् (त्वा) आप को (युजा) युक्तजन से (द्रुहः) द्वेष करने वाले का सम्बन्ध (अप, धायि) नहीं धारण किया जाता और (महः) बड़ी (वर्त्तमानम्) वर्त्तमान (विश्वायु) सम्पूर्ण अवस्था (अधि) अधिक धारण किई जाती है (बृहता) बड़े (स्नुना) व्याप्त (सहसा) बल से (सद्यः) शीघ्र (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (इन्द्रः) बिजुली के सदृश (चक्रम्) चक्र की जो (नि, खिदत्) दीनता को प्राप्त होता है वह अपेक्षित सुख को प्राप्त होवे ॥२॥

**भावार्थः**—इस मन्त्र में वाचकलु॰ जो विद्वान् राजा से पालित विद्या धर्म्म और ब्रह्मचर्य्य आदि से युक्त अतिकाल पर्य्यन्त जीवने वाले होवें वे शत्रुओं के जीतने वाले होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अहन्निन्द्रो अदहदग्निरिन्दो पुरा दस्यून्मध्यन्दिनादभीके ।
दुर्गे दुरोणे क्रत्वा न यातां पुरू सहस्रा शर्वा नि बर्हीत् ॥३॥

**पदार्थः**—हे (इन्दो) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त प्रजाजन जो (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश राजा (मध्यन्दिनात्) मध्य दिन में वर्त्तमान ताप से (दस्यून्) बड़े साहस करने वालों का (अहन्) नाश करता है (अग्निः) अग्नि के सदृश (अभीके) समीप में दुष्टों को (अदहत्) जलाता है और (पुरा) पहिले से (दुर्गे) राजगढ़ (दुरोणे) गृह में (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म्म के (न) सदृश (पुरू) बहुत (शर्वा) सम्पूर्ण हिंसनों और (सहस्रा) हजारों को (नि, बर्हीत्) नाश करै वह और आप इस प्रकार से सुख को (याताम्) प्राप्त होओ ॥३॥

**भावार्थः**—इस मन्त्र में उपमावाचकलु॰—जैसे मध्याह्न में सूर्य्य सब को तपाता है वैसे ही न्यायकारी राजा दुष्ट चोरादिकों को दुःख देता है और अग्नि के सदृश भस्मीभूत करके सम्पूर्ण हिंसा दूर करै ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विश्वस्मात्सीमधमाँ इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ताः ।
अबाधेथाममृणतं नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रैः ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुष्टों के नाश करने वाले आप (सोम) सूर्य्य के सदृश (दासीः) देने वाली (विशः) प्रजाओं को (अप्रशस्ताः) श्रेष्ठ सुख से रहित करते हुए (अधमान्) पाप के आचरण करने वाले (दस्यून्) दुष्टों को (विश्वस्मात्) सब से पीड़ायुक्त (अकृणोः) करें हे राजा और प्रजाजनो मिलकर आप दोनों (वधत्रैः) वधों से (शत्रून्) शत्रुओं को (अबाधेथाम्) वाधा देओ और प्रजा को (अमृणतम्) सुख देओ (अपचितिम्) सत्कार को (नि) अत्यन्त (अविन्देथाम्) प्राप्त होओ ॥४॥

भावार्थः—हे राजा आदि राजजनो ! जो साहस कर्म्म करने और जो दुष्ट उपदेश से प्रजा को दोषयुक्त करने वाले नीच जन होवें उन को निरन्तर वाधा देओ और श्रेष्ठों का सत्कार करो। ऐसा करने पर आप लोगों का बड़ा सत्कार होगा यह जानना चाहिये ॥४॥

फिर राजप्रजा गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवा सत्यं मघवाना युवं तदिन्द्रश्च सोमोर्वमश्व्यं गोः ।
आदर्द्दृतमपिहितान्यश्ना रिरिचथुः क्षाश्चित्ततृदाना ॥५॥

पदार्थः—हे (सोम) उत्तम गुणों से युक्त (मघवाना) बहुत धनों से युक्त राजा और प्रजाजनो (युवम्) आप दोनों जो (सत्यम्) सत्य (गोः) पृथिवी का (ऊर्वम्) ढांपने वाला (अश्व्यम्) घोड़ों में उत्पन्न हुए को प्राप्त होकर शत्रुओं को (आ, अदर्दृतम्) निरन्तर नाश करो (तत्) उस को (इन्द्रः) राजा ग्रहण करके शत्रुओं का नाश करें और जिन (अपिहितानि) घिरे हुए (अश्ना) भोग करने योग्य पदार्थों को (रिरिचथुः) छोड़ो (क्षाः, च) और पृथिवियों को (चित्) भी छोड़ो उन को प्राप्त होकर दुष्ट सम्बन्धी (ततृदाना) दुःख के नाश करने वाले होवें इस प्रकार से (एव) ऐसे ही राजा भी होवें ॥५॥

भावार्थः—जो राजा मन्त्री सेना और प्रजाजन परस्पर में स्नेह करके राज्य शिक्षा करें तो इनका कोई भी शत्रु नहीं उपस्थित हो ॥५॥

इस सूक्त में राजा और प्रजादि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह अट्ठाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । [२], ४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले उनतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में राजविषय को कहते हैं ॥

आ नः स्तुत उप वाजेभिरूती इन्द्र याहि हरिभिर्मन्दसानः ।
तिरश्चिदर्यः सवना पुरूण्याङ्गूषेभिर्गृणानः सत्यराधाः ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् (स्तुतः) प्रशंसित (मन्दसानः) आनन्द करते और (आङ्गूषेभिः) स्तुति करने वालों से (गृणानः) स्तुति को प्राप्त होते हुए (सत्यराधाः) सत्य से धनयुक्त (अर्य्यः) स्वामी आप (पुरूणि) बहुत (सवना) ऐश्वर्य्यों को प्राप्त (तिरः) तिरछे (चित्) भी होते हुए (ऊती) रक्षण आदि के लिये (वाजेभिः) अन्न सेना आदि के और (हरिभिः) उत्तम वीर पुरुषों के साथ (नः) हम लोगों को (उप आ याहि) प्राप्त हूजिये ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो यहां प्रशंसित गुण कर्म और स्वभावयुक्त आपत्काल का निवारण करने वाला प्रजा के रक्षण में तत्पर श्रेष्ठ सहायवाली उत्तम सेना से युक्त न्यायकारी धर्म्म से इकट्ठे किये हुए धनवाला और अभिमान से रहित होवै उसी को राजा मानो ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ हि ष्मा याति नर्यश्चिकित्वान्हूयमानः सोतृभिरुप यज्ञम् ।
स्वश्वो यो अभीरुर्मन्यमानः सुष्वाणेभिर्मदति सं ह वीरैः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (अभीरुः) भयरहित (मन्यमानः) सत्य का अभिमान रखने वाला (स्वश्वः) श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त (चिकित्वान्) ज्ञानवान् (हूयमानः) स्तुति किया गया (नर्य्यः) मनुष्यों में श्रेष्ठ (हि) जिससे (सोतृभिः) सत्य आचरण करने वालों के साथ (यज्ञम्) राजा और प्रजा के व्यवहार को (उप, आ, याति, स्म) समीप आता ही है वह (सुष्वाणेभिः) उत्तम प्रकार शब्द करते हुए (वीरैः) शूरता आदि गुणों से युक्त पुरुषों के साथ (सम्, मदति, ह) आनन्द करता ही है ॥२॥

भावार्थः—जैसे चार वेदों का जानने वाला वेदविद्यानिपुण विद्वानों के साथ यज्ञ को प्राप्त होकर स्तुति किया जाता है वैसे ही श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त मन्त्री और भृत्यों के साथ राजा स्तुति किया जाता है ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्र दिशं मन्दयध्यै ।
उद्वावृषाणो राधसे तुविष्मान्करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च ॥३॥

पदार्थः—हे सत्य के उपदेश करने वाले आचार्य्य और उपदेशक आप (अस्य) इसके (कर्णा) कानों को (वाजयध्यै) जनाने के लिए (जुष्टाम्) श्रेष्ठ राजाओं से सेवन की गई नीति को (अनु, श्रावय) अनुकूल सुनाइये जिससे यह (विशम्) दिशा को (मन्दयध्यै) प्रसन्न करने को (उद्वावृषाणः) अतिबलिष्ठ (तुविष्मान्) प्रशंसित बलयुक्त (इन्द्रः) सत्य न्याय को धारण करने वाला (राधसे) धन के लिये (नः) हमारे (सुतीर्था) सुन्दर दुःखों को दूर करने वाले आचार्य्य ब्रह्मचर्य्य और सत्य भाषण आदि जिन में उनको और (अभयम्, च) भयरहित को (इव) ही (प्र, करत्) करै ॥३॥

भावार्थः—जिस राजा के सत्य और न्याय के उपदेश करने वाले धार्मिक विद्वान् होवैं वह राजा विद्या और विनय आदि उत्तम गुणों के सहित होता हुआ सबको भयरहित करके निरन्तर प्रसन्न कर सकै ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अच्छा यो गन्ता नाधमानमूती इत्था विप्रं हवमानं गृणन्तम् ।
उप त्मनि दधानो धुर्य्या३शून्त्सहस्राणि शतानि वज्रबाहुः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (गन्ता) चलने वाला (ऊती) रक्षण आदि के लिये (इत्था) इस प्रकार से (नाधमानम्) ऐश्वर्य्यवान् प्रशंसित (हवमानम्) ईर्ष्या करने वाले (गृणन्तम्) स्तुति करते हुए (विप्रम्) बुद्धिमान् को (त्मनि) आत्मा में (उप, दधानः) धारण करता हुआ (सहस्राणि) सहस्रों और (शतानि) सैकड़ों (आशून्) शीघ्र चलने वाले घोड़ों को (धुरि) रथ के जुए में धारण करता हुआ (अच्छ गन्ता) उत्तम प्रकार चलने वाला (वज्रबाहुः) शस्त्र हाथों में लिये राजा होवै वह हम लोगों को भयरहित करने योग्य हो ॥४॥

भावार्थः—जो राजा श्रेष्ठ मनुष्यों को ग्रहण करै वही राज्य बढ़ाने को योग्य होवै ॥४॥

अब प्रजागुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वोतासो मघवन्निन्द्र विप्रा वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः ।
भेजानासो बृहद्दिवस्य राय आकाय्यस्य दावने पुरुक्षोः ॥५॥

पदार्थः—हे (मघवन्) श्रेष्ठ धनयुक्त (इन्द्र) उत्तम गुणों के धारण करने वाले राजन् (त्वोतासः) आप से रक्षा और वृद्धि को प्राप्त (भेजानासः) सेवन और (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (विप्राः) बुद्धिमान् (सूरयः) प्रकाशित विद्या वाले (वयम्) हम लोग (बृहद्दिवस्य) प्रकाशमान (आकाय्यस्य) सब प्रकार शरीर में उत्पन्न

(पुरुक्षोः) बहुत अन्नादि से युक्त (ते) आप के (रायः) धन के (दावने) देने वाले के लिये स्थिर (स्याम) होवें ॥५॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आप हम लोगों की सब प्रकार से रक्षा करें तो हम लोग अति उन्नतियुक्त होवें ॥५॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । १-८ । १२-२४ इन्द्रः । ९-११ इन्द्र उषाश्च देवते । १ । ३ । ५ । ९ । ११ । १२ । १६ । १८ । १९ । २३ निचृद्गायत्री । २ । १० । ७ । १३-१५ । १७ । २१ । २२ गायत्री । ४ । ६ विराड् गायत्री । २० पिपीलिका-मध्या । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ८ । २४ विराडनुष्टुप्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब चौबीस ऋचा वाले तीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में सूर्य के दृष्टान्त से राजविषय को कहते हैं ॥

नकिरिन्द्र त्वदुत्तरो न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् ।
नकिरेवा यथा त्वम् ॥ १ ॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) मेघ को नाश करने वाले सूर्य के सदृश वर्त्तमान (इन्द्र) राजन् (यथा) जैसे (त्वम्) आप हो वैसे ही (त्वत्) आप से (उत्तरः) पीछे (नकिः) नहीं (अस्ति) है (न) नहीं (ज्यायान्) बड़ा है और (नकिः, एव) न उत्तम ही है ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सबसे श्रेष्ठ होवै उसी को राजा करो ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सत्रा ते अनु कृष्टयो विश्वा चक्रेव वावृतुः ।
सत्रा महाँ असि श्रुतः ॥ २ ॥

पदार्थः—हे राजन् जो आप (सत्रा) सत्य आचरण के (महान्) बड़े (श्रुतः) सम्पूर्ण शास्त्र के श्रवण से यशयुक्त (असि) हो तो (ते) आप के सम्बन्ध में (सत्रा) सत्य आचरण से (कृष्टयः) मनुष्य (विश्वा) सम्पूर्ण (चक्रेव) चक्रों के सदृश अर्थात् जैसे गाड़ी में पहिया वैसे (अनु, वावृतुः) वर्त्ताव करें ॥२॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप न्यायकारी होवैं तो सम्पूर्ण प्रजा आपके अनुकूल वर्त्ताव करें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विश्वे॑ च॒नेद॒ना त्वा॑ दे॒वास॑ इन्द्र युयुधुः । यदहा॒ नक्त॒मातिरः ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के विदीर्ण करने वाले (यत्) जो (विश्वे इत्) सभी (देवासः) विद्वान् जन (अना) प्रतिज्ञास्वरूप (अहा) दिनों, और (नक्तम्) रात्रि को (त्वा) आपका आश्रय लेकर शत्रुओं के साथ (युयुधुः) युद्ध करते हैं उनके (चन) भी साथ आप शत्रुओं का (आ, अतिरः) नाश करिये ॥३॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि भृत्यजन उत्तम शिक्षित और श्रेष्ठ रक्खें जिस से दिन रात्रि शत्रु लोग छिपे हुए रहें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यत्रो॒त बा॑धि॒तेभ्य॑श्च॒क्रं कुत्सा॑य॒ युध्य॑ते । मु॒षा॒य इ॑न्द्र॒ सूर्य॑म् ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान न्यायकारिन् (यत्र) जिस राज्य में (मुषायः) चोरी करने वाले के सदृश आचरण करने वाला (बाधितेभ्यः) पीड़ा-युक्त जनों से (कुत्साय) शस्त्र और अस्त्र से युक्तजन और (युध्यते) युद्ध करते हुए जन के लिए (सूर्यम्) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान न्यायरूपी (चक्रम्) चक्र को वर्त्ताता है वहां (उत) भी सुख नहीं बढ़ता है ॥४॥

भावार्थः—जो राजा प्रजा की पीड़ा को नहीं वारण करै और सूर्य के सदृश श्रेष्ठ गुणों से प्रकाशमान न हो और प्रजाओं से कर ग्रहण करै वह राजा नहीं होवै ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यत्र॑ दे॒वाँ ऋ॑घाय॒तो विश्वाँ॒ अयु॑ध्य॒ एक॒ इत् । त्वमि॑न्द्र व॒नूँरह॑न् ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) तेजस्वी राजन् (एकः) एक (इत्) ही (त्वम्) आप (यत्र) जहां (विश्वान्) सम्पूर्ण (देवान्) विद्वानों को (ऋघायतः) बाधते हुए (वनून्) अधर्म्म के सेवन करनेवालों का (अहन्) नाश करैं वहां शत्रुओं से (अयुध्यः) नहीं युद्ध करने योग्य अर्थात् शत्रुजन आप से युद्ध न कर सकैं ऐसे होवैं ॥५॥

भावार्थः—जब जब दुष्टजन श्रेष्ठों को बाधा देवैं तब तब आप सम्पूर्ण अधर्म्मियों को अत्यन्त दण्ड दीजिये ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यत्रोत मर्त्याय कमरिणा इन्द्र सूर्य्यम् । प्रावः शचीभिरेतशम् ॥६॥

पदार्थः— हे (इन्द्र) सुख के देने वाले ! आप (सूर्य्यम्) सूर्य्य को वायु के सदृश (शचीभिः) बुद्धियों वा कर्म्मों से (एतशम्) विद्या को प्राप्त घोड़े के सदृश बलवान् की (प्र, आवः) रक्षा करैं (यत्र) जिस राज्य में (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (कम्) सुख (अरिणाः) देवैं वहां (उत) भी दुष्टों को दुःख देवैं ॥६॥

भावार्थः—जहां राजा श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों को दण्ड देकर विद्या और विनय को बढ़ाता है वहां सम्पूर्ण प्रजा स्वस्थ होती हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

किमादुतासि वृत्रहन्मघवन्मन्युमत्तमः । अत्राह दानुमातिरः ॥७॥

पदार्थः—हे (मघवन्) श्रेष्ठ धनयुक्त (वृत्रहन्) शत्रुओं के नाश करने वाले ! (मन्युमत्तमः) प्रशंसित क्रोधयुक्त आप सूर्य्य मेघ को जैसे वैसे (दानुम्) देने वाले का (आ, अतिरः) नाश करते हैं (अत्र, अह, आत्, किम्, उत) अहह इस विषय में तो क्या अनन्तर आप राजा भी (असि) हो ॥७॥

भावार्थः—जो राजा दुष्टों के ऊपर अति क्रोध करने और श्रेष्ठों में अत्यन्त शान्ति रखने वाला होता है वही राज्य बढ़ा सकता है ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एतद् घेदुत वीर्य्यं१मिन्द्र चकर्थ पौंस्यम् ।
स्त्रियं यद्दुर्हणायुवं वधीर्दुहितरं दिवः ॥८॥

पदार्थः– हे (इन्द्र) दोषों के नाश करनेवाले ! जैसे सूर्य्य (दुर्हणायुवम्) दुःख से नाश करने योग्य की कामना करनेवाली (दिवः) प्रकाश की (दुहितरम्) कन्या के सदृश वर्त्तमान प्रातर्वेला का नाश करता है वैसे (एतत्) इस कर्म्म और (पौंस्यम्) पुरुषों के लिये हित (वीर्य्यम्) पराक्रम को (चकर्थ) करते हो और आप (घ) शत्रुओं ही का (वधीः, इत्) नाश करते ही हो (यत्) जो (स्त्रियम्) स्त्री (उत) और भृत्य को भी पालिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य रात्रि का नाश और दिन की उत्पत्ति करके प्राणियों को सुख देता है वैसे ही दुष्ट आचरणों का नाश और श्रेष्ठों का पालन कर और विद्या को उत्पन्न करके सम्पूर्ण प्रजाओं को सुख देवै ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दिवश्चिद् घा दुहितरं महान् महीयमानाम् ।
उपासमिन्द्र सं पिणक् ॥ ९ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) तेजस्वि राजन् जैसे (महान्) महानुभाव कोई (दिवः, दुहितरम्) कन्या के सदृश वर्त्तमान सूर्य्य की (महीयमानाम्) विस्तीर्ण (उषासम्) प्रातर्वेला के (चित्) सदृश (सम्, पिणक्) पीसता है वैसे (घ) ही अविद्या और दुष्टों का निवारण करो ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजपुरुष और राजा अन्यायरूप अन्धकार को निवृत्त करके विद्या और न्यायरूप सूर्य्य को उत्पन्न करते वे सूर्य्य के सदृश प्रतापी होते हैं ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अपोषा अनसः सरत्सम्पिष्टादह बिभ्युषी ।
नि यत्सीं शिश्नथद् वृषा ॥ १० ॥

पदार्थः—जो (वृषा) बलिष्ठ राजा जैसे (बिभ्युषी) भय देनेवाली (उषाः) प्रातर्वेला (अनसः) गाड़ी के अग्रभाग के सदृश आगे चलने वाली (सम्पिष्टात्) चूर्णित हुए (अह) ही अन्धकार से (अप, सरत्) आगे चलती है (यत्) जो (सीम्) सब प्रकार (नि, शिश्नथत्) शिथिल करती है वैसा आचरण करे वह सूर्य्य के सदृश तेजस्वी होवे ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे रथ का अग्रभाग आगे होता है वैसे ही सूर्य्य के आगे प्रातःकाल चलता है और जैसे सूर्य्य अन्धकार का नाश करता है वैसे राजा अन्याय के आचार का नाश करे ॥१०॥

अब सूर्य्यविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एतदस्या अनः शये सुसंपिष्टं विपाश्या ।
ससार सीं परावतः ॥ ११ ॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (सीम्) सूर्य्य (अस्याः) इस प्रातःकाल का (एतत्) यह (सुसम्पिष्टम्) उत्तम प्रकार एक स्थान में पीसा चूर्ण हो जिस में उस अन्धकार को (अनः) गाड़ी के सदृश (विपाशि) बन्धनरहित मार्ग में (परावतः) दूर देश से (आ, ससार) सब प्रकार चलता है, जिस में मैं (शये) शयन करूं वैसे इस को आप जानिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे श्रेष्ठ वाहन शीघ्र दूर जाते हैं वैसे ही प्रातःकाल दूर जाता है ऐसा जानना चाहिये ॥११॥

अब मेघसंबन्धी नदीसंतरण विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत सिन्धुं विबाल्यं वितस्थानामधि क्षमि ।
परिष्ठा इन्द्र मायया ॥ १२ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त ! आप (मायया) बुद्धि से (अधि, क्षमि) पृथिवी के बीच (वितस्थानाम्) विशेष करके स्थित नदी (उत) और (विबाल्यम्) बालपन से रहित अर्थात् छोटे नहीं, बड़े (सिन्धुम्) नद के (परि) सब ओर से (स्थाः) स्थित होते हैं ॥१२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! समुद्र नदी नद के पार होने के लिये बुद्धि से नौका आदि को रच के लक्ष्मीवान् होओ ॥१२॥

अब राजसम्बन्ध से मनुष्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत शुष्णस्य धृष्णुया प्र मृक्षो अभि वेदनम् ।
पुरो यदस्य संपिणक् ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (यत्) जिससे आप (शुष्णस्य) बलयुक्त सेना की (धृष्णुया) ढिठाई से (अस्य) इस शत्रु के (पुरः) नगरों को (प्र, मृक्षः) अच्छे प्रकार सींचो अतएव शत्रुओं को (सम्पिणक्) चूर्णित करो (उत) और भी (अभि, वेदनम्) विज्ञान को प्राप्त कराओ ॥१३॥

भावार्थः—वही राजा सम्मत होवै कि जो सेना को बढ़ाय और अन्याय के आचरणों को दूर करके विन कहे को अच्छा जानने वाला होवै ॥१३॥

फिर सूर्यदृष्टान्त से राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत दासं कौलितरं बृहतः पर्वतादधि । अवाहन्निन्द्र शम्बरम् ॥१४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) तेजस्वि राजन् आप जैसे सूर्य्य (बृहतः) बड़े (पर्वतात्) पर्वत से (अधि) ऊपर (शम्बरम्) सुख प्राप्त होता है जिस से उस मेघ को (अव, अहन्) नाश करता और (उत) भी प्रजाओं को पालता है वैसे ही शत्रुओं का नाश करके (कौलितरम्) अत्यन्त कुलीन (दासम्) सेवक का पालन करो ॥१४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य मेघ से जल को पृथिवी में गिरा

के सब को जिलाता है वैसे ही पर्वत के ऊपर स्थित भी डांकुओं को नीचे गिरा के प्रजाओं का पालन करो ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शताऽवधीः ।
अधि पञ्च प्रधीँरिव ॥ १५॥

पदार्थः—हे राजन् ! आप (प्रधीनिव) चक्र में स्थित पैनी कीलों के सदृश वर्त्तमान संसार में कण्टक दुष्टों को (पञ्च) पांच (शता) सौ वा (सहस्राणि) सहस्रों दुष्टों का (अधि, अवधीः) नाश करो (उत) और (वर्चिनः) बहुत पढ़े हुए (दासस्य) सेवक के जनों को पालिये ॥१५॥

भावार्थः—वह राजा जो राजमान राजपुरुषों से यदि दुष्टों का निवारण करके श्रेष्ठों का सत्कार करै तो सम्पूर्ण जगत् उसका सेवक होवै ॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत त्यं पुत्रमग्रुवः परावृक्तं शतक्रतुः । उक्थेष्विन्द्र आभजत् ॥१६॥

पदार्थः—जो (शतक्रतुः) असंख्यबुद्धियों वा (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् राजा (उक्थेषु) प्रशंसा करने योग्य शास्त्रों में (त्यम्) उस (परावृक्तम्) नहीं नष्ट हुए पराक्रम वाले (पुत्रम्) पुत्र को (अग्रुवः) अग्रगामियों के सदृश (आ, अभजत्) सब प्रकार सेवन करता है (उत) और शिक्षा भी देवै वह सिद्धकार्य्य होवै ॥१६॥

भावार्थः—जो राजा माता पुत्रों का जैसे वैसे प्रजाओं का पालन करे उसको प्रजाजन पिता के समान मानें ॥१६॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत त्या तुर्वशायदू अस्नातारा शचीपतिः । इन्द्रो विद्वाँ अपारयत् ॥१७॥

पदार्थः—(शचीपतिः) प्रजा वा वाणी का पति (विद्वान्) विद्वान् (इन्द्रः) और राजा जिन (तुर्वशायदू) शीघ्र वश करने और यत्न करने वाले मनुष्य (उत) और (अस्नातारा) स्नान आदि कर्म्मों से रहित मनुष्यों को (अपारयत्) दुःख से पार उतारै (त्या) वे दोनों सुखी होवैं ॥१७॥

भावार्थः—जिन मनुष्यों को यथार्थवक्ता विद्वान् लोग शिक्षा देवैं वे दुःख के पार जाकर सुखी होते हैं ॥१७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत त्या सद्य आर्य्या सरयोरिन्द्र पारतः । अर्णाचित्ररथावधीः ॥१८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् ! आप (सद्यः) शीघ्र (त्या) उन दोनों (सरयोः) चलते हुओं के (पारतः) पार से वर्त्तमान (अर्णाचित्ररथा) पहुंचाने वाले आश्चर्य्य-कारक रथों का (अवधीः) नाश करो (उत) और (आर्य्या) उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वालों का पालन करो ॥१८॥

भावार्थः—हे राजन् आप निरन्तर दुष्टों का ताड़न और श्रेष्ठों का सत्कार करो ॥१८॥

अब राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अनु द्वा जहिता नयोऽन्धं श्रोणं च वृत्रहन् । न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥१९॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के नाश करने वाले ! जो (नयः) नायक अर्थात् अग्रणी होते हुए आप (अन्धम्) नेत्रों के विज्ञान से विकल (श्रोणं, च) और लञ्ज अर्थात् पंगु (द्वा) दोनों (जहिता) छोड़ने वालों का (अनु) पश्चात् पालन करें तो (ते) आप के (तत्) उस (सुम्नम्) सुख को (अष्टवे) व्याप्त होने को कोई भी शत्रु (न) नहीं समर्थ होवें ॥१९॥

भावार्थः—जो राजा अनाथ अन्धादिकों का निरन्तर पालन करे उस का राज्य और सुख कभी नहीं नष्ट होवें ॥१९॥

फिर सूर्यदृष्टान्त से राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत् । दिवोदासाय दाशुषे ॥२०॥

पदार्थः—जो (इन्द्रः) तेजस्वी सूर्य्य के सदृश (दिवोदासाय) प्रकाश के सेवने वाले और (दाशुषे) देने वाले के लिये (अश्मन्मयीनाम्) मेघों के समूहों के सदृश पाषाणों से बने हुए (पुराम्) नगरों के (शतम्) सैकड़े को (वि, आस्यत्) काटे वही विजयी होने के योग्य होवें ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! जो आप बहुत बढ़े हुए मेघों को जैसे सूर्य्य वैसे अनेक नगरों को जीत सकें तो राजलक्ष्मी और यश को प्राप्त होने के योग्य होवें ॥२०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्वापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः ।
दासानामिन्द्रो मायया ॥२१॥

पदार्थः—जो (इन्द्रः) राजा (मायया) बुद्धि से (दासानाम्) सेवकों और शत्रुओं के (हथैः) हनन साधनों से (दभीतये) हिंसन करने के लिये (सहस्रा) असंख्य (त्रिंशतम्) वा तीस को (अस्वापयत्) सुलावै वही जीतने वाला होवै ॥२१॥

भावार्थः—जो सेनापति आदि बुद्धि से शत्रुओं का नाश करें वे सदा ही सुखी होवें ॥२१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स घेदुतासि वृत्रहन्त्समान इन्द्र गोपतिः ।

यस्ता विश्वानि चिच्युषे ॥२२॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के नाश करनेवाले ! (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के कर्त्ता (यः) जो (गोपतिः) पृथिवी के स्वामी (समानः) सूर्य्य के सदृश आप (ता) उन (विश्वानि) सब की (चिच्युषे) वृद्धि करने (घ) ही हो (स, इत्) वही बलवान् (उत) और सुखी (असि) होते हों ॥२२॥

भावार्थः—जो राजा सूर्य्य के सदृश न्याय के प्रकाश से रागद्वेष वाला होता हुआ सम्पूर्ण राज्य का पालनकर्त्ता है वही गणना करने योग्य होता है ॥२२॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत नूनं यदिन्द्रियं करिष्या इन्द्र पौंस्यम् ।

अद्या नकिष्टदा मिनत् ॥२३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सब के रक्षा करने वाले आप (अद्य) आज (यत्) जो (नूनम्) निश्चित (इन्द्रियम्) इन्द्रिय को (उत) और (पौंस्यम्) पुरुषों में श्रेष्ठ कर्म्म को (करिष्याः) करें (तत्) उसकी कोई भी (नकिः) नहीं (आ, मिनत्) हिंसा करै ॥२३॥

भावार्थः—जो राजा वर्त्तमान समय में बल को बढ़ा सकै वह शत्रुओं से अजित हुआ निश्चय विजय को प्राप्त होवै ॥२३॥

अब विद्वानों के उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वामंवामं त आदुरे देवो ददात्वर्य्यमा ।

वामं पूषा वामं भगो वामं देवः करूळती ॥२४॥

पदार्थः—(आदुरे) शत्रुओं के नाश करने वाले राजन् (करूळती) जिसके कारीगरों की कामना करने वाला विद्यमान वह (देवः) विजय का लेनेवाला (ते)

आप के लिये (वामं वामम्) प्रशंसा करने योग्य प्रशंसा करने योग्य को (ददातु) देवें और जिसके कारीगरों की कामना करनेवाला विद्यमान वह (अर्य्यमा) न्यायाधीश (वामम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थ दे और जिसके कारीगरों की कामना करनेवाला विद्यमान वह (पूषा) पुष्टि करनेवाला (वामम्) सेवा करने योग्य धन को दे और जिसके कारीगरों की कामना करनेवाला विद्यमान वह (भगः) ऐश्वर्य्य से युक्त (देवः) प्रकाशमान (वामम्) श्रेष्ठ विज्ञान को देवें उन सब की आप सदा सेवा करो ।।२४।।

भावार्थः—हे राजन् ! जो लोग सत्य उपदेश सत्य न्याय यथार्थ विद्या और क्रिया की आप को शिक्षा देवें उन सब का आप निरन्तर सत्कार करो ।।२४।।

इस सूक्त में सूर्य्य, मेघ, मनुष्य, विद्वान् और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।।

यह तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

---

वामदेव ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ७-१० । १४ गायत्री । २ । ६ । १२ । १३ । १५ निचृद्गायत्री । ३ त्रिपाद्गायत्री । ४ । ५ विराड् गायत्री । ११ पिपीलिकामध्यागायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

अब पन्द्रह ऋचा वाले इकतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में राजप्रजाधर्मविषय को कहते हैं ।।

कया नश्चित्र आ भुवदूती सदावृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ॥१॥

पदार्थः—हे राजन् ! (सदावृधः) सर्वदा वृद्धि को प्राप्त होते हुए आप (नः) हम लोगों की (कया) किस (ऊती) रक्षण आदि क्रिया के साथ और (कया) किस (शचिष्ठया) अत्यन्त श्रेष्ठ वाणी बुद्धि या कर्म्म जो (वृता) संयुक्त उससे (चित्रः) अद्भुत गुण कर्म्म और स्वभाव वाले (सखा) मित्र (आ, भुवत्) हूजिये ।।१।।

भावार्थः हे राजन् ! आप को चाहिये कि हम लोगों के साथ वैसे कर्म्म करें कि जिनसे हम लोगों की प्रीति बढ़े ।।१।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

कस्त्वा सत्यो मदानां मंहिष्ठो मत्सदन्धसः ।
दृळ्हा चिदारुजे वसु ॥२॥

पदार्थः--हे मनुष्यो ! (मदानाम्) आनन्दों और (अन्धसः) अन्न आदि के सम्बन्ध में (मंहिष्ठः) अत्यन्त बड़ा (सत्यः) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (त्वा) आपको (मत्सत्) आनन्द देवै और (आरुजे) सब प्रकार से रोग के लिये (दृळ्हा) दृढ (वसु) धनरूप (चित्) भी (कः) कौन होवै अर्थात् रोग के दूर करने को अत्यन्त संलग्न कौन हो ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्यआदि धर्म्माचरण से यथायोग्य आहार और विहार करैं तो उनमें कभी दारिद्र्य और रोग नहीं आवै ॥ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**अभी षु णः सखीनामविता जरितॄणाम् । शतं भवास्यूतिभिः ॥३॥**

पदार्थः—हे राजन् ! जो आप (ऊतिभिः) रक्षणादिकों से (जरितॄणाम्) श्रेष्ठ विद्याओं के जानने वाले (सखीनाम्) सब के मित्र (नः) हम लोगों के (शतम्) सैंकड़े (भवासि) होते हो इससे (अभि) सन्मुख (सु) उत्तम प्रकार (अविता) रक्षक हूजिये ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपने आत्मा के सदृश सुख दुःख हानि और लाभ को औरों के भी जानकर दूसरे के प्रिय के लिये वर्त्ताव करैं उन में अन्य जन भी मित्रता करैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**अभी न आ वर्वृत्स्व चक्रं न वृत्तमर्वतः । नियुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥४॥**

पदार्थः—हे राजन् ! आप (नः) हम लोगों को (वृत्तम्) सब प्रकार से दृढ़ (चक्रम्) चक्र के (न) सदृश श्रेष्ठ कर्म्मों में (अभि आ ववृत्स्व) सब ओर से अच्छे प्रकार वर्त्ताइये (नियुद्भिः) और वायु के गमनों के सदृश वेगों के साथ (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (अर्वतः) घोड़ों को वर्त्ताइये ॥४॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप सत्य न्याय में वर्त्ताव करके हम लोगों का भी उसी के अनुसार वर्त्ताव कराइये ॥४॥

फिर राजप्रजाधर्मविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**प्रवता हि क्रतूनामा हा पदेव गच्छसि । अभक्षि सूर्ये सचा ॥५॥**

पदार्थः—हे राजन् ! आप (हि) जिससे (क्रतूनाम्) बुद्धि वा कर्म्मों के (प्रवता) नीचे मार्ग से (पदेव) पैरों के सदृश (आ गच्छसि) आते हो इससे (ह) निश्चय वैसे ही (सचा) सत्य के साथ मैं (सूर्य्ये) सूर्य्य में प्रकाश के सदृश धर्म्म का (अभक्षि) सेवन करता हूं ॥५॥

भावार्थः--इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे श्रेष्ठ विद्वान् लोग शुद्ध मार्ग से जाकर पूर्ण बुद्धि को प्राप्त होते हैं वैसा ही अन्य जन भी वर्त्ताव करके बुद्धि को प्राप्त हों ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**सं यत्त इन्द्र मन्यवः सं चक्राणि दधन्विरे । अध त्वे अध सूर्ये ॥६॥**

पदार्थः—हे (इन्द्र) जीव ! (ते) तेरे (यत्) जो (मन्यवः) क्रोध आदि व्यवहार (चक्राणि) चक्र के सदृश वर्त्तमान कर्म्मों को (सम्, दधन्विरे) धारण करते हैं (अध) अनन्तर (त्वे) आप में धन को धारण करते (अध) इस के अनन्तर वे (सूर्य्ये) सूर्य्य में प्रकाश के सदृश प्रताप को (सम्) धारण करते हैं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्य ! जो तू दुष्ट आचरण करने वाले पर क्रोध और श्रेष्ठ आचरण करने वाले के प्रति हर्ष करै तो सूर्य्य के सदृश प्रतापी होवै ॥६॥

फिर प्रतिज्ञा पालने वाले राजप्रजाधर्मविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**उत स्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते । दातारमविदीधयुम् ॥७॥**

पदार्थः—हे (शचीपते) वाणी और बुद्धि के पालन करने वाले राजन् ! (हि) जिससे (त्वाम्) आपको (मघवानम्) अत्यन्त श्रेष्ठ बहुत धन वाले (अविदीधयुम्) जुआ आदि दुष्ट कर्म्मों से रहित (दातारम्) देनेवाला (स्म) ही विद्वान् लोग (आहुः) कहते हैं (उत) और सेवा भी करैं इससे (इत्) उन्हीं को हम लोग भी सेवैं ॥७॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जो आप लोग धर्म्मयुक्त कर्म्मों का आचरण करें तो आप लोगों में ऐश्वर्य्य और दानकर्म्म कभी न नष्ट होवै ॥७॥

फिर न्यायपालनराजप्रजाधर्मविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**उत स्मा सद्य इत्परि शशमानाय सुन्वते । पुरु चिन्मंहसे वसु ॥८॥**

पदार्थः—हे विद्वन् ! जिससे कि आप (शशमानाय) प्रशंसित और (सुन्वते) पुरुषार्थ से ओषधियों के रस को उत्पन्न करते हुए के लिये (चित्) भी (पुरु) बहुत (वसु) धन को (परि) सब प्रकार (मंहसे) बढ़वाते हो इससे आप (सद्यः) शीघ्र (उत) फिर (स्म) ही (इत्) निश्चित ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हो ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य यथार्थवक्ता पुरुषों का सत्कार करते हैं वे शीघ्र गुणवान् होकर ऐश्वर्य्य से युक्त होवें ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नहि ष्मा ते शतं चन राधो वरन्त आमुरः ।

न च्यौत्नानि करिष्यतः ॥९॥

पदार्थः—हे राजन् (च्यौत्नानि) बलों को (करिष्यतः) करते हुए (ते) आप के (शतम्) असंख्य (राधः) धन को (चन) भी (आमुरः) सब प्रकार रोग करनेवाले (नहि) नहीं (वरन्ते) स्वीकार करते हैं (न) और न विजय को (स्म) ही प्राप्त होते हैं ॥९॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आप यथायोग्य न्यायकारी होवें तो आप का धन और बल कभी न नष्ट होवे और सैकड़ों प्रकार बढ़े ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्माँ अवन्तु ते शतमस्मान्त्सहस्रमूतयः ।

अस्मान्विश्वा अभिष्टयः ॥ १० ॥

पदार्थः—हे राजन् ! (ते) आप की (सहस्रम्) अनेक प्रकार की (ऊतयः) रक्षायें (शतम्) संख्यारहित (विश्वाः) सम्पूर्ण (अभिष्टयः) इच्छायें (अस्मान्) हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा और (अस्मान्) हमलोगों की वृद्धि करें (अस्मान्) तथा हम लोगों को आनन्द देवें ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन् ! तभी आप सत्य राजा होवें जब अपने और पिता के सदृश हम लोगों का पालन और वृद्धि कराके आनन्द देवें ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्माँ इहा वृणीष्व सख्याय स्वस्तये । महो राये दिवित्मते ॥११॥

पदार्थः—हे तेजस्वि राजन् ! आप (इह) इस संसार वा राज्य में (अस्मान्) हम लोगों को (स्वस्तये) सुख के लिये (महः) बड़े (दिवित्मते) विद्या धर्म्म और न्याय से प्रकाशित (सख्याय) मित्रत्व के लिये और (राये) धन के लिये (वृणीष्व) स्वीकार करो ॥११॥

भावार्थः—हे राजन् ! जैसे आप हम लोगों में मित्रता रखते हैं वैसे हम लोग भी आप में सदा ही मित्र हुए वर्त्ताव करें ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्माँ अविड्ढि विश्वहेन्द्र राया परीणसा ।

अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः ॥१२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् ! आप (विश्वहा) सम्पूर्ण दिनों को (परीणसा) अनेक प्रकार के (राया) धन के साथ (अस्मान्) हम लोगों को (अविड्ढि) प्रवेश कराइये और (विश्वाभिः) सम्पूर्ण (ऊतिभिः) रक्षा आदि क्रियाओं से हम लोगों को प्रवेश कराइये अर्थात् युक्त करिये ॥१२॥

भावार्थः—वही उत्तम राजा और राजपुरुष हैं कि जो सब प्रकार रक्षा से प्रजा को धनाढ्य करें ॥१२॥

फिर प्रजावृद्धिप्रकार से राजप्रजाधर्म विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्मभ्यं ताँ अपा वृधि व्रजाँ अस्तेव गोमतः ।
नवाभिरिन्द्रोतिभिः ॥ १३ ॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य्य के देने वाले राजन् ! आप (नवाभिः) नवीन (ऊतिभिः) रक्षादिकों से (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (गोमतः) जिनमें बहुत गौएँ विद्यमान और (व्रजान्) बहुत गौएँ जातीं (तान्) उन गोठों (अस्तेव) गृहों के समान बढ़ाइये और दुःखों को (अपा, वृधि) न्यून कीजिये, नष्ट कीजिये ॥१३॥

भावार्थः—हे राजन् ! जैसे गोपाल गौओं को बढ़ा के दुग्धादिकों से आढ्य होते हैं वैसे ही हम लोगों की वृद्धि करो और आढ्य होकर सदैव आनन्द कीजिये ॥१३॥

फिर राजप्रजा धर्मविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमाँ इन्द्रानपच्युतः । गव्युरश्वयुरीयते ॥१४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् ! जो (अस्माकम्) हम लोगोंको (धृष्णुया) दृढ़ता से युक्त (द्युमान्) बहुत कलायन्त्र आदि से प्रकाशित (अनपच्युतः) घटने से रहित (गव्युः) बहुत गौओं और (अश्वयुः)बहुत घोड़ों के बल से युक्त (रथः) शीघ्र पहुंचा-नेवाला विमान आदि विशेष वाहन (ईयते) जाता है उसके साथ शत्रुओं को जीतिये ॥१४॥

भावार्थः—राजा और प्रजाजन ऐसा मानें कि जो राजा के पदार्थ वे हम लोगों के और जो हम लोगों के वे राजा के हैं ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य्य । वर्षिष्ठं द्यामिवोपरि ॥१५॥

पदार्थः—हे (सूर्य्य) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान राजन् ! आप (उपरि) ऊपर वर्त्तमान (द्यामिव) प्रकाश के सदृश (अस्माकम्) हम लोगों के (उत्तमम्) अत्यन्त

श्रेष्ठ (वर्षिष्ठम्) अत्यन्त वढ़े हुए (श्रवः) अन्न आदि वा श्रवण को (देवेषु) विद्वानों में (कृधि) करिये ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे आकाश में सूर्य्य वड़ा है वैसे ही विद्या और विनय की उन्नति से उत्तम ऐश्वर्य्य को उत्पन्न करो ॥१५॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के धर्म्म वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । १-२२ इन्द्रः । २३ । २४ इन्द्राश्वौ देवते । १ । ८—१० । १४ । १६ । १८ । २२ । २३ गायत्री । २ । ४ । ७ विराड्गायत्री । ३ । ५ । ६ । १२ । १३ । १५ । १९-२१ निचृद्गायत्री । ११ पिपीलिकामध्या गायत्री छन्दः । १७ पादनिचृद्गायत्री । २४ स्वराडार्ची गायत्री च छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब चौबीस ऋचावाले बत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजप्रजागुणों को कहते हैं ॥

आ तू न इन्द्र वृत्रहन्नस्माकमर्द्धमा गहि । महान्महीभिरूतिभिः ॥१॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) मेघ को नाश करनेवाले सूर्य के सदृश (इन्द्र) राजन् ! आप (अस्माकम्) हम लोगों की (अर्द्धम्) वृद्धि को (आ, गहि) प्राप्त हूजिये और (महीभिः) बड़ी (ऊतिभिः) ऊतियों अर्थात् रक्षादिकों के साथ (महान्) बड़े हुए (नः) हम लोगों को (तु) फिर (आ) प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आप हम लोगों की वृद्धि करें तो हम लोग आपकी अतिवृद्धि करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भृमिश्चिद् घासि तूतुजिरा चित्र चित्रिणीष्वा । चित्रं कृणोष्यूतये ॥२॥

पदार्थः—हे (चित्र) आश्चर्य्यवान् गुणकर्म स्वभावयुक्त (तूतुजिः) शीघ्रकारी (भृमिः) घूमने वाले आप (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (चित्रिणीषु) अद्भुत सेनाओं में (चित्रम्) अद्भुत व्यवहार को (आ, कृणोषि) करते हो (चित्) और (आ, घ, असि) अभीष्टकारी होते हो इस से सत्कार करने योग्य हो ॥२॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आप सब जगह घूमके शीघ्र न्याय करके

सब की रक्षा करें तो आप की आश्चर्यजनक प्रजा अद्‌भुत ऐश्वर्य की उन्नति करै ।।२।।

फिर उसी राजप्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

दभ्रेभिश्चिच्छशीयांसं हंसि व्राधन्तमोजसा ।
सखिभिर्ये त्वे सचा ।। ३ ।।

पदार्थः—हे सेनापति राजन् ! जो आप (दभ्रेभिः) थोड़े वा छोटे (सखिभिः) मित्रों से (चित्) भी (ओजसा) बल से (शशीयांसम्) धर्म्म के उल्लङ्घन करने और (व्राधन्तम्) बहिलिये के सदृश प्रजा के नाश करने वाले का (हंसि) नाश करते हो और (ये) जो (त्वे) आप में (सचा) सत्य से वर्त्तमान हैं उनकी रक्षा करते हो तो विजय को कैसे न प्राप्त होते हो ।।३।।

भावार्थः—जो धार्मिक थोड़े भी परस्पर मित्र होकर शत्रुओं के साथ युद्ध करें तो बहुत भी अधर्म्माचारियों को जीतें ।।३।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

वयमिन्द्र त्वे सचा वयं त्वाभि नोनुमः । अस्माँअस्माँ इदुदव ।। ४ ।।

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् ! जो (वयम्) हम लोग (त्वे) आप में (सचा) सत्य आचरण से वर्त्ताव करें और (वयम्) हम लोग (त्वा) आप को (अभि नोनुमः) सब प्रकार निरन्तर नमस्कार करते हैं उन (अस्मानस्मान्) हम लोगों की हम लोगों की निरन्तर (इत् उत्) निश्चित ही (अव) रक्षा करो ।।४।।

भावार्थः—हे राजन् ! जैसे हम लोग आप में सत्यभाव से वर्त्ताव और प्रीति से आप का सत्कार करें वैसे ही आप हम लोगों की निरन्तर वृद्धि करें ।।४।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

स नश्चित्राभिरद्रिवोऽनवद्याभिरूतिभिः । अनाधृष्टाभिरा गहि ।।५।।

पदार्थः—हे (अद्रिवः) मेघों के सम्बन्ध से युक्त सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान राजन् (सः) वह आप (चित्राभिः) अद्‌भुत (अनवद्याभिः) प्रशंसा करने योग्य (अनाधृष्टाभिः) शत्रुओं से दवाने को नहीं योग्य (ऊतिभिः) रक्षादिकों के साथ (नः) हम लोगों को (आ, गहि) प्राप्त हूजिये ।।५।।

भावार्थः—हे प्रजाजनो ! जैसे राजा आप लोगों की सब प्रकार रक्षा करै वैसे आप लोग भी राजा की सब प्रकार रक्षा करो ।।५।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**भूयामो षु त्वावतः सखाय इन्द्र गोमतः । युजो वाजाय घृष्वये ॥६॥**

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् ! (त्वावतः) आप से रक्षित (सखायः) मित्र हम लोग (घृष्वये) घिसने और (वाजाय) विज्ञान वा अन्न के लिये (गोमतः) गौओं से युक्त (युजः) युक्त होने वालों को प्राप्त होकर (सु) सुन्दर (भूयामो) होवें ॥६॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आप पृथिवी आदि से युक्त हम लोगों को ऐश्वर्य्य के साथ युक्त करें तो हम लोग भी आप के साथ युक्त हों ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**त्वं ह्येक ईशिष इन्द्र वाजस्य गोमतः । स नो यन्धि महीमिषम् ॥७॥**

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त विद्वन् जो (हि) जिससे (एकः) सहायरहित (त्वम्) आप (गोमतः) बहुत प्रकार की पृथिवी आदि के सहित (वाजस्य) विज्ञान आदि से युक्त जनसमूह के (ईशिषे) स्वामी हो (सः) वह (नः) हम लोगों के लिये (महीम्) बड़े (इषम्) अन्न आदि को (यन्धि) दीजिये ॥७॥

भावार्थः— जो विद्वान् पुरुषार्थ से बड़े ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर अन्य जनों के लिये देता है वही सब का ईश्वर होता है ॥७॥

अब अध्यापक और उपदेशक के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**न त्वा वरन्ते अन्यथा यद्दित्ससि स्तुतो मघम् ।**
**स्तोतृभ्य इन्द्र गिर्वणः ॥८॥**

पदार्थः—हे (गिर्वणः) वाणियों से सत्कार को प्राप्त (इन्द्र) राजन् ! (यत्) जो (स्तुतः) प्रशंसा किये गए आप (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (मघम्) धन को (दित्ससि) देने की इच्छा करते हो उन (त्वा) आप को (अन्यथा) अन्य प्रकार से मनुष्य (न) नहीं (वरन्ते) स्वीकार करते हैं ॥८॥

भावार्थः— जो इस संसार में देनेवाला होता है वही सब का प्रिय होता और कोई भी उसका विरोधी नहीं होता है ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**अभि त्वा गोतमा गिरानूषत प्र दावने । इन्द्र वाजाय घृष्वये ॥९॥**

पदार्थः— हे (इन्द्र) राजन् ! (गोतमाः) श्रेष्ठ वाणी से युक्त जन (गिरा) वाणी से (त्वा) आप की (अभि, अनूषत) सब ओर से स्तुति करें (वाजाय) विज्ञान

और अन्न आदि के (घृष्वये) घिसे अर्थात् शुद्ध और (दावने) देनेवाले के लिये (प्र) उत्तम प्रकार स्तुति करें उनकी आप प्रशंसा करो ॥९॥

भावार्थः—जिस की प्रशंसा विद्वान् जन करते हैं वही प्रशंसित मानने के योग्य है ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र ते॑ वोचाम वी॒र्या॒३॑ या म॑न्दसा॒न आरु॑जः ।
पु॒रो दासी॑र॒भीत्य॑ ॥१०॥

पदार्थः—हे राजन् (मन्दसानः) कामना करते हुए आप शत्रुओं की (याः) जो (दासीः) सेविकाओं के सदृश (आ, अरुजः) सब प्रकार रोगयुक्त (पुरः) नगरियों को (अभीत्य) सब ओर से प्राप्त होकर जीतते हो उन (ते) आप के (वीर्य्या) बल पराक्रम से युक्त कर्म्मों का हम लोग (प्र, वोचाम) उपदेश करें ॥१०॥

भावार्थः—जो राजा शत्रुओं का पराजय कर सकै वही राज्य करने को योग्य हो ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ता ते॑ गृणन्ति वे॒धसो॒ यानि॑ च॒कर्थ॒ पौंस्या॑ । सु॒तेष्वि॑न्द्र गिर्वणः ॥११॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) वाणियों से स्तुति किये गये (इन्द्र) राजन् ! (यानि) जो (वेधसः) बुद्धिमान् (ते) आप के (पौंस्या) पुरुषों के लिये हितकारक बलों को (गृणन्ति) कहते हैं और जिन को आप (सुतेषु) उत्पन्न पदार्थों में (चकर्थ) करते हो (ता) उन की हम लोग प्रशंसा करें ॥११॥

भावार्थः—वे ही प्रशंसा करने योग्य कर्म्म होते हैं कि जिनकी यथार्थवक्ता जन प्रशंसा करें ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अवी॑वृधन्त॒ गोत॑मा॒ इन्द्र॒ त्वे स्तोम॑वाहसः । ऐषु॑ धा वी॒रव॒द्यशः॑ ॥१२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्वन् जो (स्तोमवाहसः) प्रशंसा को प्राप्त करानेवाले (गोतमाः) विद्वान् जन (त्वे) आप में (वीरवत्) वीर पुरुष जिस में विद्यमान उस (यशः) कीर्ति वा धन को (अवीवृधन्त) बढ़ावें (एषु) इन में आप वीरयुक्त कीर्ति वा धन को (आ, धाः) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥१२॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो लोग उत्तम कर्म्म से आप की कीर्ति को बढ़ावें उन की कीर्ति आप भी बढ़ाइये ॥१२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम्। तं त्वा वयं हवामहे॥१३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त जगदीश्वर! (यत्) जो (त्वम्) आप (शश्वताम्) अनादि काल से हुए प्रकृति आदि पदार्थों के मध्य में (साधारणः) सामान्य से व्याप्त (असि) होते हो (तम्, चित्) उन्हीं (त्वा) आप की (हि) निश्चय (वयम्) हम लोग (हवामहे) स्तुति करते वा आप का आश्रय करते हैं॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो परमेश्वर अनादि काल से सिद्ध प्रकृति आदि पदार्थों का स्वामी, उन का धारण करने वाला; वह कार्य्य का निर्माण कर्त्ता और कार्य्यों की व्यवस्था करने वाला अन्तर्यामी है उसी की सदा उपासना करो॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अर्वाचीनो वसो भवास्मे सु मत्स्वान्धसः।
सोमानामिन्द्र सोमपाः॥१४॥

पदार्थः—हे (वसो) वास करने वाले (इन्द्र) राजन्! (अर्वाचीनः) इस काल में वर्त्तमान (सोमपाः) ऐश्वर्य्य की रक्षा करने वाले आप (अस्मे) हम लोगों में (अन्धसः) अन्न आदि और (सोमानाम्) अन्य पदार्थों के रक्षक (भव) हूजिये और (सु, मत्स्व) उत्तम प्रकार आनन्द कीजिये॥१४॥

भावार्थः—जो राजा प्रजा के पदार्थों की यथायोग्य रक्षा करै वह आगे के समय में सुख की वृद्धियुक्त होवै॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अस्माकं त्वा मतीनामा स्तोम इन्द्र यच्छतु। अर्वागा वर्तया हरी॥१५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन्! (अस्माकम्) हम (मतीनाम्) विचारशील मनुष्यों की (स्तोमः) स्तुति जिन (त्वा) आप को (आ, यच्छतु) प्राप्त होवै वह आप (अर्वाक्) फिर (हरी) अग्नि जल वा घोड़ों को (आ, वर्त्तय) अच्छे प्रकार वर्त्ताइये॥१५॥

भावार्थः—जिस विद्या और विनय से युक्त राजा को सब प्रकार प्रशंसा प्राप्त होवे वही प्रजा को नियमयुक्त कर सकै॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

पुरोळाशं च नो घसो जोषयासे गिरश्च नः। वधूयुरिव योषणाम्॥१६॥

पदार्थः—हे वैद्यराज! जो (नः) हम लोगों के लिये (घसः) भोग है उस

की (पुरोळाशम्, च) और उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्नविशेष की (जोषयासे) सेवा कराओ और (योषणाम्) स्त्री को (वधूयुरिव) वधूयु अर्थात् अपने को वधू की चाहना करने वाले के सदृश (नः) हम लोगों को (गिरः) वाणियों की (च) भी सेवा कराओ ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जो राजा स्त्री की कामना करते हुए पति के सदृश प्रजा की वाणियों को सुन के न्याय करता और ऐश्वर्य को धारण करता है वह राज्य में पूज्य होता है ॥१६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सहस्रं व्यतीनां युक्तानामिन्द्रमीमहे । शतं सोमस्य खार्यः ॥१७॥

पदार्थः—हे धनाढ्य पुरुष ! (व्यतीनाम्) गमन करने वाले (युक्तानाम्) उत्तम प्रकार सावधान चित्त हुए जनों का (सहस्रम्) एक सहस्र और (सोमस्य) धान्य आदि ऐश्वर्य की (खार्यः, शतम्)सौ खारी अर्थात् सौ मन तुले हुए अन्न आदि पदार्थ हैं उन की (इन्द्रम्) दुष्टों को नाश करने वाले राजा को प्राप्त होकर (ईमहे) याचना करते हैं ॥१७॥

भावार्थः—जो धनाढ्य जनों को प्राप्त होकर असंख्य पदार्थों की याचना करते हैं वे थोड़ा पाते हैं और जो याचना नहीं करते हैं वे बहुत पाते है ॥१७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सहस्रा ते शता वयं गवामा च्यावयामसि ।
अस्मत्रा राध एतु ते ॥१८॥

पदार्थः—हे धन के ईश ! (ते) आप का (राधः) धन (अस्मत्रा) हम लोगों में (एतु) प्राप्त हो और (ते) आप की (गवाम्) गौ के (सहस्रा) हजारों और (शता) सैकड़ों समूह को (वयम्) हम लोग (आ, च्यावयामसि) प्राप्त कराते हैं ॥१८॥

भावार्थः—हे धनाढ्य ! आप के समीप से हम लोग गौ आदि पदार्थों को प्राप्त होकर औरों के लिये देते हैं और हम लोगों का धन आप को प्राप्त हो ॥१८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि । भूरिदा असि वृत्रहन् ॥१९॥

पदार्थः— हे (वृत्रहन्) शत्रुओं के नाश करनेवाले ! जिस से आप (भूरिदाः) बहुतों के देनेवाले (असि) हो इस से (ते) आप के (हिरण्यानाम्) सुवर्ण के बने हुए (कलशानाम्) घटों के (दश) दशसंख्यायुक्त समूह को हम लोग (अधीमहि) प्राप्त होवें ॥१९॥

भावार्थः—जो मनुष्य बहुत देने वाला होता है उसके मित्र बहुत होते हैं ॥१९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भूरिदा भूरि देहि नो मा दभ्रं भूर्या भर ।

भूरि घेदिन्द्र दित्ससि ॥२०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) देने वाले ! जो आप (नः) हम लोगों के लिये (भूरि) बहुत (दित्ससि) देने की इच्छा करते हो वह (भूरिदाः) बहुत देने वाले आप हम लोगों के लिये (भूरि) बहुत (देहि) दीजिये और (भूरि) बहुत को (आ, भर) सब प्रकार धारण कीजिये (दभ्रम्) थोड़े को (घ) ही (मा) मत दीजिये और थोड़े को (इत्) ही न धारण कीजिये ॥२०॥

भावार्थः— जो बहुत देनेवाला है वही प्रशंसा को प्राप्त होता है और जो थोड़ा देने वाला वह नहीं इस प्रकार प्रशंसित होता है ॥२०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भूरिदा ह्यसि श्रुतः पुरुत्रा शूर वृत्रहन् ।

आ नो भजस्व राधसि ॥२१॥

पदार्थः—हे (शूर) शत्रुओं के नाश करने वाले (वृत्रहन्) धन को प्राप्त राजन् ! आप (हि) जिससे (भूरिदाः) बहुत देनेवाले (असि) हो इस से (पुरुत्रा) बहुतों में प्रतिष्ठित और (श्रुतः) सब जगह प्रसिद्ध यशवाले हो जिस से आप (नः) हम लोगों को (राधसि) अच्छे प्रकार साधते हैं इस से हम लोगों को (आ, भजस्व) अच्छे प्रकार सेवो ॥२१॥

भावार्थः—जो इस संसार में बहुत देनेवाला होता है वही सम्पूर्ण दिशाओं में कीर्तियुक्त होता है ॥२१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र ते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात् ।

माभ्यां गा अनु शिश्रथः ॥२२॥

पदार्थः—हे (गोषणः) गौ मांगने वाले (विचक्षण) उत्तम ज्ञाता जो (बभ्रू) सम्पूर्ण विद्याओं के धारण करने वाले अध्यापक और उपदेशक की मैं (प्र, शंसामि) प्रशंसा करता हूं वे (ते) आप के शिक्षक होवें (आभ्याम्) इन के साथ आप (नपात्) नहीं गिरने वाले होते हुए (गाः) पृथिव्यादिकों को (मा, अनु, शिश्रथः) मत शिथिल करते हैं ॥२२॥

भावार्थः—हे जिज्ञासु ! ज्ञान को चाहने वाले तू अध्यापक और उपदेशक को पाकर पुरुषार्थ से विद्या और उपदेश को शीघ्र ग्रहण कर आलस्य मत कर ॥२२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**कनीनकेव विद्रधे नवे द्रुपदे अर्भके । बभ्रू यामेषु शोभेते ॥२३॥**

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप जो (बभ्रू) अध्यापक और उपदेशक (यामेषु) प्रहरों में (कनीनकेव) सुन्दर के तुल्य (नवे) नवीन (विद्रधे) विशेष दृढ़ (द्रुपदे) शीघ्र प्राप्त होने योग्य पदार्थ वा वृक्ष आदि द्रव्यों के स्थान और (अर्भके) छोटे बालक के निमित्त (शोभेते) शोभित होते हैं उन के सदृश संसार के उपकार करने वाले होने को योग्य हों ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो विद्वान् अधिक वा न्यून विज्ञान में वा काम में सुशोभित हों वे जगत् के बीच कल्याण करने वाले हों ॥२३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**अरं म उस्रयाम्णेऽरमनुस्रयाम्णे । बभ्रू यामेष्वस्रिधा ॥२४॥**

पदार्थः—जो (अस्रिधा) नहीं हिंसा करने (बभ्रू) और सत्य की धारणा करने वाले (यामेषु) प्रहरों में (उस्रयाम्णे) किरणों के समान जो यान से जाना उस (मे) मेरे लिये (अरम्) समर्थ और (अनुस्रयाम्णे) शीत देश को जाने वाले मेरे लिये (अरम्) समर्थ होते हैं वे मुझ से सेवन योग्य हैं ॥२४॥

भावार्थः—जो अध्यापक और उपदेशक शीतोष्ण देश निवासी मुझ को पढ़ा और उपदेश दे सकते हैं वे सदैव मुझ से सत्कार करने योग्य होते हैं ॥२४॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा प्रजा अध्यापक और उपदेशक के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

वामदेव ऋषिः। ऋभवो देवताः। १ भुरिक् त्रिष्टुप् २। ४। ५। ११ त्रिष्टुप्। ३। ६। १० निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ७। ८ भुरिक् पङ्क्तिः। ९ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले तेंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

प्र ऋभुभ्यो दूतमिव वाचमिष्य उपस्तिरे श्वैतरीं धेनुमीळे ।
ये वातजूतास्तरणिभिरेवैः परि द्यां सद्यो अपसो बभूवुः ॥१॥

पदार्थः—(ये) जो (वातजूताः) वायु से उड़ाये गये त्रसरेणु आदि पदार्थ (एवैः) प्राप्त वेग आदि गुणों और (तरणिभिः) उत्तम प्रकार तैरने आदि क्रियाओं से (सद्यः) शीघ्र (द्याम्) आकाश और (अपसः) कर्म्मों के प्रति (परिबभूवुः) परिभूत तिरस्कृत अर्थात् रूपान्तर को प्राप्त होते हैं उन से (उपस्तिरे) विस्तार के अर्थ और (ऋभुभ्यः) बुद्धिमानों के लिये (दूतमिव) जैसे दूत दूतपन की इच्छा करे वैसे (श्वैतरीम्) अत्यन्त शुद्ध (धेनुम्) धारण करने वाली (वाचम्) वाणी को (प्र, इष्ये) प्राप्त करता हूं उस वाणी से पदार्थ विज्ञान की (ईळे) स्तुति करता हूँ ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो पुरुष जैसे त्रसरेणु वायु से क्रिया को निरन्तर करते हैं वैसे ही विद्वानों से विद्या को प्राप्त होकर पुरुषार्थ सदा करते हैं वे सर्व विद्याओं से युक्त सुन्दर वाणी को प्राप्त होते हैं ॥१॥

अब माता पिता आदि के शिक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यदारमक्रन्नृभवः पितृभ्यां परिविष्टी वेषणा दंसनाभिः ।
आदिद्देवानामुप सख्यमायन्धीरासः पुष्टिमवहन्मनायै ॥२॥

पदार्थः—(ऋभवः) बुद्धिमान् जन (यदा) जब (पितृभ्याम्) विद्वान् माता और पिता से (परिविष्टी) सब प्रकार विद्या को व्याप्त होता जिस से उस क्रिया और (वेषणा) व्याप्त पदार्थ से तथा (दंसनाभिः) उत्तम कर्म्मों से (देवानाम्) विद्वानों के (सख्यम्) मित्रपन को (अरम्) पूरा (अक्रन्) करते हैं (आत्, इत्) तभी वे (धीरासः) योग से युक्त ध्यान वाले (मनायै) मानने योग्य विद्या के लिये बुद्धि को (उप, आयन्) प्राप्त होते और (पुष्टिम्) सम्पूर्ण अवयवों की पुष्टि को (अवहन्) प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य बाल्यावस्था में पांचवें वर्ष से माता की शिक्षा और आठवें वर्ष से लेकर पिता की शिक्षा को और अड़तालीस वर्ष पर्य्यन्त

आचार्य्यं की शिक्षा को ग्रहण करते हैं वे ही विद्वान् बुद्धिमान् धार्मिक बहुत काल पर्यन्त जीवने और संसार के कल्याण करने वाले होते हैं ॥२॥

फिर माता पिता से शिक्षा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।
ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नोऽवन्तु यज्ञम् ॥३॥

पदार्थः—(ये) जो जन (जरणा) बुढ़ापे को प्राप्त (शयाना) सोते हुए (सना) उत्तम प्रकार सेवा करने वाले (पितरा) माता पिता को (युवाना) ज्वान (यूपेव) खम्भे के सदृश पुष्ट (पुनः) फिर (चक्रुः) करें (ते) वे (मधुप्सरसः) सुन्दर स्वरूप और (इन्द्रवन्तः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त हो कर (नः) हम लोगों के (यज्ञम्) पढ़ने पढ़ाने आदि कर्म्म की (अवन्तु) रक्षा करें उस कर्म्म के संग से (विभ्वा) व्यापक जाने गये जगदीश्वर से (वाजः) ज्ञानवान् और (ऋभुः) विद्वान् मैं होऊं ॥३॥

भावार्थः—जो पितृजन अपने सन्तानों को अतिकाल पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य से उत्तम स्वभाव और विद्यायुक्त करते हैं वे उन सन्तानों की सेवा से फिर भी वृद्ध हुए युवावस्था वालों के सदृश होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यत्संवत्समृभवो गामरक्षन्यत्संवत्समृभवो मा अपिंशन् ।
यत्संवत्समभरन्भासो अस्यास्ताभिः शमीभिरमृतत्वमाशुः ॥४॥

पदार्थः—(यत्) जो (ऋभवः) बुद्धिमान् पितृजन (संवत्सम्) प्राप्त बछड़े के सदृश सन्तानों को शिक्षा देते हैं (गाम्) वाणी की (अरक्षन्) रक्षा करते हैं और (यत्) जो (ऋभवः) बुद्धिमान् पितृ आचार्य्यजन (संवत्सम्) एक हुए और प्रेम से पाले गये सन्तान के सदृश (माः) माताओं को (अपिंशन्) अवयवों के सहित करते हैं अर्थात् भरण पोषण से उनके अङ्गों को पुष्ट करते और (यत्) जो मातृजन (भासः) प्रकाशमान (अस्याः) इस विद्या के (संवत्सम्) एकीभाव को प्राप्त प्रेम से पालित सन्तान का (अभरन्) धारण वा पोषण करते हैं वे बुद्धिमान् पितृजन और मातृजन (ताभिः) उन मातृ पितृ आचार्य्य की सेवा और विद्या की प्राप्तियों और (शमीभिः) श्रेष्ठ कर्मों से (अमृतत्वम्) मोक्षभाव वा उत्तम आनन्द को (आशुः) प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो विद्वान् पितृजन अपने सन्तानों को ब्रह्मचर्य्य और विद्या से विद्या बल और उत्तम गुण और कर्म्मों के आचरण युक्त करते हैं वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होते हैं ॥४॥

अब मनुष्य गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ज्येष्ठ आह चमसा द्वा करेति कनीयान्त्रीन्कृणवामेत्याह ।
कनिष्ठ आह चतुरस्करेति त्वष्ट ऋभवस्तत्पनयद्वचो वः ॥५॥

पदार्थः—हे (ऋभवः) बुद्धिमानो ! जिस (वः) आप के (वचः) वचन को (त्वष्टा) शिक्षा देनेवाला (पनयत्) प्रशंसा करे (तत्) वह वचन (द्वा) दो (चमसा) चमसों को (कर) करे (इति) इस प्रकार से (ज्येष्ठः) प्रथम उत्पन्न हुआ (आह) कहता है (कनीयान्) पीछे उत्पन्न हुआ छोटा (त्रीन्) तीन को (कृणवाम) करें (इति) इस प्रकार से (आह) कहता है और (कनिष्ठः) कनिष्ठ अर्थात् छोटा (चतुरः) चार को (कर) करे (इति) इस प्रकार से (आह) कहता है ॥५॥

भावार्थः—वन्धुजन विद्वान् होकर परस्पर वार्त्तालाप करें कि जैसे बड़ा आज्ञा करे वैसे छोटा और जैसे छोटा कहै वैसा ही ज्येष्ठ आचरण करे। जैसे इस मन्त्र में (कनीयान्) यह कर्त्तृ पद एकवचनान्त और (कृणवाम) यह बहुवचनान्त क्रिया नहीं संगत होते हैं ऐसे जानना चाहिये अर्थात् अहं कर्त्ता की योग्यता में वयं कर्त्ता के पक्ष से योजना कर समझना चाहिये अथवा जैसे हम लोग परस्पर वार्त्तालाप करें वैसे ही आप लोगों को भी परस्पर वार्त्तालाप करना चाहिये और जिस प्रकार सत्य और प्रशंसित वचन होवे उसी प्रकार सब को बोलना चाहिये ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु स्वधामृभवो जग्मुरेताम् ।
विभ्राजमानाँश्चमसाँ अहेवावेनत्त्वष्टा चतुरो ददृश्वान् ॥६॥

पदार्थः—जैसे (ऋभवः) बुद्धिमान् जन (एताम्) इस (स्वधाम्) अन्न को (जग्मुः) प्राप्त होते हैं और यथार्थ वक्ताओं के आचरण को (अनु, चक्रुः) करें वैसे (एवा) ही (नरः) मनुष्य (सत्यम्) यथार्थ (ऊचुः) कहें और जो (हि) जिस से (त्वष्टा) जानने वाला (चतुरः) चार को (ददृश्वान्) देखने वाला होवे वह (विभ्राजमानान्) प्रकाशित हुए (चमसान्) मेघों को (अहेव) दिनों के सदृश चार पदार्थों की (अवेनत्) कामना करता है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। मनुष्यों को चाहिये कि इस संसार में यथार्थवक्ताओं का अनुकरण करके जैसे क्रम से वर्त्ताव कर दिन वर्षाऋतु को प्राप्त होते हैं वैसे ही क्रम से कर्म्म, उपासना और ज्ञान

सत्यभाषण आदि को बढ़ा के धर्म अर्थ काम और मोक्ष को सिद्ध कराते हैं यह जानें ॥६॥

फिर विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

द्वादश द्यून्यदगोह्यस्यातिथ्ये रणन्नृभवः ससन्तः ।
सुक्षेत्राकृण्वन्ननयन्त सिन्धून्धन्वातिष्ठन्नोषधीर्निम्नमापः ॥७॥

पदार्थः—(यत्) जो (ससन्तः) सोते हुए उठकर (ऋभवः) बुद्धिमान् जन जिस प्रकार से (आपः) जलों और (सिन्धून्) नदी वा समुद्रों (धन्व) तथा अन्तरिक्ष और (ओषधीः) ओषधियों के (निम्नम्) नीचे (आ, अतिष्ठन्) स्थित होते हैं वैसे (अगोह्यस्य) अगुप्त के (आतिथ्ये) आतिथ्य में अतिथिसम्बन्धी सत्कार में (द्वादश) बारह (द्यून्) दिन (रणन्) उपदेश देवें तथा (सुक्षेत्रा) सुन्दर स्थानों को (अकृण्वन्) करते और सुखों को (अनयन्त) प्राप्त होते हैं वे मङ्गल देने वाले हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्वान् जन जैसे सोते हुओं को चेताय के जगाते है वैसे ही अविद्वानों को उत्तम शिक्षा दे विद्वान् करके आनन्द देवें ॥७॥

फिर मनुष्यगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥८॥

पदार्थः—(ये) जो (ऋभवः) बुद्धिमान् जन (सुवृतम्) उत्तम रचित और अंगों वा उपाङ्गों के सहित (नरेष्ठाम्) मनुष्य जिसमें स्थित होते हैं उस (रथम्) विमान आदि वाहन को (चक्रुः) करते हैं और (ये) जो (विश्वरूपाम्) सम्पूर्ण शास्त्रज्ञान वाली और (विश्वजुवम्) सम्पूर्ण वेगों से युक्त (धेनुम्) वाणी को प्राप्त होते हैं (ते) वे (स्ववसः) सुन्दर रक्षण आदि कर्म से और (स्वपसः) उत्तम प्रकार धर्मयुक्त कर्मों से युक्त (सुहस्ताः) सुन्दर कर्मसाधक हाथों वाले (नः) हम लोगों के लिये (रयिम्) धन को (आ, तक्षन्तु) रचें ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य पहिले विद्या को और फिर हस्तक्रिया को ग्रहण करके उत्तम आचरण वाले होते हुए आत्मसम्बन्धी और बाहिर के विशेष ज्ञान को उत्तम प्रकार जांच के शिल्पविद्यासम्बन्धी कार्य्यों को करते हैं वे बुद्धिमान् होते हुए ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अपो ह्येषामजुषन्त देवा अभि क्रत्वा मनसा दीध्यानाः ।
वाजो देवानामभवत्सुकर्मेन्द्रस्य ऋभुक्षा वरुणस्य विभ्वा ॥९॥

पदार्थः—जो (क्रत्वा) बुद्धि और (मनसा) विज्ञान से (दीध्यानाः) प्रकाशमान (देवाः) विद्वान् जन (हि) जिस कारण (एषाम्) इन पदार्थों को कार्य्यसिद्धि के लिये (अपः) विमान आदि के बनाने में साधक कर्म का (अभि, अजुषन्त) सब प्रकार सेवन करते हैं और (सुकर्मा) उत्तम कर्म करने वाला (देवानाम्) विद्वानों (इन्द्रस्य) बिजुली आदि और (वरुणस्य) जल आदि की (विभ्वा) व्याप्ति से (वाजः) अन्न आदि, विद्वानों के मध्य में (ऋभुक्षाः) बड़ा (अभवत्) होता है वे और वह श्रीमान् होते हैं ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य इस संसार में सृष्टिस्थ पदार्थों की उत्तम परीक्षा से संयोग और विभाग के द्वारा श्रेष्ठ पदार्थ और कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे विद्वानों में श्रेष्ठ और अत्यन्त धनी होते हैं ॥९॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये हरी मेधयोक्था मदन्त इन्द्राय चक्रुः सुयुजा ये अश्वा ।
ते रायस्पोषं द्रविणान्यस्मे धत्त ऋभवः क्षेमयन्तो न मित्रम् ॥१०॥

पदार्थः—हे (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (ये) जो (मेधया) बुद्धि (उक्था) और प्रशंसाओं से (मदन्तः) आनन्द करते हुए (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के लिये (हरी) घोड़ों के सदृश अग्नि और जल को (अश्वा) शीघ्र चलने वाले और (सुयुजा) उत्तम प्रकार जुड़े हुए (चक्रुः) करते हैं और (ये) जो इस विद्या को जानें (ते) वे आप लोग (मित्रम्) मित्र की (क्षेमयन्तः) रक्षा करते हुए के (न) सदृश (अस्मे) हम लोगों के निमित्त (रायः, पोषम्) धन आदि की पुष्टि को (द्रविणानि) तथा द्रव्यों वा यशों को (धत्त) धारण करो ॥१०॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग सृष्टि के क्रम से पदार्थविद्याओं को प्राप्त होकर अन्य जनों को बोध कराय के अपने सदृश करके धनाढ्य करो ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इदाह्नः पीतिमुत वो मदं धुर्न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः ।
ते नूनमस्मे ऋभवो वसूनि तृतीये अस्मिन्त्सवने दधात ॥११॥

पदार्थः—हे (ऋभवः) बुद्धिमानो ! जो (देवाः) विद्वान् जन (वः) आप लोगों में से (अह्नः) दिन के मध्य में (पीतिम्) पान को (उत) और आप लोगों के (मदम्) आनन्द को (धुः) धारण करें (ते) वे (इदा) इस समय (श्रान्तस्य) तप से नष्ट हुआ है पाप जिसका उसकी सेवा के (ऋते) विना (सख्याय) मित्रपने के लिये (न) नहीं समर्थ होते हैं वे (अस्मिन्) इस (तृतीये) अन्त्य (सवने) श्रेष्ठ कर्म्म के निमित्त (अस्मे) हम लोगों में (वसूनि) धनों को (नूनम्) निश्चय युक्त (दधात) धारण करो ॥११॥

भावार्थः—जो जन वर्त्तमान समय में यथार्थ पुरुषार्थ को करते हैं वे धनपति होते हैं और जो विद्वानों के सङ्ग को नहीं करते हैं वे धन से रहित हुए दारिद्रय को भजते हैं ॥११॥

इस सूक्त में विद्वान् माता पिता और मनुष्यों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । ऋभवो देवताः । १ विराट् त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ४—६ निचृत् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ११ स्वराट् पङ्क्तिः । ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले चौतीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मंत्र में मेधावी बुद्धिमान् के गुणों को कहते हैं ॥

ऋभुर्विभ्वा वाज इन्द्रो नो अच्छेमं यज्ञं रत्नधेयोप यात ।
इदा हि वो धिषणा देव्यह्नामधात्पीतिं सं मदा अग्मता वः ॥१॥

पदार्थः—जैसे (मदाः) आनन्द (वः) आप लोगों के (सम्, अग्मत) सम्यक् प्राप्त होवें जैसे (हि) निश्चित (देवी) श्रेष्ठ गुण वाली (धिषणा) बुद्धि (अह्नाम्) दिनों के बीच (पीतिम्) पान को (अधात्) धारण करती है और हे विद्वान् जनो ! आप (रत्नधेया) धनों को धारण करने वाली क्रिया के लिये (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्या और बुद्धि के बढ़ाने वाले यज्ञ को (उप, यात) प्राप्त होवें वैसे (इदा) इस समय (वाजः) विज्ञानवान् और (इन्द्रः) ऐश्वर्य्य से युक्त (ऋभुः) बुद्धिमान् पुरुष (विभ्वा) ईश्वर की सहायता से (नः) हम लोगों को और (वः) तुम लोगों को (अच्छ) उत्तम प्रकार प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे आप लोगों को आनन्द प्राप्त होवे वैसे ही कर्म्म और बुद्धि की वृद्धि को करो और व्यापक ईश्वर की उपासना भी करो ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**विदानासो जन्मनो वाजरत्ना उत ऋतुभिर्ऋभवो मादयध्वम् ।**
**सं वो मदा अग्मत सं पुरन्धिः सुवीरामस्मे रयिमेरयध्वम् ॥२॥**

पदार्थः—हे (वाजरत्नाः) विज्ञान आदि रत्नों से युक्त (ऋभवः) बुद्धिमानो आप लोग (जन्मनः) जन्म से (विदानासः) ज्ञानवान् और विद्या ग्रहण के लिये प्रतिज्ञा करनेवाले हुए (ऋतुभिः) बुद्धिमानों के साथ (मादयध्वम्) आनन्द कराओ जिससे (वः) आप लोगों को (मदाः) आनन्द (सम्) उत्तम प्रकार (अग्मत) प्राप्त हों (उत) और (पुरन्धिः) नगरों का धारण करने वाला राज्य प्राप्त हो तथा (अस्मे) हम लोगों के लिये (सुवीराम्) सुन्दर वीरों से युक्त सेना और (रयिम्) लक्ष्मी को (सम्, आ, ईरयध्वम्) सब प्रकार से प्राप्त कराओ ॥२॥

भावार्थः—जो दूसरे विद्यारूप जन्म के होने पर प्राप्त विद्यारूप यौवनावस्थायुक्त होते हैं वे विद्वान् होकर विद्वानों में मित्रता करते हैं और अविद्वानों के कल्याण के लिये प्रयत्न करते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**अयं वो यज्ञ ऋभवोऽकारि यमा मनुष्वत्प्रदिवो दधिध्वे ।**
**प्र वोऽच्छा जुजुषाणासो अस्थुरभूत विश्वे अग्रियोत वाजाः ॥३॥**

पदार्थः—हे (ऋभवः) बुद्धिमानों विद्वानों से जो (अयम्) यह (वः) आप लोगों का (यज्ञः) पढ़ाना और उपदेश करना रूप यज्ञ (अकारि) किया जाता है (यम्) जिसको (मनुष्वत्) विचार करने वाले विद्वानों के सदृश आप लोग (दधिध्वे) धारण करो और जो (प्रदिवः) अतिशय विद्या आदि गुणों की कामना करते हुए (वः) आप लोगों की (अच्छा) उत्तम प्रकार (आ, जुजुषाणासः) अत्यन्त सेवा करते हुए (प्र, अस्थुः) उत्तम स्थित हूजिये (उत) और (विश्वे) सम्पूर्ण (अग्रिया) प्रथम उत्पन्न हुए (वाजाः) श्रेष्ठ कर्मों में वेग जो होवें उनको आप लोग प्राप्त (अभूत) हूजिये ॥३॥

भावार्थः—हे बुद्धिमान् विद्यार्थी जनो ! जो आप लोगों के लिये विद्या देवें उनकी कपटरहित प्रीति से सेवा करो और जितेन्द्रिय होकर यथार्थ विद्या को प्राप्त होओ ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

अभूंदु वो विधते रत्नधेयमिदा नरो दाशुषे मर्त्याय ।
पिबंत वाजा ऋभवो ददे वो महिं तृतीयं सवनं मदाय ।।४।।

पदार्थः—हे (वाजाः) बुद्धिमान् (नरः) सत्कर्म्मों में अग्रगामी और (ऋभवः) विज्ञानवान् जनो ! (वः) आप लोगों के वा (विधते) विद्या और उत्तम शिक्षा का ग्रहण करते हुए अध्यापक वा उपदेशक जन के तथा (दाशुषे) विद्या के देने वाले (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (रत्नधेयम्) रत्नों का पात्र (इदा) इस समय (अभूत्) होवे (उ) और (वः) आप लोगों के लिये जो (मदाय) आनन्द के अर्थ (महि) बड़े (तृतीयम्) तीन संख्या को पूर्ण करने वाले (सवनम्) सुख और ऐश्वर्य्य को मैं (ददे) देता हूं उसका आप लोग (पिबत) पान करो और आप लोगों से मैं विद्या ग्रहण करता हूँ ।।४।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिन लोगों के समीप से विद्या आप लोग ग्रहण करें उनके लिए रत्न दो । जिससे दोनों जगह विद्या और ऐश्वर्य्य बढ़े ।।४।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

आ वांजा यातोपं न ऋभुक्षा महो नरो द्रविणसो गृणानाः ।
आ वः पीतयोऽभिपित्वे अह्नामिमा अस्तं नवस्वं इव ग्मन् ।।५।।

पदार्थः—हे (ऋभुक्षाः) उत्तम गुणों से बड़े (वाजाः) ब्रह्मचर्य्य को प्राप्त (महः) आदर करने योग्य (नरः) नायक (द्रविणसः) यशरूप धन की (गृणानाः) स्तुति प्रशंसा करते हुए आप लोग (नः) हम लोगों के (उप, आ, यात) समीप प्राप्त हूजिये और (अह्नाम्) दिनों की (अभिपित्वे) प्राप्ति होने में (इमाः) यह प्रत्यक्ष (पीतयः) जो पान हैं वह (अस्तं, नवस्व इव) जैसे नवीन सुख वाला घर को प्राप्त होता है वैसे (वः) आप को (आ, ग्मन्) प्राप्त हों ।।५।।

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि ऐसी इच्छा नित्य करें कि हम लोगों को यथार्थवक्ता विद्वान् लोग प्राप्त होवें और दिन रात्रि ऐश्वर्य्य की प्राप्ति होवे । जैसे नवीन विवाहाश्रम का सेवन करते हैं वैसे ही स्त्री और पुरुष गृह के कृत्यों का सेवन करें ।।५।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

आ नपातः शवसो यातनोपेमं यज्ञं नमसा हूयमानाः ।
सजोषसः सूरयो यस्य च स्थ मध्वः पात रत्नधा इन्द्रवन्तः ।।६।।

पदार्थः—हे (ह्रूयमानाः) ईर्ष्या करते हुए (शवसः) वलयुक्त (नपातः) नहीं गिरना जिनके विद्यमान (सजोषसः) तुल्य प्रीति के सेवनकर्त्ता (रत्नधाः) धनों को धारण करने वाले (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्य्य से युक्त (सूरयः) विद्वान् जनो आप लोग (नमसा) सत्कार से (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्या वृद्धि करने वाले यज्ञ को (उप आ यातन) प्राप्त हूजिये (यस्य च) और जिसके (मध्वः) मधुर गुण युक्त पदार्थ को प्राप्त (स्थ) होओ उसकी नित्य (पात) रक्षा कीजिये ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि परस्पर मित्रता कर शरीर और आत्मा का वल वढ़ाय विद्याधनरूप ऐश्वर्य्य को प्राप्त हों उसकी उत्तम प्रकार रक्षा कर और वढ़ाय के इससे सव को सुखी करें ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सजोषा इन्द्र वरुणेन सोमं सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ।
अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः ॥७॥

पदार्थः हे (गिर्वणः) वाणियों से स्तुति किये (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के देने वाले ! आप (वरुणेन) श्रेष्ठ पुरुषार्थ से (सजोषाः) तुल्य प्रीति के सेवने वाले (सोमम्) ऐश्वर्य्य की (पाहि) रक्षा करो और (अग्रेपाभिः) प्रथम रक्षा करने वाले (मरुद्भिः) मनुष्यों के साथ (सजोषाः) तुल्य प्रीति सेवने वाले हुए ऐश्वर्य की रक्षा करो और आप (रत्नधाभिः) द्रव्यों को धारण करने वाली (ग्नास्पत्नीभिः) पतियों की स्त्रियों के साथ (सजोषाः) समान सेवने वाले ऐश्वर्य की रक्षा करो और आप (ऋतुपाभिः) ऋतुओं में रक्षा करने वालों के साथ (सजोषाः) समान सेवन करने वाले ऐश्वर्य की रक्षा करो ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग श्रेष्ठ पुरुषों के मेल से ऐश्वर्य्य की उन्नति करो और जो विनाश से पहिले और ऋतुओं में रक्षा करते हैं और जो अपनी स्त्री पतिव्रता होती है उन मनुष्यों और उस स्त्री के साथ तुल्य प्रीति सुख दुःख और लाभ का सेवन करते हुए सव के प्रिय होओ ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सजोषस आदित्यैर्मादयध्वं सजोषस ऋभवः पर्वतेभिः ।
सजोषसो दैव्येना सवित्रा सजोषसः सिन्धुभी रत्नधेभिः ॥८॥

पदार्थः—हे (ऋभवः) बुद्धिमानो ! आप लोग (आदित्यैः) अड़तालीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य और विद्या का ग्रहण जिन्होंने किया उन के साथ (सजोषसः) समान उत्तम गुण कर्म स्वभाव के सेवन करने और (पर्वतेभिः) मेघों के साथ (सजोषसः)

समान उत्तम गुण कर्म स्वभाव के सेवन करने और (दैव्येन) उत्तम स्वरूप वाले (सवित्रा) विजुलीरूप के साथ (सजोषसः) तुल्य प्रीति सेवन करने (रत्नधेभिः) रत्नों को धारण करने वाले (सिन्धुभिः) नदी वा समुद्रों के साथ (सजोषसः) उत्तम गुण कर्म स्वभाव के सेवन करने वाले हुए आप हम लोगों को परस्पर (मादयध्वम्) आनन्दित कीजिये ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य पूर्ण विद्वानों के साथ मेल करके पदार्थविद्या का ग्रहण करते हैं वे विमान आदि को रच के मेघमण्डल वा उससे ऊपर समुद्र और नदियों में सुख से विहार करने के योग्य होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥९॥

पदार्थः—(ये) जो (ऋभवः) बुद्धिमान् (अश्विना) संपूर्ण विद्याओं में व्याप्त (ये) जो (पितरा) सब प्रकार से पालन करने वाले और (ये) जो (अश्वा) वेग से मार्ग के बीच व्याप्त होने वाले दो पदार्थ (ये) (अंसत्रा) गमन आदि के रक्षक और (ये) जो (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी और (ये) जो (विभ्वः) संपूर्ण विद्याओं में व्यापक (नरः) नायक मनुष्य और (ये) जो बुद्धिमान् (ऊती) रक्षण आदि से (धेनुम्) विद्यासहित वाणी को (ततक्षुः) सूक्ष्म और विस्तारयुक्त करते हैं और (स्वपत्यानि) उत्तम शिक्षा से सन्तानों को श्रेष्ठ (ऋधक्) यथार्थ भाव से (चक्रुः) करें वे बड़े भाग्यशाली होवें ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या और सत्पुरुषों का सङ्ग, वृद्धों का सेवन और अपने समीप प्राप्तों की रक्षा करके अपने सन्तानों को श्रेष्ठ करें वे विस्तारयुक्त सुख को प्राप्त होवें ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये गोमन्तं वाजवन्तं सुवीरं रयिं धत्थ वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
ते अग्रेपा ऋभवो मन्दसाना अस्मे धत्त ये च रातिं गृणन्ति ॥१०॥

पदार्थः—हे (ऋभवः) विद्वानो ! (ये) जो (गोमन्तम्) बहुत गौओं से युक्त (वाजवन्तम्) बहुत अन्न और विज्ञान के साधने वाले और (वसुमन्तम्) अनेक प्रकार द्रव्यों तथा (पुरुक्षुम्) बहुत धन और धान्य के सहित (सुवीरम्) श्रेष्ठ वीरों के प्राप्त कराने वाले (रयिम्) धन को (ये) जो (अग्रेपाः) पहिले रक्षा करने वाले (मन्दसानाः) आनन्द करते हुए (च) और जो (अस्मे) हम लोगों के लिये (रातिम्) दान की

(गृणन्ति) स्तुति करते हैं (ते) वे आप लोग इस को हम लोगों के लिये (धत्थ) धारण करो और इस से हम लोगों में सुख को (धत्त) धारण करो ॥१०॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग जिनके लिये सिद्ध करने योग्य पदार्थ से उत्पन्न सुख को प्राप्त होकर अन्य जनों के लिये देते हैं वे सुपात्रों के लिये दान देने को प्रशंसा करते हैं ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नापाभूत न वोऽतीतृषामानिःशस्ता ऋभवो यज्ञे अस्मिन् ।
समिन्द्रेण मदथ सं मरुद्भिः सं राजभी रत्नधेयाय देवाः ॥११॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वान् और (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (अनिःशस्ताः) निरन्तर प्रशंसा को प्राप्त आप लोग कहीं भी (न) नहीं (अप, अभूत) तिरस्कृत हूजिये और जैसे (अस्मिन्) इस (यज्ञे) राज्यपालन करने रूप यज्ञ में (वः) तुम लोगों को (न) नहीं (अतितृषाम) अतितृष्णा युक्त करें वैसे इस में (इन्द्रेण) ऐश्वर्य्य के साथ (सम्, मदथ) आनन्द करो और (मरुद्भिः) उत्तम मनुष्यों के साथ (सम्) आनन्द करो और (राजभिः) राजा लोगों के साथ (रत्नधेयाय) जिस में धन रक्खे जाते हैं उस कोश के लिये (सम्) आनन्द करो ॥११॥

भावार्थः—जो लोभ आदि दोषों से रहित हुए राजा और प्रजाजनों के साथ मिल कर गृहाश्रम के व्यवहार की उन्नति करते हैं वे कहीं तिरस्कृत नहीं होते हैं ॥११॥

इस सूक्त में मेधावी के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह चौतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । ऋभवो देवताः । १ । २ । ४ । ६ । ७ । ६ निचृत त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले पैंतीसवें सूक्त का आरंभ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

इहोप यात शवसो नपातः सौधन्वना ऋभवो माप भूत ।
अस्मिन् हि वः सवने रत्नधेयं गमन्त्विन्द्रमनु वो मदासः ॥१॥

पदार्थः—हे (शवसः) प्रशंसा करने योग्य बलयुक्त (नपातः) पतनरहित अर्थात् हानि से रहित (सौधन्वनाः) सुन्दर धनुष् अन्तरिक्ष में स्थित जिन के उन के सम्बन्धी (ऋभवः) बुद्धिमानो! आप लोग (इह) यहाँ (उप, यात) समीप में प्राप्त हूजिये (वः) आप लोगों के (अस्मिन्) इस (सवने) क्रियामय व्यवहार में (हि) जिस कारण (वः) आप लोगों के (मदासः) आनन्द (रत्नधेयम्) धन धरने के पात्ररूप (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्य युक्त जन के (अनु, गमन्तु) पीछे जावें इस कारण इस को प्राप्त हो कर कहीं (मा) मत (अप, भूत) अपमान से युक्त हूजिये ॥१॥

भावार्थः—जो लोग उत्साह से ऐश्वर्य्य की वृद्धि करने की इच्छा करते हैं वे सब जगह सम्पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त होकर सर्वत्र सत्कारयुक्त और जो आलस्ययुक्त होते हैं वे दरिद्रपन से अभिभूत अर्थात् सदा तिरस्कृत होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत्सोमस्य सुषुतस्य पीतिः।
सुकृत्यया यत्स्वपस्यया चँ एकं विचक्र चमसं चतुर्धा ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! आप (सुकृत्यया) सुन्दर क्रिया से (स्वपस्यया) वा सुन्दर कर्म्मों को अपनी इच्छा से (यत्) जिस (एकम्) एक (चमसम्) मेघ के सदृश गर्जना करने वाले रथ को (चतुर्धा) नीचे ऊपर तिरछी और मध्य गति वाला (विचक्र) करते हैं जिस से (सुषुतस्य) उत्तम प्रकार उत्पन्न किये गये (सोमस्य) ऐश्वर्य का (पीतिः) पान (अभूत्) होवे और (इह) इस संसार में (ऋभूणाम्) बुद्धिमानों के (रत्नधेयम्) रत्न धरने के पात्ररूप जन को (आ, अगन्) सब प्रकार प्राप्त होवें (च) उसी से गमन आदि कार्य्यों को सिद्ध करो ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य उत्तम हस्तक्रिया और उत्तम कर्म से सर्वत्र पहुंचाने वाले वाहन आदि को रचते हैं वे खाने और पीने योग्य पदार्थ और असंख्य धनों को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

व्यकृणोत चमसं चतुर्धा सखे वि शिक्षेत्यब्रवीत।
अथैत वाजा अमृतस्य पन्थां गणं देवानामृभवः सुहस्ताः ॥३॥

पदार्थः—हे (सखे) मित्र! जैसे यथार्थवक्ता विद्वान् जन सत्यविद्या की शिक्षा देते हैं वैसे आप (शिक्ष) शिक्षा देओ और हे (वाजाः) विज्ञानयुक्त (सुहस्ताः) अच्छे हाथों वाले (ऋभवः) बुद्धिमान् जनो जैसे मित्र वैसे आप लोग (चमसम्) यज्ञ सिद्ध

कराने वाले पात्र के सदृश कार्य्य को (चतुर्धा) चार प्रकार (वि) विशेपता से (अकृणोत) करो और शास्त्रों का (वि) विशेष कर के (अब्रवीत) उपदेश देओ (अथ) इस के अनन्तर (इति) इस प्रकार से (देवानाम्) विद्वानों के (गणम्) समूह को और (अमृतस्य) नाशरहित मोक्ष के (पन्थाम्) मार्ग को (ऐत) प्राप्त होओ ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! परमेश्वर आप लोगों के प्रति चार प्रकार के पुरुषार्थ को सिद्ध करो ऐसा कहता है कि जो परस्पर मित्र होकर कार्य की सिद्धि के लिये प्रयत्न करो तो धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि आप लोगों को विना संशय प्राप्त होवे ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

किंमयः स्विच्चमस एष आस यं काव्येन चतुरो विचक्र।
अथा सुनुध्वं सवनं मदाय पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य ॥४॥

पदार्थः—हे (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (एषः) यह (चमसः) यज्ञपात्र जिस से कि आचमन करता है (स्वित्) सो क्या (किंमयः) किसी को फेंकता (आस) हुआ है (यम्) जिस को (काव्येन) कवियों के बनाये गये कर्म से (चतुरः) चार भाग आप लोग (विचक्र) विधान करते हैं और (मदाय) आनन्द के लिये (मधुनः) ज्ञान से उत्पन्न (सोमस्य) ऐश्वर्य्य में श्रेष्ठ पदार्थ के (सवनम्) कार्य्य की सिद्धि करने वाले को (सुनुध्वम्) उत्पन्न करो (अथ) इस के अनन्तर इस की (पात) रक्षा करो ॥४॥

भावार्थः—कार्य्यों के साधन कैसे और काहे के बने हुए होते हैं यह पूंछा जाता है। जो जो विद्या और युक्ति से बनाया गया हो वह वह साधन कार्य्य की सिद्धि करने वाला होता है यह उत्तर है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शच्याकर्त्त पितरा युवाना शच्याकर्त्त चमसं देवपानम्।
शच्या हरी धनुतरावतष्टेन्द्रवाहावृभवो वाजरत्नाः ॥५॥

पदार्थः—हे (वाजरत्नाः) अन्न आदि पदार्थ और सुवर्ण आदि पदार्थों से युक्त (ऋभवः) बुद्धिमानो ! आप लोग (शच्या) उत्तम बुद्धि से (युवाना) युवावस्था को प्राप्त (पितरा) विज्ञान वाले अध्यापक और उपदेशक को (अकर्त्त) करिये (शच्या) कर्म से (देवपानम्) देव विद्वान् जन जिस से पान करते हैं उस (चमसम्) पान करने के साधन को (अकर्त्त) करिये (शच्या) वाणी से (धनुतरौ) शीघ्र पहुंचाने

और (इन्द्रवाहौ) ऐश्वर्य्य को प्राप्त कराने वाले (हरी) वायु और बिजुली को(अतष्ट) उत्पन्न करो ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग इस प्रकार यत्न करो जैसे कि मनुष्यों के सन्तान युवावस्था जब तक तब तक प्राप्त पूर्ण विज्ञान वाले होकर पूर्ण युवावस्था में परस्पर प्रीप्ति और अनुमति से स्वयंवर विवाह करके सदा आनन्दित होवें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**यो वः॑ सु॒नोत्य॑भिपि॒त्वे अह्नां॑ ती॒व्रं वा॑जासः॒ सव॑नं॒ मदा॑य ।**
**तस्मै॑ र॒यिमृ॑भवः॒ सर्व॑वीर॒मा त॑क्षत वृषणो मन्दसा॒नाः ॥६॥**

पदार्थः—हे (वृषणः) बलयुक्त (वाजासः) विज्ञान वाले (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (मन्दसानाः) कामना करते हुए आप लोग (यः) जो (वः) आप लोगों के लिये (अह्नाम्) दिनों के मध्य में(अभिपित्वे) अभीष्ट की प्राप्ति होने पर (मदाय)नित्य आनन्द के लिये (तीव्रम्) तेजःस्वरूप (सवनम्) ऐश्वर्य्य को (सुनोति)उत्पन्न करता है (तस्मै) उस के लिये (सर्ववीरम्) सम्पूर्ण वीर जिस से हों उस (रयिम्) धन को (आ, तक्षत) सिद्ध करो ॥६॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जो आप लोगों की सेवा को तथा आज्ञा के अनुसार कार्य्य करते हैं उनको विद्वान् और उत्तम प्रकार शिक्षित करके सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य को प्राप्त कराइये ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**प्रा॒तः सु॒तम॑पिबो हर्यश्व॒ माध्यं॑न्दिनं॒ सव॑नं॒ केव॑लं ते ।**
**समृ॒भुभिः॑ पिबस्व रत्न॒धेभिः॒ सखीँ॒र्याँ इ॑न्द्र चकृ॒षे सु॑कृत्या ॥७॥**

पदार्थः—हे (हर्य्यश्व) उत्तम प्रकार चलने योग्य घोड़ों से युक्त (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के देने वाले राजन् ! आप (सुकृत्या) उत्तम धर्म्मयुक्त कर्म्म से (यान्) जिन (सखीन्) मित्रों को (चकृषे) करते हो और उन (रत्नधेभिः) धनों को धारण करने वाले (ऋभुभिः) बुद्धिमानों के साथ (प्रातः) प्रातः काल में (सुतम्) उत्पन्न दूध वा जल (माध्यन्दिनम्) तथा मध्य दिन में उत्पन्न भोजन आदि और (केवलम्) केवल (सवनम्) सम्पूर्ण संस्कारों के रसों से युक्त पीने योग्य पदार्थ का (अपिबः) पान करो (सम, पिबस्व) अच्छे प्रकार आप पान करिये इस प्रकार (ते) आप का निश्चय कल्याण होवे ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के मित्र सब के सुख चाहने वाले प्रातःकाल मध्यकाल और सायंकाल में करने योग्य कर्म्मों को कर के उत्तम कर्म्म करनेवाले होवें वे सब के मित्र हुए भाग्यशाली होवें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये देवासो अभवता सुकृत्या श्येना इवेदधि दिवि निषेद ।
ते रत्नं धात शवसो नपातः सौधन्वना अभवतामृतासः ॥८॥

पदार्थः—(ये) जो (देवासः) विद्वान् (सुकृत्या) श्रेष्ठ कर्म से (अभवत) होते और (श्येना इव) बाज के सदृश पुरुषार्थी (दिवि) अन्तरिक्ष में (अधि) ऊपर (निषेद) स्थित होते हैं (ते) वे (इत्) ही (शवसः) बलवान् हुए (नपातः) धर्म्म से नहीं गिरने वाले (सौधन्वनाः) जिन का सुन्दर अन्तरिक्ष अर्थात् जिन्हों ने यज्ञादि कर्म्म से अन्तरिक्ष को स्वच्छ किया उन के पुत्र (रत्नम्) सुन्दर धन को (धात) धारण करते हैं और (अमृतासः) मोक्षसुख को प्राप्त (अभवत) होते हैं ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो बाज के सदृश विमान से अन्तरिक्ष में जाते हैं, धर्म्म के आचरण से विद्वान् होकर जनों को भी वैसे करते वे ऐश्वर्य्य को प्राप्त हो तथा उस का भोग करके अन्त में मोक्ष को प्राप्त होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यत् तृतीयं सवनं रत्नधेयमकृणुध्वं स्वपस्या सुहस्ताः ।
तदृभवः परिषिक्तं व एतत्सं मदेभिरिन्द्रियेभिः पिबध्वम् ॥९॥

पदार्थः—हे (सुहस्ताः) सुन्दर धर्म्मसंबन्धी कर्म्म करने वाले हाथों से युक्त (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (यत्) जो (वः) आप लोगों के लिये (एतत्) यह (परिषिक्तम्) सब प्रकार श्रेष्ठ पदार्थों से संयुक्त किया हुआ (तत्) उसको (मदेभिः) आनन्दों (इन्द्रियेभिः) चक्षुरादि इन्द्रियों और (स्वपस्या) उत्तम धर्म्मसम्बन्धी कर्म्म की इच्छा से (सम्, पिबध्वम्) पान करो और (रत्नधेयम्) जिस में रत्न धरे जाते हैं उस (तृतीयम्) तीसरे अर्थात् अड़तालीसवें वर्ष पर्य्यन्त सेवित ब्रह्मचर्य्य और (सवनम्) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों के प्राप्त करने वाले कर्म्म को (अकृणुध्वम्) करिये ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम प्रथम अर्थात् युवावस्था में विद्या का अभ्यास, द्वितीय अर्थात् मध्यम अवस्था में गृहाश्रम और तृतीय में न्याय आदि कर्म्मों का अनुष्ठान करके पूर्ण ऐश्वर्य्य को प्राप्त होओ ॥९॥

इस सूक्त में विद्वानों का कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । ऋभवो देवताः । १ । ६ । ८ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । ९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २-५ विराड् जगती । ७ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में शिल्पविद्या के विषय को कहते हैं ॥

अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो३ रथस्त्रिचक्रः परि वर्त्तते रजः ।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥१॥

पदार्थः—हे (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (वः) आप लोगों के लिये (अनश्वः) घोड़ों से रहित (अनभीशुः) जिस ने किसी का दिया नहीं लिया वह (उक्थ्यः) प्रशंसा करने योग्य (त्रिचक्रः) तीन पहियों से युक्त (रथः) वाहनविशेष (जातः) उत्पन्न हुआ (यत्) जो (महत्) बड़े (रजः) लोक समूह के (परि) सब ओर (वर्त्तते) वर्त्तमान है (तत्) वह (देव्यस्य) विद्वानों में उत्पन्न कर्म्म का (प्रवाचनम्) उपदेश सब ओर से वर्त्तमान है उस से (द्याम्) प्रकाश (पृथिवीम्, च) और अन्तरिक्ष वा भूमि को आप लोग (पुष्यथ) पुष्ट करो ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग अनेक प्रकार के अनेक कलाचक्रों तथा पशु घोड़ा के वाहन से रहित अग्नि और जल से चलाये गये विमान आदि वाहनों को बना पृथिवी, जलों और अन्तरिक्ष में जा आकर और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर पूर्ण सुख वाले होओ ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परि ध्यया ।
ताँ ऊ न्व१स्य सवनस्य पीतय आ वो वाजा ऋभवो वेदयामसि ॥२॥

पदार्थः—हे (वाजाः) हस्तक्रिया को प्राप्त हुए (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (ये) जो (वः) आप लोगों को (अस्य) इस (सवनस्य) शिल्पविद्या से उत्पन्न हुए कार्य्य की (पीतये) तृप्ति के लिये (सुचेतसः) उत्तम विज्ञान वाले (मनसः) विज्ञान से (ध्यया) ध्यान से (अविह्वरन्तम्) नहीं टेढ़े चलने वाले (सुवृतम्) उत्तम प्रकार

अङ्ग और उपाङ्गों के सहित (रथम्) विमान आदि वाहन को (परि चक्रुः) सब ओर से बनाते हैं और जिनको हम लोग (आ, वेदयामसि) जनाते हैं (तान्) उन को (नु) निश्चय करके (उ) ही आप लोग शीघ्र ग्रहण कीजिये ॥२॥

भावार्थः—हे बुद्धिमानो ! जो वाहनों के बनाने और चलाने में चतुर शिल्पीजन होवें उनका ग्रहण और सत्कार करके शिल्पविद्या की उन्नति करो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् ।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥३॥

पदार्थः—हे (वाजाः) अन्न आदिकों से युक्त (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (विभ्वः) सकल विद्याओं में व्याप्त (यत्) जो (वः) आप लोगों के प्रति (देवेषु) विद्वानों में (महित्वनम्) प्रतिष्ठा को (सुप्रवाचनम्) उत्तम प्रकार पढ़ाना और उपदेश करना (अभवत्) होवे (तत्) उसको प्राप्त होकर (जिव्री) जीवते हुए (सन्ता) विद्यमान और (सनाजुरा) सदा वृद्धावस्था को प्राप्त (पितरा) माता पिता (चरथाय) चलने विज्ञान वा भोजन के लिये (पुनः) फिर (युवाना) युवावस्था को प्राप्त हुए (तक्षथ) करो ॥३॥

भावार्थः—हे बुद्धिमान् जनो ! जो आप लोग विद्वानों में स्थित होकर उनसे अध्ययन और उपदेश करें तो ज्ञानवृद्धि होने से युवावस्था को प्राप्त हुए भी वृद्ध होकर सत्कृत होवें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥४॥

पदार्थः—हे (वाजाः) ऐश्वर्य से युक्त (ऋभवः) बुद्धिमान् जनो ! (तत्) वह (वः) आप लोगों का (उक्थ्यम्) प्रशंसा करने योग्य कर्म्म कि जिससे आप लोग (श्रुष्टी) शीघ्र (धीतिभिः) अङ्गुलियों के सदृश विलेखनगतियों से (चर्मणः) त्वचा को (गाम्) भूमि को (अरिणीत) प्राप्त हूजिये (अथ) इसके अनन्तर इससे (देवेषु) विद्वानों में (अमृतत्वम्) मोक्षसुख को (आनश) प्राप्त हूजिये और जैसे (एकम्) सहायरहित अर्थात् अकेले (चमसम्) मेघों के सदृश विभक्त (चतुर्वयम्) चार हम लोग (वि निः चक्र) करें वैसे आप लोग भी करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो प्रशंसित कर्म्मों को करते हैं

वे व्यावहारिक और पारमार्थिक सुख को प्राप्त होकर पण्डितवरों में प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋभुतो रयिः प्रथमश्रवस्तमो वाजश्रुतासो यमजीजनन्नरः ।
विभ्वतष्टो विदथेषु प्रवाच्यो यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः ॥५॥

पदार्थः—हे (देवासः) विद्वानो ! जो (वाजश्रुतासः) विज्ञान के सुनने वाले (नरः) नायक जन (यम्) जिसको (अजीजनन्) उत्पन्न करते हैं (सः) वह (विभ्वतष्टः) व्यापक पदार्थों में नहीं पण्डित अर्थात् उनको नहीं जानने वाला (विदथेषु) जनाने योग्य व्यवहारों में (प्रवाच्यः) कहने के योग्य होवे इससे (ऋभुतः) बुद्धिमानों के समीप से (प्रथमश्रवस्तमः) अत्यन्त प्रथम श्रवण वा अन्न जिससे वह (रयिः) धन प्राप्त होवे और (यम्) जिसकी आप लोग (अवथ) रक्षा करते हो (विचर्षणिः) सम्पूर्ण देखने योग्य पदार्थों को देखने वाला मनुष्य होवे ॥५॥

भावार्थः—वे ही विद्वान् उत्तम हैं कि जो विद्यार्थियों को विद्वान् करते हैं उन्हीं को पढ़ाना और उपदेश देना चाहिये जो पदार्थविद्या से रहित होवें, वे ही सुखी होते हैं जो विद्या और धन को प्राप्त होकर धर्म्मात्मा होवें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स वाज्यर्वा स ऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्य्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवो यमाविषुः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ऋभवः) बुद्धिमान् जन (विभ्वा) व्यापक पदार्थ से (यम्) जिसको (आविषुः) विद्यायुक्त करें और (यम्) जिसको (वाजः) विज्ञानवान् धारण करता है (सः) वह (वचस्यया) अत्यन्त प्रशंसा के साथ (अर्वा) उत्तम गुणों को प्राप्त कराने वाला (वाजी) विज्ञानयुक्त (सः) वह (ऋषिः) वेदार्थ को जानने वाला (सः) वह (पृतनासु) शत्रुओं की सेनाओं में (दुष्टरः) दुःख से उल्लङ्घन करने योग्य (शूरः) वीर पुरुष (अस्ता) शत्रुओं का फेंकने वाला होता है (सः) वह (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि और (सः) वह (सुवीर्य्यम्) उत्तम बल और पराक्रम को (दधे) धारण करता है ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के संग से गुणों के ग्रहण करने की इच्छा करते हैं वे प्रशंसित, शत्रुओं से नहीं जीतने योग्य, धनाढ्य और पराक्रमी होते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**श्रेष्ठं वः पेशो अधि धायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन ।**
**धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चितस्तान्व एना ब्रह्मणा वेदयामसि ॥७॥**

पदार्थः—हे (वाजाः) उत्तम स्वभावयुक्त और वेगवाले (ऋभवः) बुद्धिमान् आप लोग जिस से (वः) आप लोगों के (श्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य और (दर्शतम्) देखने योग्य (पेशः) सुन्दररूप और सुवर्ण तथा (स्तोमः) प्रशंसा (अधि) ऊपर (धायि) धारण की जाती है और जो (हि) जिस से (धीरासः) योगी विचार वाले (कवयः) बहुत शास्त्रों को देखे अर्थात् विचारे हुए उपदेशक (विपश्चितः) सत्य और मिथ्या को पृथक् करने वाले विद्वान् जन उपदेशक होवें जिस को और जिन (वः) आप लोगों को (एना) इस (ब्रह्मणा) वेद से (आ, वेदयामसि) जनाते हैं (तम्) उस और (तान्) उन की (जुजुष्टन) सेवा करो अर्थात् उस में और अपने में प्रीति करो इस के संग से विद्वान् (स्थ) होओ ॥७॥

भावार्थः—जो विद्यार्थी जन श्रेष्ठ अध्यापक और विद्वान् यथार्थवक्ता जनों की सेवा करके शिक्षा ग्रहण करें वे विद्वान् और लक्ष्मीवान् होवें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**यूयमस्मभ्यं धिषणाभ्यस्परि विद्वांसो विश्वा नर्याणि भोजना ।**
**द्युमन्तं वाजं वृषशुष्ममुत्तममा नो रयिमृभवस्तक्षता वयः ॥८॥**

पदार्थः—हे (विद्वांसः) विद्वानो (ऋभवः) बुद्धिमानो ! (यूयम्) आप लोग (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (धिषणाभ्यः) बुद्धियों से (विश्वा) संपूर्ण (नर्याणि) मनुष्यों में श्रेष्ठ वा मनुष्यों के लिये हितकारक (भोजना) पालन वा अन्न (द्युमन्तम्) प्रकाश वाले (वृषशुष्मम्) बलियों के बल और (उत्तमम्) श्रेष्ठ (वाजम्) विज्ञान और (रयिम्) धन का तथा (नः) हम लोगों के लिये (वयः) जीवन का (आ, तक्षत) विस्तार कीजिये उस से सुख को (परि, आ) सब प्रकार से बढ़ाइये ॥८॥

भावार्थः—जो विद्वान् पढ़ाने और उपदेश करने से मनुष्यों की बुद्धि बढ़ाते हैं वे सब के हितैषी जानने चाहियें ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**इह प्रजामिह रयिं रराणा इह श्रवो वीरवत्तक्षता नः ।**
**येन वयं चितयेमात्यन्यान्तं वाजं चित्रमृभवो ददा नः ॥९॥**

पदार्थः—हे (ऋभवः) बुद्धिमानो! आप लोग (इह) इस संसार में (नः) हम लोगों के लिये (प्रजाम्) उत्तम सन्तान वा राज्य को (इह) इस संसार में (रयिम्) धन को और (इह) इस संसार में (वीरवत्) प्रशंसा करने योग्य वीरों के करने वाले (श्रवः) अन्न वा श्रवण को (रराणाः) देते हुए (तक्षत) प्राप्त कराओ (येन) जिस से (वयम्) हम लोग (अन्यान्) औरों के प्रति (अति, चितयेम) उत्तम रीति से विज्ञान को कहें (तम्) उस (चित्रम्) अद्भुत (वाजम्) विज्ञान को (नः) हम लोगों के लिये (दत्त) दीजिये ॥९॥

भावार्थः—जब मनुष्य विद्वानों को प्राप्त होवें तब विज्ञान सत्यश्रवण धन उत्तम प्रजा और शूरवीरयुक्त सेना की याचना करें उन से यथार्थ विद्या को प्राप्त होकर अन्यों को निरन्तर बोध करावें ॥९॥

इस सूक्त में विपश्चित् के गुण कृत्य वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः। ऋभवो देवताः। १ विराट् त्रिष्टुप्। २ त्रिष्टुप्। ३। ८ निचृत् त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। ४ पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ५, ७ अनुष्टुप्। ६ निचृदनुष्टुप् छन्दः। ऋषभः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले सैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मंत्र में आप्त के विषय को कहते हैं ॥

उप॑ नो वाजा अध्वरमृ॑भुक्षा देवा॑ यात प॒थिभि॑र्देव॒यानैः॑ ।
यथा॑ य॒ज्ञं मनु॑षो वि॒क्ष्वा॒॑३सु द॑धि॒ध्वे र॑ण्वाः सु॒दिने॒ष्वह्ना॑म् ॥१॥

पदार्थः—हे (ऋभुक्षाः) बड़े (वाजाः) विज्ञानवाले (देवाः) विद्वानो! आप लोग (यथा) जैसे (रण्वाः) सुन्दर (मनुषः) विचार करने वाले (अह्नाम्) दिनों के मध्य में (सुदिनेषु) सुख से वर्त्तमान दिनों में और (आसु) इन प्रत्यक्ष वर्त्तमान (विक्षु) प्रजाओं में (यज्ञम्) वैर आदि दोषरहित व्यवहार को धारण करते हैं वैसे ही आप लोग इस को (दधिध्वे) धारण कीजिये वैसे (पथिभिः) मार्गों (देवयानैः) विद्वान् लोग जिस में जायं उन से (नः) हम लोगों के (अध्वरम्) अहिंसामय यज्ञ को (उप, यात) प्राप्त हूजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो जन धार्मिक विद्वानों के मार्ग अर्थात् मर्यादा से चलते हैं वे प्रजा के हित करने में समर्थ होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ते वो हृदे मनसे सन्तु यज्ञा जुष्टासो अद्य घृतनिर्णिजो गुः ।
प्र वः सुतासो हरयन्त पूर्णाः क्रत्वे दक्षाय हर्षयन्त पीताः ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (ते) वे (हृदे) हृदय वा (मनसे) अन्तःकरण के लिये (अद्य) आज (वः) आप लोगों के (घृतनिर्णिजः) घृत वा जल से शुद्ध किये गए (जुष्टासः) विद्वानों से सेवित (यज्ञाः) सत्य व्यवहार प्राप्त (सन्तु) होवें (सुतासः) उत्पन्न हुए (वः) आप लोगों को (गुः) प्राप्त हों और (प्र, हरयन्त) कामना करें तथा (क्रत्वे) बुद्धि और (दक्षाय) चतुरता के लिये (पूर्णाः) पूर्ण (पीताः) पालन किये गए (हर्षयन्त) प्रसन्न होवें ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग ऐसा पुरुषार्थ करो जिससे पवित्रता बुद्धि और चातुर्य्य बढ़ें और जो मांस मद्य के आहार का त्याग करके उत्तम पदार्थ का भोग करते वे निरन्तर विज्ञान को बढ़ाते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्र्युदायं देवहितं यथा वः स्तोमो वाजा ऋभुक्षणो ददे वः ।
जुह्वे मनुष्वदुपरासु विक्षु युष्मे सचा बृहद्दिवेषु सोमम् ॥३॥

पदार्थः—हे (वाजाः) अन्न तथा विज्ञानवाले (ऋभुक्षणः) श्रेष्ठ जनो ! (यथा) जैसे (वः) आप लोगों की वा आप लोगों के लिये (स्तोमः) प्रशंसा मुझ को सुख देती है वैसे आप लोगों के लिये आनन्द को मैं (ददे) देता हूँ और जैसे मैं (मनुष्वत्) विद्वान् के सदृश (वः) आप लोगों को (उपरासु) श्रेष्ठ (विक्षु) मनुष्य आदि प्रजाओं में (सचा) सत्य से (बृहद्दिवेषु) महान् दिव्य पदार्थों में (त्र्युदायम्) मन देह और वचन इन तीनों से जिस को देते हैं उस (देवहितम्) विद्वानों के लिए हितकारक (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (जुह्वे) स्पर्द्धा करता हूँ और (युष्मे) आप लोगों के लिये सुख देता हूँ वैसे मुझ को आप लोग भी बुलाओ और सुख दो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है - हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन आप लोगों के लिये सुख देते हैं और आप लोगों के हित की इच्छा करते हैं वैसे ही आप लोग भी उनके लिये आचरण करो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पीवो अश्वाः शुचद्रथा हि भूतायःशिप्रा वाजिनः सुनिष्काः ।
इन्द्रस्य सूनो शवसो नपातोऽनु वश्चेत्यग्रियं मदाय ॥४॥

पदार्थः—हे (पीवोअश्वाः) मोटे घोड़ों (शुचद्रथाः) पवित्र वाहनों और (अयःशिप्राः) लोह के सदृश ठुड्डी और नासिका वाले घोड़ों से युक्त (सुनिष्काः) सुन्दर सुवर्णों के आभूषणों वाले (वाजिनः) वेगयुक्त आप लोग (हि) जिस से जीतने वाले (भूत) हूजिये। और हे (नपातः) नीचे गिरना अर्थात् नीच दशा को प्राप्त होना जिसके नहीं उस (शवसः) बलवान् (इन्द्रस्य) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले राजा के (सूनो) पुत्र आप (मदाय) आनन्द के लिए (अग्रियम्) प्रथम हुए सुख और पुरुषार्थ को करो और जैसे हम लोगों से (वः) आप लोगों का सुख (अनु, चेति) जाना जाता है वैसे आप लोगों को हम लोगों की सुखवृद्धि का प्रयत्न करना चाहिये ।।४।।

भावार्थः—हे राजपुरुषो! आप लोग विस्तीर्ण बल से युक्त और सेना के अङ्गों के सहित विराजमान और ऐश्वर्य्य से शोभित हुए राज्य के आनन्द की वृद्धि के लिये पुरुषार्थ करो जिससे शत्रुजन आप लोगों का तिरस्कार करने को समर्थ न हो सकें ।।४।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

ऋभुमृभुक्षणो रयिं वाजे वाजिन्तमं युजम् ।
इन्द्रस्वन्तं हवामहे सदासातममश्विनम् ।।५।।

पदार्थः—हे (ऋभुक्षणः) बड़े विद्वान्! आप लोग (वाजे) संग्राम में (ऋभुम्) बुद्धिमान् (वाजिन्तमम्) प्रशंसित अतीव बहुत घोड़ों से युक्त (युजम्) समाधान करने को योग्य (इन्द्रस्वन्तम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त स्वामी के सहित (सदासातमम्) सदा अतिशय कर के विभाग करने योग्य (अश्विनम्) बहुत उत्तम घोड़े आदि से युक्त (रयिम्) धन को हम लोग (हवामहे) ग्रहण करते हैं वैसे ही इस को आप लोग बुलावें ग्रहण करें ।।५।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! आप लोग स्पर्द्धा से परस्पर बल बढ़ाय के सङ्ग्राम में शत्रुओं को जीतो ।।५।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

सेदृभवो यमवथ यूयमिन्द्रश्च मर्त्यम् ।
स धीभिरस्तु सनिता मेधसाता सो अर्वता ।।६।।

पदार्थः—हे (ऋभवः) बुद्धिमान् जनो! (यूयम्) आप लोग (यम्) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य की (अवथ) रक्षा करते हो और (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य युक्त राजा (च) भी रक्षा करता है (सः) (इत्) वही (धीभिः) बुद्धियों से युक्त (सः) वह

(सनिता) सत्य और असत्य का विभाग करने वाला और (सः) वह (अर्वता) घोड़ा आदि से (मेधसाता) शुद्ध संग्राम में विजयी (अस्तु) होवे ॥६॥

भावार्थः—हे राजसेनाजनो ! जो आप लोगों के अध्यक्ष राजा और बुद्धिमान् रक्षक होवें तो आप लोगों का सर्वत्र विजय और सुख निरन्तर बढ़े ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वि नो॑ वाजा ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे ।
अस्मभ्यं॑ सूरयः स्तुता विश्वा आशा॑स्तरीषणि ॥७॥

पदार्थः—हे (वाजाः) प्रशंसित (ऋभुक्षणः) बड़े (स्तुताः) स्तुति किये गए (सूरयः) विद्वानो ! आप लोग (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (यष्टवे) मिलने को (पथः) मार्ग (वि, चितन) जनाइये जिस से (तरीषणि) दुःख के पार उतरने के सामर्थ्य को प्राप्त होकर (नः) हम लोगों की (विश्वाः) सम्पूर्ण (आशाः) इच्छायें पूर्ण होवें ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य बाल्यावस्था को लेकर विद्वानों की शिक्षा का ग्रहण करें उनकी संपूर्ण इच्छा पूर्ण होवें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तं नो॑ वाजा ऋभुक्षण इन्द्र नास॑त्या र॒यिम् ।
समश्वं॑ चर्षणिभ्य आ पुरु शस्त मघत्तये ॥८॥

पदार्थः—हे (वाजाः) देने वाले ! (ऋभुक्षणः) बड़े आप लोग जैसे (नासत्या) असत्याचार से रहित सभा और न्याय के ईश वैसे (नः) हम (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों के अर्थ (मघत्तये) श्रेष्ठ धन की प्राप्ति के लिये (तम्) उस (अश्वम्) बड़े (रयिम्) धन को (पुरु) बहुत (सम्) उत्तम प्रकार (आ) ग्रहण करिये । और हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त ! आप इन लोगों की (शस्त) प्रशंसा कीजिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि राजा और राजपुरुषों से धन की उन्नति सदा करें जिस से बहुत प्रकार का सुख होवे ॥८॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

वामदेव ऋषिः। १ द्यावापृथिव्यौ देवते। २—१० दधिक्रा देवताः। १। ४ विराट् पङ्क्तिः। ६ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २। ३ त्रिष्टुप्। ५। ८—१० निचृत् त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब दश ऋचावाले अड़तीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में कैसा राजा हो इस विषय को कहते हैं॥

उतो हि वां दात्रा सन्ति पूर्वा या पूरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे।
क्षेत्रासां ददथुरुर्वरासां घनं दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्रम्॥१॥

पदार्थः—हे राजन्! आप और सेनापति (त्रसदस्युः) डरते हैं दस्यु जिस से ऐसे होते हुए जो (हि) जिस कारण (वाम्) आप दोनों के भृत्य (सन्ति) हैं उन (पूरुभ्यः) बहुतों से (या) जो (पूर्वा) प्रथम वर्त्तमान (दात्रा) दाता जन आप दोनों (नितोशे) अत्यन्त वध करने में(क्षेत्रासाम्) क्षेत्रों को विभाग करने और (उर्वरासाम्) बहुत श्रेष्ठ पदार्थों से युक्त भूमि सेवने वाले को (ददथुः) देते हो (उतो) और (दस्युभ्यः) साहस करने वाले चोरों के लिये (उग्रम्) कठिन (अभिभूतिम्) पराजय को और उस के साथ चोरों के लिये (घनम्) जिस से नाश करता है उस का प्रहार करके कठिन पराजय को देते हो। इस से सत्कार करने योग्य हो॥१॥

भावार्थः—हे राजा और सेना के अध्यक्ष! आप दोनों उत्तम प्रकार शिक्षित भृत्यों को रख दुष्टों को नाश करके और विजय को प्राप्त होकर न्याय से राज्य का पालन करो॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

उत वाजिनं पुरुनिष्षिध्वानं दधिक्रामु ददथुर्विश्वकृष्टिम्।
ऋजिप्यं श्येनं प्रुषितप्सुमाशुं चर्कृत्यमर्यो नृपतिं न शूरम्॥२॥

पदार्थः—हे सभा और सेना के ईश! आप दोनों जिस के लिये (अर्य्यः) स्वामी (शूरम्) वीर (नृपतिम्) मनुष्यों के पालन करने वाले राजा के (न) सदृश (वाजिनम्) बहुत वेगयुक्त (पुरुनिष्षिध्वानम्) बहुत शत्रुओं के हराने वाले (दधिक्राम्) धारण करने वाली अधिकता के सहित वर्त्तमान (विश्वकृष्टिम्) सब मनुष्य जीतते जिस से उस (उत) और बहुत वेगवाले (उ) और (ऋजिप्यम्) सरलों के पालन करने वालों में श्रेष्ठ (प्रुषितप्सुम्) जो श्रेष्ठ पदार्थों को भक्षण करने वाले (श्येनम्) शीघ्रगामी बाज के सदृश(चर्कृत्यम्) निरंतर करने के योग्य (आशुम्) पूर्ण मार्ग को व्याप्त होने वाले को (ददथुः) देवें वह विजय के लिये समर्थ होवे॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो राजजन शिल्पविद्या से

उत्पन्न शस्त्र अस्त्र और उत्तम प्रकार शिक्षित चार अङ्गों से युक्त सेना को सिद्ध करें तो कहीं भी पराजय न होवे ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यं सीमनु प्रवतेव द्रवन्तं विश्वः पूरुर्मदति हर्षमाणः ।
पड्भिर्गृध्यन्तं मेधयुं न शूरं रथतुरं वातमिव ध्रजन्तम् ॥३॥

पदार्थः—हे राजन् ! (यम्) जिस को (सीम्) सब ओर से जल (प्रवतेव) नीचे स्थल से जैसे वैसे (द्रवन्तम्) जाते हुए को (अनु) पीछे (विश्वः) सब (हर्षमाणः) हर्षित होता हुआ (पूरुः) मनुष्यमात्र (मदति) आनन्दित होता है वह (मेधयुम्) हिंसा की कामना करते और (शूरम्) वीर पुरुष के (न) सदृश (ध्रजन्तम्) चलते हुए (वातमिव) वायु के सदृश (रथतुरम्) रथ के द्वारा शीघ्र चलने वाले (पड्भिः) पैरों से (गृध्यन्तम्) अभिकांक्षा करते हुए शत्रु के मारने को समर्थ होता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जिस राजा के राज्य में नीचा स्थान जल के सदृश और सब प्रकार से गुणों का पात्र एक होता है उस के समीप योग्य पुरुष रहते हैं ॥३॥

अब उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन् ।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः ॥४॥

पदार्थः—हे राजन् ! (यः) जो (सनुतरः) सनातन विद्यायुक्त (समत्सु) संग्रामों में (गध्या) मिले हुए (आरुन्धानः) सब ओर से शत्रुओं को रोकता हुआ (आविर्ऋजीकः) प्रसिद्ध सरल अर्थात् कपटरहित स्वभाव वाला (गोषु) पृथिवियों में (गच्छन्) चलता और (निचिक्यत्) देखता हुआ शत्रुओं का (तिरः) तिरस्कार और (अरतिम्) दुःख का निवारण करके (परि, चरति) घूमता है (आपः) जलों के सदृश (आयोः) अवस्था के (विदथा) विज्ञानों को प्राप्त होता है (स्म) उसी को आप अधिकारी करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! जो जन अपने राज्य में शान्ति करने, शत्रुओं के राज्य में भय देने और बलयुक्त अधिक अवस्था वाले प्रसिद्ध कीर्तियुक्त होवें उन्हीं को शत्रुओं के जीतने के लिये नियुक्त करो ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत स्मैनं वस्त्रमथिं न तायुमनु क्रोशन्ति क्षितयो भरेषु ।
नीचायमानं जसुरिं न श्येनं श्रवश्चाच्छा पशुमच्च यूथम् ॥५॥

पदार्थः—(क्षितयः) मनुष्य (भरेषु) संग्रामों में जिस (एनम्) इस राजा को (वस्त्रमथिम्)वस्त्रों को मथने वाले (तायुम्) चौर को (न) जैसे वैसे (अनु, क्रोशन्ति) पीछे कोशते रोते हैं (जसुरिम्) प्रयत्न करते हुए (श्येनम्) पक्षिविशेष अर्थात् बाज के (न) सदृश (नीचा) नीच कर्म्मों को (अयमानम्) प्राप्त होने वाले को और (पशुमत्) पशुओं से युक्त (श्रवः) अन्न वा श्रवण को (च) भी (अच्छ) उत्तम प्रकार (यूथम् च) तथा समूह के पीछे कोशते रोते हैं (उत, स्म) वही तो शीघ्र नष्ट होता है ॥५॥

भावार्थः – इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजा प्रजापालन के विना कर लेता है, जिस राजा की प्रजा को दुष्ट जन दुःख देते हैं और जो राजा आप नीच कर्म करने वाला, बाज पक्षी के सदृश हिंसक, पशु के सदृश मूर्ख और जिस राजा की सेना चोर के सदृश वर्त्तमान है उसका शीघ्र विनाश होता है यह निश्चय है ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत स्मासु प्रथमः सरिष्यन्नि वेवेति श्रेणिभी रथानाम् ।
स्रजं कृण्वानो जन्यो न शुभ्वा रेणुं रेरिहत्किरणं ददश्वान् ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (आसु) इन सेनाओं में (रथानाम्) वाहनों की (श्रेणिभिः) पङ्क्तियों से (स्रजम्) माला के सदृश सेना को (कृण्वानः) करता और (प्रथमः) प्रथम (सरिष्यन्) चलने वाला होता हुआ (नि, वेवेति) जाता है (उत) और (शुभ्वा) उत्तम प्रकार शोभित (जन्यः) उत्पन्न होने वाले के (न) सदृश और (किरणम्) ज्योति को (ददश्वान्) देने वाले वायु के सदृश (रेणुम्) धूलि को (रेरिहत्) निरन्तर उड़ाता है (स्म) वही राजा सब ओर से वृद्धि को प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा वाचकलु० – जो न्याय से प्रजाओं का पालन करता हुआ सेनाओं में अग्रगामी धनुर्वेद का जानने वाला विजयी चतुर विद्वान् धार्मिक और उत्तम सहाययुक्त राजा होवे वही यशस्वी होकर महाराज होवे ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत स्य वाजी सहुरिर्ऋतावा शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
तुरं यतीषु तुरयन्नृजिप्योऽधि भ्रुवोः किरते रेणुमृञ्जन् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (स्यः) वह (वाजी) विज्ञानयुक्त (सहुरिः) सहनेवाला (ऋतावा) सत्य आचरण से युक्त (यतीषु) नियत सेनाओं में (तुरम्) शीघ्र करने वाले को (तुरयन्) शीघ्र चलाता हुआ (उत) भी (ऋजिप्यः) सरलगति वालों में श्रेष्ठ (तन्वा) शरीर से (शुश्रूषमाणः) सेवन करता और (ऋञ्जन्) प्रसिद्ध करता हुआ (समय) सङ्ग्राम में (भ्रुवोः) भौओं की (रेणुम्) धूलि को (अधि, किरते) उड़ाता है वह राजा विजयी और सत्कार करने योग्य होता है ॥७॥

भावार्थः—वही राज्य करने योग्य होवे जो विद्वान् सब को सहने वाला सत्य का सेवी उत्तम सेना और सरलस्वभावयुक्त होवे ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत स्मास्य तन्यतोरिव द्योर्ऋघायतो अभियुजो भयन्ते ।
यदा सहस्रमभि षीमयोधीद्दुर्वर्तुः स्मा भवति भीम ऋञ्जन् ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (स्म) ही (भीमः) भयंकर (ऋञ्जन्) विजय को प्रसिद्ध करता हुआ (भवति) होता है जो (यदा) जब (सहस्रम्) सङ्ख्यारहित (सीम्) सब प्रकार (अभि, अयोधीत्) युद्ध कराता है (अस्य, स्म) इसी (दुर्वर्त्तुः) दुःख से वर्त्तमान (ऋघायतः) हिंसा करते हुए (उत) और (अभियुजः) अभियोग करते हुए के समीप से (द्योः) प्रकाशमान (तन्यतोरिव) बिजुली के सदृश सब लोग (भयन्ते) भय करते हैं तभी राजा का प्रताप प्रवृत्त होता है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजा बिजुली के सदृश दुष्टों का नाश करके धार्मिकों का सत्कार करता है वह एक भी संख्यारहित वीरों के साथ युद्ध करने योग्य होता है और जब यह राजा न्याय से प्रकट दण्ड देने वाला होवे तब सब दुष्ट जन डर के छिप जाते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत स्मास्य पनयन्ति जना जूतिं कृष्टिप्रो अभिभूतिमाशोः ।
उतैनमाहुः समिथे वियन्तः परा दधिक्रा असरत्सहस्रैः ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (जनाः) राजा और प्रजाजन (अस्य) इस (कृष्टिप्रः)

मनुष्यों को दूतचार अर्थात् गुप्त दूत आदि से पालना करने वाले (आशोः) सम्पूर्ण विद्याओं में व्याप्त राजा के सङ्ग्राम में (अभिभूतिम्) तिरस्कार और (जूतिम्) न्याय के वेग का (उत) तर्क वितर्क के साथ (पनयन्ति) व्यवहार करते वा प्रशंसा करते हैं (उत) और भी (एनम्) इस को (समिथे) सङ्ग्राम में (वियन्तः) विशेष कर के प्राप्त होते हुए (आहुः) कहते हैं और जो (दधिक्राः) धारण करने वालों के साथ चलने वाला (सहस्रैः) असङ्ख्यों के साथ (परा, असरत्) उत्कृष्ट चलता है (स्म) वही जीत सके ॥९॥

भावार्थः—उसी राजा की विद्वान् जन प्रशंसा करते हैं जो प्रजा के पालन में तत्पर हुआ सब के व्यवहारों को सिद्ध करता है ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ दधिक्राः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्यइव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा वाज्यर्वा पृणक्तु मध्वा समिमा वचांसि ॥१०॥

पदार्थः—जो राजा (शवसा) बल से (सूर्यइव) सूर्य के सदृश (दधिक्राः) धारण करने वालों से प्राप्त होने वाला (पञ्च) पांच (कृष्टीः) मनुष्यों को (ज्योतिषा) प्रकाश से सूर्य जैसे (अपः) जलों को वैसे (आ, ततान) विस्तृत करता है (सहस्रसाः) हजारों का विभाग करने वाला (शतसाः) और सैकड़ों का विभाग कर्त्ता वर्त्तमान (अर्वा) शीघ्र मार्गों को जाने वाला (वाजी) वेगवान् (मध्वा) सहत के साथ (इमा) इन (वचांसि) वचनों का (सम्, पृणक्तु) सम्बन्ध करे वही राज्य करने के योग्य होता है ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सूर्य्य के प्रकाश के सदृश न्याय से पांच प्रकार की प्रजाओं का पालन करता है वह असंख्य आनन्द को प्राप्त होता है ॥१०॥

इस सूक्त में राजा के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह अड़तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः। दधिक्रा देवताः। १। ३। ५ निचृत् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २। ४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ६ अनुष्टुप् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब छः ऋचा वाले उनतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में कैसा राजा हो इस विषय को कहते हैं ॥

**आशुं दधिक्रां तमु नु ष्टवाम दिवस्पृथिव्या उत चर्किराम ।**
**उच्छन्तीर्मामुषसः सूदयन्त्वति विश्वानि दुरितानि पर्षन् ॥१॥**

पदार्थः—हम लोग (दिवः) प्रकाश और (पृथिव्याः) भूमि के मध्य में (तम्) उस (आशुम्) शीघ्र चलने वाले (दधिक्राम्) धारण करने योग्य को धारण करने वाले की (नु) तर्क वितर्क के साथ (स्तवाम) प्रशंसा करें (उत) और शत्रुओं को (उ) भी (चर्किराम) निरन्तर फेंकें और जो (माम्) मुझ को (पर्षन्) सींचें उन की (उच्छन्तीः) सेवा करती हुई (उषसः) प्रभात वेला (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुःखों वा दुष्टाचरणों को (अति, सूदयन्तु) अत्यन्त दूर करें ॥१॥

भावार्थः—जो राजा हम लोगों के दुःखों को दूर करके जैसे प्रातःकाल अन्धकार को वैसे अन्याय और दुष्टों का निषेध करता है उसी की हम लोग प्रशंसा करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**महश्चर्कर्म्यर्वतः क्रतुप्रा दधिक्राव्णः पुरुवारस्य वृष्णः ।**
**यं पूरुभ्यो दीदिवांसं नाग्निं ददथुर्मित्रावरुणा ततुरिम् ॥२॥**

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान सभा और सेना के ईश आप दो जन (पूरुभ्यः) बहुतों से (यम्) जिस (ततुरिम्) शीघ्रता करते हुए (दीदिवांसम्) प्रकाशमान (अग्निम्) अग्नि के (न) सदृश विनय को (ददथुः) देते हैं उस (पुरुवारस्य) बहुत श्रेष्ठ जनों से स्वीकार किये गये और (दधिक्राव्णः) विद्या की धारणा करने वालों की कामना करने और (वृष्णः) सुखों के वर्षाने वाले के जो (क्रतुप्राः) बुद्धि से पूर्ण करने वाले उन (महः) बड़े (अर्वतः) घोड़ों के सदृशों को और कार्य्य को मैं (चर्कर्मि) निरन्तर करता हूं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । जो राजा बुद्धि वाले और बुद्धि के देने वालों को सदा धारण करता है वह सूर्य्य के सदृश प्रतापी होता हुआ शीघ्र अपने कार्य्य को सिद्ध कर सकता है ॥२॥

अब प्रजाकृत्य को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**यो अश्वस्य दधिक्राव्णो अकारीत्समिद्धे अग्ना उषसो व्युष्टौ ।**
**अनागसं तमदितिः कृणोतु स मित्रेण वरुणेना सजोषाः ॥३॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो विद्वान् (दधिक्राव्णः) धारण करने वालों को क्रमण कराने वाले (अश्वस्य) बड़े और विद्या में अर्थात् पदार्थविद्या के गुणों में व्याप्त (उषसः) प्रातःकाल की (व्युष्टौ) अनेक प्रकार की सेवा में और (समिद्धे) बहुत प्रदीप्त (अग्नौ) विजुलीरूप अग्नि में (अनागसम्) अपराधरहित को (अकारीत्) करता है (तम्) उस को (अदितिः) माता व पिता निरपराध (कृणोतु) करे (सः) सो भी (मित्रेण) मित्र (वरुणेन) श्रेष्ठ के साथ (सजोषाः) तुल्य प्रीति सेवने वाला हो ।।३।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अग्नि में जल आदि पदार्थों के संयोग करने को जाने और जो सज्जनों के साथ मित्रता कर और प्रातःकाल उठ के श्रेष्ठ कर्म्मों को करता है वही सदैव प्रसन्न होता है यह जानो ।।३।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

दधिक्राव्ण इष ऊर्जो महो यदमन्महि मरुतां नाम भद्रम् ।
स्वस्तये वरुणं मित्रमग्निं हवामहे इन्द्रं वज्रबाहुम् ।।४।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम लोग (स्वस्तये) सुख के लिये (यत्) जिस (महः) बड़ी (दधिक्राव्णः) धारण करने वालों के हिलाने वाले (इषः) अन्न आदि की (ऊर्जः) पराक्रम की (मरुताम्) और मनुष्यों के (भद्रम्) कल्याण करने वाली (नाम) संज्ञा का (अमन्महि) जानें । और (वरुणम्) जल के सदृश शान्ति आदि गुणों से युक्त (मित्रम्) प्राणों के सदृश सब के प्रिय (अग्निम्) बिजुली के सदृश सम्पूर्ण गुणों के प्रकाश करने वाले (वज्रबाहुम्) शस्त्र और अस्त्रों को सेवने वाले बाहुयुक्त (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् की (हवामहे) प्रशंसा करें वा ग्रहण करें उस संज्ञा और ऐश्वर्य्यवान् को आप लोग जान के अन्यों के प्रति प्रशंसा करो ।।४।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० जो अन्न आदि संस्कार और भोजन के समय की रीतियों को जान और स्वयं आचरण कर के अन्यों को उपदेश देते और राजा के साथ विरोध नहीं करके प्रजा के साथ मित्र के सदृश आचरण करते हैं वे ही प्रशंसा करने योग्य होते हैं ।।४।।

अब राजप्रजाकृत्य को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

इन्द्रमिवेदुभये वि ह्वयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
दधिक्रामु सूदनं मर्त्याय ददथुर्मित्रावरुणा नो अश्वम् ।।५।।

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश राजा के प्रधान और मंत्री जो (उदीराणाः) उत्तमता को प्राप्त (यज्ञम्) न्याय व्यवहार को

(उपप्रयन्तः) प्राप्त होते हुए (उभये) राजा और प्रजाजन (मर्त्यासः) अन्य मनुष्य और (नः) हम लोगों के लिये (दधिक्राम्) न्याय धारण करने वालों की कामना करने वाले (सूदनम्) जलादि वहने (अश्वम्) और शीघ्र सुख करने वाले बोध की (वि) विशेष करके (ह्वयन्ते) प्रशंसा करें और उन उत्तम पदार्थों को (ददथुः) तुम देओ वे आप (इन्द्रमिव) विजुली के सदृश (इव, उ) ही कृतज्ञ होओ ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो राजा और प्रजाजन पक्षपात से रहित न्याययुक्त धर्म का आचरण करते हैं वे शत्रुरहित हुए सब के प्रिय होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।

सुरभि नो मुखा करत्प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (नः) हम लोगों के (मुखा) मुख के सहचरित श्रवण आदि इन्द्रियों के प्रति (सुरभि) सुगन्ध आदि गुणों से युक्त द्रव्य को (करत्) करे और (नः) हम लोगों की (आयूंषि) अवस्थाओं को (प्र, तारिषत्) बढ़ावें उस (दधिक्राव्णः) धर्म्म को धारण करने वा चलाने वाले (अश्वस्य) सम्पूर्ण उत्तम गुणों में व्याप्त (वाजिनः) विज्ञानवाले (जिष्णोः) जयशील राजा की जिस प्रकार मैं आज्ञा को (अकारिषम्) करूं वैसे ही आप लोग भी करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो राजा सुगन्ध आदि से युक्त घृत आदि के होम से वायु वृष्टि जलादि को पवित्र कर सब के रोगों का निवारण कर के अवस्थाओं को वढ़ाता है और प्रयत्न से सब प्रजाओं का पुत्र के सदृश पालन करता है वह हम लोगों को पिता के सदृश सत्कार करने योग्य है ॥६॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति है यह जानना चाहिये ॥

यह उनतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । १—४ दधिक्रावा । ५ सूर्य्यश्च देवताः । १ निचृत् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । ४ भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ निचृत् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब पाँच ऋचा वाले चालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में राजा और प्रजा के कृत्य को कहते हैं॥

दधिक्राव्ण इदु नु चर्किराम विश्वा इन्मामुषसः सूदयन्तु।
अपामग्नेरुषसः सूर्यस्य बृहस्पतेराङ्गिरसस्य जिष्णोः॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (विश्वाः) सम्पूर्ण (उषसः) प्रातर्वेला (दधिक्राव्णः) वायु आदि के कारण को चलाने वाले की अवस्था को और (माम्) मुझ को (सूदयन्तु) वर्षावें बढ़ावें (इत्, उ) वैसे ही हम लोग संपूर्ण प्रजाओं को (चर्किराम) कार्य्यसंलग्न करावें और जैसे संपूर्ण (उषसः) प्रातःकाल (अपाम्) जलों (अग्नेः) बिजुली (सूर्य्यस्य) सूर्य्य (बृहस्पतेः) बड़ों के पालन करने वाले (आङ्गिरसस्य) प्राणों में उत्पन्न (जिष्णोः) और जयशील राजा के दोषों को प्रकट करें वैसे (इत्) ही हम लोग सब प्रजाओं को उत्तम कर्म्मों में (नु) शीघ्र संलग्न करावें॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् वा राजपुरुषो ! आप लोग जैसे प्रातर्वेला सब को चैतन्य करती है वैसे न्याय से सम्पूर्ण प्रजाओं को चैतन्य करो और जैसे प्रातःकाल का निमित्त सूर्य्य और सूर्य्य का निमित्त बिजुली, बिजुली का निमित्त वायु, वायु का कारण प्रकृति और प्रकृति का अधिष्ठाता परमेश्वर है वैसे ही प्रजापालननिमित्त भृत्य, भृत्य-निमित्त अध्यक्ष, अध्यक्षों का निमित्त प्रधान और प्रधान का निमित्त राजा होवे॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

सत्वा भरिषो गविषो दुवन्यसच्छ्रवस्यादिष उषसस्तुरण्यसत्।
सत्यो द्रवो द्रवरः पतङ्गरो दधिक्रावेषमूर्जं स्वर्जनत्॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सत्वा) प्राप्त करने वाला (भरिषः) धारण और पोषण में चतुर (गविषः) गौओं की और (दुवन्यसत्) सेवा की इच्छा करता हुआ तथा (इषः) इच्छाओं और (उषसः) प्रातःकालों को (तुरण्यसत्) अपनी शीघ्रता को चाहता हुआ (श्रवस्यात्) अपने श्रवण की इच्छा करे तथा जो (सत्यः) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (द्रवः) स्नेही (द्रवरः) द्रव में रमने वा द्रव अर्थात् गीले पदार्थों को देने और (पतङ्गरः) अग्नि में रमने वा अग्नि को देने वाला (दधिक्रावा) धारण करने योग्य वाहन पर जाता (इषम्) अन्न (ऊर्जम्) पराक्रम और (स्वः) सुख को (जनत्) उत्पन्न करे वही राजा आप लोगों को सत्कार करने योग्य है॥२॥

भावार्थः—प्रजाजनों के साथ जो राजा सत्यवादी जितेन्द्रिय सबके

सुख की इच्छा करता हुआ न्यायकारी पिता के सदृश वर्त्ताव करे वही प्रजाओं का पालन कर सकता है ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत स्मास्य द्रवतस्तुरण्यतः पर्णं न वेरनु वाति प्रगर्धिनः ।
श्येनस्येव ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राव्णः सहोर्जा तरित्रतः ॥३॥

पदार्थः—जो जन (अङ्कसम्) लक्षण को (ध्रजतः) वेग से जाते हुए (प्रगर्धिनः) अत्यन्त लोभी (श्येनस्येव) वाज पक्षी के सदृश (ऊर्जा) पराक्रम से (तरित्रतः) मार्ग के पार उतारने और (दधिक्राव्णः) धारण करने वाले की धारणा करने वाले वायु (अस्य, उत) और इस (द्रवतः) दौड़ते तथा (तुरण्यतः) शीघ्र चलते हुए की (पर्णम्) प्रजापालना के (न) सदृश और (वेः) पक्षी के सदृश राजा की प्रजापालना के (स्म) ही (परि) सब प्रकार (अनु, वाति) पीछे चलता है उसके (सह) साथ सब मन्त्री जन सम्मति करें ॥ ३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जिस राजा की वाज पक्षिणी के सदृश सेना पराक्रम वाली है वह उस के द्वारा प्रजा का पालन करके डाकू चोरों का निवारण करे ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत स्य वाजी क्षिपणिं तुरण्यति ग्रीवायां बद्धो अपिकक्ष आसनि ।
क्रतुं दधिक्रा अनु सन्तवीत्वत्पथामङ्कांस्यन्वापनीफणत् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वाजी) वेगयुक्त (ग्रीवायाम्) कण्ठ में (अपिकक्षे) कांख में (आसनि) मुख में (बद्धः) बंधा और (दधिक्राः) धारण करने योग्यों का धारण करने वाला हुआ (क्षिपणिम्) शीघ्र करने वाले को (अनु, तुरण्यति) शीघ्र चलाता है (उत) और (सन्तवीत्वत्) बहुत बलवान् होता हुआ (पथाम्) मार्गों के (अङ्कांसि) चिह्नों को (क्रतुम्) बुद्धि वा कर्म्म के (अनु) पीछे (आपनीफणत्) अत्यन्त प्राप्त होता है (स्यः) वह आप लोगों से कार्य्यों में नियुक्त करने योग्य है ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सब प्रकार शोभित बन्धन से सन्नद्ध किया घोड़ा शीघ्र चलता है वैसे ही अग्नि आदि से चलाये गये वाहन से शीघ्र जाओ ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥५॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! जो (शुचिषत्) पवित्रों में स्थित होने (वसुः) शरीरादिकों में रहने (अन्तरिक्षसत्) अन्तरिक्ष वा आकाश में स्थित होने (होता) दान वा ग्रहण करने और (वेदिषत्) वेदी पर स्थित होने वाला (अतिथिः) जिसकी कोई तिथि नियत न हो वह (दुरोणसत्) गृह में (नृषत्) मनुष्यों में (वरसत्) श्रेष्ठों में (व्योमसत्) अन्तरिक्ष में (ऋतसत्) और सत्य में स्थित होने वाला (अब्जाः) जलों से उत्पन्न (गोजाः) वा पृथिवी आदिकों में उत्पन्न (ऋतजाः) तथा सत्य से और (अद्रिजाः) मेघों से उत्पन्न हुआ (हंसः) पापों को हनता है और (ऋतम्) सत्य का आचरण करता है वही जगदीश्वर का प्रिय होता है॥५॥

भावार्थः—जो जीव उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्त्ताव करते हैं वे ही परमेश्वर के साथ आनन्द को भोगते हैं॥५॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के कृत्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह चालीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥

---

वामदेव ऋषिः। इन्द्रावरुणौ देवते। १।५।९।११ त्रिष्टुप्। २।४ निचृत् त्रिष्टुप्। ३।६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ७ पङ्क्तिः। ८। १० स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब ग्यारह ऋचा वाले इकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अध्यापक और उपदेशक के विषय को कहते हैं॥

इन्द्रा को वां वरुणा सुम्नमाप स्तोमो हविष्माँ अमृतो न होता।
यो वां हृदि क्रतुमाँ अस्मदुक्तः पस्पर्शदिन्द्रावरुणा नमस्वान्॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्रा) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त (वरुणा) श्रेष्ठ आचरण करने वाले अध्यापक और उपदेशक जन (वाम्) तुम दोनों से (कः) कौन (स्तोमः) प्रशंसा (सुम्नम्) सुख को (हविष्मान्) बहुत पदार्थों में कारण (अमृतः) नाश से रहित और (होता) दाता जन के (न) सदृश (आप) प्राप्त होवे। हे (इन्द्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश प्रिय बली जनो (यः) जो (अस्मत्) हम लोगों से (उक्तः) कहा गया (नमस्वान्) बहुत अन्न आदि वा सत्कारगणों युक्त (क्रतुमान्) बहुत श्रेष्ठ बुद्धि वाला (वाम्) आप दोनों के (हृदि) हृदय में (पस्पर्शत्) स्पर्श करे॥१॥

भावार्थः— हे अध्यापक और उपदेशको ! जो दाता जन के सदृश

पुरुषार्थी बुद्धिमान् नम्र शान्त सत्कार करने वाले और माता पिता से उत्तम प्रकार शिक्षित होवें उन को पढ़ा और उपदेश देकर लक्ष्मीयुक्त और श्रेष्ठ करो ॥१॥

अब राजा और अमात्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रा ह यो वरुणा चक्र आपी देवौ मर्त्तः सख्याय प्रयस्वान् ।
स हन्ति वृत्रा समिथेषु शत्रूनवोभिर्वा महद्भिः स प्र शृण्वे ॥२॥

पदार्थः - हे (इन्द्रा) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त (वरुणा) उत्तम (आपी) सम्पूर्ण विद्याओं को प्राप्त (देवौ) विद्वान् जनो ! आप लोगों के मध्य में (यः) (प्रयस्वान्) प्रयत्न करने वाला (मर्त्तः) मनुष्य (सख्याय) मित्रपन के लिये (प्र, चक्रे) उत्तमता करता है (सः, ह) वही (अवोभिः) रक्षण आदिकों के साथ(वा) वा (सः) वह (महद्भिः) महाशयों के साथ (समिथेषु) संग्रामों में (वृत्रा) शत्रुओं की सेनाओं और (शत्रून्) शत्रुओं का (हन्ति) नाश करता है उस को मैं यशस्वी (शृण्वे) सुनता हूँ ॥२॥

भावार्थः—हे न्याय करनेवाले राजा और मन्त्रीजनो ! जो आप लोगों के सत्कार करने और शत्रुओं के जीतने वाले महाशय अर्थात् गम्भीर अभिप्राय वाले मेलयुक्त आप लोगों की मित्रता में प्रीतिकर्त्ता विजयी होवें उन का सत्कार कर के रक्षा करो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रा ह रत्नं वरुणा धेष्ठेत्था नृभ्यः शशमानेभ्यस्ता ।
यदी सखाया सख्याय सोमैः सुतेभिः सुप्रयसा मादयैते ॥३॥

पदार्थः—हे (धेष्ठा) धाता जनो (इन्द्रा) राजन् (वरुणा) और उत्तम गुणों से युक्त प्रधान (यदी) यदि जिन तुम दोनों ने(शशमानेभ्यः) प्रशंसा करते हुए (नृभ्यः) मनुष्यों के लिये (ह) ही (रत्नम्) सुन्दर धन दिया तो (ता) वे (सखाया) परस्पर मित्र आप दोनों (सख्याय) मित्रपन के लिये (सुप्रयसा) श्रेष्ठ प्रयत्न से (सुतेभिः) उत्पन्न किये गये (सोमैः) ऐश्वर्य्यों से (मादयैते) सुख को प्राप्त हों (इत्था) इस प्रकार से आप दोनों निश्चय आनन्दित हों ॥३॥

भावार्थः—जो राजा और मन्त्रीजन उत्तम गुण वाले मनुष्यों का धन आदि से सत्कार करते हैं वे ही ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर सदा आनन्दित होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रा युवं वरुणा दिद्युमस्मिन्नोजिष्ठमुग्रा नि वधिष्टं वज्रम् ।
यो नो दुरेवो वृकतिर्दभीतिस्तस्मिन्मिमाथामभिभूत्योजः ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्रा) शत्रु के नाश करने वाले राजन् ! और (वरुणा) श्रेष्ठ मन्त्रीजन (उग्रा) तेजस्वी (युवम्) आप दोनों (अस्मिन्) इस में (ओजिष्ठम्) अत्यन्त पराक्रमयुक्त (दिद्युम्) विद्या और न्याय के प्रकाशरूप (वज्रम्) वज्र को ग्रहण कर शत्रुओं का (नि, वधिष्टम्) निरन्तर नाश करो तथा (यः) जो (दुरेवः) दुःख से प्राप्त होने योग्य (वृकतिः) भेड़िये के सदृश शत्रुओं का नाश करने वाला (दभीतिः) हिंसक (नः) हम लोगों के लिये (अभिभूति) तिरस्कार करने वाला (ओजः) पराक्रम है उस को (मिमाथाम्) रचो और (तस्मिन्) उस में विश्वास को करो ॥४॥

भावार्थः - हे राजा और मन्त्री जनो ! आप ब्रह्मचर्य्य, विद्या, सत्याचरण और जितेन्द्रियत्वादि गुणों से अतुल बल को बढ़ाय के शत्रुओं का निवारण और प्रजाओं का अच्छे प्रकार पालन करके निष्कण्टक राज्यानन्द का निरन्तर भोग करें ॥४॥

फिर अध्यापकोपदेशक विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्रा) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त (वरुणा) प्रशंसित गुणवान् (प्रेतारा) प्राप्त होने वाले (युवम्) आप दोनों (अस्याः) इस (धियः) बुद्धि के (धेनोः) गौ के सम्बन्ध में (वृषभेव) बैल के सदृश (भूतम्) व्यतीत हुए विषय को प्राप्त होओ और जैसे (सा) वह (सहस्रधारा) असंख्य प्रवाह वाली वाणी (मही) बड़ी (गौः) चलने वाली गौ (पयसा) दुग्ध आदि से (यवसेव) भूसा आदि के सदृश (नः) हम लोगों को (गत्वी) प्राप्त होकर (दुहीयत्) पूर्ण करे वैसे श्रेष्ठ गुणों से पूर्ण करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप सब के लिये ऐसी बुद्धि देओ कि जिससे सब पूर्ण मनोरथ वाले होवें ॥५॥

अब राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तोके हिते तनय उर्वरासु सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
इन्द्रा नो अत्र वरुणा स्यातामवोभिर्दस्मा परितक्म्यायाम् ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्रा) ऐश्वर्य्य के देने वाले राजन् ! (वरुणा) श्रेष्ठ मंत्री आप दोनों (अत्र) इस प्रजा में (परितक्म्यायाम्) सब ओर से घोड़ा जिस में उस राज्य में (च) और (उर्वरासु) भूमियों में (सूरः) सूर्य्य के सदृश (हिते) हित के सिद्ध करने वाले (तोके) शीघ्र उत्पन्न हुए पुत्र (तनये) कुमार (दृशीके) और देखने योग्य (पौंस्ये) पुरुषार्थ के निमित्त (नः) हम लोगों को (वृषणः) बलयुक्त करें तथा (अवोभिः) रक्षा आदि से (दस्मा) दुःख के नाश करने वाले (स्याताम्) होवें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० । राजपुरुष जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य्य वैसे प्रजाओं में पिता के सदृश वर्त्ताव कर और चोरों का निवारण करके न्याय से प्रजाओं का पालन करें ॥६॥

अब प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ।
वृणीमहे सख्याय प्रियाय शूरा मंहिष्ठा पितरेव शम्भू ॥७॥

पदार्थः—हे राजा और मंत्रीजनो ! (युवाम्) तुम दोनों (हि) ही को (पूर्व्याय) पूर्व राजाओं ने किये (अवसे) रक्षण आदि के लिये (इत्) ही (प्रभूती) समर्थ (स्वापी) शयन करते हुए (शूरा) भयरहित और शत्रुओं के नाश करने वाले (मंहिष्ठा) अत्यन्त सत्कार करने योग्य (पितरेव) जैसे पिता और माता वैसे (शम्भू) सुख को हुवानेवाले [=करनेवाले] (प्रियाय) सुन्दर (सख्याय) मित्रपन के लिये (गविषः) गौओं की इच्छा करने वाले का हम लोग (परि, वृणीमहे) स्वीकार करते हैं इस से आप दोनों हम लोगों के पालन करनेवाले निरन्तर होवें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे प्रजाजनो ! आप लोग उन्हीं राजा आदिकों को स्वीकार करो कि जो पिता के सदृश सब लोगों के पालन करने को समर्थ होवें ॥७॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ता वां धियोऽवसे वाजयन्तीराजिं न जग्मुर्युवयूः सुदानू ।
श्रिये न गाव उप सोममस्थुरिन्द्रं गिरो वरुणं मे मनीषाः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (मे) मेरी (गिरः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियां और (मनीषाः) बुद्धियां (श्रिये) धन के लिये (गावः) पृथिवी वा गौओं के (न) सदृश (सोमम्) ऐश्वर्य्य (इन्द्रम्) अत्यन्त सुख करने वाले (वरुणम्) श्रेष्ठ जन के (उप, अस्थुः) समीप प्राप्त होवें वैसे ही जो (वाम्) आप दोनों की (धियः) बुद्धियां वा कर्म्म (अवसे) रक्षण आदि के लिये (वाजयन्तीः) जनाती हुई (आजिम्) संग्राम के

(न) सदृश (सुदानू) उत्तम प्रकार दाता जनों को और (युवयूः) आप दोनों की कामना करते हुए प्रजाजनों को (जग्मुः) प्राप्त होवें (ता) उन का आप दोनों निरन्तर पालन करो ॥ ८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे विद्या वाली माता अपने सन्तानों को उत्तम प्रकार शिक्षा दे पालन कर और विद्या से युक्त कर के सुखी करती हैं वैसे ही राजा प्रजा के प्रति वर्त्ताव करे ॥८॥

अब राजा और प्रजा के कर्त्तव्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमा इन्द्रं वरुणं मे मनीषा अग्मन्नुप द्रविणमिच्छमानाः ।
उपेमस्थुर्जोष्टारइव वस्वो रघ्वीरिव श्रवसो भिक्षमाणाः ॥९॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो (इमाः) ये प्रत्यक्ष कुमारी ब्रह्मचारिणियां (मे) मेरी (मनीषाः) बुद्धियों के सदृश (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य (द्रविणम्) धन वा यश और (वरुणम्) श्रेष्ठ स्वभाव की (इच्छमानाः) इच्छा करती हुईं पढ़ाने वालियों को (अग्मन्) प्राप्त होवें और (जोष्टारइव) सेवा करते हुए पुरुषों के समान (वस्वः) धन के (उप, अस्थुः) समीप स्थित होतीं (ईम्) और प्रत्यक्ष (श्रवसः) अन्न की (रघ्वीरिव) छोटी ब्रह्मचारिणियों के सदृश (भिक्षमाणाः) याचना करती हुईं पढ़ाने वाली स्त्रियों के (उप) समीप स्थित हुईं वे ही कन्या अत्यन्त श्रेष्ठ होती हैं ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे राजन् ! जैसे कन्याजन ब्रह्मचर्य्य से ग्रहण की गई विद्या और उत्तम शिक्षा से यशयुक्त और विद्या वाली होकर अपने अनुकूल पतियों को प्राप्त होकर सदा आनन्दित होती हैं वैसे ही प्रजाओं के साथ आप और आप के साथ प्रजाजन निरन्तर आनन्द करें ॥९॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अश्व्यस्य त्मना रथ्यस्य पुष्टेर्नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
ता चक्राणा ऊतिभिर्नव्यसीभिरस्मत्रा रायो नियुतः सचन्ताम् ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (ता) वे (चक्राणौ) करते हुए दो जन (नव्यसीभिः) नवीन (ऊतिभिः) रक्षा आदि कर्म्मों से (अस्मत्रा) हम लोगों में वर्त्तमान (रायः) धन के सम्बन्ध को प्राप्त होवें और (नियुतः) निश्चय युक्त पदार्थ (सचन्ताम्) सम्बद्ध होवें वैसे हम लोग (त्मना) आत्मा से अपने (अश्व्यस्य) शीघ्र चलने वालों में उत्पन्न हुए (रथ्यस्य) रमण करने योग्य वाहनों में श्रेष्ठ

(पुष्टेः, नित्यस्य) पुष्टि के सम्बन्ध में नित्य वर्त्तमान (रायः) धन के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० । मनुष्यों को चाहिये कि जैसे युक्त अर्थात् कार्य में लगे हुए पुरुष सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं वैसे ही हम लोग सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होवें ऐसी इच्छा करें ॥१०॥

फिर राजप्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ नो॑ बृहन्ता बृह॒तीभि॑रू॒ती इन्द्र॑ या॒तं वरु॑ण॒ वाज॑सातौ ।

यद्दि॒द्यव॒: पृत॑नासु प्र॒क्रीळा॒न्तस्य॑ वां स्याम सनि॒तार॑ आ॒जेः ॥११॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुष्टों के दलन करने वाले राजन् और (वरुण) सेना के ईश ! (बृहन्ता) श्रेष्ठ गुणों से बड़े आप दोनों (बृहतीभिः) बड़ी (ऊती) रक्षा आदिकों से (वाजसातौ) सङ्ग्राम में (नः) हम लोगों को (आ) सब ओर से (यातम्) प्राप्त हूजिये (यत्) जो (दिद्यवः) विद्या और विनय से प्रकाशमान तेजस्वी (तस्य) उस (आजेः) सङ्ग्राम के (सनितारः) विभाग करने वाले हम (पृतनासु) सेनाओं में (प्रक्रीळान्) उत्तम क्रीड़ा अर्थात् विहारों को प्राप्त होकर (वाम्) आप दोनों से विहार को प्राप्त हुए (स्याम) होवें उन हम लोगों का आप दोनों सत्कार करें ॥११॥

भावार्थः—हे राजन् ! जैसे हम लोग आपके प्रति प्रीति से वर्त्ताव करें वैसा ही आप को भी चाहिये कि हम लोगों में वर्त्ताव करें ॥११॥

इस सूक्त में अध्यापक, उपदेशक, राजा, प्रजा और मन्त्री के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

१-१० त्रसदस्युः पौरुकुत्स्य ऋषिः । १-६ आत्मा । ७-१० इन्द्रावरुणौ देवते । १-६ । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ८ भुरिक् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ निचृत् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले बयालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में राजविषय को कहते हैं ॥

मम॑ द्वि॒ता रा॒ष्ट्रं क्ष॒त्रिय॑स्य वि॒श्वायो॒र्विश्वे॑ अ॒मृता॒ यथा॑ नः ।

क्रतुं॑ सचन्ते॒ वरु॑णस्य दे॒वा राजा॑मि कृ॒ष्टेरु॑प॒मस्य॑ व॒व्रेः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (यथा) जैसे (मम) मुझ (विश्वायोः) पूर्ण अवस्था वाले (क्षत्रियस्य) क्षत्रिय के (द्विता) दो का होना तथा (विश्वे) सम्पूर्ण (अमृताः) नाश से रहित जन (नः) हम लोगों के (राष्ट्रम्) राज्य (क्रतुम्) और बुद्धि को (सचन्ते) सम्बन्धयुक्त करते हैं और (वरुणस्य) श्रेष्ठ (कृष्टेः) खींचते हुए (उपमस्य) उपमायुक्त (वव्रेः) स्वीकार करने वाले मुझ जन की बुद्धि को (देवाः) प्रकाशमान जन मेलते हैं वैसे ही इन में मैं (राजामि) शोभित होता हूं ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! इस संसार में स्वामी और स्वं अर्थात् अपना ये दो ही पदार्थ वर्त्तमान हैं और जिस देश में दीर्घकालपर्यन्त जीवने और न्याययुक्त स्वभाव वाले धार्मिक मन्त्री जन सब प्रकार के गुणग्रहणकर्त्ता श्रेष्ठ उपमा से युक्त वर्त्तमान हैं वहां ही रहता हुआ सज्जन सुख का अत्यन्त भोग करता है ॥१॥

अब ईश्वरविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अहं राजा वरुणो मह्यं तान्यसुर्याणि प्रथमा धारयन्त ।
क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवा राजामि कृष्टेरुपमस्य वव्रेः ॥२॥

पदार्थः हे मनुष्यो ! जैसे जो (वरुणः) सम्पूर्ण उत्तम प्रबन्धों का कर्त्ता (राजा) प्रकाशमान (अहम्) मैं जगदीश्वर (वरुणस्य) उत्तम सम्बन्ध में और (वव्रेः) स्वीकार करने योग्य (कृष्टेः) मनुष्य के सम्बन्ध में तथा (उपमस्य) उपमायुक्त जगत् के बीच में (राजामि) प्रकाशित होता हूं उस (मह्यम्) मेरे लिये (देवाः) विद्वान् जन तृप्त होते हैं तथा जो (प्रथमा) आदि से वर्त्तमान (असुर्याणि) मेघादिकों के चिह्न (तानि) उनको (धारयन्त) धारण करते हैं और (क्रतुम्) बुद्धि को (सचन्ते) प्राप्त होते हैं वैसे तुम लोग भी आचरण करो ॥२॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलु० । जो मनुष्य सर्वत्र व्याप्त, बुद्धि और धन के देने वाले जगत् के स्वामी मुझ परमात्मा को भजते हैं वे सब सुखों को भजते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अहमिन्द्रो वरुणस्ते महित्वोर्वी गंभीरे रजसी सुमेके ।
त्वष्टेव विश्वा भुवनानि विद्वान्त्समैरयं रोदसी धारयं च ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्यवान् (वरुणः) सब से उत्तम (अहम्) अतीव व्याप्त मैं (विद्वान्) सकलविद्यावेत्ता (त्वष्टेव) उत्तम शिल्पी के सदृश (गभीरे) विस्तारयुक्त (सुमेके) सुन्दर मुझ से रचे और उत्तम प्रकार फैलाये गये

(रजसी) सूर्य्य और पृथिवी को (महित्वा) पूजित कर (ते) उन (उर्वी) बहुत पदार्थों को धारण करने वाले (रोदसी)सूर्य्य और पृथिवी लोकों को रच के यहां (विश्वा)सब (भुवनानि) लोकों को (सम्) एक होने में (ऐरयम्) प्रेरणा करूं (धारयम्, च) और धारण करूं वा धारण कराऊं यह जानो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे चतुर पण्डित पूर्ण विद्यावान् शिल्पी जन उत्तम वस्तुओं को रचते हैं वैसे ही मुझ से विचित्र उत्तम उत्तम जगत् रचा गया धारण किया जाता है और जैसे मैंने रचा वैसे अन्य जीव का सामर्थ्य रचने को नहीं है किन्तु मेरे किये हुए कार्य्य से कुछ ग्रहण कर के अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार रचते हैं यह जानना चाहिये ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अहमपो अपिन्वमुक्षमाणा धारयं दिवं सदन ऋतस्य ।
ऋतेन पुत्रो अदितेर्ऋतावोत त्रिधातु प्रथयद्वि भूम ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं परमात्मा ही (ऋतस्य) सत्य प्रकृति नामक के (सदने) सदन में अर्थात् सब के ठहरने के लिये जो संसार उस में (दिवम्) बिजुली की (उक्षमाणाः) सेवा करते हुए (अपः) जलों वा अन्तरिक्ष की (अपिन्वम्) सेवा करता हूं और (ऋतेन) सत्य कारण से (अदितेः) खण्डरहित अन्तरिक्ष का (ऋतावा) सत्य से युक्त (पुत्रः) पुत्र के सदृश वर्त्तमान (उत) निश्चय से (भूम) अनेक प्रकार के (त्रिधातु) तीन अर्थात् सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण धारण करने वाले जिस में उस सम्पूर्ण जगत् को (वि, प्रथयत्) विविध प्रकट करे उस को मैं (धारयम्) धारण करूं ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! मेरे विना इस संसार का धारण करने वाला अन्य कोई भी नहीं है और जैसा तीन अर्थात् सत्त्वादिगुणमय कारण है वैसे ही इस कार्य्य को देखो ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मां नरः स्वश्वा वाजयन्तो मां वृताः समरणे हवन्ते ।
कृणोम्याजिं मघवाहमिन्द्र इयर्मि रेणुमभिभूत्योजाः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (स्वश्वाः) सुन्दर घोड़े वा अग्नि आदि जिन के विद्यमान और (माम्) मुझ को (वाजयन्तः) जानते वा जनाते हुए (वृताः) स्वीकार जिन्होंने किया वे (नरः) नायक जन (समरणे) संग्राम में (माम्) मेरी (हवन्ते)

स्पर्द्धा अर्थात् स्वीकार करते हैं वहां (मघवा) अत्यन्त श्रेष्ठ धनयुक्त (इन्द्रः) तेजस्वी (अभिभूत्योजाः) दुष्टों का अभिभव करने वाले बल से युक्त (अहम्) मैं (आजिम्) संग्राम को (कृणोमि) करता हूं (रेणुम्) धूलि को (इयर्मि) प्राप्त होता हूं वैसे तुम लोग भी मेरा स्वीकार करो ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जन सब वस्तुओं में व्याप्त होने वाले सब के अन्तर्यामी और सर्वशक्तिमान् मुझ परमात्मा की संग्राम में प्रार्थना करते है उन्हीं का मैं विजय कराता हूं और जो धर्म से युद्ध करते हैं उन्हीं का मैं सहायक होता हूं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अहं ता विश्वा चकरं नकिर्मा दैव्यं सहो वरते अप्रतीतम् ।
यन्मा सोमासो ममदन्यदुक्थोभे भयेते रजसी अपारे ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अहम्) मैं (ता) उन (विश्वा) सब कामों को (चकरम्) निरन्तर करता हूं तथा जीव (यत्) जिस (दैव्यम्) विद्वानों में प्रिय (मा) मुझ को और (अप्रतीतम्) नहीं जाने गये (सहः) बल को (वरते) स्वीकार करता है (यत्) जिस (मा) मेरी सेवा करते (सोमासः) ऐश्वर्य्यवाले (ममदन्) प्रसन्न होते हैं और मुझ से (उक्था) प्रशंसा करने योग्य (उभे) दोनों (अपारे) पाररहित अपरिमित (रजसी) सूर्य्यलोक और भूमिलोक (भयेते) कंपते हैं उस मेरे सदृश कोई भी (नकिः) नहीं है ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो पदार्थ प्रत्यक्ष और जो नहीं प्रत्यक्ष हैं वे सब मुझसे ही बनाये गये। मेरे में अनन्त बल है मुझ को प्राप्त हो कर सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होते हैं और मेरे ही भय से सब लोगों के सहचारी जीव डरते हैं ॥६॥

अब ईश्वरोपासना विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विदुष्टे विश्वा भुवनानि तस्य ता प्र ब्रवीषि वरुणाय वेधः ।
त्वं वृत्राणि शृण्विषे जघन्वान् त्वं वृताँ अरिणा इन्द्र सिन्धून् ॥७॥

पदार्थः–हे (वेधः) अनन्तविद्यायुक्त (इन्द्र) अतीव ऐश्वर्य्य के दाता जगदीश्वर ! जो (त्वम्) आप (वरुणाय) श्रेष्ठ जन के लिये वेदों का (प्रब्रवीषि) उपदेश देते हो (तस्य) उन (ते) आप का (ता) उन (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकों को विद्वान् जन राज्य (विदुः) जानते हैं और जो (त्वम्) आप (वृत्राणि) धनों को (शृण्विषे) सुनते हो (सिन्धून्) समुद्र वा नदियों को और (वृतान्) स्वीकार किये

हुओं को (अरिणाः) प्राप्त होओ वह आप दुष्ट अधर्मियों के (जघन्वान्) नाशकारी हो ॥७॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! जिस से आप ने कृपा कर के हम लोगों के कल्याण के लिये वेदों का उपदेश किया जिस से हम लोगों के दोष नाश किये गये और वर्षा के द्वारा पालन किया जाता है उस ही की हम लोग उपासना करते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दौर्गहे बध्यमाने ।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्द्धदेवम् ॥८॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर ! आप की कृपा से (अत्र) जो इस संसार में (अस्माकम्) हम लोगों के (सप्त) छः ऋतु और सातवां वायु (ऋषयः) प्राप्त हुए (पितरः) पालन करने वाले (आसन्) हैं (ते) वे (दौर्गहे) अत्यन्त गहन (बध्यमाने) ताड़ना दिये जाते हुए में (वृत्रतुरम्) जो मेघ वा धन की शीघ्रता कराता है उस (अर्द्धदेवम्) देव के आधे वा आधे जगत् के देव को (इन्द्रम्) सूर्य्य के (न) सदृश तथा (अस्याः) इस सृष्टि के मध्य में (त्रसदस्युम्) दुष्ट डाकू जिस से डरते हैं उस को (आ, अयजन्त) सब प्रकार मिलते हैं (ते) वे हमारे सुख के करनेवाले हों ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने सब के रक्षण के लिये ऋतु आदि पदार्थ रचे उस की उपासना करके दुःख से जीतने योग्य दुःख को जीतो ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्धव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
अथा राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्द्धदेवम् ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्रावरुणा) वायु और बिजुली के सदृश वर्त्तमान जो (पुरुकुत्सानी) बहुत निन्दित कर्मों से विशिष्ट (हव्येभिः) ग्रहण करने योग्य (नमोभिः) अन्नादिकों से आप दोनों को सुख (अदाशत्) देती है (अथा) इस के अनन्तर (अस्याः) इस पृथिवी के (वृत्रहणम्) मेघ को नाश करने और (अर्द्धदेवम्) आधे जगत् को प्रकाश करने वाले सूर्य्य के सदृश (त्रसदस्युम्) जिस से दुष्ट डाकू जन डरते हैं उस (राजानम्) राजा को (वाम्) आप दोनों (ददथुः) दीजिये उस को और उन को (हि) जिस से हम लोग जानें ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस की कृपा से सम्पूर्ण पृथिवी धान्य से युक्त हुई और सूर्य्य प्रकट हुआ उस की निरन्तर उपासना करो ॥६॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

राया व॒यं स॑स॒वांसो॑ मदेम ह॒व्येन॑ दे॒वा यव॑सेन॒ गावः॑ ।
तां धे॒नुमि॑न्द्रावरुणा यु॒वं नो॑ वि॒श्वाहा॑ धत्त॒मन॑पस्फुरन्तीम् ॥१०॥

पदार्थः—(हव्येन) देने और ग्रहण करने योग्य वस्तु से (देवाः) विद्वान् जन (यवसेन) भूसा आदि से जैसे (गावः) गौयें वैसे (राया) धन से (वयम्) हम लोग (ससवांसः) उत्तम प्रकार शयन करते हुए से (मदेम) आनन्द करें । और हे (इन्द्रावरुणा) अध्यापक और उपदेशको (युवम्) आप दोनों (विश्वाहा) सब दिन (अनपस्फुरन्तीम्) दृढ़ निश्चल बुद्धि को उत्पन्न करती और (ताम्, धेनुम्) सम्पूर्ण मनोरथों को पूर्ण करती हुई उस वाणी को (नः) हम लोगों के लिये (धत्तम्) धारण कीजिये ॥१०॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! हम लोगों में वैसी सम्पूर्ण शास्त्रों में कहे पदार्थविषयक वाणी को स्थित करो जिस से हम लोग सदा ही आनन्दित होवें ॥१०॥

इस सूक्त में राजा, ईश्वर, ईश्वरोपासना और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ ऋषी तथा अश्विनौ देवते । १ त्रिष्टुप् । २ । ३ । ५-७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले तेतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में अध्यापकोपदेशकविषय में प्रश्नोत्तर विषय को कहते हैं ॥

क उ॑ श्रवत्कत॒मो य॒ज्ञिया॑नां व॒न्दारु॑ दे॒वः क॑त॒मो जु॑षाते ।
कस्ये॒मां दे॒वीम॒मृते॑षु॒ प्रेष्ठां॑ हृ॒दि श्रे॑षाम सुष्टु॒तिं सु॑ह॒व्याम् ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (कः) कौन (उ) और (कतमः) कौनसा (देवः) विद्वान् (यज्ञियानाम्) यज्ञ की सिद्धि करने वालों की (वन्दारु) वन्दना करने वाले स्वभाव को (श्रवत्) सुनता है और (कतमः) कौनसा (जुषाते) सेवन करता है (कस्य) किस

के (हृदि) हृदय के निमित्त (इमाम्) इस (प्रेष्ठाम्) अत्यन्त प्रिय (सुष्टुतिम्) उत्तम प्रशंसा युक्त (सुहव्याम्) उत्तम प्रकार ग्रहण करने योग्य और (अमृतेषु) मरणरहितों में (देवीम्) प्रकाशमान और विद्यायुक्त स्त्री की (श्रेयाम) सेवा करें ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! कौन इस संसार में यज्ञ, कौन यज्ञ के करने वाले, कौन विद्वान्, कौन विद्यायुक्त स्त्री तथा कौन अमृत और कौन सेवने और सुनने योग्य है यह पूंछा है उत्तर आगे है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शम्भविष्ठः ।
रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्य्यस्य दुहितावृणीत ॥२॥

पदार्थः—(कः) कौन (देवानाम्) विद्वानों के बीच वा पृथिव्यादिकों में (मृळाति) सुख देता है (कतमः) कौनसा (आगमिष्ठः) अत्यन्त आने वाला (उ) और (कतमः) कौनसा (शम्भविष्ठः) अत्यन्त कल्याण करने वाला विद्वान् (कम्) किस (द्रवदश्वम्) शीघ्र चलने वाले घोड़ों से युक्त (आशुम्) शीघ्रगामी (रथम्) रमण करने योग्य वाहन को (आहुः) कहते हैं (यम्) जिस को (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (दुहिता) कन्या के सदृश कान्ति (अवृणीत) स्वीकार करती है ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! हम लोग किस सुखकारक निरन्तर आने वाले उत्तम प्रकार कल्याणकारक पदार्थ तथा अग्नि और जल के द्वारा चलने वाले वाहन को उत्तम प्रकार जानें ! इस प्रकार दो मन्त्रों में कहे हुए प्रश्नों के ये उत्तर हैं—जो जैसे प्रातर्वेला उषा सूर्य्य को वैसे अध्यापक से सुनता, वायु के सदृश विद्या का सेवन करता है और पतिव्रता स्त्री के सदृश विद्यायुक्त स्त्री प्रशंसा के योग्य पति का स्वीकार करती है, जो परोपकारी है वह सुख करने वाला, बिजुली अतीव आने वाली, परमेश्वर अत्यन्त कल्याण करने वाला, विद्वानों के मध्य में विद्वान्, जल अग्नि कलाकौशल से चलाया गया विमान आदि यान प्रशंसा के योग्य होता है ऐसा जानो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यूनिन्द्रो न शक्तिं परितक्म्यायाम् ।
दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां भवथः शचिष्ठा ॥३॥

पदार्थः—हे अध्यापकोपदेशको ! (दिव्या) शुद्ध व्यवहार में उत्पन्न (सुपर्णा) उत्तम पालनों से युक्त (दिवः) विद्या के प्रकाश से (आजाता) सब प्रकार उत्पन्न हुए (शचिष्ठा) अत्यन्त बुद्धिमानो आप (इन्द्रः) बिजुली (ईवतः) बहुत गति वाले (द्यून्)

प्रकाशों को जैसे (न) वैसे (परितक्म्यायाम्) सब प्रकार हंसने वालों से युक्त सृष्टि में (शक्तिम्) सामर्थ्य को (गच्छथः) प्राप्त होते (हि) ही हो और (कया, स्मा) किसी से (शचीनाम्) बुद्धियों वा वाणियों के अत्यन्त जानने वाले (मक्षु) शीघ्र (भवथः) होते हो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो बिजुली के सदृश सामर्थ्य को बढ़ाते हैं वे बुद्धिमान् होकर अतुल लक्ष्मी को संसार में प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

का वाँ भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना ।
को वाँ महश्चित्त्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती ॥४॥

पदार्थः—हे (हूयमाना) आह्वान किये अर्थात् बुलावा दिये हुए प्रशंसा को प्राप्त (माध्वी) मधुरता आदि गुणों से युक्त (दस्रा) दुःख के नाश करने वाले (अश्विना) विद्या व्याप्त अध्यापक और उपदेशकजनो (वाम्) आप दोनों का (का) कौन (उपमातिः) उपमान (भूत्) होता है। और आप दोनों (कया) किस रीति से (नः) हम लोगों को (आ, गमथः) प्राप्त होते हो और (कः) कौन (वाम्) आप दोनों के (अभीके) समीप में (महः) बड़ा (चित्) भी (त्यजसः) त्याग करने योग्य व्यवहार है और समीप में किस (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (नः) हम लोगों की (उरुष्यतम्) सेवा करो ॥४॥

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो! तभी आप दोनों की श्रेष्ठ उपमा होती है कि जब हम लोगों को विद्यावान् करो और दुष्ट दोषों को दूर पहुंचाओ ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत्समुद्रादभि वर्त्तते वाम् ।
मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन्यत्सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥५॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो! जो (वाम्) आप दोनों का (रथः) वाहन (द्याम्) आकाश को (उरु) बहुत (परि) सब ओर से (नक्षति) व्याप्त होता है (यत्) जो (वाम्) आप दोनों को (समुद्रात्) अन्तरिक्ष वा जलाशय से (अभि) सम्मुख (आ, वर्त्तते) वर्त्तमान होता है तथा (वाम्) आप दोनों और (माध्वी) मधुर नीति (मध्वा) मधुर गुण से (मधु) मधुर कर्म्म को (सीम्) सब ओर से (भुरजन्त) प्राप्त होती हैं और (यत्) जो (पृक्षः) सम्बन्धी जन (पक्वाः) पूर्ण ज्ञान से युक्त वा

जिन का स्वरूप परिपक्व अर्थात् पूर्ण अवस्था वाले (वाम्) आप दोनों को (प्रुषायन्) प्राप्त होते हैं उन को विद्वान् आप दोनों करें ॥५॥

भावार्थः- हे मनुष्यो ! जो आप लोगों को विद्वान् करें उन की निरन्तर सेवा करो ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सिन्धु॑र्ह वां र॒सया॑ सिञ्च॒दश्वा॑न्घृ॒णा वयो॑ऽरु॒षासः॒ परि॑ ग्मन् ।
तदू॒ षु वा॑मजि॒रं चे॑ति॒ यानं॒ येन॒ पती॒ भव॑थः सू॒र्याया॑: ॥६॥

पदार्थः – हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जो (सिन्धुः) नदी वा समुद्र (रसया) रस आदि से (उ) तो (वाम्) आप दोनों को (सिञ्चत्) सींचता है तथा (वयः) व्याप्त होने वाले (घृणा) प्रदीप्त (अरुषासः) रक्त गुण से विशिष्ट पदार्थ (अश्वान्) शीघ्र चलने वाले अग्न्यादिकों को (परि, ग्मन्) सब ओर से प्राप्त होते हैं (तत्) उन को और (वाम्) आप दोनों को वा (अजिरम्) प्राप्त होने योग्य और फेंकने वाले को (सु चेति) उत्तम प्रकार जानता है वा (येन) जिस से (यानम्) वाहन को प्राप्त होकर (सूर्य्यायाः) सूर्य्य की कान्तिरूप प्रातःकाल के (पती) पालन करने वाले (भवथः) होते हो उन को (ह) निश्चय जानो ॥६॥

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप जैसे उत्तम रस-युक्त जल से वृक्षों और क्षेत्रादि को उत्तम प्रकार सिञ्चन कर और बढ़ाय के इन से फलों को प्राप्त होते हैं वैसे ही सब मनुष्यों को पढ़ा उपदेश दे और बुद्धि से बढ़ाय कर सुखरूपी फलयुक्त होओ ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इ॒हेह॒ यद्वां॑ सम॒ना प॑पृ॒क्षे सेयम॒स्मे सु॑म॒तिर्वा॑जरत्ना ।
उ॒रु॒ष्यतं॑ जरि॒तारं॑ यु॒वं ह॑ श्रि॒तः कामो॑ नासत्या युव॒द्रिक् ॥७॥

पदार्थः –हे (वाजरत्ना) बोधरूपरत्न धन जिन के वे (नासत्या) असत्य आचरण से रहित (समना) तुल्य मन वाले और (यत्) जो (सुमतिः) उत्तम बुद्धि (वाम्) आप दोनों को (पपृक्षे) सम्बन्धित होती है (सा, इयम्) सो यह (इहेह) इस संसार में (अस्मे) हम लोगों की उत्तम प्रकार सेवा करे (युवम्) आप दोनों (ह) ही (जरितारम्) स्तुति करने वाले की (उरुष्यतम्) सेवा करें उन (युवद्रिक्) आप दोनों को प्राप्त होती (श्रितः) और आश्रित हुई (कामः) इच्छा सेवे ॥७॥

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप लोग इस संसार

में जो वृद्धि आप लोगों को प्राप्त होवे उस को सब के लिये देओ और जैसी अपने हित के लिये इच्छा करते हो वैसी सब के लिये करो ॥७॥

इस सूक्त में अध्यापक और उपदेशक पढ़ने और उपदेश सुनने वाले के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह तेतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रावृषी । अश्विनौ देवते । १ । ३ । ६ । ७ । निचृत्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले चवालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में अध्यापक और उपदेशकविषय में शिल्पविद्याविषय को कहते हैं ॥

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना सङ्गतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१॥

पदार्थः—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जनो ! (वयम्) हम लोग (अद्या) आज (वाम्) तुम दोनों के (पृथुज्रयम्) विस्तीर्ण और बहुत गति वाले (तम्) उस (रथम्) रमण करने योग्य वाहन को (हुवेम) ग्रहण करें और (गोः) पृथिवी के (सङ्गतिम्) सङ्ग को ग्रहण करें (यः) जो (वन्धुरायुः) थोड़ी अवस्था वाला (सूर्य्याम्) सूर्य्यसम्बन्धिनी कान्ति अर्थात् तेज की (वहति) प्राप्ति करता है जिस (पुरुतमम्) बहुतों को ग्लानि करने (गिर्वाहसम्) वाणी से प्राप्त करने वा प्राप्त होने (वसूयुम्) और अपने को द्रव्य की इच्छा करने वाले का ग्रहण करें वही सुखी होता है ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस अग्नि और जल से शिल्पविद्या ही साधन जिसका ऐसा रथ आदि उत्पन्न किया जाता है वही अपने आत्मा के तुल्य सबको प्रसन्न करता है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः शचीभिः ।
युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्ककुहासो रथे वाम् ॥२॥

पदार्थः—हे (दिवः) द्रष्टव्य अत्यन्त सुख के (नपाता) पतन से रहित (देवता) दिव्यगुणसम्पन्न (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जनो ! (युवम्) आप

दोनों (शचीभिः) बुद्धियों से (ताम्) उस (श्रियम्) लक्ष्मी का (वनथः) सेवन करो (यत्) जिसको (वाम्) आप दोनों के (रथे) वाहन में (युवोः) आप दोनों के (पृक्षः) सम्बन्ध और (वपुः) शरीर को (अभि) सम्मुख (सचन्ते) सम्बन्धयुक्त करतीं (ककुहासः) सम्पूर्ण दिशा (वहन्ति) प्राप्त होती हैं ॥२॥

भावार्थः– जो विद्वान् जन बुद्धि को प्राप्त होकर अन्य जनों के लिये देते हैं वे सम्पूर्ण दिशाओं में पूजने अर्थात् सत्कार करने योग्य होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

को वा॑म॒द्या क॑रते रा॒तह॑व्य ऊ॒तये॑ वा सु॒तपे॒याय॑ वा॒र्कैः ।
ऋ॒तस्य॑ वा व॒नुषे॑ पू॒र्व्याय॒ नमो॑ येमा॒नो अ॑श्विना॒ व॑वर्त्तत् ॥३॥

पदार्थः– हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जनो ! (अद्या) आज (वाम्) आप दोनों को (कः) कौन (रातहव्यः) देने योग्य को दिये हुए (ऊतये) रक्षण आदि के लिये (वा) वा आज (सुतपेयाय) उत्पन्न जो पीने योग्य रस उस के लिये (करते) करता अर्थात् प्रयत्नयुक्त करता (वा) वा (अर्कैः) सत्कारों से सत्कार करता (वा) वा (ऋतस्य) सत्य के सम्बन्ध में (पूर्व्याय) प्राचीन जनों में चतुर के लिये (नमः) अन्न को देता और अनुकूल हुआ (आ, ववर्त्तत्) वर्त्ताव करता है उस का जो (येमानः) नियम करते हुए सत्कार करते हैं उनका आप दोनों सत्कार करें। और हे विद्वन् जिस कारण आप इन दोनों से विद्या को (वनुषे) मांगते हो इससे इन दोनों का निरन्तर सत्कार करो ॥३॥

भावार्थः– हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जो आप दोनों का सत्कार करें उनको उत्तम प्रकार शिक्षित और सभ्य अर्थात् सभा के योग्य करो और जिन से विद्या का ग्रहण कराओ उन का निरन्तर सत्कार भी करो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

हि॒र॒ण्यये॑न पुरुभू॒ रथे॑ने॒मं य॒ज्ञं ना॑स॒त्योप॑ यातम् ।
पिबा॑थ॒ इन्मधु॑नः सो॒म्यस्य॒ दध॑थो॒ रत्नं॑ विध॒ते जना॑य ॥४॥

पदार्थः– हे (पुरुभू) बहुतों की भावना कराने और (नासत्या) सत्य आचरण वाले अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप दोनों (हिरण्ययेन) ज्योतिर्मय और सुवर्ण आदि से शोभित (रथेन) वाहन से (इमम्) इस (यज्ञम्) पढ़ाने और पढ़ने रूप यज्ञ को (उप, यातम्) प्राप्त होओ और (मधुनः) मधुर आदि गुणों से युक्त (सोम्यस्य) सोमलतारूप ओषधियों में उत्पन्न पदार्थ के रस का (पिबाथः) पान करो और

(विधते) पुरुषार्थं को करते हुए (जनाय) मनुष्य के लिये (रत्नम्) सुन्दर धन को (दधथः) तुम धारण करते हो वे तुम (इत्) ही सुखी कैसे न होओ ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो शिल्पविद्या के प्रचार करने वाले हों वे ही संसार के सुख करने वाले होवें ॥४॥

अब राजा और अमात्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन ।
मा वामन्ये नियमन्देवयन्तः सं यद्ददे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५॥

पदार्थः—हे (पूर्व्या) प्राचीनों से किये हुओं में चतुर राजा और मन्त्री जनो ! (वाम्) आप दोनों के (सुवृता) सुन्दर पड़दे से युक्त (हिरण्ययेन) सुवर्ण आदि से शोभित (रथेन) विमान आदि वाहन से (पृथिव्याः) भूमि की (दिवः) कामना करते हुए (नः) हम लोगों को (अच्छा) उत्तम प्रकार (आ यातम्) प्राप्त होओ जिससे (अन्ये) अन्य जन (देवयन्तः) कामना करते हुए (वाम्) आप दोनों का (मा) नहीं (नि यमन्) निग्रह करें और (यत्) जिसको मैं (नाभिः) नाभि के सदृश वर्त्तमान आप दोनों को (सम् ददे) अच्छे प्रकार देता हूँ उसका ग्रहण करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० । सब प्रजा और राजाजन राजा और राजा के पुरुषों के संग की सदा ही इच्छा करें और सदैव सुख और दुःख को भोगें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे ।
नरो यद्वामश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥६॥

पदार्थः—हे (दस्रा) दुःख के नाश करने वाले (अश्विना) सूर्य्य और चन्द्रमा के सदृश श्रेष्ठ गुणों से युक्त (यत्) जो (आजमीळ्हासः) बकरों की विद्या से सिञ्चन करने वालों के पुत्र (नरः) नायकजन (वाम्) आप दोनों को और (सधस्तुतिम्) साथ कीर्ति को (अग्मन्) प्राप्त होते और (स्तोमम्) प्रशंसा को (आवन्) हम प्राप्त होते हैं उन (नः) हम सब लोगों के लिये आप दोनों (पुरुवीरम्) बहुत वीर हो जिससे उस (बृहन्तम्) बड़े (रयिम्) धन को (मिमाथाम्) धारण करो जिस से (उभयेषु) दोनों राजा और प्रजाजनों (अस्मे) हम लोगों में लक्ष्मी (नु) शीघ्र बढ़े ॥६॥

भावार्थः—हे राजन् और मुख्य मन्त्रीजनो ! आप दोनों सूर्य्य और

चन्द्रमा के सदृश हम लोगों में वर्त्ताव कीजिये और बहुत लक्ष्मी को स्थापित कीजिये जिससे हम लोग धन से युक्त होवें ॥६॥

अब सज्जनगुण विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७॥

पदार्थः—हे (नासत्या) धर्मात्मा अध्यापक और उपदेशक जनो ! (इहेह) इस संसार में (वाम्) आप दोनों की (यत्) जो (समना) शान्ति आदि गुणों से युक्त (वाजरत्ना) विज्ञानरूप धन की प्राप्ति सिद्ध करने वाली (सुमतिः) श्रेष्ठमति है (सा इयम्) सो यह (अस्मे) हम लोगों को (पपृक्षे) सम्बन्धयुक्त करे । जो यह और (युवद्रिक्) आप दोनों को प्राप्त कराने वाला (कामः) मनोरथ (जरितारम्) सम्पूर्ण विद्याओं के स्तुति करनेवाले को (श्रितः) आश्रित है (ह) उसी का (युवम्) आप (उरुष्यतम्) सेवन करें ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदा इस संसार में यथार्थवक्ता पुरुषों की वृद्धि की इच्छा करें और सत्य की कामना करें जिन से सम्पूर्ण इच्छा पूर्ण होवे ॥७॥

इस सूक्त में अध्यापक, उपदेशक, राजा, अमात्य और सज्जन के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ । ३ । ४ जगती । ५ निचृज्जगती । ६ विराट् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले पैंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में सूर्य्यविषय को कहते हैं ॥

एष स्य भानुरुदियर्त्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य सानवि ।
पृक्षासो अस्मिन्मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तुरीयो मधुनो वि रप्शते ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (एष, स्यः) सो वह (परिज्मा) सब ओर से भूमि में चलता वा त्यागता (भानुः) सूर्य्य (उत्) ऊपर को (इयर्त्ति) प्राप्त होता है (अस्य)

इस के (सानवि) आकाशप्रदेश में (रथः) वाहन (युज्यते) जोड़ा जाता है (अस्मिन्) इस में (त्रयः) वायु, जल और बिजुली (पृक्षासः) सम्बन्ध को प्राप्त (मिथुनाः) दो दो मिले हुए प्रकाशित होते हैं इस (मधुनः) मधुर गुण से युक्त के बीच (तुरीयः) चौथा (दृतिः) मेघ (दिवः) प्रशंसायुक्त अन्तरिक्ष के बीच (अधि) ऊपर (वि, रप्शते) विशेष करके शोभित होता है उन सबको जानिये ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो प्रकाशमान सूर्य्य ब्रह्माण्ड के मध्य में विराजित है और इस के चारों ओर बहुत भूगोल सम्बन्धयुक्त हैं तथा पृथिवी और चन्द्रलोक एक साथ घूमते हैं और जिस के प्रभाव से वृष्टियाँ होती हैं इस सम्पूर्ण को जानो ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उद्वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु ।
अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥२॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जैसे (मधुमन्तः) मधुर आदि गुणों से युक्त (पृक्षासः) उत्तम प्रकार सींचे गये (उषसः) प्रभात वेला की (तमः) रात्रि को (अपोर्णुवन्तः) निवारण करते अर्थात् हटाते हुए (व्युष्टिषु) अनेक प्रकार की सेवाओं में (रथाः) वाहनों और (अश्वासः) घोड़ों के सदृश (आ, परीवृतम्) सब प्रकार से घिरे हुए को (स्वः) सूर्य्य के (न) सदृश (शुक्रम्) शुद्ध (आ, रजः) लोक लोकान्तर को (तन्वन्तः) विस्तृत करते हुए सूर्य्यकिरण (वाम्) आप दोनों को (उत् ईरते) कंपते, चञ्चल होते, ऊपर से प्राप्त होते हैं उन को आप लोग विशेष करके जानो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० । हे मनुष्यो ! ये सब लोक सूर्य्य के सब ओर घूमते हैं और जैसे सूर्य्य की किरणें भूगोल के आधे भाग में स्थित अन्धकार को निवारण करके प्रकाश उत्पन्न करती हैं वैसे ही विद्वान् जन विद्या के दान से अविद्या को निवारण कर के विद्या को उत्पन्न करें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् ।
आ वर्त्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥३॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सेना के ईश और योद्धा जन ! आप दोनों (मधुपेभिः) मधुर रसों को पीने वाले वीर पुरुषों के साथ (आसभिः) मुखों से (मध्वः) मधुर आदि गुण से युक्त पदार्थ के (प्रियम्) मनोहर रस को (पिबतम्) पिओ (उत) और

(मधुने) जाने गये मार्ग के लिये (रथम्) विमान आदि वाहन को (युञ्जाथाम्) युक्त करो तथा (मधुना) मधुरतागुणयुक्त पदार्थ से (वर्त्तनिम्) जिस में वर्त्तमान होते उस मार्ग को (आ, जिन्वथः) सब प्रकार प्राप्त होते हो और अन्य (पथः) मार्गों को प्राप्त होते हो और जैसे (मधुमन्तम्) मधुर आदि गुणों से युक्त (दृतिम्) जल के चर्मपात्र के सदृश वर्त्तमान मेघ को सूर्य्य और वायु (वहेथे) धारण करते हैं वैसे इस व्यवहार को धारण करो ॥३॥

भावार्थः—हे सेना के ईश और योद्धाजनो ! तुम सेनास्थ वीरों के साथ ऐसे भोजन करो और वाहनों को रचो जिन से बल की वृद्धि और लक्ष्मी की प्राप्ति हो जैसे वायु और बिजुली वर्षा करके सबको सुखी करते हैं वैसे प्रजा को सुखी करो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः ।
उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ॥४॥

पदार्थः—हे राजा और सेना के ईश जन ! (वाम्) आप दोनों के (ये) जो (मधुमन्तः) मधुर गमन से युक्त (अस्रिधः) नहीं मारे गये (हिरण्यपर्णाः) तेजमय वा सुवर्ण आदि से बने हुए पंख जिनके (उषर्बुधः) जो प्रातःकाल में बोध से युक्त (उहुवः) भारों के ले चलने (उदप्रुतः) जल के चलाने (मन्दिनः) आनन्द के देने और (मन्दिनिस्पृशः) आनन्द के स्पर्श कराने वाले (मध्वः) मधुर पदार्थ के सम्बन्ध में (मक्षः) मक्षियों के राजा के (न) सदृश (हंसासः) तथा हंस के सदृश शीघ्र चलने वाले घोड़े हैं उनसे (सवनानि) ऐश्वर्य्यों को आप दोनों (गच्छथः) प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थः हे राजपुरुषो ! आप लोग वाहनों की कलों में अग्नि-जलादि के संप्रयोग से शीघ्र जा आकर ऐश्वर्य्य की इच्छा करें तो क्या रत्न को न प्राप्त होवें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्नय उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना ।
यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥५॥

पदार्थः—हे (अश्विना) राजा और मन्त्री जनो ! जैसे (प्रति, वस्तोः) प्रतिदिन की (स्वध्वरासः) उत्तम प्रकार क्रियायोगों की सिद्धियां जिनसे वे (मधुमन्तः) मधुर आदि गुणों से युक्त (अग्नयः) अग्नि (उस्रा) किरणों की (जरन्ते) स्तुति करते

अर्थात् उन्हें प्रशंसित करते हैं और (यत्) जो (निक्तहस्तः) शुद्ध हाथों युक्त (तरणिः) दुःखों से पार करने वाला (विचक्षणः) अत्यन्त बुद्धिमान् (अद्रिभिः) मेघों से (मधुमन्तम्) मधुर आदि गुण युक्त (सोमम्) ओषधियों के समूह को (सुषाव) उत्पन्न करता है उन और उसको आप दोनों सिद्ध करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० । हे मनुष्यो ! आप लोग शिल्पी विद्वानों के संग से अग्नि आदि और सोमलता आदि पदार्थों को जान के और अच्छे प्रकार प्रयोग करके अभीष्ट कार्य्यों को सिद्ध करो ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आकेनिपासो अहभिर्दविध्वतः स्व१र्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ।
सूरश्चिदश्वान्युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥६॥

पदार्थः—हे क्रियाओं में कुशल वाहनों के बनाने और चलाने वाले ! आप दोनों जैसे (अहभिः) दिनों से (दविध्वतः) पदार्थों का नाश करती हुई (आकेनिपास) समीप में अत्यन्त पालन करने वाली किरणें (शुक्रम्) जल और (रजः) लोक को (आ, तन्वन्तः) विस्तारयुक्त करते हुए (स्वः) सूर्य्य के (न) सदृश प्रकाशित होते हैं वा जैसे कोई (सूरः) सूर्य्य (चित्) भी (अश्वान्) शीघ्र चलने वाले किरणों को (युयुजानः) युक्त करता (ईयते) प्राप्त होता है वैसे आप दोनों (स्वधया) अन्न आदि से (विश्वान्) सम्पूर्ण पदार्थों को जान के (पथः) मार्गों को (अनु, चेतथः) अनुकूल जनाते हो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु० । हे मनुष्यो ! जो आप लोग किरणों और सूर्य्य के सदृश वाहनों में अग्नि से जल को विस्तारो तो जल स्थल और आकाशमार्गों को सुख से जाओ ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र वामवोचमश्विना धियन्धा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति ।
येन सद्यः परि रजांसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ॥७॥

पदार्थः—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जनो ! (यः) जो (स्वश्वः) उत्तमोत्तम घोड़ों से युक्त (अजरः) वृद्धावस्थारहित (रथः) सुन्दर वाहन (अस्ति) है उसकी विद्या को (धियन्धाः) बुद्धि अर्थात् शिल्पविद्या रूप कर्म्म को धारण करने वाला मैं (वाम्) आप दोनों को (प्र, अवोचम्) उत्तम उपदेश करूं (येन) जिससे आप दोनों (हविष्मन्तम्) बहुत सामग्री से युक्त (तरणिम्) तारने वाले (भोजम्) खाने

योग्य पदार्थ और (रजांसि) लोक वा ऐश्वर्य्यों को (सद्यः) शीघ्र (अच्छ) उत्तम प्रकार (परि याथः) सब ओर से प्राप्त होते हैं ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! विद्वान् हम लोग आप लोगों को जिन शिल्पविद्याओं का ग्रहण करावें उन विद्याओं से आप लोग विमान आदि वाहनों को रच शीघ्र गमन और आगमन को करके बहुत भोगों को प्राप्त होओ ॥७॥

इस सूक्त में सूर्य्य और अश्वि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । इन्द्रवायू देवते । १ विराट् गायत्री । २ । ३ । ५—७ गायत्री । ४ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले छियालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मंत्र में बिजुली की विद्या के विषय को कहते हैं ॥

अग्रं पिबा मधूनां सुतं वायो दिविष्टिषु । त्वं हि पूर्वपा असि ॥१॥

पदार्थः—हे (वायो) वायु के सदृश बलयुक्त ! (हि) जिससे (त्वम्) आप (दिविष्टिषु) श्रेष्ठ क्रियाओं में (पूर्वपाः) पूर्व वर्त्तमान जनों का पालन करने वाले (असि) हो इससे (मधूनाम्) मधुर रसों के बीच में (अग्रम्) उत्तम (सुतम्) उत्पन्न किये गये रस का (पिबा) पान कीजिये ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! जिस से आप सनातन विद्याओं की रक्षा करके सब के लिये देते हो इस से आप इन क्रियाओं में मुखिया होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शतेना नो अभिष्टिभिर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।
वायो सुतस्य तृम्पतम् ॥२॥

पदार्थः—हे (वायो) वायुवद्वर्त्तमान विज्ञानयुक्त अध्यापक और उपदेशक (अभिष्टिभिः) अभीष्ट क्रियाओं से जैसे (इन्द्रसारथिः) बिजुलीरूप सारथि जिसका वह (नियुत्वान्) बलवान् समर्थ वायु (शतेना) असंख्य से (नः) हम लोगों को तृप्त करता है वैसे (सुतस्य) उत्पन्न किये गये के सम्बन्ध में आप दोनों (तृम्पतम्) तृप्त होओ ॥२॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे वायु के साथ विजुली, विजुली के साथ वायु अनेक क्रियाओं को उत्पन्न करते हैं वैसे पृथिवी और जलादिकों से आप अनेक कार्य्यों को सिद्ध करो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ वां सहस्रं हर॑य इन्द्र॑वायू अभि प्रयः॑ । वह॑न्तु सोम॑पीतये ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्रवायू) सूर्य्य और पवन जो (हरयः) हरने वाले मनुष्य (वाम्) आप दोनों को (सोमपीतये) सोमलता के पान करने के लिये (सहस्रम्) असंख्य (प्रयः) मनोहर भाव जैसे हों वैसे (आ, वहन्तु) प्राप्त करें उन को आप दोनों (अभि) सब ओर से बोध दीजिये ॥३॥

भावार्थः— हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन आप लोगों को पढ़ाय और उत्तम प्रकार शिक्षा देकर विद्वान् करते हैं उन की निरन्तर सेवा करो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

रथं हिर॑ण्यवन्धुरमिन्द्र॑वायू स्वध्वरम् ।
आ हि स्थाथों दिविस्पृशम् ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्रवायू) वायु और बिजुली के सदृश शीघ्रकारी शिल्पविद्या के अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप दोनों (स्वध्वरम्) नहीं नष्ट हुई उत्तम क्रिया जिस से और (हिरण्यवन्धुरम्) सुवर्ण हैं बन्धन जिस में उस (दिविस्पृशम्) आकाश में चलने वाले (रथम्) सुन्दर वाहन को (हि) ही (आ, स्थाथः) आ स्थित होओ ॥४॥

भावार्थः— हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप लोग प्रीति से सुवर्ण आदि से जड़े हुए वाहनों की विद्या का मनुष्यों के लिये निरन्तर उपदेश देओ कि जिन वाहनों से ये लोग अन्तरिक्ष आदिकों में जा सकें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

रथे॑न पृथुपाज॑सा दाश्वांस॒मुप॑ गच्छतम् । इन्द्र॑वायू इहाग॑तम् ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्रवायू) वायु और बिजुलीरूप अग्नि के सदृश प्रतापी राजा और सेना के ईश जनो ! आप दोनों (पृथुपाजसा) विस्तीर्ण बल युक्त (रथेन) रमणीय वाहन से (इह) इस संग्राम में (आ, गतम्) आओ और (दाश्वांसम्) दाता जन के (उप, गच्छतम्) समीप प्राप्त होओ ॥५॥

भावार्थः--जैसे वायु और बिजुली बड़े प्रताप से युक्त वर्त्तमान हैं वैसे ही राजा और मंत्रीजन होवें ॥५॥

अब सूर्य्ययुक्त वायु विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र॑वायू अ॒यं सु॒तस्तं दे॒वेभिः॑ स॒जोष॑सा । पिब॑तं दा॒शुषो॑ गृहे ॥६॥

पदार्थः--हे (सजोषसा) तुल्य प्रीति की कामना करने वाले (इन्द्रवायू) सूर्य्य और वायु के सदृश अध्यापक और उपदेशको ! जो (अयम्) यह (दाशुषः) दाता जन के (गृहे) गृह में (सुतः) उत्पन्न किया गया (तम्) उस को (देवेभिः) विद्वानों वा श्रेष्ठ पदार्थों के साथ जैसे (पिबतम्) पान करो वैसे ही सूर्य्य और वायु सब से रस पीते हैं ॥६॥

भावार्थः--इस मन्त्र में वाचकलु० । जैसे सूर्य्य और पवन सब के उपकार को निरन्तर करते हैं वैसे ही विद्वानों को करना चाहिये ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इ॒ह प्र॒याण॑मस्तु वा॒मिन्द्र॑वायू वि॒मोच॑नम् । इ॒ह वां॒ सोम॑पीतये ॥७॥

पदार्थः--हे (इन्द्रवायू) वायु और बिजुली के सदृश वर्त्तमान राजा और मन्त्री जनो ! जैसे (इह) इस में (वाम्) आप दोनों का (प्रयाणम्) गमन (अस्तु) हो और जैसे (इह) इस में (वाम्) आप दोनों का (सोमपीतये) सोमपान के लिये (विमोचनम्) त्याग हो वैसे ही वायु और बिजुली वर्त्तमान हैं ऐसा जानो ॥७॥

भावार्थः--हे मनुष्यो ! जो नित्य इधर उधर कार्य्यसिद्धि के लिये जावे और आवे उसी को राजा मानो ॥७॥

इस सूक्त में बिजुली और वायु के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह छियालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । १ वायुः । २--४ इन्द्रवायू देवते । १ । ३ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब चार ऋचा वाले सैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र से वायुसादृश्य से विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

वायो॑ शु॒क्रो अ॑यामि ते॒ मध्वो॒ अग्रं॒ दिवि॑ष्टिषु ।

आ या॑हि॒ सोम॑पीतये स्पा॒र्हो दे॑व नि॒युत्व॑ता ॥१॥

पदार्थः—हे (देव) विद्वन् ! (वायो) वायु के सदृश वर्त्तमान (स्पार्हः) ईप्सा करने योग्य (शुक्रः) शुद्ध स्वभाव वाला मैं (दिविष्टिषु) प्रकाश के बीच जो स्थित क्रिया उन में (नियुत्वता) समर्थ राजा के साथ (सोमपीतये) उत्तम रस के पान के लिये (ते) आप के (मध्वः) मधुर रस के (अग्रम्) अग्र भाग को जैसे (अयामि) प्राप्त होता हूं वैसे आप (आ, याहि) प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थः—जो वायु के सदृश सर्वत्र विहार करके विद्या का ग्रहण करते हैं वे सर्वत्र ईप्सा करने योग्य होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र॑श्च वायवेषां॒ सोमा॑नां॒ पी॒तिम॑र्हथः ।
यु॒वां हि यन्तीन्द॑वो नि॒म्नमा॒पो न स॒ध्र्य॑क् ॥२॥

पदार्थः—हे (वायो) बल से युक्त आप (च) और (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य-वान् (युवाम्) आप दोनों (आपः) जैसे जल (निम्नम्) नीचे के स्थल के (न) वैसे जिस प्रकार (इन्दवः) मिलने वाले और सत्कार करने योग्य जन और (सध्र्यक्) एक साथ सत्कार करने वाला ये सब (यन्ति) प्राप्त होते हैं (हि) उसी प्रकार आप दोनों (एषाम्) इन (सोमानाम्) ओषधियों से उत्पन्न हुए रसों के (पीतिम्) पान के (अर्हथः) योग्य हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु० । जैसे यज्ञ जलों को प्राप्त होते हैं वैसे ही विद्वान् विद्याव्यवहार के योग्य होते हैं ॥२॥

अब राजा और अमात्य के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वाय॒विन्द्र॑श्च शु॒ष्मिणा॑ स॒रथं॑ शवसस्पती ।
नि॒यु॒त्व॑न्ता न ऊ॒तय॒ आ या॑तं॒ सोम॑पीतये ॥३॥

पदार्थः—हे (शुष्मिणा) बलयुक्त और (शवसः) बल के (पती) पालन करने वाले (नियुत्वन्ता) स्वामी और समर्थ (वायो) बड़े बल से युक्त (इन्द्रः, च) और राजा (नः) हम लोगों के (ऊतये) रक्षण आदि के और (सोमपीतये) ऐश्वर्य्य के पालन के लिये (सरथम्) समान वाहन को (आ, यातम्) प्राप्त होओ ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो राजा के मन्त्री जन बल के बढ़ाने वाले सामर्थ्य युक्त और न्यायकारी होवें वे आप लोगों के पालन करने वाले हों ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा ।
अस्मे ता यज्ञवाहसेन्द्रवायू नि यच्छतम् ॥४॥

पदार्थः—हे (यज्ञवाहसा) यज्ञ को प्राप्त कराने वाले (नरा) नायक (इन्द्रवायू) धनी और विद्वान् तथा राजा और मन्त्री जनो ! (वाम्) आप दोनों की (याः) जो (नियुतः) निश्चित (पुरुस्पृहः) बहुतों से ईप्सा करने योग्य क्रिया (दाशुषे) दाता जन के लिये (सन्ति) हैं (ताः) उन क्रियाओं को (अस्मे) हम लोगों के लिये (नि, यच्छतम्) अतिशय कर के दीजिये ॥४॥

भावार्थः—हे राजा और मन्त्री जनो ! आप लोगों को चाहिये कि हम प्रजा जनों की इच्छा पूर्ण करें जिस से हम लोग आप लोगों का पूर्ण काम करें ॥४॥

इस सूक्त में विद्वान् राजा और अमात्य के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह सैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । वायुर्देवता । १ निचृदनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ३–५ भुरिगनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले अड़तालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा प्रजा के साथ कैसे वर्ते इस विषय को कहते हैं ॥

विहि होत्रा अवीता विपो न रायो अर्य्यः ।
वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥१॥

पदार्थः—हे (वायो) विद्वान् (विपः) बुद्धिमान् आप (अर्यः) वैश्यजन (रायः) धनों के (न) जैसे वैसे (अवीताः) नाश से रहित क्रियाओं को (होत्राः) ग्रहण करते हुए (विहि) व्याप्त हूजिये और (सुतस्य) उत्पन्न किये रस की (पीतये) रक्षा के लिये (चन्द्रेण) सुवर्णमय (रथेन) वाहन से (आ, याहि) प्राप्त हूजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे बुद्धिमान् वैश्यजन प्रीति से धन की रक्षा करता है वैसे ही आप और आपके भृत्यजन अच्छी प्रीति से प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करो ॥१॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

निर्युवाणो अशस्तीर्नियुत्वाँ इन्द्रसारथिः ।

वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥२॥

पदार्थः—हे(वायो) वायु के सदृश गुणों से विशिष्ट राजन् ! आप (नियुत्वान्) नियमयुक्त गमन वाले वायु के और (इन्द्रसारथिः) बिजुली सूर्य्य वा अग्नि को नियम से चलाने वाले के सदृश (चन्द्रेण) आनन्द देने वाले सुवर्ण आदि से जड़े हुए (रथेन) वाहन से (सुतस्य) उत्पन्न हुए रस के (पीतये) पान करने के लिये (आ, याहि) आइये और जैसे (निर्युवाणः) निकल गये युवा जन जिससे वा निरन्तर युवाजन (अशस्तीः) अहिंसाओं का आचरण करते अर्थात् हिंसाओं को नहीं करते हैं वैसे कीजिये ।।२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० । जैसे वायु से अग्नि बढ़ती और शीघ्र चलती है वैसे ही न्याय से पालन की गई प्रजा से राजा वृद्धि को प्राप्त होता है और जो हिंसा नहीं करते हैं वे शत्रुओं से रहित हुए सब के प्रिय होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अनु कृष्णे वसुधिती येमाते विश्वपेशसा ।

वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥३॥

पदार्थः—हे (वायो) राजन् ! जैसे (विश्वपेशसा) सम्पूर्ण उत्तमरूप से (कृष्णे) खींची गई(वसुधिती) सम्पूर्ण लोकों की स्थिति जिन में वे अन्तरिक्ष और पृथिवी (अनु, येमाते) नियम से चलते हैं वैसे ही (सुतस्य) उत्पन्न किये गये पदार्थ की (पीतये) रक्षा के लिये (चन्द्रेण) रत्नों से जड़े हुए (रथेन) वाहन के द्वारा आप (आ, याहि) प्राप्त हूजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० । हे राजन् ! जैसे भूमि और सूर्य्य बहुत फल देने वाले वर्तमान और नियम से चलते हैं वैसे बहुत फलों के देने वाले होकर विद्या और विनय के नियम से निरन्तर जाइये ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वहन्तु त्वा मनोयुजो युक्तासो नवतिर्नव ।

वायवा चन्द्रेण रथेन याहि सुतस्य पीतये ॥४॥

पदार्थः—हे (वायो) बलवान् राजन् ! (मनोयुजः) मन से ब्रह्म का योग करने वाले (युक्तासः) जिन्होंने योगाभ्यास किया वे (नव) नौ बार गुनी गईं (नवतिः) नव्वे संख्या से युक्त नाड़ियों के सदृश (त्वा) आप राजा को (वहन्तु) प्राप्त हों वा प्राप्त करावें आप इन के (सुतस्य) प्राप्त राज्य के (पीतये) रक्षण आदि के लिये (चन्द्रेण) सुवर्ण आदि से बने हुए (रथेन) वाहन से (आ, याहि) आइये ।।४।।

भावार्थः—हे राजन् ! जो श्रेष्ठ यथार्थवक्ता जन आप के सहायक होवें तो आप जिस जिस पदार्थ की इच्छा करें वह वह सब सिद्ध होवे ।।४।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

वायो शतं हरीणां युवस्व पोष्याणाम् ।
उत वा ते सहस्रिणो रथ आ यातु पाजसा ।।५।।

पदार्थः—हे (वायो) राजन् आप (पोष्याणाम्) पोषण करने योग्य (हरीणाम्) मनुष्यों के (शतम्) असंख्य को (युवस्व) कर्म्मों के बीच प्रेरणा देओ (उत, वा) अथवा (सहस्रिणः) असंख्य पुरुष और धन से युक्त (ते) आप के (पाजसा) बल से (रथः) वाहन (आ, यातु) सब ओर से प्राप्त हो ।।५।।

भावार्थः—हे राजन् ! जो राज्य करने की इच्छा करो तो उत्तम सहायों का ग्रहण करो ।।५।।

इस सूक्त में राजगुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।।

यह अड़तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

---

वामदेव ऋषिः । इन्द्राबृहस्पती देवते । १ निचृद्गायत्री । २—६ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ।।

अब छः ऋचा वाले उनचासवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में राजा और प्रजा की कैसे वृद्धि हो इस विषय को कहते हैं ।।

इदं वामास्ये हविः प्रियमिन्द्राबृहस्पती । उक्थं मदश्च शस्यते ।।१।।

पदार्थः—हे (इन्द्राबृहस्पती) बिजुली और सूर्य्य के सदृश मन्त्री और राजा (वाम्) आप दोनों के (आस्ये) मुख में (इदम्) यह (प्रियम्) सुन्दर (उक्थम्) प्रशंसा करने योग्य (मदः) आनन्द (च) और (हविः) खाने योग्य वस्तु (शस्यते) स्तुति किया जाता है ।।१।।

भावार्थः—जो राजा आदि मनुष्य उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न को खाते हैं तो प्रकाशयुक्त अधिक अवस्था वाले और वलवान् होते हैं ॥ ॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अयं वां परि षिच्यते सोम इन्द्राबृहस्पती । चारुर्मदाय पीतये ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्राबृहस्पती) राजा और उपदेशक विद्वान् जनो ! (वाम्) आप दोनों के मुख में (मदाय) आनन्द के लिये (पीतये) पान करने को (चारुः) अति उत्तम (सोमः) बड़ी ओषधि का रस (अयम्) यह (परि) सब प्रकार से (सिच्यते) सींचा जाता है इससे आप समर्थ होवें ॥२॥

भावार्थः—जैसे उत्तमान्न सेवन किया है जाता वैसे ही उत्तम रस भी सेवन किया जावे ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ न इन्द्राबृहस्पती गृहमिन्द्रश्च गच्छतम् ।
सोमपा सोमपीतये ॥३॥

पदार्थः—हे (सोमपा) सोमलता के रस को पीने वाले (इन्द्राबृहस्पती) राजा और अध्यापक आप दोनों (नः) हम लोगों के (गृहम्) घर को (सोमपीतये) सोमलता के उत्तमरस पीने के लिये (आ, गच्छतम्) आओ (इन्द्रः) और ऐश्वर्य्य वाला जन (च) भी आवे ॥३॥

भावार्थः—हे राजा मन्त्री और धनी जनो ! जैसे हम लोग आप लोगों को निमन्त्रण देकर अन्न आदि से सत्कार करें वैसे ही आप हम लोगों का सत्कार करो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्मे इन्द्राबृहस्पती रयिं धत्तं शतग्विनम् ।
अश्वावन्तं सहस्रिणम् ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्राबृहस्पती) विजुली और सूर्य्य के सदृश राजा और प्रधान जनो ! आप दोनों (अस्मे) हम लोगों के लिये (शतग्विनम्) असंख्यात गौओं और (अश्वावन्तम्) उत्तम घोड़ों आदि से युक्त (सहस्रिणम्) असंख्य पदार्थ जिस में विद्यमान उस (रयिम्) धन को (धत्तम्) धारण करो ॥४॥

भावार्थः—तभी राजा और प्रधानादिकों की प्रशंसा होवे कि जब सब प्रजा को धन और विद्या से युक्त करें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**इन्द्राबृहस्पती वयं सुते गीर्भिर्हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥५॥**

पदार्थः—हे (इन्द्राबृहस्पती) अध्यापक और उपदेशकजनो ! जैसे (वयम्) हम लोग (गीर्भिः) वाणियों से (अस्य) इस (सोमस्य) ओषधियों से उत्पन्न हुए रस के (पीतये) पान के लिये आप दोनों का (हवामहे) स्वीकार करते हैं वैसे (सुते) रस के उत्पन्न होने पर हम लोगों का स्वीकार करो ॥५॥

भावार्थः—राजा और प्रजाजनों को चाहिये कि परस्पर के सत्कार से बड़े ऐश्वर्य्य का भोग करें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**सोममिन्द्राबृहस्पती पिबतं दाशुषो गृहे । मादयेथां तदोकसा ॥६॥**

पदार्थः—हे (तदोकसा) उस स्थान वाले (इन्द्राबृहस्पती) राजा और मन्त्री जनो ! आप दोनों (दाशुषः) दाताजन के (गृहे) स्थान में (सोमम्) अति उत्तम रस का (पिबतम्) पान करो और हम लोगों को निरन्तर (मादयेथाम्) आनन्द देओ ॥६॥

भावार्थः—राजा आदि जन जैसे स्वयं विद्यायुक्त धार्मिक न्यायकारी और आनन्दित होवें वैसे प्रजाजनों को भी करें ॥६॥

इस सूक्त में राजा और प्रजादि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

यह उनचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । १—९ बृहस्पतिः । १० । ११ इन्द्राबृहस्पती देवते । १—३ । ६ । ७ । ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ । ४ । ११ विराट् त्रिष्टुप् । ८ । १० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले पचासवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

**यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान् बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण ।**
**तं प्रत्नास ऋषयो दीध्यानाः पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्वम् ॥१॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (त्रिषधस्थः) तीन तुल्य स्थानों वा कर्म्म उपासना ज्ञान में स्थित होने वाला (बृहस्पतिः) महान् वा बड़े पदार्थों का पालने वाला सूर्य्य (सहसा) बल से (ज्मः) पृथिवी के (अन्तान्) समीपों को (वि, तस्तम्भ) धारण

करे वैसे कर्म्मोपासना और ज्ञान में स्थित होने और बड़े पदार्थों का पालने वाला (यः) जो विद्वान् (रवेण) उपदेश से जनों को धारण करे (तम्) उस (मन्द्रजिह्वम्) आनन्द देने और कल्याण करने वाली जिह्वा से युक्त विद्वान् को इन के (पुरः) बड़े नगरों को (दीध्यानाः) उत्तम गुणों से प्रकाशित करते हुए (प्रत्नासः) प्राचीन और प्रथम जिन्होंने विद्या पढ़ी ऐसे (ऋषयः) मन्त्रों के अर्थ जानने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् जन (दधिरे) धारण करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य अपनी आकर्षणशक्ति से भूगोलों को धारण करता और भूगोलों में वर्त्तमान पदार्थों को धारण करता है वैसे ही विद्वान् लोग सब मनुष्यों को धारण कर के उन के अन्तःकरणों को प्रकाशित करें ॥१॥

अब कौन प्रशंसा के योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि ये नस्ततस्रे ।
पृषन्तं सृप्रमदब्धमूर्वं बृहस्पते रक्षतादस्य योनिम् ॥२॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़ी वाणी के पालन करने वाले ! (ये) जो (मदन्तः) आनन्द देते हुए (धुनेतयः) धर्मात्मा जनों के कंपाने वालों को कम्पाने वाले (सुप्रकेतम्) उत्तम तीक्ष्ण बुद्धि वाले (पृषन्तम्) विद्यादि उत्तम गुणों को सींचते हुए (सृप्रम्) उत्तम गुणों को प्राप्त (अदब्धम्) नहीं हिंसित (ऊर्वम्) हिंसा करने वाले जन का (ततस्रे) नाश करते हैं और (नः) हम लोगों को (अभि) चारों ओर से नाश करते हैं उन का निवारण करके आप उन का निवारण करो । हे (बृहस्पते) बड़ी वस्तुओं के पालन करने वाले जिन के रोकने से (अस्य) इस विद्याव्यवहार के (योनिम्) कारण की आप (रक्षतात्) रक्षा करें ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो लोग डाकू और चोरादिकों का निवारण कर धार्मिक विद्वानों को सुख दे कर अङ्ग और उपाङ्गों के सहित विद्या के व्यवहार को बढ़ावें उन का आप लोग सत्कार करें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

बृहस्पते या परमा परावदत आ त ऋतस्पृशो नि षेदुः ।
तुभ्यं खाता अवता अद्रिदुग्धा मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥३॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़े राज्य के पालन करने वाले ! (ते) आप की (या) जो (परमा) उत्तम नीति है उस से (ऋतस्पृशः) सत्य का स्पर्श करने वाले आप के (अद्रिदुग्धाः) मेघ से पूर्ण (खाताः) खोदे गये (मध्वः) मधुर आदि गुण वाले जल

से युक्त (अवताः) कूप (तुभ्यम्) आप के लिये (अभितः) सब प्रकार से (श्चोतन्ति) सींचते हैं और (विरप्शम्) महान् संसार को (आ, निषेदुः) सब ओर से स्थित करें (अतः) इस से उन का हम लोग (परावत्) गुणयुक्त सत्कार करें ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग वृद्ध विद्वान् राजा लोगों के समीप से अनादि काल से सिद्ध नीति का ग्रहण करके मेघों के सदृश प्रजाओं को सुख से सींचो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**बृहस्पतिः प्रथमं जायमानो महो ज्योतिषः परमे व्योमन् ।**
**सप्तास्यस्तुविजातो रवेण वि सप्तरश्मिरधमत्तमांसि ॥४॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (परमे) उत्तम (व्योमन्) व्यापक में (महः) बड़े (ज्योतिषः) प्रकाश से (प्रथमम्) पहिले (जायमानः) उत्पन्न हुआ (सप्तास्यः) सात किरणरूप मुखों से युक्त (तुविजातः) बहुतों में प्रसिद्ध (सप्तरश्मिः) सात प्रकार के किरणों से युक्त (बृहस्पतिः) बड़ा सूर्य्य (रवेण) शब्द से अर्थात् गतिशब्द से (तमांसि) रात्रियों को (वि, अधमत्) दूर करता है वैसे बड़ा विद्वान् उपदेश से अविद्या का निवारण करके विद्या को प्रकट करें ॥४॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जैसे सूर्य्य में सात प्रकार के रूपवाले तत्त्व मिले हुए वर्त्तमान हैं जिन किरणों के द्वारा सब से रसों को ग्रहण करता है वैसे पांच ज्ञानेन्द्रिय मन और आत्मा से सब विद्याओं को ग्रहण करके पढ़ाने और उपदेश करने से सब के अज्ञान को दूर करके विद्या के प्रकाश को उत्पन्न करो ॥४॥

अब विद्वान् के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

**स सुष्टुभा स ऋक्वता गणेन वलं रुरोज फलिगं रवेण ।**
**बृहस्पतिरुस्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वावशतीरुदाजत् ॥५॥**

पदार्थः—हे विद्वान् जैसे (सः) वह (हव्यसूदः) हवन करने योग्य पदार्थों को क्षरण कराने अर्थात् अपने प्रताप से अणुरूप कराने वाला (कनिक्रदत्) अत्यन्त शब्द करता हुआ (बृहस्पतिः) बड़ा और सब का पालन करने वाला सूर्य्य (सुष्टुभा) सुन्दर प्रशंसित (गणेन) किरणसमूह से (फलिगम्) मेघ को (रुरोज) भङ्ग करे और (सः) वह विद्वान् (ऋक्वता) बहुत प्रशंसायुक्त उपदेश देने योग्य विद्यार्थियों के समूह से (रवेण) शब्द से (वलम्) कुटिल चाल को भंग करे और (उस्रियाः) पृथिवी के बीच

वर्त्तमान (वावशतीः) अत्यन्त कामना करती हुईं प्रजाओं को (उत्, आजत्) प्राप्त होता है वैसे आप वर्त्ताव करो ॥५॥

भावार्थः—जैसे सूर्य्य वृष्टि के द्वारा सव प्रजाओं की रक्षा करता और विजुली के शब्द से सव को जनाता है वैसे ही सव विद्वान् जन विद्या के द्वारा सव के द्वारा सव के आत्माओं को प्रकाशित करें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवा पित्रे विश्वदे॑वाय वृष्णे॑ य॒ज्ञैर्वि॑धेम॒ नम॑सा ह॒विर्भिः॑ ।
बृह॑स्पते सुप्र॒जा वी॒रव॑न्तो व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम् ॥६॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़ों के पालन करने वाले ! जैसे हम लोग (यज्ञैः) मिले हुए कर्म्मों से (विश्वदेवाय) संसार के प्रकाशक (वृष्णे) वृष्टि करने और (पित्रे) पालन करने वाले के लिये (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (हविर्भिः) ग्रहण करने योग्य उपदेश वा द्रव्यों से (विधेम) करें और अर्थात् क्रिया विधान करें तथा (सुप्रजाः) विद्या और विनय वाली श्रेष्ठ प्रजाओं से युक्त (वीरवन्तः) वीर पुत्रों वाले (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें (एवा) वैसे ही आप हूजिये ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य मेघ के अलङ्कार से सव का पालन करने वाला है वैसे ही हम लोग वर्त्ताव करके अति उत्तम पुरुष और राज्य के स्वामी होवें ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स इद्राजा॒ प्रति॑जन्यानि॒ विश्वा॒ शुष्मे॑ण तस्थाव॒भि वी॒र्ये॑ण ।
बृह॒स्पतिं॒ यः सुभृ॑तं बि॒भर्ति॑ वल्गू॒यति॒ वन्द॑ते पूर्व॒भाज॑म् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (सुभृतम्) उत्तम प्रकार धारण किये गये (बृहस्पतिम्) बड़ों में बड़े (पूर्वभाजम्) प्राचीनों से सेवा करने योग्य का (बिभर्त्ति) धारण करता (वल्गूयति) सत्कार करता और (वन्दते) कामना करता है जो (शुष्मेण) बल (वीर्य्येण) और पराक्रम से (विश्वा) सम्पूर्ण (प्रतिजन्यानि) प्रत्यक्ष से उत्पन्न होने योग्यों के (अभि) सन्मुख (तस्थौ) स्थित होता है (सः, इत्) वही जगदीश्वर (राजा) सबका प्रकाश करने वाला सव लोगों से सेवा करने योग्य है ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर सम्पूर्ण जगत् को अभिव्याप्त होकर और धार के सूर्य्य को भी धारता है और सम्पूर्ण वेदों का उपदेश

देकर प्रशंसित वर्त्तमान है और जिसकी सेवा योगिराज करते हैं उसी की नित्य उपासना करो ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स इत्क्षेति सुधित ओकसि स्वे तस्मा इळा पिन्वते विश्वदानीम् ।
तस्मै विशः स्वयमेवा नमन्ते यस्मिन्ब्रह्मा राजनि पूर्व एति ॥८॥

पदार्थः – हे मनुष्यो ! जो जन परमेश्वर का भजन करता है (सः, इत्) वही (सुधितः) उत्तम प्रकार तृप्त हुआ (स्वे) अपने (ओकसि) निवासस्थान में (क्षेति) निवास करता है तथा (विश्वदानीम्) सब काल में (तस्मै) उसके लिये (इळा) प्रशंसित वाणी वा भूमि (पिन्वते) सेवन करती है (यस्मिन्) (राजनि) जिस प्रकाशमान परमात्मा में (ब्रह्मा) चार वेद का जानने वाला (पूर्वः) अनादि से हुआ प्रथम (एति) प्राप्त होता है (तस्मै) उस राजा के लिये (विशः) प्रजा (स्वयम्) (एवा) आप ही (नमन्ते) नम्र होती हैं ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अन्य सब का त्याग करके एक परमेश्वर ही की आप लोग सेवा करें तो आप लोगों में लक्ष्मी, राज्य, प्रतिष्ठा और यश सदा ही निवास करैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अप्रतीतो जयति सं धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या ।
अवस्यवे यो वरिवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः ॥९॥

पदार्थः– हे मनुष्यो ! (यः) जो (अप्रतीतः) शत्रुओं से नहीं पराजित किया गया (राजा) राजा (अवस्यवे) रक्षा की इच्छा करते हुए (ब्रह्मणे) परमात्मा के लिये (वरिवः) सेवन को (कृणोति) करता है (तम्) उसकी (देवाः) विद्वान् जन (अवन्ति) रक्षा करते हैं और (या) जो (सजन्या) तुल्य उत्पन्न हुए पदार्थों के साथ वर्त्तमान (उत) भी (प्रतिजन्यानि) मनुष्य मनुष्य के प्रति वर्त्तमान (धनानि) धन हैं उन को सहज स्वभाव से (सम्, जयति) अच्छे प्रकार जीतता है ॥९॥

भावार्थः- हे मनुष्यो ! जो राजा परमात्मा ही की उपासना करता और यथार्थवक्ता विद्वानों की सेवा करता है वही नहीं नाश होने वाले राज्य और धन को प्राप्त होकर सदा ही विजयी होता है ॥९॥

अब राजा कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रश्च सोमं पिबतं बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञे मन्दसाना वृषण्वसू ।
आ वां विशन्त्विन्दवः स्वाभुवोऽस्मे रयिं सर्ववीरं नि यच्छतम् ॥१०॥

पदार्थः— हे (बृहस्पते) पूर्ण विद्वन्! (इन्द्रः च) और अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाला (मन्दसाना) प्रशंसित और आनन्दयुक्त (वृषण्वसू) बलिष्ठ वीर पुरुषों को निवास कराने वाले आप दोनों (अस्मिन्) इस (यज्ञे) राज्यपालननामक व्यवहार में (सोमम्) उत्तम ओषधियों के रस का (पिबतम्) पान करो और जैसे (स्वाभुवः) आप होने वाले (इन्दवः) ऐश्वर्य्य (वाम्) आप दोनों को (आ, विशन्तु) प्राप्त हों वैसे (अस्मे) हम लोगों के लिये (सर्ववीरम्) सब वीर हों जिस से उस (रयिम्) धन को आप दोनों (नि, यच्छतम्) उत्तम प्रकार दीजिये ॥१०॥

भावार्थः— हे राजा और राजोपदेशको! तुम कभी मदकारक वस्तु का सेवन न करो और राज्यपालन तथा सत्योपदेश से ही प्रजाओं का पालन कर सदैव आनन्दित होओ और हम लोगों के लिये सब ऐश्वर्य्य अच्छे प्रकार देओ ॥१०॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

बृह॑स्पत इन्द्र॒ वर्ध॑तं नः॒ सचा॒ सा वां॑ सुम॒तिर्भू॑त्व॒स्मे।
अ॒वि॒ष्टं धियो॑ जिगृ॒तं पुर॑न्धीर्जज॒स्तम॒र्यो व॒नुषा॒मरा॑तीः ॥११॥

पदार्थः— हे (बृहस्पते) सम्पूर्ण विद्याओं को प्राप्त (इन्द्र) और अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले राजन्! जो (वाम्) आप दोनों की (सुमतिः) श्रेष्ठ बुद्धि (भूतु) हो (सा) वह (वनुषाम्) संविभाग करने वाले (नः) हमारे (सचा) सत्य के साथ हो और उससे हम लोगों की (वर्धतम्) वृद्धि करो, आप दोनों जो (पुरन्धीः) बहुत विद्याओं को धारण करने वाली (धियः) बुद्धियों को (अविष्टम्) प्राप्त होइये जिस से (जिगृतम्) उपदेश दीजिये वे (अस्मे) हम लोगों को प्राप्त होवें और जैसे (अर्य्यः) स्वामी वैसे आप दोनों हम लोगों के (अरातीः) शत्रुओं को (जजस्तम्) युद्ध कराइये ॥११॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सर्वदा विद्वानों से विद्याप्राप्ति-विषयक याचना करें जिससे उत्तम बुद्धियां होवें और शत्रुजन दूर से भागें ॥११॥

इस सूक्त में विद्वान् राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह पचासवां सूक्त समाप्त हुआ॥

वामदेव ऋषिः। उषा देवता। १। ५। ८। त्रिष्टुप्। ३। विराट् त्रिष्टुप्। ४। ६। ७। ९। ११ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २ पङ्क्तिः। १० भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब ग्यारह ऋचा वाले इक्यावनवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में प्रातःकाल का वर्णन जिस में ऐसे विषय को कहते हैं॥

**इदमु त्यत्पुरुतमं पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्थात्।**
**नूनं दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुपसो जनाय॥१॥**

पदार्थः—हे मनुष्यो! (त्यत्) सो (इदम्) यह (पुरुतमम्) अतिशय करके अनेक प्रकार का (ज्योतिः) तेज अर्थात् प्रकाश (वयुनावत्) प्रज्ञान के सदृश (तमसः) रात्रि से (पुरस्तात्) प्रथम (अस्थात्) वर्त्तमान है उस (दिवः) प्रकाश के सम्बन्ध से (विभातीः) प्रकाश करती हुई (दुहितरः) कन्याओं के सदृश वर्त्तमान (उपसः) प्रभातवेलाएं (जनाय) मनुष्य आदि के लिये (गातुम्) भूमि को (उ) तो (नूनम्) निश्चय प्रकाशित (कृणवन्) करती हैं यह जानो॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! आप लोग पुरुषार्थ से सूर्य्य के प्रकाश के सदृश विज्ञान को प्राप्त होकर अन्धकार की निवृत्ति के सदृश अविद्या का निवारण कर के आनन्दित होओ॥१॥

अब स्त्री पुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

**अस्थुरु चित्रा उपसः पुरस्तान्मिताइव स्वरवोऽध्वरेषु।**
**व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः॥२॥**

पदार्थः-हे ब्रह्मचारी जनो! जो (उ) ही (अध्वरेषु) गृहाश्रम के व्यवहारों के अनुष्ठानों में (शुचयः) पवित्र (पावकाः) पवित्र कर्म करने वाली (स्वरवः) प्रताप से युक्त (पुरस्तात्) पूर्व से (मिताइव) विद्या से सम्पूर्ण पदार्थों को जानती सी हुई (उपसः) प्रभात वेलाओं के सदृश कन्याएं (व्रजस्य) प्राप्त (तमसः) अन्धकार के (द्वारा) द्वारों को (वि, उच्छन्तीः) विवास कराती हुई सी (चित्राः) विचित्र गुण कर्म स्वभावयुक्त ब्रह्मचारिणी (अस्थुः) स्थित होती हैं (उ) उन्हीं को विवाह के लिये (अव्रन्) स्वीकार करो॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे ब्रह्मचारी जनो! जो ब्रह्मचारिणी मेघ के सदृश गम्भीर शब्दयुक्त थोड़ा बोलने वाली पवित्र और विद्यायुक्त होवें वे ही प्रथम उत्तम प्रकार परीक्षा करके विवाहने योग्य हैं॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्राधोदेयायोषसो मघोनीः ।
अचित्रे अन्तः पणयः ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जो (तमसः) रात्रि के (अचित्रे) नहीं आश्चर्य जिस में ऐसे (विमध्ये) विशेष अन्धकार में (उषसः) प्रातर्वेलाओं के सदृश (मघोनीः) सत्कार किया धन का जिन्होंने उनकी स्त्रियाँ (उच्छन्तीः) और उत्तम प्रकार वास देती हुई (अन्तः) मध्य में (अबुध्यमानाः) बोधरहित (पणयः) प्रशंसा करने योग्य स्त्रियाँ (ससन्तु) सुख से सोवें और (राधोदेयाय) धन देने योग्य व्यवहार के लिये (भोजान्) पालन करने वाले पतियों को (अद्य) आज (चितयन्त) जनाती हैं वे अच्छे प्रकार ग्रहण करनी चाहियें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे पुरुषो ! जो कन्या अपने सदृश विदुषी और शुभ गुण कर्म स्वभाव वाली होवें वे ही स्त्री होने के लिये स्वीकार करने योग्य हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कुवित्स देवीः सनयो नवो वा यामो बभूयादुषसो वो अद्य ।
येना नवग्वे अङ्गिरे दशग्वे सप्तास्ये रेवती रेवदूष ॥४॥

पदार्थः—हे पुरुषो ! (सः) वह (कुवित्) बड़े (यामः) चलने वाले (नवः) नवीन विद्या अवस्था युक्त आप (बभूयात्) निरन्तर हूजिये उसी प्रकार (रेवतीः) बहुत धन और शोभा से युक्त (सनयः) विभाग करने वाली (देवीः) प्रकाशमान (उषसः) प्रभात वेलाओं के सदृश कन्या (वः) आप लोगों को (रेवत्) बहुत प्रशंसित धनवान् जैसे हो वैसे (ऊष) निरन्तर बसाती हैं (वा) अथवा (येना) जिस कारण (अद्य) आज दिन (नवग्वे) नौ गौओं से युक्त (दशग्वे) और दश गौवों से युक्त (अङ्गिरे) प्राणों के सदृश प्रिय पति के निमित्त (सप्तास्ये) सात प्राण मुख में जिस के उस में वर्त्तमान हैं इस से उन की गृहाश्रम के लिये सेवा करो ॥४॥

भावार्थः—जो अधिक विद्या, बल, तुल्य रूप, नवीन युवावस्थायुक्त और सुशील विद्वान् अपने सदृश स्त्री का स्वीकार करे वह सुखी होवै और जो स्त्री पति की कामना करती हुई धन और विद्या की उन्नति करै वह सब मनुष्यों को सुखी करने के योग्य होवै ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यूयं हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वैः परिप्रयाथ भुवनानि सद्यः ।
प्रबोधयन्तीरुषसः ससन्तं द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीवम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यूयम्) आप लोग जैसे (चरथाय) भ्रमण के लिये (ससन्तम्) शयन करते हुए (जीवम्) प्राणधारी को (प्रबोधयन्तीः) जगाती हुई (उषसः) प्रातर्वेला (द्विपात्) दो पाद वाले मनुष्य आदि और (चतुष्पात्) चार पैर वाली गौ आदि के सदृश (सद्यः) शीघ्र (भुवनानि) लोक लोकान्तरों को प्राप्त होती हैं वैसे (हि) ही (ऋतयुग्भिः) सत्य से युक्त (अश्वैः) बड़े बलिष्ठ और पुरुषार्थियों के साथ (देवीः) दिव्य गुण कर्म स्वभाव युक्त स्त्रियों को (परिप्रयाथ) सब ओर से प्राप्त होओ ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो जन उत्तम गुणों से युक्त विदुषी सुन्दर अपने सदृश स्त्रियों को प्राप्त होते हैं वे सदा ही प्रातःकाल के सदृश प्रकाशमान और सब के बोधक होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

क्व स्विदासां कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणाम् ।
शुभं यच्छुभ्रा उषसश्चरन्ति न वि ज्ञायन्ते सदृशीरजुर्याः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (शुभ्राः) चमकीली (सदृशीः) तुल्य (अजुर्याः) नहीं जीर्ण अर्थात् नवीन (उषसः) प्रातर्वेलायें (शुभम्) कल्याण को (चरन्ति) प्राप्त होती हैं (आसाम्) इन के मध्य में (कतमा) कौनसी (पुराणी) पुरानी (क्व) किस में (विधाना) करती (यया) जिस से (ऋभूणाम्) बुद्धिमानों का (स्वित्) क्या (विदधुः) विधान करें ऐसा (न) नहीं (वि, ज्ञायन्ते) जाना जाता है इस प्रकार की स्त्रियों को श्रेष्ठ जानें ॥६॥

भावार्थः—जैसे सम्पूर्ण प्रातर्वेला तुल्य होती हैं वैसे ही पतियों के साथ सदृश स्त्रियाँ प्रशंसा करने योग्य होती हैं वह सदा ही युवावस्था में युवा पुरुषों को प्राप्त हो कर आनन्दित हों, नहीं जाना जाता है कि कौन नवीन कौन प्राचीन प्रातर्वेला होती है वैसे ब्रह्मचर्य्य से युक्त कन्या होती हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ता घा ता भद्रा उषसः पुरासुरभिष्टिद्युम्ना ऋतजातसत्याः ।
यास्वीजानः शशमान उक्थैः स्तुवञ्छंसन्द्रविणं सद्य आप ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ईजानः) गमन करने वाला जन (शशमानः) प्रशंसा को प्राप्त होता (उक्थैः) कहने योग्य वचनों से (स्तुवन्) स्तुति करता और (शंसन्) प्रशंसा करता हुआ (यासु) जिन में (द्रविणम्) धन वा यश को (सद्यः) शीघ्र (आप) प्राप्त होता है (ताः) वे (उषसः) प्रभातवेला (भद्राः) कल्याण करने वाली जैसी (पुरा) पहिले (आसुः) हुईं वैसी फिर वर्त्तमान हैं उन के समान जो (अभिद्युम्नाः) प्रशंसित यशरूप धन से युक्त (ऋतजातसत्याः) सत्य से उत्पन्न हुए व्यवहारों में श्रेष्ठ ब्रह्मचारिणी हैं (ताः, घा) उन्हीं को आप लोग गृहाश्रम के लिये प्राप्त होओ ॥७॥

भावार्थः - इस मन्त्र में वाचकलु० जैसे सूर्य्य के साथ प्रातर्वेला सदा वर्त्तमान है वैसे ही स्वयंवर जिन्होंने किया ऐसे स्त्री पुरुष यशस्वी और सत्य आचरण वाले होवें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ता आ च॑रन्ति सम॒ना पु॒रस्ता॑त्समा॒नतः॑ सम॒ना प॑प्रथा॒नाः ।
ऋ॒तस्य॑ दे॒वीः सद॑सो बुधा॒ना गवां॒ न सर्गा॑ उ॒षसो॑ जरन्ते ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (पुरस्तात्) पुरस्तात् कृतब्रह्मचर्य्यपरीक्षा अर्थात् प्रथम ब्रह्मचर्य्य की परीक्षा जिन की किई ऐसी (समानतः) सदृश पतियों से (समना) तुल्य गुण कर्म्म और स्वभाव वाली (ऋतस्य) सत्य की (देवीः) जानने वाली पण्डिता (पप्रथानाः) विस्तीर्ण विद्या और सौन्दर्य्य आदि गुणयुक्त कन्या (सदसः) श्रेष्ठ पुरुषों को (बुधानाः) ज्ञान से जगाती (उषसः) प्रातर्वेलाओं के (समना) समान और (गवाम्) गौओं के (सर्गाः) उत्पन्न हुए वृन्दों के (न) समान (आ, चरन्ति) आचरण करती और (जरन्ते) स्तुति करती हैं (ताः) उन को विवाहो ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो शिक्षा को ग्रहण किये हुए रूप और कान्ति आदि उत्तम गुणों से युक्त विदुषी ब्रह्मचारिणी कन्या होवें उन्हीं को यथायोग्य विवाहो ॥८॥

अब स्त्रियों के लिये उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ता इन्न्वे३॒॑व स॑म॒ना स॑मा॒नीरमी॑तवर्णा उ॒षस॑श्चरन्ति ।
गूह॑न्ती॒रभ्व॒मसि॑तं॒ रुश॑द्भिः शु॒क्रास्त॒नूभिः॒ शुच॑यो रुचा॒नाः ॥९॥

पदार्थः—हे स्त्रियो ! जो (अमीतवर्णाः) विद्यमान वर्ण वाली (समना) तुल्य (समानीः) तुल्यविचारशील (रुशद्भिः) नाश करने वाले गुणों से (अभ्वम्) बड़े

(असितम्) निकृष्ट वर्ण वाले अन्धकार को (गूहन्तीः) ढांपती हुई (तनूभिः) विस्तृत शरीरों से (शुक्राः) कान्तिमती और (शुचयः) पवित्र (रुचानाः) प्रीति करने वाली (उषसः) प्रभात वेलाओं के सदृश (चरन्ति) चलती हैं (ताः) वे (इत्) ही (नु) शीघ्र (एव) ही जैसे सुख देती हैं वैसे सब को सुखी करो ॥९॥

भावार्थः—जो स्त्रियाँ प्रातर्वेला के सदृश दुःख को नाश करने वाली और सुख को उत्पन्न करने वाली हों वे ही आनन्द देने वाली होवें ॥९॥

अब अगले मन्त्र से स्वयंवर विवाह कहा है ॥

रयिं दिवो दुहितरो विभातीः प्रजावन्तं यच्छतास्मासु देवीः ।
स्योनादा वः प्रतिबुध्यमानाः सुवीर्य्यस्य पतयः स्याम ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (दिवः) सूर्य्य की (विभातीः) प्रकाश करती हुईं (दुहितरः) कन्याओं के सदृश वर्त्तमान किरणें प्रकाश को देती हैं, हे(देवीः) विदुषियो ! वैसे (अस्मासु) हम लोगों में (स्योनात्) सुख से (प्रजावन्तम्) बहुत प्रजायुक्त (रयिम्) धन को (आ, यच्छत) ग्रहण करो (वः) तुम को (प्रतिबुध्यमानाः) प्रतिबोध कराते हुए हम लोग (सुवीर्यस्य) उत्तम पराक्रम युक्त सेना के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो कन्या प्रभात वेला के सदृश उत्तम प्रकार शोभित सुख को उत्पन्न करती हैं उन के साथ स्वयंवर विवाह से ही मनुष्य श्रीमान् होते हैं ॥१०॥

अब पुरुष विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तद्वो दिवो दुहितरो विभातीरुप ब्रुव उषसो यज्ञकेतुः ।
वयं स्याम यशसो जनेषु तद् द्यौश्च धत्तां पृथिवी च देवी ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (विभातीः) प्रकाश करती हुईं (दिवः) प्रकाश की (दुहितरः) कन्याओं के सदृश वर्त्तमान (उषसः) प्रातर्वेला के सदृश स्त्रियां (वः) आप लोगों का जो विषय कहूँ (तत्) उस को (यज्ञ केतुः) यज्ञ का जनाने वाला मैं आप लोगों को (उप, ब्रुवे) उपदेश देता हूं जैसे (तत्) उस को (देवी) प्रकाश(द्यौः) बिजुली (च) और (पृथिवी) (च) भी (धत्ताम्) धारण करें वैसे (वयम्) हम लोग (जनेषु) विद्वानों में (यशसः) यशस्वी (स्याम) होवें ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो परस्पर जनों को उपदेश देकर सत्य का ग्रहण कराते हैं वे सूर्य्य के सदृश प्रकाश करने और भूमि के सदृश प्रजा के धारण करने वाले होते हैं ॥११॥

इस सूक्त में प्रातःकाल स्त्री और पुरुष के गुण कर्म वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । उषा देवता । १—६ निचृद्गायत्री । ५ । ७ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले बावनवें सूक्त का आरम्भ है. उसके प्रथम मन्त्र में उषा की तुल्यता से स्त्री के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

प्रति ष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसुः ।
दिवो अदर्शि दुहिता ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (दिवः) सुन्दर (स्वसुः) भगिनी की (जनी) उत्पन्न करने वाली (सूनरी) उत्तम पहुंचाती और (परि, व्युच्छन्ती) सब ओर से निवास देती हुई (दुहिता) कन्या के सदृश वर्त्तमान प्रातर्वेला (प्रति, अदर्शि) एक के प्रति एक देखी जाती है (स्या) वह जागे हुए मनुष्य से देखने योग्य है ॥१॥

भावार्थः – वही स्त्री श्रेष्ठ, जो प्रातर्वेला के सदृश वर्त्तमान है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी । सखाभूदश्विनोरुषाः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (चित्रा) अद्भुत गुण कर्म और स्वभावयुक्त (अरुषी) ईषत् लाल वर्ण (ऋतावरी) बहुत सत्य का प्रकाश कराने वाली (उषाः) प्रातर्वेला (अश्वेव) घोड़ी के सदृश वर्त्तमान (अश्विनोः) सूर्य और चन्द्रमा की (सखा) मित्र (अभूत्) हुई वह (गवाम्) किरणों की (माता) माता के सदृश पालन करने वाली जाननी चाहिये ॥२॥

भावार्थः – इस मन्त्र में उपमालङ्कार है । हे मनुष्यो ! जो माता और मित्र के सदृश वर्त्तमान प्रातर्वेला है वह युक्ति से सब पुरुषों से सेवन करने योग्य है ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि । उतोषो वस्व ईशिषे ॥३॥

पदार्थः—हे (उषः) प्रातर्वेला के सदृश वर्त्तमान सुन्दर स्त्री ! तू अपने पति की

(सखा) सखी के सदृश वर्त्तमान (असि) है (उत) और (अश्विनोः) सूर्य्य और चन्द्रमा के सदृश अध्यापक और उपदेशक की सखी (असि) है (उत) और (गवाम्) किरण वा गौओं की (माता) माता (उत) और (वस्वः) धन की (ईशिषे) इच्छा करती है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—वही स्त्री सुख देने वाली जो मित्र के सदृश आज्ञा मानने और सेवा करने वाली है वही प्रातर्वेला के सदृश कुल की प्रकाशिका होती है ॥३॥

फिर स्त्रीगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यावयद्द्वेषसं त्वा चिकित्वित्सूनृतावरि ।
प्रति स्तोमैरभुत्स्महि ॥४॥

पदार्थः—हे (चिकित्वित्) जनाने और (सूनृतावरि) सत्यवाणी का प्रकाश करने वाली स्त्री हम लोग (स्तोमैः) प्रशंसाओं से (यावयद्द्वेषसम्) द्वेष करने वाले को पृथक् कराने वाली (त्वा) तुझको (प्रति, अभुत्स्महि) जानें ॥४॥

भावार्थः—जो कभी द्वेष और द्वेष करने वाले के सङ्ग को नहीं करती और सत्य वाणी और प्रशंसायुक्त है वही स्त्री श्रेष्ठ है ॥४॥

अब स्त्रियों की उत्तम व्यवहारों में प्रशंसा कहते हैं ॥

प्रति भद्रा अदृक्षत गवां सर्गा न रश्मयः ।
ओषा अप्रा उरु ज्रयः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (उरु) बहुत (ज्रयः) अत्यन्त तेजःस्वरूप मण्डल को (रश्मयः) किरणों के (न) सदृश (भद्राः) कल्याण करने वाली (गवाम्) पृथिवियों की (सर्गाः) सृष्टियां, रचना (प्रति, अदृक्षत) प्रति समय देखी जाती हैं जैसे (उषाः) प्रभातवेला उन को (आ, अप्राः) व्याप्त होती है वैसे स्त्री हो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो स्त्रियां किरणों के समान उत्तम व्यवहारों का प्रकाश कराती हैं वे निरन्तर कल्याण के लिये कुल की उन्नति करने वाली होती हैं ॥५॥

फिर उषा के तुल्य स्त्रियों के कर्त्तव्य कामों को कहते हैं ॥

आपप्रुषी विभावरि व्यावर्ज्योतिषा तमः । उषो अनु स्वधामव ॥६॥

पदार्थः—हे (उषः) प्रभात वेला के सदृश उत्तम प्रकाश और (विभावरि) प्रशंसित विविध प्रकाश से युक्त उत्तम गुणवाली स्त्री ! (आपप्रुषी) सब ओर से सर्व

विद्याओं को व्याप्त तू (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमः) अन्धकार के सदृश दोषों की (वि, आवः) विगतरक्षा कर अर्थात् रखने के विरुद्ध निकाल और (अनु, स्वधाम्) अनुकूल अन्न आदि की (अव) रक्षा कर ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे प्रभात वेला अपने प्रकाश से अन्धकार का निवारण करती है वैसे ही विद्यायुक्त स्त्रियां अपने उत्तम स्वभाव से दोषों का निवारण कर के उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न आदि से सब की उत्तम प्रकार रक्षा करें ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ द्यां तंनोषि रश्मिभिरान्तरिक्षमुरु प्रियम् ।
उषः शुक्रेण शोचिषा ॥७॥

पदार्थः—हे (उषः) प्रभात वेला के सदृश वर्त्तमान स्त्री ! जैसे प्रभातवेला (रश्मिभिः) किरणों से (द्याम्) प्रकाश और (उरु) बहुत (आ, अन्तरिक्षम्) सब ओर से अन्तरिक्ष को प्रकाशित करती है वैसे ही तू (शुक्रेण) शुद्ध (शोचिषा) प्रकाश से (प्रियम्) सुन्दर पति का (आ, तनोषि) विस्तार करती अर्थात् पति की कीर्त्ति बढ़ाती है इससे सत्कार करने योग्य है ॥७॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलु०—वही स्त्री बहुत सुख को प्राप्त होती है जो विद्या विनय और उत्तम स्वभावादिकों से अपने पति को नित्य प्रसन्न करती है ॥७॥

इस सूक्त में प्रभात वेला के सदृश स्त्रियों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह बावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । सविता देवता । १ । ३ । ६ । ७ निचृज्जगती । २ विराड्जगती । ४ स्वराड्जगती । ५ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले त्रेपनवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में सविता परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

तद्देवस्य सवितुर्वार्यं महद्वृणीमहे असुरस्य प्रचेतसः ।
छर्दिर्येन दाशुषे यच्छति त्मना तन्नो महाँ उदयान्देवो अक्तुभिः ॥१॥

पदार्थः हे मनुष्यो ! हम लोग जिस (सवितुः) वृष्टि आदि की उत्पत्ति

करने वाले (देवस्य) निरन्तर प्रकाशमान (प्रचेतसः) जनानेवाले (असुरस्य) मेघ के (महत्) बड़े (वार्य्यम्) स्वीकार करने योग्य पदार्थों वा जलों में उत्पन्न (छर्दिः) गृह का (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (तत्) उस का आप लोग स्वीकार करो (येन) जिस कारण से विद्वान् जन (त्मना) आत्मा से (दाशुषे) दाता जन के लिये स्वीकार करने योग्यों वा जलों में उत्पन्न हुए बड़े गृह को (यच्छति) देता है (तत्) उसको (महान्) बड़ा (देवः) प्रकाशमान होता हुआ (अक्तुभिः) रात्रियों से (नः) हम लोगों के लिये (उत्, अयान्) उत्कृष्टता से देवे ॥१॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन मेघ और सूर्य्य के सम्बन्ध की विद्या को जानते हैं वे दिन और रात्रियों में बड़े कार्य्य को सिद्ध कर के आनन्दित होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दि॒वो ध॒र्त्ता भुव॑नस्य प्र॒जाप॑तिः पि॒शङ्गं॑ द्रा॒पिं प्रति॑ मुञ्चते क॒विः ।
वि॒च॒क्ष॒णः प्र॒थय॑न्नापृ॒णन्नु॒र्वजी॑जनत्सवि॒ता सु॒म्नमु॒क्थ्य॑म् ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो ! जो यह (दिवः) प्रकाश और (भुवनस्य) अनेक भूगोलों से अलङ्कृत अर्थात् शोभित संसार का (धर्त्ता) धारण करने वाला (प्रजापतिः) प्रजा का पालनकर्त्ता (कविः) तेजयुक्त दर्शनवाला (पिशङ्गम्) विचित्र रूपवाले (द्रापिम्) कवच को (प्रति, मुञ्चते) त्याग करता है और (विचक्षणः) अनेक प्रकार से पदार्थों का प्रकाश करने वाला (प्रथयन्) विस्तार करता और (आपृणन्) सब प्रकार से पूर्ण करता हुआ (सविता) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों से युक्त करने वाला वा समर्थ ऐश्वर्य्यों के देने का निमित्त (उरु) बहुत (उक्थ्यम्) प्रशंसा करने योग्य (सुम्नम्) सुख को (अजीजनत्) उत्पन्न करता है वह आप लोगों को यथावत् जानने योग्य है ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने प्रजा के धारण प्रकाश और पालन के लिये सूर्य्य बनाया उसी परमेश्वर की उपासना कर के बहुत सुख को प्राप्त होइये ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आप्रा रजां॑सि दि॒व्यानि॒ पार्थि॑वा श्लोकं॑ दे॒वः कृ॑णुते॒ स्वाय॒ धर्म॑णे ।
प्र बा॒हू अ॑स्राक्सवि॒ता सवी॑मनि निवे॒शय॑न्प्रसु॒वन्न॒क्तुभि॒र्जग॑त् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सविता) सम्पूर्ण जगत् का उत्पन्न करने वाला (देवः) प्रकाशमान विद्वान् (सवीमनि) बड़े ऐश्वर्य्य में (अक्तुभिः) रात्रियों के साथ

(जगत्) सम्पूर्ण संसार को (निवेशयन्) प्रवेश कराता और (प्रसुवन्) उत्पन्न करता हुआ (बाहू) भुजाओं को (अस्राक्) उत्पन्न करता वह विद्वान् (स्वाय) अपनी (धर्म्मणे) धर्म्म की उन्नति के लिये (श्लोकम्) श्लाघा प्रशंसा करने योग्य वाणी को (प्र, कृणुते) उत्पन्न करता वह, परमात्मा (दिव्यानि) शुद्ध (पार्थिवा) पृथिवी में विदित (रजांसि) लोकों को (आ, अप्राः) व्याप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सम्पूर्ण जगत् में अभिव्याप्त हो और उस जगत् को रच के धर्म्म और वेदवाणी का प्रचार करके संसार को व्यवस्थापित अर्थात् जैसा चाहिये वैसा नियत करता उसी को सब का स्वामी जान के निरन्तर उपासना करो ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अदा॑भ्यो॒ भुव॑नानि प्र॒चाक॑शद् व्र॒तानि॑ दे॒वः स॑वि॒ताभि र॑क्षते ।
प्रास्रा॑ग्बा॒हू भुव॑नस्य प्र॒जाभ्यो॑ धृ॒तव्र॑तो म॒हो अज्म॑स्य राजति ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अदाभ्यः) नहीं नष्ट होने योग्य अर्थात् नहीं मन से छोड़ने योग्य (सविता) सूर्य्य (धृतव्रतः) व्रतों को धारण करने वाला (देवः) सुन्दर (महः) बड़े (अज्मस्य) अन्तरिक्ष में छोड़े हुए (भुवनस्य) लोक में (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (व्रतानि) सत्यभाषण आदि व्रतों को और (भुवनानि) लोकोत्पन्न समस्त वस्तुओं को (प्रचाकशत्) प्रकाश करता (बाहू) बल और वीर्य्य को (प्र अस्राक्) उत्पन्न करता सब की (अभि) प्रत्यक्ष (रक्षते) रक्षा करता और (राजति) प्रकाश करता है वही सब लोगों को उपासना करने योग्य है ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने प्रजाओं में सम्पूर्ण हित सिद्ध किया और जो भीतर बाहर अभिव्याप्त होके सब के लिये कर्म्मों का फल देता है वही निरन्तर ध्यान करने योग्य है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्रि॒र॒न्तरि॑क्षं सवि॒ता म॑हित्व॒ना त्री रजां॑सि परि॒भूस्त्रीणि॑ रोच॒ना ।
ति॒स्रो दिवः॑ पृथि॒वीस्ति॒स्र इ॑न्वति त्रि॒भिर्व्र॒तैर॒भि नो॑ रक्षति॒ त्मना॑ ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (परिभूः) सब स्थानों में वर्त्तमान और सब के ऊपर विराजमान (सविता) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों का उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (महित्वना) महिमा और (त्मना) आत्मा से (अन्तरिक्षम्) भीतर नहीं नाश होने वाले आकाश को (त्रिः) तीनवार (इन्वति) व्याप्त होता (त्री) तीन प्रकार के (रजांसि) उत्तम मध्यम निकृष्ट लोकों को व्याप्त होता (त्रीणि) तीन प्रकार के

(रोचना) बिजुली भौतिक और सूर्यरूप ज्योतियों को व्याप्त होता (तिस्रः) तीन प्रकार के (दिवः) प्रकाशों और (तिस्रः) तीन प्रकार की (पृथिवीः) भूमियों को व्याप्त होता और (त्रिभिः) तीन (व्रतैः) नियमों से (नः) हम लोगों की (अभि) सब ओर से (रक्षति) रक्षा करता है वही सर्वदा सेवा करने योग्य है ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर तीन प्रकार के सम्पूर्ण त्रिगुण अर्थात् सतोगुण रजोगुण तमोगुणस्वरूप जगत् को रच के उत्तम नियमों से पालन करता है उसी की उपासना करो ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

बृहत्सुम्नः प्रसवीता निवेशनो जगतः स्थातुरुभयस्य यो वशी ।
स नो देवः सविता शर्म यच्छत्वस्मे क्षयाय त्रिवरूथमंहसः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (नः) हम लोगों के लिये (बृहत्सुम्नः) अत्यन्त सुख का (प्रसवीता) उत्पन्न करने वाला और (जगतः) जङ्गम अर्थात् चेतनता-युक्त मनुष्य आदि और (स्थातुः) स्थिर स्थावर अर्थात् नहीं चलने फिरने वाले वृक्ष आदि जगत् के (निवेशनः) निवेश अर्थात् स्थिति का करने वाला (उभयस्य) दो प्रकार के जगत् के (वशी) वश करने को समर्थ (देवः) दाता जगदीश्वर हम लोगों के लिये विद्या को (यच्छतु) देवे (सः) वह (सविता) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से युक्त (अस्मे) हम लोगों के (क्षयाय) निवास के लिये (अंहसः) दुःख से अलग हुए (त्रिवरूथम्) तीन गृह जिसमें उस (शर्म) उत्तम प्रकार सुख देने वाले स्थान को देवे वही हम लोगों का उपासना करने योग्य देव हो ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सब जगत् का नियामक और सब जीवों के निवास के लिये अनेक प्रकार के स्थान का रचने वाला है उस को छोड़ के अन्य किसी की भी उपासना न करो ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आगन्देव ऋतुभिर्वर्धतु क्षयं दधातु नः सविता सुप्रजामिषम् ।
स नः क्षपाभिरहभिश्च जिन्वतु प्रजावन्तं रयिमस्मे समिन्वतु ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सविता) सम्पूर्ण जगत् का उत्पन्न करने वाला (देवः) निरन्तर प्रकाशमान जगदीश्वर (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं से (नः) हम लोगों के (क्षयम्) निवास की (वर्धतु) वृद्धि करे और हम लोगों को (आ) सब प्रकार से (अगन्) प्राप्त हो (सुप्रजाम्) उत्तम प्रजा और (इषम्) अन्न आदि को (दधातु) धारण करे (सः) वह (क्षपाभिः) रात्रियों और (अहभिः) दिनों के साथ

(च) भी (नः) हम लोगों को (जिन्वतु) प्रसन्न और आनन्दित करें और (अस्मे) हम लोगों के लिये (प्रजावन्तम्) बहुत प्रजाओं से युक्त (रयिम्) धन को (सम्,-इन्वतु) अच्छे प्रकार देवे ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा सब दिन सब रात्रियों में सब जगत् की सब प्रकार से रक्षा करता है, सब पदार्थों को रच के हम लोगों के लिये देकर हम लोगों को निरन्तर आनन्दित करता है वह हम लोगों को सदा उपासना करने योग्य है ॥७॥

इस सूक्त में सविता अर्थात् सकल जगत् के उत्पन्न करने वाले परमात्मा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह त्रेपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः। सविता देवता। १ भुरिक् त्रिष्टुप्। २ निचृत्त्रिष्टुप्। ३—५ स्वराट् त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब छः ऋचा वाले चौपनवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में सविता परमात्मा के गुणों का वर्णन करते हैं॥

अभू॑द् दे॒वः स॑वि॒ता वन्द्यो॒ नु न॑ इ॒दानी॒मह्न॑ उप॒वाच्यो॒ नृभिः॑।
वि यो रत्ना॒ भज॑ति मान॒वेभ्यः॒ श्रेष्ठं॑ नो॒ अत्र॒ द्रवि॑णं॒ यथा॒ दध॑त्॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (इदानीम्) इस समय (अह्नः) दिन के मध्य में जैसे (नृभिः) नायक अर्थात् मुखिया मनुष्यों से (उपवाच्यः) उपदेश योग्य और (नः) हम लोगों के (वन्द्यः) प्रशंसा करने योग्य (सविता) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों को और (देवः) सम्पूर्ण सुखों को देने वाला (अभूत्) होता है जो (नः) हम (मानवेभ्यः) विचारशीलों के लिये (रत्ना) रमण करने योग्य धनों को (यथा) जैसे (वि, भजति) बांटता और (अत्र) इस संसार में (श्रेष्ठम्) अत्यन्त उत्तम (द्रविणम्) धन वा यश को (नु) शीघ्र (दधत्) धारण करे वैसे ही हम लोगों को सत्कार करने योग्य है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। नष्ट उन का भाग्य जो सम्पूर्ण ऐश्वर्य और यश के देने वाले वन्दना करने योग्य तथा स्तुति उपासना और उपदेश करने योग्य परमात्मा को छोड़ के अन्य की उपासना करते हैं ॥१॥

फिर ईश्वर के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

देवेभ्यो हि प्रथमं यज्ञियेभ्योऽमृतत्वं सुवसि भागमुत्तमम् ।
आदिद्दामानं सवितर्व्यूर्णुषेऽनूचीना जीविता मानुषेभ्यः ॥२॥

पदार्थः – हे (सवितः) सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर ! (हि) जिससे आप (यज्ञियेभ्यः) सत्यभाषण आदि यज्ञानुष्ठान करने वाले (देवेभ्यः) श्रेष्ठ गुण कर्म्म और स्वभावयुक्त जीवों के लिये (प्रथमम्) पहिले (भागम्) भजने योग्य (उत्तमम्) श्रेष्ठ (अमृतत्वम्) मोक्षसुख की (सुवसि) प्रेरणा करते हो (आत्) इस के अनन्तर (दामानम्) दाता जन को (वि, ऊर्णुषे) अपनी व्याप्ति से ढांपते हो (अनूचीना) अनुचर (जीविता) जीवनों को (इत्) ही (मानुषेभ्यः) मनुष्यों के लिये देते हो इस से हम लोगों को उपासना करने योग्य हो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा सत्य आचरण में प्रेरणा करता और मुक्तिसुख को दे कर सब को आनन्दित करता है उसी की सदा उपासना करो ॥२॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अचित्ती यच्चकृमा दैव्ये जने दीनैर्दक्षैः प्रभूती पूरुषत्वता ।
देवेषु च सवितर्मानुषेषु च त्वं नो अत्र सुवतादनागसः ॥३॥

पदार्थः—हे (सवितः) सम्पूर्ण जगत् के उत्पन्न करने वाले (अचित्ती) अविद्या से (प्रभूती) बहुत्व से (दीनैः) क्षीण अर्थात् दुर्बल (दक्षैः) चतुरों से और (पूरुषत्वता) उत्तम पुरुषवान् से (दैव्ये) विद्वानों में चतुर (जने) विद्वान् में (देवेषु) विद्वानों (च) और (मानुषेषु) अविद्वानों में (च) भी (यत्) जो कर्म्म (चकृमा) हम लोग करें (अत्र) इस में (नः) हम (अनागसः) अनपराधियों को (त्वम्) आप (सुवतात्) प्रेरणा करो ॥३॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग, जो हम लोग अविद्या से आप लोगों का अपराध करें वह क्षमा करने योग्य है और हम लोगों को अध्यापन और उपदेश से निरपराध करो ॥३॥

अब विद्वानों के करने योग्य काम को कहते हैं ॥

न प्रमिये सवितुर्दैव्यस्य तद्यथा विश्वं भुवनं धारयिष्यति ।
यत्पृथिव्या वरिमन्ना स्वङ्गुरिर्वर्ष्मन्दिवः सुवति सत्यमस्य तत् ॥४॥

पदार्थः—हे (वरिमन्) बहुत गुणों से युक्त (वर्ष्मन्) वर्षने वाले विद्वन् ! (यथा) जैसे (सवितुः) सम्पूर्ण संसार के उत्पन्न करने वाले (देव्यस्य) श्रेष्ठ पदार्थों में साक्षात् किये गये के मध्य में (यत्) जो (विश्वम्) सम्पूर्ण (भुवनम्) संसार को जिस में प्राणी होते हैं (धारयिष्यति) धारण करावेगा (पृथिव्याः) और भूमि के सम्बन्ध में (स्वङ्गुरिः) श्रेष्ठ अंगुलियों से युक्त हस्त वाला हुआ (अस्य) इस (दिवः) सुन्दर का (यत्) जो (सत्यम्) सत्य (तत्) उस को (सुवति) प्रेरणा करता है (तत्) उस को प्राप्त हो कर जैसे मैं (न) नहीं (प्रमिये) मरण को प्राप्त होऊं वैसे ही आप (आ) आचरण करो ॥४॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जो ब्रह्म सब जगत् को धारण करता और सूर्य और वायु से धारण कराता है, वेद के द्वारा सब सत्य का प्रकाश कराता है, उसी की हम लोग उपासना करें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रंज्येष्ठान्बृहद्भ्यः पर्वतेभ्यः क्षयाँ एभ्यः सुवसि पस्त्यावतः ।
यथायथा पतयन्तो वियेमिर एवैव तस्थुः सवितः सवायते ॥५॥

पदार्थः—हे (सवितः) जगदीश्वर ! आप (यथायथा) जैसे जैसे (बृहद्भ्यः) बड़े (एभ्यः) इन (पर्वतेभ्यः) मेघादिकों से (पस्त्यावतः) प्रशंसित गृहों से युक्त (इन्द्रज्येष्ठान्) बिजुली वा सूर्य्य बड़े जिन में उन (क्षयान्) निवासों को (सुवसि) प्रेरणा करते हो वैसे वैसे (पतयन्तः) पति के सदृश आचरण करते हुए (एव) ही सब (वि, येमिरे) विशेष करके देते हैं और (ते) आप के (सवाय) ऐश्वर्य्य के लिये (एव) ही (तस्थुः) स्थित होते हैं ॥५॥

भावार्थः—हे भगवन् ! आप ने सब जीवों के निवासादि व्यवहार के लिये भूमि आदि लोक रचे, इसी से आप के लिये धन्यवादों को समर्पण कर के हम लोग आप के ऐश्वर्य्य में निवास करें ॥५॥

अब पदार्थोद्देश से ईश्वर की सेवा को कहते हैं ॥

ये ते त्रिरहन्त्सवितः सवासो दिवेदिवे सौभगमासुवन्ति ।
इन्द्रो द्यावापृथिवी सिन्धुरद्भिरादित्यैर्नो अदितिः शर्म यंसत् ॥६॥

पदार्थः—हे (सवितः) परमेश्वर ! (ते) आप के (ये) जो (सवासः) उत्पन्न पदार्थ (अहन्) दिन में (दिवेदिवे) प्रतिदिन (सौभगम्) श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य के होने को (त्रिः) तीनवार (आसुवन्ति) उत्पन्न कराते हैं तथा (अद्भिः) जलों और (आदित्यैः) और महीनों के साथ (इन्द्रः) सूर्य्य (द्यावापृथिवी) प्रकाश भूमि और (सिन्धुः) समुद्र

भी उत्पन्न कराते हैं वह (अदितिः) खण्डरहित परमात्मा आप (नः) हम लोगों के लिये (शर्म) सुख को (यंसत्) दीजिये ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर की सृष्टि में हम लोग ऐश्वर्य्य वाले होते हैं और हम लोगों के रक्षा करने वाले सम्पूर्ण पदार्थ हैं उसी का हम लोग निरन्तर भजन करें ॥६॥

इस सूक्त में सविता, ईश्वर, विद्वान् और पदार्थों के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह चौपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ त्रिष्टुप् । २ । ४ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ५ भुरिक् पङ्क्तिः । । ६ । ७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ८ । ९ विराड्गायत्री । १० गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले पचपनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

को वस्त्राता वसवः को वरूता द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नः ।
सहीयसो वरुण मित्र मर्त्तात्को वोऽध्वरे वरिवो धाति देवाः ॥१॥

पदार्थः—हे (वरुण) उत्तम विद्वन् अध्यापक ! (मित्र) सम्पूर्ण मित्रों के उपदेशक ! (सहीयसः) अत्यन्त सहने वाले बलिष्ठ (नः) हम लोगों के और (वः) आप लोगों के (अध्वरे) सत्य व्यवहार में (कः) कौन (मर्त्तात्) मनुष्य से (वरिवः) सेवन को (धाति) धारण करता है (द्यावाभूमी) प्रकाश और पृथिवी के सदृश आप दोनों हम लोगों की (त्रासीथाम्) रक्षा करो हे (वसवः) रहने वाले (देवाः) विद्वानो ! (वः) आप लोगों का (कः) कौन (त्राता) रक्षक है । हे (अदिते) नहीं नाश होने वाले जगदीश्वर ! आप का (कः) कौन (वरूता) स्वीकार करने वाला है ॥१॥

भावार्थः—जो परमेश्वर की आज्ञा का पालन करता है वह परमेश्वर से स्वीकार किया जाता है । हे मनुष्यो ! जो हमारा और आप लोगों का रक्षक है वही हम लोगों से सेवा करने योग्य है और जो अहिंसा से सब मनुष्यों को विज्ञान में धारण करते हैं वह और वे सदा सत्कार करने योग्य हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र ये धामानि पूर्व्याण्यर्चान्वि यदुच्छान्वियोतारो अमूराः ।
विधातारो वि ते दधुरजस्रा ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ये) जो (पूर्व्याणि) प्राचीन जनों से प्रत्यक्ष किये गये (धामानि) जन्म नाम स्थानों का (प्र, अर्चान्) उत्तम सत्कार करैं और (यत्) जो (अमूराः) नहीं मूर्ख (वियोतारः) विभाग करने वाले जन प्राचीन जनों से प्रत्यक्ष किये गये जन्म नाम स्थानों का (वि, उच्छान्) विवास करावें और जो (अजस्रा) नहीं हिंसा करने और (ऋतधीतयः) सत्य के धारण करने वाले (विधातारः) निर्माण कर्त्ता (दस्माः) दुःखों के विनाशक जन (रुरुचन्त) उत्तम प्रकार शोभित होते हैं (ते) वे निरन्तर (वि, दधुः) विधान करैं ॥२॥

भावार्थः—जो यथार्थवक्ता सब के सुख की इच्छा करने वाले विद्वान् जन हों वे ही सब के सब सुखों के करने योग्य होवें ॥२॥

अब विद्वानों के विषय में गृहस्थ के कर्म्म को कहते हैं ॥

प्र पस्त्या३मदितिं सिन्धुमर्कैः स्वस्तिमीळे सख्याय देवीम् ।
उभे यथा नो अहनी निपात उषासानक्ता करतामदब्धे ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यथा) जैसे (उभे) दोनों (अहनी) रात्रि और दिन (उषासानक्ता) रात्रि और दिन को (अदब्धे) नहीं हिंसित (करताम्) करैं वैसे (नः) हम लोगों का अर्थात् अपना (निपातः) अतिशय पालन करने वाला मैं (अर्कैः) मन्त्रों से (अदितिम्) खण्डरहित (पस्त्याम्) गृह और (सिन्धुम्) नदी की (स्वस्तिम्) सुख की और (सख्याय) मित्रपने के लिये (देवीम्) सुन्दर विद्यायुक्त स्त्री की (प्र, ईळे) विशेष इच्छा करता हूँ ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे रात्रि और दिन मिले हुए वर्त्ताव कर के सम्पूर्ण व्यवहार में कारण होते हैं वैसे हम दोनों विशेष कर के हित चाहते हुए मित्र के सदृश वर्त्तमान स्त्री और पुरुष उत्तम गृह और बहुत सुख की सदा उन्नति करैं ॥३॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

व्यर्यमा वरुणश्चेति पन्थामिषस्पतिः सुवितं गातुमग्निः ।
इन्द्राविष्णू नृवदु षु स्तवाना शर्म्म नो यन्तममवद्वरूथम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अर्य्यमा) न्यायकर्त्ता और (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (पन्थाम्) धर्मसम्बन्धी मार्ग को (वि, चेति) विशेष कर जानता है (गातुम्) पृथिवी को (अग्निः) अग्नि जैसे वैसे वर्त्तमान (इषः) अन्न आदि का (पति) स्वामी (सुवितम्) उत्तम प्रकार उत्पन्न किये गये को विशेष कर जानता है । और हे अध्यापकोपदेशको ! आप दोनों (इन्द्राविष्णू) विजुली और वायु के सदृश (स्तवाना) सत्य की प्रशंसा करने वालो ! (नृवत्) प्रधान पुरुष के सदृश (उ) और (नः) हम लोगों के (अमवत्) प्रशस्तरूप से युक्त (शर्म) सुख और (वरूथम्) गृह को (सु, यन्तम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे न्यायकारी विद्वान् लोग अधर्म्मसम्बन्धी मार्ग का त्याग करके धर्म्मसम्बन्धी मार्ग में चलते हैं वैसे आप लोग भी चलें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ पर्वतस्य मरुतामवांसि देवस्य त्रातुरव्रि भगस्य ।
पात् पतिर्जन्यादंहसो नो मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे मैं (पर्वतस्य) मेघ के (देवस्य) उत्तम सुख प्राप्त कराने वाले के (भगस्य) ऐश्वर्य्य के (त्रातुः) रक्षा करने वाले और (मरुताम्) मनुष्यों के (अवांसि) अनेक प्रकार रक्षणों का मैं (आ, अव्रि) स्वीकार करता हूँ वैसे (पतिः) स्वामी आप (नः) हम लोगों की (जन्यात्) उत्पन्न होने वाले (अंहसः) अपराध से (पात्) रक्षा करो और (नः) हम लोगों को (उत्) तो (मित्रः) मित्र (मित्रियात्) मित्र से (उरुष्येत्) सेवन करें ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्य के जानने और उसके आचरण करने की इच्छा करें वे सत्य ज्ञान को प्राप्त होकर सत्य के आचरण करने वाले होवें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू रोदसी अहिना बुध्न्येन स्तुवीत देवी अप्येभिरिष्टैः ।
समुद्रं न सञ्चरणे सनिष्यवो घर्मस्वरसो नद्यो३ अप व्रन् ॥६॥

पदार्थः - हे विद्वन् ! (घर्मस्वरसः) यज्ञ में अपने रस वाले आप जैसे (इष्टैः) मिलने और प्राप्त होने योग्य (अप्येभिः) जल में उत्पन्न हुए पदार्थों के साथ (सनिष्यवः) विभाग करती हुई (नद्यः) नदियाँ (सञ्चरणे) सुन्दर गमन में (समुद्रम्) अन्तरिक्ष के (न) तुल्य (अप, व्रन्) ढांपती हैं वैसे (बुध्न्येन) अन्तरिक्ष में हुए (अहिना)

मेघ के सहित (देवी) प्रकाशमान (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी की (नू) शीघ्र (स्तुवीत) प्रशंसा करें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। हे मनुष्यो ! जैसे मेघों के जलों से पूर्ण नदियाँ आवरणों को काट कर अन्तरिक्ष में जलों को प्राप्त होती हैं वैसे ही आप लोग विद्या की दीप्ति को प्राप्त होकर सब विद्याओं की प्रशंसा करो ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् ।
नहि मित्रस्य वरुणस्य धासिमर्हामसि प्रमियं सान्वग्नेः ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे हम लोग (वरुणस्य) श्रेष्ठ पुरुष (मित्रस्य) मित्र और (अग्नेः) अग्नि के (सानु) शिखर और (धासिम्) अन्न के (प्रमियम्) नाश करने को (नहि) नहीं (अर्हामसि) योग्य होते हैं वैसे (देवैः) विद्वानों वा पृथिवी आदिकों के साथ (देवी) प्रकाशमान विद्यायुक्त माता (अदितिः) अखण्डितज्ञानवाली (नः) हम लोगों की (नि, पातु) रक्षा करें और (अप्रयुच्छन्) नहीं प्रमाद करता हुआ (त्राता) रक्षा करने वाला (देवः) विद्वान् पिता हम लोगों का (त्रायताम्) पालन करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि किसी सज्जन वा किसी पदार्थ का नाश और नशा करने वाले द्रव्य का सेवन सदा ही न करें और सदा विद्वानों और माता पिता की शिक्षा को ग्रहण करें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अग्निरीशे वसव्यस्याग्निर्महः सौभगस्य ।
तान्यस्मभ्यं रासते ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (अग्निः) अग्नि के सदृश पुरुषार्थी (वसव्यस्य) धनों में श्रेष्ठ की और जैसे (अग्निः) अग्नि (महः) बड़े (सौभगस्य) उत्तम ऐश्वर्य्य के होने की (ईशे) इच्छा करता है (तानि) उन को (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (रासते) देता है वैसे आप करो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो ! जैसे विद्या से उपजित अर्थात् वश में किया गया अग्नि, कार्य्यों को सिद्ध कर के बड़े ऐश्वर्य्य

को प्राप्त कराता है वैसे ही सेवा किये गये आप लोग विद्या और उपदेश आदि कार्य्यों को सिद्ध करके सब को ऐश्वर्य्ययुक्त करो ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उषो मघोन्या वह सूनृते वार्या पुरु ।

अस्मभ्यं वाजिनीवति ॥९॥

पदार्थः—हे (उषः) प्रातःकाल के सदृश वर्त्तमान (सूनृते) सत्यवाणीयुक्त (मघोनि) प्रशंसित धन की करने वाली (वाजिनीवति) उत्तम विद्या से युक्त पत्नी तू (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (पुरु) बहुत (वार्य्या) वर्त्ताव में लाने योग्य वस्तुओं को (आ, वह) सब प्रकार से प्राप्त कराओ ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे प्रभात वेला सब जीवों की प्रिय करने वाली है वैसे ही विद्यायुक्त स्त्री सब को प्रिय होती है ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

इन्द्रो नो राधसा गमत् ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जैसे (सविता) सूर्य्य (भगः) सेवन करने योग्य पदार्थ-समुदाय (वरुणः) उदान वायु (मित्रः) प्राण वायु (अर्यमा) न्यायकारी (तत्) उस (राधसा) धन से (नः) हम लोगों को (आ) सब प्रकार (गमत्) प्राप्त होता और (इन्द्रः) बिजुली (नः) हम लोगों को (सु) उत्तम प्रकार प्राप्त होती है वैसे आप हूजिये ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० । हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जैसे नियम से सूर्य्य वायु प्राण आदि और बिजुली प्राप्त हैं वैसे ही आप हम लोगों को निरन्तर प्राप्त हूजिये ॥१०॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । १ । २ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ निचृद्गायत्री । ६ विराड् गायत्री । ७ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले छप्पनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में द्यावापृथिवी अर्थात् प्रकाश और भूमि के गुणों को कहते हैं ॥

मही द्यावांपृथिवी इह ज्येष्ठें रुचा भंवतां शुचयंद्भिरर्कैः ।
यत्सीं वरिष्ठे बृहती विंमिन्वन्नुवद्धोक्षा पंप्रथानेभिरेवैः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (यत्) जो (विमिन्वन्) विशेष करके फेंकता हुआ (रुवत्) प्रशंसित शब्दवान् जैसे हो वैसे (ह) ही (उक्षा) सूर्य्य के समान विद्वान् (इह) यहां (सीम्) सब ओर से (शुचयद्भिः) पवित्र करते हुए (अर्कैः) सेवा करने योग्य और (पप्रथानेभिः) अत्यन्त विस्तारयुक्त (एवैः) सुख को प्राप्त कराने वाले गुणों के साथ वर्त्तमान (वरिष्ठे) अतीव श्रेष्ठ (बृहती) बढ़ते हुए (मही) बड़े (ज्येष्ठे) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (रुचा) रुचिकर (द्यावापृथिवी) सूर्य्य और भूमि (भवताम्) होते हैं उनको यथावत् विशेष करके जानता है वही सब का कल्याण करने वाला होता है ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य पृथिवी से लेके सूर्य्यपर्य्यन्त पदार्थों को जानते हैं वे धनवान् होकर सब को सुखी करें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

देवी देवेभिर्यजते यजंत्रैरमिंनती तस्थतुरुक्षमाणे ।
ऋतावंरी अद्रुहां देवपुंत्रे यज्ञस्यं नेत्री शुचयंद्भिरर्कैः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (अर्कैः) सत्कार करने योग्य (शुचयद्भिः) पवित्रता को कहते हुए (यजत्रैः) मिलने योग्य (देवेभिः) श्रेष्ठ गुणों वा विद्वानों से जो (देवी) प्रकाशमान (अमिनती) नहीं हिंसा करने वाले (ऋतावरी) बहुत सत्य से युक्त (अद्रुहा) नहीं द्रोह करने योग्य (देवपुत्रे) विद्वान् जन पुत्र जिन के वे (यज्ञस्य) संसार के व्यवहार के (नेत्री) चलाने वाले (उक्षमाणे) सब प्राणियों को सुखों से सींचते हुए (यजते) मिलने योग्य सूर्य्य और भूमि (तस्थतुः) स्थित होते हैं उनको जान के जो व्यवहारों में संयुक्त करता है वही भाग्यशाली होता है ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य पृथिवी से लेके प्रकृति अर्थात् प्रधानपर्य्यन्त पदार्थों को उन के गुण कर्म्म स्वभाव से यथावत् जान के कार्य्य की सिद्धि के लिए सम्प्रयोग करते हैं वे सदा ही भाग्यशाली होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स इत्स्वपा भुवनेष्वास य इमे द्यावापृथिवी जजानं ।
उर्वी गंभीरे रजसी सुमेकें अवंशे धीरः शच्या समैरत् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोगों को (यः) जो (स्वपाः) श्रेष्ठ कर्म्मों से युक्त (धीरः) धीर जगदीश्वर (भुवनेषु) लोकों में (आस) विद्यमान है (इमे) इन (उर्वी) बहुत पदार्थों से युक्त (गभीरे) गाम्भीर्य्य आदि गुणसहित (रजसी) रजोवृन्दों से बनाये गये (सुमेके) एक हुए अर्थात् परस्पर सम्बन्धयुक्त (अवंशे) वंश अर्थात् उत्पत्तिक्रम से आगे को रहित और अन्तरिक्ष में स्थित (द्यावापृथिवी) सूर्य्य और भूमि को (जजान) उत्पन्न किया (शच्या) बुद्धि से (सम, ऐरत्) कम्पाता अर्थात् क्रम के अनुकूल चलाता है (सः, इत्) वही सदा उपासना करने योग्य है ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने असङ्ख्य भूमि आदि लोक आकाश में रचे और व्यवस्था से वे चलाये हैं वह सदा ही उपासना करने योग्य है ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू रोदसी बृहद्भिर्नो वरूथैः पत्नीवद्भिरिषयन्ती सजोषाः ।
उरूची विश्वे यजते नि पातं धिया स्याम रथ्यः सदासाः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (सजोषाः) तुल्य प्रीति का सेवन करने वाला विद्वान् (धिया) बुद्धि वा कर्म्म से जो (इषयन्ती) सुख को प्राप्त कराती हुई (उरूची) बहुतों का आदर करने वाली (विश्वे) अन्तरिक्ष में प्रविष्ट (यजते) मिलने योग्य और (बृहद्भिः) जो बड़े (पत्नीवद्भिः) बहुत स्त्रियों से युक्त (वरूथैः) उत्तम गृह उनके साथ वर्त्तमान (रोदसी) सूर्य्य और पृथिवी (नः) हम लोगों की (नि) अत्यन्त (पातम्) रक्षा करती हैं उनको जानता है वैसे इन को जान के हम लोग (रथ्यः) बहुत रथ आदि से युक्त (सदासाः) सेवकों के सहित (नू) शीघ्र (स्याम) होवें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य बहुत और बड़े पदार्थों से युक्त बिजुली और भूमि को विशेष करके जानते हैं वे शीघ्र लक्ष्मीवान् होते हैं ॥४॥

अब शिल्पविद्या की शिक्षा को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र वां महि द्यवी अभ्युपस्तुतिं भरामहे । शुची उप प्रशस्तये ॥५॥

पदार्थः—हे शिल्पविद्या में प्रवीणो ! जिससे हम लोग (प्रशस्तये) प्रशंसित (शुची) पवित्र (महि) महागुणयुक्त (द्यवी) प्रकाशमान को (अभि, उप, प्र, भरामहे) सब ओर से अच्छे प्रकार धारण करते हैं इससे (वाम्) आप दोनों अध्यापक और क्रिया करनेवालों को (उपस्तुतिम्) उपमायुक्त प्रशंसा करते हैं ॥५॥

भावार्थः—जिन के समीप से शिल्प आदि विद्या ग्रहण की जाती है उन का आदर मनुष्य सदा करें ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पुनाने तन्वा मिथः स्वेन दक्षेण राजथः । ऊह्याथे सनादृतम् ॥ ६ ॥

पदार्थः—जो शिल्पविद्या के पढ़ाने और पढ़ने वाले (स्वेन) अपने (दक्षेण) बलयुक्त (तन्वा) शरीर से (पुनाने) पवित्र करनेवाले सूर्य और पृथिवी को जान के (मिथः) परस्पर (राजथः) शोभित होते हैं और (सनात्) सनातन से (ऋतम्) सत्य का (ऊह्याथे) ऊहापोह करते हैं वे सत्कार के योग्य होते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो शिल्पविद्या में निपुण होते हैं उन का सत्कार यथायोग्य राजा आदि को करना चाहिये ॥६॥

फिर शिल्पविद्या विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मही मित्रस्य साधथस्तरन्ती पिप्रती ऋतम् ।
परि यज्ञं नि षेदथुः ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जो (तरन्ती) दुःख से पार उतारती और (पिप्रती) सम्पूर्ण आनन्द को पूर्ण करती हुई (मही) बड़ी सूर्य और पृथिवी (ऋतम्) सत्यकारणरूप (यज्ञम्) संग करने अर्थात् आरम्भ करने योग्य यज्ञ को (परि) सब प्रकार से (नि, षेदथुः) सिद्धि करती और (मित्रस्य) सब के मित्र के कार्य्यों को (साधथः) सिद्ध करती उन सूर्य्य और भूमि को यथावत् जान के उन का संयोग करो अर्थात् काम में लाओ ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये सब के आधारभूत सब कार्य्य सिद्ध करने वाली सूर्य और पृथिवी को जान के अभीष्ट कार्य्यों को सिद्ध करें ॥७॥

इस सूक्त में सूर्य्य और पृथिवी के गुण और शिल्पविद्या की शिक्षा वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छप्पनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । १—३ क्षेत्रपतिः । ४ शुनः । ५ । ८ शुनासीरौ । ६ । ७ सीता देवता । १ । ४ । ६ । ७ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ । ३ । ८ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ पुर उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले सत्तावनवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में कृषिकर्म को कहते हैं॥

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृळातीदृशे॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (क्षेत्रस्य) अन्न की उत्पत्ति के आधार स्थान अर्थात् खेत के (पतिना) स्वामी से (वयम्) हम लोग (हितेनेव) हित की सिद्धि करने वाली सेना के सदृश से (गाम्) पृथिवी (अश्वम्) घोड़ा (पोषयित्नु) और पुष्टि करने वाले द्रव्य को (जयामसि) जीतते हैं (सः) वह क्षेत्र का स्वामी (ईदृशे) ऐसे में (नः) हम लोगों को (आ, मृळाति) सुख देवे॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे उत्तम प्रकार शिक्षित और अनुरक्त सेना से वीरजन विजय को प्राप्त होते हैं वैसे ही कृषि अर्थात् खेतीकर्म्म में चतुर जन ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु॥२॥

पदार्थः—हे (क्षेत्रस्य) अन्न के उत्पन्न होने की आधारभूमि के (पते) स्वामी ! जैसे (ऋतस्य) सत्य के (पतयः) स्वामी (घृतमिव) घृत के सदृश (मधुश्चुतम्) मधुर आदि गुणों से युक्त (सुपूतम्) उत्तम प्रकार पवित्र विज्ञान को प्राप्त होकर (नः) हम लोगों को (मृळयन्तु) सुख दीजिये तथा (धेनुरिव) गौ के सदृश (मधुमन्तम्) मधुर आदि गुणों से युक्त (ऊर्मिम्) जलधारा और (पयः) दुग्ध को (अस्मासु) हम लोगों में (धुक्ष्व) पूर्ण करो॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे बुद्धिमान् खेती करने वाले जन सुन्दर शुद्ध अन्नों को उत्पन्न कर के सब को आनन्द देते हैं वैसे ही खेती करने वाले जनों की उत्तम प्रकार रक्षा कर के सदा उत्साहयुक्त करें॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (नः) हम लोगों के लिये (ओषधीः) यव आदि ओषधियां (द्यावः) सूर्य्य आदि प्रकाश और (आपः) जल (मधुमतीः) मधुर आदि गुणों से युक्त हों (अन्तरिक्षम्) आकाश (मधुमत्) मधुर आदि गुणों से युक्त (भवतु) हो (क्षेत्रस्य) अन्न के उत्पन्न होने की भूमि का (पतिः) स्वामी (नः) हम लोगों के लिये (मधुमान्) मधुरगुणवाला (अस्तु) हो और (अरिष्यन्तः) अन्यों के साथ नहीं हिंसा करने वाले हम लोग (एनम्) इस को (अनु, चरेम) अनुकूल वर्त्तें ॥३॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि वे जैसे अपने लिये उत्तम पदार्थ चाहते हैं वैसे ही अन्य जनों के लिये भी इच्छा करें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय ॥४॥

पदार्थः—हे खेती करने वाले जन ! जैसे (वाहाः) बैल आदि पशु (शुनम्) सुख को प्राप्त हों (नरः) मुखिया कृषीवल (शुनम्) सुख को करें (लाङ्गलम्) हल का अवयव (शुनम्) सुख जैसे हो वैसे (कृषतु) पृथिवी में प्रविष्ट हो और (वरत्राः) बैल की रस्सी (शुनम्) सुखपूर्वक (बध्यन्ताम्) बांधी जाय वैसे (अष्ट्राम्) खेती के साधन के अवयव को (शुनम्) सुखपूर्वक (उत, इङ्गय) ऊपर चलाओ ॥४॥

भावार्थः—खेती करने वाले जन उत्तम हल आदि सामग्री वृषभ और बीजों को इकट्ठे करके खेतों को उत्तम प्रकार जोत कर उन में उत्तम अन्नों को उत्पन्न करें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः ।
तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥५॥

पदार्थः—हे (शुनासीरौ) क्षेत्र के स्वामी और भृत्य आप दोनों (यत्) जिस (इमाम्) इस कृषिविद्या को प्रकाश करने वाली (वाचम्) वाणी और (पयः) जल को (दिवि) कृषिविद्या के प्रकाश में (चक्रथुः) करते हैं उनकी (जुषेथाम्) सेवा करो (तेन) इससे (इमाम्) इस भूमि को (उप, सिञ्चतम्) सींचो ॥५॥

भावार्थः—खेती करने वाले जन प्रथम खेती के करने की विद्या को ग्रहण करके पश्चात् यथायोग्य खेती कर धन और धान्य से युक्त सदा हों ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथा नः सुभगाससि यथा नः सुफलाससि ॥६॥

पदार्थः—हे (सुभगे) उत्तम प्रकार ऐश्वर्य्य की बढ़ाने वाली ! (यथा) जैसे (अर्वाची) नीचे को चलने वाली (सीते) हल आदि के खींचने वाले अवयव लोहे से बनाई गई सीता है वैसे आप (भव) हूजिये और जैसे भूमि (सुभगा) सौभाग्य से युक्त है वैसे तू (नः) हम लोगों की (असति) है और (यथा) जैसे भूमि (सुफला) उत्तम फलों से युक्त है वैसे तू (नः) हम लोगों की (असति) है इससे हम लोग (त्वा) तेरी (वन्दामहे) कामना करते हैं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे उत्तम प्रकार सम्पादित खेत की धरती उत्तम अन्नों को उत्पन्न करती है वैसे ही ब्रह्मचर्य्य से विद्या को प्राप्त हुआ जन उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करता है और जैसे भूमि का राज्य ऐश्वर्य्यकारक है वैसे परस्पर प्रसन्न स्त्री और पुरुष बड़े ऐश्वर्य्यवाले होते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाऽनु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥७॥

पदार्थः—हे खेती करने वाले जनो ! जो (पयस्वती) बहुत जल से युक्त (नः) हम लोगों के लिये (अनु, यच्छतु) अनुग्रह करे (सा) वह आप लोगों को भी प्राप्त हो और जिस (सीताम्) भूमि जुताने वाले वस्तु को (इन्द्रः) भूमि का दारण कराने-वाला (नि, गृह्णातु) ग्रहण करे (ताम्) उस (दुहाम्) प्रपूरण करने वाली (उत्तरा-मुत्तराम्) फिर फिर बनाई गई (समाम्) शुद्ध सीता अर्थात् भूमि जुताने वाले वस्तु को (पूषा) पुष्टि करने वाला देवे उसका आप लोग भी संयोग करें ॥७॥

भावार्थः—सब कृषिकर्म करने वाले जन विद्वान् क्षेत्र जोतने वालों का अनुकरण करके कृषि की वृद्धि को उत्पन्न करें ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः ।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८॥

पदार्थः—जैसे (फालाः) लोहे से बनाई गईं भूमि के खोदने के लिये वस्तुयें (वाहैः) बैल आदिकों के द्वारा (नः) हम लोगों के लिये (भूमिम्) भूमि को (शुनम्) सुखपूर्वक (वि, कृषन्तु) खोदें (कीनाशाः) कृषिकर्म्म करने वाले (शुनम्) सुख को (अभि, यन्तु) प्राप्त हों (पर्जन्यः) मेघ (मधुना) मधुर आदि गुण से और (पयोभिः) जलों से (शुनम्) सुख को वर्षावै वैसे (शुनासीरा) अर्थात् सुख देनेवाले स्वामी और भृत्य कृषिकर्म करने वाले तुम दोनों (अस्मासु) हम लोगों में (शुनम्) सुख को (धत्तम्) धारण करो ॥८॥

भावार्थः—कृषिकर्म्म करने वाले मनुष्यों को चाहिये कि उत्तम फाल आदि वस्तुओं को बनाय के हल आदि से भूमि को उत्तम करके अर्थात् गोड़ के उत्तम सुख को प्राप्त हों वैसे ही अन्य राजा आदि के लिये सुख देवें ॥८॥

इस सूक्त में कृषिकर्म्म के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

वामदेव ऋषिः । अग्निः सूर्यो वाऽपो वा गावो वा घृतं वा देवताः । १ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ८—१० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ अनुष्टुप् । ६ । ७ निचृदनुष्टुप् छन्दः । ११ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ निचृदुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले अट्ठावनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में उदकविषय को कहते हैं ॥

समुद्रादूर्मिर्मधुमाँ उदारदुपांशुना सममृतत्वमानट् ।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अंशुना) सूर्य्य से (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (मधुमान्) मधुरगुण युक्त (ऊर्म्मिः) जल का समूह (उप, उत् आरत्) उत्तमता से प्राप्त होता और (अमृतत्वम्) अमृतपन को (सम्, आनट्) व्याप्त होता है (यत्) जो (घृतस्य) जल की (गुह्यम्) गुप्त (नाम) संज्ञा (अस्ति) है वह (अमृतस्य) अमृतात्मक कारण की (नाभिः) नाभि के सदृश और (देवानाम्) विद्वानों वा श्रेष्ठ गुणों की (जिह्वा) जिह्वा के सदृश है उस की विद्या को आप लोग जानो ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! भूमि के समीप से सूर्य्य के प्रताप से वायु के द्वारा जितना जल आकाश में जाता है वहां ईश्वर की सृष्टि के क्रम से

मधुर आदि गुणों से युक्त होके और वह वर्षके अमृतस्वरूप होता है यह जानो ।।१।।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

वयं नाम प्र ब्रवामा घृतस्यास्मिन् यज्ञे धारयामा नमोभिः ।
उप ब्रह्मा शृणवच्छस्यमानं चतुः शृङ्गोऽवमीद् गौर एतत् ।।२।।

पदार्थः—(चतुःशृङ्गः) चारवेद शृङ्गों अर्थात् शिखरों के सदृश जिस के ऐसा (ब्रह्मा) चार वेद का जानने वाला जिस (शस्यमानम्) प्रशंसा करने योग्य को (उप,-शृणवत्) समीप में सुनै और (गौरः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी में रमने वाला जो (अवमीत्) उपदेश देवे सो (एतत्) इस (घृतस्य) जल की (नाम) संज्ञा को (वयम्) हम लोग (प्र, ब्रवाम) उपदेश देवैं और (अस्मिन्) इस (यज्ञे) वर्षा आदि जलव्यवहार में (नमोभिः) अन्न आदि पदार्थों से उसको (धारयाम) धारण करावैं ।।२।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! चार वेद का जानने वाला यथार्थवक्ता जन जैसा उपदेश करै और जिस सिद्धान्त का निश्चय करै वैसे ही सिद्धान्त का हम लोग भी उपदेश और निश्चय करें ।।२।।

अब अगले मन्त्र में ईश्वर के विज्ञान को कहते हैं ।।

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्याँ आ विवेश ।।३।।

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (महः) बड़ा सेवा और आदर करने योग्य (देवः) स्वप्रकाशस्वरूप और सब को सुख देने वाला (मर्त्यान्) मरणधर्मवाले मनुष्य आदिकों को (आ) सब प्रकार से (विवेश) व्याप्त होता है (वृषभः) और जो सुखों का वर्षाने वाला (त्रिधा) तीन श्रद्धा, पुरुषार्थ और योगाभ्यास से (बद्धः) बँधा हुआ (रोरवीति) निरन्तर उपदेश देता है (अस्य) इस धर्म्म से युक्त नित्य और नैमित्तिक परमात्मा के बोध के (द्वे) दो, उन्नति और मोक्षरूप (शीर्षे) शिरस्थानापन्न (त्रयः) तीन अर्थात् कर्म्म उपासना और ज्ञानरूप (पादाः) चलने योग्य पैग (चत्वारि) और चार वेद (शृङ्गा) शृङ्गों के सदृश आप लोगों को जानने योग्य हैं और (अस्य) इस धर्म्मव्यवहार के (सप्त) पांच ज्ञानेन्द्रिय वा पांच कर्म्मेन्द्रिय अन्तःकरण और आत्मा ये सात (हस्तासः) हाथों के सदृश वर्त्तमान हैं और उक्त तीन प्रकार से बँधा हुआ व्यवहार भी जानने योग्य है ।।३।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! इस परमेश्वर से व्याप्त संसार में यज्ञ के चार वेद और नाम आख्यात उपसर्ग और निपात; विश्व, तैजस, प्राज्ञ, तुरीय

धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष आदि शृङ्ग हैं। तीन सवन अर्थात् त्रैकालिक यज्ञ कर्म्म; तीन काल; कर्म्म उपासना ज्ञान मन वाणी शरीर इत्यादि पाद हैं दो व्यवहार और परमार्थ, नित्य; कार्य्य शब्दस्वरूप उदगयन और प्रापणीय अध्यापक और उपदेशक इत्यादि शिर हैं गायत्री आदि सात छन्द सात विभक्तियां सात प्राण पांच कर्म्मेन्द्रिय शरीर और आत्मा इत्यादि हस्त हैं। तीन मन्त्र, ब्राह्मण, कल्प और हृदय, कण्ठ शिर में श्रवण, मनन निदिध्यासनों में ब्रह्मचर्य्य, श्रेष्ठ कर्म, उत्तम विचारों के बीच सिद्ध यह व्यवहार महान् सत्कर्त्तव्य और मनुष्यों के बीच प्रविष्ट है यह सब जानें ॥३॥

अब सूर्यदृष्टान्त से विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (देवासः) विद्वान् जन (पणिभिः) प्रशंसित व्यवहार करने वालों के साथ (गवि) वाणी में (गुह्यमानम्) गुप्त कराया जाता (त्रिधा) तीन प्रकारों से (हितम्) स्थित और (घृतम्) घृत के सदृश आनन्द देने वाले विज्ञान को (अनु, अविन्दन्) अनुकूल प्राप्त होते और (स्वधया) अपनी धारण की हुई बुद्धि से (निः, ततक्षुः) निरन्तर विस्तार करते हैं। और जैसे (इन्द्रः) बिजुली (वेनात्) सुन्दर परमात्मा के समीप से (एकम्) अव्यक्त अर्थात् प्रकृति को और (सूर्य्यः) सूर्य्य (एकम्) एक को (जजान) उत्पन्न करता है वैसे आप लोग भी (एकम्) निरन्तर सुख अर्थात् मोक्ष को सिद्ध करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे श्रेष्ठ व्यवहारों के साथ वर्त्तमान विद्वान् जन उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी और बुद्धि को तथा बिजुली आदि की विद्या को प्राप्त हो परमेश्वर को जान और उस की आज्ञा का पालन करके सुख का विस्तार करते हैं वैसे ही सब लोग अच्छा आचरण करें ॥४॥

अथ मेघविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एता अर्षन्ति हृद्यात् समुद्राच्छतव्रजा रिपुणा नावचक्षे ।
घृतस्य धारा अभि चाकशीमि हिरण्ययो वेतसो मध्य आसाम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (आसाम्) इन धाराओं के (मध्ये) मध्य में (हिरण्ययः) तेजःस्वरूप वा सुवर्णस्वरूप (वेतसः) सुन्दर मैं जो (घृतस्य) जल की

(एताः) ये (शतव्रजाः) अपरिमित गति वाली (धाराः) धारायें (हृद्यात्) हृदय के प्रिय (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से (अर्षन्ति) प्राप्त होती हैं उन को (अवचक्षे) कहने को (अभि, चाकशीमि) प्रकाश करता हूं और (रिपुणा) शत्रु के साथ (न) नहीं वसता हूं वैसे आप लोग जानो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो ! जैसे आकाश से गिरी हुईं वर्षा सब जगत् का पालन करती हैं वैसे ही आप लोगों से निकली हुईं विज्ञान की वाणियाँ सब जगत् की रक्षा करती हैं ॥५॥

फिर उदकविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सम्यक्स्रवन्ति सरितो न धेना अन्तर्हृदा मनसा पूयमानाः ।
एते अर्षन्त्यूर्मयो घृतस्य मृगाइव क्षिपणोरीषमाणाः ॥६॥

पदार्थः—जिन विद्वानों के (अन्तः, हृदा) अन्तर्विराजमान आत्मा और (मनसा) शुद्ध अन्तःकरण से (पूयमानाः) पवित्रता करती हुईं (धेनाः) विद्यायुक्त वाणियां (सरितः) नदियों के (न) सदृश (सम्यक्) उत्तम प्रकार (स्रवन्ति) चलती हैं सो (एते) ये विद्वान् (घृतस्य) जल की (ऊर्मयः) लहरियों और (क्षिपणोः) प्रेरणा देने वाले से (मृगाइव) हरिणों के सदृश (ईषमाणाः) चलते हुए सब कीर्ति को (अर्षन्ति) प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जो सत्य कहते हैं वे ही पवित्रात्मा हो के जल के सदृश शान्त होते हुए मृगों के सदृश शीघ्र ही अपेक्षित सुख को प्राप्त होते हैं ॥६॥

अब जलदृष्टान्त से वाणीविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सिन्धोरिव प्राध्वने शूघनासो वातप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा अरुषो न वाजी काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (पिन्वमानः) प्रसन्न करता हुआ मैं जैसे (शूघनासः) शीघ्रगामिनी (यह्वाः) बड़ी (वातप्रमियः) वायु को मापने वाली और (प्राध्वने) उत्तम प्रकार से चलने योग्य मार्ग के लिये (सिन्धोरिव) नदियों के अर्थात् नदियों की तरङ्गों के समान (पतयन्ति) पति के सदृश आचरण करती हैं तथा (अरुषः) लाल रूप वाले (वाजी) घोड़े के (न) सदृश (घृतस्य) जल की (धाराः) धारा (ऊर्मिभिः) तरङ्गों से (काष्ठाः) दिशाओं के समान तटों को (भिन्दन्) विदीर्ण करती हैं वैसे उपदेशों की वृष्टि करके अविद्याओं का नाश करता हूं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जिन विद्वानों के नदियों के प्रवाह सदृश उत्तम उपदेश प्रचरित होते और घोड़ों के समान दुःखों के पार कराते हैं वे ही बड़े श्रेष्ठ पुरुष हैं ॥७॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि प्रवन्त समनेव योषाः कल्याण्यः स्मयमानासो अग्निम् ।
घृतस्य धाराः समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदाः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (घृतस्य) घृत की (धाराः) धारा और (समिधः) काष्ठ (अग्निम्) अग्नि को (नसन्त) प्राप्त होते हैं वैसे (कल्याण्यः) कल्याण करने वालीं (स्मयमानासः) कुछ हंसती हुई परिमाणयुक्त हंसने वालीं (योषाः) स्त्रियां (समनेव) तुल्य मन वाली पतिव्रता स्त्री के सदृश अभीष्ट पतियों को (अभिः, प्रवन्त) सम्मुख प्राप्त हों और जैसे (ताः) वे सुख को प्राप्त होती हैं वैसे विद्या और धर्म का (जुषाणः) सेवन करता हुआ (जातवेदाः) विज्ञान से युक्त विद्वान् सब के प्रिय की (हर्यति) कामना करता है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा०—जैसे अग्नि और इन्धन के संयोग से प्रकाश होता है वैसे उत्तम अध्यापक और पढ़ने वाले के सम्बन्ध से विद्या का प्रकाश होता है। और जैसे स्वयंवर जिन्होंने किया ऐसे स्त्री-पुरुष परस्पर के सुख की कामना करते हैं वैसे ही उत्पन्न हुई विद्या जिन को ऐसे योगी जन सब का सुख उत्पन्न कराते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कन्याइव वहतुमेतवा उं अञ्ज्यञ्जाना अभि चाकशीमि ।
यत्र सोमः सूयते यत्र यज्ञो घृतस्य धारा अभि तत्पवन्ते ॥९॥

पदार्थः—जो (वहतुम्) धारण करने वाले को (एतवै) प्राप्त होने की (कन्याइव) जैसे कुमारी वैसे (अञ्जि) व्यक्त उत्तम लक्षण को (अञ्जानाः) प्रकट करती हुई (घृतस्य) प्रकाशसम्बन्धिनी (धाराः) वाणियां (उ) और (यत्र) जहां (सोमः) ऐश्वर्य्य वा ओषधियों का समूह और (यत्र) जहां (यज्ञः) करने योग्य व्यवहार (सूयते) उत्पन्न होता है (तत्) उस कर्म्म को (अभि, पवन्ते) पवित्र कराती हैं उन को मैं (अभि, चाकशीमि) प्रकाशित करता हूं ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है। जैसे स्वयंवर करने वाली कन्या अपने सदृश पति को प्राप्त होने की दिन रात्रि परीक्षा करती है और

ऐसे ही पुरुष परीक्षा करता है वैसे अध्यापक और उपदेशक परीक्षक होवें और जिस कर्म्म से ऐश्वर्य्य और क्रिया की शुद्धि होवे वही वचन कहने योग्य है ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभ्यर्षत सुष्टुतिं गव्यमाजिमस्मासु भद्रा द्रविणानि धत्त ।
इमं यज्ञं नयत देवता नो घृतस्य धारा मधुमत्पवन्ते ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग (अस्मासु) हम लोगों में (आजिम्) प्रसिद्ध (गव्यम्) वाणी के लिये हितकारक व्यवहार को और (भद्रा) सेवने योग्य अपेक्षित सुख देने वाले (द्रविणानि) धनों वा यशों को (धत्त) धारण करो (देवता) विद्वान् जन आप लोग (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ को (नः) हम लोगों के लिये (नयत) प्राप्त कराओ और जैसे (घृतस्य) प्रकाशित बोध के (धाराः) प्रकाश करने वाली वाणियाँ (मधुमत्) श्रेष्ठविज्ञान से युक्त कर्म्म को (पवन्ते) शुद्ध करती हैं वैसे हम लोगों को पवित्र करके (सुष्टुतिम्) उत्तम प्रशंसा को (अभि, अर्षत) प्राप्त हूजिये ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—उन्हीं विद्वानों की प्रशंसा होती है जो सब मनुष्यों में उपदेश द्वारा उत्तम गुणों को धारण करते हैं ॥१०॥

फिर ईश्वर के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

धामन्ते विश्वं भुवनमधि श्रितमन्तः समुद्रे हृद्य१न्तरायुषि ।
अपामनीके समिथे य आभृतस्तमश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् ॥११॥

पदार्थः—हे भगवन् ! जिस (ते) आप के (धामन्) आधाररूप (अन्तः) मध्य (समुद्रे) अन्तरिक्ष और (हृदि, अन्तः) हृदय के मध्य में (आयुषि) जीवन के निमित्त प्राण में (अपाम्) प्राणों की (अनीके) सेना में और (समिथे) संग्राम में (विश्वम्) सम्पूर्ण (भुवनम्) जगत् (अधि) ऊपर (श्रितम्) स्थित है तथा (यः) जो (ते) आप का विद्वानों से (आभृतः) सब प्रकार धारण किया गया (तम्) उस (मधुमन्तम्) माधुर्य्यगुण से युक्त (ऊर्मिम्) रक्षा आदि व्यवहार और आनन्द को हम लोग (अश्याम) प्राप्त होवें उस आप की उपासना को निरन्तर करें ॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर जगत् को अभिव्याप्त हो के सब को धारण कर और उत्तम प्रकार रक्षा कर के अन्तर्य्यामिरूप से

सर्वत्र व्याप्त है और जिस की कृपा से विज्ञान, बहुत काल पर्य्यन्त जीवन और विजय प्राप्त होता है उसी की निरन्तर सेवा करो॥११॥

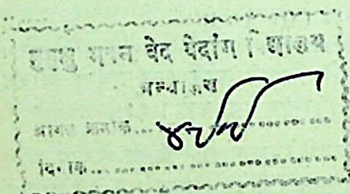
इस सूक्त में जल मेघ सूर्य्य वाणी विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्तार्थ के साथ सङ्गति है यह जानना चाहिये ॥

**यह श्रीमान् परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य परमविद्वान् श्रीमद्विरजानन्दसरस्वती स्वामीजी के शिष्य श्रीमान् दयानन्दसरस्वती स्वामीजी के बनाये हुए, संस्कृत और आर्य्यभाषा से सुशोभित, ऋग्वेदभाष्य के चतुर्थ मण्डल में अट्ठावनवां सूक्त समाप्त हुआ॥**

इति चतुर्थं मण्डलम् ॥

---





# विशेष द्रष्टव्य

ऋग्वेद का यह दूसरा भाग आपके हाथों में है। इसमें दूसरा, तीसरा और चतुर्थ मण्डल है।

तीसरे भाग में पांचवां और छठा मण्डल तथा सातवें मण्डल के ६१ वें सूक्त के दो मन्त्रों तक महर्षि-भाष्य छपेगा।

चतुर्थ भाग में शेष सातवां और आठवां मण्डल छपेगा।

पंचम भाग में नवम और दशम मण्डल छपेंगे।

वेद सब
सत्य विद्याओं
का पुस्तक है।

— महर्षि दयानन्द

